Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079450

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

Diamond Book Binding Ho
Moti Naraclib B.H.E.L. Road Jan
Stock Verification-2002
Stock Verification-2004
Stock Verification-2005
Stock Verification-2006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल

COMPILED

विश्व-दर्शन सहित

079450

अक्तूबर १९५८

●

मूल्य

पचास नये पैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थायी महत्व की पुस्तकें

सुन्दर सज-धज और कम दाम

	मूल्य	डाक खर्च
राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के भाषण (१९५२–१९५६)	३·५०	०·८५
स्वाधीनता और उसके बाद (जवाहरलाल नेहरू के भाषण) (१९४६–४९)	५·००	१·३५
भारतीय कविता १९५३	५·००	१·७५
भारत की एकता का निर्माण (सरदार पटेल के भाषण)	५·००	१·३०
भारतीय वास्तुकला के ५,००० वर्ष	२·००	०·२५
कर-जांच-आयोग के प्रतिवेदन का संक्षिप्त सार	२·५०	०·७५
अशोक के धर्मलेख	१·००	०·२५
पंचांग सुधार	०·३५	०·१५
हमारे राष्ट्रीय गीत	०·२५	०·१५
दसवाँ वर्ष	१·५०	०·५०
भारत के पक्षी	१२·५०	०·९५

(रजिस्ट्रेशन व्यय अलग)

पच्चीस रुपये या इससे अधिक की पुस्तकों पर डाक व्यय नहीं लिया जाता है।

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पोस्ट बॉक्स नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट

दिल्ली - ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल

वर्ष १४ अंक ६ पूर्णांक १७२

सम्पादक मण्डल :
बनारसीदास चतुर्वेदी
नगेन्द्र
मोहन राव
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (मंत्री)

सहायक सम्पादक—वीरेन्द्र कुमार त्यागी

अक्तूबर १९५८

(९ आश्विन से ९ कार्तिक १८८०)

तुम बुझाओ दहकती हुई प्यास को (कविता)	उदयशंकर भट्ट	३	२४५ ई०, गवर्नमेण्ट क्वार्टर्स, करौलबाग, नई दिल्ली
जनसमूह, बुद्धिजीवी और दार्शनिक (कविता)	जगदीश गुप्त	४	मोती महल, दारा गंज, इलाहाबाद
एक मुर्गे की कहानी (बंगला कविता)	सुकान्त भट्टाचार्य	४	(स्वर्गीय)
महात्मा गांधी (बंगला से)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	५	
नई कविता : केन्द्र और परिधि	शचीरानी गुर्टू	९	७/२३, दरियागंज, दिल्ली
हिमाचल की आवाज़	गुरुदयाल मल्लिक	१६	द्वारा 'निरान्त', जुहू, बम्बई
वह मासूम चेहरा (मलयालम कहानी)	'के'	१७	द्वारा डी० मंजुलता, धून विल्ला, तिलक रोड, हैदराबाद
आज़ादी के बाद उर्दू कहानी (उर्दू साहित्य)	हंसराज 'रहबर'	२०	अकबर मंज़िल, उर्दू बाज़ार, दिल्ली
बरखा गीत (कविता)	कमला चौधरी	२२	विनीत कुंज, छीपी तालाब, मेरठ
कुमाऊं के संस्कार-गीत (लोक साहित्य)	पूरनचन्द्र जोशी	२३	बगिया मनीराम, कानपुर
पुण्य की तह में (हिन्दी कहानी)	यशपाल	२५	विप्लव कार्यालय, २१-शिवाजी मार्ग, लखनऊ
चेखव और मास्को आर्ट थियेटर	रामकुमार	२७	९-रूई डी फोसस स्ट्रीट, जैक्विस, पैरिस-५
यमुनोत्री, गंगोत्री तथा गोमुख की यात्रा	यशपाल जैन	२९	७/८, दरियागंज, दिल्ली
सारस्वत (३) (मराठी नाटक)	मामा वरेरकर	३७	एम० पी०; १९१-साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली
गीली मिट्टी (एक स्केच)	अमृतराय	४४	हंस प्रकाशन, ९३-जीरो रोड, इलाहाबाद
रूस के सिबिरों का पिता बैकाल	कमला रतनम	४६	९-बी०, सुजानसिंह पार्क, नई दिल्ली
पुस्तक समालोचना	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	५०	४-पटौदी हाउस, नई दिल्ली
	उदयशंकर भट्ट		२४५ ई०, गवर्नमेण्ट क्वार्टर्स, करौलबाग, नई दिल्ली
	मन्मथनाथ गुप्त		सम्पादक 'योजना'; १९०-खैबर पास मैस, दिल्ली
सम्पादकीय	...	५७	

आवरण चित्र : राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

इस मास का फोटो : "गांव की गली का लैम्प" : कान्तिचन्द्र सौनरेक्सा

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीजन, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८

वार्षिक मूल्य—६ रुपये, एक डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—पचास नये पैसे, दस सेंट या नौ पैंस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"गांव की गली का लैम्प"

फोटो : कान्तिचन्द्र सौनरेक्सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १४ अक्तूबर १९५८ अंक ६

तुम बुझाओ दहकती हुई प्यास को

उदयशंकर भट्ट

तुम बुझाओ दहकती हुई खून की प्यास को, प्यास आकाश के छोर छूती चली जा रही।

आ रहा साँस के साथ पीता हविस पूछता हूँ कि यह प्यास बुझती न क्यों ?
प्राण में जागती कल्प कल्पांत से चेतना में घुली आस बुझती न क्यों ?
जिन्दगी के सरोजी चरण में चुभी घाव करती रही हारता मैं रहा।
प्यास की वारुणी पी सभी मिट गए प्राण सौन्दर्य पर वारता मैं रहा।
अंत मेरा, मगर अंत इस प्यास का हो सका ही नहीं, याद भी धो सकी;
आग जितनी दबी राख उतनी उड़ी, जो जगी चाह पल को नहीं सो सकी;
इस धरा के लिए और धन के लिए और मन की खुभन के लिए मैं लड़ा;
और अधिकार, ताकत, प्रतिष्ठा जहाँ आन का प्रश्न आया वहीं जा अड़ा;

प्यास मेरी अबुझ, आस मेरी अबुझ, मुट्ठियों में जकड़ लूं विभव विश्व का;
वायु को बाँध लूँ, चाँद को मीड़ दूँ, कौन मुझ से बड़ा मैं सुमन विश्व का;
खोल दो द्वार मेरे लिए खोल दो मैं प्रकृति का विजय गीत, भोगूं विभव;
प्यास मेरी अबुझ, आस मेरी अबुझ, है मुझे रक्त प्रिय, क्यों कि मैं रक्त भव;
यदि बवंडर उठें और तूफान भी मृत्यु नाचे भले ही प्रलय पीस दे;
प्यास मेरी अबुझ पी चलूं मृत्य घट खेल खेलूं सभी शक्ति आसीस दे;
मैं रुकूंगा नहीं, मैं झुकूंगा नहीं, मैं हटूंगा नहीं, प्यास मेरी अबुझ;
टुक बढ़ाओ तरल चांद का मधु चषक, मैं पिऊं शुक्र मद जो चमकता सहज;

जल रही हैं दिशा, थरथराता पवन, घुट रही है धरा, काँपती जिन्दगी;
रुद्ध विश्वास है, मौन आकाश है, तारिकायें डरी ताकती अधजगी;
चाहिए पांडवों सी विजय, हो भले मृत्यु की सी श्मशानी धरा धूल हो;
शक्ति का दर्प मेरा अजय सिन्धु सा व्याप्त आकाश सा प्राण अनुकूल हो;
प्यास मेरी प्रखर सिन्धु की उर्मि सी, चूमती जो गगन की प्रलय दामिनी;
मैं अरुक शक्ति का वज्र श्रृंगार हूं प्राण अंगार, मैं हूं प्रलय यामिनी;
मुंडमाली भले ही कहो तुम मुझे प्यास बढ़ती रहे तृप्ति पाता रहूं;
प्राण में शक्ति के स्रोत बहते रहें चिर पिपासित सभी को दबाता रहूं;

जिन्दगी क्या मिली लालसायें जगीं भावना के नए पंख खुलत रहे;
कामनाएं उगीं, वासनाएं उठीं, सागरों से हृदय द्वंद्व तुलते रहे;
मैं चला, आग में युद्ध की जल गया रुद्र का तीसरा नेत्र ही खुल गया;
तांडवी नाच की आंच में आदमी आदमी को मिटाने गया, गल गया;
ज्ञान बढ़ता रहा जग उजड़ता रहा आदमीयत हुई दूर इन्सान की;
खून की प्यास फिर भी नहीं मंद है बूंद भर खून कीमत हुई जान की;
है अबुझ प्यास इस प्राण में जो जली, सृष्टि की आदि से आदमी में जगी;
जिन्दगी थी मिली क्या इसी के लिए खून पीते रहे प्राण भर जिन्दगी;

तुम बुझाओ दहकती हुई खून की प्यास को, प्यास आकाश के छोर छूती चली जा रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनसमूह, बुद्धिजीवी और दार्शनिक

जगदीश गुप्त

जनसमूह

(हाथ उठाते हुए, चीख चीख कर)
सम्मिलित आवाज हैं हम
नाश के, निर्माण के स्वर, सब हमीं में जन्म लेते हैं
हम अगर चाहें तो युग को
काल को, इतिहास को भी मोड़ सकते हैं
हम वह सिन्धु हैं जिसे कोई बांध नहीं पाया है
तुम अकेले बुद्धिजीवी, मान-मर्यादा लिए
अहम की मीनार पर बैठे रहो,
हम कुचल देंगे तुम्हें ।

बुद्धिजीवी

(अहम के स्वर में)
जो तुम्हारी सम्मिलित आवाज है
वह केवल ज्वार के मानिन्द है, एक क्षणिक विस्फोट
भीड़ का उन्माद केवल
क्यों कि उसके प्राण
उसकी आत्मा में, कोई गहराई नहीं है
कोई अनुभूति नहीं है
भीड़ तो होती है, सदैव ही उच्छृंखल
आस्थाविहीन सी,
जिसे अच्छे या बुरे का ज्ञान नहीं होता है
क्या वृहत आकार होना ही सभी कुछ है ।

दार्शनिक

(बुद्धिजीवी से) बुद्धि के वैभव में
वैयक्तिक मर्यादा पाने में, गौरव नहीं होता है
आत्मा सबमें हो
मर्यादा सबकी हो,
यह तुम्हारा ध्येय होना चाहिए ।
(जनसमूह से) सम्मिलित आवाज पर
गगनव्यापी शोर
जो वृहत आकार है, विस्तार, वह स्वयं में कुछ नहीं
ज्ञान, चिन्तन, संतुलन की दृष्टि
आत्मा की श्रेष्ठता चाहिए, उसको भी
हम सभी को चाहिए
हम जिसे उन्मुक्त होकर
और जीने के लिए हर किसी को एक सा अवसर दे
व्यक्ति को
समह को ।

●

बंगला कविता

एक मुर्गे की कहानी

सुकान्त भट्टाचार्य

एक मुर्गे को सहसा आश्रय मिला
विराट प्रासाद के एक छोटे से कोने में
टूटे-फूटे पैंकिंग केस के ढेरों में--
और दो तीन मुर्गियों के साथ ।
आश्रय तो मिला,
उचित आहार न मिला ।
तीखी आवाज से गला फाड़ के
चिल्लाया और प्रतिवाद किया उस मुर्गे ने,
सुबह से शाम तक --

न मिली तो भी उस विशाल पक्की इमारत से कोई सहानुभूति ।
उसके बाद कूड़े के ढेरों पर उसने जाना शुरू किया :
आश्चर्य । वहां उसे प्रति दिन मिलने लगा
भात-रोटी आदि फेंका हुआ भोजन प्रचुर मात्रा में ।
फिर एक दिन वहां भी आए उसके हिस्सेदार
फटे-मैले चिथड़े पहिने दो तीन आदमी,
परिणाम में दुर्बल मुर्गे का बन्द हुआ खाना ।

खाना ! खाना ! थोड़ा सा खाना !
असहाय मुर्गा खाने की खोज में
बार बार चेष्टा करने लगा प्रासाद में घुसने को,
हर बार वहां से खदेड़ा गया बुरी तरह ।
छोटा मुर्गा सिर ऊंचा करके देखता--
प्रासाद के भीतर भोजन की राशियों को ।

वास्तव में फिर एक दिन वह प्रासाद में घुसने पाया,
सीधा चला गया अन्दर
सफेद उजली कीमती कपड़े से ढकी टेबिल पर,
निश्चय ही भोजन करने नहीं--
भोजन बन कर ।

रूपान्तरकार--गोपालचन्द्र दास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा गांधी

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

भारतवर्ष की एक सम्पूर्ण भौगोलिक मूर्ति है। इसके पूर्वांचल से पश्चिमांचल तक, उत्तर में हिमालय से दक्षिण में कन्याकुमारी तक जो एक पूर्णता विद्यमान है, हम देखते हैं कि प्राचीन काल में उसकी छवि को अन्तर में धारण करने की इच्छा देश में थी। किसी समय देश के मन में नाना कालों और नाना स्थानों में जो विच्छिन्न हो गया था, उसे संग्रह करके, एक करके देखने की चेष्टा महाभारत-काल में हम बहुत स्पष्ट रुप से जाग्रत पाते हैं। उसी प्रकार भारतवर्ष के भौगोलिक स्वरूप की अन्तर में उपलब्धि करने का एक अनुष्ठान था, वह था तीर्थयात्रा। देश के पूर्वतम अंचल से पश्चिमतम अंचल एवं हिमालय से समुद्र पर्यन्त सर्वत्र उसके पवित्र पीठ-स्थान हैं। वहां पर तीर्थ स्थापित हो जाने से भक्ति के ऐक्यजाल में सम्पूर्ण भारतवर्ष को मन के भीतर लाने के एक सहज उपाय की सृष्टि कर दी है।

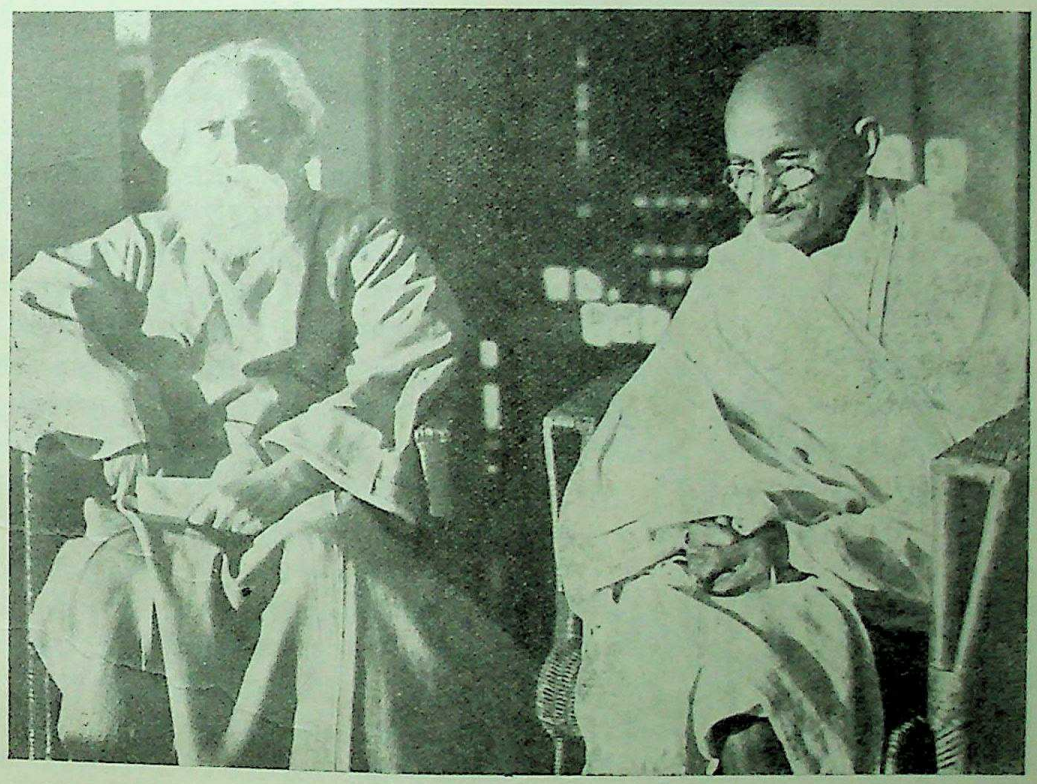

राष्ट्रपिता विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ

भारतवर्ष एक वृहत देश है। इसको पूर्णरूप से मन के भीतर ग्रहण करना प्राचीन काल में सम्भव न था। आज 'सर्वे' करके, मानचित्र बनाकर, भूगोल के विवरणों को गूंथकर भारतवर्ष की धारणा को मन में लाना जिस तरह सहज हो गया है, प्राचीनकाल में वैसा नहीं था। एक प्रकार से वह अच्छा ही था। सहज ही जो मिल जाता है, मन की तह में वह अपनी छाप नहीं छोड़ता। इसलिए कृच्छ साधनों से भारत की परिक्रमा द्वारा जो अभिज्ञता प्राप्त होती थी वह सुगम्भीर होती थी एवं मन से सहज में दूर नहीं होती थी।

महाभारत के मध्य में गीता प्राचीन काल के उस समन्वय तत्व को उज्ज्वल करती है। कुरुक्षेत्र के केन्द्र-स्थल में यह जो थोड़ी-सी दार्शनिकता-पूर्ण चर्चा है, इसे काव्य की दृष्टि से असंगत कहा जा सकता है, यूं भी कहा जा सकता है कि मूल महाभारत में यह थी ही नहीं। बाद में जिन्होंने इसे बैठाया, वे जानते थे कि उदार काव्य-परिधि में, भारत की चित्त-भूमि के बीच इस तत्वकथा की अवतारणा करने का प्रयोजन था। सम्पूर्ण भारतवर्ष को अन्तर में--भीतर--और बाहर उपलब्ध करने का प्रयास धर्मानुष्ठान के ही अन्तर्गत था। हमारे देश में महाभारत पाठ जिस तरह धर्म-कर्म में गिना गया, वह केवल तत्व की दृष्टि से ही नहीं किया गया; देश की उपलब्धि करने के लिए भी इसका औचित्य है। और, तीर्थ-यात्रियों ने भी निरन्तर घूम-घूम कर देश को स्पर्श करते हुए अत्यन्त अन्तरंग भाव से क्रमशः इसके ऐक्य-रूप को मन के भीतर ग्रहण करने की चेष्टा की है।

यह हुई प्राचीन काल की कथा।

प्राचीन काल का परिवर्तन हुआ। आजकल देश के लोग अपने प्रदेश के कोनों के भीतर संकीर्णता में बंधे हुए हैं। संस्कार और लोकाचार के जाल में हम जड़ित हैं। किन्तु महाभारत के प्रशस्त क्षेत्र में कुछ मुक्त वातावरण है। इस महाकाव्य के विराट प्रांगण में मनस्तत्व की कितने प्रकार की परीक्षाएं हैं। साधारणतः जिन्हें हम निन्दनीय कहते हैं, उन्हें भी यहां स्थान मिला है। यदि हमारा मन प्रस्तुत हो तो अपराध और दोष सब का अतिक्रमण कर महाभारत की वाणी को ग्रहण किया जा सकता है। महाभारत में एक उदात्त शिक्षा है, वह नकारात्मक नहीं निश्चयात्मक है, अर्थात उसमें एक स्वीकारोक्ति है। सभी बड़-बड़े वीर पुरुष अपने महात्म्य के गौरव से उन्नतशिर हैं, पर उनमें भी त्रुटियां हैं। किन्तु उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त दोषों और त्रुटियों को आत्मसात करके ही वे बड़े हो सके हैं। मनुष्य को यथार्थ रूप से समझने की यह महान शिक्षा हम महाभारत से पाते हैं।

पाश्चात्य संस्कृति से हमारा योग हो जाने के बाद से हमारे सामने और भी कुछेक चिन्तनीय विषय आ गए, जो पहले नहीं थे। प्राचीन भारत म हम देखते हैं कि स्वभावतः अथवा कार्यतः जो लोग पृथक हैं, उन्हें अलग-अलग श्रेणियों में विभाजित कर दिया गया है। किन्तु उन्हें खण्डित करके भी एक प्रकार से ऐक्य-साधन की प्रचेष्टा की गई थी। सहसा पश्चिम का सिंहद्वार भेदकर शत्रु का आगमन हुआ। एक दिन आर्यों ने भी उसी पथ से आकर पंचनद के तीर पर उपनिवेश स्थापित किया था, एवं तदुपरान्त विन्ध्याचल पारकर क्रमशः सम्पूर्ण भारत में फैल गए थे। उस समय भारत गान्धार प्रभृति आसपास के प्रदेशों सहित एक समग्र संस्कृति से परिवेष्टित होने के कारण उस बाहरी आघात का असर नहीं हुआ। इसके बाद एक दिन बाहर से एक संघात आकर लगा। वह संघात विदेशी था, उनकी संस्कृति पृथक थी। जब वे आए तब देखा गया कि हम एकत्र तो थे किन्तु एक हुए नहीं। इसी से सम्पूर्ण भारत में विदेशी आक्रमण का एक प्लावन आ गया। उसके बाद से दुःख और अपमान की ग्लानि में हमारे दिन कट रहे हैं। विदेशी आक्रमण का सुयोग पाकर एक-दूसरे के साथ मिल कर किसी ने अपने प्रभाव का विस्तार न किया और किसी ने अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए जगह-जगह विशृंखलित रूप से विदेशियों को रोकने की चेष्टा की। वे किसी प्रकार भी सफल-मनोरथ न हो सके। राजपूताने में, महाराष्ट्र में, बंगाल में लड़ाई-झगड़े बन्द न हुए। इसका कारण यह है कि जितना बड़ा देश है ठीक उतने बड़े परिमाण में एकता नहीं थी। हमने इस दुर्भाग्य के भीतर से अनेक शताब्दियों बाद अभिज्ञता प्राप्त की। अनैक्य के इसी सुयोग के कारण विदेशी आक्रमण का पथ प्रशस्त हो सका। निकटस्थ शत्रु के बाद समद्र पारकर लहराते हुए विदेशी शत्रु अपनी वाणिज्य-तरी लिए आ पहुंचे। पुर्तगाली आए, डच आए, फ्रांसीसी और अंग्रेज आए। सभी ने आकर पूरे जोर से धक्का मारा। उन्होंने देखा कि ऐसा कोई घेरा नहीं जो दुर्लंघ्य हो। हम अपनी सम्पदा और सम्बल सब देने लगे। हमारी विद्या, बुद्धि में क्षीणता आई और हम मन की ओर से भी सम्बलहीन, रिक्त हो गए। इसी प्रकार बाहरी निःस्वता भीतर भी निःस्वता लाती है।

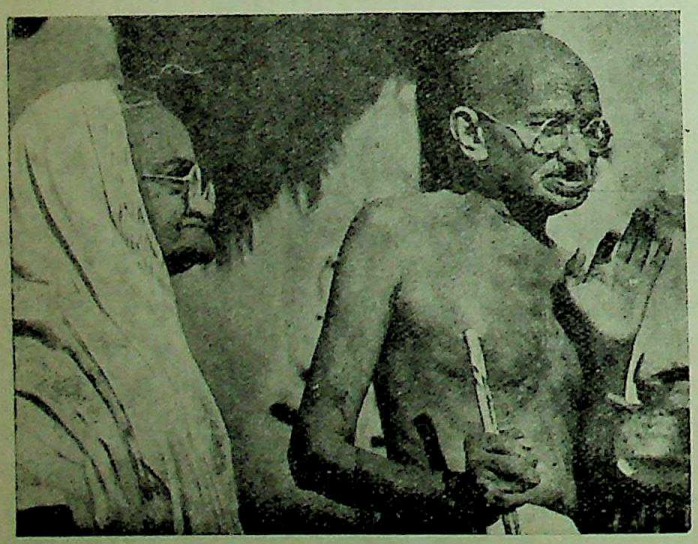

बा और बाप

ऐसे समय हमारे साधक पुरुषों के मन में जो चिन्ता-धारा उदित हुई वह थी--परमार्थ के प्रति लक्ष्य रखते हुए भारत की स्वतन्त्रता को उद्बोधित करने की एक आध्यात्मिक प्रचेष्टा। तब से पूरी तरह से हमारा मन पारमार्थिक पुण्योपार्जन की ओर चला गया। हमारी पार्थिव सम्पदा वहां तक नहीं पहुंच सकी जहां यथार्थ दैन्य, और शिक्षा का अभाव है। मात्र पारमार्थिक सम्बल के लोभ में जो पार्थिव सम्बल खर्च कर देते हैं, वह महन्त और पण्डितों के गर्व से फूले हुए जठरों में चला जाता है। इससे भारत का क्षय होने के सिवाय वृद्धि नहीं हो रही।

विशाल भारत के विराट जन समाज में और एक श्रेणी के लोग हैं जो जप-तप और ज्ञान-ध्यान के लिए मनुष्य का परित्याग कर संसार को दुख और दारिद्र्य के हाथों में छोड़कर चले जाते हैं। इन असंख्य उदासीन मंडलियों के मुक्तकामियों के लिए अन्न जुटाया है उन्होंने जो इनके मतानुसार मोहग्रस्त और संसारासक्त हैं। एक बार किसी ग्राम में ऐसे ही एक सन्यासी से मेरी भेंट हुई थी। मैंने उनसे कहा--'ग्राम में जो दुष्कर्मी, दुखी, पीड़ित हैं इनके लिए आप कुछ क्यों नहीं करते ?' मेरा यह प्रश्न सुनकर वे विस्मित और परेशान से हो गए। कहने लगे--'क्या ! जो सांसारिक मोहग्रस्त लोग हैं उनकी भी चिन्ता करनी होगी मुझे। मैं एक साधक हूं। विशुद्ध आनन्द के लिए उस संसार को छोड़ आया हूं, फिर से अपने को लिप्त कर दूं !' जिन्होंने यह बात कही थी उनको एवं उन्हीं के समान संसार से वीतस्पृह अन्य उदासीन लोगों को बुलाकर यह पूछने की इच्छा होती है कि उनकी तैलचिक्कण नवधर कान्ति की परिपुष्टि के साधन किसने जुटाए। जिन्हें वे पापी और हेय समझ कर त्याग आए हैं उन्हीं सांसारिक लोगों ने उनके लिए अन्न जुटाया है। निरन्तर परलोक की ओर दृष्टि रखने के कारण शक्ति का कितना अपव्यय हुआ है, यह नहीं कहा जा सकता। अनेक शताब्दियों से भारत की यही दुर्बलता चली आ रही है। इसका जो दण्ड है, इहलोक के विधाता ने वह दण्ड हमें दिया है। उन्होंने हमें हुक्म देकर भेजा, सेवा और त्याग के द्वारा इस संसार के उपयुक्त बनना होगा। हमने इस हुक्म की अवमानता की, अतः दण्ड भोगना ही होगा।

आजकल यूरोप में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए चेष्टा हो रही है। किसी समय इटली विदेशियों के चंगुल में फंसा हुआ धिक्कारपूर्ण जीवन बिता रहा था। किन्तु उसके बाद इटली के जो त्यागी, वीर थे,--मेज़िनी और गैरिबाल्डी ने विदेशियों के अधीनता जाल से मुक्ति दानकर अपने देश को स्वतन्त्रता प्रदान की। अमेरिका के संयुक्त राष्ट्रों में भी यही पाता हूं कि इस स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए कितना दुख, कितनी चेष्टाएं और कितने संग्राम हुए हैं। मनुष्य को मनुष्योचित अधिकार दिलाने के लिए कितने लोगों ने अपनी बलि चढ़ा दी। विभागों की सृष्टिकर परस्पर जो अपमान किया जाता है, उसके विरुद्ध पाश्चात्य देशों में आज भी विद्रोह हो रहा है। उन देशों के लिए जनसाधारण, सर्वसाधारण मानवीय गौरव के अधिकारी हैं, इसीलिए राष्ट्र के समस्त अधिकार सर्वसाधारण के बीच परिव्याप्त हो गए हैं। उन देशों के कानून में धनी-दरिद्र और ब्राह्मण-शूद्र का भेद नहीं। संगठित होकर स्वतन्त्रता प्राप्त करने की शिक्षा हमने पाश्चात्य देशों के इतिहास से पाई है। समस्त भारतवासी जिससे अपने देश का स्वयं नियंत्रण करने का अधिकार पाएं, इस प्रकार की शिक्षा हमने पश्चिम से पाई है। इतने दिनों तक हम अपने-अपने ग्रामों और पड़ौसियों को लेकर अलग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग छोटी-मोटी संकुचित परिधि के भीतर काम करते रहे और उनके बारे में सोचते-विचारते रहे हैं। ग्राम में जलाशय और मंदिर की स्थापना कर अपने को धन्य मानते रहे हैं एवं इसी ग्राम को जन्मभूमि या मातृभूमि मानते रहे हैं। भारत को मातृभूमि मानकर स्वीकार करने का अवसर ही नहीं आया। जब हम प्रादेशिकता के जाल में जड़ित और दुर्बलता से अभिभूत हुए पड़े थे तब रानाडे, सुरेन्द्रनाथ, गोखले प्रभृति प्रमुख महदाशय व्यक्ति जनसाधारण को गौरव प्रदान करने आए। उनके द्वारा आरम्भ की गई साधना को प्रबल शक्ति और द्रुत वेग से जो चमत्कारपूर्ण सिद्धि के पथ पर ले गए, उन्हीं महात्मा की कथा स्मरण करने आज हम यहां एकत्रित हुए हैं--वे हैं महात्मा गांधी।

बहुत-से लोग यह जिज्ञासा कर सकते हैं, क्या ये ही पहले-पहल आए हैं? कांग्रेस में इसके पहले क्या और बहुत-से लोगों ने काम नहीं किया? काम किया था यह सच है किन्तु उनमें से किसी का नाम लेते ही हम देखते हैं कि उनका साहस कितना म्लान था, उनकी कंठ-ध्वनि कितनी क्षीण थी?

उस युग में कांग्रेसी-जन नौकरशाही शासकों के पास कभी आवदन-निवेदन की डाली ले जाते या कभी झूठमूठ लाल-लाल आंखें दिखाने का बहाना करते थे। उन्होंने सोचा था कि कभी तीखे और कभी सुमधुर वाक्य-बाण छोड़कर वे मैजिनी और गैरिबाल्डी के समगोत्रीय बन जाएंगे। उस क्षीण अवास्तविक शौर्य को लेकर हमारे पास आज गौरव करने लायक कुछ भी नहीं है। आज जो आए हैं वे राष्ट्रीय स्वार्थ के कलुष से मुक्त हैं। राष्ट्रतन्त्र के अनेक पापों और दोषों में से एक बहुत बड़ा दोष है--स्वार्थान्वेषण। राष्ट्रीय स्वार्थ चाहे जितना बड़ा स्वार्थ क्यों न हो फिर भी स्वार्थ की वह पंकिलता उसमें आए बिना रहती ही नहीं। 'पालिटीशियन' नामक एक वर्ग है, उनके आदर्श महान आदर्शों क साथ मिलते नहीं। वे लोग अजस्र झूठ बोल सकते हैं, वे लोग इतने हिंसक हैं कि अपने देश को स्वतन्त्रता दिलाने के बहाने अन्य देशों पर अधिकार करने के लोभ को छोड़ नहीं पाते। पाश्चात्य देशों में, हम पाते हैं कि वे एक ओर देश क लिए प्राण दे सके हैं एवं दूसरी ओर उन्होंने देश के नाम पर दुर्नीति को प्रश्रय दिया है।

एक दिन पाश्चात्य देशों ने जिस मुषल को जन्म दिया था आज उसकी शक्ति यूरोप के सिर पर (प्रहार के लिए) उद्यत है। आज ऐसी अवस्था हो गई है जिससे संदेह होता है कि आज की यूरोपीय सभ्यता कल तक टिकगी भी या नहीं। जिसे व लोग 'पैट्रियोटिज्म' कहते हैं वह पट्रियोटिज्म ही आखिर में उन्हें मार डालेगा। वे लोग जब मरेंगे तब निश्चय ही हमारी तरह निर्जीव और बेबस होकर नहीं मरेंगे बल्कि भयंकर अग्नि की सृष्टि कर एक भीषण प्रलय के बीच मरेंगे।

हममें भी असत्य आ गया है। जो लोग पालिटीशियनों के जात-भाई हैं उन्होंने दलबन्दी का जहर चारों ओर फैला दिया है। इस पालिटिक्स के कारण ही छात्र-छात्राओं में भी दलबन्दी का जहर आ घुसा है। पालिटीशियन कार्यकुशल लोग हैं, वे समझते हैं कि काम पूरा करने के लिए झूठ का सहारा लेना ही पड़ता है। किन्तु विधाता के विधान में यह छल-कपट पकड़ा जायेगा। पालिटीशियनों--इन चतुर विषयी व्यक्तियों--की हम प्रशंसा कर सकते हैं किन्तु उनके प्रति श्रद्धा नहीं रख सकते। श्रद्धा रख सकते हैं महात्मा के प्रति, जिनकी सत्य की साधना है। असत्य के साथ मिलकर उन्होंने सत्य की सावभौमिक धर्मनीति को अस्वीकार नहीं किया। भारत की युग-साधना के क्षेत्र में यह एक परम सौभाग्य का विषय है।

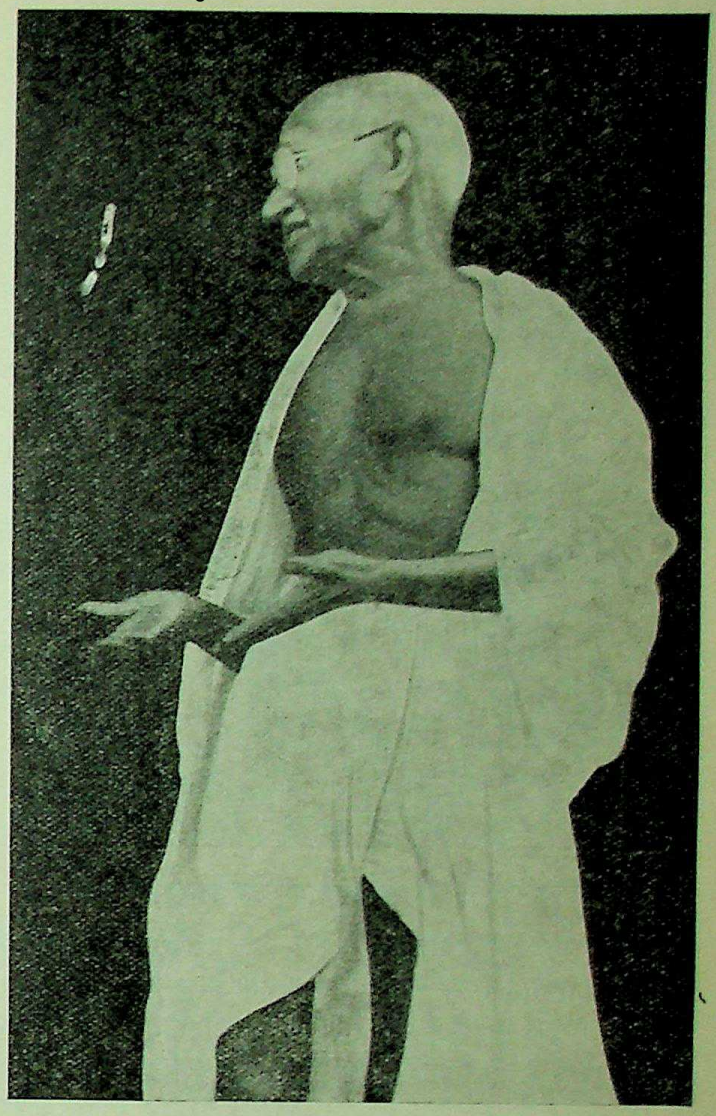

"मरी कौन सुनता है!" (दंगों के दिनों में)

वही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने सभी अवस्थाओं में सत्य को स्वीकार किया, उससे तात्कालिक कुछ लाभ हो या न हो। उनका दृष्टान्त हमारे लिए महान दृष्टान्त है। संसार में स्वाधीनता और स्वतन्त्रता-प्राप्ति का इतिहास रक्त की धारा से पंकिल एवं अपहरण और दस्युवृत्ति के कारण कलंकित है। किन्तु परस्पर एक-दूसरे की हत्या न कर, हत्याकाण्डों का आश्रय लिए बिना भी स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती है, इसका पथ उन्होंने दिखा दिया है। देश के नाम पर लोगों न अपहरण किया और विज्ञान ने दस्युवृत्ति को प्रश्रय दिया है। देश के नाम पर उनका यह गौरव, यह गर्व तो टिकेगा नहीं। हममें ऐसे बहुत कम लोग हैं जो हिंसा को मन से दूर करके देख सकें। इस हिंसात्मक प्रवृत्ति को न मानकर भी हम लोग विजयी होंगे, यह बात हम मानते हैं क्या? महात्मा यदि वीर पुरुष होते अथवा लड़ाई लड़ते तो हम आज उन्हें स्मरण न करते। कारण, पृथ्वी पर लड़ाक वीर पुरुषों और बड़े-बड़े सेनापतियों ने जन्म लिया था। मानव का युद्ध धर्मयुद्ध है, नैतिक युद्ध है। धर्मयुद्ध में भी निष्ठुरता होती है, यह गीता और महाभारत में मिलता है। उसमें बाहुबल क लिए स्थान है या नहीं इसको लेकर शास्त्रीय तर्क-वितर्क नहीं करूंगा। किन्तु यह जो एक अनुशासन है--मरेंगे फिर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भंगी कालोनी में गांधी जी श्री जवाहरलाल नेहरू के साथ

मारेंगे नहीं और इसी प्रकार विजयी होंगे--यह एक बहुत बड़ी बात है, एक महान वाणी है। यह चातुरी अथवा काम निकालने विषयक सलाह नहीं है। धर्मयुद्ध बाहरी जीत के लिए नहीं होता, वह हार जाने पर भी जीतने के लिए है। अधर्म युद्ध में मरना मृत्यु है। धर्मयुद्ध में मरने के बाद भी बहुत कुछ बाकी रह जाता है--हार को पार कर जीत मिलती है और

सैर पर जाते हुए

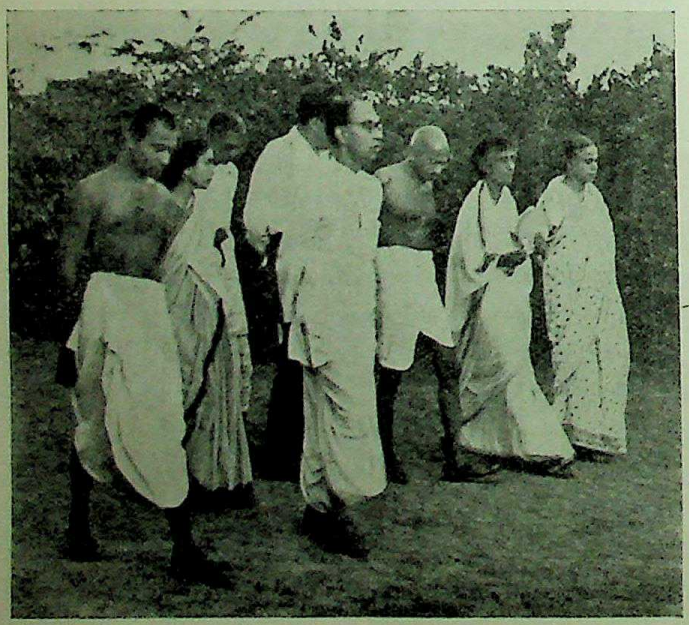

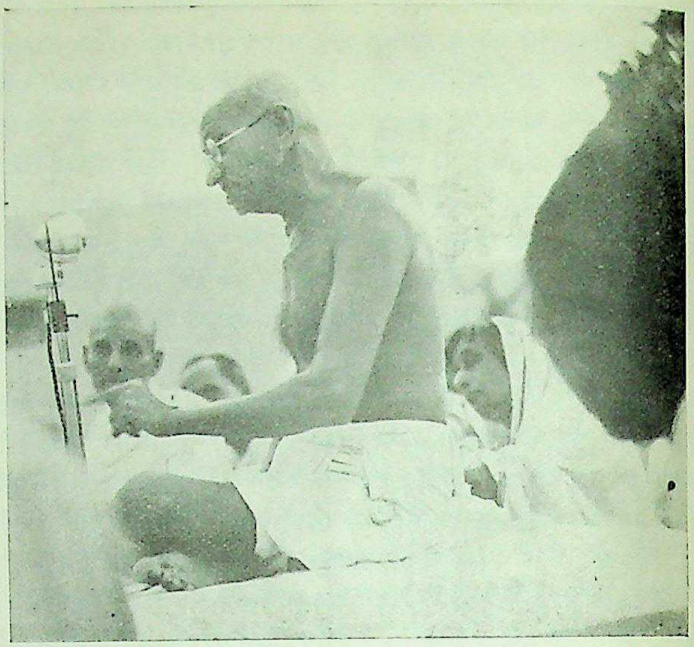

प्रार्थना सभा में

मृत्यु को पार कर अमृत। जिन्होंने इस बात को अपने जीवन में अनुभव कर स्वीकार किया है उनकी बात सुनने को हम बाध्य हैं।

इसके मूल में शिक्षा की एक धारा है। यूरोप में हम स्वाधीनता का कलुष और देशप्रेम का विषाक्त रूप देख सकते हैं। आरम्भ में अवश्य ही उन्हें पर्याप्त लाभ हुआ, पर्याप्त ऐश्वर्य प्राप्त हुआ। इन पाश्चात्य देशों में ईसा-धर्म को केवल मौखिक रूप से ग्रहण किया गया है। ईसाई-धर्म में मानव प्रेम का एक बड़ा उदाहरण है: भगवान ने मनुष्य के रूप में मनुष्य पर जितने पाप-ताप थे सब अपने ऊपर लेकर मनुष्य को बचाया है--इसी लोक में, परलोक में नहीं। जो सबसे ज्यादा गरीब है उसे वस्त्र देने चाहिएं, जो भूखा है उसे अन्न देना चाहिए, यह बात ईसाई-धर्म में जितनी स्पष्टता से कही गई है उतनी और कहीं नहीं।

महात्मा जी एक ऐसे ईसाई-साधक से मिल सके थे, जो मानव के न्यायपूर्ण अधिकारों को बाधा-मुक्त करने की सतत चेष्टा करते रहते थे। सौभाग्य से उन यूरोपीय ऋषि टालस्टाय से महात्मा गांधी ने ईसाई धर्म की अहिंसा नीति की वाणी को यथार्थरूप में प्राप्त किया था। इससे भी अधिक सौभाग्य की बात यह है कि यह वाणी एक ऐसे व्यक्ति की है जिन्होंने संसार में बहुत-सी विचित्र अभिज्ञताओं के फलस्वरूप इस अहिंसा नीति के तत्व को अपने जीवन में उद्भावित किया था। मिशनरी अथवा व्यवसायी प्रचारकों के मुंह से मानव-प्रेम के बंधे-बंधाये बोल उन्हें नहीं सुन पड़े। ईसा की वाणी का यही एक महान दान पाने की हमें आशा थी। मध्य युग में मुसलमानों से भी हमें एक दान मिला है। दादू, कबीर, उज्जब प्रभृति साधु (इस बात का) प्रचार कर गए हैं कि जो निर्मल है, जो मुक्त है, जो आत्मा की श्रेष्ठ सामग्री है, वह मंदिर में बंदकर, बनावटी अधिकारी विशेष के चेहरे में रखन के लिए नहीं है। वह बिना किसी भेद-भाव के सभी मनुष्यों की सम्पदा है। युग-युग में ऐसा ही होता आया है। जो महापुरुष हैं, वे समस्त पृथ्वी के दान को अपने महात्म्य द्वारा ही ग्रहण करते हैं एवं ग्रहण करके उसे सत्य कर दिखाते हैं। अपने महात्म्य के द्वारा ही

(शेष पृष्ठ २४ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई कविता : केन्द्र और परिधि

शचीरानी गुर्टू

इधर कुछ अर्से से अर्वाचीन काव्य के उच्चतर विकास का प्रतिनिधित्व करने वाली जो कविताएं प्रकाशित हो रही हैं उनमें असंख्य असंगतियां, विभ्रम और अन्तर्विरोध नजर आ रहे हैं। कवियों की मनोवृत्ति क्या है, विगत युगों के आगत की परिणति और अनागत की प्रेरणाओं से परिचालित उनके नवीनी केन्द्रस्थ विश्वास और परिधिगत मूल्यों के आयाम किस दिशा की ओर अनुधावित हो रहे हैं, मुख्य रूप से तात्कालिक वर्तमान के लिए अर्थबोध चाहने वाले इन महत्वाकांक्षियों ने अपने बहुमुखी माध्यमों और युगनिष्ठ भावोन्माद से निष्पन्न अप्रतिरोधित रसोद्रेक द्वारा एक अपनी विशिष्टता तो कायम की है, मगर इस विशिष्टवाद ने निरवधि काल-प्रवाह की अपरिहार्यता को चुनौती देते हुए कवि-चेतना के इलहामी स्वरूप पर बल देकर--कि कवि को दरअसल किस युग विशेष का सन्देश-वाहक बनना है--साथ ही निजी अन्तःस्फूर्त्ति द्वारा इन्द्रियगम्य और इन्द्रियातीत के आवरण-पट को छिन्न कर कौन से ऊर्ध्वाकाशों को स्पर्श करने का प्रयत्न कर सकता है और इसके परिवेश के भिन्न धरातलों का मिलन-बिन्दु क्या है तथा भीतरी भावबोध का उद्घाटित स्तर वस्तु-सत्य के मापदण्ड के समकक्ष है कि नहीं--ये कुछ विचारणीय प्रश्न हैं जो आज के सृजन के मूल में समाज-द्रोही तत्वों को बटोरकर विस्फोटक बारूद का काम कर रहे हैं। आधुनिकता की भ्रांति, मांसल कल्पना-प्रियता और अवचेतन-विलासिता के अतिरेक ने नव्य जीवन-मूल्यों की स्थापना को एक अप्रत्याशित मोड़ दिया है और उसकी सर्वथा नयी व्याख्या प्रस्तुत की है।

कहना न होगा, काव्यगत मूल्यों का उक्त क्रम-विपर्यय कभी-कभी खिलवाड़ के सिवा कुछ नहीं। वर्ग-संघर्ष के दौर में अस्थिर अनुभूति और अयाचित राग से सिरजे गए इन रंग-रेखाओं के व्यापार का क्या कोई मापदण्ड नहीं है? जहां रेखाओं की गति निर्बंध हो और नानाविध टेकनीक की गुत्थियों का अक्रम ही क्रम बन जाय, 'वास्तव' एवं 'प्रतीति' में कोई भेद न रहे तथा विशृंखल विषयों अथवा असम्बद्ध शब्द-चयन के वैचित्र्य में ही अर्थ खोजने की चेष्टा की जाय तो प्रेरणा का स्रोत उक्त परिधि के भीतर या बाहर कहां ठेल ले जाएगा, कहा नहीं जा सकता।

माना कि व्यष्टि मानव और समष्टि मानव के पूंजीवाद-कालीन दुर्निवार अन्तर्विरोध के फलस्वरूप अनेक कवियों ने कविता का नया रूप-संस्कार किया है, तथापि जीवन के प्रति उक्त विस्तृत और गम्भीर प्रतिक्रिया को एक गत्यात्मक व्याख्या के रूप में प्रस्तुत करने के प्रयास में जो उनकी अंतरंग विद्रूपता कल्पना-बिम्बों में उभरी है उन पर बौद्धिक प्रक्रिया का ऐसा आवरण चढ़ा है कि वह अतीत और वर्तमान के व्यवधान के बीच सांगोपांग संपूर्त्ति का साधन अथवा सहज संवेद्य बनकर आत्मा में रमने वाला नहीं हो सकता। भूत में प्रतिपल परिणत होता वर्तमान और भविष्य की गोप्य परिधि में सिमटा अनागत नित नई मानव-चेतना का पाथेय बनकर प्रगति-पथ की ओर निर्देश करता है। जब-जब नवोदित क्रान्ति न लोक चेतना में आलोड़न उत्पन्न किया है, नई ताज़ी खुली हवाओं के झोंके बहुमुखी क्रियात्मक शक्ति एवं संघर्ष के प्रति जागरूक बनाकर विचार और कर्म की संकीर्णता से मुक्त करते हैं पर इसके विपरीत यदि ये हवाएं कृतिकार की क्षमताओं पर अट्टहास करती अथवा उसके अंतस्तल को झकझोरती नैसर्गिक सृजन की मूल प्रेरणाओं को विच्छिन्न करने वाली हैं तो युगीन दर्शन, आचार और रीति-नीति उसके क्रूर थपेड़ों से आहत होकर बेमानी हो जाते हैं।

उन्मुक्त वातायन या गाती-मचलती आज़ाद हवाएं खुले दिल और खुले दिमाग़ को शह देती हैं। वे सुप्त मानस को जगाने वाली और भीतर की बन्द कारा में नई रूह जगाने वाली हैं, मगर ये सरपट पास से गुज़रने वाले प्रचंड बवंडर--अपने संक्रमणकारी प्रभाव से--क्या कलाकारिता की कसौटी को ही नष्ट-भ्रष्ट न कर देंगे!

प्रगतिवाद

छायावाद की रूढ़ियों की प्रतिक्रिया सहसा प्रगतिवादी कविताओं में प्रबल जीवनाकांक्षा का उन्माद लेकर प्रकट हुई थी। साधारणतः किसी प्रमुख प्रवृत्ति के बहुत दिनों तक एक ही दिशा में चलते रहने से जो प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है वही कालान्तर में प्रबुद्ध मानवों द्वारा प्रगति-पथ खोजती है। प्रगति एक हद तक अनिवार्य और जीवन-सापेक्ष्य भी है। आत्मकेन्द्रित, विश्रृंखल मानव भाव-चेतना बाह्य जीवन-क्रम में एक प्रकार का अवरोध उत्पन्न कर देती है, जिस से बाध्य होकर गतिशील सत्य और सामाजिक चेतना के भीतर से उपादान खोजने पड़ते हैं। कलाकार चूंकि अधिक जाग्रत है वह भीतरी और बाहरी अन्तर्विरोधों में संतुलन स्थापित करता है और अपनी सशक्त अभिव्यक्ति द्वारा समाज का नेतृत्व करता है।

आज के संघर्षशील युग में ज़िन्दगी की मौजदा कशमकश ने मानव के पूर्ण रसोद्रेक को शिथिल, नियन्त्रित और शुष्क बना दिया है। जीवन की दृष्टिभंगी बदल गयी है। कवि की प्रखर चेतना द्वंद्वात्मक शक्तियों को ललकार कर क्रांति का आह्वान किया चाहती है। यह आंधी सिर्फ हवा नहीं, इसकी दिशा विकासोन्मुख है। इसके कोलाहल के भीतर बदलती दुनियां की तसवीर छिपी है। नवीन जीवन के निर्माण की ओर उत्प्रेरित यह गतिशील क्रान्तिकारी दृष्टिकोण ही आज प्रगतिवाद के नाम से रूढ़ हो गया है और अलोचक इसके पक्ष-विपक्ष में अपने अभिमत व्यक्त करते रहते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि साहित्य के गृहीत रस को सर्वसुलभ बनाने के लिए युग की आत्मा की अनेकमुखी व्यंजना अनिवार्य है और साहित्यकार अपनी अधिकाधिक सम्वेदना को उभारकर मानव-जीवन की व्यापक अनुभूति में पैठ सकता है। प्रगतिवाद शुरू से ही सामूहिक उत्क्रान्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रूप में सब बन्धनों को विच्छिन्न करता हुआ एक गतिशील विराट शक्ति बनकर आया। उसने न केवल प्रचलित रूढ़ धारणाओं के विपरीत, वरन समाज के ढांचे और उसकी मौजूदा व्यवस्था में निहित अन्याय, आर्थिक असमानता, समाज के घुन 'पूंजीवाद', अनिवार्य वर्ग संघर्ष और परस्पर विरोधी धर्म-अधर्म, सामान्य-विशिष्ट, सापेक्ष-निरपेक्ष औचित्य-अनौचित्य की द्वन्द्वात्मक अन्विति पर गहरी चोट की। उसने हमारी धार्मिक और नैतिक स्थापनाओं को लेकर जीवन-साम्य का समाधान प्रस्तुत किया और दलित, शोषित मानवता के चित्र आंककर न केवल हमारी कोमल वृत्तियों को झकझोरा, बल्कि समाज की उभरती हुई शक्तियों और साहित्य एवं कला के द्वैत और विसंगतियों पर भी दृष्टिपात किया।

अन्तर्भूत सत्य की साधना ही साहित्य में भावयोग है और प्रगतिवाद की यह पहली और आवश्यक शर्त होने के कारण बहुत कुछ संकुचित और अवास्तविक आदर्शों को ठुकराया गया है। छायावाद का सूक्ष्म, वायवी कला विलास इधर बहुत कुछ एकांगी हो गया था। उसमें जीवन की सीधी निर्बाध अभिव्यक्ति न थी, इसलिए यह स्वीकार करने में हमें आपत्ति न होनी चाहिए कि लोगों के दृष्टिकोण बदलने में प्रगतिवाद का बहुत बड़ा हाथ रहा है। वह कुछ इतनी तेजी से प्रिय भी हुआ कि उसके कलम के जादू को कोई रोक नहीं सका। उसने बाह्य विश्व के संघात को उदात्त बनाकर दर्शाया और प्रगति के मार्ग में रोड़ा अटकाने वाली प्रतिगामी शक्तियों को कुचलकर भावी क्रान्ति के लिए आवश्यक मनोभूमि का निर्माण किया।

पर यह प्रगतिवाद का विधायक पक्ष है। प्रश्न उठता है---अपनी बौद्धिक निष्ठा और तार्किक आशावाद के अलावा उसने साहित्य को और क्या दिया? वह किन आस्थाओं, किस चेतना और किन संस्कारों से गतिमान होकर अग्रसर हुआ और उसने कौनसा, 'मिशन' पूरा किया? सचाई से प्रेरित होकर जब-जब आत्म-विश्वास और दृढ़ संकल्प के साथ जन-जीवन से तादात्म्य स्थापित किया गया तब-तब साहित्य समाज के संस्कारों की समष्टि बनकर आया और श्रेष्ठ एवं स्फूर्तिप्रद समझा गया। मत-प्रचार की संकीर्णता से मुक्त जहां वह विचार-जाग्रति का प्रणेता बना वहीं निम्न तल से उठकर उच्च धरातल पर जा टिका और कलाकार की अमर साधना का प्रतीक बनकर प्रकट हुआ।

व्यापक से वृहत्तर व्यापकता की ओर मनुष्य की गति है। वह निजत्व का प्रसार और बौद्धिक चेतना को क्रमशः विकसित देखना चाहता है। प्रगति की भावना उसके विचारों को ठेलती, कुरेदती और आगे बढ़ाती है, अन्यथा जीवन चल नहीं पाता। शरतचन्द्र ने लिखा है "यदि मृत और खण्डहर ही हमारा रास्ता रोके रहेंगे तो आगे बढ़ने को पथ कैसे मिलेगा?" वातावरण और परिस्थितियों के अनुसार मनुष्य की भावनाएं विकसित होती रहती हैं। विगत युगों में जो हमारा जीवन-लक्ष्य था वही आज भी कैसे स्थायी रह सकता है? अपने सुख-दुःख में तो हृदय एक परितृप्त विह्वलता का अनुभव करता ही है, किन्तु समाज में रहकर बाह्य संघर्षों से भी मुंह मोड़कर कैसे जी सकता है? अतएव विकास के क्रम का कौन हिमायती न होगा, पर यह उत्कर्ष, यह विकास साहित्य में मूर्त होना चाहिए। कोरे सिद्धान्त, कोरा विरोध, कोरी स्थूल कल्पना कुछ मानी नहीं रखती। कोई अत्युक्ति न होगी यदि यह कहा जाय कि परस्पर विरोधी वृत्तियों एवं संघर्ष-भावना से प्रेरित होकर साहित्यकारों ने साहित्य में कुछ ऐसी सीमा-रेखायें निर्धारित की हैं जिनके संकुचित दायरे में हमारी सामान्य सृजन-शक्ति और उदात्त अन्तश्चेतना उत्तरोत्तर ह्रास को प्राप्त हो रही है।

'इज्म' की भावना ने अभीष्ट उद्देश्य को भुलाकर तर्क-वितर्क और नए मतवादों की प्रवर्त्तना की है। हमारी साहित्यिक प्रतिमाएं कुछ गुटों, वादों और दलबन्दियों के दलदल में फंसकर अपनी शक्ति का अपव्यय कर रही हैं। उन्होंने एकांगी, असामाजिक रुख अपनाकर एक-दूसरे के विचारों का बहुत कुछ खंडन-मंडन किया है और साहित्य के उच्च लक्ष्य से पथभ्रष्ट होकर अराजक साहित्य की सृष्टि की है।

युग-विशेष की मांग क्या है?---इस प्रश्न ने अनेक बार हमारे साहित्यकारों की सामाजिक और राजनीतिक चेतना को झकझोरा है। उनके परम्परागत संस्कारों पर समय--असमय परिस्थितियों की चोट पड़ी हैं और वे काल्पनिक आदर्शों को भुलाकर एक नवीन संस्कृति के स्वप्नद्रष्टा भी बने हैं। निराला, पंत, नरेन्द्र, बच्चन, भगवतीचरण वर्मा, दिनकर आदि कवि भी इस लहर में बहने से न बचे। स्वप्नदर्शी पंत ने आकाश से पृथ्वी की ओर झांका और दूसरों को भी ऐसा ही करने के लिए प्रेरित किया।

"ताक रहे हो गगन?
मृत्यु---नीलिमा---काल-नयन?....
निःस्पन्द शून्य, निर्जन निःस्वन?
देखो भू को!
जीवन-प्रसू को!
हरित भरित
पल्लवित मर्मरित
कूजित गुंजित
कुसुमित
भू को!".

सुन्दर से असुन्दर को सहन करने की भावना भी उनमें जगी।

"वह अन्तः सौन्दर्य, सहन कर सके
बाह्य वैरूप्य विरोध।"

पंत के सुन्दरतम गीतों का एक बहुत बड़ा अंश प्रगतिवाद से प्रेरित है। प्रगति ही होड़ में न जाने कितने ही अन्य कवियों ने भी सुन्दर कविताएं रचकर साहित्य को समृद्ध किया, लेकिन शनैः शनैः यह 'वाद' फैशन बन गया और बाहरी संघर्ष से भीतरी प्रतिक्रिया का सामंजस्य न हो सकने के कारण अनेक बार प्रगतिवादियों के कृतित्व का संतुलन खो गया।

सन् १९१७ की बोल्शेविक क्रान्ति ने न सिर्फ रूस में, वरन, यहां भी जीवन की नींव हिला दी थी। फलतः किसान, मजदूर, दीन-दुखी, शोषित-उत्पीड़ित वर्ग ही कवियों के आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु बन गया। जीवन का अन्तर्विरोध यहां तक बढ़ा कि कुछ समय तक साहित्य के मूलभूत तत्वों में भी तनाव और तीखापन अनिवार्य समझा गया।

"आज शोषक-शोषितों में, हो गया जग का विभाजन!
अस्थियों की नींव पर, अकड़ा खड़ा प्रासाद का तन
धातु के कुछ ठीकरों पर मानवी-संज्ञा विसर्जन।
मोल कंकड़ पत्थरों के, बिक रहा है मनुज-जीवन।"

(शिवमंगलसिंह सुमन)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वह नस्ल जिसे कहते मानव, कीड़ों से आज गई बीती ।
बुझ जाती तो आश्चर्य न था, हैरत है पर कैसे जीती ।'
(अंचल)

अनेक कवियों ने अपने कृतित्व में सहज मर्यादा तक को भुलाकर उच्छृंखल यौन-रुचियों को परितृप्त करने के लिए रसात्मक सर्जना की, जो उन्हीं की प्रतिगामी इच्छाओं की प्रच्छन्न अभिव्यक्ति के रूप में या कहें कि छिन्नमूल वैयक्तिकता के आस्फालन से मुक्त संवेगजन्य तीव्रता में फट पड़ी ।

"नस-नस में छलक-छलक उठती कैसी तृष्णा मदिरा अजात
किस नव तरंग से कसक वक्ष कर रहा प्रबल उत्तप्त घात
यह सावन की मदभरी रात"
(अंचल)

पंत की स्वस्थ चुम्बनेच्छा कितना ही सदाशय और सदभाव लिए हो, किन्तु व्यावहारिक जीवन में असनोवैज्ञानिक और व्यर्थ की कल्पना मात्र है ।

"धिक् रे मनुष्य तुम स्वस्थ शुद्ध निश्छल चुम्बन
अंकित कर सकते नहीं प्रिया के अधरों पर !
क्या गुह्य क्षुद्र ही बना रहेगा बुद्धिमान,
नर-नारी का यह सुन्दर स्वर्गिक आकर्षण !!"

जहां तक प्रगतिवाद की सहज गतिशील प्रवृत्तियों का प्रश्न है, वे केवल स्वीकार्य ही नहीं, अपितु सामाजिक चेतना को उद्बुद्ध करने के लिए अपेक्षित भी हैं । कोई भी उनकी उपयोगिता एवं दुर्जेय शक्ति का तिरस्कार नहीं कर सकता । शिकायत यही है कि अपने यहां प्रगतिवाद का ठीक विकास नहीं हुआ और रूसी मान्यताओं को लेकर चलन के कारण अपनी भारतीय जीवन-व्यवस्था में वह पूर्णरूपेण गृहीत न हो सका । चूंकि प्रगतिवादी दर्शन गतिवाद और जागृति का हिमायती होकर भी जीवन के श्रेय-प्रेय का वाहक न बन सका, यही कारण है कि कोई व्यापक मानवीय भावना ऐसी भावना जिस में व्यक्ति, समाज और वर्गों के भेद रहते हुए भी सब द्वन्द्वों से परे संकुचित सीमाएं मिट जाती हैं—हमें प्रगतिवाद में नहीं मिलती । विरोधों के बीच प्रतिगामी शक्तियों पर दृष्टि रखते हुए विकास का पथ खोज लेना, सामान्य सिद्धान्तों में वैभिन्य-विभेद के बावजूद व्यापक समानता को सापेक्ष बनाना और जैसे अन्धकार एवं प्रकाश का एक सन्धि-स्थल होता है उसी प्रकार प्रतिकूल प्रेरक क्रियाओं में भी परस्पर सांगठिक तत्व ढूंढ़ लेना साहित्य में अभिव्यक्ति की पूर्णता की कसौटी है । प्रगतिवाद इसी कसौटी पर उतर कर हमारे अतीत और वर्तमान की, पूर्ववर्ती और परवर्ती मूल्य-दृष्टियों का समन्वय प्रस्तुत कर सकता है ।

प्रगतिवाद के विषय में आज जो विवाद फैले हुए हैं उसका कारण है कि इधर उसका दायरा बहुत संकुचित हो गया है । सम्पूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति न होकर राजनीतिक द्वन्द्व और तनाव की कशमकश ही साहित्य में व्यक्त होने लगी । यथार्थ के मूक, चेष्टा-विहीन चित्रण में चिरंतन प्रश्न गौण हो गए हैं और स्वयं यथार्थता भी इतनी जटिल और बहुमुखी हो गई है कि जिस प्रश्न के कल तक एक या दो ही समाधान हो सकते थे, वह आज खण्ड-खण्ड होकर सामने बिखरा पड़ा है और उसको समेटना एक समस्या बन गया है । मनुष्य के रुझान, उसके विचार और दृष्टिकोण, उसकी भावनाएं और संवेदनाएं एक विशेष सामाजिक परिवृत्ति से घिरे हैं । परिस्थितियों के दबाव ने उसे परवश कर दिया है, उसकी क्लांत अतृप्ति दुस्सह हो गई है, फलतः उसकी अभिव्यक्ति भी घटिया किस्म की और बेजान होती जा रही है ।

प्रयोगवाद

साहित्य और कला के विषय में प्रयोगवादियों की आमतौर पर बुनियादी स्थापनाएं निम्न हैं :

नवीन भाषा, नवीन छन्द, नवीन टेकनीक, असाधारण प्रतीक विधान, और मनमानी भावात्मक इकाइयों का कविता में अतिरंजित रूप ।

नित-नए प्रयोगों की प्रक्रिया के भीतर से जीवन और वस्तु-सापेक्ष्य प्रायोगिक क्रान्ति ।

वस्तुपरक दृष्टिकोण का आत्यंतिक आग्रह ।

स्वतन्त्र चिन्तन, रूप-शिल्प, काव्योत्कर्षकारी व्यंजना, सामाजिक संघटन से पराभूत या गुमराह भावचेतना का प्रयत्नपूर्वक पोषण, समृद्धि विकास एवं कलात्मक साज-संवार ।

जीवन के मूल तत्वों में वांछित उलट-फेर और अस्तव्यस्त उलझी मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को सहज सम्वेदनीय बनाना ।

एक प्रयोगवादी कवि के शब्दों में—"सरलतम भाषा में रंग-बिरंगी चित्रात्मकता से समन्वित साहसपूर्ण उन्मुक्त रूपोपासना तथा उद्दाम यौवन से सर्वथा मांसल गीत ।"

प्रयोगवादियों का दावा है कि मनुष्य की मूल्य-दृष्टियां, युग और वातावरण के अनुरूप, उत्तरोत्तर विकसित होती रहती हैं, अतएव उसकी नवोद्भावित चेतना भीतरी बोधवृत्ति का जो परिष्कार और रूपान्तर करती चलती है वे ही समयानुरूप साहित्य में जीवन्त और सशक्त प्रयोग बन जाते हैं । मानवीय भावनाओं का आलोड़न सामाजिक चेतना से सर्वथा विच्छिन्न नहीं किया जा सकता, इसी कारण उसमें समयाश्रित द्वन्द्व-संघर्ष और उसी की मजबूरियों से उत्पन्न पलायन के तत्व उभरत रहते हैं जो अनेक बार उसकी पूर्णता के परिचायक बन जाते हैं ।

चूंकि युग बदल गया है, अब भावप्रवण मिथ्या परिकल्पनाओं के छायाभास वैभव में मानव की वृति नहीं रमती और जीवन की बोझीली, ठोस बौद्धिकता ने भी उसमें संशय और खीझ पैदा कर दी है । युगानुरूप विश्वास और मस्तिष्क को जाग्रत करन के लिए ये प्रयोग साहित्य की प्रेरणा बन सकते हैं । ये जीवन क 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' को आत्मसात करके कला-साधना का पथ प्रशस्त कर सकते हैं—इसमें जरा भी सन्देह नहीं ।

प्रयोग की प्रवृत्ति और बड़े पैमाने पर प्रयोगशील सुक्षम उपकरणों के संगठन का प्रश्न कुछ ऐसी व्यापकता लिए है कि उसकी अनिवार्यता किसी सूरत म अस्वीकार नहीं की जा सकती । पर प्रयोगों के मूल्यांकन की कसौटी क्या है ? उनका रूप कैसे सुस्थिर किया जाय ? किन पैमानों पर उन्हें जांचा-परखा जाए—य कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न हैं ।

जिज्ञासा और ऊहापोह का यह नया युग किसी पुरानी वस्त को उसी रूप में स्वीकृत करने क लिए कैसे उद्यत हो सकता है । समय की रगड़ से परम्परागत विश्वासों और निष्ठा को जो गहरा धक्का लगा है इसके फलस्वरूप कितनी ही नवीन समस्याएं सामने आ खड़ी हुई हैं और कवि अथवा कलाकार को अपनी बात को अधिकाधिक मार्मिकता एवं प्रभविष्णुता प्रदान करने क लिए अभिव्यंजना में नए-नए प्रकारों से जूझना पड़ता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात यह है कि प्राचीन से ऊब कर नवीनता की चाह प्रत्येक में होती है और सनातन भावनाओं को अनेक बार नए चोल में पेश किया जाता रहा है। हर लेखक का अपना निराला ढंग होता है, वह दूसरे से भिन्न तौर-तरीका अख्तियार करना चाहता है, कम से कम उसमें यह ख्वाहिश तो होती ही है कि वह अपनी बात को चमत्कारिक ढंग से कहे। दूसरे लोग उसकी प्रतिभा की दाद दें और वह जो कुछ कहे या प्रकट करे उनके दिल-दिमाग में पूरी तरह धंस जाय। इसी भावना से प्रेरित होकर सर्जक अभिनव प्रयोग करता आया है और दूसरों को प्रभावित करने की चेष्टा सदा करता रहा है।

प्रयोगों की यह परम्परा नयी नहीं है, वह आज के मस्तिष्क की उपज भी नहीं है, हां—उस 'वाद' बनाने का दुराग्रह नया कहा जा सकता है।

यह निर्विवाद है और काव्य-सृजन की आदिम परम्परा से लेकर उसके परम पुष्ट विकसित काल तक का इतिवृत्त भी यही सिद्ध करता है कि प्रयोग सदा से होते आए हैं और उनसे कल्पना की समृद्धि एवं सारस्य की अभिवृद्धि होती है। सूक्ति-वैचित्र्य, अलंकार, श्लेष, यमक, अनुप्रास अतिशयोक्ति आदि और ध्वनि, रीति, लक्षणा, व्यंजना, असामान्य रूप-विधान अथवा वस्तु, दृश्य, घटना और जीवन के अनवरत संघर्ष-विराम से प्रेरित सम्वेदनशील अनुभूति साहित्य-स्रष्टा की उत्कण्ठा, एकाग्रता व तन्मयता से एकात्म हो काव्य की सशक्त सार्थकता को उजागर करती रही है, पर साथ ही यह भी सच नहीं कि विचित्र व्यंजना अथवा नितान्त नए भावों को नई शैली में नए रूप-विधान के साथ प्रस्तुत करना ही एक-मात्र काव्य की कसौटी है। न कभी काव्यगत प्रयोग इतने छिछले स्तर तक ही वांछनीय हुए हैं जहां कलात्मकता बाधक हुई हो और न शिल्प एवं प्रकार में अद्भुत सम्भावनाओं का इतना उत्कट आग्रह ही कभी ग्राह्य हुआ कि नई सृजन-प्रेरणा का जिन में नितान्त अभाव हो। पुराने जमाने के कवि अपने प्रयोगों में भी सत्य के खोजी हुआ करते थे और उनका सत्य भी वही हुआ करता था जिन्हें वे समग्र रूप से ग्रहण अथवा आत्मसात कर लेते थे। विचारों को अलंकृत करने के उद्देश्य से रूपक या उपमा, सहभाव अथवा सादृश्य कल्पना उनके अपने स्वानुभवों और चारों ओर के पर्यवेक्षण और जीवन के प्रति अंतः प्रेरित एवं काल्पनिक प्रतिक्रिया के आधार पर निर्णीत होती थी। उनका काव्यत्व अथवा उनका समग्र शिल्प-विधान इसी चरम लक्ष्य की सिद्धि के निमित्त नियोजित होता था कि सर्वस्वीकृत ढांचे में ढले होने के कारण विशिष्ट वैयक्तिक सम्बन्धों से समन्वित होते हुए भी वे सार्वजनीन रूप से कैसे मान्य हों, यथा—

"पिया बिनु सांपिन कारी रात
कबहुं जामिनी होत जुन्हैया,
डसि उलटी ह्वै जात ।।"

उपर्युक्त पंक्तियों में सूरदास ने कृष्ण-पक्ष की भयावह रात्रि की उस काली सर्पिणी से तुलना की है जो डसने के उपरान्त तुरन्त उलटी हो जाती है और इस तरह उसके पेट की श्वेतिमा रात्रि की उत्तरार्द्ध चांदनी सी कौंधकर भी विरहिणियों के लिए अत्यन्त कष्टप्रद और असह्य होती है। रात्रि की सर्पिणी से तुलना आज भी एक नया और अद्भुत प्रयोग कहा जा सकता है, पर कितना समीचीन और वस्तुस्थिति के सत्य को ग्रहण करने वाला।

"ज्यों मुख मुकुर मुकुरु निज पानी
गहि न जाइ असि अद्भुत बानी" (तुलसीदास)

अयोध्या कांड में राम के वन से पुनः अयोध्या लौट चलने की गम्भीर वार्ता का प्रसंग है। राम-प्रेम म विभोर भरत की वाणी श्रोताओं को ग्रहण करना उसी प्रकार कठिन प्रतीत हो रहा है जैसे हाथ म दर्पण थामे हुए भी और मुख की प्रतिछवि इतनी समीप और नजरों के सम्मुख होते हुए भी पकड़ में नहीं आती।

इसी तरह के अगणित प्रयोग भक्ति काल और रीति काल के कवियों में अपितु कहें कि उनसे भी पूर्ववर्तियों और परवर्तियों में मिलते हैं, परन्तु काव्य में जो अपेक्षित स्थायी गुण होने चाहिएं अर्थात कभी न शेष होने वाली भव्यता और एक असीम अनन्तता—उसका पहले निर्वाह किया जाता था। विचारधारा में प्रगति लाने वाले अन्तः सूत्रों की जांच करके प्रत्येक की विशेषताओं का वर्गीकरण और सम्बन्धों का निरूपण कर लेने के पश्चात उस विशिष्ट काल-खंड के भीतर उसी की कोटि की या उससे महत्तर मूल्यों की स्थापना में एक-एक पहलू का सर्वव्यापी महत्व निर्दिष्ट कर नव्य दिशा की ओर अग्रसर होने की चेष्टा की जाती थी। तर्क-संगत वास्तविकता मौलिक और शाश्वत यथार्थ को विस्मृत न करती थी और निरपेक्ष सत्य की सीमा-रेखा मार्ग की असीमता को झुठला न पाती थी। सर्वसम्मत औचित्य के आधार पर व्यक्ति की क्रियाशीलता सामाजिक क्रियाशीलता बनकर महत्वाकांक्षा और निःश्रेयस में प्रगति करती थी। यों प्रगतिशील या प्रयोगशील कहे जाने वाले साहित्य की मान्यताएं किसी विशिष्ट राजनीति, वर्ग अथवा सामयिक परिस्थितियों से संयुक्त न होकर सचाई से उन तथ्यों का अधिकतर आकलन करती थीं, जिस में एक समन्वित समग्रता तो निहित होती ही थी, पर जो कालान्तर म साहित्यिक सोद्देश्यता की भी उत्प्रेरक सिद्ध होती थी। किन्तु इसके विपरीत आज की सन्देहशील अनिश्चितता में कवि की हर अनियन्त्रित अभिव्यक्ति को स्थितिजन्य कह कर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सत्य और सर्वोचित की परिपक्वता में परिणत करने का दंभ कितना गर्हित साबित हुआ है। कुंठित मस्तिष्कों की ह्रास मूलक प्रवृत्तियां, नर-नारी के यौन-व्यापार और उनकी प्रेम-घृणा के सम्वेदनात्मक चित्र अथवा प्रकारान्तर से जनवादी आस्था की दुहाई देकर झूठ-मूठ के शिल्पविधान की प्रवंचना द्वारा जनता के स्वप्न या नई जिन्दगी को निर्माण-चेतना को ललकारना कहां तक सही है और किस रूप में निष्क्रियता का अन्त कर वह नया जीवन फूंकने में समर्थ होगा, कहा नहीं जा सकता।

प्रगतिवादी तत्व अब तक प्रयोगवाद के भी पूरक रहे थे, यद्यपि यह नवागत प्रवृत्ति अभी स्पष्ट नहीं हो पाई थी। प्रगतिवाद में सामाजिक चेतना और राजनीतिक द्वन्द्व संघर्ष प्रमुख होता है, जब कि प्रयोगवाद में प्रखर वैयक्तिक चेतना के साथ-साथ भाव-वस्तु और शैली-शिल्प के प्रयोगों के प्रति अपेक्षाकृत जागरूकता और वस्तुपरक व्यंग्यात्मक दृष्टि-कोण होता है। आज के संघर्षशील युग में मौजूदा परिस्थितियों के साथ कवि-धर्म निभाना कुछ कठिन-सा हो गया है। ऐसे अन्तर्विरोधों को दूर करने और कविता की जीवन्त शक्तियों को उद्बुद्ध करने के लिए प्रयोगों की आवश्यकता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। प्राचीन से जब मन ऊब जाता है तो कुछ नया पाकर संतोष होता है, ताजगी और चुस्ती आती है। यों भी सृजनशील कलाकार पुरानी लीक पर कदम से कदम मिलाकर देर तक नहीं चल सकता, वह अपनी निजता ढूंढता है, अपनी अभिव्यंजना-शक्ति विचित्र ढंग से मुखरित करता है, कम से कम एक-दो पग आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़कर साहित्य पर कुछ अपनी स्थायी छाप छोड़ने की इच्छा तो रखता ही है।

युग बड़ी तेज़ी से बदल रहा है और युग के साथ-साथ साहित्य-स्रष्टा की अभिव्यक्ति के मनोवैज्ञानिक पहलू भी बदल रहे हैं। काव्य-प्रणालियां इतनी बहुमुखी हो गई हैं कि सृजन-व्यापार में संलग्न मानस की गतिविधि और उसकी सूक्ष्म प्रक्रियाएं समझना कठिन हो गया है। यह माना कि नवीन परिस्थितियों के साथ भौतिक आवेष्टन, युग-विशेष की मान्यताएं, संवेग, रुचियां और हमारी मनोवृत्ति के द्वन्द्व जीवन की जटिल समग्रता के साथ सामंजस्य नहीं कर पाते, फिर भी कलाकार की अपनी सीमा होती है और उस की दृष्टि अतीत से जुड़कर उसकी आत्मा के भीतरी स्वरूप को पहचानती है।

प्रयोगवादियों ने अब तक साहित्य-क्षेत्र में कुछ अछूते विषयों पर दृग्पात किया है सही, किन्तु उनका अपना कोई स्वतन्त्र दर्शन नहीं है। अभी उनकी कविता का कोई रूप भी स्पष्ट नहीं हो पाया है। अधिकांश प्रयोगवादी रचनाओं में जो मिलता है वह है गहरी अस्पष्टता, असंतुलन, वैचित्र्य और प्रत्येक वस्तु को एक नवीन दृष्टिकोण से देखने का गहरा मोह। जब से साहित्य में यथार्थ के चित्रांकन की प्रवृत्ति बढ़ी है, सारा साहित्य वैयक्तिक वास्तविकता की दुरूह एवं कल्पनात्मक अभिव्यक्तियों से भरता जा रहा है। वह जिन्दगी के किसी भी पहलू, किसी भी पक्ष का दिग्दर्शक और कहीं से भी मसाला बटोरने की ताक में रहता है। मनोगत द्वन्द्व-संघर्ष, अन्दरूनी आवेग-प्रवेगों को समझने का उसके पास न अवकाश है और न उत्साह। निष्ठुर व्यक्तितत्ववादिता पनप रही है, सहज तत्व गौण पड़ गए हैं। अन्तर्जगत की पहेलिकाओं में उलझा कवि स्वयं नहीं समझ पा रहा है कि वह लिखना क्या चाहता है और लिख क्या रहा है। उसके तर्क बाहर से सत्य प्रतीत होत हुए भी भीतर से थोथे और बेजान हैं। उनकी लेखनी राह बेराह रेंगती है और निराधार, मन के अलक्ष्य तारों को सहसा झनझना देती है।

प्रयोगवादी धारा का एक रूप है काव्य की परिचित पराम्परागत लीक से अलग हटकर चलना। वह अपनी प्रकृति और स्वरूप दोनों में भिन्न है। उसकी दूसरी विशेषता है वैचित्र्य विधान की प्रवृत्ति और बिखरी वस्तुओं पर सुदूर के मोहक चित्रों, झिलमिल छायाओं, विचित्र रूपकों और कल्पित प्रतीकों का आरोप, समष्टि से निरपेक्ष वह व्यक्तिगत अतृप्त कुण्ठाओं से आक्रान्त है और उसकी प्राणवत्ता ही, स्वच्छन्द विचारों के दबाव से जो कल्पना में छाया-चित्र उभर आएं, उनका अनूठा चित्रण है। प्रयोगवादी हर पंक्ति में प्रयोगगत और व्यंजनागत चमत्कार चाहता है, भले ही अनेक स्थलों पर वे बेमेल और इयत्ता खोकर अपनी प्रतिपादित विशिष्टताओं को मिथ्या साबित करें।

नीचे की पंक्तियों में आंखों को लालटैन की भौंडी परिधि में समेटा गया है:

"दिन से बुखार,
रात्रि की मृत्यु,
के बाद हृदय पुंसत्व हीन,
अंतर्मनुष्य रिक्त सा गेह,
दो लालटैन से नयन दीन।" (गजानन मुक्तिबोध)

इस दूसरी कविता में नयनों को दो मोमबत्तियों सा बताया गया है:

"मित्र! युग संक्रांति के इस मोड़ पर
मैं रुका कुछ वर्ष
चरण स्थिर, शृंखला में बंध गए
मोमबती की तरह जलते रहे दोनों नयन,
अपने विकल्पों की जलाये लौ।" (नरेशकुमार मेहता)

यहां पलकों के मन्दिर में पुतली का दीपक जलाया गया है—

"पलकों के मन्दिर में मैंने
पुतली का दीप जलाया जब
हे देव! तुम्हारी रूप किरण में
'लौ' ने स्नेह जलाया जब
नभ-पथ की सतरंगी रेखा,
बरसी कण-कण शीतल चंदन।"

लेकिन एक अन्य स्थल पर वही पुतली रूपी नौका में परिवर्तित हो गई है—

"पुतली की नौका मैंने जब खोली अधीर
देखा पतवार सम्भाले जो
छवि बैठी थी—तुम वही पीर।" (केदारनाथ मिश्र)

'अज्ञेय' ने किसी दूर टिमटिमाते तारे से इनकी उपमा दी है—

"तेरी थी वे आंखें, आर्द्र, दीप्तियुक्त मानों किसी,
दूरतम तारे की चमक हो।"

एक कवि महाशय आंखों से प्रश्न करते हैं—

"कोमलता का प्रश्न सदा से
इन आंखों में कितना जल है!" (भगवती चरण वर्मा)

और एक दूसरे कवि आंखों की अमाप गहराइयों में ही मानो खो गए हैं—

"आंखें याद आती हैं
जिन में समुन्दर की बेमाप गहराइयां
बन कर खो गया हूं।" (केदारनाथ सिंह)

नूपुर-ध्वनि और चप्पल की आवाज़ में कोई साम्य नहीं है, फिर भी—

"तू सुनता रहा मधुर नूपुर-ध्वनि
यद्यपि बजती थी चप्पल।" (भारत भूषण)

कहीं पावों की ध्वनि बारात बन गई है—

"पावों की ध्वनि की बारात ले
बिजलियों की आंखों की छाया में
सड़क बढ़ी जा रही
किनारे पर गंगा के।" (रामदरश मिश्र)

एक अन्य कविता में ऊंटों की कतार को रेंगने वाले काले प्रश्न चिन्ह-सा आंका गया है—

"सांझ हुई—
दूर, आकाश के पीले
रेगिस्तानी टीलों पर,
भूखे शिथिल ऊंट,
सुर्ख क्षितिज की ओर ऊपर सर उठाए
पीठ पर चारा लादे,
किसी ओझल पड़ाव की ओर थके मांदे,
काले प्रश्न चिन्हों से रेंगने लगे।" (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इसमें उचटे मन की शून्यता को काली बेमाप चादर-सा बताया गया है--

"व्यर्थता की स्याह-सी बेमाप चादर से
अभी ज्यों ढक गया हो शून्य जी का प्रान्त ।" (नेमिचन्द्र)

जाड़ों की धूप एक अन्य कवि को 'सेमल की गरमीली रुई' सी जान पड़ती है--

"सेमल की गरमीली हल्की रुई समान
जाड़ों की धूप खिली नीले आसमान में
झाड़ी झुरमुटों से उठे लम्बे मैदान में ।"

(गिरिजाकुमार माथुर)

प्रतीक या उपमान स्थूल वस्तु-तत्व के लिए नहीं, अपितु उसकी अंतः प्रकृति के अनुरूप सूक्ष्म सम्बन्ध-तत्व पर आधारित होने चाहिएं, लेकिन वर्तमान नई कविता की प्रतीक बहुल यत्नसाध्य और स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के ऐसे सैकड़ों उदाहरण दिए जा सकते हैं जिसमें बदले हुए दृष्टि बिन्दु से उपमाएँ, रूपक और साम्य प्रस्तुत किए गए हैं। कला की अभिव्यक्ति के क्षेत्र में उनकी उपादेयता और औचित्य क्या है और वे किस हद तक सफल कहलाएँगे--यह तो बताना कठिन है, हां, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि नवीन वर्ण्य-विषय और नूतन प्रयोगों के मोह में निरर्थक रूप विधान और कलाहीन प्रचार सर्वथा रुक जाना चाहिए।

वर्तमान युग की प्रत्यक्ष स्थूलता एवं इतिवृत्तात्मकता के फलस्वरूप कवियों में यह विपरीत प्रतिक्रिया इतनी अन्तर्मुखी और वैयक्तिक होती चली जा रही है कि उनकी दृष्टि जनवादी प्रवृत्तियों को पूर्ण रूप से न अपनाकर काल्पनिक कुहासे और रंगीन छाया-चित्रों में भटक रही है। शब्द रचना, पद-विन्यास, प्रतीकवाद (Symbolism), रूपप्रकारवाद (Formalism), स्थूल सज्जा और शैली-शिल्प के गुम्फित वैभव में भ्रमित उसकी चेतना अपनी कला के मर्म और असलियत को भूल बैठी है। कई बार उपमाएं पचाई नहीं, थोपी गई-सी जान पड़ती हैं।

छायावादी रूमानियत कम होने पर ज्यों-ज्यों नव्य वास्तविक भूमि पर उतरने का प्रयास किया गया त्यों-त्यों साहित्य में एक विचित्र विरोधाभास उपस्थित होता गया और यह विरोध दो व्यक्तियों में नहीं, वरन एक ही व्यक्ति की विभिन्न मानसिक स्थितियों से उत्पन्न दृष्टि-कोणों में दीख पड़ा। 'अज्ञेय' द्वारा संपादित 'तार सप्तक' और 'दूसरा सप्तक' के अनेक कवियों में यह वैभिन्य स्पष्ट है। अनेक बार उनकी अन्तरंग प्रेरणा उनकी संवेदनाओं से असम्बद्ध-सी लगती है और एकाएक विरोधी दबावों से उनकी विशृंखल वृत्तियां, अनिश्चय और संशय में, उनकी स्वानुभूतियों से अन्तर्गठन नहीं कर पाई हैं।

इन अन्तर्विरोधों की कोई सीमा नहीं है और न इनके द्वारा किसी विशेष मत या सिद्धान्त का प्रतिपादन ही हो सकता है। एक प्रवृत्ति यदि कला को व्यक्तिपरक तो दूसरी उसे सामाजिक बनाने के पक्ष में है। सामाजिक संकल्प से अधिक उसमें व्यक्ति के विकल्प गुंथे हैं। साहित्य की संगठित शक्तियां आज एक ऐसी अविभाज्य इकाई के रूप में नहीं दीख पड़तीं जिसमें स्रष्टा के संवेदक पहलू तिरोहित होकर एक पूंजीभूत प्रकाश पैदा कर सकें। इसके विपरीत 'वादों' का वह एक बड़ा उलझावपूर्ण समवाय है जिस से वादपरक होना उसकी सम्पूर्ण साधना की एक अनिवार्य शर्त बन गई है और जिनका न परस्पर समझौता हो सकता है और न समन्वय। स्पष्ट है कि साहित्य के ये वादपरक पहलू एक सम्पूर्ण समष्टि के रूप में नहीं, व्यष्टि के रूप में एक बड़ी प्रायोगिक प्रक्रिया के अंग भर हैं जिनमें न ज़िन्दगी की सही सीमाएं आंकने की ताकत है, न वस्तु और अभिव्यंजना का अंतरंग सम्बन्ध और न सहजात स्वनिर्मित वैचारिक स्वीकृति।

हमें कोई आपत्ति न होगी यदि प्रयोगवादी कवि जीवन के विराट सपनों को अपने कृतित्व में अधिकाधिक साकार करें, अपनी निश्चल और बिखरी स्वानुभूति को आकर्षक और नूतन ढंग से दूसरों के सामने रखें, उनकी अभिव्यक्ति में जनवादी स्वर हों, उनकी पुकार में मर्म को कचोटने वाली संवेदना हो और सबसे बड़ी बात उनमें व्यापक सत्य, सर्वांगपूर्णता और रागतत्वों को उद्वेलित करने की शक्ति हो। ऐसी चीजें दिल खोल कर अपनाई जायेंगी, किन्तु जहां नवीन प्रयोगों के मोह में पड़कर भाव और भाषा अटपटी हो गई है, अतिवैयक्तिक शब्दों से भावनाएं अनमिल हो गई हैं और छन्द, लय, ताल की वर्जित स्थापनाओं से सहज एकसूत्रता विच्छिन्न हो गई है वहां प्रयोगवाद निरा बच्चे का खिलवाड़ है। वह मनोरंजन तो कर सकता है, साहित्य की महान परम्पराओं को जीवित नहीं रख सकता।

विकल्प या स्वेच्छाचार

सबसे बड़ी घातक स्थिति इस स्वेच्छाचारी दौर में अव्याहत स्वातन्त्र्य और उन्मुक्त उच्छृंखलता की भावना है जो कविता को दिग्भ्रमित और डांवाडोल कर रही है। घोर प्रतिक्रिया स्वरूप एक नकारात्मक अनास्था और अविश्वास--सैद्धान्तिक ऊहापोह में--न केवल ह्रासोन्मुखी पूंजीवाद से त्रस्त है, अपितु तमाम समाज और सामाजिकता से उसे भयंकर द्रोह है। अत्यधिक आत्मकेन्द्रित और अहंवादी तर्क क्रियात्मक रूप स एक ऐसे नए संघर्ष के स्वरों का उद्घोष कर रहे हैं जिस से साहित्य में कुरुचि और अपरिष्कृत द्विधा के उद्दाम चित्र मिलते हैं। कलात्मक संयम, तत्वचिंतन और एक निष्ठ साधना का तो प्रश्न ही नहीं उठता, इसके विपरीत दुर्दमनीय सौन्दर्येच्छा, यौन-प्रेम और अनियंत्रित आचरण ने उनकी अभिरुचि और ग्राहक शक्ति को नितान्त छिछला बना दिया है। अतएव काव्यसृजन की प्रक्रिया में--बौद्धिक जोड़-तोड़ रूपायित होकर--नए-नए पहलू और ढांचे उभारते हैं। शब्दों और वाक्यांशों के नए आरोह-अवरोह छन्दों को साधने और अनुभूति को चरितार्थ करने में आशातीत, अकल्पित भावों की व्यंजना कर रह हैं।

लगता है मानववाद की इस उषः वेला में कवि को अकस्मात ऐसी नवोपलब्ध, विचित्र दृष्टि हासिल हुई है कि वह बेहद आवेश या दुर्दम्य तिक्तता में एक ऐसे बिन्दु पर पहुंच गया है जो ध्वंसावेशषों पर नियति का अधिनायक बनकर अपनी महत्वाकांक्षाओं का प्रासाद खड़ा करना चाहता है। नई पाबन्दियों और आचार-विधानों ने अच्छे-बुरे की विभेदक सीमाएं तोड़ दी हैं। धारणा कुछ और है, कर्म कुछ और। स्थूल वास्तव की रूपान्तर प्रक्रिया न अन्तर्मन को इतनी श्रेणियों में विभक्त कर दिया है कि प्रणय तक का मर्मर संगीत अब दृश्यतर जगत का कोमल प्रकम्पन उत्पन्न नहीं करता, वरन पृथ्वी से सटे क्षितिज से कितने ही डाइमेन्शनों में या हल्की-गाढ़ी रेखाओं में मानो घुटी-घुटी सी सिसकियां उभारता है। 'प्रेम की ट्रेजेडी' की कुछ पंक्तियां--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(हाय !)
(नहीं चैन,
जागते ही कट गयी रैन.....)
(प्रेम यानी इश्क़ यानी लव !)
"!"
"!!"

\+ + +

.....
?
(अरमानों के गाल पर चांटा
झरबेरी का कांटा)
?
(मुहब्बत में घाटा !!) (सैयद शफीउद्दीन)

आवेश, आहें, एक दबी सी चीख, बीच-बीच म असह्य मौन और आंसू भरी सिसकियां--रात के सन्नाटे में-- रेडियो संगीत सुनकर एक दूसरे कवि को मानों कुछ और ही अहसास होता है।

"रात की हंसी है
तेरे गले में
सीने में
बहुत काली सुर्मयी पलकों में
सांसों में, लहरीली अलकों में
आई तू -- ओ किस की !
फिर मुस्कराई तू.....!
(नींद में---खामोश---वस्ल.....)" (शमशेर बहादुर सिंह)

प्राचीन वर्जनाओं को स्वाभाविक मनः स्थिति में स्वीकार करने में आज के कवि को अनैतिकता या दुर्बलता की हिचक महसूस नहीं होती। चूंकि सभी पहली मान्यताओं के समक्ष गहरे प्रश्न चिन्ह लगे हैं, अतः अपने अधिकांश कृत्यों और उनके पक्ष में दिए गए तर्कों का वह स्वयं उत्तरदायी है। बाहरी और भीतरी अव्यवस्था अथवा क्रमभग्नता के कारण एक सीमाहीन सैलाब से घिरा अपनी बोधवृत्ति के सन्दर्भों से वह नितान्त अलग जा पड़ा है जहां द्विविधा में विकल्पहीन एक अस्पष्ट कुहेलिका ने उसे दिग्भ्रमित कर दिया है।

इसका परिणाम है कि 'वादों' का एक भीषण बवंडर उठ खड़ा हुआ है और नए-नए प्रेरणास्रोत, नए-नए तरीके और नई-नई मनोवृत्तियां काम कर रही हैं। मौजूदा जीवन-संघर्ष की थकान और पस्ती ने एक विचित्र अहं और पलायनवाद जगाकर उसे ऐसा बना दिया है कि जो 'मूड' या तरंग उसमें उठती है उसी के मुताबिक वह बाहरी तथ्यों को खोजता है और उस का उद्देश्य किन्हीं सामाजिक आग्रह या स्थायी काव्यगत मूल्यों को आंकने का नहीं है, बल्कि सत्याभासों की आड़ में उसकी अपनी दुर्निवार अनिश्चितता, व्यंग-विद्रुप, दुःख-दैन्य, आधि-व्याधि, पीड़ा-घुटन, कुछ खोजने और पाने की हविस, स्पर्द्धा का भाव और सीमाएं तोड़कर आगे बढ़ने की प्रवृत्ति, वैयक्तिक और ऐकान्तिक अंगीकरण, ऐन्द्रिय तुष्टि के निमित्त यौनवादी 'एप्रोच', सबसे बढ़कर आतंरिक द्वन्द्व और विरोधी तत्वों के बीच समाधान पाने के लिए प्रतिपाद्य विषय के रेशे-रेशे को उधेड़ कर अत्यन्त होशियारी से तराशे गए उपादान, साथ ही दृष्टिकोणवादी अनेकता को पचाकर अथवा प्रयोजित नवीनता से चुने गए उपकरणों को साधकर अपनी वैचारिक प्रक्रियाओं को स्वस्थ और श्रेयस्कर और दूसरे को ग़लत और निकम्मा साबित करने का वह प्रयत्न कर रहा है। ज्यों-ज्यों सामयिक उत्तजना और छिछली भावुकता के कारण उसके जज़बाती अफ़साने 'प्रोपेगेंडा लिटरेचर' बनते जा रहे हैं, अपने ढंग से इस्तेमाल करने के उसे कितने ही गुर मालूम हो गए हैं जो एक नई तर्ज़ और अन्दाज़ में कमाल की हद तक तो आ जाते हैं, पर जो बात के चटखारे और लहक में ही अपनी अहमियत खो देते हैं।

फलतः इस धकापेल में कविता का सही दिशा-निर्देश असम्भव-सा हो गया है। उक्त प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि में हमें कुछ अच्छी चीजें भी मिली हैं, पर वैयक्तिक कुण्ठाओं से सृष्ट भौंडी, कुरूप, कर्कश विचारधारा और रूप शिल्प के कृत्रिम विधान ने नैसर्गिक व मुखरित भावनाओं को कुचल डाला है। टूटे, खंडित स्वप्नों ने साहित्य में एक ऐसी ध्वंसात्मक अराजकता उत्पन्न कर दी है जो अजगर की सी उग्रता लिए उसके सम्पूर्ण अस्तित्व को आन्दोलित कर अपने आप में लील लेना चाहती है।

स्पष्ट है कि उक्त विडम्बना किसी भी विकसित साहित्य के जागरूक, अपराजेय मनोबल की विरोधी है। अनपक्षित मानसिक उद्वेगों, अवान्तर स्थितियों, विकेन्द्रित प्रतीतियों और असंगत अन्तर्विरोधों ने हमारी संकल्पशील सृजन की गरिमा को छीन लिया है। सर्वांगीण अन्तर्बोध के सर्वोन्मुखी बहुविध तत्वों को अतिशय जड़ता और अनिश्चय की कारा में बन्दी बना लिया गया है। या कहें कि कविता इस वक्त एक ऐसी डगमग दिशाहारी नौका बन गई है जिस में पाल नहीं, चप्पू नहीं, अगल-बगल घाट या ठहराव की जगह नहीं, वरन निरुद्देश्य भटकते उसके सम्मुख एक ऐसा अकल्पित प्रसार है जिस का ओर-छोर दिखाई नहीं पड़ता, ऊपर अनगिन छायाएं कालरात्रि-सी उस पर मंडरा रही हैं, पर जैसा कि रूसी नेता स्तालिन ने कहा है 'साहित्यकार आत्मा का इंजीनियर (शिल्पी) है', वह अब भी डूबते को सहारा देकर उसे सुरक्षित बना सकता है, धारा-प्रवाह के वेग से अथवा इन उच्छल तरंगों से भागकर नहीं, बल्कि उसमें बहते हुए उन्हें चीरकर, उनकी प्रबलता को मुट्ठी में बांधकर, अपनी पद-चाप से उसके विशाल वक्ष को नाप कर मार्ग बना सकता है।

समय की सीमाहीनता यदि कहती है कि वह बंधी नहीं है, वह गति की ओर अनुधावित है तो लेखक भी बंधा नहीं है, वह अलक्ष्य की ओर बढ़ना जानता है। अपनी उद्दाम कल्पनाओं के आंवे में प्राचीन को गला-घुला कर वह नित-नई योजनाओं के रूपाकारों को ढाला करता है। उसकी जीवन की जटिलता में अतीत की परिणति है तो भविष्य के सूत्र भी गुंथे हैं। इन सूत्रों के आधार पर ही उसकी अंतर्हित सृजन शक्ति को पहचाना जा सकता है, क्योंकि आज की उलझन और कशमकश में एक एक प्रकार की चुनौती है, उसे अपने परिचित पथ को, गति को बदलकर चलना है।

अतएव जो सच्चे साधना निष्ठ हैं, वे साधारण परिस्थितियों से सदा ऊपर उठे रहते हैं। उनका उद्देश्य क्षुद्र घृणा-द्वेष और छिछली भावनाओं का प्रसार नहीं हैं। इसके विपरीत उनकी दृष्टि भीतरी स्तर को भेदती है, ताकि वैयक्तिक अनुभूतियों को सामूहिक मान्यताओं में आत्मसात करके अपनी विशिष्ट चिन्तना एवं चैतन्य जागरूकता द्वारा वे मानवीय उदात्त कल्पना को वाणी की अखण्ड पर्णता में परिणत कर सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमाचल की आवाज़

गुरुदयाल मल्लिक

हिमाचल तो हिन्दुस्तान का, जैसा कि कवि इकबाल ने कहा है, एक पासबान है न, इसलिए वह हमेशा, सदियों से हमारे देश की रखवाली करता आ रहा है। मगर कभी क्या हमने ऐसा भी सोचा है कि वह हम सब से एक खास किस्म का प्रतिदान इस रखवाली के लिए चाहता है और उसकी आशा भी रखे बैठा है ?

यह प्रतिदान और आशा किस प्रकार की है ? वह केवल एक ही है, अर्थात हम हिमाचल की अंदरूनी आवाज सुनें और उस पर अमल करने की सदा कोशिश करें।

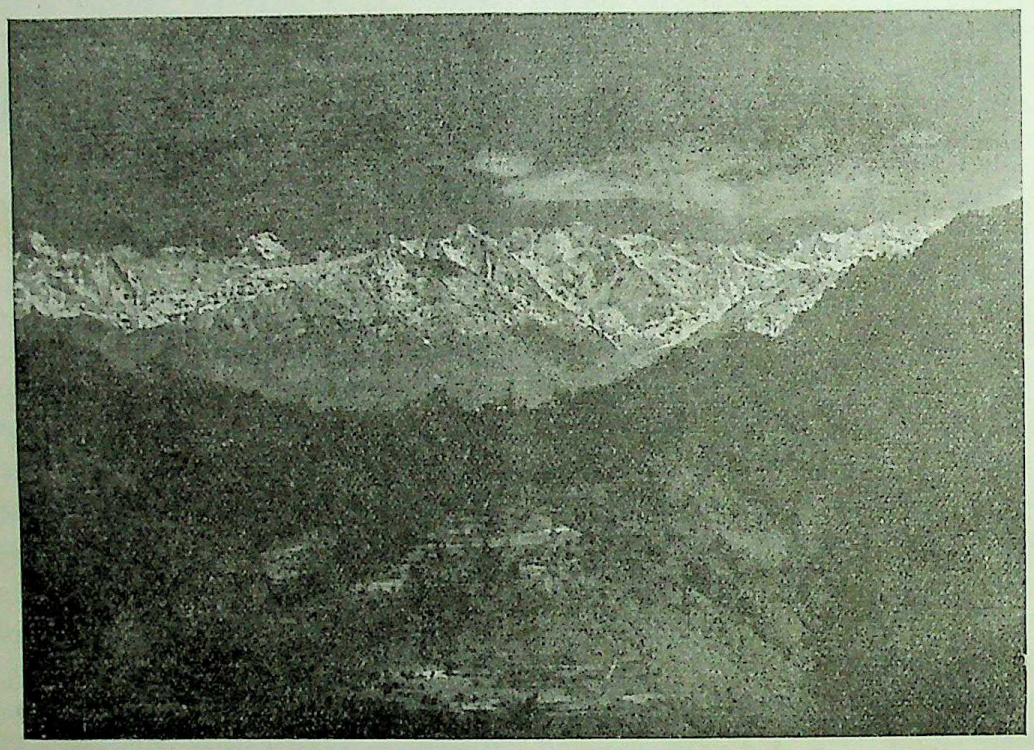

महान हिमालय की एक धवल शृंखला

कुछ दिनों पहले एक सवेरे, जब मैं हिमाचल की गोद में बैठा हुआ था और उसके पितृवत मुख की तरफ बड़े प्रेम और श्रद्धा से ताक रहा था, मुझे गहराई से यह अनुभव हुआ कि यह उसकी मौन-मस्त मूर्ति अतिशय उज्ज्वल और सुन्दर है। अचानक उसका रूप एक ऋषि के शान्त और ज्योतिर्मय रूप में बदल गया। उसे देखकर मेरा मस्तक आप से आप प्रणाम की मुद्रा में झुक गया। उसके बाद, मुझे मालूम नहीं, मैं कब तक आत्म-मग्न होकर बैठा रहा। मगर अन्त में जब मैंने अपनी आंखें खोलीं, तब मैंने देखा कि सन्ध्या हो चुकी थी। नीचे कुछ खेती करने वाले किसान भाई, अपने हलों और गाय-बैलों समेत, घर की तरफ लौट रहे थे। सारा दिन सख्त मेहनत करने के बावजूद भी वे मुझे ताज़ा दिखाई दिए। उनके कदम में तेज़ी थी और उनके दिल में उमंग और उत्साह।

मगर यह उमंग और उत्साह क्यों, कैसे और कहां से आई ? उन लोगों को तो बड़ी थकान लगनी चाहिए थी ! यह ठीक है कि घर वापस जाने की, और वहां अपने परिवार के साथ मिल कर भोजन करने की और गप-शप मारने या कुछ कथा-कीर्तन करने की उमंग तो उनके हृदय में हो सकती है। उनकी उमंग के कारण शायद ये सब ही हों।

परन्तु मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि उन लोगों की उमंग जरा असाधारण और आश्चर्यजनक है। हो सकता है कि उनकी उमंग का यह कारण भी हो कि वे सारा दिन एक दूसरे के साथ मिल कर काम करते रहे थे, इस से उनके दिल में बड़ा आनन्द था, उस आनन्द से ऐसी एक आशा का जन्म हुआ हो कि वह भविष्य में भी हमेशा मिल कर ही एक दूसरे क साथ, काम करते रहेंगे और आशा ने उमंग का रूप धारण किया हो। मगर कौन सही तौर से कह सकता है कि इस असाधारण उमंग का मूल कारण और मर्म क्या था ?

इतने में उन लोगों का गांव आ पहुंचा। उन्हें आता देख कर उनके बच्चे घर से बाहर निकल कर उनको मिलने के लिए चारों ओर से बिजली की तरह दौड़े। बच्चों को इस तरह दौड़ता देखकर एक बूढ़ी माता ने पास-पड़ोस में बैठी दो-चार और बूढ़ी माताओं से कहा, "आओ, हम भी चलें !"

उस बूढ़ी माता के यह शब्द सुन कर मेरा दिल हठात पुकार उठा :—

'यही तो हिमाचल की आवाज़ है : 'हम + आ + चल !' आओ
हम मिल कर एक दूसरे के साथ चलें----जीवन की राह पर।
'हम + आ + चल!'

इतने में गांव के मन्दिर से पुजारी की प्रार्थना सुनाई दी :

सहनाववतु, सहनौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह मासूम चेहरा

'के०'

तबदीली में यहां आए करीब दो हफ्ते बीत गए थे। शीघ्र ही मुझे एक अच्छा घर मिल गया था! मैंने नहीं सोचा था कि इतनी आसानी से घर मिल जाएगा। घर तो अच्छा है। एक छोटा-सा दालान, शीशे की बड़ी-बड़ी खिड़कियां, आंगन में आम के दो-चार छोटे पेड़ और घर के पिछवाड़े में नारियल का एक छोटा-सा बाग। वह मुहल्ला मध्यम श्रेणी के लोगों का है। घर के सामने ही एक गली है, जो विष्णु-मन्दिर की ओर जाती है। शहर में वह मुहल्ला मुझे एक गांव-सा लगा।

एक दिन मैं दफ्तर से जल्दी घर आया। कमरे में जाकर खिड़कियां खोलीं। दीवार में लगे आइने के सामने खड़ा होकर पीछे की ओर देखना मेरी आदत थी! अपने बीते दिनों की याद भी कर लता था। अपने बालों को देखकर मुझे ऐसा लगता कि काल मेरा उपहास कर रहा है। काले-काले बालों के बीच सफेद बालों को देखकर मेरा मन कांप उठता। मुझे निराशा होती कि मैं अपने जीवन में कुछ न कर सका, और बाल सफेद होने लगे। मेरे सारे काम अधूरे ही पड़े रह गए। मेरी आकांक्षाएं पूरी नहीं हो पाईं। अचानक मेरी आंखों ने आइने से हट कर खुली खिड़की से बाहर देखा। टाई निकालने के लिए गले तक पहुंचे हाथ वहीं रुक गए। खुली खिड़की में से पड़ौसी का घर दिखाई देता था। वहां दोनों घरों को अलग करती हुई एक छोटी टूटी-फटी दीवार थी। दीवार की उस ओर से जिज्ञासा तथा भयभरी दो आंखें मेरी ओर ताक रही थीं। दो मिनट के लिए मुझे उन आंखों ने जैसे निश्चेष्ट कर दिया। वे काली आंखें कितनी खबसूरत थीं। वे आंखें दो-तीन साल की उम्र के एक छोटे बच्चे की थीं; उसने बड़ों की भांति अपने छोटे हाथों को पीछे बांध रखा था। "यह नया-नया यहां कौन आया है? उसे एक बार देख लूं--यह सोचा होगा बच्चे ने।"

मैं उसकी ओर दख कर मुस्कराया। इसका कोई असर उसके चेहरे पर नहीं पड़ा। मैं खिड़की के पास गया। मुझे लगा कि मुझे खिड़की की ओर आता देख कर शायद उसे डर लगा हो। उसे किसी ने अन्दर से बुलाया। वह थोड़ी देर वहां खड़ा रहा और उसके बाद बिजली की तेजी से भीतर की ओर भाग गया। सारा दिन मेरी आंखें उन्हीं मासूम आंखों को देखती रहीं। वह खूबसूरत चेहरा मेरी आंखों के सामने घूमता रहा। दूसरे दिन खिड़की खोल कर मैंने उस तरफ देखा। लेकिन वह चेहरा दिखाई नहीं दिया। मुझे थोड़ी निराशा हुई। यह क्या है? यह मेरी बेवकूफी नहीं तो और क्या है? एक नन्हें बालक के लिए, जिससे पांच मिनट की जान-पहचान तक भी नहीं हुई थी. मेरा मन इतना चंचल क्यों हो रहा है? मैंने अपने को कोसा। पर एक दिन भी ऐसा नहीं गुजरा कि वे काली-काली आंखें और सुन्दर चेहरा मेरे मन के सामने उभर कर न आया हो।

इतवार का दिन था। दफ्तर की छुट्टी थी। मैं अपने घर के दालान में बैठा था। वह बालक आंगन में एक पौधे के पास खड़ा हो, उस खिलते फूल को बड़े कौतूहल से देख रहा था। मैंने उसके पास जाकर पूछा--"तुझे फूल चाहिए?"

उसने अपना सिर हिलाया। अब की बार उन आंखों में भय के चिन्ह नहीं थे। उसका सारा ध्यान खिलने वाले फूल पर था। मैंने उस फूल को तोड़ कर उसके नन्हें हाथों में दे दिया। फूल लेकर उसकी काली आंखें हंस पड़ीं। उसने मेरी तरफ देखा। फूल सूंघने के लिए मेरी ओर बढ़ाया। मैंने उसको ले लिया और एक दूसरा फूल तोड़ कर उसके कान में लगा दिया। आंगन में आम का एक छोटा पेड़ था। उसमें नई कोंपलें निकल रही थीं। नए कोंपलों से वह पेड़ ऐसा लगता था कि एक छोटी बालिका रेशमी रूमाल अपने सिर पर लपेटे खड़ी है! मैंने एक कोंपल तोड़ कर लड़के के हाथ में दे दी। उस कोंपल को अपने माथे से लगाते हुए उसने मुझ से कुछ कहा। पर उसकी जबान मैं समझ नहीं पाया। उस जबान में अभी तक किसी ने मुझ से बातें नहीं की थीं। वह स्वयं भी एक कोंपल तोड़ कर मेरे चेहरे पर मारने लगा। उसके खेल को देख कर मेरे रोंगटे खड़े हो गए। मेरी आंखें दीवार के उस ओर गईं। वहां से दो बड़ी-बड़ी आंखें इस तमाशे को बड़े कौतूहल से देख रही थीं। यह सब अवश्य एक क्षण मात्र के लिए रहा। वह स्त्री देखते ही देखते गायब हो गई। लड़के ने अपनी मां को जोर से पुकारा। उसने कोंपलों को कान पर लगाया। शायद अपनी मां को दिखाना चाहता था। मगर वैसा नहीं हुआ। मां बाहर नहीं आई। लेकिन उसक बदले एक बूढ़ा हंसता हुआ बाहर आया। "अरे छोकरे तू कब से इतना बड़ा शेर बन गया है?" बूढ़े ने बच्चे से पूछा।

"बच्चों के लिए सब बराबर हैं।" मैंने बच्चे के कपोलों को सहलाते हुए कहा।

"लेकिन मधु और बच्चों की तरह नहीं है। यह बड़ा शर्मीला है। डरता भी बहुत है। आश्चर्य है कि यह आपसे इतनी जल्दी घुलमिल गया।"

मुझे सूझ न पाया कि इसका क्या जवाब दूं। लेकिन, तब तक बूढ़ा उधर से चला गया था। मैं मधु को लेकर अपने कमरे में आया। उसको बहुत-सी बातें मुझ से करनी थीं। अपनी मां के बारे में, जीजी के बारे में और अपनी मोटर के बारे में। सब कुछ मैंने ध्यान से सुना। बीच-बीच में जवाब भी देता और सवाल भी करता।

"हां।"

"अच्छा।"

"आश्चर्य है।"

"क्या मोटर तेज़ी से दौड़ती है?"

"क्या मुझे भी सिनेमा ले जाएगा।"

उसने मेरी सारी किताबें एक-एक करके बाहर निकालीं। अखबार को फाड़ कर दो टुकड़े कर दिए। कंघी लेकर उसने अपने सिर के बाल इधर-उधर किए। मेरी टाई उसने अपने गले में डाल ली। मैंने कमरे में देखा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधु को कोई खिलौना दे दूं। पर मेरे कमरे में तो खिलौने कहां ? बाजार से आते समय खिलौनों की दुकान के सामने मैं खड़ा हो जाया करता था। पर मैं कुछ खरीदता नहीं था। दूकानदार चकित हो मेरी तरफ देखने लगता। मैं सिर नीचा किए चला जाता। खिलौने के खरीदने से क्या फायदा ? मेरे जीवन के अभाव की पूर्ति ये बेजान खिलौने क्या कर सकते हैं ? सालों पहले एक बार मां ने मुझ से कहा था--"तुम ऐसी बात मन में नहीं रखना। दो साल के अन्दर तुम एक छोटे बच्चे के बाप बन जाओगे।"

मेरी मां कितनी अच्छी थी। उसके बाद तो कई साल गुजर गए। फिर भी मेरी जिन्दगी की यह शून्यता निरन्तर बनी ही रही।

मेरा सपना टूट गया। मधु खेलना छोड़ कर मेरी ओर आंखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा। उसका म्लान चेहरा मैंने देखा। मुझे लगा कि वह मुझ से कुछ कहना चाहता है, कोई सन्देशा मुझे सुनाना चाहता है।

"मधु, तू क्या चाहता है?" घुटनों के बल उसके सामने बैठकर मैंने पूछा।

इतवार के उस दिन का सबेरा कैसे गुजरा, यह मैं जान नहीं पाया। मधु और मैं खेलते हंसते दोपहर तक एक साथ रहे। खाने का समय आया तो घर से मधु को ले जाने उसकी जीजी आई। मगर मधु मुझे छोड़कर जाने को तैयार नहीं था। मेरे ज़ोर देने पर वह दुखी मन से अपनी जीजी के साथ चला गया।

बहुत शीघ्र हम दोनों बड़े गहरे दोस्त बन गए। सबेरे मेरे दफ्तर जाने के समय तक वह घर के अन्दर और बाहर खेलता-फिरता था। बार-बार मुझे भी खेलने को बुलाता था। कभी मैं दफ्तर जाने की तैयारी में चप्पल पहनने लगूं, तो वह दूसरा चप्पल लेकर भाग निकलता। कभी टोपी लेकर अपने सिर पर रख लेता और मुझे डराने लगता। शाम को मेरे घर पहुंचते ही वह भी मेरे कमरे में आ जाता। मैं अपनी थकावट और भूख को भूलकर उसके साथ खेलने लगता। दफ्तर से आने में देर हो जाती तो वह रास्ते में खड़े होकर इन्तजार करता। इतवार के दिन अधिक समय वह मेरे ही साथ बिताता। खिलाने के लिए कभी उसकी मां आकर ले जाती। मां की आंखें भी मधु की भांति बड़ी-बड़ी और भोली थीं। उन आंखों में सन्तोष की भावनाएं और आनन्द का आभास मिलता था। कभी मधु जाने से इन्कार कर देता। मैं स्वयं उसे घर के फाटक तक ले जाता तो वह मान जाता।

दिन और हफ्ते बीतते गए। एक दिन जब मैं दफ्तर से आया तो मधु घर पर कहीं नहीं मिला। मैंने अपनी नजर चारों ओर दौड़ाई आंगन में, नारियल के बाग में और आम के पेड़ के पास। वह कहीं भी दिखाई नहीं दिया। कमरे में जाकर खिड़की खोल कर दीवार के उस पार नजर दौड़ाई मगर मधु का पता कहीं नहीं मिला। मैंने थोड़ी देर उसका इन्तजार किया। शाम हुई। धीरे-धीरे रात भी हो गई। मधु आज क्यों नहीं आया ? मैंने उसके इन्तजार में पूरी रात बिताई। पर वह नहीं आया। दूसर दिन शाम को दफ्तर से आ रहा था, तब मैंने देखा कि मधु की मां दीवार के पास खड़ी है। अपनी आंखें आधा मूंद कर सिर झुकाए मधु अपनी मां के कन्धे पर लेटा हुआ था। वह बीमार-सा लगता था। मुझे कुछ परेशानी हुई। अपनी परेशानी कैसे छिपाऊं ? मैंने चाहा कि उसकी मां के हाथों से मधु को ले लूं। पर आखिर वह मेरा है कौन ? मैं उसे ले नहीं सकता। मैं दुखी मन से कमरे में चला गया। नौकर मेज पर चाय रख कर दरवाज़े पर थोड़ी देर के लिए खड़ा रहा। थोड़ी देर के बाद वह चला गया। शायद उसको मेरी परेशानी का पता लग गया होगा।

रात बहुत बीत गई होगी। पड़ोस के घर के एक कमरे में धीमी-धीमी बत्ती जल रही थी। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। खुली खिड़की में से चांदनी कमरे में प्रवेश कर रही थी। मैंने खिड़की के पास जा कर बाहर की तरफ देखा। वहां से अकेला खड़ा हुआ एक नारियल का पेड़ मात्र दिखाई दिया। उसकी परछाई मुझे अजगर की तरह आंगन में रेंगती-सी लगी। नारियल के पत्तों के बीच में से चांदनी और भी चमक रही थी। रात के सन्नाटे में अकेला मैं ही उसका साथी था। मेरा मन चिन्तित हो उठा। मुझे मां की चिट्ठी की याद आई, जो मुझे उसी दिन मिली थी। मां ने लिखा था--"मेरे प्यारे बेटे, तू चिट्ठी क्यों नहीं लिखता ? तुझे क्या हो गया है ? तेरी तबीयत कैसी है ? मां के दिल की पीड़ा को तू क्या जाने ? ..... लीला आंसू-भरी आंखों में दिन काटती है। तू कब ले जाएगा उसे ? तूने लिखा तो था कि घर मिलते ही उसे लेने आऊंगा। उसे रुलाना कहां तक ठीक है ?" मैं सोचने लगा, नहीं, ठीक नहीं। अब जो हो रहा है, वह भी ठीक नहीं। क्या ठीक है, क्या नहीं, इसका समाधान कौन करेगा ?

रात भर मैं बिस्तर पर करवटें बदलता रहा। बार-बार बच्चे के रोने की धीमी आवाज रात के सन्नाटे में पड़ोस के घर से सुनाई दे रही थी। मुझे उस पर तरस आया और गुस्सा भी। कानों में उंगलियां डाल कर, आंखें मून्द कर इस दुनिया और उसकी हजारों समस्याओं को उकसा कर इस छोटे-से बच्चे को भूलने का प्रयत्न करने लगा।

सबेरा होने पर मैं सीधा मधु के घर पहुंचा। मुझे अकस्मात आते देख, या मेरी परेशानी को भांप कर दालान में बैठा बूढ़ा फौरन उठ खड़ा हुआ। मैंने अपने को संयत करते हुए पूछा--"मधु की तबीयत कैसी है ?"

मेरे सवाल ने बूढ़े को अचम्भे में डाल दिया था। बूढ़े ने पूछा--"तबीयत, मधु की तबीयत तो ठीक ही है।"

मेरा मन बैठ गया। क्या इस बूढ़े को इतना भी पता नहीं कि इस घर में क्या होता है ? अन्दर से एक स्त्री की आवाज सुनाई दी। और वह आवाज जैसे मुझे तसल्ली दे रही हो।

"मधु को जुकाम हो गया था। अब ठीक है।"

मैंने कहा--"तीन दिन से वह बाहर कहीं दीख नहीं पड़ा था। कुछ परेशानी हुई। सोचा, आज उसको देख आऊं।"

बूढ़े ने हंसते हुए कहा--"बच्चों को सर्दी-जुकाम का लगना तो मामूली-सी बात है। इसमें परेशानी होने की बात ही क्या है ?"

मुझे लज्जा का अनुभव हुआ और चुपके-चुपके वहां से चला आया।

और दो-तीन दिन इसी तरह बीत गए। इतवार का दिन था। सबेरे मैं दालान में बैठा हुआ था। मधु की मां मन्दिर जाते समय मधु को मेरे घर के आंगन पर छोड़ कर चली गई। उसके माथे पर चन्दन का तिलक था। मधु दौड़ता हुआ आया और मेरी छाती से लिपट गया। उस समय हम दोनों को जितना आनन्द आया उसका वर्णन कैसे करूं ? उस स्नेहमयी मां के प्रति मेरे हृदय में जो श्रद्धा उत्पन्न हुई, उसे मैं कैसे प्रकट करूं ? किसको मैं धन्यवाद दूं।

एक दिन दफ्तर से घर आते समय मुझे मधु के पिता की याद आई। वह एक सिपाही है। उसे घर छोड़े दो साल हो गए थे। सुना कि वह छुट्टी में घर आया है और जाते समय मधु को साथ ले जाएगा। अच्छा हुआ। उसका जीवन अब अपूर्ण है। उसके अपूर्ण जीवन को पूर्ण बनाने के लिए बच्चे की जरूरत है। जिस घर में बच्चे न हों, वह घर भी क्या घर है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं कुरता उतार कर आंगन में आया। गमले में फूल खिले हुए थे। कुछ वे मुरझा कर नीचे गिर पड़े थे। मैंने चाहा कि उन मुरझाए फूलों में जान फूंक कर उन्हें फिर से पेड़ पर लगाऊं। मैं पेड़ के पास गया। जाकर नीचे पड़े हुए फूलों को देखा। मैं उन्हें चुनने ही वाला था कि दीवार के उस पार से एक आवाज आई। मैंने सिर उठा कर देखा। मधु अपने पिता के हाथों से नीचे उतरने को मचल रहा था। वह रो रहा था, हाथ-पांव पटक कर अपना विरोध प्रकट कर रहा था। मधु को अपने पिता के पास रहना पसन्द नहीं था। मैं दीवार के पास पहुंच गया। मधु का पिता हट्टा-कट्टा नौजवान था। उसका चेहरा यह प्रकट करता था कि वह प्रसन्नचित्त है। वह दुनिया को उसी तरह सच मानता है जिस तरह वह दिखाई देती है। मुझे देखते ही मधु और जोर से रोने लगा। मधु के पिता ने उसे नीचे उतार दिया। मधु झट वहां से दौड़ कर मेरे पास आया। उसने रोना भी बन्द कर दिया। मैंने उसे गोद में उठा लिया। मेरी नजर अब दालान में खड़ी मधु की मां पर पड़ी। उस चेहरे पर दबी हुई हंसी की एक झलक थी। मगर उसी समय मधु के पिता के चेहरे का रंग उड़ गया। अब तक तो वह प्रसन्न था। मुझे ऐसा लगा कि जैसे किसी ने अचानक उस पर आक्रमण किया हो। शिष्टता का ख्याल कर मैं इधर-उधर की बातें करता रहा, पर मेरी बातों पर ध्यान दिए बिना ही वह बड़ी फुर्ती से वहां से चला गया।

मुझे डर लगा कि मधु मुझ से अलग हो रहा है। पर हुआ कुछ और ही। मधु रोज मेरे पास आने लगा। मैं भी उसके साथ खेलता। वह अपने पिता के लाए हुए खिलौनों को मुझे दिखाता और तरह-तरह की बातें करता। मैं उसकी सारी बातें बड़े ध्यान से सुनता।

मन्दिर में उस दिन एक बड़ा त्यौहार था। मैं ऐसे मौके पर मन्दिर जाना नहीं चाहता था। भीड़-भाड़ में धक्कमधक्का खाकर ईश्वर की पूजा करने के लिए मन्दिर में जाना बेकार है, मेरी यही धारणा है। ऐसी भीड़-भाड़ में हमारी प्रार्थना ईश्वर कैसे सुनेगा। लेकिन लोगों का विश्वास है कि उस दिन चन्दन और सोने के आभूषणों से सजी हुई कृष्ण भगवान की प्रतिमा को देखना ही चाहिए। फूल मालाओं और जलती बत्तियों के बीच एक पवित्र वातावरण मुझे वहां आज दिखाई दिया। इधर-उधर बगैर देखे सीधे मन्दिर में पहुंच कर मैंने मन में 'गुरुवायूरप्पा' (गुरुवायूर के मन्दिर का ईश्वर) को पुकारा। मैं जिस मन्दिर में भी जाऊं 'गुरुवायूरप्पा' पुकारता हूं। मैं ईश्वर को किन विभिन्न नामों से पुकारूं? एक ही नाम मेरे लिए काफी है। वहां लोगों की बड़ी भीड़ थी। उसमें कोई भजन गा रहे थे, कोई 'कृष्ण! कृष्ण!' पुकार रहे थे। इस भीड़ में मैं अपने मन को एकाग्र नहीं कर पाया।

अचानक पीछे से एक आवाज सुनाई दी। मैंने घूम कर देखा तो वह मधु के रोने की आवाज थी। कोई उसको धीमे स्वर में शान्त करने की कोशिश कर रहा था। शायद वह उसकी मां होगी। लेकिन वह शान्त नहीं हुआ। उसकी जिद जोर पकड़ती गई। मुझ से रहा नहीं गया। मधु अपनी मां के हाथों से छूटने की कोशिश कर रहा था। मधु की मां के चेहरे पर भय के बादल मण्डरा रहे थे। उसी समय मधु का पिता उनके पास आया। उसने अपने हाथ बढ़ाए। लेकिन वह पिता के पास भी नहीं गया। जब देखा कि दूसरा चारा नहीं है, तो उसने मधु को नीचे छोड़ दिया। वह दौड़ता हुआ आकर मेरे पैरों में लिपट गया। मैंने उसको अपने हाथों में ले लिया। लेकिन मधु के बाप की ओर देखने का साहस मुझे नहीं हुआ। मैं मधु को लेकर उसके पिता के पास पहुंचा। उन्होंने थोड़ी देर मेरी ओर ध्यान से देखा। उनकी आंखों में क्रोध था, प्रतिशोध था। वे वहां से चले गए, मेरी तरफ देखा भी नहीं। मुझे लगा कि वह मेरे शरीर पर अंगारे गिरा गए।

मैं मधु को लेकर मन्दिर के चारों ओर घूमा। उसके भोले भाले चेहरे को देखने से मुझे तसल्ली हुई। एक अनोखी तसल्ली। दूसरे दिन सबेरे मैं जल्दी ही दफ्तर गया। मैंने निश्चय किया कि आगे से मैं मधु से न मिलूंगा। इस निश्चय ने मेरे मन को घायल बना दिया। लेकिन कोई दूसरा चारा भी नहीं था। दफ्तर के कामों में मन नहीं लगा। धीरे-धीरे सबेरे का निर्णय ढीला पड़ता गया। लाचार होकर रोज की तरह घर लौटा और आंगन तक पहुंचते ही मैंने जो दृश्य देखा, उसने मुझे स्तब्ध कर दिया। टूटी-फूटी उस छोटी दीवार के स्थान पर एक ऊंची दीवार खड़ी हो गई। उधर का आंगन भी अब मैं देख नहीं पाता था। मैंने अपने कमरे में जाकर दरवाजा बन्द कर लिया। खिड़की को भी बन्द कर वहां एक पर्दा लगा दिया। मुझे बहुत बड़ा धक्का पहुंचा।

दूसरे दिन प्रातः रोज की तरह मुझे उसकी प्रतीक्षा थी। लेकिन सब बेकार! वह किरण मुझे नहीं दिखाई दी। मेरे घर में अन्धेरा छाया हुआ था। सबेरे बिना कुछ खाए ही मैं दफ्तर के लिए निकल पड़ा। मैं दालान में थोड़ी देर के लिए खड़ा रहा। उसकी बातें मुझे स्मरण हो आईं। तभी मैंने मधु को आते हुए देखा। वह बार-बार पीछे की ओर देखता हुआ आ रहा था। उसकी आंखों में भय समाया हुआ था। मैंने तुरन्त आगे बढ़ कर उसको गोद में उठा लिया। तभी मुझे किसी का कर्कश स्वर सुनाई दिया। मैं सहम कर वहीं खड़ा रह गया।

मेरे पैर न हिले मानों वे पत्थर के हों। उसका बाप फाटक पर खड़ा था। उसकी आंखें गुस्से से लाल हो गई थीं। उसने अपने बेटे को वापस बुलाया। मधु नहीं गया। मधु का बाप आंधी की तरह दौड़ कर मेरे पास आया और मधु को मुझ से छीन लिया। मधु के गाल पर उसने दो-चार तमाचे लगा दिए। मुझे ऐसा लगा कि मेरे शरीर पर बिजली गिरी हो, मैं दो कदम आगे बढ़ा। उस समय मेरे दिल से एक आवाज आई—"ठहरो! यह तुम क्या कर रहे हो?"

मैंने अपनी आंखें मींच लीं। कान दबा लिए, ताकि मैं उसे न देख सकूं, न उसके रोने की आवाज ही सुन सकूं। मैं पागल की तरह बाहर भाग गया।

दफ्तर में आते ही मुझे मालूम हुआ कि कुछ कार्यकर्ताओं को कलकत्ता भेजा जा रहा है। मैंने उनमें अपना नाम भी दे दिया। अब दो दिन के भीतर ही मैं यहां से हमेशा के लिए चला जाऊंगा!

अनुवादिका—डी० मंजुलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज़ादी के बाद उर्दू कहानी

हंसराज 'रहबर'

आज़ादी आई तो देश का विभाजन भी हुआ। और विभाजन से उर्दू को जो आघात लगा, वह बहुत बड़ा था। विभाजन के कारण उर्दू के कितने लेखक हिन्दुस्तान छोड़कर पाकिस्तान चले गए और साथ ही कुछ लेखक पाकिस्तान छोड़ कर हिन्दुस्तान चले आए। उन दिनों घर उजड़े, सामान लुटा, सगे-सम्बन्धियों और प्रियजनों को साम्प्रदायिक दंगों की भेंट चढ़ते देखा। इस बरबादी के कारण उर्दू का लेखक आज़ादी की खुशी से वंचित रहा। वैसे विभाजन से सारा ही देश प्रभावित हुआ, सभी भाषाओं के लेखकों ने विभाजन और दंगों पर बहुत कुछ लिखा और क्रोध से दानव बन गए मानव को फिर से मानव बनाने का प्रयत्न किया। लेकिन उर्दू लेखक को तो और कुछ सूझता ही नहीं था, विभाजन और साम्प्रदायिक दंगे और हत्याकांड कई साल तक उसकी रचनाओं की विषय-वस्तु बने रहे। उसके लिए अपने समय का यह एक ऐसा विकराल सत्य था जो बहुत ही कटु और दुखप्रद था। 'साक़ी' के सम्पादक शाहद अहमद देहलवी को दिल्ली छोड़कर कराची जाना पड़ा। इस बीच में उन्होंने जो कुछ देखा था, उसे रिपोर्ताज़ के रूप में प्रस्तुत किया। उधर पश्चिमी पंजाब में रामानन्द सागर के जो अनुभव थे उन्हें 'इन्सान मर गया' उपन्यास में बयान किया गया था। इसी प्रकार ताजवर सामरी ने एक काफ़िले के साथ लायलपुर से अमृतसर पहुँचने की कहानी 'जब बंधन टूटे' पुस्तक में बयान की। इन कृतियों की काफी चर्चा रही।

इस विषय पर कहानियाँ तो बहुत बड़ी संख्या में लिखी गईं। कृष्णचन्द्र क 'हम वहशी हैं' कहानी संग्रह में इसी विषय की कहानियाँ संग्रहीत थीं, जिसके दो-तीन संस्करण हुए और हाथोंहाथ बिके। इसके बाद भी उसके जो संग्रह प्रकाशित हुए, उनमें आधी से अधिक कहानियाँ दंगों और विभाजन से सम्बन्धित थीं। सआदत हसन मंटो कहानी कला में सिद्धहस्त था। विभाजन के बाद पाकिस्तान का नायक बन उसने भी दंगे और विभाजन पर कई कहानियाँ लिखीं और उसकी कहानी 'खोल दो!' ने तो लोगों को एकदम चौंका दिया था। यह एक सुन्दर रमणी की कहानी थी, जिसके साथ सहायता और सेवा में लगे हुए रजाकारों ने भी बलात्कार किया। लेकिन विभाजन पर मंटो की प्रसिद्ध और अमर कहानी 'टोबा टेक सिंह' है। कहानी का नायक एक पागल सिख है जो टोबा टेकसिंह का रहने वाला है। विभाजन के बाद जब दोनों सरकारें कैदियों का तबादला करती हैं तो लाहौर के पागलखाने से हिन्दू सिख पागल भी हिन्दुस्तान भेजे जाते हैं। कहानी के नायक को किसी न किसी तरह पहले ही मालूम हो गया था कि देश का बंटवारा हो गया है और एक देश के दो देश बन गए हैं। इस बात का उसे दुख है। लेकिन अधिक चिन्ता इस बात की है कि वह जानना चाहता है कि टोबा टेकसिंह हिन्दुस्तान में है या पाकिस्तान में। मगर सब पागल अपनी-अपनी हांकते हैं, उसे कुछ पता नहीं चलता। पता चलता है तो उस समय, जब उसे हिन्दुस्तान भेज देने के लिए वाघा नहर की सीमा पर लाया जाता है। वह वहीं पछाड़ खाकर गिर पड़ता है। उसका धड़ पाकिस्तान में है और सिर हिन्दुस्तान में। जब उसका प्यारा टोबा टेकसिंह पाकिस्तान में रह गया तो वह हिन्दुस्तान जाकर क्या करेगा? वह आंधी-झक्कड़ से उखड़ा हुआ पेड़ था। जिस धरती में उसकी जड़ें बहुत गहरी चली गई थीं, उससे उखड़ कर वह कैसे पनप सकता।

विस्थापितों की यथार्थ स्थिति को मंटो ने जिस सहानुभति से प्रस्तुत किया है, उसका जवाब नहीं है। कहानी का नायक यद्यपि पागल है, लेकिन उसका एक सजीव व्यक्तित्व है, जो साधारण होते हुए भी असाधारण है। पागलखाने का वातावरण भी बड़ी सुन्दरता से चित्रित हुआ है। कारण शायद यह हो कि विभाजन और उस से सम्बद्ध घटनाओं का मंटो पर इतना प्रभाव पड़ा था कि वह खुद पागल होकर लाहौर के पागलखाने में रह आया था। विभाजन और दंगे के दिनों में क्या सारा देश ही पागलखाना नहीं बना हुआ था? इस बात में यह पागल सर्वसाधारण लोगों से अच्छे थे कि उनमें साम्प्रदायिकता की भावना तो नहीं थी।

मंटो की कहानियों के अधिकांश विषय असामाजिक हैं और विभाजन और आज़ादी के बाद तो उसकी कहानियों में अश्लीलता और मानव द्वेष का तत्व बहुत अधिक बढ़ गया था। लेकिन जिस विषय पर भी मंटो ने लिखा, उस पर उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त था। सन् १९४८ के अन्त तक वह बम्बई में रहा, उसके बाद लाहौर चला गया। वहीं जनवरी सन् १९५४ में ४४ वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हुई। इस बीच में उसकी कहानियों के कई संग्रह छपे। कई बार वह सिर्फ पैसे के लिए भी लिखता था। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि वह बहुत बड़ा कलाकार था। इस दौरान में मंटो ने 'नया कानून', 'टोबा टेकसिंह', 'लतिका रानी' और 'दौलेशाह का चहा' आदि कम से कम एक दर्जन कहानियाँ ऐसी लिखीं जो उर्दू-साहित्य में हमेशा अमर रहेंगी।

राजेन्द्रसिंह बेदी ने चेखोव की शैली पर कहानियाँ लिखी हैं और उसमें एक बहुत बड़ा कलाकार बनने की सम्भावनाएँ थीं। लेकिन विभाजन से पहले ही उसने लिखना कम कर दिया था और विभाजन के बाद तो उसकी कलम बहुत खामोश हो गई थी। आज़ादी के बाद उसने बहुत कम कहानियाँ लिखी हैं। उनमें 'लाजवंती' लाजवाब है। विषय वही देश का विभाजन है। कहानी की नायिका लाजवंती एक विवाहित स्त्री है। पति को उससे और उसे पति से हार्दिक प्रेम है। विभाजन के बाद लाजवंती पाकिस्तान में रह जाती है और पति हिन्दुस्तान चला आता है। पति को पत्नी के बिना एक पल चैन नहीं पड़ता। वह अधेड़ उम्र का भला आदमी है। बच्चा कोई नहीं था, उसके लिए पत्नी ही सब कुछ थी। जब अपहृताओं को इधर से उधर लाने की व्यवस्था होती है, तो लाजवंती का पति ज्वाला प्रसाद भी उसकी खोज लगाने और उसे इधर लाने में सफल होता है। अब लाजवंती के प्रति उसका व्यवहार पहले से कहीं अधिक नर्म और शिष्टतापूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कसूर हो जाने पर भी वह मुंह से कठोर शब्द तक नहीं निकालता, कहीं पत्नी यह न समझे कि सतीत्व खो आने के कारण पति उससे घृणा करता है। लेकिन लाजवंती को यह व्यवहार खटकता है। वह महसूस करती है कि मैंने अपने घर में अधिकार और प्यार खो दिया है। मैं अब सिर्फ पति की दया की पात्र हूँ। और लाजवंती मुरझा जाती है। जाने कितनी स्त्रियों ने अपने घरों में यह अधिकार और प्यार खोया होगा।

दंगों और विभाजन से पहले बंगाल में अकाल और युद्ध की भयंकरता पर ढेरों कहानियाँ लिखी गई थीं। तभी उर्दू में सामयिक घटनाओं पर कहानियाँ लिखने की एक प्रथा-सी चल पड़ी थी और इसी को प्रगतिवाद और मानवतावाद मान लिया गया था। घटना जरूरी नहीं कि अपने देश ही में घटित हुई हो। लेखक दूसरे देशों की घटनाओं पर लिख कर अपनी अन्तर्राष्ट्रीयता का परिचय देने लगे। कोरिया, स्पेन, चीन और मलाया के राजनीतिक आन्दोलनों पर धड़ाधड़ कहानियाँ लिखी जाने लगीं। लेखक का पात्रों से परिचित होना, उनकी ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि को और दार्शनिक या सांस्कृतिक परम्परा को जानना कोई जरूरी नहीं था। भूगोल की पुस्तक में शहरों के कुछ नाम पढ़ लिए और अखबार की किसी खबर को आधार बनाकर कहानी लिख दी। जाहिर है कि ऐसी कहानियाँ शैली और व्यंग के जोर पर ही लिखी जाएँगी। इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि सत्य और यथार्थ विकृत हुआ और कहानी-साहित्य में लफ्फ़ाज़ी अर्थात डैमागागी का ज़ोर बढ़ा। उर्दू के प्रसिद्ध आलोचक मुमताज़ हुसैन ने अपनी पुस्तक 'अदबी मसायल' में लिखा है :—

"हमने इस युग में अपने अनुभव से यह भी सीखा कि जब साहित्य डैमागागी का अंग बन जाता है, तो वह न सिर्फ झूठ का प्रचार करता है बल्कि अदब के दर्जे से भी गिर जाता है। इसी के साथ हमने यह भी महसूस किया कि अगर साहित्य में सत्य की अभिव्यक्ति उस माध्यम के द्वारा न की जाए, जिससे हम उसे पहचानते हैं, तो वह अपनी उपयोगिता को बे-असर कर देता है, यद्यपि सर्वथा नष्ट नहीं करता।"

विश्व-साहित्य की जितनी भी श्रेष्ठ और अमर कहानियाँ हैं, उनमें समस्या और घटना को सजीव पात्रों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। मेरी राय में कहानी में पात्र अथवा व्यक्ति मुख्य हैं, भाषा, वातावरण और शैली गौण हैं। कथानक इसलिए आवश्यक है कि उसके द्वारा पात्रों का नियंत्रण और विकास होता है। विभाजन और दंगों पर जो ढेरों कहानियाँ लिखी गईं, और जिनकी उन दिनों काफी चर्चा रही, उन्हें अब कोई पूछता भी नहीं। 'टोबा टेकसिंह' और 'लाज़वंती' आदि कुछेक कहानियाँ ही जीवित रह सकती हैं क्योंकि उनमें घटना और समस्या सजीव पात्रों द्वारा प्रस्तुत की गई हैं और एक सुगठित कथानक द्वारा इन पात्रों का निर्माण और विकास हुआ है। इसके विपरीत कृष्णचन्द्र की 'चेरी के फल और बारूद' और ख्वाजा अहमद अब्बास की 'गेहूं और गुलाब' जैसी अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर लिखी गई कहानियाँ आज हास्यास्पद मालूम होती हैं। क्योंकि उनमें न सजीव पात्र हैं और न सुगठित कथानक।

यहाँ यह देख लेना भी संगत और उपयोगी होगा कि इस प्रकार की कहानियों को एक समय प्रोत्साहन क्यों मिला? इस प्रश्न के विषय सम्बन्धी और कला-सम्बन्धी दो पहलू हैं और दो ही उत्तर भी हैं। विषय सम्बन्धी कारण यह था कि प्रगतिशील लेखक संघ का एक मुख्य सिद्धान्त था कि लेखक को जनता के दुख-दर्द, उसके आन्दोलनों और संघर्षों में साथ देना चाहिए। इसे विकृत करके यों बना लिया गया कि जनता की हर मुसीबत, हर संघर्ष और हर आन्दोलन पर हर लेखक को कलम ज़रूर चलानी चाहिए। नतीजा यह हुआ कि किसी घटना या आन्दोलन या प्रदर्शन की खबर छपने की देर होती थी, उस पर कुछ लेखक कहानी लिख देते थे। उदाहरण के लिए एक बार बिहार में अनाज की कमी हुई। इस सम्बन्ध में वहाँ आन्दोलन चला, प्रदर्शन हुए और गोली भी चली। इस आन्दोलन पर जैसी कहानी उर्दू में कृष्णचन्द्र ने लिखी, अमृतराय ने वैसी ही कहानी हिन्दी में लिखी और नव तेज ने पंजाबी में। ये कहानियाँ उस समय प्रकाशित भी हुईं, लेकिन आज उन्हें कोई कहानी तक भी नहीं मानेगा। इसी प्रकार अमेरिका में रोज़न बर्ग दम्पत्ति की फांसी पर बहुत-सी कहानियाँ और नाटक आदि लिखे गए। आज खुद वे लेखक भी इस बात से सहमत होंगे कि यह प्रवृत्ति कहानी-साहित्य की उन्नति में सहायक नहीं हुई।

कला पक्ष यह है कि जब नया साहित्य और प्रगतिशीलता का आन्दोलन चला तो नौजवान साहित्यकारों ने नए के मोह में नए विषय, नए ढंग से प्रस्तुत करने शुरू किए। उन्होंने जहाँ सामाजिक और नैतिक परम्परा को तोड़ा, वहाँ साहित्यिक परम्पराओं से भी विद्रोह किया। उनका कहना था कि कहानी में चरित्र चित्रण और कथानक की माँग करना कठमुल्लापन है और प्रतिक्रियावाद है। नए युग की नई कहानी इन पुराने बंधनों को नहीं मानती। अतएव पश्चिम के जेम्स ज्वाइस, डी० एच० लारेंस आदि के अनुकरण में प्रभाव प्रधान कहानियाँ लिखी जाने लगीं। लेकिन जैसे भाषा एक दिन में नहीं, सदियों में बनती है और साथ-साथ बदलती भी रहती है उसी प्रकार परम्पराएँ भी चाह सामाजिक हों या साहित्यिक, कम से कम दशाब्दियों में बनती हैं। वे समय के साथ बदलती अवश्य हैं, लेकिन यह परिवर्तन स्वाभाविक ढंग से धीरे-धीरे प्रायः अनजाने ही होता है। उसमें जो अस्वस्थ और जर्जर होता है वह झड़ जाता है और जो स्वस्थ और नया होता है, वह उसमें प्रबल बनता चला जाता है। साहित्यिक माध्यम—रूप, शैली और टैक्नीक, साहित्यिक परम्परा के अंग हैं। जैसे साहित्य में नए विषय आ जाने से भाषा एक दम नई नहीं हो जाती, उसी प्रकार साहित्य में नए विषय आने से अभिव्यक्ति के माध्यम एकदम नए नहीं हो जाते। भाषा और साहित्यिक माध्यम का भी एक गतिनियम है, उनमें जो परिवर्तन आता है, वह उसी गतिनियम से धीरे-धीरे आता है। इसीलिए साहित्य के नए विषयों को भी बहुत समय तक लोकप्रिय भाषा और लोकप्रिय पुराने माध्यमों द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है। भाषा और माध्यम के एक दम बदल देने से साहित्य का सम्बन्ध जनता से कट जाता है और वह अपनी उपयोगिता को खो बैठता है। हमारे साहित्य में—कहानी और कविता में—प्रयोगवाद की जो प्रथा चली, उसका परिणाम यही हुआ। इसी से मुमताज़ ने लिखा है कि—"अगर साहित्य में सत्य की अभिव्यक्ति उस माध्यम के द्वारा न की जाए, जिससे हम उसे पहचानते, हैं तो वह अपनी उपयोगिता को बे-असर कर देता है।"

07.9.45D

शुरू में यह बात इसलिए अधिक नहीं अखरी कि मध्य वर्ग के ये नौजवान लेखक व्यक्तिगत कुंठा और सामाजिक घुटन के जो विषय लेते थे, वह उनके मध्यवर्गी पाठकों के परिचित विषय थे। लेकिन अब राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर जो कहानियाँ लिखी जाने लगीं, उनमें पात्र, विषय और माध्यम कुछ भी परिचित नहीं था और यों भी युद्ध और आज़ादी के बाद परिस्थिति बदली थी और पाठक ने व्यक्तिगत ढंग से सोचना छोड़ दिया था, उसका चिन्तन प्रौढ़ हो गया था और वह सामाजिक समस्याओं का हल सामाजिक ढंग से चाहने लगा। यही कारण था कि ऐसे साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रति पाठक की अरुचि बढ़ती गई। सन् १९५१-५२ के बाद जैसा कि हिन्दी में साहित्यिक गतिरोध महसूस किया गया और उस पर बहसें हुई, वैसे ही उर्दू में भी उसे बड़ी शिद्दत से महसूस किया गया। अलीगढ़, लखनऊ, बम्बई और दिल्ली के उर्दू लेखकों की इस विषय पर बहसें हुई, जो साहित्यिक पत्रों में प्रकाशित होती रहीं।

इन बहसों में बहुतों ने गतिरोध को माना और बहुतों ने कहा कि गतिरोध तो नहीं है, लिखा तो बहुत कुछ जा रहा है पर जो कहानियाँ इस समय लिखी जा रही हैं, वे अधिकांश छिछली हैं और उनका साहित्यिक स्तर ऊँचा नहीं है।

यह एक हकीकत है कि विभाजन के बाद पाकिस्तान में मानव द्वेष, निराशावाद, पलायनवाद और प्रभाववाद अधिक बढ़ा है। शौकत सदीकी की 'काली बला', अशफाक अहमद की 'गातो' और मिर्जा अकमल बेग की 'जानी दरवाज़ा खोलो' और दूसरे नए और पुराने लेखकों की कहानियाँ इस बात का प्रमाण हैं। हाँ, अहमद नदीम कासिमी ने 'गंडासा' आदि कुछ कहानियाँ अच्छी लिखी हैं। उसने अपनी पुरानी प्रवृत्तियों से पिंड छुड़ाया है और उसकी कई कहानियों में सामाजिक चेतना का विकास हुआ है।

हिन्दुस्तान में आजादी के बाद उर्दू में रज़िया सज्जाद ज़हीर, जेलानी बानो, सत्यपाल आनंद, कलाम हैदरी, गयास अहमद, और बलवन्त सिंह आदि कई नए कहानीकार पैदा हुए हैं। लेकिन इनमें अधिक सफल वही हो सके हैं, जिन्होंने जीते-जागते, जाने-पहचाने पात्रों द्वारा हमारे समाज के यथार्थ जीवन को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। इस सिलसिले में रज़िया सज्जाद ज़हीर की कहानियाँ काफ़ी सफल हुई हैं। सत्यपाल आनन्द उर्दू और हिन्दी दोनों में लिखता है। पहले वह भी साहित्यिक नारे बाज़ी से प्रभावित था पर इधर कुछ सालों में उसने अपने आपको बदला है और अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर 'कीड़ू' और 'बातों का व्यापारी' आदि कुछ सफल कहानियाँ लिखी हैं। कलाम हैदरी का एक कहानी संग्रह 'बेनाम कलियाँ' के नाम से प्रकाशित हुआ है। उसके विषय सामाजिक और स्वस्थ हैं, लेकिन उसे कहानी के कला पक्ष पर अधिक ध्यान देने की जरूरत है।

इस बीच में विषय वस्तु और कला दोनों की दृष्टि से जिसने सफल कहानियाँ सब से अधिक लिखीं, वह गयास अहमद गद्दी है। वह झरिया में रहता है। वह खुद मज़दूर है। मज़दूरों के जीवन को उसने निकट से देखा है और कहानियों में इस जीवन का सहानुभूतिपूर्ण सजीव चित्रण किया है। हाल ही में उसकी एक नई तवील कहानी 'बूढ़ा अंकल' 'शाहशह' में प्रकाशित हुई है जो वाकई एक सफल कहानी है।

पुराने लेखकों में अली अब्बास हुसैनी, हयातुल्ला अंसारी और सुहेल अजीमाबादी ने हमेशा हमारे सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर सफल और गम्भीर कहानियाँ लिखी हैं। जब से सामयिक आन्दोलनों और घटनाओं पर लिखने का मर्ज़ दूर हुआ है, पाठकों और आलोचकों का ध्यान फिर से उर्दू कहानी की ओर आकर्षित हुआ है। सुहेल की 'बीमार' और हयातुल्ला अंसारी की 'शिकस्ता कंगूरे' सफल कहानियाँ हैं। इन पिछले वर्षों में कृष्णचन्द्र ने भी कुछ बहुत अच्छी कहानियाँ लिखी हैं, जैसे 'हवा के बेटे।'

राजेन्द्रसिंह बेदी का लिखना छूट ही गया है और उपेन्द्रनाथ अश्क एक दम हिन्दी के हो गए हैं। विभाजन के बाद उर्दू लेखक की सबसे बड़ी समस्या प्रकाशन है। लेखक की कृति जब तक प्रकाशित न हो, कोई नई चीज़ लिखने को उसका मन नहीं चाहता। लेखक अपनी कहानी को न सिर्फ किसी पत्र-पत्रिका में छपा देखना चाहता है, वह अपनी कहानियों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित भी देखना चाहता है। यह स्वाभाविक है। पर विभाजन के बाद हिन्दुस्तान में उर्दू के कई साहित्यिक पत्र निकले, लेकिन थोड़े-थोड़े समय बाद बन्द हो गए। इस समय जो गिन चुने अच्छे उर्दू पत्र निकल रहे हैं, उनमें से अधिकांश लेखकों को मुआवज़ा देने में असमर्थ हैं। इसलिए उनका साहित्यिक स्तर ऊँचा नहीं हो पाता। नए लेखकों की तो बात ही जाने दीजिए, पुराने लेखकों की भी अपनी पुस्तकों के प्रकाशक नहीं मिलते।

यह बात उर्दू कहानी के विकास में बहुत रुकावट है। लेकिन अब लोगों की धारणा यह है कि कहानी का युग बीत गया और अब उपन्यास का युग है। इसलिए कुछ लेखक कहानी लिखना छोड़ कर उपन्यास लिखने लगे हैं। लेकिन इधर कोई विशेष अच्छा उपन्यास भी नहीं लिखा गया। मेरा अपना खयाल है कि अगर छपने का प्रबन्ध हो जाए और अगर लेखक हमारे समाज की नई शक्तियों को समझ कर जन-जीवन का कलात्मक ढंग से यथार्थ चित्रण करें, तो कहानी और उपन्यास दोनों आगे बढ़ेंगे और दोनों पसन्द किए जाएँगे।

बरखा गीत

कमला चौधरी

बदरिया भरी-भरी मंडराय,
विकल मन नैनन नीर बहाय।

रैन अंधेरी चातक आकुल,
मौन चकोरी चकई व्याकुल,
बिजुरिया कौंध-कौंध बिलभाय
बदरिया भरी-भरी मंडराय।

चमक चौंक जुगनू कुछ हेरै
चिंहुक-चिंहुक के दादुर टेरै
पपिहरा पिया-पिया चिल्लाय
बदरिया भरी-भरी मंडराय।

विकल समीरन खोजत डोलै
भेद भरा झींगुर कुछ बोलै
कुयलिया रह-रह हूक उठाय
बदरिया भरी-भरी मंडराय।

दीप जरै बाती तन जारे
शलभ दीप पर तन मन बारे
गगरिया मन की छलकी जाय
बदरिया भरी-भरी मंडराय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमाऊं के संस्कार-गीत

पूरनचन्द्र जोशी

उत्तर प्रदेश के तीन पहाड़ी जिले—अल्मोड़ा, नैनीताल और गढ़वाल—कुमाऊं कहलाते हैं। प्रथम दो जिलों के लोगों की बोली कुमाऊंनी और गढ़वाल के वासियों की बोली गढ़वाली कहलाती है। इस लेख में संस्कार गीतों की जो अल्मोड़ा, नैनीताल में प्रचलित हैं विवेचना की जा रही है।

ये गीत अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। इनकी पहली विशेषता यह है कि इन्हें केवल ब्राह्मण परिवारों की स्त्रियां मांगलिक अवसरों पर गाती हैं। कुमाऊं लोग-गीतों और नृत्यों के लिए प्रसिद्ध है। लेकिन इन गीत और नृत्यों में साधारणतः ब्राह्मण लोग शामिल ही नहीं होते बल्कि ये इन्हें निम्न वर्णों की ही संस्कृति मानते आए हैं। ब्राह्मणों के अलावा और वर्णों के लोगों में ऐसे गीत जो केवल मांगलिक अवसरों पर ही गाए जाते हों, अलग से नहीं पाए जाते। इन अवसरों पर भी लोक-गीत नृत्यों का ही प्रचलन है।

इसके विपरीत ब्राह्मणों की संस्कृति सोलह आना शास्त्रीय संस्कृति रही है। संस्कारोत्सवों पर भी वैदिक-मन्त्रोच्चार के अलावा स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले संस्कार गीतों पर भी शास्त्रीय-संस्कृति की पूरी छाप है। गीतों में जिनकी स्तुति और वन्दना होती है वे हिन्दू देवी, देवता हैं। इसके अतिरिक्त इनमें कुमाऊंनी भाषा का पुट और छाप होते हुए भी गीतों के भाव और भाषा दोनों से इस बात का स्पष्ट संकेत-सा मिलता है कि शायद इन गीतों का आयात बाहर से हुआ है और ये धीरे-धीरे नये सांचे में ढल गए हैं।

ये गीत भारत में परम्परागत, सामाजिक जीवन के दो मूल स्तम्भों, सामूहिक परिवार प्रथा और ग्राम-समाज की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं।

कुछ चुने हुए संस्कार-गीतों के अनुवाद नीचे दिए जा रहे हैं:

'शखुनाखर' प्रत्येक मांगलिक अवसर पर, विशेष कर पुत्र-जन्म पर गाया जाता है:

शुभ घड़ी आई है, शगुन के गीत गाओ
आज सुन्दर समारोह है
सब नर नारी बहुमूल्य रंग-बिरंगे परिधान पहने हैं
उनके हाथों में कमल के फूल हैं
रामचन्द्र और लक्ष्मण के जन्म की यह घड़ी सदा अमर रहे
बहुमूल्य वस्त्राभरणों में सीता आदि बहूरानियां
शोभायमान हैं
मूल्यवान कमल पुष्प उनके हाथों की शोभा बढ़ा रहा है
मानो रिद्धि-सिद्धि ही साकार धरती पर अवतरित हुई हैं
ये बहुएं पुत्रवती हों और नवजात शिशु अमर हों

पुत्र-जन्म, विवाह, यज्ञोपवीत आदि शुभ अवसरों पर सन्ध्या काल में दिया बालने का गीत गाया जाता है:

सांझ हो गई, सांझ की माया चली आ रही है
आस-पास झूलते हैं मोती के हार बीच में गंगा
लक्ष्मी जी पूछती हैं, हे स्वामी नारायण, आज किस
घर की यश-वृद्धि हुई है और कहां आनन्द-बधाई का मंगल-गान ?
ये राम-लक्ष्मण के घर हैं जहां सांझ के दीपक
जगमगा रहे हैं
सीता देवी आदि बहू-रानियां नन्हें प्यारे शिशुओं को जन्म देंगी।
इसीलिए अगर चन्दन के दीपक सजे हैं और सजी
हैं कपूर-बाती।
आज की रात्रि की शोभा इनके घर में समाई है
ऐ दीपक! आज की सुलक्षणा रात्रि को सम्पूर्ण
रात्रि जलकर इनके घर को अपने प्रकाश से जगमगा दो।
सांझ के दीपक जल रहे हैं, इन्द्र-दरबार की
अप्सराओं के समान रूपवान बहुएं अपनी कोख
से शुभ लक्षणों वाली सन्तान को जन्म देंगी।
इन्हें पुत्र धन की प्राप्ति हो
आज की सुलक्षणा रात्रि दीपों की माल से
देदीप्यमान हो।

'निमन्त्रण-गीत' भी सभी खुशी के अवसरों का गीत है:

आज बधाई के दिन मैं सभी को निमन्त्रण देती हूं
प्रातःकाल का निमन्त्रण मैं सूरज को देती हूं
वही किरणों का राजा है
सांझ का निमन्त्रण मैं चन्द्रमा को देती हूं
चांदनी पर उसी का अधिकार है
आज बधाई का दिन है, मैं सभी को आमन्त्रित करती हूं
शंख घण्टे को निमन्त्रित करती हूं, उनके घोष से मेरा घर गूंज उठेगा
ब्रह्मा और विष्णु को आमन्त्रित करती हूं
ब्रह्मा और विष्णु सृष्टि का सृजन और संवर्धन करते हैं
ज्योतिषी को निमन्त्रित करती हूं, वह शुभ लग्न स्थिर करेगा।
गणपति को निमन्त्रित करती हूं, वे ही सिद्धि के दाता हैं
सुहागिनी नारियों को आज मेरा निमन्त्रण है
वह मंगल-गीत गाएंगी
ब्राह्मणों को निमन्त्रित करती हूं, वह वेद-पाठ करेंगे
कुमारियों को निमन्त्रित करती हूं, उन्हें ही कलश
भरना शोभा देता है
मालिन को निमन्त्रित करती हूं, मालिन
फूल की डालियां भर लाएगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झूरिया को बुलाती हूं वह हरी दूब ले आएगा
तमोली को बुलाती हूं वह पान के बीड़े
ले कर आए
अहीरिन को निमन्त्रित करती हूं वह दूध के भरे पात्र लेकर
आए।

पुत्र-जन्म पर गाए जाने वाले गीतों के नमूने ये हैं :

सारे परिवार में आज मैं चन्दन छिड़कूंगी
आज चतुर्भुज पुत्र का जन्म हुआ है
किसी की बनी है छुरी और किसकी धारा ?
सोने की है छुरी और रेशम की छुरी से अपने
लाल की नाल बांधूंगी
दूर दिशा से सास और दाई को बुलाओ
पुत्र को जनाने में वही सिद्धहस्त हैं
दूर दिशा से जेठानी को बुलाओ
हरेला पकाने में वही निपुण हैं
दूर दिशा से ससुर जी को बुलाओ
पूजा कराना उन्हीं को शोभा देता है
दूर दिशा से जेठजी को बुलाओ
अगड़ गड़ाने में वही निपुण हैं
दूर दिशा से दवरानी को बुलाओ
बच्चे की सेवा में वही कुशल है
दूर दिशा से देवर को बुलाओ
बच्चे को रिझाने में वही निपुण हैं
दूर दिशा से ननद को बुलाओ
स्वस्तिक और जीवन मातृका वही लिखेंगी
सखियों को निमन्त्रित करो
वे मंगल-गान गाएंगी
नाइन से कहो वह नगर-निवासियों को निमन्त्रित करे ।
भाटों को बुलाओ वे गोत्र का बखान करें
दूर दिशा से ब्राह्मणों को बुलाओ
वेद-पाठ करने के लिए वही भले हैं।

कौशल्या रानी की कोख धन्य है
सुमित्रा रानी की कोख राज-सुहाग भरी है
राम-लक्ष्मण से पुत्रों को उन्होंने जन्म दिया है
सब के मन में आनन्द और सन्तोष है
रानी सिंहासन पर बैठी हैं
उनकी मांग मुक्ताओं से भरी है
सुवर्ण के आभूषणों से उनका शृंगार हुआ है
उनकी बांह चूड़ियों से भरी हैं।
उन्होंने सोलहों शृंगार किए हैं
रानी ने पहना है दक्षिण का बहुमूल्य वस्त्र
कौशल्या रानी की कोख धन्य है
सुमित्रा रानी की कोख धन्य है
राम-लक्ष्मण से पुत्रों को उन्होंने जन्म दिया है ।

शादी के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों में से एक प्रचलित गीत नीचे दिया जा रहा है जिस में शादी के पहले के सभी संस्कार गिनाए गए हैं :

भादों की अन्धियारी अर्धरात्रि में रोहिणी नक्षत्र
बुधवार को श्याम वर्ण नन्दलाल ने जन्म लिया है।
नन्दलाल प्रकट हुए कि चारों ओर शुक्ल पक्ष की सी
उजियारी फैल गई।
नन्दलाल छै दिन के हुए तो छठी मनाई जा रही है
जब श्याम नौ दिन के हुए तो नौला मनाया जा रहा है
जब ग्यारह दिन के हुए तो पिता ने उनका
नामकरण किया और मां ने उन्हें पिंगली पहनाई
जब श्याम बाईस दिन के हुए तो मां ने बैसोल संस्कार किया।
६ मास के हुए तो उनका अन्नप्राशन हुआ है
साल भर के हुए तो उनका जन्मोत्सव मनाया जा रहा है
जब श्याम शाहजादे तीन वर्ष के हुए तो उनका
चूड़ाकर्म संस्कार हुआ
जब पांच वर्ष के हुए तो उनका अक्षरारम्भ कराया ।
पिता लेखनी थमाकर लिखा रहे हैं
नौ वर्ष के हुए तो पिता ने यज्ञोपवीत का आयोजन किया है
बारह वर्ष के हुए तो उनका विवाह निश्चित किया गया है
किस पण्डित का लाडला है जो दूल्हा बन कर आया है ?
पण्डित दशरथ का लाडला शहजादा है ।
किस पण्डित की लाड़िली शहजादी है जो वधू बनेगी ?
सज्जन जनक की कन्या है जो वधू बनेगी
ऐ भाई । ऐसे समारोह में आनन्द मनाओ
ऐ बहिन ! तुम आरती उतारो ।

●

महात्मा गांधी--(पृष्ठ ८ का शेषांश)

पृथु राजा ने रत्नों का संग्रह करने के लिए पृथ्वी का दोहन किया था। जो श्रेष्ठ महापुरुष हैं वे सभी धर्मों, इतिहासों और नीतियों से पृथ्वी के श्रेष्ठ दान को ग्रहण करते हैं।

ईसा-वाणी की श्रेष्ठ नीति कहती है कि जो नम्र हैं वे जयी होते हैं, और ईसाई जाति कहती है—निष्ठुर औद्धत्य के द्वारा विजय प्राप्त की जा सकती है। इनमें से कौन विजयी होगा यह अभी ठीक मालूम नहीं हुआ किन्तु उदाहरण के तौर पर देखने में आता है कि औद्धत्य के फलस्वरूप यूरोप में आज कैसी महामारी नहीं फैलती रही ? महात्मा ने नम्र अहिंसा-नीति को अपनाया है, और चारों ओर उनकी जय फैलती जा रही है। उन्होंने जिस नीति को अपने समस्त जीवन द्वारा प्रमाणित किया है, पूरे तौर पर उसका पालन कर सकें या न कर सकें, उस नीति को हमें स्वीकार करना ही होगा। हमारे अन्तर में और आचरण में रिपु और पाप का संग्राम चलता है, इसके बावजूद भी सत्यव्रत महात्मा से पुण्य तपस्या की दीक्षा हमें लेनी होगी। आज का दिन स्मरणीय दिन है, कारण सर्वसाधारण के मन में राष्ट्र-मुक्ति की दीक्षा और सत्य की दीक्षा एक हो गई है।

अनुवादक—हरिशंकर शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुण्य की तह में

यशपाल

तिवारी जी होमियोपैथ डाक्टर हैं। हम दोनों लखनऊ में बरसों से पड़ोसी हैं। सैकड़ों बार छोटी-मोटी बात में या आड़े समय एक-दूसरे के काम आए हैं। हमारे और उनके परिवार में भी आना-जाना रहा है। पर बुरा हो इस चुनाव का। पिछले चुनाव में डाक्टर महासभा का समर्थन कर रहे थे और हम कांग्रेस का। इस मतभेद से मन कुछ फट गए थे। हमारा ख्याल था कि वह साम्प्रदायिकता की आड़ लेकर जनप्रिय बनना चाहते हैं। उनका ख्याल था कि हम सरकार के बड़े सहायक बनकर अदालत और अमले में अपना प्रभाव बढ़ा लेना चाहते हैं। नीयतों पर सन्देह हो गया था, पर जानकी के मामले में फिर सहयोग हो गया।

जानकी हमारे मुहल्ले के कामता की विधवा है। बेचारी के दो छोटे-छोटे लड़के हैं, परन्तु निर्वाह का साधन कुछ नहीं है। हैजे से लड़कों के बाप की मृत्यु हो जाने पर कोठरी का किराया देना भी कठिन हो गया था।

मकान मालिक चोखेलाल किराया उगाहने के लिए बेचारी विधवा जानकी का मालमत्ता नीलाम करवा लेना चाहता था। असली मतलब वही था जो साधारणतः मकान मालिकों का होता है। कामता ने कई बरस पहले तीन रुपया माहवार पर कोठरी ली थी। चोखेलाल अब उसके दस रुपया माहवार पा सकता था। डाक्टर तिवारी ने और हमने भी बीच-बचाव किया। इसी से हम दोनों फिर समीप आ गए।

कामता हरदोई शहर का था। आदमी सीधा था। अपने तिकड़मी और मुंहजोर छोटे भाई से आतंकित होकर घर की दूकान और मकान का हिस्सा छोड़कर लखनऊ आ गया था। पर बेचारी जानकी के भाग्य में सुख जो नहीं बदा था। जानकी बच्चों को लेकर अपने हरदोई के मकान में रहने के लिए गई तो उसके देवर ने बसने नहीं दिया। लौट कर उसने अपनी विपदा सुनाई। उसकी ओर से हरदोई की जिला अदालत में दरखास्त दी गई। तारीख के दिन हरदोई जाना था। गवाहों का प्रबन्ध भी हमें ही करना था। हरदोई में अपना परिचय न था। प्रश्न था, वहां ठहरेंगे कहां?

डाक्टर तिवारी ने कहा—"ठहरने के लिए जगह की फिक्र मत करो। हरदोई डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन बृजनन्दन हमारे सहपाठी थे। उनका नाम तो सुना होगा। बृजनन्दन मामूली आदमी नहीं हैं। अखबारों में उनकी कितनी चर्चा छपी है, तुम्हें मालूम ही नहीं?"

"ओ भैया!" डाक्टर तिवारी ने अपने बड़े पुत्र को पुकारा और पिछले सप्ताह का 'सद्धर्म', महासभा का प्रान्तीय पत्र, ढूंढ़ कर देने के लिए कहा और बताने लगे, "बृजनन्दन बहुत दबंग आदमी है भाई! उसने डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन के अधिकार से आज्ञा दे दी है कि गौओं को कांजी-हौज में बन्द नहीं किया जा सकता। समझे?"

डाक्टर ने उत्साह के स्वर में कहा—"भाई, हम तो ऐसे आदमी को मानते हैं। गाय को माता कहते हैं तो उसके लिए इतना आदर तो होना ही चाहिए। गाय हमारा पालन करती है, जन्म से मृत्यु तक। हमारा देश कृषि-प्रधान है और गौ-प्रधान है। हमारा देश तो गाय की छाया में ही पलता है, इसीलिए हमारे यहां गौ के गोबर तक का महात्म्य माना गया। हमारे धर्म-शास्त्र में सभी धर्म-कार्य गौ के गोबर से पवित्र किए स्थान में सम्पन्न करने की विधि विहित है। शास्त्र का तो कहना है कि गाय के खुर में सब तीर्थ समाये हैं।"

डाक्टर तिवारी चिकित्सा के सम्बन्ध में गाय के गोबर की वैज्ञानिक शक्तियों के विषय में बहुत कुछ बताते रहे। मैं यही सोच रहा था, जिस किसान का खेत गाय चर जाएगी, उसे गोबर की वैज्ञानिक शक्तियों से क्या सन्तोष होगा और यदि खेत चरने के अपराध में गधे को कांजी-हौज में बन्द करना, या उसके मालिक को दण्ड दिया जाना न्याय है, तो गाय के भी वही अपराध करने पर गाय को या गाय के मालिक को न्याय से दण्ड क्यों नहीं दिया जाना चाहिए?

पर डाक्टर से ऐसा तर्क करके फिर मनमुटाव पैदा कर लेना उचित नहीं था। धर्म के क्षेत्र में साधारण न्याय और तर्क के लिए स्थान नहीं है। धर्म के क्षेत्र में ब्राह्मण को भोजन कराने से पुण्य होता है, हमें या अन्य वर्णों के लोगों को भोजन कराने से वैसा पुण्य नहीं होता। जब धर्म ब्राह्मण और अन्य वर्गों में मनुष्य-मनुष्य की समता स्वीकार नहीं करता, तो गाय और गधे की समता कैसे स्वीकार कर लेगा? और तिवारी जी ही क्यों समता के ऐसे तर्क को स्वीकार कर लेंगे?

तिवारी जी का पुत्र 'सद्धर्म' का पुराना अंक खोज लाया। पत्र के पहले ही पृष्ठ पर ठाकुर बृजनन्दनसिंह की फोटो का ब्लाक छपा था। नीचे समाचार और नोट ऊपर, शीर्षक था—"गौ रक्षा के लिए हरदोई डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन का सराहनीय और अनुकरणीय कदम!" संक्षिप्त समाचार वही था जो डाक्टर तिवारी ने बताया था कि ठाकुर बृजनन्दनसिंह ने आज्ञा दे दी है कि जिले के कांजी-हौजों में गौओं को बन्द न किया जाए। गौओं के मालिक और किसान गौओं के विषय में विशेष ध्यान रखें। उन्हें आवारा न फिरने दें, आदि-आदि। डाक्टर तिवारी ने यह भी आश्वासन दिया कि बृजनन्दनसिंह न्याय-प्रिय और दबंग आदमी हैं। उनके प्रभाव से अदालत में जानकी की सहायता के लिए गवाह जुटाने में भी सहायता मिलेगी।

अदालत में जानकी के मुकदमे के लिए निश्चित तारीख से पहली संध्या को ही हम हरदोई पहुंचे कि मामले को अच्छी तरह तैयार किया जा सके। स्टेशन से चेयरमैन साहब के मकान पर पहुंचे तो सूर्य की अन्तिम किरणें अभी शेष थीं। डाक्टर तिवारी ने एक पोस्टकार्ड लिख दिया था। चेयरमैन साहब हमारी प्रतीक्षा में ही थे। ड्योढ़ी पर आकर मिले और भीतर लिवा ले गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकान के पिछवाड़े फुलवाड़ी में मोढ़े पड़े हुए थे। ठाकुर बृजनन्दनसिंह तीन-चार आदमियों के साथ बैठे थे। यह देहाती सज्जन किसी मामले के न्याय-पक्ष में चेयरमैन साहब की सहायता के लिए बहुत अनुनय के स्वर में प्रार्थना कर रहे थे। समीप पीपल के पेड़ के नीचे चबूतरे पर एक कहार कमर को लाल अंगौछे से कसे सिल पर भांग पीस रहा था।

देहाती सज्जनों के चले जाने के बाद कहार ने चांदी के दो गिलास और बरफ मिली दूधिया भांग का लोटा चेयरमैन साहब के सामने पेश किए। ठाकुर साहब न पहला गिलास हमारी ओर ही बढ़ाया। हम बचपन में, अपने सम्बन्ध की भद्र स्त्री को धोखे से खिला दी गई भांग के कारण, ऐसी दुरवस्था देख चुके हैं कि वह स्मृति अमिट हो गई है। भांग के नशे का आतंक स्थायी रूप से हमारे मन पर छा गया है। हमने बहुत विनय से क्षमा चाही।

ठाकुर साहब ने लखनऊ से आने वाले अपने मित्र के मित्र अतिथि के लिए बहुत उत्साह से गुलाब और बादाम डलवा कर भांग छनवाई थी। निराशा से बोले—"अरे, बिलकुल ही नहीं लीजिएगा? यह तो शिव जी की बूटी है। आपके लिए हल्की ही छनवाई है।"

ठाकुर साहब ने एक और गिलास दूध मंगवा कर, बरफ मिले दूध में कुछ भांग मिलवाकर पीने का आग्रह किया। यह आग्रह स्वीकार करना ही पड़ा।

ठाकुर साहब ने स्वयं एक गोली भांग की निगल कर गहरी छनी भांग के दो गिलास पी लिए।

ठाकुर साहब की संतष्ट मुद्रा से उचित अवसर का अनुमान कर हमने जानकी के प्रति उसके देवर के अन्याय की बात सुना डाली और ठाकुर साहब के सम्बन्ध में और कोई दूसरी बात मालूम न होने के कारण हिचकते-हिचकते जिले में गौओं के कांजी-हौज़ों के आतंक से मुक्त कर देने के साहस की चर्चा करने लगे।

ठाकुर साहब की आंखें लाल हो चुकी थीं और चेहरे पर कुछ भारीपन आ गया था। सुविधा के लिए मोढ़े पर खिसक कर बोले—"अरे वकील साहब, उस मामले की बात क्या कह रहे हैं? आप शहरों में रहने वाल गांव की हालत क्या जानें? बोर्ड की मीटिंग में लोगों ने बहुत विरोध किया। वकील साहब, लोग कितने कमीने हो गए हैं? धर्म तो किसी के मन में रह ही नहीं गया। अंग्रेजी राज में कसाई देहात से सब बूढ़े और खांखर ढोरों को छावनियों में हांक ले जाते थे। अब बेकाम ढोर लोगों के लिए एक समस्या बन गए हैं। उन्हें दरवाजे पर बांधकर कोई खिलाना नहीं चाहता। आप ही बताइए, कोई खिला भी कैसे सकता है? चारा ही कहां मिलता है। ढेड़-चमार को बेदाम ही दे डालो तो वह भी हांककर ले जाने के लिए तैयार नहीं। ढोर के मर जाने से पहले साल-छः महीने उसे कौन खिलाए? भगवान समझे! सालों ने क्या तरकीब निकाली? अपनी भूखी, बूढ़ी, गैया को दरवाजे से हांक देते थे। भूखी गैया किसी के खेत में ही तो जाएगी। गैया जिस के खेत चरेगी, वह एक बार गम खायगा, दो बार खायगा। उसके बाद लोग बूढ़ी गौओं को कांजी-हौज़ों में पहुंचाने लगे। पहले गोबध पर रोक नहीं थी। लोग बूढ़ी गाय को भी अठन्नी-रुपया जुर्माना देकर ले ही जाते थे कि पन्द्रह में नहीं दस में बेच देंगे। अब बूढ़ी गाय ले कौन? सो गैया कांजी-हौज़ में पन्द्रह दिन से खड़ी है, लेकिन छुड़ाने की फिक्र किसी को नहीं। मालिक ने तो समझ लिया, गले का पाप कटा?

"कांजी-हौज़ में चौकीदार गैया को क्या खिलाएगा, सो तो आप जानते हैं। पर बाड़े में जानवर है तो उसके चारे का बिल तो बनेगा ही। आप समझते हैं सरकारी हिसाब तो हिसाब!.....आप जानते हैं, पन्द्रह दिन कोई छुड़ाने नहीं आए तो गैया को नीलाम कर उसके चारे का खर्च चुका लेने का हुकम है! बूढ़ी, पन्द्रह दिन की भूखी गैया को नीलाम करो तो कोई अठन्नी की बोली देने के लिए तैयार नहीं होता। यह रह गई है हममें, इस धर्म प्राण देश में गौ माता की इज्ज़त और कदर!" ठाकुर साहब उत्तेजना से हाथ उठाकर बोले और कहते गए—

"जितनी बार गैया कांजी-हौज़ में आए, सरकारी हिसाब में नौ-दस रुपये का घाटा! साहब, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड जिले भर की बूढ़ी गौओं को कहां तक पाले! आप जानते हैं, गैया तो एक दिन बूढ़ी होगी ही। फिर आप जानते हैं कि किसान की औकात क्या? कितनी गैया पालेगा? बूढ़े गाय-बैल थान पर रहेंगे, तो उसके जवान गाय-बैल भी आधे पेट रहेंगे। जवान गैया भी भूखी रहेगी तो क्या दूध देगी?

"वकील साहब, लोगों के मन में धर्म का तो नाम भी नहीं रह गया। बेईमान कहीं के! आज तो लोग देहात में गाय के नाम से डरते हैं। गाय तो कोई खरीदना ही नहीं चाहता। देहात में सेर भर दूध की बकरी के दाम साठ हैं, तो गाय के तीस रुपये! यह रह गई है गाय की इज्जत! क्या कहें हम इन लोगों को? बकरी ने तीन-चार बरस दूध दिया, दूध से उतर जाए तो तब भी कोई चमार या मुसलमान खाल और मांस के लिए उसे खरीद ही लेगा। बूढ़ी गैया का क्या हो? लोगों में धर्म तो रह नहीं गया। हम ने कहा सालो, तुम्हें हम ठीक करेंगे!... हमने आर्डर कर दिया कि आइन्दा, कांजी-हौज़ में गाय ली ही नहीं जाएगी।"

चयरमैन साहब मोढ़े पर कुछ और खिसक गए। आंखों में भांग का प्रभाव भी कुछ और अधिक दिखाई दे रहा था। लोगों में धर्म के ह्रास के प्रति उनका क्रोध और गौ-रक्षा का उत्साह बढ़ता जा रहा था। वे गाली-गलौज़ पर आ गए—"सालो, धरती तुम्हारे ही लिए है? क्या वह गौमाता के लिए नहीं है? धरती माता पर गौमाता विचरेंगी। सालो! तुम में धर्म नहीं रहा तो तुम मर जाओ!"

हमने हल्की ही बूटी ली थी, परन्तु उसका भी तो कुछ प्रभाव था ही। हमें दिखाई देने लगा कि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का चुनाव हो रहा है। पोलिंग अफसर सब सांड़ हैं और वोट देने क लिए सब गाय-बैल चले आ रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेखव और मास्को आर्ट थियेटर

रामकुमार

इन्हीं गरमियों में पेरिस में अन्तर्राष्ट्रीय नाटक समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। सेन नदी के किनारे बने हुए 'सारा बर्नहार' थियेटर के सामने नाटक प्रेमियों की टोलियां चहलकदमी करती दिखाई देती रहीं। दिन भर हाल के टिकट घर के सामने एक लम्बी-सी कतार बनी दिखाई देती रही और शाम को पेरिस निवासी सज-धज कर नाटक समारोह के प्रोग्राम हाथ में लिए नाटकों के विषय में बहस करते हुए नजर आते रहे।

अमेरिका, चीन, जापान, स्वीडन, कनाडा, आस्ट्रिया आदि (लगभग २२ देश) के बाद रूस के मास्को आर्ट थियेटर ने चेखव के तीन नाटक—तीन बहनें, अंकल वानिया, चेरी आर्चर्ड—प्रस्तुत किए। पेरिस आने से पूर्व ये नाटक लन्दन में दिखाए गए थे और सभी नाटक-आलोचकों ने इनकी जी खोल कर प्रशंसा की थी। लन्दन के पत्रों में मास्को आर्ट थियेटर की कला पर कितने ही लेख मुझे देखने को मिले और उनके स्वाभाविक अभिनय, चेखव की भावनाओं का सही-सही प्रदर्शन और नाटकों के वातावरण का चित्रण—इन सबके विषय में बहुत कुछ लिखा गया था। पेरिस में लोग बड़ी उत्सुकता से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

मास्को आर्ट थियेटर तीसरी बार पेरिस में अपनी कला का प्रदर्शन करने आया था। सबसे पहली बार १९२२ में और दूसरी बार पिछले महायुद्ध से कुछ ही दिन पहले। १९२२ म विश्व-विख्यात नाटक कलाकार स्तानिसलास्की मास्को आर्ट थियेटर के साथ आए थे और पेरिस के साथ यह उनका प्रथम परिचय था। उनके अभिनय को देख कर परिस भर दंग रह गया था। स्तानिसलास्की ने अपनी आत्मकथा म लिखा है—"चेखव के नाटकों में एक ही पात्र का अभिनय मुझे सकड़ों बार करना पड़ा है परन्तु हर बार मुझे ऐसा लगा जसे नई भावनाएं मर भीतर जागी हों और उस नाटक की नई गहराइयों और छिप हुए रहस्यों का पता चला हो।"

इस वर्ष मास्को आर्ट थियेटर की ६० वीं वर्षगांठ भी है और सोवियत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच समारोह में चेखव के नाटकों को भज कर पेरिस की जनता की सहानुभूति और प्रशंसा पाई है।

पेरिस की इस वर्ष की गर्मियों में सिनेमा और रंगमंच की दुनिया में जो बड़े-बड़े समारोह हुए, उन में सोवियत कला को पहली बार आलोचकों द्वारा भरपूर प्रशंसा मिली। बालशाय थियेटर ने दस दिनों तक आपेरा हाउस में 'बेले' के अति सुन्दर प्रदर्शन किए और गालिया उलानोवा, माया प्लास्तिसकाया और ओल्गा लेपेशिस्काया आदि विश्व विख्यात बेले नर्त्तकियों की कला को लोगों ने पहली बार देखा। फिर 'कान' के अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह में इस वर्ष पहली बार सोवियत फिल्म 'जब पक्षी उड़ जाते हैं' को प्रथम पुरस्कार मिला। इस फिल्म में टेकनीक की दृष्टि से अधिक प्रयोग शायद नहीं किए गए, परन्तु मानवीय

'थ्री सिस्टर्स' के अभिनय का एक दृश्य

अनुभूति का इतना सरल और सशक्त प्रदर्शन इसमें है कि सब राजनीतिक दीवारों को फांद कर जजों ने इस सर्वश्रेष्ठ घोषित किया।

चेखव क नाम के साथ मास्को आर्ट थियेटर का नाम इस तरह जुड़ा हुआ है कि दोनों को अलग-अलग रूप में देखना सम्भव नहीं है। इन नाटकों को खेलते समय मास्को आर्ट थियेटर के अभिनेता चेखव द्वारा रची हुई दुनिया में इतने खो जाते हैं कि दर्शक कभी-कभी यह भी भूल जाता है कि वह एक लेखक द्वारा लिखे गए नाटक को मंच पर देख रहा है और उसक अभिनेता केवल तीन घण्टों के लिए उसके पात्रों की भूमिका में उतरत हैं। पहली बार मैंन अनुभव किया कि चेखव के नाटकों को अंग्रजी म पढ़ने में और उन्हें रूसी भाषा म मंच पर देखने में कितना बड़ा अन्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। रूसी भाषा का एक भी शब्द न समझने पर भी चार-चार घण्टों तक 'सारा बर्नहार' के हाल में बैठे हुए कभी ऊब या थकान महसूस नहीं होती थी। धीरे-धीरे इन तीन-चार घण्टों में इन नाटकों के पात्रों की असीम वेदना, उनकी भावनाओं की गहरी अनुभूति, उनकी हंसी की तहों में छिपा हुआ दुख, मास्को और पीटर्सबुर्ग से दूर किसी गांव के बड़े से मकान की दीवारों के भीतर चेखव की दुनिया की ऊब धीरे-धीरे दर्शकों की नस-नस में इस प्रकार घुसती जाती थी कि उसका आभास तक नहीं होता था परन्तु जब अन्तिम बार परदा गिरने पर जब लोग अपनी कुर्सियों से उठते थे तो अपने हृदय क भीतर एक बड़ा-सा रिक्त स्थान अनायास ही उभर कर उन्हें झिंझोड़ देता था। नाटकों में कभी कोई विस्फोटात्मक घटना न होने पर भी पात्रों के साधारण जीवन का एक-एक क्षण एक बड़ी घटना से अधिक शक्तिशाली बन जाता था।

यदि चेखव से कोई यह कहता कि एक दिन उनके लिखे नाटकों का दुनिया भर में इतना जबरदस्त स्वागत किया जाएगा तो शायद कभी उन्हें विश्वास नहीं होता। उनके जीवन काल में आलोचकों ने उनक नाटकों को निराशावाद की चरम सीमा कहा था। उनके मित्रों को भी सन्देह था कि उनके नाटक मंच पर सफल हो सकेंगे। यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि यद्यपि नाटकों में बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में रूस जैसे पिछड़े हुए सामन्तवादी देश के उन पात्रों की कहानी है जो स्थानीय वातावरण में डूबे हुए हैं, जिन्हें अपने घरों से बाहर की दुनिया में झांकने का कभी अवसर नहीं मिला, जिनकी अपनी समस्याओं में उनके अपने व्यक्तित्व की गहरी छाप है। चेखव में मानवीय भावनाओं को समझने और उन्हें चित्रण करने की ऐसी शक्ति थी कि किसी भी देश का व्यक्ति सहज में उनके पात्रों के हृदय में अपना स्थान पा लेता है।

'तीन बहनें' १९०१ में लिखा गया था। इसे लिखते समय चेखव को कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिसका आभास इस काल में लिखे उनके पात्रों से लगाया जा सकता है। उन्होंने गोर्की को लिखा--"इस नाटक को लिखते समय मुझे बहुत सी मुसीबतें उठानी पड़ीं। जरा सोचो कि इसमें तीन मुख्य अभिनेत्रियां हैं। हर एक का चरित्र दूसरे से अलग है और तीनों एक जनरल की लड़कियां हैं। इसका कथानक

'चैरी आर्चर्ड' के अभिनय का एक दृश्य

'अंकल वान्या' के अभिनय का एक दृश्य

एक छोटे-से शहर में है जहां सैनिकों की भरमार है....." इस नाटक के रिहर्सल के समय चेखव कितनी ही बार स्वयं उपस्थित रहते थे, पात्रों के अभिनय में त्रुटियां निकाल कर उन्हें ठीक करते थे, अभिनेताओं को अपने पात्रों की भावनाओं और उनकी जिन्दगी को समझाते थे। इस नाटक के अन्त में--जब सैनिकों का पड़ाव शहर छोड़ कर चला जाता है--पीड़ा के सागर में डूबते हुए दर्शकों में ओल्गा कहती है, "समय बीत जाएगा और हम हमेशा के लिए मिट जाएंगे। लोग हमें भूल जाएंगे, वे हमारे चेहरों को भूल जाएंगे, हमारी आवाज को भूल जाएंगे और उन्हें यह भी याद नहीं रहेगा कि हम कितनी बहनें थीं, परन्तु हमारी पीड़ा उन लोगों की प्रसन्नता में बदल जाएगी जो हमारे बाद जीवित रहेंगे, खुशी और शांति का साम्राज्य पृथ्वी पर छा जाएगा और लोग उन्हें दुआएं देंगे जो हमारे समय में जीवित थे। और हम जिन्दा रहें, संगीत में खुशी है और ऐसा लगता है कि काश हम जान पाते कि हम क्यों जिन्दा हैं, हम क्यों दुखी हैं। काश कि हम जान पाते....."

'तीन बहनें' के इस अन्तिम प्रश्न चिन्ह का उत्तर चेखव ने अगले नाटक 'चैरी आर्चर्ड' में दिया। पिछले नाटकों की अपेक्षा यह अधिक

(शेष पृष्ठ ४५ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079450

यमुनोत्री, गंगोत्री तथा गोमुख की यात्रा

यशपाल जैन

हिमालय में उत्तराखण्ड के अन्तर्गत चार धाम माने जाते हैं—बदरी, केदार, गंगोत्री और यमुनोत्री। सहस्रों नर-नारी प्रति वर्ष उत्तराखण्ड के इन धामों की यात्रा करते हैं। बदरी, केदार का मार्ग अपेक्षाकृत सरल होने के कारण उधर जाने वाले यात्रियों की संख्या साल में एक लाख के आसपास पहुंच जाती है; लेकिन गंगोत्री, यमुनोत्री का रास्ता कुछ अधिक कठिन है। कहीं-कहीं तो वह बहुत ही ऊबड़-खाबड़ है, साथ ही चढ़ाई उतराई उसमें बहुत है। इसके अतिरिक्त यात्रियों को खाने-पीने तथा ठहरने की भी वे सुविधाएं नहीं मिलतीं, जो बदरी, केदार के मार्ग में मिल जाती हैं। इन सब कारणों से गंगोत्री, यमुनोत्री की यात्रा करने का साहस कम ही लोगों का होता है। वर्ष भर में मुश्किल से दस हजार से भी कम यात्री वहां पहुंच पाते हैं। लोगों की धारणा है कि चारों धाम एक साथ कर लेने चाहिएं, किन्तु बहुत कम यात्री ऐसा कर पाते हैं।

गत मई पास में हम नौ व्यक्तियों की टोली २० मई को प्रातःकाल दिल्ली से बस द्वारा हरिद्वार के लिए रवाना हुई। हरिद्वार उत्तराखण्ड का प्रवेशद्वार है। यात्रा प्रायः वहीं से प्रारम्भ होती है। पहले बदरीनाथ के लिए पीपलकोटी तक और केदारनाथ के लिए रुद्र प्रयाग तक बसें जाती थीं, अब कुछ मील और आगे तक जाने लगी है। इसी प्रकार गंगोत्री–यमुनोत्री जाने वाले यात्री पहले धरासू तक बस से जाते थे, अब यमुनोत्री के यात्रियों के लिए अठारह मील और आगे डंडालगांव तक बस की सुविधा हो गई है।

हमारी टोली हरिद्वार नहीं रुकी। बस बदल कर सीधी ऋषिकेश पहुंची। वहां से बोझियों तथा आगे के लिए बस के टिकट आदि की व्यवस्था करनी थी। इस व्यवस्था के बाद दूसरे दिन सवेरे बस द्वारा हमारी यात्रा प्रारम्भ हुई। चार बोझियों के शामिल हो जाने से अब हमारी टोली १३ सदस्यों की हो गई थी। ऋषिकेश से दस मील भूतपूर्व टिहरी राज्य की राजधानी नरेन्द्र नगर है, जो समुद्र से ४,००० फुट ऊंचा है। नरेन्द्रनगर बड़ा नहीं है, पर वहां से चारों ओर के प्राकृतिक दृश्य बहुत ही सुहावने लगते हैं। थोड़ी देर रुक कर आगे बढ़े और आगराखाल चट्टी पर पहुंचे तो देखा कि समुद्र तल से वह साढ़े पांच हजार फुट की ऊंचाई पर है, चतुर्दिक प्रकृति का साम्राज्य फैला था। चीड़ के सुन्दर वृक्ष, दूर पर्वतों की गोद में धान के सीढ़ीनुमा खेत, कलकल विनोद करते प्रपात! बस के थका और ऊबा देने वाले सफर से विश्रांति पाने के लिए भला इससे बढ़कर और क्या टानिक हो सकता है।

आगराखाल के उपरान्त उतार शुरू हुआ, जो आगे १२ मील बराबर चलता गया, चम्बा पर जाकर थोड़ी देर के लिए रुके। वहां से मसूरी तक के लिए मोटर की सड़क बनाई जा रही है। ३५ मील में १५-१६ मील की सड़क वहां के लोगों के श्रमदान से बनी है। चम्बा-स्थान विकसित हो रहा है। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत वहां अस्पताल,

गोमुख के मार्ग में विश्राम करते हुए लेखक के सहयात्री

हाई स्कूल, ऊन का केन्द्र आदि खोले गए हैं। टिहरी-गढ़वाल के अमर शहीद श्री देव सुमन का जन्म स्थान जोल-गांव वहां से निकट ही है। एक मील के फासले पर मीराबेन का वर्त्तमान आश्रम 'पक्षी कुंज' है।

चम्बा से आगे कई उतार-चढ़ाव आए, मोड़ आए, पर बस अपनी पूरी शक्ति से शोर मचाती हुई आगे बढ़ती गई। जब हम टिहरी के मोड़ पर पहुंचे तो मालूम हुआ कि ऋषिकेश से हम कोई पचास मील दूर आ गए हैं। टिहरी नगर दो मील पर छूट गया था। जहां आगे बढ़ते ही भागीरथी दिखाई देने लगी। नदी की सतह से हमारी बस काफी ऊंचाई पर थी। नीचे देखने में भय मालूम होता था।

बस की कृपा से इधर की चट्टियां उजड़-सी गई हैं। उनमें रौनक नहीं है। चाय-दूध एवं परचूनी की कुछ दुकानें इन चट्टियों को जीवित रखे हुए हैं। छोटी-मोटी ४-५ चट्टियां पार करके शाम को ४–३० बजे धरासू पहुंचे। यह पड़ाव अच्छा खासा है। गंगोत्री, यमुनोत्री दोनों के यात्री वहीं से गुजरते हैं, इसलिए वहां थोड़ी-बहुत चहल-पहल बराबर बनी रहती है। भागीरथी का पाट वहां काफी चौड़ा है और चट्टी उसी के तट पर बसी है। वहां बस को काठ का एक पुल पार करना होता है। अतः उसे खाली कर देना पड़ता है। हम लोग उतर कर नदी पर चले गए, पर अधिक नहीं रुके; क्योंकि हम सोच रहे थे कि उसी शाम को डंडाल गांव पहुंच जाएं, लेकिन ड्राइवर ने बताया कि वहां कोई बस्ती नहीं है, इसलिए १४ मील पर सिलक्यारा चट्टी पर रात बिताने का निश्चय किया। किन्तु धरासू के आगे बढ़ते ही बस ने विद्रोह कर दिया। ड्राइवर ने बहुत ही सिर खपाया तब पता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चला कि पेट्रोल की टंकी में कचरा अटक गया है। पंप से उसने साफ़ किया, गाड़ी चली; लेकिन आधेक मील चलकर फिर खड़ी हो गई। ड्राइवर हैरान था। संध्या का अंधकार बढ़ता आ रहा था। सारे यात्री बड़े चिन्तातुर हो उठे। बियाबान में रात कैसे कटेगी ?

राम-राम करते रात के ९ बजे ब्रह्मखाल पहुंचे। बस की अवस्था देखकर रात वहीं काटने का निश्चय किया। बहुत से यात्री वहां पहले से ही पहुंच गए थे और उन्होंने उस छोटी-सी चट्टी का सारा स्थान घेर लिया था। बहुत से यात्री सड़क पर सो रहे थे। हम लोगों ने पुल पर बिस्तर लगाए, पर सारी रात साँप-बिच्छू और भालू के डर से आँखों में निकली।

बड़े तड़के उठे और तैयार हो कर ५ बजे रवाना हो गए। धरासू से जो चढ़ाई प्रारम्भ हुई थी, वह बढ़ती ही गई। १० मील का रास्ता तय करने में २ घण्ट लगे। डण्डालगाँव पर सड़क समाप्त हो गई। हम लोगों ने सामान सम्भालकर बोझिया को सौंपा और पैदल यात्रा के लिए तैयार हो गए। बस का अड्डा सुनसान जगह पर है। बस्ती डेढ़-दो मील पर है। वहां पहुंचकर हम लोगों ने जलपान किया, फिर आगे बढ़ चले।

डेढ़ मील पर सिमली चट्टी आई। यह छोटा-सा पड़ाव है, पर उसका महत्व इसलिए है कि यमुनोत्री से लौटकर यहीं होकर दाएं मार्ग से गंगोत्री को जाते हैं। सिमली से २ मील आगे गंगा की चट्टी पर भोजन के लिए रुके। यह चट्टी यमुना के किनारे पर बसी है। 'गंगानी' का अर्थ है 'गंगा-आनी' (यानी लाई गई)। कहते हैं, कि यहां 'यामुन' नामक एक ऋषि रहते थे, जिन की गंगा और यमुना के प्रति समान भक्ति थी, दोनों के वे प्रतिदिन दर्शन करते थे। यमुना के तीर पर रहते पर बीच में खड़े राढ़ी पर्वत को पार कर रोज गंगा-स्नान करने जाते। पन्द्रह मील की चढ़ाई-उतराई युवावस्था में तो उन्हें अखरी नहीं, पर बुढ़ापे में क्या करें ? चलना कठिन हो गया तो उन्होंने गंगानी की स्तुति की। भक्त-वत्सला गंगा को उन पर दया आई और वे यमुना के तट पर ऋषि के आश्रम के निकट श्वेत जल के झरने के रूप में प्रकट हुईं। आज वहां एक छोटा-सा जलाशय है, जिसके किनारे गंगा-यमुना का मन्दिर है।

यमुना की शीतल जलधारा में हम सबने स्नान किया, अनन्तर भोजन, विश्राम से छुट्टी पाकर अपराह्न में फिर चल पड़े। यमुना का साथ अब आगे बराबर यमुनोत्री तक रहा—। ६ मील की वह यात्रा चिर-स्मरणीय रहेगी। वन में भयंकर आग लगी हुई थी और ऊपर से छोटे-बड़े पत्थर लुढ़क-लुढ़क कर नीचे आ रहे थे। यमुना चट्टी में बिताई उस पहली रात का उल्लेख इसलिए आवश्यक है कि वह जीवन का एक बड़ा ही रोमांचकारी अनुभव था। नदी के उस पार वन में दावानल दहक रहा था और रात के घने अन्धकार में अग्नि के विस्तार से भांति-भांति की जो आकृतियां बनती थीं, वे दिल को दहला देती थीं।

लेकिन अगले दिन लगभग ९½ मील चल कर हनुमान चट्टी पर पड़ाव डाला तो पीछे की याद बिल्कुल भूल चुकी थी। चीड़ और देवदार के वृक्षों से आच्छादित पर्वत इतने मनोरम लगते थे और यमुना की नील-वर्ण जल-धारा की चट्टानों से अठखेलियां इतनी आकर्षक प्रतीत होती थीं कि पीछे मुड़कर देखने का अवकाश ही नहीं था।

दो दिन में २० मील से अधिक चल लिए थे, अतः तीसरे दिन कुल ४-५ मील चलकर जानकी चट्टी पर पड़ाव डाला। रास्ते में फूल चट्टी पड़ी, जो अब तक की चट्टियों से सर्वोत्तम थी—स्वच्छ और सुन्दर। पर हम लौटते समय वहां रुकने का विचार करके आगे बढ़े गए। जानकी चट्टी से यमुनोत्री कोई ३ मील है। लेकिन यही चढ़ाई है, जो लोगों की हिम्मत को तोड़ देती है। दिन भर विश्राम करके अगले दिन सवेरे ५ बजे उस आखिरी मंजिल पर चल पड़े। सामान जानकी चट्टी पर ही छोड़ दिया, क्योंकि शाम को वहीं लौट आने का विचार था।

वह चढ़ाई कभी विस्मृत नहीं होगी। साढ़े तीन मील में दो हजार फुट से कुछ अधिक ही चढ़ना था। हम लोग पग-पग पर रुक कर सांस लेते थे। बार-बार लौटते यात्रियों से आगे के रास्ते के बारे में पूछते थे। उनका उत्तर कुछ भी होता, पर उनकी क्लांत आकृति को देखकर साफ मालूम हो जाता था कि मार्ग अभी कसाले का है। कोई मोड़ आता था तो आशा होती थी कि अब चढ़ाई का अन्त हो जाएगा, लेकिन वहां पहुंचते ही देखते थे कि आगे की चढ़ाई उससे भी बढ़कर है। अच्छा यह था कि मन्द-मन्द पवन बह रहा था। प्रकृति हंस रही थी। पुष्प मुस्करा रहे थे। पौने तीन मील तक चढ़ाई-ही चढ़ाई रही। अन्त में चीरभैरव पर जाकर चैन की सांस ली। वहां से पौन मील का मार्ग सुगम था। उधर के दृश्य अद्भुत थे। यों तो हिम मंडित शिखर दूर से ही दिखाई दे रहे थे, पर अब तो वे बहुत ही निकट आ गए थे। सामान्यतया १० हजार फुट की ऊंचाई पर हरियाली कम हो जाती है, पर्वत सूखे-से दिखाई देते हैं, लेकिन यमुना का मायका ऐसा नहीं है। १० हजार फुट की ऊंचाई पर भी वहां की वनश्री बड़ी शोभा-युक्त है।

१० बजे के लगभग यमुनोत्री पहुंचे। प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से यह स्थान बहुत उत्कृष्ट नहीं लगा, लेकिन भावना की दृष्टि से वहां की भव्यता निराली थी। उद्गम काफी ऊंचाई पर है, जहां पर्वतारोही भी नहीं पहुंच पाते। वहां से एक श्वेत क्षीण धारा के रूप में यमुना धीरे-धीरे नीचे आती है, बड़ी धीर-गम्भीर; लेकिन ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती जाती है, उसका रूप उग्र होता जाता है। आश्चर्य की बात यह है कि उसकी शीतल जल-धारा के निकट ही गरम पानी के कुण्ड हैं। एक में तो लोग स्नान करते हैं, पर उसके ऊपर एक छोटे-से कुण्ड का पानी इतना गर्म है कि उसमें बीस-पच्चीस मिनट तक पड़े रहने पर चावल, आलू अपने आप पक जाते हैं। उसके जल में गंधक की गंध तनिक भी नहीं है। किसी विशाल इंजन की भांति छक-छक, फक-फक का संगीत हर घड़ी उस छोटे-से कुण्ड से उठता रहता है। कुण्ड के निकट ही यमुनोत्री का मन्दिर है, जिस में गंगा-यमुना, दोनों बहनों की मूर्तियां हैं।

बस्ती के नाम पर वहां काली कमली वालों की धर्मशाला तथा तीन-चार दुकानें हैं, बड़ी ही दयनीय अवस्था में। मालूम हुआ कि यमुना में बाढ़ आ जाती है, तब बस्ती ढह जाती है। साढ़े दस हजार फुट की ऊंचाई पर अच्छी-बड़ी इमारतें खड़ी करना आसान काम भी तो नहीं है।

हम लोगों ने तप्त कुण्ड में स्नान किया। सारी थकान दूर हो गई। हिमाच्छादित गिरि-शृंगों को देखकर मन एक अनिर्वचनीय आनन्द से भर उठा। अपने धंधे के लिए पंडों ने छोटी-छोटी धाराओं और कुण्डों में वसुंधारा, सहस्रधारा, गौतम ऋषि धारा, द्रौपदी कुण्ड, गुप्त मुनि आदि के दर्शन करा दिए। कुछ ही दूरी पर तीव्र नाद करती हुई गरुड़ गंगा प्रवाहित हो रही थी।

एक बजे तक हम लोग स्नान, दर्शन, भोजनादि से निपट गए। धीरे-धीरे आकाश मेघाच्छन्न होने लगा तो हमें लौटने की जल्दी पड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बराबर अनुभव करता रहा कि ऐसे भव्य स्थान पर कम-से-कम एक रात तो ठहरना ही चाहिए।

सिमली के बाद जैसे ही हम गंगोत्री की ओर बढ़े, प्रकृति ने जैसे हमारे सामने नए-नए दृश्यों की पिटारी खोल दी। वैसे अलौकिक दृश्य सचमुच भाग्य से ही देखने को मिलते हैं। ज्यों-ज्यों हम ऊपर चढ़ते गए, वन सघन होते गए। ऐसा प्रतीत होता था, मानों प्रकृति देवी ने यात्रियों की सुविधा के लिए हरे-भरे वृक्षों की कुंजे बना दी हैं, उनके मन को हरने के लिए स्थान-स्थान पर प्रपातों की रचना कर दी है और जल-प्रवाह के मधुर संगीत की ध्वनि से सारे वायुमण्डल को सुखद बना दिया है। कला की धार और फिर फलारचा की धार तक की चढ़ाई बड़ी भयंकर है, और बाद का उतार तो बेहद खतरनाक है। हम सब थक गए, पर मन की उमंग और तरंग ज्यों-की-त्यों बनी रही।

नाकुरी चट्टी पर हमें भागीरथी मिल गई और वह गंगोत्री तथा गोमुख तक साथ गई। उस मार्ग पर वैसे छोटी-छोटी कई चट्टियां हैं, लेकिन उन में सबसे अधिक महात्म्य उत्तरकाशी का है। हिमालय में गंगा का प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर होता है, शायद इसी से हमारे पूर्वजों ने इस स्थान का नाम उत्तरकाशी रख दिया होगा। जो कुछ भी हो, उसकी उतनी ही मानता है, जितनी काशी-वाराणसी की। काशी में जितने बड़े-बड़े देवता हैं, वे सब वहां भी मिलते हैं, काशी-विश्वनाथ, बिन्दुमाधव, दत्तात्रेय, परशुराम आदि-आदि। मणिकर्णिका घाट भी है। पर दो पर्वतों की विशाल घाटी में बसे होने के कारण जो रमणीकता उत्तरकाशी में है, वह मैदानी काशी में कहां! काफ़ी बड़ी जगह है वह। अनेक साधु

बोग्री की एक महिला अपने बालक के साथ

भी वहां निवास करते हैं। हम लोग दोपहर को पहुंचे थे। अगला पूरा दिन भी वहां बिताया। धार्मिक केन्द्र होने के अतिरिक्त वहां की प्राकृतिक सुषमा भी बड़ी लुभावनी है। विश्वनाथ के मन्दिर पर सुबह अच्छी रौनक रहती है। डाक, तारघर, अस्पताल आदि की सुविधायें हैं।

उत्तरकाशी से आगे मनेरी के सुन्दर दृश्यों, भटवारी के भास्करेश्वर के प्राचीन मन्दिरों, गंगानी के तप्त कुण्डों ने तथा भागीरथी के सौम्य एवं मानवीयता-युक्त प्रवाह ने हमारे चित को विशेष रूप से आह्लादित किया। इधर का मार्ग यमुनोत्री के मार्ग की अपेक्षा अधिक कठिन है, पर प्रकृति ने उदारता से अपने सौंदर्य का मोहक जाल फैला कर उसे यात्रियों के लिए गम्य बना दिया है। टांगे थक जाती हैं, पैरों में फफोले पड़ जाते हैं, चेहरे सूख जाते हैं, फिर भी पैर आगे ही बढ़ते जाते हैं। क्षीणकाय, दुर्बल और वृद्ध नर-नारी तक उस बीहड़ मार्ग को तय करने की क्षमता पा जाते हैं।

हरसिल इधर का सबसे सुन्दर स्थान है। भागीरथी यहां खूब इठला कर बहती है और देवदार के हरे-भरे, सघन वृक्ष उसकी शोभा में चार चांद लगाते हैं। ऐसा लगता है, मानो हम कोई चित्र देख रहे हों। वैसे भी हरसिल ऊन की कताई-बुनाई का बड़ा केन्द्र है। तिब्बत के साथ वहां से अच्छा व्यापार चलता है। भेड़ें यहां खूब पाली जाती हैं। उनकी ऊन तो काम में आती ही है, उनसे सामान को लाने-ले जाने का भी काम लिया जाता है।

गंगोत्री के मार्ग की सबसे कठिन चढ़ाई भैरव चट्टी की है। उससे कुछ पहले नीलंग पर्वत से निकलकर आती नीलगंगा और भागीरथी का संगम पड़ता है, जो बड़ा आनन्ददायक लगता है। नील-गंगा का जल नीला, भागीरथी का रंग भंग जैसा। नीलगंगा बड़े उत्साह से दौड़ी आती है और भागीरथी में अपने अस्तित्व को विलीन कर देती है। दोनों के प्रेम-मिलन से मन अभिभूत हो उठता है और तभी सामने आ जाता है वह मार्ग, जो निरन्तर ऊपर की ओर चढ़ता और बढ़ता जाता है। ठेठ भैरव-चट्टी तक यही स्थिति रहती है। रास्ता बड़ा ही संकरा है और नीचे चट्टानों को काटकर अपना मार्ग निकालती हुई भागीरथी कई सौ गज की निचाई पर बहती है। जरा पैर चूका कि गए। चट्टानें इतनी सपाट हैं कि ऊपर से चले तो बिना बाधा के नीचे। चट्टी पर्वत-शिखर पर है और वहीं पहुंच कर यात्री चैन की सांस लेता है। दस हजार फुट से अधिक की ऊंचाई पर होने के कारण वहां सर्दी भी खूब है।

आगे गंगोत्री तक का ६ मील का रास्ता सहज ही पार हो जाता है। २५ मई को हम यमुनोत्री से चले थे। बारह दिन में करीब सौ मील का फासला तय कर ५ जून को हम गंगोत्री पहुंचे। भारत-सम्राट् भगीरथ की उस साधना-भूमि के दर्शन करके हृदय गद्गद हो गया। पुण्य सलिला भगीरथ का अविराम-उद्दाम प्रवाह, उसके चारों ओर प्रहरी की भांति खड़ी रजत पर्वत-माला, उसे हरा-भरा बनाने वाले देवदार के सुहावन वृक्ष, वन, गंगानी का विशाल मन्दिर, ये सब मिलकर उस स्थान को निस्संदेह बड़ी अलौकिकता प्रदान करते हैं। अपनी तपस्या के लिए भगीरथ ने सचमुच बहुत ही उपयुक्त स्थान चुना था। वहां के वायु-मण्डल में कुछ ऐसा है, जो यात्रियों के हृदय को आन्तरिक उल्लास से परिपूर्ण कर देता है।

यात्रियों के ठहरने के लिए कई धर्मशालाएं हैं। बस्ती में बहुत-सी दुकानें भी हैं। खाने-पीने के सामान के अतिरिक्त यात्रा की दृष्टि से अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

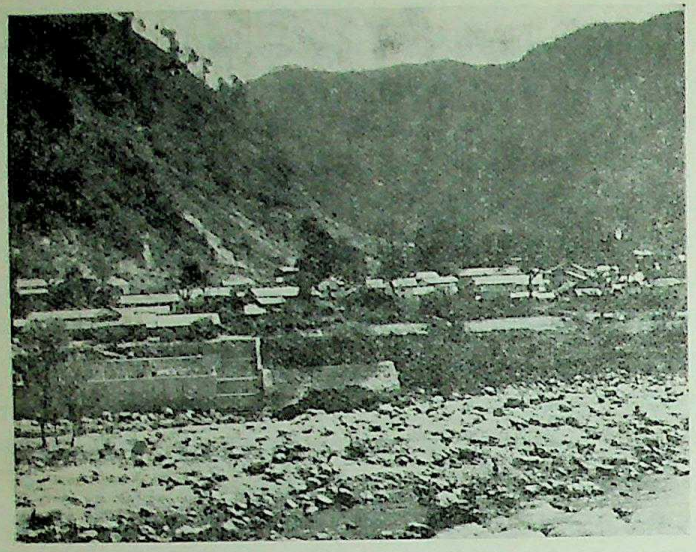

उत्तर काशी का मणिकर्णिका घाट

आवश्यक वस्तुएं भी मिल जाती है । भाव उनके महंगे हैं, जो स्वाभाविक है । वर्ष में कुछ ही महीने तो कमाई होती है । शेष महीनों में तो वहां बर्फ़ जमी रहती है और वहां के निवासी नीचे उतर आते हैं ।

मन्दिर के पुजारी ने एक स्थान की ओर संकेत करके बताया कि यहां वह शिला थी, जिस पर बैठकर भगीरथ ने ५,५०० वर्षों तक तपस्या की थी । अब वह नदी के तल में आ गई है । उन्होंने यह भी बताया कि पहले गंगाजी का मन्दिर छोटा-सा था, लेकिन सम्वत् १९८० में जयपुर-नरेश ने उसे फिर से बनवा दिया । अब उसके ग्यारह शिखर हैं, जिन पर सोने का काम हो रहा है । उसमें से ३० में गंगानी की मूर्त्ति है। नीचे क्रम से शंकराचार्य, महालक्ष्मी, अन्नपूर्णा, सरस्वती, भगीरथ, जमनाजी और जान्हवी की मूर्त्तियाँ हैं । मन्दिर के बाहर प्रांगण में दो और मन्दिर हैं । एक भैरव का, दूसरा शिव का । शिव-मन्दिर में संगमरमर के पट्टे पर शिव-पार्वती की मूर्त्तियां बड़ी सुन्दर हैं ।

वहां के उदात्त वातावरण ने अनेक साधु-सन्यासियों को एकत्र कर दिया है । उनके अलग-अलग आश्रम हैं । कई साधु तो ऐसे हैं, जो शीत-काल में भी वहीं रहते हैं । शेष जाड़े के दिनों में उत्तरकाशी चले आते हैं । हमने कई साधुओं के दर्शन किए । कुछ तो उनमें दिगम्बर थे । वस्तुतः वहां की ठंड में नंगा रहना अपने आप में बहुत बड़ी साधना है । साधु सब निवृत्त-मार्गी थे । उनमें से कुछेक की ही हमारे मन पर अच्छी छाप पड़ी ।

भागीरथी के निकट ही केदार-गंगा है, जो केदार-शिखर से निकल कर आती है । उसका घाट अधिक चौड़ा नहीं है, पर प्रवाह बड़ा तीव्र है ।

भागीरथी के दो कुण्ड यहां दर्शनीय हैं । एक है सूरजकुण्ड, जिसमें जल-धारा इतनी तेजी से गिरती है कि अगर कोई थोड़ी देर तक खड़ा देखता रहे तो चक्कर आ जाए । इस कुण्ड से तीन धाराएं निकलती हैं और उनके प्रवाह के कारण ऊपर-नीचे के पाषाण बड़े सुडौल हो गए हैं । उसके निकट ही दूसरा कुण्ड है । गौरी की तपस्या से सम्बद्ध होने के कारण उसका नाम 'गौरी कुण्ड' है । कहते हैं, यहां गौरी ने १२ वर्ष तक तपस्या की थी । गंगा के उद्गम का यह रूप अद्भुत है । ऊंची-ऊंची चट्टानों के बीच से वह अपना रास्ता निकालती है और जल के सतत संघर्ष से वहां की चट्टानें और पत्थर बड़े ही स्वच्छ और सुडौल बन गए हैं ।

हमें पता था कि गंगाजी का वास्तविक उद्गम गोमुख है, जो गंगोत्री से लगभग ११ मील है । वहां जाने के लिए हमारी सारी टोली बड़ी उत्सुक थी, लेकिन पूछने पर मालूम हुआ कि वहां जाने का रास्ता नहीं है । पत्थरों पर होकर स्वयं मार्ग बनाते हुए जाना पड़ता है । कई लोगों ने और सरकारी अधिकारियों ने हमें सलाह दी कि हम वहां जाने का विचार छोड़ दें और अपनी जान को खतरे में न डालें । फिर भी टोली के हम पांच सदस्य एक स्वामी जी, एक मार्ग-दर्शक और एक बोझी को साथ लेकर वहां गए । वास्तव में जैसा रास्ता बताया गया था, वैसा ही निकला । भागीरथी के तीर की ऊंचाइयों और निचाइयों में पत्थरों पर कूद-कूद कर आगे बढ़ते हुए हम लोग कई जगह तो सचमुच खतरे में पड़ गए । लगता था, मौत बांहे फैलाए साथ चल रही है और हमारे और उसके बीच भगवत्कृपा का साया न हो तो वह कभी भी हमें उड़ा ले जा सकती है ।

हमारे दाहिनी ओर को देवघाट की बर्फ से ढकी पर्वत-मालाएं थीं, बांई ओर को नीलंग पर्वत की । लक्ष्मी वन, गंगा बगीचा आदि को पार करते हुए ७ मील पर हमने चीड़वासा धर्मशाला में रात्रिवास किया । वहां चारों ओर भूर्ज वन है । एकदम सुनसान जगह है । काली कमली वाले की छोटी-सी धर्मशाला के अतिरिक्त १२ हजार फुट की ऊंचाई पर कुछ भी नहीं है । भालू का वहां बड़ा डर रहता है । धर्मशाला में रहने वाले साधु ने बताया कि कभी-कभी भालू चोर की भांति आता है और चुपचाप सोते यात्रियों के ऊपर से कम्बल उतार कर ले जाता है । उन्होंने यह भी बताया कि वह जो कम्बल ओढ़े हुए थे, वह भालू से छीना हुआ था । भालू उससे घर-सा बनाए पेड़ पर बैठा था । उन्होंने पत्थरों से धमकाकर उसे भगा दिया और कम्बल ले आए ।

अगले दिन चीड़वासा से चलकर भोजवासा और पुष्प-वासा से होते हुए 'महानन्द वैतरणी' पर पहुंचे । यह एक नदी है, जो हिममंडित पर्वत से निकलकर आती है । उसे लकड़ी के तख्तों पर से पार करके उधर पहुंचे, तो साधु जी ने कहा, "अब हम लोग स्वर्गलोक में आ गए हैं ।" स्वर्ग की कल्पना चाहे कुछ भी हो, लेकिन वहां की अलौकिकता को देखते हुए वास्तव में एसा लगता था कि वह कोई अद्भुत लोक है । दांई ओर को बर्फ के शिवलिंग, सामने भगीरथ पर्वत के रजत शिखर, बांई ओर नीलंग पहाड़ की रजत चोटियां और कलकल करके बहती हुई भागीरथी । उन दृश्यों को कौन भूल सकेगा ?

ऊबड़-खाबड़ मार्ग के कारण और कुछ ऊंचाई पर की हल्की हवा के कारण हम लोग थक गए । बीच-बीच में सांस लेने और विश्राम करने के लिए रास्ते में बैठ जाते । कहीं-कहीं सर्दी से अकड़े हाथ-पैरों को गरम करने के लिए आग जलवा लेते ।

४ घण्टे में ४ मील चलकर हम गोमुख पहुंचे । वैसे रास्ते में ९ बार छोटी-बड़ी नदियों को बर्फ के पुलों से पार कर चुके थे, लेकिन गोमुख की महिमा निराली थी । पन्द्रह मील लम्बा वह एक ग्लेशियर है । सर्व प्रथम गोमुख की कन्दरा में से भागीरथी प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है । हिम कन्दरा का आकार बड़ा विशाल है और जल की शीतलता का तो अनुमान भी नहीं किया जा सकता । हम लोग अति उत्साह से दौड़

(शेष पृष्ठ ४५ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारस्वत

(३)

मामा वरेरकर

(दूसरे अंक का शेषांश)

बाबा--जितना ढोंग रच चुके हो उतना काफी है। कोई न करे मेरा अभिनन्दन। इन अभिनन्दनों से मेरा पेट तो भरेगा नहीं।

प्रभाकर--वाह! ऐसा भी कभी हुआ है? आप कुछ भी कहें, पर हमारा भी तो कोई कर्त्तव्य है या नहीं?

बाबा--और मेरे लेख कौड़ी कीमत के ठहराते समय कहां गया था तुम्हारा कर्त्तव्य?

प्रभाकर--अब ये बातें क्यों निकाल रहे हैं? न हो तो मैं क्षमा मांगता हूं। पर कल अभिनन्दन की सभा होनी ही चाहिए। क्यों सुलभा जी, आपका क्या विचार है?

सुलभा--मैं ये बातें नहीं समझती। आप जानें और पिताजी जानें-- चाहे जो कीजिए।

प्रभाकर--यह कैसे हो सकता है? आपको तो अवश्य आना चाहिए सभा में।

सुलभा--मेरा क्या सम्बन्ध है?

प्रभाकर--हमारा भी क्या सम्बन्ध है? हम लोग क्यों सभा बुला रहे हैं? यह सार्वजनिक काम है। यह केवल व्यक्ति का सम्मान नहीं·····मराठी भाषा का सम्मान है। यह हमारे महाराष्ट्र की विजय है। बम्बई युनिवर्सिटी के इतिहास में यह पहला उदाहरण है। इस समय यदि हम लोग आगे न आएं, तो फिर कब आएं? कितना गौरव महसूस कर रहे हैं हम लोग। कितनी खुशी हो रही है। कितनी उम्मीद है। आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ था, अब हो गया·····एक उदाहरण हो गया···मराठी लेखकों की कदर युनिवर्सिटी करती है यह साबित हो गया। एक बार जो हुआ वह फिर से होगा। हम जैसे युवक लेखकों के लिए यह आशा की किरण है।

बाबा--यह बात है? कल तुम्हें डाक्टर होने की उम्मीद है इसलिए आज मेरा अभिनन्दन कर रहे हो, क्यों?

प्रभाकर--अब आप ही देख लीजिए सुलभा जी, मैंने कोई गलत बात तो कही नहीं। आगे वालों को बड़प्पन मिले तो पीछे वालों को उम्मीद होना क्या स्वाभाविक नहीं है?

बाबा--अजी इसे एक प्याला चाय दो।

प्रभाकर--वाह, खूब। खाली चाय? अच्छी-सी पार्टी चाहिए हमें। हमें का मतलब मुझ अकेले को नहीं--बम्बई के सारे मराठी लेखकों को।

बाबा--तुम समझे हो मैं टाटा का वारिस हूं? क्या पार्टी वसूल करने के लिए ही मेरा अभिनन्दन करने वाले हो?

सुलभा--तो चाय लाऊं?

प्रभाकर--चाय के लिये कभी किसी ने ना कहा है?

सुलभा--तो ऐसा कीजिए, मैं बर्तन देती हूं--उस परली ओर के होटल वाले या हलवाई के यहां से पाव भर दूध ले आइए।

प्रभाकर--हां, हां ले आता हूं। बर्तन दीजिए। (सुलभा अन्दर आती है) देखा बाबा साहब, सुलभा जी ने सोचा मैं यह काम नहीं करूंगा। पर मैं यहां पराया थोड़े ही हूं। (सुलभा बर्तन लाकर उसके हाथ में देती है) देखिए अभी ले आता हूं दूध। (उठकर जाने लगता है।) कितने का आता है पाव भर?

सुलभा--बताएगा दुकानदार।

प्रभाकर--(जेब टटोलते हुए) तो दीजिए न।

सुलभा--दे तो दिया बर्तन।

प्रभाकर--बर्तन नहीं--(धीरे से) पैसे।

सुलभा--इधर दीजिए बर्तन। पैसे होते तो मैं ही न ले आती। आप से क्यों कहती? (उसके हाथ से बर्तन लेकर सुलभा अन्दर जाती है।)

बाबा--और पार्टी मांगते हो मुझ से। अकेले के लिए नहीं--बम्बई के सारे मराठी लेखकों के लिए। फिर भी गनीमत है कि तुम भी एक लेखक हो।

(गोपालराव जल्दी-जल्दी में आता है, आते ही बाबा साहब का हाथ पकड़कर जोर-जोर से शेकहैन्ड करता है।)

गोपाल--क्या बतलाऊं बाबा साहब, कितना आनन्द हुआ है।

बाबा--न बताओ। कुछ पैसे लाए हो साथ?

गोपाल--पैसे की क्या कही बाबा साहब। पैसे उतारकर फेंक दूंगा आप पर से।

बाबा--फेंकों मत। फेंकने ही हों तो मेरे हाथ में फेंको। और कहीं न फेंको।

गोपाल--दूंगा, दूंगा। वक्त आएगा तब वे भी दे दूंगा।

बाबा--पर वह वक्त कब आएगा?

गोपाल--छोड़िए इसे। प्रभाकर जी, सभा कब बुला रहे हैं बोलिए। वाइस चान्सलर को ही अध्यक्ष पद के लिए बुलाइए। मामूली आदमी लाने से काम नहीं चलेगा। यों ही नहीं प्रभाकर जी, पुस्तक भी तो कैसी सुन्दर छापी है। जैकेट देखी? हर कोई अमरीकन पुस्तक समझता है। अंग्रेजी की पुस्तक होती तो नोबेल प्राइज़ मिलता।

बाबा--तुम्हारी जैकेट के कारण?

गोपाल--जैकेट ही क्या, टाइप, छपाई, कागज, बाईंडिंग···शानदार थी पुस्तक।

बाबा--पर इस सब में मैं कहां हूं?

गोपाल--आप तो हैं ही। हीरे के जड़ाव के लिए सोने की आवश्यकता होती ही है। जरा-सा हीरा होता है पर उसे जड़ने के लिए काफी अच्छा सोना लगाए बिना भी क्या वह शोभा देता है?

बाबा--और उस जरा-से हीरे की कीमत?

गोपाल--अजी, वह तो है ही। हीरे का मूल्य नहीं होता--

प्रभाकर--यह बात बिल्कुल ठीक है। दो सौ सफे की मेरी पुस्तक थी पर एक दमड़ी भी नहीं दी।

गोपाल--पर पुस्तक कैसी छपी? क्यों? वह आपने देखी थी न बाबा साहब? छपाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही सारे पैसे लग जाते हैं फिर लेखक को कहां से दें ? पर आप लोग इस बात को नहीं समझते प्रभाकर जी, कि उससे नाम कितना होता है ? इन बाबा साहब ही को देखिए, डाक्टर हो गए, अपनी पुस्तक के ही कारण तो ? पर उन्हें उस पुस्तक का क्या मिला था ?

प्रभाकर--यह तो अभी-अभी मैंने जाना ।

गोपाल--वैसे मैं कभी-कभी देता हूं । नहीं देता यह बात नहीं । इतना बड़ा लेखक--उसे जीवित तो रखना ही हुआ ।

बाबा--सुनो प्रभाकर, इनके दो-चार पैसे देने से मैं अभी तक जी रहा हूं । मेरे डाक्टरेट पाने के लिए यदि तुम्हें किसी का अभिनन्दन करना हो तो गोपालराव का करो । इन्होंने मुझे जिन्दा रखा है । यदि इसके पहले ही मर गया होता तो कहां होती डाक्टरेट और कहां होता तुम्हारा अभिनन्दन ?

गोपाल--देखिए बाबा साहब, आपने आरम्भ से ही गलती की, आजीविका के लिए कहीं नौकरी कर लेते । पुस्तकों पर भी क्या कभी पैसे मिलते हैं ?

बाबा--लेखक को या प्रकाशक को ?

गोपाल--ऐसा न कहिए बाबा साहब । जब पहले अपने पास पूंजी हो तभी प्रकाशक बना जा सकता है । जो प्रकाशक पाता है वह है उस पूंजी का सूद ।

प्रभाकर--और लेखक की उसमें कुछ भी पूंजी नहीं होती ।

गोपाल--लेखक की कैसी पूंजी ? कलम उठाई और लिखा । लिखता चला--लिखता गया ।

बाबा--और उस लिखने के लिये शायद बुद्धि की जरूरत नहीं पड़ती ? कुछ अध्ययन, कुछ अवलोकन, कुछ प्रवास, कुछ अनुभव--किसी विषय पर मनन, क्यों ?

गोपाल--ठीक है, पर उसके लिए पूंजी की जरूरत नहीं होती । अर्थशास्त्र की दृष्टि से बुद्धि की कोई कीमत नहीं होती । बुद्धि खेतीबाड़ी नहीं--जमीन जायदाद नहीं । बुद्धि को गिरवी रखकर या बेचकर पैसा नहीं कमाया जाता । अर्थशास्त्र की दृष्टि से बुद्धि की कीमत शून्य है । आप के इस शून्य के बखेड़े में पूंजी लगाकर हम उसे मूल्यवान बनाते हैं इसीलिए आप लोगों की कीमत है । क्यों ? उस पूंजी का इस्तेमाल करने के लिए लेखकों का होना आवश्यक है इसीलिए हम उन्हें कुछ न कुछ देते रहते हैं ।

बाबा--हां, केवल जिन्दा रहने के लिए ।

गोपाल--हां, केवल जिन्दा रहने के लिए । क्योंकि देखा जाय तो लेखक के जीवन में संघर्ष होना चाहिए । व्याकुलता होनी चाहिए । अमीर होते ही लेखक की प्रेरणा जाती रहेगी । इसीलिए उसे केवल जिन्दा रहने भर के लिए देना चाहिए । अधिक देते ही वह समाप्त हो जायगा । फिर वह कुछ भी न लिख सकेगा ।

बाबा--सुन लिया प्रभाकर ।

गोपाल--तो क्या कह रहा था मैं--हां, प्रभाकर जी, अभिनन्दन की सभा का सारा खर्च मैं दूंगा । पर वक्ताओं के बारे में मैं निश्चित करूंगा ।

प्रभाकर--यह क्यों ?

गोपाल--वह आप नहीं समझ सकते । बाबा साहब डाक्टर हो गए पर उसका सब श्रेय मुझे है । मेरे इस श्रेय का बखान सभा में होना चाहिए ।

बाबा--हूं, सुना प्रभाकर, इसीलिए मैं कह रहा था कि अभिनन्दन करना हो तो इस गोपाल का करो ।

गोपाल--ना ! ना ! ना ! ना ! अभिनन्दन आपका ही होना चाहिए । हम सब लोग आप ही में शामिल हैं--

बाबा--तभी तो अन्न बिना मेरा पेट भरता है ।

गोपाल--ऐसा न कहिए बाबा साहब--एक ऐसा सुन्दर उपन्यास लिखिए जिसमें, आपका वह, क्या कहते हैं उसे, यौन काफी मात्रा में हो । खूब चुम्बन, आलिंगन, साड़ी धोतियां खोलकर भी दिखाई जाएं तो भी हर्ज नहीं । पर लड़के-लड़कियों के पढ़ते ही--बस ! वे बार-बार पढ़ें । वृद्धों के लिए वह उपन्यास 'ओकासा' बन जाना चाहिए । कुछ ऐसा लिखिए । अब आप डाक्टर हो गए हैं । अब ऐसा कुछ लिखने में हर्ज नहीं । कौन हिम्मत कर सकता है आपको बुरा कहने की ? यह प्रभाकर--माफ कीजिए प्रभाकर जी--यह भी आपकी तारीफ करने लगेंगे । (प्रभाकर से) पांच रुपये कालम दूंगा । (बाबा साहब से) क्यों ? लिखिएगा ?

बाबा--सुला, सुला--अरी ओ सुला, इधर तो आओ । (सुला आती है) अन्दर क्या कर रही थीं ?

सुलभा--कुछ नहीं ।

बाबा--यह मेरे प्रकाशक आए हैं न--

सुलभा--तो ? क्या फिर से हंसी उड़वानी है ?

बाबा--अरी, चाय के लिए दूध नहीं है यह मैं जानता हूं, झाड़ू है उधर ?

गोपाल--देखिए बाबा साहब--

बाबा--मुझ से क्या लिखने के लिए कहते हो जी तुम पाजी ? ऐसा चुम्बन, आलिंगन का साहित्य लिखने के बजाय मर जाना क्या बुरा है ?--

गोपाल--तो मत लिखिए । भर पेट चाहिए हो तो लिखिए । न चाहिए हो तो जो मर्जी हो लिखिए । हमें पुस्तक छापनी होती है इसलिए छापेंगे ।

बाबा--मेरी पुस्तक की प्रशंसा करने के लिए कालम के पांच रुपए । और मेरी मूल पुस्तक को देते हो पृष्ठ के···

गोपाल--उसका जिक्र प्रभाकर के सामने न कीजिए । नहीं तो मेरे कहने में और आपके कहने में फर्क पड़ेगा । आपकी इज्जत मुझे रखनी चाहिए न ? और देखिए बाबा साहब ! यह लिख-लिखकर कितना लिखेगा ? कालम, दो कालम--अधिक से अधिक चार कालम । एक पूरे पत्र के विज्ञापन को बीस रुपये काफी नहीं होंगे । पचास-साठ रुपयों का काम बीस रुपयों में हो जायगा । पर आपके अगर हर पेज के आगे आने बढ़ाय जाएं तो सौ-डेढ़सौ रुपये झट से खर्च हो जाएंगे मेरे । यह सब बिजिनेस है, बिजिनेस आपकी समझ में नहीं आ सकता, बाबा साहब । आप बस किताबें लिखा कीजिए ! प्रकाशित करने की योग्यता होती तो सिर्फ लेखक नहीं बने रहते आप !

बाबा--सच है आप का कहना । माफ कीजिये । क्या कहूं ? इस वक्त एक कप चाय दी होती । देखो, सुला, देखो कहीं दूध हो तो···

गोपाल--ना ! ना ! मुझे कुछ भी नहीं चाहिए । मैंने जो कुछ कहा है उस पर फिर से विचार कीजिए । अच्छा अब चलूं ? और हां आप प्रभाकर जी, आ रहे हैं ? वह जो हमारी नई किताब छपी है उसके बारे में कुछ बातें करनी हैं । और यह अभिनन्दन की सभा भी बुलानी है--(प्रभाकर को साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर बातचीत करते हुए चला जाता है। उसका अंतिम वाक्य खिड़की से सुनाई देता है)

सुलभा--(बाबा साहब के पास आकर) कब तक ऐसे चलेगा, बाबा ? आप क्यों नहीं लिखते, जैसे वह चाहता है ? मेरा विश्वास है कि आप यदि सोचें तो लेखन का स्टैंडर्ड कम न होने देते हुए भी लिख सकते हैं···· यों देखते क्या हैं मेरी ओर ?

बाबा--सुलभा बेटी ! हाथी थक भी जाए तो मोटर के गैरेज में नहीं जायगा। हाथी से भी बड़ी हो गई है आजकल मोटर। पर हाथी हाथी हैं, मोटर मोटर। हाथी का मतलब है यथार्थता और मोटर है कृत्रिमता ! हाथी है प्रकृति की सर्जना और मोटर है प्रकृति से लड़ने के लिए मनुष्य ने रचा हुआ झूठा ढोंग। हाथी चिरंतन है, मोटर क्षणभंगुर है। इसीलिए मैंने कहा कि हाथी थकने पर भी मोटर के गैरेज में नहीं जायगा। हाथी के एक पैर के नीचे मोटर चकनाचूर हो जायगी। इसलिये मैंने हाथी की मिसाल दी। (एक मिनिट दोनों ही चुप रहते हैं) मैं जानता हूं मेरी वजह से तुम्हें कष्ट सहने पड़ते हैं। तुम्हारी मां की याद है तुम्हें ? वह ऐसा कभी नहीं कहती ? बोलो, ऐसी गंदी किताब लिखन का अनुरोध उसने कभी किया होता ?

सुलभा--माफ कीजिए पिताजी मुझ से भूल हुई।

बाबा--कितने दुःख झेले उसने मेरे लिए, मैं अपनी अकड़ छोड़ दूं इसलिए उसे कई लोगों ने कई तरह से उकसाया। पर हुआ उस पर असर ?-(फिर कुछ क्षण स्तम्भ्ध रहकर) सुलू, पुरुष के अभिमान की मूर्ति है स्त्री, उसी को चाहिए पुरुष का सम्मान बनाये रक्खे--वही उसके सम्मान की रक्षा करती है--चाहे वह मां हो, पत्नी हो या लड़की। उसी के सहारे वह दुनिया से संघर्ष करता है। उसी की उंगली के आधार पर वह संकट का गोवर्द्धन पर्वत उठाता है--याद है न तुझे ? हमने कई दिन भूखे रहकर बिताए थे पर उसने अपनी दीनता बाहर नहीं दिखाई देन दी। हम भूखों मर रहे थे और लोग हमें सुखी समझते थे। इसे चाह गुण कहो चाहे दोष, पर यह थी उसकी अपनी विशेषता। इसीलिए मैं सारी दुनिया से संघर्ष कर सका। तू उसकी लड़की--मेरी लड़की--अब किसी की पत्नी हो जाने पर मुझे ऐसी किताबें लिखने के लिए कहती है। (आंखों में आये हुए आंसू अंगूठे से पोंछकर हंसने लगता है) मैं बिल्कुल पागल हूं। हूं न सुलू ! मैंने तुम्हें झाड़ू लाने के लिए कहा वह इसीलिए कि तू झाड़ू लाती तो मैं उसे उसी से पीटता--इतना चिड़ गया था मैं--

सुलभा--मैं ही शायद उस झाड़ू से पीटती।

बाबा--मेरी ही जो लड़की हो। लेकिन उससे क्या फायदा होता। मरे शत्रुओं की सूची में एक और नाम जुड़ जाता और शत्रु भी कैसे ? पीठ पीछे निन्दा करते हैं पर सामने आते ही घिग्घी बंध जाती है एक एक की। उन कुत्तों में एक और शामिल हो जाता, बस। पर अब मैं बहुत बड़ा आदमी हो गया हूं। है न सुलू ? अब ऐसे लोगों की पर्वाह क्यों करूं ?

सुलभा--आप तो पहले कहा करते थे पर्वाह ?

बाबा--सो सच है री। पर अब मैं बहुत बड़ा हो गया हूं।

सुलभा--सचमुच ? तो फिर वह लिफाफा क्यों फेंक दिया था तब ?

बाबा--शतान कहीं की ! अरी, वह मेरा अपना मत था। अब जो मैं कह रहा हूं, वह लोगों की दृष्टि से कह रहा हूं। इसके बाद लोग मेरी ओर एक दूसरी ही दृष्टि से देखेंगे, इसलिए मुझे ऐसी किताबें नहीं लिखनी चाहिएं।

सुलभा--और पहले कब लिखते थे ?

बाबा--राजा कहां गया ?

सुलभा--ये लोग आए थे इसलिए बाहर गये हैं।

बाबा-- उसे मेरी बात न जंचती। अच्छा हुआ कि वह चला गया। उसी की छाया का प्रभाव तुमने अभी दिखाया था--(बालकराम जी अकस्मात प्रवेश करते हैं। वे भी एक प्रकाशक हैं। आयु पचास से ऊपर, चुटियाधारी, बाल सफेद, धोती पहने हुए। घुटनों तक लम्बा कोट, गले में लपेटा हुआ मफलर, हाथ में एक हिरन छाप छाता। उनके आते ही सुलभा बाबा साहब से दूर हटती है।)

बालकराम--नमस्ते बाबा साहब--

बाबा--आइए, बैठिए, आज इधर कैस ?

बालकराम--आपने तो कमाल ही कर दिखाया उस परिषद में।

मैंने पढ़ते ही सोचा, क्यों न हो, आखिर हमारे बाबा साहब हैं--

बाबा--क्या काम था ?

सुलभा--आपको पता लगा बालकराम जी, हमारे बाबा साहब अब डाक्टर हो गए हैं।

बालकराम--एं ! यानी मेरा आना बेकार हुआ !

सुलभा--क्यों ?

बालकराम--क्योंकि मैं आया था एक नई पुस्तक लेने--

सुलभा--तो अब क्या हो गया ?

बालकराम--दवाइयों के चक्कर में पड़कर अब कहां होगा लिखना लिखाना !

सुलभा--वैसे डाक्टर नहीं। यह उपाधि युनिवर्सिटी की है। जैसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर डाक्टर हैं न, वैसे ही ये हैं।

बालकराम--यह बात है ? तो यह एक सम्मान की बात है। ठीक, ठीक, अच्छा हुआ। उतनी ही अधिक बिकेंगी पुस्तकें--तो अब असल बात पर आता हूं।

(कमलेश आता है। वह एक युवक लेखक है। पोशाक अंग्रेजी फैशन की अप-टू-डेट है। पर उसमें कुछ बेढंगापन है। हमेशा हंसमुख, मीठा बोलनेवाला, प्रत्यक बात में ईमानदारी दिखानेवाला है)

बाबा--आओ कमलेश। बैठो। अभिनन्दन करने आए हो न ?

कमलेश--नहीं।

बाबा--शाबास।

कमलेश--आपका क्या अभिनन्दन करूं ? अभिनन्दन करना चाहिए उस सनातनी युनिवर्सिटी का।

बालकराम--मैं कह रहा था कि यदि आप एक--

बाबा--(कमलेश से) यहीं तुममें और और लोगों में अन्तर है। इसीलिए मुझे तुम पर गर्व है।

बालकराम--अब 'गीता रहस्य' पिछड़ गया है--

बाबा--छोड़िये भी गीता रहस्य। मेरा यह कमलेश आया है। इस समय कहां गीता रहस्य की चर्चा ले बैठे हैं।

कमलेश--नहीं, नहीं। बिजनेस की बात हो तो चलने दीजिए। इस समय मैं जल्दी में नहीं हूं। और सुलभा जी, कहिए, हो गए न बाबा साहब डाक्टर ?

सुलभा--हां, हो गए। --पर उन्हें कहां है उसका कोई महत्व ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालकराम--मैं कह रहा था···

कमलेश--पर उन्हें कहां महत्व है उसका ? परिषद ने जो उन्हें अपना अध्यक्ष चुना उससे यह डाक्टरेट तो बड़ी नहीं···

बालकराम--वैसे देखा जाए तो आपने काफी पुस्तकें लिखी हैं, सब विषयों पर लिखा है आपने, पर गीता पर अभी तक कुछ नहीं लिखा। आज कल धार्मिक हलचल का युग है। और राजनीति तो आपका प्रिय विषय है ही।

कमलेश--बिल्कुल ठीक कहा आपने, धर्म और राजनीति का समन्वय करने की किसी की कलम में सामर्थ्य है तो वह है केवल बाबा साहब की कलम में।

बाबा--यों मेरी बदनामी क्यों कर रहे हो जी ?

सुलभा--इसमें बदनामी की क्या बात है पिताजी ? आप जो ये वेद, उपनिषद श्रुति, स्मृति और पुराण छानते रहते हैं वह क्या यों ही ?

बाबा--अरी, उस से मेरा मनोरंजन होता है। कथा साहित्य लिखते-लिखत थक जाने पर ऐसी चलती-फिरती पढ़नी ही पड़ती हैं···

बालकराम--अब क्या कहा जाय बाबा साहब ? श्रुति, स्मृति, पुराण आदि चलती-फिरती रचनाएं हैं ? अपनी यह आर्य संस्कृति जिन ग्रथों पर आधारित है···

बाबा--हैं, हैं! ठहरो ! ऐसा कुछ भयंकर बोलने के पहले अपने सौदे की बात कर लो। क्या कह रहे थे ?

बालकराम--हां, इस तरह आइए विषय पर। मेरा प्रस्ताव है कि···(राजा भैय्या आकर चुपचाप कपड़े उतारने लगता है। उसके आते समय बालकराम जी बातें करते रहते हैं।)

बाबा--कहां गए थे जी राजा ?--ये बालकराम जी और कमलेश आए हैं :--

राजा--(एक ओर खड़ा होकर क्रोध से) मैं देख रहा हूं, अन्धा नहीं हूं।

बाबा--इतन नाराज़ क्यों हो रहे हो राजा ?

सुलभा--क्या हुआ ?

राजा--पूछती हो क्या हुआ। घर तक चलकर आयी लक्ष्मी को ठुकरा देते हैं और पूछते हैं, 'इतने नाराज़ क्यों हो रहे हो।' राजा क्या सिर पटक कर जान दे दे आपके सामने ?

सुलभा--ऐसा अशुभ न बोलिए।

राजा--अब और क्या अधिक अशुभ होना बाकी रहा है ? वह गोपाल राव आया था न अभी ?

सुलभा--हां, आये थे। क्यों, क्या हुआ ?

राजा--कहती हो क्या हुआ। आज हाथ से हजार रुपए गंवा दिए। वह अभी पांच सौ रुपये अग्रिम देने के लिए तैयार था।

बाबा--और उस पर तुम्हें विश्वास हो गया ? तुम्हें पता है न आज तक उसने मेरे कितने रुपए दबाए हैं।

बालकराम--बड़ा धोखेबाज है वह। मुझे भी हज़ारों का चूना लगा चुका है। यों ही अपनी औकात से अधिक आंकड़े बताता है और वे आंकडे केवल आकड़े ही रह जाते हैं।

राजा--आप चुप रहिए जी। (बाबा साहब से) तब और बात थी। अब स्थिति बदल गयी है। यही बालकराम जी कल सैंकड़ों में पुस्तकें लेंगे उससे। घर में इस कदर अंधेरा छाया हुआ है और कहीं कोई आशा की किरण चमकने लगती है तो आपको सहन नहीं होती। ऐसी किस बात की अकड़ है ?···

सुलभा--कह रही हूं, आप चुप हो जाइए !

कमलेश--आप भूल रहे हैं राजा भैय्या। बाबा साहब के इस मिज़ाज पर ही हमें अभिमान है। दूसरा तो कोई दिखा दीजिए ऐसा दमदार लेखक ? दस-दस रुपल्ली के लिए हम लोग दर-दर भटकते रहते हैं पर ये हज़ारों के लिए भी सिर नहीं झुकाते। इसीलिए तो हम लोगों ने उन्हें अध्यक्ष चुना था।

राजा--पर अध्यक्षता जमाकर जब वापस आए तो मजदूर को एक आना मुझे देना पड़ा था। केवल सम्मान को क्या चाटना है ? होगा बड़ा स्वाभिमान पर स्वाभिमान की ज्वालाओं से चूल्हा नहीं जलता। और यहां मुझे पचास रुपयों के लिए खपना पड़ता है तब जाकर कहीं तीन थालियां लगती हैं। तीन महीने से घर का किराया चढ़ता जा रहा है—घर का मालिक रोज कुरकी की धमकी देता है--

बालकराम--यह ठीक है बाबा साहब ? फिर मुझसे क्यों न कहा आपने ? (सब जेबें टटोल कर देखता है) शायद पर्स भूल आया--जाते ही भेज देता हूं--पच्चीस रुपये भेज देता हूं--

बाबा--सुनो राजा। पच्चीस रुपये, समझे--देखा न कमलेश, फौरन पच्चीस रुपये भेज देने की इन्होंने हिम्मत की। मामली रकम नहीं है यह--पच्चीस रुपये, समझे--

राजा--पच्चीस आने भी जेब में हैं ? कहते हैं पच्चीस रुपए।

बाबा--अरे, तुम जमाई हो न मेरे ? कम-से-कम इनके सामने तो मेरी बेइज्जती न करो। मेरी लाचारी जानकर इनका दर जो कम हो जायगा।

बालकराम--ना, ना, ना, ना ! मैं उनमें से नहीं हूं समझे। मेरा व्यवहार चोखा होता है। एक बार तै हो जाने पर उसमें फर्क नहीं होगा।

कमलेश--पर जो एक बार तय होता है वही कम से कम रकम पर होता है।

भैय्या--तो क्या गोपाल की तरह किया करूं ? हजार ठहराऊं और दस दूं ?

बाबा--यह खींचातानी किस लिए ? आपका कहना क्या है, कह डालिए एक बार। सुलभा, इधर आओ। (सुलभा निकट आती है। वे उसके कान में कुछ कहते हैं। वह सकारात्मक गर्दन हिलाती है और जाकर राजा भैय्या के कान में कुछ कहती है--वह निश्चित रूप से नकार देकर एक ओर हट जाता है। शेष तीनों व्यक्ति अपनी-अपनी जगह बैठे देखते रहते हैं।) अच्छा, अच्छा रहने दो। हां बालकराम जी, क्या कह रहे थे आप ?

बालकराम--मैं कह रहा था, आज हिन्दूसभा की दृष्टि से गीता पर एकाध पुस्तक--अच्छी खासी पांच सौ सफों की लिखिए। वैसी दस, ग्यारह फार्म की कोई शर्त नहीं--

राजा--क्या दीजिएगा ?

बालकराम--एक रुपया पेज, पच्चीस रुपये अग्रिम, पूरी पुस्तक मिलते ही और पछत्तर, और पुस्तक प्रकाशित होने पर हर महीने पचास के हिसाब से आठ महीने में बकाया रकम चुका दी जायगी।

बाबा--आपके हिसाब से यह पुस्तक लिखने के लिए कितने दिन लगेंगे ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भैय्या--वह आप अपना देख लीजिए। पूरी पुस्तक मिलते ही पछत्तर।

कमलेश--कम-से-कम छः महीने तो लगेंगे ही। गीता रहस्य लिखने के लिए लोकमान्य तिलक को छः साल लगे--और वह भी जेल म। खाने कपड़े की वहां चिन्ता नहीं थी। पुस्तक लिखना आरम्भ करते ही बाकी के सारे छोटे काम बन्द करने पड़ेंगे--

बाबा--और तब तक इन पच्चीस रुपयों पर चैन से काम करते रहें। क्यों, तुम्हें स्वीकार है राजा? तुम्हें स्वीकार हो तो मान जाता हूं।

राजा--पच्चीस से कैसे गुजारा होगा बालकराम जी?

बालकराम--तो पचास देता हूं। पुस्तक पूरी होते ही शेष पचास।

बाबा--(राजा भैय्या से) है स्वीकार?

राजा--फिर गोपालराव का ही काम पहले लीजिए। वह सौ रुपये अग्रिम दे रहा है। और ढाई सौ पृष्ठों की पुस्तक पूरी होते ही सौ और। चार रुपये पेज के हिसाब से वह हजार रुपए देने वाला है।

बाबा--क्यों री सुला। गोपाल राव का काम ले लूं?

सुलभा--नहीं।

बाबा--सुनो राजा।

सुलभा--ऐसी पुस्तकें पिताजी नहीं लिखेंगे। इसकी अपेक्षा भीख मांगना क्या बुरा है?

बालकराम--इसीलिए मैं कहता हूं कि रुपया पेज मिले तो भी इज्जत बढ़ेगी।

कमलेश--और उधार भी बढ़ेगा-- यदि कोई उधार दे तब।

बाबा--क्यों जी राजा, अब बोलते क्यों नहीं?

राजा--मैं सोचता हूं, गोपालराव का काम ले लेना चाहिए।

सुलभा--नहीं--मैं समझती हूं कम पैसे मिलने पर भी बालकराम जी का ही काम लेना चाहिए।

बाबा--अच्छा, अच्छा! अब सुनिये बालकराम जी, मैं आपकी पुस्तक किस तरह लिखूंगा बताता हूं। महाभारत मेरी विशेष रुचि का ग्रन्थ है। ऐसा सुन्दर उपन्यास किसी भी उपन्यासकार ने अभी तक नहीं लिखा। उस सुन्दर उपन्यास में से किसी चोट्टे ने गीता की अमर बेल निकाली है। सारे उपनिषदों में से तत्वज्ञान लेकर उसकी गीता में खिचड़ी पका दी है। उस तत्वज्ञान में कहीं भी किसी बात का सामंजस्य नहीं यह सिद्ध करके दिखाता हूं। शंकराचार्य से लेकर लोकमान्य तिलक तक सभी टीकाकारों का खण्डन करता हूं--

बालकराम--ना, ना, ना ना! कुत्ता भी नहीं उठायगा ऐसी पुस्तक। आपके लिए तो गोपाल ही ठीक है। (मफलर गले में ठीक-ठाक करता, छाता संभालता हुआ जाने के लिए उठता है।)

कमलेश--(उसका हाथ पकड़कर उसे बैठाते हुए) आप मजाक भी नहीं समझते, बालकराम जी? बैठिए। (बालकराम जी बैठते हैं।)

बाबा--यह मजाक नहीं कमलेश, यह मेरा निजी मत है। कई दिनों से मेरी इच्छा थी कि ऐसी पुस्तक लिखूं। इसीलिए तो मैंने हां की। इस पुस्तक को लिखने के लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ेगा। कई पुस्तकों को छानकर नोट्स बनाने पड़ेंगे। कई आधार देखने पड़ेंगे, मराठी और अंग्रेजी किताबों के साथ-साथ संस्कृत टीकाकार और वैष्णव कालीन टीकाकार भी छानने पड़ेंगे--वैसे देखा जाय तो यह काम साल दो साल का है--पर मैंने पहले ही इसमें काफी काम किया हुआ है--

बालकराम--और इतना सब करके आप साबित करेंगे कि यह सब खिचड़ी है क्यों?...

बाबा--निस्संदेह।

बालकराम--तब मुझे आपकी पुस्तक नहीं चाहिए। (उठता है)

राजा--बैठिए भी--(राजा भैय्या एक कुर्सी ले जाकर बालकराम जी के पास बैठता है) गीता के बिना ही कौन-सा काम रुका है बालकराम जी? हम लोग किसी दूसरी पुस्तक के बारे में बात करें...

कमलेश--हां कोई नया उपन्यास...

बालकराम--उपन्यास बहुत हो गये। इस साल मैट्रिक में लगी हुई मराठी पुस्तक के नोट्स लिखिएगा?

बाबा--इसकी अपेक्षा तो मुझसे कोई हिसाब-किताब लिखने के लिए कहिए--जबानी हिसाब--जमा खर्च का तरीका--

राजा--जमा खर्च का तरीका ही पता होता तो यह हालत क्यों होती? वह रहने दीजिए। नोट्स लिखें तो क्या दीजिएगा?

बालकराम--दो सौ सफों तक बारह आने पेज। उससे आगे आठ आने पेज।

कमलेश--औसत एक रुपया पेज रखिए।

भैय्या--अधिक से अधिक औसत बारह आने।

राजा--ना, ना-- रुपया पेज।

बालकराम--अच्छा। ऐसा ही सही। एक रुपया। पर पेज का रुपया देने से मुझे कुछ भी न बचेगा। छपाई में ही सारा रुपया लग जायगा। पर बाबा साहब को कुछ देने का श्रेय मिल रहा है--अच्छा, अच्छा। स्वीकार है--रुपया पेज।

बाबा--एक दम तय भी कर लिया? और तुम भी उसमें शामिल हो गए कमलेश? और तुम सुलभा?

सुलभा--मैं ये बातें नहीं समझती।

बाबा--किन्हीं चार-पांच मूर्खों द्वारा किन्हीं और दस-पांच मूर्खों की पुस्तकों में से की हुई नकल पर मैं नोट्स लिखूं। मेरे पैरों की धूल के बराबर भी हैं ये लेखक?

सुलभा--नहीं। नोट्स न लिखिए। और किसी पुस्तक के बारे में सोचिए।

बालकराम--देखिए बाबा साहब मैं कारोबार करने वाला आदमी हूं। अपनी इच्छानुसार कोई पुस्तक लिखें, मैं पैसे खर्च करके उसे छापूं, और अन्त में मेरे पैसे जाएं गोदाम में, इतना मैं अमीर नहीं हूं। माफ कीजिए, समझे। पर कहता हूं जिद की भी कोई सीमा होती है। अब आप और कितने दिन (राजा भैय्या की ओर देखकर) दूसरे की कमाई पर बसर करेंगे? ऐसी अकड़ भी किस काम की? जरा व्यापार की दृष्टि से देखिए। इस तरह हवा में उड़ने से पैरों के नीचे जमीन नहीं रहती। और जमीन पर मजबूती से पैर टिके बिना पेट भर रोटी नहीं मिलेगी बाबा साहब। माफ कीजिए--माफ कीजिए आप लोग भी--जाता हूं सुलभा जी--माफ कीजिए (जाने लगता है)

सुलभा--(दरवाज के पास उसे रोककर) और कोई रास्ता नहीं है बालकराम जी?

बालकराम--नहीं--! यह बिजनेस है सुलभा जी। अच्छा चलता हूं। नमस्ते। (जाता है)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क्षण भर चारों ओर स्तब्धता)

बाबा--(तिरस्कार से हंसते हुए, स्वगत) यह है व्यापार ! क्यों जी कमलेश, बिना बुद्धि बेचे क्या बिजनेस ही नहीं होता ? इसके बिना क्या पेट ही नहीं भरता ?

राजा--कमाने वाला जमाई होना चाहिए, बस। उसके बल पर अकड़ना चाहिए। पर उसे सैकड़ों में वेतन नहीं मिलता इसे कौन ध्यान में ले ?

बाबा--सुना कमलेश, यह है मेरा बड़प्पन। यह है मेरी अध्यक्षता। मेरी डाक्टरेट। मजेदार बात है। क्यों सुलभा ? एक तुम-सी बेटी थी और उसका विवाह कर दिया एक तनख्वाह वाले से इसी लिए अब तक जीवित हूं। बड़े एहसान हैं आप लोगों के मुझ पर। नहीं तो कहीं भूखों मर जाता--

कमलेश--ऐसा क्यों कहते हैं बाबा साहब, इसमें से क्या कोई भी हल नहीं निकल सकता ? हर बात में ऐसी जिद करने से कैसे काम चलेगा। मैं आपके सामने बालक हूं पर मन नहीं मानता इसलिए कहता हूं--इसमें से कुछ न कुछ हल निकलना ही चाहिए।

बाबा--हल एक ही है। कहीं नौकरी करूं। रोजी का कोई दूसरा आसरा हो जाय। तो ये सारे व्यापारी लोग अपने आप ठिकाने पर आ जायेंगे। मैं लाचार हूं यह देखकर ही मुझे पैरों नीचे दबाए हैं--है कहीं मेरे लायक नौकरी ?

सुलभा--यों उल्टी-सीधी बातें क्यों करते हैं पिता जी ? अब इस उम्र में क्या आप नौकरी करेंगे ?

बाबा--फिर क्या करूं ? कितने दिन दूसरे की कमाई पर जीऊं ?

राजा--दूसरे की कमाई पर जीने का दुख है तो चार दुनियादार आदमियों की तरह से रहिए। दूसरे का कुछ ख्याल रखिए। दूसरे को कैसी तकलीफ होती है इसका ध्यान रखिए--कुछ दूसरे की भी सुना कीजिए--तब आपने सुना, इसीलिए, न डाक्टरेट मिली ?

कमलेश--यानी ?

बाबा--यानी--मैं बताता हूं। इसके उस महामूर्ख वाइस-चान्सलर ने अर्थशास्त्र पर एक पुस्तक लिखी थी। सबने उसकी आलोचना की--'टाइम्स' ने उस पुस्तक को 'कन्डेम' किया। इसने मुझे कहा और मैंने उस पुस्तक का समर्थन किया--

कमलेश--वह एक आदर्श विवेचन था। 'टाइम्स' भी उसका लोहा मान गया।

बाबा--मूल पुस्तक पढ़ी थी तुमने ?

कमलेश--नहीं। देखी भी नहीं।

बाबा--बड़े भागवान हो। इस राजा की बातों में आकर मैंने अपनी बुद्धि एक बार बेच दी--सोचा, इसे तरक्की मिलेगी--इसी से तो उस वाइस चान्सलर ने जिक्र किया था। पर हुआ क्या ? मुझे डाक्टरेट मिली और इसके पचास के इकावन भी न हुए। अब ऐसा करो राजा कि मेरी यह उपाधि किसी साहूकार के पास गिरवी रख दो और उस पर पैसा लो। तुम्हारे साहब की कुर्सी के सामने सिर झुकाने का मुझे इनाम मिलने दो।

राजा--(सुलभा से) सुन लो--सुन लो--सुन लो ये अपने पिताजी के मधुभाष्य। यह है मेरी परेशानी का पुरस्कार। कृतघ्न हैं आप, बस।

कमलेश--हैं, हैं, राजा भैय्या--राजा भैय्या, ज़रा जबान सम्भाल कर बोलो। क्या कह रहे हो यह ?

राजा--तुम हो आवारा--घर न बार। पत्नी नहीं, गिरस्ती नहीं--चार आने की प्लेट से पेट भर कर सारी बम्बई में भटकने वाले तुम साहित्यिक हो--एक बार विवाह करके देखो--घर बसा कर देखो--और पत्नी के साथ एक ससुर भी घर में ले आओ, तब समझोगे मेरी तकलीफें--

सुलभा--(कमलेश से) आप चले जाइए अभी।

राजा--क्यों जाइए ? मैंने झूठ कहा ? तुम लोगों के कारण मेरी विडम्बना हो रही है।

सुलभा--अब मैं कहीं नौकरी करती हूं।

राजा--कौन नौकरी देगा तुम्हें ? बी० ए० बी० टी० औरतें घूम रही हैं मारी-मारी। तुम केवल मैट्रिक हो, ट्रेन्ड होतीं तो म्यूनिसिपैलिटी ही में नौकरी मिल जाती---

सुलभा--कहा शार्टहैंड टाईपिंग सीखती हूं तो तुम न माने।

राजा--यानि अपने हाथों से तुम्हें किसी साहूकार सालीसीटर के कमरे में धक्का दूं ?

कमलेश--कैसी बातें करते हो राजा भैय्या ?

राजा--एक बार विवाह करके देखो--

कमलेश--इतना देखकर ? ना, ना बाबा।

सुलभा--अब आप जाइए तो कमलेश जी। कल दोपहर को फिर फुरसत से आइए।

बाबा--(स्वगत) कल दोपहर को। (हंसते हुए कमलेश से) हां। कल दोपहर को ही आओ। उस समय किसी का दखल न होगा। कल दोपहर को ही आना। तब हम लोग दिल खोल कर बातें करेंगे।

कमलेश--तो जाता हूं--नमस्ते--नमस्ते--नमस्ते। कल दोपहर को अच्छा सुलभा जी--(जाता है)

बाबा--कल दोपहर को।

सुलभा--क्या कह रहे हैं पिताजी ?

बाबा--कह रहा हूं कि इस प्रकार अब कैसे चलेगा ? मैं हूं ऐसा नालायक। मैंने स्वयं ही अपनी गठरी तुम लोगों के सिर लाद दी--अब मुझे अफसोस हो रहा है। --उस समय सोचा था तुम लोगों को मुझसे कुछ न कुछ फायदा ही होगा--

राजा--हां।

बाबा--ठीक है। वह मेरी भूल थी। मुझे तुम से ही फायदा हुआ। मैं तो तुम्हारे लिए एक गलत सितारा बन बैठा।

राजा--पर क्यों ?

बाबा--अपनी अकड़ के कारण।

राजा--तो उसे छोड़ दीजिए।

बाबा--वह सम्भव नहीं। अब बहुत पक गया हूं। निखट्टू हो गया हूं--सठिया गया हूं।

सुलभा--पिताजी, पिताजी, आप तो ऐसी बातें न कीजिए।

बाबा--सचमुच सठिया गया हूं। मस्ती चढ़ रही है मुझ पर। अपने भतवालेपन के पीछे मैं तुम बच्चों के कल्याण की भी पर्वाह नहीं करता, इतना मस्त हो रहा हूं।

राजा--यह झूठ नहीं है।

सुलभा--चुप रहिए न।

बाबा--कौन कहता है झूठ है ? लेकिन अब मुझ में परिवर्तन होना सम्भव नहीं।

राजा--नहीं न ? तो अब मैं क्या करूं ? सौ ही सही पर वह गोपालराव आज दे देता। उन्हें ठुकरा दिया। अब यह पचास--सोचा पचास ही सही, उतने ही दे देता घर मालिक को। इसके जिस्म पर अब रत्ती भर भी सोना बाकी नहीं बचा--मैंने अपने सोने के बटन भी बेच दिए--घड़ी बेची,--आप ही ने तो दी थी विवाह के समय--

बाबा--उस समय दो सौ रुपये मिले थे एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक के--एक दम। अब मुझे बेच दो न कहीं।

राजा--कौन पालेगा ऐसा हाथी ? अब तो इसे सिनेमा लाइन में भेजना बाकी है।

बाबा--तो आओ न सुलभा। उसमें क्या बुरा है। फिर इसे भी नौकरी करने की जरूरत नहीं।

राजा--अब वह आप की लड़की नहीं, मेरी पत्नी है। अभी मुझे अपनी पत्नी की जरूरत है।

बाबा--बड़े प्यार करने वाले पति हैं ये ! क्यों सुलभा ?

सुलभा--(राजा भय्या से) अब बस भी कीजियेगा ?

राजा--कौन बोल रहा है ? मैं या तुम्हारा बाप ? वार हो रहे हैं मुझ पर और रो रही हो तुम--मेरे लिए नहीं, अपने बाप के लिए। अब बहुत हो गया। इसी क्षण इस बात का फैसला होना चाहिए बाबा साहब। गोपालराव के लिए उपन्यास लिखियेगा या नहीं ?

बाबा--नहीं।

राजा--और बालकराम जी के लिये किताब ?

बाबा--नहीं। एक बार तुम्हारी बात मानी, उसका फल पाया यह डाक्टरेट। पर तब से मन बराबर कसक रहा है। कितना बड़ा अधःपतन था वह मेरा।

राजा--फिर अब क्या कीजिएगा ?

बाबा--मैं क्या बताऊं ?

राजा--अब मैं तो हार चुका। कल सुबह घर मालिक आयेगा। सामान कुर्क करेगा। मुझ में वह बेइज्जती सहन करने की क्षमता नहीं। बोलिए, क्या कीजिएगा आगे ?

बाबा--तुम्हें जो करना हो, करो।

राजा--यह मैं अच्छी तरह जानता था··· (भीतरी कमरे में जाता है।)

सुलभा--पिताजी।

बाबा--क्या बेटी ?

सुलभा--इसमें से क्या कोई भी हल नहीं निकल सकता ?

बाबा--नहीं--नहीं--नहीं।--मर जाना मंजूर है पर इसके बाद मैं अपनी लेखनी चोरों को न बेचूंगा। इन चोरों के घर भरने के लिए क्या मैं अपना मुंह नरक में घुसेड़ दूं ?···मरूं मैं···खून सुखाऊं मैं···मेरे लेखन पर इनके बंगले खड़े हो रहे हैं और मैं यहां एक पैसे के लिए महंगा हो गया हूं। मेरे पास अतिथि को चाय पिलाने के लिए भी पैसा नहीं। हमारा खून चूस रहे हैं वे, इनके पैरों पर सिर रगड़ूं ? नहीं। भूखों तड़प कर मर जाऊं तो भी नहीं--नहीं--नहीं--नहीं। (इस भाषण के दौरान में राजा भैय्या भीतरी सामान लाकर दरवाजे के पास रखता है। यह बाबा साहब नहीं देखते। सुलभा दोनों की ओर देखती खड़ी रहती है।)

सुलभा--(राजा भैय्या से) यह क्या हो रहा है ? (चिल्ला कर) मैं पूछ रही हूं, क्या हो रहा है यह ?

राजा--(बिना जवाब दिए गेलेरी में जाकर) कुली, ए कुली, ए टोकरी वाले··· ऊपर आना दोनों।

सुलभा--कहां जा रहे हो ?

राजा--मैं यह स्वप्न देख चुका था। कमरा देख आया हूं। एक कमरा हमारे लिए काफी है। कल घर मालिक के हाथों बेइज्जती होने के पहले यहां से चले जाना ही ठीक है।

सुलभा--और पिता जी।

(दो कुली आते हैं)

राजा--उठाओ यह सामान और नीचे ले चलो···(बाबा साहब से) आपकी फूटी कौडी को भी मैंने हाथ नहीं लगाया है। आपके खरीदे हुए बर्तन भांडे वहीं पड़े हैं···चलो सुलभा।

सुलभा--पिता जी को यहीं छोड़कर ?

राजा--नहीं तो यहीं रहो···(सामान कुली के सिर पर रखवाता है)

बाबा--सुला, वे बर्तन भी लेती जाओ। ऐन वक्त बर्तन नहीं मिलेंगे खाने के।

राजा--तब तक डिब्बा मंगवायेंगे, कोई जरूरत नहीं उन बरतनों की।

बाबा--वे बर्तन ले जाओ सुलभा। (सुलभा एकदम रोने लगती है) रोती हो बेटी ? इसमें रोने की क्या बात है ? मैं जिन्दा हूं इसलिए तुम्हें रोना पड़ता है। इसके पहले मर गया होता तो तुम अब तक आंखें पोंछ कर अलग हो गई होतीं। जाओ अब !

सुलभा--कैसे जाऊं ?

राजा--चलो जल्दी। देर हो रही है··· (बाबा साहब उठकर भीतर चले जाते हैं।)

सुलभा--पिता जी को छोड़कर ? यहां अकेले ? कौन उनकी देखभाल करेगा ?

राजा--उनकी अकड़ ! उनकी मस्ती ! उनका अभिमान ! और उनके पुजारी भी तो हैं ही !

सुलभा--दरिद्री बिचारे। अपनी देखभाल तो कर नहीं सकते···(निकट जाकर) तो चलना ही पड़ेगा ?

राजा--नीचे कुली इन्तजार कर रहा है। (बाबा साहब अन्दर से सुलभा के सूखने के लिए डाले हुए कपड़े और धोती में बंधा हुआ पुस्तकों का गट्ठर लिए आते हैं।

बाबा--ये तुम्हारे सुखाने के लिये डाले हुए कपड़े···और ये मेरी पुस्तकें।

राजा--नहीं चाहिएं ये दरिद्री पुस्तकें।

बाबा--इन्हें अपने पास ही रहने दो सुला। ये मेरे पंचप्राण हैं मेरा शरीर यहां है तो भी मेरे इन प्राणों को अपने आसपास रहने दो। (हंसकर) रोती क्या हो बेटी। कभी न कभी तो यह होना ही था। वैसा नहीं तो ऐसा। मेरा आशिष तुम्हारे साथ है। जाओ। सुखी रहो।···पीछे मुड़ कर न देखो··· (यह कहकर उसे अपने हाथ से पकड़ कर गलियारे के बाहर पहुंचाता है। जाते समय वह कपड़े और किताबों की गठरी ले जाती है।)

राजा--(कठोरता से) नमस्ते।

बाबा--नमस्ते।

(राजा भैय्या एक दम रो पड़ता है और बाबा साहब के पैरों पर सिर रखता है। उसे उठाकर वे सीने से चिपटा लेते हैं।

बाबा--(प्रसन्न मुख होकर) जाओ बेटा। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे···तुम्हें मेरा आशीर्वाद है। तुमने मेरी सेवा की है। मैं उसे न भूलूंगा। मैं कृतघ्न नहीं हूं, राजा भैय्या, मैं कृतघ्न नहीं हूं ! जाओ अब। ईश्वर तुम्हारा-- कैसा पगला हूं मैं ? पुरानी आदत जो है ? ढोंग ! सब दिखावा ! कहते हैं ईश्वर ! ···अब जाओ राजा। सुला नीचे तुम्हारा इन्तजार कर रही है···

(बाबा साहब उसे भी बरबस बाहर निकालते हैं। गलियारे के कठघरे के सहारे खड़े होकर प्रसन्नमुख से नीचे देखते रहते हैं। ऐसा आभास होता है कि वे रोने के उठते हुए आवेग को दबा रहे हैं, कुछ देर के बाद अन्दर जाते हैं। कुर्सी पर बैठते हैं। चारों ओर देखते हैं। हाथ फलाकर जम्हाई लेते हैं और मन ही मन खुश होकर मंद-मंद मुस्काने लगते हैं। उस मुस्कान में उनके चरित्र का पूरा प्रतिबिम्ब स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।)

--परदा--

रूपान्तरकार : र० श० केलकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीली मिट्टी

अमृतराय

नींद में ही जैसे मैंने माया की आवाज़ सुनी और चौंककर मेरी आंख खुल गई। बगल के पलंग पर नज़र गई, माया वहां नहीं थी। आज इतने सवेरे माया कैसे उठ गई, कुछ बात समझ में नहीं आई।

आवाज़ दरवाज़े पर से आई थी। मैं हड़बड़ाकर उठा और करीब पहुंचा तो क्या देखता हूं कि माया दरवाज़ा खोले खड़ी है और बाहर के बरामदे में एक दुबला काला आदमी, मंझोले कद का, सिर्फ एक ज़रा-सी लुगड़ी लपेटे, बाकी सब धड़ और टांगें नंगी, उकड़ूं बैठा था। माया दरवाजा खोलने आई तो आज सबसे पहले इसी आदमी के दर्शन हुए। मैंने भी देखा और मुझे भी गुस्सा आया कि यह मरदूद यहां कैसे आ मरा। मैंने डपटकर पूछा--"कौन हो तुम? यहां कैसे आए?"

दोनों ही सवालों का जवाब आसान था--मैं एक गरीब भिखमंगा हूं, जिसके सर पर छप्पर नहीं है। या--जी नहीं, शिकरम नहीं ली, यों ही चलकर आ गया। मगर उसने कोई जवाब नहीं दिया जो कि मुझे और भी खला और मैंने आवाज़ में और भी तेज़ी लाते हुए कहा--"बोलता क्यों नहीं? बहरा है?"

फिर भी कोई जवाब नहीं। जवाब हो भी क्या सकता था; अगर वह सचमुच बहरा था। मगर कौन कह सकता है कि वह बहरा था ही, आजकल इस तरह के बने हुए आदमी.....

लेकिन वाक्य पूरा करने के पहले ही मुझे लगा कि यह मैं गलत बात कह रहा हूं। बने हुए आदमी दिन के वक्त भस बनाकर भीख मांगा करते हैं, इस तरह रात को किसी के बरामदे में आकर सो नहीं जाते, जाड़े की ऐसी रात में। और मेरा ध्यान उसके ओढ़ने बिछौने पर गया। बिछौना निखहरी जमीन और ओढ़ना टाट का एक घिसा हुआ पौन गज का टुकड़ा (और हां, एक चिक जो उसने हमारे दरवाज़े से उतारकर अपने ऊपर डाल ली थी)। उस वक्त जब कि एक गद्दे और एक लिहाफ से भी हमारा काम ठीक से नहीं चलता और जी होता है कि और कुछ ओढ़ लें! कैसे कटी होगी इसकी रात? नींद तो क्या आई होगी? दांत बजते रहे होंगे, जांघों में हाथ डाले राम का नाम जपता पड़ा रहा होगा या शायद टहल-टहलकर ही रात काटी हो। किस ने देखा है? और किस को दिखाने के लिए यह शक्ल बनाई है? इन ठंडी सूनी दीवारों को? बने हुए आदमी--यह क्या बना हुआ आदमी है? और अपनी बात खुद मुझे सालने लगी।

मगर उस आदमी को इस समय की मेरी आत्मपीड़ा से भी उतना ही कम प्रयोजन था, जितना दो मिनट पहले की कठोरता से। ठिठुरते हुए हाथों से चिक को दरवाज़े पर टांगने के बाद वह अब कच्चे पपीते के बीज, जो तमाम बिखरे हुए थे, बटोरकर एक जगह कर रहा था। लगता है, उसने हमारे ही पेड़ से एक कच्चा पपीता तोड़कर उससे अपनी भूख बुझाने की कोशिश की थी। लेकिन अभी शायद वह पूरी तरह जानवर नहीं बन पाया था, इसीलिए पूरा पपीता नहीं खा सका था। आधा टुकड़ा किसी तरह नोच-नाच कर वह खा गया था और आधा ज्यों का त्यों पड़ा था। पपीते क बीज सब इधर-उधर छिटके हुए थे, जिन्हें अब वह बटोर रहा था।

पता नहीं, क्यों उसे इस बात का ख़याल आया। वह यह भी सोच सकता था कि जिस का घर है, वह सफाई करवा ही लेगा। मगर नहीं, वह जानवर नहीं है कि सफाई का उसे कोई ख़याल न हो। जहां उसने रात गुज़ारी है, जहां से अब वह जा रहा है, उस जगह को गंदा करके वह नहीं जाना चाहता। मैं नहीं कह सकता कि उसके दिल में क्या बात थी। हो सकता है, बस इतनी ही बात रही हो कि यह सब गंदगी साफ़ कर दो, नहीं तो साहब नाराज़ होंगे और शायद अपने नौकर को बुलाकर दस-पांच लात-घूंसे लगवा देंगे। जो भी बात उसके दिल में आई हो और जो भी उसके पहले के तजुर्बे रहे हों, मैं कुछ भी नहीं जानता। मैंने बस इतना देखा कि वह जाड़े के मारे ठिठुरती हुई उंगलियों से जैसे-तैसे गंदगी इकट्ठी कर रहा है।

पता नहीं कैसे-कैसे लोगों से उसका पाला पड़ता होगा, क्या-क्या इस पर बीतती होगी, दुनिया को यह कैसा समझता होगा? आज इन्सान जिस तरह तरक्की करता हुआ हजारों साल पीछे पहुंच गया है, जबकि वह पहाड़ की गुफाओं और जंगलों में रहता था और इसी तरह नंगा घूमता था, और शायद इसी तरह कच्चे पपीतों पर बसर करता था। इस तरक्की में इस आदमी का क्या हाथ है। और मुझे पता नहीं क्यों उस पर बेहद तरस आया। इस बात पर कि दुनिया म उसका कोई न था, उसके पास कहीं अपनी एक नन्हीं सी कोठरी भी न थी और बस इसी आसमान के छप्पर के नीचे उसकी रातें बीतती थीं, और यह कि इस ठिठुरती हुई सर्दी में उसके तन पर बस एक लुगड़ी थी और वह गाय-बैल की तरह कच्चा पपीता खा रहा था।--मगर इन सब बातों से ज्यादा इस बात पर कि उसने एक शब्द भी नहीं कहा। यह नहीं कि वह गीता का प्रवचन देने लग जाता या आल्हा सुनाने लग जाता, मगर फिर भी कुछ तो वह कह ही सकता था। वह मेरे सामने गिड़गिड़ा सकता था, रो सकता था। मगर उसने तो कुछ भी नहीं किया, बस उठकर बैठ गया और चलने की तैयारी में जगह की सफ़ाई करने लगा। उसने न कोई शिकायत की और न कोई फ़रियाद। कैसा अजीब आदमी है! इसने हमसे अगर खाना खिलाने की तलब की होती तो क्या हम उस खाना न खिला सकते थे या कहा होता तो तन ढांकने के लिए दो-एक कपड़े न दे सकते थे। मगर अब शायद उसे इन्सान स इतनी भी उम्मीद बाकी नहीं रही थी। अब तो शायद वह सिफ इसलिए जी रहा है कि मौत नहीं आती और अगर किसी तरह न आई तो एक रोज खुद जाकर हाथ पकड़कर उसे खींच लाएगा और फिर उसी घिसे हुए टाट के कफ़न में लपेटकर कोई मेहतर उसे घसीटकर कहीं फेंक आयेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी कहने में जितनी देर लगती है, वाकये में उतनी देर नहीं लगती। बीज अब उसने सब इकट्ठा कर लिए थे और उन्हें फेंकने बाहर जा रहा था। इस वक्त मैंने उसे बतलाना जरूरी समझा कि इस तरह किसी के घर में घुस आना ठीक नहीं होता। अब फिर कभी मत आना। मगर अपने ही कानों में मुझे अपने ये शब्द खोखले सुनाई पड़े।

वह लौटा और अपना टाट उठाकर चला गया और मैं हक्का-बक्का उसे देखता रहा। मैं कुछ समझ नहीं पा रहा था कि मुझे क्या करना चाहिए। तब तक वह काफ़ी दूर चला गया था। मैंने माया से कहा--"एक कुर्ता--पयजामा तो दे देत उसे....और हां एक रुपया भी लेती आना!"

और तब मैंने भोर के धुंधलके में उस आदमी को आवाज़ दी--"ओ आदमी! ओ आदमी!" क्योंकि उसका नाम मुझे नहीं मालूम था।

वह लौट पड़ा। माया ने लाकर एक कुर्ता-पाजामा और एक रुपया मुझे दिया और मैंने बाहर निकलकर दोनों चीजें उसके हाथ में दे दीं। दोनों कपड़े और रुपया लेकर भी उसने कुछ नहीं कहा, कुछ भी नहीं! और जैसे आया था वैसे ही चला गया। मैं कुछ देर तक उसे देखता रहा और फिर पता नहीं क्यों मुझे बहुत जोर से रुलाई छूटी और मुझे अपनी आंखें नम होती मालूम हुई और फिर अच्छी तरह आंसू बहने लगे। मुझे खुद अपनी इस हालत पर बड़ी हैरानी थी क्योंकि मैं किसी मानी में बहुत नर्म दिल का आदमी नहीं हूं। मगर फिर भी हर बार जैसे एक लहर-सी उठती थी जो आकर मुझसे टकराती थी और मुझे भिगोकर चली जाती थी। माया तब तक भीतर दरवाज़े पर ही खड़ी थी और मैं नहीं चाहता था कि वह या कोई भी मेरे इन बचकाने आंसुओं को देखे। मैं बाहर सड़क पर निकल गया और घूमने लगा। मगर मैं घूम नहीं रहा था, रो रहा था, जैसे रह-रहकर कोई मेरे दिल को मसोस रहा हो।

माया जाने को हुई, तो उसने पुकारकर कहा--"भीतर चलो न, वहां क्या कर रहे हो?"

अपनी आवाज़ की भर्राहट को छिपाने की कोशिश करते हुए मैंने कहा--"अब नींद थोड़े ही आएगी, अच्छी तरह सबेरा हो गया है।"

और फिर कोई पन्द्रह मिनट तक मैं वहीं घूम-घूमकर रोता रहा और शायद बरसों बाद मैं इस तरह रोया था। मुझे अपने ऊपर कुछ हैरानी भी मालूम हो रही थी, कुछ शर्म भी आ रही थी और यह सोचकर कुछ खुशी भी थी कि मेरा दिल अभी मरा नहीं है। मैं नहीं जानता, हो सकता है इसीलिए मैंने अपने आंसुओं को कुछ ढील भी दे रखी हो। मगर इतना मैं जानता हूं कि वह बेईमान आंसू न थे और शायद उस आदमी के दिल की घुटन थी जो इस वक्त मेरे आंसुओं की शक्ल में बाहर आ रही थी क्योंकि मुझे लगता है कि जैसे कभी आग के एक ही गोले से छिटक कर यह सारी सृष्टि बनी थी वैसे ही किसी कुम्हार ने गीली मिट्टी के एक ही गोले से सब इंसानों के दिल भी बनाए थे और उनका साज़ कुछ इस तरह मिलाकर रख दिया था कि एक का दर्द दूसरे के सीने में जाकर बजने लगता है।

●

चेखव और मास्को आर्ट थियेटर--(पृष्ठ २८ का शेषांश)

आशावादी है, यद्यपि पीड़ा की छिपी हुई धारा इसमें भी शुरू से लेकर अन्त तक बहती रहती है। छोटी-छोटी भूमिका वाले पात्रों का महत्व कम नहीं है और उनका सहारा लिए बिना नाटक उतने सजीव नहीं हो पाते। छोटे-से पार्ट में भी इतना कह जाते हैं कि उन्हें भूलना आसान नहीं होता। 'अंकल वान्या' में घर में रहने वाला बढ़ा अपने हंसी मजाक से, अपने गितार की धुनों से अपने जीवन के इतने रहस्य खोल जाता है कि दर्शक अपने आप को उनमें उलझा हुआ पाते हैं।

इन नाटकों में मास्को आर्ट थियेटर का सबसे अधिक सफल प्रयास इस बात में रहा है कि चेखव के पात्रों को बहुत ईमानदारी के साथ व्यक्त किया जा सके। पेरिस जैसे शहर के इस हाल में बैठे हुए दर्शक अपनी आज की दुनिया को भूल कर १९वीं शताब्दी के अन्त में रूस के एक पिछड़े हुए इलाके के एक छोटे से शहर में पहुंच जाते हैं। मंच की सजावट, फरनीचर, बाग बगीचे, उबा देनेवाली प्रकृति, पात्रों की धीरे-धीरे रेंगती हुई जिन्दगी, सूने घण्टे और पात्रों की मानसिक उथल-पुथल को चीरता हुआ एक सन्नाटा, सब एक अत्यन्त यथार्थवादी रूप में, अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से हमारे व्यक्तित्व का एक भाग बन जाता है। 'तीन बहनें' में दूसरे अंक के पटाक्षेप से पूर्व आवेग का चीत्कार 'मास्कोवा... मास्कोवा.....' सुनकर हमारे भीतर एक नया स्वर गूंजने लगता है।

चेखव ने नाटक, साहित्य और रंगमंच में पचास वर्ष जो नए प्रयोग किए, उस स्तर पर साधारण जीवन को आज तक चित्रित नहीं किया जा सका। जीवन में असीम निराशा और दुख के साथ-साथ चेखव ने भविष्य के प्रति आशा और मनुष्य में विश्वास प्रदर्शित किया है, जो उसका महान सम्बल था।

●

यमुनोत्री, गंगोत्री तथा गोमुख की यात्रा--(पृष्ठ ३६ का शेषांश)

कर हिम-कन्दरा के मुंह पर चले तो गए, लेकिन बड़ा खतरा मोल लिया। कन्दरा की छत में से बर्फ के बड़े-बड़े खण्ड टूट-टूट कर गिर रहे थे; लेकिन उनसे भी भयंकर वे पत्थर थे, जो हिमानी के ऊपर से बर्फ के पिघलने के कारण धड़ाम-धड़ाम नीचे गिर रहे थे।

दो-ढाई घण्टे हम लोग वहां ठहरे। कल्पनातीत ठंड होते हुए भी हमने हिम-जल में स्नान किया। बड़ी देर तक निर्निमेष नेत्रों से उस कन्दरा और उसमें से प्रवाहित भागीरथी की पावन धारा को देखते रहे। श्रद्धा से बार-बार सिर झुक जाता था। वहां की भव्यता और दिव्यता का हृदय पर जो प्रभाव पड़ा, वह अनुभूति की वस्तु है, शब्दों में उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता।

बहुत-से लोगों की धारणा है कि वहां गाय के मुख में से गंगा जी निकलती हैं। इसी से उसे गोमुख कहते हैं। ऐसी बात नहीं है। 'गो' कहते हैं पृथ्वी को। चूंकि वहां पहली बार गंगाजी पृथ्वी से निकलती दिखाई देती हैं, इसलिए उसे 'गोमुख' का नाम दिया गया है।

वहां से मार्ग से बदरीनाथ शायद १५ और केदारनाथ १८ मील

(शेष पृष्ठ ५९ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूस के सिबिरों का पिता बैकाल

कमला रतनम

अक्तूबर १९५७ में हमें सोवियत सरकार की ओर से साइबीरिया की सैर करने की अनुमति मिल गई। सोवियत संघ के उत्तर-पूर्व में फैले हुए भाग को साइबीरिया कहते हैं, यह भाग इतना बड़ा है कि फ्रान्स जैसे आठ देश इसके अन्दर समा जाएं। आजकल साइबीरिया के शासन, उद्योग आदि की सुविधा के लिए तीन भाग कर दिए गए हैं, उत्तरी साइबीरिया जहां लकड़ी और मंहगे रोएं वाले जानवर पाए जाते हैं, दक्षिणी साइबीरिया जहां गेहूं की खेती होती है, और पूर्वी साइबीरिया जहां लोहा, कोयला, हीरा आदि अनेक खनिज पदार्थों को निकाला जाता है और उन्हें तरह-तरह के उद्योग-धन्धों में लगाया जाता है। पूर्वी साइबीरिया की राजधानी इरकूत्स्क है। यह नगर बहुत पुराना है, इसकी स्थापना १९५२ में हुई थी, और पिछले ४०० वर्षों से यूरोप के व्यापारी इसी रास्ते से चीन और मंगोलिया से तिजारत करते रहे हैं। पुराने जमाने में साइबीरिया एक निर्जन प्रदेश था, यहां की जनसंख्या बहुत थोड़ी थी और जाड़ों में यहां की पृथ्वी घनी बरफ से ढक जाती थी। रहने तथा आने-जाने में यहां के निवासियों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। कभी-कभी तो जमी हुई बरफ पर सूरज की धूप इतनी तेज़ी से चमकती थी कि आदमियों को अन्धा कर देती थी। ज़ारों के जमाने में राजनैतिक कैदियों को देश निकाले की सज़ा साइबीरिया में ही भुगतनी पड़ती थी। जिस प्रकार हमारे देश में लोग 'काले पानी' का नाम सुनते ही डर जाते थे, उसी प्रकार पुराने जमाने में रूसी लोग साइबीरिया के नाम से डरते थे। प्राचीन समय में मास्को से इरकूत्स्क पहुंचने में महीनों लगते थे, और बहुत से तो रास्ते की कठिनाइयों और बर्फ से मर जाते थे, परन्तु अब हम मास्को से नए रूसी 'तू स्तो चितेरी' नमाक जेट विमान में बैठकर सात घण्टे में सीधे इरकूत्स्क पहुंच गए।

'साइबीरिया' अंग्रेज़ी भाषा का शब्द है। रूसी भाषा में इसे 'सिबिर' कहते हैं। यह 'सिबिर' संस्कृत 'शिविर' का ही दूसरा रूप है जिसका अर्थ है डेरा अथवा पड़ाव। साइबीरिया के निकट ही मंगोलिया और बुरयात-मंगोलिया नामक प्रदेश हैं। यहां के लोग अब भी ऊनी नमदों के तम्बू बना कर रहते हैं। अभी कुछ वर्ष पहले तक मंगोलिया, बुरयात मंगोलिया और साइबीरिया इन सब देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार था। बौद्ध धर्म के पुजारी और शिक्षक एशिया के कोने-कोने में पहुंच गए थे और अभी भी यहां क निवासियों की वेशभूषा, विचारों आदि पर बौद्ध धर्म का बहुत प्रभाव है। बुरयात मंगोलिया में ऐसे मन्दिर पाए जाते हैं जिन्हें लोग 'शमन' कहते हैं। संस्कृत में बौद्ध साधु को 'श्रमण' कहते हैं, इसी का साधारण भाषा में दूसरा रूप 'शमन' है। संस्कृत और रूसी शब्दों की समानता का एक और उदाहरण यहां मिलता है। साइबीरिया की नदियों के किनारों पर एक प्रकार का मच्छर पाया जाता है जिसे रूसी में 'मश्क' कहते हैं, संस्कृत में भी मच्छर को 'मशक' कहते हैं।

ताइगा में सड़क पर हमारा यात्री दल

साइबीरिया और बुरयात-मंगोलिया को एक-दूसरे से अलग करता हुआ महान सरोवर बैकाल है। संसार में यह सबसे बड़ी मीठे पानी की झील है। इसकी लम्बाई ६२३ किलोमीटर और चौड़ाई ७९ किलोमीटर तक है। इसकी गहराई १९४० मीटर होने के कारण यह संसार की सबसे गहरी झील है। इतनी गहरी होने पर भी बैकाल की तली दिन-प्रतिदिन बैठती जा रही है और इसकी हराई बढ़ रही है। बैकाल के पश्चिमी किनार पर कुछ दूरी तक भारी-भारी पत्थरों की चट्टानें हैं, इन्हें भी 'शमन' कहते हैं। इसी ओर ऊंचे-ऊंच देवदारू, साल, सिन्दूर, भुर्ज आदि के वृक्षों के घने जंगल भी हैं। इन जंगलों को 'ताइगा' कहते हैं, ये विशाल 'ताइगा' साइबीरिया में सैकड़ों मीलों तक फैले हुए हैं। इन जंगलों में सिबिर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

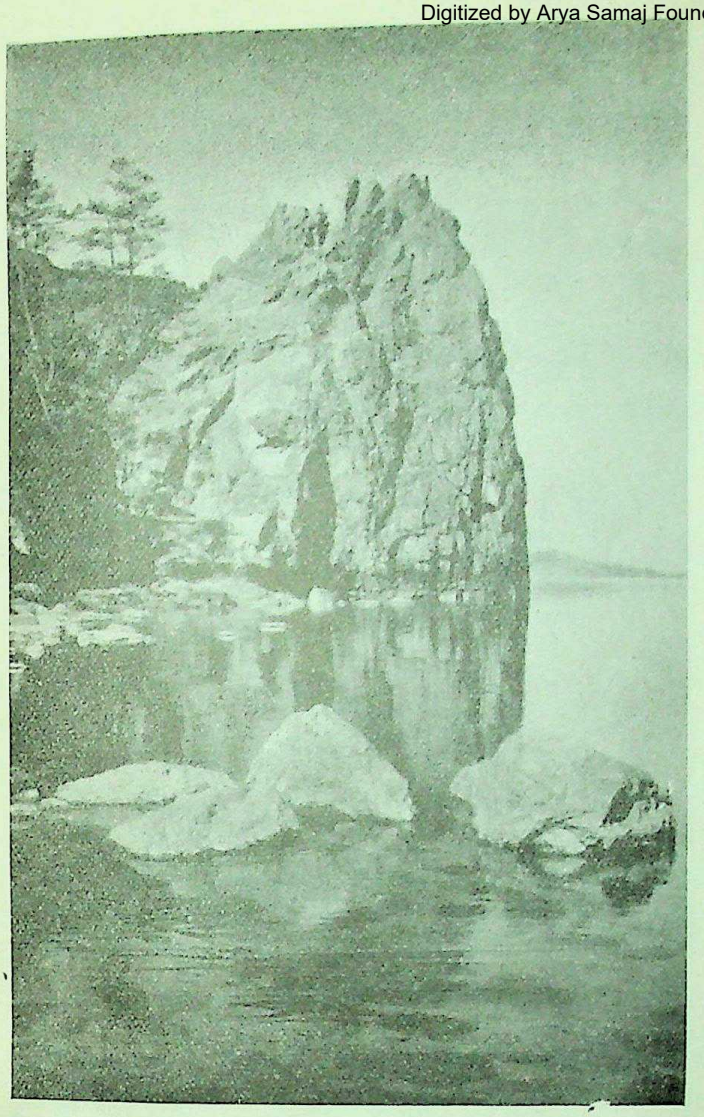

बकाल झील के किनारे की 'शमन' शिलाएं

गिलहरी रहती है जिसे प्यार से 'व्येलका' कहते हैं। व्येलका का प्रिय भोजन चिलगोज़ा है। पाइन अथवा 'केद्र' के पेड़ों की एक विशेष प्रकार की फली में ये चिलगोज़े छिपे रहते हैं और उन्हें बीन-बीनकर खाती यह गिलहरी बड़ी प्यारी लगती है। तरह-तरह के खरगोश, लोमड़ी और मंहगे रोएं की खाल वाले सोबल, नोरका, गोरनोस्ताइ आदि जानवर भी यहां रहते हैं। गरमियों में इन जानवरों के अनेक सुन्दर रंग रहते हैं, परन्तु जाड़ा आते ही जब बरफ गिरनी शुरू हो जाती है, और 'ताइगा' सफेद बर्फ़ से ढक जाते हैं तब इन सब जानवरों के रोयें रंग बदलने लगते हैं, और वे सब दूध के फेन के समान सफेद हो जाते हैं। साइबीरिया के 'ताइगा' के भालू बड़े प्रसिद्ध हैं। अक्तूबर मास में जब हम यहां पहुंचे तो भालू देखना चाहत थे परन्तु हमारे गाइड ने बताया कि भालू सरदी शुरू होते ही अपनी मांद में जाकर सो जाते हैं, और छः-सात महीने भरी सरदी में सोते रहते हैं। अप्रल में जब बर्फ़ पिघलती है और वसन्त ऋतु आने लगती है, तब 'ताइगा' के वृक्षों में नई कलियां फूटती हैं और भालू अपनी लम्बी नींद से जागता है। अप्रैल, मई में ताइगा में जाना खतरे से खाली नहीं, क्योंकि ६ महीने का भूखा भालू आहार की खोज में किसी को भी खा सकता है। बैकाल के बुरयात मंगोलियां वाले किनारे पर सैकड़ों सुन्दर और तेज़ घोड़े विचरण किया करते हैं। हरेक मंगोल घोड़े पर चढ़ना जानता है, और बहुतों के पास तो अपने घोड़े होते हैं। मंगोलों का सबसे प्रिय पीने का पदार्थ एक प्रकार की मदिरा है, जिसे 'कुमिस' कहते हैं जिसे घोड़ी के दूध से बनाते हैं। मंगोल संसार भर में प्रसिद्ध हैं, इन्हीं में से कुबलाखां और चंगेज़खां जैसे वीरों ने घोड़े पर चढ़ कर सम्पूर्ण एशिया को रोंद डाला था। कुबलाखां के बारे में बहुत ही दिलचस्प बात हाल ही में हमें राहुल सांकृत्यायन जी ने सुनाई। राहुल जी हिन्दी के भारी विद्वान हैं और कुछ दिन हुए भारत की प्राचीन पुस्तकों को खोजने के लिए चीन और तिब्बत गए हैं। राहुल जी तिब्बत में पहले पांच बार यात्रा कर चुके हैं। तिब्बत की राजधानी ल्हासा में उन्होंने एक बड़ा भारी बौद्ध मठ देखा, जहां सैकड़ों लामा अभी भी पढ़ने-पढ़ाने और पूजापाठ के काम में लगे हुए हैं। यह मठ कुबलाखां का बनवाया हुआ है। कुबलाखां को हम मंगोलिया का अशोक कह सकते हैं। अपने घोड़े पर चढ़ा सारी एशिया को जीतता हुआ वीर कुबलाखां जब तिब्बत पहुंचा, तो यहां के लामाओं ने उसे भगवान बुद्ध के प्रेम और अहिंसा के सन्देश को सुनाया। कुबलाखां ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और इस मठ का निर्माण किया। कुबलाखां का मठ तिब्बत का सबसे बड़ा और धनी मठ है। राहुल जी का विश्वास है कि यहां से वे बहुत सी प्राचीन भारतीय पुस्तकें भारत के लिए लौटा ला सकेंगे। हां, तो फिर बैकाल झील की कहानी सुनिए।

बैकाल झील में एक बड़े आश्चर्य की बात यह है कि आस-पास के पर्वतों से इकट्ठा हुआ पानी बहुत सी छोटी-छोटी नदियों के रूप में आकर इसमें गिरता है। ३३६ नदियां अपना पानी लाकर बैकाल झील में उंडेलती हैं। परन्तु इस सागर जैसी झील से एक ही नदी बाहर निकलती है जिसका नाम है 'अंगारा'। पूर्वी साइबीरिया की समृद्धि का प्रधान कारण यह नदी है। बैकाल और अंगारा के विषय में लोगों में कुछ कथाएं भी प्रचलित हैं जिनका उल्लेख आगे किया जाएगा।

इस महान झील से साइबीरिया निवासी बहुत प्रेम करते हैं। कवियों ने हर दृष्टि से इसे देखा है, इसकी हरेक आदत को पहचाना है, और बड़ी सुन्दर और कोमल कविताएं इसके विषय में लिखी हैं। ज़ारों के जमाने में राजनैतिक कैदियों को बैकाल झील के उस पार ले जाकर छोड़ देते थे और वहां से उनका इस पार लौट आना हर तरह से असम्भव हो जाता था। परन्तु सिबिरों का पिता बैकाल 'बरगुज़ीन' हवा चलाकर उन अभागे कैदियों की सहायता करता था। बैकाल झील में 'ओ मुल' नाम की एक बड़ी ही स्वादिष्ट मछली पाई जाती है, इस मछली को बड़ी पिटारियों में भरकर दूर-दूर भेजा जाता है। इन मछली की पिटारियों में कैदी को छिपाकर ऊपर से घास-फूस से ढककर उसके साथी बैकाल के पूर्वी निकारे से उसे पश्चिमी किनारे की ओर बहा देते थे। अब यदि पूरब से पश्चिम की ओर बहने वाली तेज़ हवा न हो तो ये पिटारियां जल में यों ही पड़ी रह जाएंगी और उनके अन्दर छिपा कैदी भूख और ठण्ड से मर जाएगा। परन्तु पिता बैकाल ऐसा नहीं होने देता, वह अपनी तेज़ पूर्वी हवा 'बरगुज़ीन' को चलाता है और इन पिटारियों को तेज़ी से दूसरे किनारे पर पहुंचा देता है, जहां से कैदी पिटारियों से निकलकर धीरे-धीरे साइबीरिया को पारकर फिर से रूस के घने बसे हुए भाग में पहुंचकर अपना काम शुरू कर देते थे। इस प्रकार बैकाल मानों इन कैदियों का जहाज था। सिबिर का एक प्राचीन लोकगीत बैकाल का इस प्रकार वर्णन करता है :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'स्लावनोये मोरे, स्व्याश्षेन्नेइ बैकाल,
स्लाव्तिइ कराब्ल् ओमुल्योवाया बोच्का
एइ, बरगुज़ीन । पशेवेलिवाइ वाल्
मलाद्त्सु प्लीत त्ये दालेच्को ।'

अर्थात्

'श्लाघनीय सागर । हे पवित्र बैकाल ।
श्लाघनीय जलपोत, हे ओमुलों के कोष ।
हे 'बरगुज़ीन' तू भी, लहरों को ज़रा हिला दे,
जिसमें यह नौजवान उस पार थोड़ा हो ले ।'

इस प्रकार के सैकड़ों नए और पुराने लोकगीत बूढ़े बैकाल के लिए लिखे गए हैं, और इरकूत्स्क के राजकीय प्रकाशन गृह से प्रकाशित किए गए हैं। वैज्ञानिकों ने बैकाल में १०४० प्रकार के जीवजन्तु और ५०० प्रकार की वनस्पतियों का पता लगाया है--(साइबीरिया की विज्ञान अकादमी का एक विशिष्ट विभाग केवल बैकाल झील का ही अध्ययन करता है)। इनमें से ७० प्रतिशत जीवजन्तु व वनस्पतियां संसार के और किसी भाग में नहीं पाई जातीं। यह देखत हुए कि इस झील की आयु लगभग दो करोड़ वर्ष है हमें इस बात में कोई आश्चर्य नहीं होता। उदाहरण के लिए ओमुल मछली कहीं और नहीं पाई जाती। इरकूत्स्क के संग्रहालय में हमने एक दूसरे प्रकार की मछली देखी। इसे गोलूम्यान्का कहते हैं। यह मछली संसार भर में केवल बैकाल की ही तली में रहती है। देखने में यह कुछ पीला सफेद रंग लिए हुए पारदर्शी होती है और लगभग ८ इंच लम्बी और ३ इंच चौड़ी होती है। यह पानी के गहरे दबाव के नीचे सतह से लगभग ७० मीटर नीचे रहती है। इस मछली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अण्डे नहीं देती परन्तु बच्चे को गर्भ में धारण करती है। पिता की तुलना में, माता आकार में बड़ी होती है। प्रत्येक गोलूम्यान्का माता अपने जीवन में केवल एक ही बार गर्भ धारण करती है। प्रसव के समय माता के शरीर को फाड़कर सन्तान बाहर निकलती है जिससे माता अपने प्राण दे देती है। संग्रहालय में शीशे के शो केसों में कई ऐसी गर्भवती मछलियों को हमने देखा। इनके शरीर में तेल का अंश, लगभग ३० प्रतिशत होता है और सम्भव है यही इनकी पारदर्शिता का कारण हो। गोलूम्यान्का का तेल कीटाणुओं का नाश करता है।

आजकल बकाल के किनारे एक बड़ा भारी मछली-कलखोज़ है, यहां मछुओं के ५० परिवार रहते हैं। किनारे से ३०० किलोमीटर की दूरी तक ये लोग अपनी मोटर बोटों और जालों के सहारे मछली पकड़ते हैं। जुलाई-अगस्त के महीनों में सबसे ज्यादा ओमुल पकड़ी जाती हैं और पास के ही मछली कारखाने में डिब्बों में बन्द करने के लिए भेज दी जाती हैं। कलखोज़ में काम करने वाला मछुआ ६०० से १,००० रूबल महीना कमा लता है, और मछली पकड़ने के मौसम में २,००० रूबल तक उसकी आमदनी हो जाती है। कलखोज़ के प्रधान ने हमें अपने यहां भोजन के लिए निमंत्रित किया और ओमुल मछली के सूप से लेकर अनेकों प्रकार के स्वादिष्ट पकवान बनाकर उन्होंने हमें खिलाए। भोजन के बाद सब मछुए हमारे चारों ओर जमा हो गए और पिछले साल की घटना सुनाने लगे। किस प्रकार एक दिन जब उनका दल मोटर बोट में बैठकर मछली पकड़ने झील पर गया हुआ था तो एक भारी काला और भूरा भालू पास के ताइगा से निकलकर उनकी बोट पर झपटा। मछुओं ने बड़ी कठिनाई से भालू को पकड़कर बोट पर खींच लिया और उसे कुल्हाड़ी से मार डाला। इस भालू

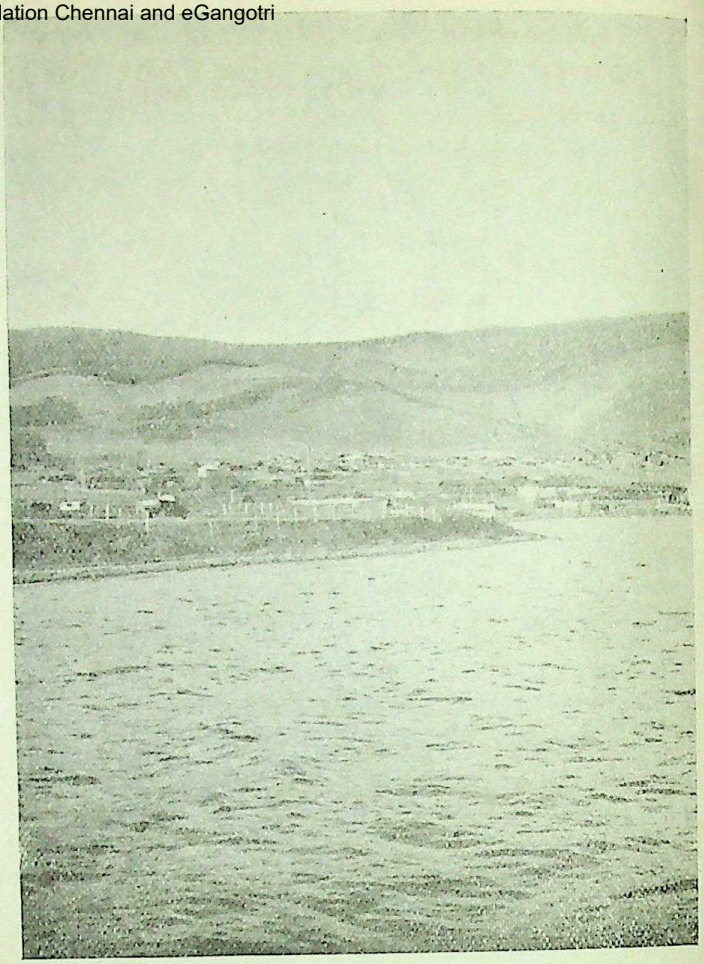

बैकाल के किनारे मछली मारों का 'कलखोज़' गांव

की भारी मोटे रोयेंदार खाल कलखोज़ के कार्यालय में मेहमानों से मिलन वाले कमरे में बिछी हुई है। बैकाल झील भालुओं के खतरे से खाली नहीं है, क्योंकि भालू तैरना और मछली खाना पसन्द करते हैं। बैकाल झील में भारी सील मछली भी रहती है। इस मछली के शरीर पर चरबी की मोटी तह होती है, और इसका वज़न २०० किलोग्राम होता है। सील मछली झील की अन्य छोटी मछलियों का नाश कर देती है, इसलिए कलखोज़ निवासी इन्हें मार रहे हैं। प्रसिद्ध मास्को सर्कस में सील मछलियों के तरह-तरह के खेल और कलाबाज़ी दिखाई जाती है। एक लड़की ने इन भीमकाय मछलियों को किस प्रकार अपने बस में करके शिक्षा दी है, वह देखते ही बनता है।

सर्दियों में झील के ऊपर तीन फुट मोटी बर्फ की तह जम जाती है, परन्तु अन्दर का पानी नहीं जमता। बैकाल के उत्तरी भाग में जल के नीचे गरम पानी के सोते हैं जिनसे झील का जल गरम रहता है और कड़ी से कड़ी सरदी में पानी के अन्दर के जानवर नहीं मरते। सर्दी में मछली पकड़ने का बड़ा दिलचस्प तरीका है। मछुए बर्फ में छोटा-सा छेद कर देते हैं, और जब मछलियां हवा लेने के लिए ऊपर आ जाती हैं, तब उन्हें जाल अथवा वंशी डालकर पकड़ लेते हैं। इस विधि से एक बार में हजार, डेढ़ हजार ओमुल पकड़ी जा सकती हैं।

बैकाल झील पर विशेष प्रकार की तेज हवाएं चलती हैं। इनमें से एक वायु का जिकर ऊपर किया जा चुका है। इसका नाम बरगुज़ीन है। बरगु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़ीन पूरब से पश्चिम की ओर चलने वाली हवा है। गर्मी के महीनों में बरगुज़ीन इतने वेग से बहती है कि मछुए झील पर मछली पकड़ने नहीं जा सकते। बरगुज़ीन उनकी नावों को तोड़-फोड़ डालती है, और यदि ऐसे समय आकाश में हवाई जहाज उड़ते हों तो उन्हें भी तोड़ कर गिरा देती है। बैकाल झील का सर्दी में बड़ा मनोहारी दृश्य होता है। खूब बर्फ गिरी, फिर 'कुलतूक' नाम की पश्चिमी हवा का झोंका आया और बर्फ को उड़ा ले गया। बैकाल की जमी हुई सतह चिकने स्वच्छ दर्पण की भांति निकल आई और स्त्री, पुरुष व बच्चे उस पर स्केटों द्वारा फिसलने का आनन्द लेने लगे।

बैकाल झील के पानी का तापमान गर्मियों में भी १०–१२ सेन्टीग्रेड से ऊपर नहीं जाता, इस कारण इसका पानी अत्यन्त स्वच्छ और स्वास्थ्य वर्धक रहता है और किसी प्रकार के कीटाणु इसमें जीवित नहीं रह पाते। पूर्वी साइबीरिया में तीन महान नदियां हैं––यानासे, लीना और अंगारा। इनमें से अंगारा सबसे प्रसिद्ध और तेज़ बहने वाली नदी है। उत्तर की ओर बहती हुई यह विशाल 'यानासे' से मिलकर उत्तरी आर्कटिक सागर में गिरती है।

इरकूत्स्क में हम साइबीरिया की विज्ञान अकादमी के प्रधान श्री वि० अ० क्रोतोव से भी मिले। इनसे बातचीत करने से हमें साइबीरिया के इस भाग की कृषि और खनिज सम्पत्ति के बारे में बहुत जानकारी प्राप्त हुई। स्तालिन की मृत्यु के बाद पिछले पांच वर्षों में सोवियत संघ की उद्योग और उत्पादन प्रणाली में बहुत-से परिवर्तन हुए हैं। करोड़ों एकड़ अछूती जमीन में खेती शुरू कर दी गई है और अब टनों गेहूं, जौ, आलू और चरी इस जमीन से प्राप्त होते हैं। दक्षिणी साइबीरिया में खेती का यह लाभ है कि वहां कभी अकाल नहीं पड़ सकता। सर्दी के महीनों में पर्याप्त बरफ गिर जाती है और वही गरमी में पिघलकर पृथ्वी को सींच देती है। उससे पर्याप्त पानी खेतों को मिल जाता है। यहां के किसान वर्षा के मोहताज नहीं। साइबीरिया के इस भाग में हाल ही में बहुत से खनिज पदार्थों का पता लगा है। लोहा, कोयला, अभ्रक गैस, पहाड़ी नमक तथा हीरे यहां बहुतायत से पाए जाते हैं। इन वस्तुओं का उद्योग में उपयोग करने के लिए बिजली की शक्ति की आवश्यकता है और इस काम में अंगारा नदी सहायता दे सकती है। इरकूत्स्क और ब्रात्स्क नामक स्थानों पर अंगारा नदी पर बन्द बांध कर दो हाइड्रोइलेक्ट्रिक पावर स्टेशन बनाए गए हैं, जिनसे करोड़ों

वैकाल झील की एक झांकी

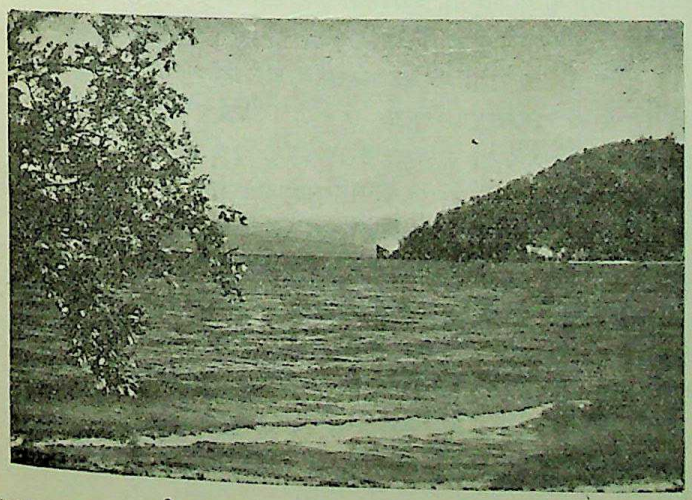

वैकाल में जाल फेंकने का एक दृश्य

किलोवाट बिजली थोड़े खर्चे से उत्पन्न हो सकेगी और अनेकों नए काम-धन्धों द्वारा लोग नई सम्पत्ति का निर्माण कर सकेंगे। साइबीरिया में काम करने वालों की कमी है, इसलिए वहां प्रचुर विद्युत-शक्ति की बहुत आवश्यकता है।

इरकूत्स्क की विज्ञान अकादमी के प्रधान श्री क्रोतोव ने बातचीत समाप्त होने के बाद हमसे कहा––"आज शाम को ७ बजे हमारे स्फुतनिक का कैरियर राकेट इरकूत्स्क के ऊपर होकर निकलेगा, उसे देखने के लिए हम आपको निमन्त्रित करते हैं।" २५ अक्तूबर को सायंकाल सात बजे तैयार होकर हम लोग इरकूत्स्क की वेधशाला में पहुंच गए। भवन के आगे खुले मैदान में लगभग ५० व्यक्ति जमा थे, इनमें से १५ विश्वविद्यालय के छात्र थे। श्री क्रोतोव तथा इरकूत्स्क विश्वविद्यालय के रेक्टर दोनों हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैदान में भवन के कर्मचारियों ने १०, १२ दूरवीक्षण-यंत्र ऊंचे स्टैण्डों पर लगा दिए थे और दर्शक बड़ी उत्सुकता से स्फुतनिक देखने की प्रतीक्षा कर रहे थे, और बारी-बारी से टेलिस्कोप पर आंख लगाकर दक्षिण आकाश की ओर देखते थे। सौभाग्यवश आकाश स्वच्छ था और तारे चमक रहे थे। नियत समय पर स्फुतनिक आकाश की पश्चिमी सीमा पर हमें दिखाई दिया। संसार की बड़ी-बड़ी विज्ञानशालाओं में न जाने कितनी आंखें मनुष्य के इस नवीनतम खिलौने को आश्चर्यभरी निगाहों से देख रही थीं। यह 'बालचन्द्रमा' मनुष्य का पृथ्वी के आंचल से छूट जाने का प्रतीक था। और पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के पार खुले आकाश में उसकी सैर का अग्रदूत था। स्फुतनिक धीरे-धीरे पूर्व की ओर जाता हुआ आंखों से ओझल हो गया। श्री क्रोतोव हमें वेधशाला के अन्दर ले गए, जहां प्रथम सोवियत स्फुतनिक द्वारा प्राप्त रेडियो संकेतों की रिकार्डिंग हमें सुनाई गई। ये संकेत छोटे गोद के कुत्ते की तीखी भौंक के समान थे और बड़ी तेज़ी से साफ-साफ सुनाई देते थे। अपने इस अनुभव को हम आजीवन नहीं भूल सकते।

जब हम मास्को से साइबीरिया भ्रमण के लिए चले थे तो हमारे कुछ रूसी मित्रों ने हमें बताया था कि आजकल लगातार वर्षा के कारण वहां मौसम अत्यन्त ठण्डा और अप्रिय होगा। परन्तु इरकूत्स्क पहुंच कर ठीक इसका उल्टा ही हुआ। प्रतिदिन मौसम खुला हुआ, धूप निखरी हुई और

(शेष पृष्ठ ५८ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

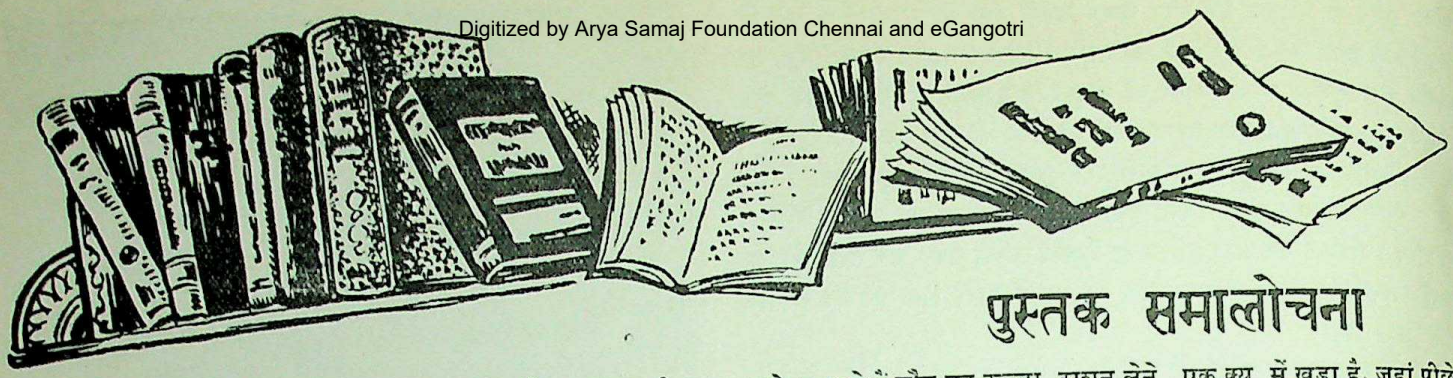

पुस्तक समालोचना

झूठा सच : लेखक--यशपाल; प्रकाशक--विप्लव कार्यालय, शिवाजी मार्ग, लखनऊ; पृष्ठसंख्या (बड़े आकार के)--५४०; मूल्य--११) रु० सजिल्द ।

लगभग २ लाख शब्दों का यह अधूरा उपन्यास, निस्सन्देह इस वर्ष का सर्वश्रेष्ठ हिन्दी उपन्यास है । सन् १९४७ में भारत, विशेषतः पंजाब, बंगाल, सिन्ध आदि, जिस ऐतिहासिक क्रान्ति में से गुज़रे, वह किसी शक्तिशाली उपन्यास के लिए अत्यन्त प्राणवान विषय है । इस तरह की ऐतिहासिक घटनाएं मानस क्षेत्र में धीरे-धीरे समन्वयित होकर ही साहित्य का विषय बन पाती हैं और इस कार्य में काफ़ी समय लगता है । श्री यशपाल के इस उपन्यास की पृष्ठभूमि विभाजन से पूर्व का लाहौर है और काल यद्यपि १९४३ से प्रारम्भ होता है, तथापि १९४६ तक का समय इस रचना की जैसे केवल पृष्ठ-भूमि मात्र है । उपन्यास के इस प्रकाशित प्रथम भाग का वास्तविक काल १९४७ है, वह भी १५ अगस्त १९४७ के केवल कुछ सप्ताह बाद तक ही ।

आज से सिर्फ ११ साल पहले की उन अत्यन्त नृशंस और कटुतम घटनाओं पर, जिन की प्रतिक्रिया आज भी बाकी है, इस तरह का उपन्यास पूरी तरह निस्संग रह कर लिखा जा सकता है या नहीं, इस सम्बन्ध में दो रायें हो सकती हैं । पर यह निस्संकोच होकर कहा जा सकता है कि अपनी इस रचना में श्री यशपाल न सिर्फ पक्षपात से दूर रहे हैं, अपितु उनका ध्येय भी विषय-परक तथा वस्तुनिष्ठ (ऑब्जैक्टिव) रहा है, व्यक्ति परक (सब्जैक्टिव) नहीं । यह ठीक है कि वह अतिशयोक्ति या अफ़वाहों पर आश्रित बातों से अपनी रचना को नहीं बचा पाए, पर सब मिलाकर अपना दृष्टिकोण उदात्त रखने में जो सफलता उन्हें मिली है, वह अत्यन्त श्लाघनीय है । अतिशयोक्ति या अफ़वाहों के सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता है कि यशपाल आखिर एक उपन्यास लिख रहे हैं, कोई इतिहास ग्रन्थ नहीं । यद्यपि मेरी राय से यह कैफियत पूरी तरह संतोषजनक नहीं होगी ।

'झूठा सच' का 'वतन और देश' शीर्षक यह प्रथम भाग उपन्यास की दृष्टि से एकदम अधूरा है । इस कारण इस उपन्यास की विस्तृत आलोचना तो तभी की जा सकेगी, जब यह पूर्ण कर लिया जाएगा । इस भाग की समाप्ति पर उपन्यास के सभी मुख्य पात्र विपन्न स्थिति में यों ही छोड़ दिए गए हैं । कारण स्पष्ट है । अधिकांश पात्र लाहौर के हिन्दू और सिक्ख हैं तथा १५ अगस्त को वे सब एकाएक विस्थापित हो गए हैं । उपन्यास के सब से अधिक मुख्य पात्र (जयदेव पुरी) को इस भाग के अन्त में जालन्धर में रेलवे स्टेशन के पास ऐसी हालत में दिखाया गया है, जब उसके पास एक पैसा भी बाकी नहीं, वह दो दिन का भूखा है, दर्द और भूख के मारे जैसे उस के सिर और पेट दोनों फटे जा रहे हैं और वह कच्चा राशन लेने एक क्यू में खड़ा है, जहां पीछे के कितने ही आदमी उसे लांघ कर आगे बढ़ते चले जा रहे हैं । इस से भी अधिक बुरा हाल उपन्यास की अत्यन्त महत्वपूर्ण पात्र तारा का अमृतसर में है । अन्य पात्र भी कम-अधिक इसी तरह की विपरीत परिस्थितियों में हैं । इस दशा में यह कहना अभी कठिन है कि उपन्यास के मुख्य पात्रों का चित्रण सम्पूर्ण होकर क्या रूप धारण करेगा तथा विषय और उद्देश्य की दृष्टि से भी पूरे उपन्यास का क्या रूप होगा । इसी कारण यहां मैं काफ़ी संक्षेप में इस उपन्यास की चर्चा कर रहा हूँ ।

उपन्यास का नाम बहुत अर्थपूर्ण है । जो कुछ उस में वर्णित है, वह सच है, पर उस के सभी पात्र कल्पित हैं, इस से 'झूठ' है । साथ ही उपन्यास में जिस जद्दोजहद का वर्णन है, वह सच है, पर मुख्यतः जिस बात के लिए वह जद्दोजहद है, वह भ्रम पर, मिथ्या पर आश्रित है, अतएव 'झूठ' है ।

'झूठा सच' के अधिकांश पात्र मध्य वर्ग के हैं । बड़ी संख्या हीन-मध्य वर्ग, दूकानदार, छोटे डाक्टर, स्कूल-मास्टर, मालबाबू आदि की है, कुछ उच्च मध्य वर्ग के पात्र भी हैं, डाक्टर प्राण, पं० बनारसीदास आदि । इन सब पात्रों द्वारा, जिन की संख्या बहुत बड़ी है, मध्य वर्ग का सजीव और यथार्थ चित्रण करने में यशपाल जी को प्रशंसनीय सफलता प्राप्त हुई है । लाहौर की गलियों का जीवन, जिन में किसी ज़माने में हिन्दू, सिक्ख और मुसलमान भाई-भाई के समान रहते थे, जैसे सजीव होकर पाठक के सामने आ खड़ा होता है ।

लेखक की इस से भी बड़ी सफलता इस बात में है कि उपन्यास के प्रायः सभी पात्र, पुरुष और स्त्री दोनों, पूरी तरह सजीव पात्र बन पाए हैं । लाहौर की तत्कालीन असाधारण परिस्थितियों में लाहौर के, बल्कि सम्पूर्ण पंजाब के मध्यवर्गीय व्यक्तियों का जिस तरह का जीवन था, उसके सही-सही चित्रण के साथ विभिन्न श्रेणियों और विभिन्न आयुओं (एज ग्रुप) के प्रतिनिधि पात्रों का अत्यन्त सहज, स्वाभाविक और वास्तविकता-पूर्ण चित्रण इस उपन्यास में हुआ है । ऐसा सजीव और शानदार चित्रण आप को हिन्दी साहित्य में बहुत कम दिखाई देगा ।

'झूठा सच' देश विभाजन और उसके परिणाम के चित्रण की काफ़ी ईमानदारी से लिखी गई कहानी है । पर यह उपन्यास इसी कहानी तक सीमित नहीं है । देश विभाजन की सिहरन उत्पन्न करने वाली इस कहानी में स्नेह, मानसिक और शारीरिक आकर्षण, महत्वाकांक्षा, घृणा, प्रतिहिंसा आदि की अत्यन्त सहज प्रवाह से बढ़ने वाली मानवतापूर्ण कहानी भी आप को मिलेगी । और जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, कहानी के इस दिलचस्प ताने-बाने में लेखक ने विषय परकता के दृष्टिकोण को सदा अपने सम्मुख रखा है ।

आजकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'झूठा सच' एक अत्यन्त मनोरंजक उपन्यास है। यशपाल जी को अपनी कहानी खूब मनोरंजक बनाकर कहने का ढंग आता है। पर इस उपन्यास की कथावस्तु में मनोरंजकता बढ़ाने वाला उपकरण उन्हें अनायास ही प्राप्त हो गया है। उदाहरण के लिए उपन्यास की एक प्रधान पात्र तारा की सुहाग रात का जो घटनापूर्ण कथानक 'झूठा सच' में है, वह लाहौर के उन दिनों की असाधारण और वीभत्स परिस्थितियों में एकदम स्वाभाविक बन गया है, अन्यथा उस रात की वे घटनाएं पाठकों को अलिफ़-लैला के उन किस्सों के समान अस्वाभाविक जान पड़तीं, जिन में कोई राक्षस किसी परी को उसके पलंग से उड़ाकर दोज़ख में ले गया था। सन् १९४७ के कुछ महीनों में सारे पंजाब में और विशेषतः लाहौर में घटनाओं की रफ्तार इतनी तेज़ रही कि उन दिनों वहां कुछ भी हो जाना असम्भव नहीं था। नृशंसता की तो उन दिनों वहां कोई सीमा ही नहीं थी। विभाजन के एकदम बाद हत्या और बलात्कार के जो निर्लज्जतापूर्ण उपाय बरते गए, वे शायद मानवीय इतिहास में एक रिकार्ड हों। ऐसी परिस्थितियों का चित्रण करने में घटना बाहुल्य तो स्वाभाविक ही है। और श्री यशपाल ने 'झूठा सच' को घटना बहुल बनाने में उक्त परिस्थितियों से पूरा और समझदारी पूर्ण लाभ उठाया है।

यहां तक तो ठीक। पर 'झूठा सच' में जिस तरह क्रूरता के चित्रण को पराकाष्ठा तक ले जाया गया है, वह मेरी राय से अनावश्यक था। उदाहरण के लिए तारा की सुहाग रात का वर्णन ही। तारा किसी और से प्रेम करती थी पर परिस्थितियों से लाचार होकर उसे सोमराज से विवाह करना पड़ा और वह उसे आत्म समर्पण करने को तैयार हो गई। इस विवाह के वर्णन में सोमराज औसत दर्जे का एक युवक प्रतीत होता है। पर दूसरे ही दिन सुहाग शैया के निकट पहुंचते ही जैसे एकाएक दानव बनकर सोमराज अपनी नव विवाहिता पत्नी तारा से वह तीसरा सवाल करता है--"किस से है तेरी आशनाई ?" तारा चुप रहती है तो वह पूछता है--"कितने घाटों का पानी पीया है तूने ?" तारा के आंसू टपक पड़ते हैं तो वह उसके कंधे को घूंसे से ठेलकर कहता है--"कितनों के साथ सोई है बोल ?" इत्यादि। इसके बाद वह तारा को खूब मारता-पीटता है। मेरी राय से यह सब सोमराज तथा उसके परिवार के पूर्व-वर्णन से मेल नहीं खाता। यह व्यवहार नौर्मल तो है ही नहीं। एबनौर्मल व्यवहार तथा एबनौर्मल पात्र भी दुनिया में हैं ही, यह ठीक है। पर मेरी राय से यह सब नृशंसता आसानी से बचाई जा सकती थी, क्योंकि उसी रात को कुछ ही मिनटों के बाद यही बेचारी तारा इस सब की अपेक्षा भी बहुत बड़ी और जघन्य नृशंसता का शिकार बनती है। पति गृह में सुहाग रात को अत्यन्त वीभत्स बनाकर मेरी राय से यशपाल जी ने एक ही रंग को आवश्यकता से बहुत अधिक गहरा कर दिया है।

इसी तरह के कुछ और उदाहरण भी हैं। जैसे पाकिस्तान में बन्नी, सतवन्त, दुर्गा आदि अपहृत नारियों का बेहोश तारा के पहने हुए वस्त्र चुराने का प्रयत्न। आखिर हर एक रंग एक सीमा तक ही गहरा किया जाना चाहिए।

विभाजन के दिनों में पंजाब में मानव स्वभाव का अत्यन्त घृणित पहलू बहुत अधिक उभरा था और जैसा कि मैं कह चुका हूं, 'झूठा सच' में उसका बहुत सजीव वर्णन है। पर वास्तव में उन दिनों मानव स्वभाव के सभी पहलू देखने में आए थे। वीरता, त्याग, ईमानदारी और फरमाबरदारी के भी अत्यन्त शानदार उदाहरण उन दुर्दिनों में देखने में आए थे। यह ठीक है कि संख्या की दृष्टि से हत्या, अपहरण और बलात्कार की घटनाओं की तुलना में वे बहुत कम थे। पर उपन्यास लेखक का कार्य केवल घटनाओं की संख्या को महत्व देना नहीं है। यदि उस तरह के भी कुछ शानदार उदाहरण यशपाल जी 'झूठा सच' में दे सकते, तो मेरी राय से इस उपन्यास के पाठक को आशा की सुनहली किरण भी निरन्तर दिखाई देती रहती और इस तरह रचना अधिक समतुलित बन जाती। तब उपन्यास का वातावरण भी इतनी घुटन उत्पन्न करने वाला न रहता, जैसा वह इस भाग के उत्तरार्द्ध में है।

'झूठा सच' धारावाहिक रूप से 'धर्मयुग' में छपता रहा है। मेरी राय से कोई अत्यन्त श्रेष्ठ रचना सम्पूर्ण होने से पूर्व प्रेस में नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि धारावाहिक प्रकाशन से लेखक बंधता चला जाता है और उसे अपनी रचना में आवश्यक संशोधन या परिवर्धन करने का अवसर नहीं मिलता। यशपाल जी का यह 'झूठा सच' अत्यन्त प्राणवान तथा प्रथम श्रेणी का उपन्यास है। इस दृष्टि से यह कहीं अधिक अच्छा रहता कि वह उसे पूरी तरह समाप्त तथा संशोधित किए बिना इसका प्रकाशन न कराते। व्यक्तिगत रूप से मैं तो यह पसन्द करता कि उपन्यास के दोनों भाग एक साथ प्रकाशित होते। किश्तों में लिखे तथा छापे जाने वाले उपन्यासों में यह दोष आ जाता है कि कुछ अंश अनावश्यक रूप से खिंच जाते हैं। बहुत तो नहीं, पर आंशिक रूप में वह बात 'झूठा सच' के प्रारम्भिक अंश में भी विद्यमान है।

यह उपन्यास अभी अपूर्ण है, अतः इसके पात्रों की समीक्षा मैं यहां नहीं कर रहा। फिर भी एक बात स्पष्ट है। 'झूठा सच' के प्रायः सभी पात्र वास्तविक तथा सजीव हैं। विभिन्न श्रेणियों तथा विभिन्न आयुओं के लगभग ४० पात्रों (जिन में स्त्री और पुरुष दोनों सम्मिलित हैं) का इतना प्राणवान निर्माण लेखक की एक अत्यन्त असाधारण और बहुत बड़ी सफलता है। यह ठीक है कि इन ३ दर्जन पात्रों में अभी तक एक भी पात्र ऐसा नहीं है, जो 'गोदान' के होरी, 'रंगभूमि' के सूरदास, 'मैला आंचल' के बावन दास, और 'बूंद और समुद्र' की ताई की तरह पाठक के मानस पर छा जाए--उसे अभिभूत कर ले। पर यह भी मैं यहां स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि उपन्यास की श्रेष्ठता इसी एक बात से नहीं आंकी जा सकती। और फिर कौन कह सकता है कि पूरे उपन्यास में किस पात्र का कौन-सा रूप निखरेगा। इसी से पात्रों की अधिक चरचा मैं इस अवसर पर नहीं कर रहा।

सब मिला कर 'झूठा सच' का यह प्रथम भाग हिन्दी उपन्यास साहित्य की अत्यन्त श्रेष्ठ और प्रथम कोटि की रचना है। मेरी राय से श्री यशपाल के अब तक के सभी उपन्यासों में यह सर्वश्रेष्ठ है और इस रचना द्वारा श्री यशपाल नई ऊंचाई पर पहुंचे हैं। मुझे विश्वास है कि 'झूठा सच' का समुचित आदर होगा और भारतीय भाषाओं में उसका अनुवाद बहुत शीघ्र प्रकाशित होगा। उपन्यास का शेष भाग भी यदि इसी कोटि का हुआ, तो 'झूठा सच' भारतीय साहित्य की एक अमर रचना गिना जाएगा।

जाड़े की धूप : लेखिका--रजनी पनिकर; प्रकाशक--न्यू एज पब्लिशर्स, २२ कैनिंग स्ट्रीट, कलकत्ता-१; पृष्ठ संख्या--१०८; मूल्य--२।।) रु० सजिल्द।

श्रीमती रजनी पनिकर के इस उपन्यास का विषय प्रेम के उस पहलू से सम्बद्ध है, जो किसी-किसी व्यक्ति के जीवन में नाटकीय अन्तराल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इण्टरमैज़ो) के समान आता है। यानी बंधे हुए जीवन में अल्पकाल के लिए कोई ऐसा अन्तराल आ जाना, जब पति या पत्नी अपने वैवाहिक जीवन में कुछ समय के लिए किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम करने लगें। यह पाश्चात्य उपन्यास जगत का एक लोकप्रिय विषय है। पर हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में इस विषय पर अभी तक अधिक उपन्यास नहीं लिखे गए। 'जाड़े की धूप' की नायिका भारती का विवाह पवन नाम के एक डाक्टर से हुआ है। विवाह के बाद भी वह एयर बुकिंग आफ़िस में काम करती है और अजय नाम के एक नौजवान से प्रेम करने लगती है। पहले इस प्रेम में ज्वार आता है, उसके बाद उलाहनापूर्ण भाटा और अन्त में यह निषिद्ध प्रेम समाप्त हो जाता है।

'जाड़े की धूप' भारती द्वारा अजय के नाम लिखे गए पत्रों में है। इस तरह यह पत्र शैली का उपन्यास है। इस उपन्यास का विषय ऐसा है, जिसे वासना से बचा कर रखना बहुत कठिन था। पर लेखिका इस बात में पूरी तरह सफल हुई है कि 'जाड़े की धूप' कहीं भी वासनापूर्ण नहीं बनने पाया। भारती की उन दिनों की मनोदशा का अच्छा मनोवैज्ञानिक चित्रण इस उपन्यास में है, पर अजय के चरित्र और मनोविज्ञान पर बहुत कम प्रकाश डाला गया है। मेरी राय से यही इस रचना की सबसे बड़ी कमज़ोरी है। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अजय एक बन्द पुस्तक के समान बना रहता है। इस निषिद्ध प्रेम में कहां तक उसका उत्तरदायित्व है और इस सब की प्रतिक्रिया उस के हृदय पर क्या और किस प्रकार होती है, यह ठीक पता नहीं चलता। इससे जो न्यूनता इस रचना में आई है, उसकी पूर्त्ति भारती द्वारा पास-पड़ोस के व्यक्तियों के स्कैण्डलों का जिक्र कर पूरी की गई है।

इस रचना की सब से बड़ी शक्ति इसकी शैली की सफलता में है। 'जाड़े की धूप' में श्रीमती रजनी की कलम खूब सधी हुई है।

अमरनाथ : लेखक--शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय तथा एक अन्य व्यक्ति; अनुवादक--दर्शन; प्रकाशक--वोरा एण्ड कम्पनी, ३ राउण्ड बिल्डिंग, कालबा देवी रोड, बम्बई; पृष्ठ संख्या--१७२; मूल्य--२।।) रु० सजिल्द।

'अमरनाथ' भारत के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय की अन्तिम रचना है, जिसे वह पूर्ण नहीं कर पाए थे। उपन्यास के प्रथम १०० पृष्ठ उनके लिखे हुए हैं, शेष ७२ पृष्ठ शरत बाबू के एक मित्र श्री ननी माधव बन्द्योपाध्याय की राय से किसी अन्य सज्जन द्वारा। उपन्यास का विषय बंगाल के गांवों का चित्रण तथा उन पर गांधी जी के असहयोग आन्दोलन का प्रभाव है। शरत बाबू यदि इस उपन्यास को पूरा कर पाते तो निस्सन्देह यह एक अत्यन्त शानदार रचना होती। उपन्यास का जितना अंश उन्होंने लिखा है, उससे यह पूरी तरह स्पष्ट है।

शरत बाबू के सभी उपन्यासों में कितने ही अविस्मरणीय तथा अर्थपूर्ण वाक्य रहते हैं--'अमरनाथ' में भी उनकी कमी नहीं है। यहां मैं कुछ उद्धारण दे रहा हूं :--

"इस देश में निर्बल को भी जीने का अधिकार है। यदि किसी की काम करने की शक्ति नष्ट हो जाए, तो उससे जीने का अधिकार नहीं छीन लिया जा सकता।"

"कर्त्तव्य क्या कोई बंधा-बंधाया हिसाब है ?"

"जो तेरे बही-खाते न लिख सके, उनके खाने-पहनने के लिए ज़रूरी मामूली रकम भी उसे न देकर तेरे सन्दूक में ही जमा होती रहे--तू यही चाहती है न ?"

"दौड़ते रहने ही को आगे बढ़ना नहीं कहा जा सकता !"

"जो लोग इस सोने के देश को इतना कंगाल और निराधार बना गए हैं, उनक अपराध की कोई सीमा नहीं है !"

"मैं यह बात जीवन भर नहीं भूल सकती कि मेरे इस एक आइने की कीमत से वह गरीब आदमी अपने पूरे परिवार के साथ ५ बरस और ज़िन्दा रह सकता था। कितने ही लोगों का मरण इतिहास मेरे इन कपड़ों और जूते-मौज़ों पर लिखा है !"

जिस सज्जन ने 'अमरनाथ' को सम्पूर्ण किया है, उन्हें अपने कार्य में, मेरी राय से, यथेष्ट सफलता नहीं मिली। उन्होंने केवल ७२ पृष्ठ लिखे हैं, और उनमें भी कितनी ही बातों की पुनरावृत्ति की है, तथा कुछ बातों की भिन्न कैफ़ियत देने का प्रयत्न किया है। मैं मानता हूं कि यह काम आसान भी नहीं था और इसके लिए उन्हें किसी तरह का दोष नहीं दिया जा सकता।

अनुवाद साधारण कोटि का है। यद्यपि अनुवादक का श्रम इस अनुवाद में स्पष्टतः झलकता है। कुछ वाक्य अस्पष्ट रह गए हैं। उदाहरण क लिए--

"जिन मूर्त्तियों पर तेरा विश्वास नहीं है, उन्हें प्राप्त सेवाओं से मैं तुझे वंचित नहीं करने दूंगा।" (पृष्ठ ३१)

"अगर अपराध हुआ ही हो तो फिर उसे पूरा-पूरा करना ही ठीक कहा जाता है।" (पृष्ठ ७९)

रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा : प्रकाशक--आत्माराम एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली; पृष्ठ संख्या--१६८; मूल्य--२।।) रु० सजिल्द।

अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल ने अपनी यह आत्मकथा १६ दिसम्बर १९२७ को लिखनी प्रारम्भ की थी, जब १९ दिसम्बर १९२७ की प्रातः काल साढ़े छः बजे वह भारत को स्वतन्त्र करने का प्रयत्न करने के 'भयंकर अपराध' के लिए फांसी पर लटका दिए गए थे। इस तरह यह आत्मकथा लेखक ने सचमुच अपने खून से लिखी है। यह आत्मकथा हाथ में लेते ही हृदय में एक सिहरन सी होने लगती हैं। जो महान शहीद

"मालिक तेरी रज़ा रहे और तू ही तू रहे !
बाकी न मैं रहूं, न मेरी आरज़ू रहे !!"

कहते हुए तथा 'बन्दे मारतम्' और 'भारत माता की जय !' का नारा लगाते हुए फांसी के तख्ते पर झूल गया था, उसकी यह आत्मकथा सन् १९२८ में श्रद्धेय गणेश शंकर विद्यार्थी ने प्रकाशित की थी, जिन्होंने बाद में स्वयं अमर शहादत का वरण किया था। इस आत्मकथा का पहला संस्करण अंग्रेज़ी सरकार ने तभी ज़ब्त कर लिया था। मुझे आश्चर्य इस बात का है कि इस महत्वपूर्ण आत्मकथा के पुनः प्रकाशित होने में स्वतन्त्र भारत में भी लगभग ११ बरस क्यों लग गए।

यह सम्पूर्ण आत्मकथा (१४२ पृष्ट) केवल दो दिनों में लिखी गई, अतः अधिक विस्तार से काम नहीं लिया गया। फिर भी इस आत्मकथा से लेखक के व्यक्तित्व पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। आत्मकथा के कुछ अंश तो अत्यन्त मार्मिक हैं। श्री बिस्मिल स्वयं कवि भी थे। फांसी की कोठरी में रहते हुए वह लिखते हैं:--

"महसूस हो रहे हैं बादे फना के झोंके
खुलने लगे हैं मुझ पर इसरार ज़िन्दगी के !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारे अलम उठाया रंगे निशात देखा
आये नहीं हैं यूं ही अन्दाज़ बेहिसी के ।

* * *

वफ़ा पर दिल को सदके जान को नज़रे जफ़ा कर दे
मुहब्बत में यह लाज़िम है कि जो कुछ हो फ़िदा कर दे ।

* * *

वहे बहरे फना में जल्द या रब लाश बिस्मिल की
कि भूखी मछलियां हैं, किन्तु जौहरे शमशीर कातिल की ।
समझ कर फूंकना इसको जरा ए बागे नाकामी
बहुत से घर भी हैं आबाद इस उजड़े हुए दिल से !

आत्मकथा के साथ श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का सम्पादकीय वक्तव्य, श्री भगवानदास साहिर लिखित भूमिका, श्री मन्मथनाथ गुप्त लिखित 'पृष्ठभूमि' इस प्रकाशन में दे दिए गए हैं, जिनसे अमर शहीद राम प्रसाद बिस्मिल के युग को तथा उन के आदर्शों को समझने में मूल्यवान सहायता मिलती है ।

भारत के सभी सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत पुस्तकालयों में इस आत्मकथा की एक एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए । भारत की सभी भाषाओं में इस आत्मकथा का अनुवाद अविलम्ब प्रकाशित होना चाहिए ।

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा : लेखक--हुमायूं कबीर; अनुवादक--विराज; प्रकाशक--राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली; पृष्ठ संख्या--२८२; मूल्य--५।। रु० सजिल्द ।

भारत के संस्कृति मन्त्री श्री हुमायूं कबीर इस देश के अत्यन्त श्रेष्ठ शिक्षा विशेषज्ञ भी हैं। स्वतन्त्र भारत में शिक्षा के आदर्शों और पुनर्गठन के सम्बन्ध में उन्होंने एक उपयोगी पुस्तक अंग्रेज़ी में लिखी थी। यह पुस्तक उसी का अनुवाद है । शिक्षा की सभी स्थितियों के अतिरिक्त शिक्षा सम्बन्धी वर्तमान समस्याओं पर भी इस पुस्तक में बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है। उदाहरण के लिए छात्रों में अनुशासन हीनता । पुस्तक निस्संदेह अत्यन्त उपयोगी है । यदि सार्वजनिक साक्षरता और उसकी सम्भावनाओं पर भी एक अध्याय इस पुस्तक में दिया जा सकता, तो उसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाती । अनुवाद बहुत अच्छा हुआ है ।

समय सुन्दर-कृति-कुसुमांजली : संग्राहक-सम्पादक--अगरचन्द नाहटा तथा भंवरलाल नाहटा; प्रकाशक--नाहटा ब्रदर्स, ४ जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता-७; पृष्ठ संख्या--६३०; मूल्य--५ रु० ।

श्री अगरचन्द नाहटा ने कितनी ही प्राचीन बहुमूल्य कृतियों का पुनरुद्धार किया है । समय सुन्दर-कृति-कुसुमांजली भी उन्हीं में एक है । मूल ग्रन्थकार का जन्मकाल सन् १५४५ माना जाता है। उनके जीवन के ६७वें वर्ष में देश में जो भारी अकाल पड़ा था, उसका बहुत अच्छा वर्णन इस रचना में है। उस युग की राजस्थानी भाषा, शैली, घटनाओं तथा विचारों पर इस रचना से बहुत प्रामाणिक प्रकाश पड़ता है । शोध-साहित्य में इस ग्रन्थ का यथोचित आदर होना चाहिए ।

प्रकाशित जैन साहित्य : संयोजक--पन्नालाल जैन अग्रवाल; सम्पादक--ज्योतिप्रसाद जैन; प्रकाशक--जैन मित्र मण्डल, धर्मपुरा, दिल्ली-६; पृष्ठ संख्या--३२४; मूल्य--२ रु० ।

इस संग्रह में प्रकाशित जैन साहित्य की प्रामाणिक सूची दी गई है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल लिखित प्राक्कथन महत्वपूर्ण है । जैन मित्र मण्डल के मन्त्री श्री आदीश्वर प्रसाद जैन का यह प्रयत्न जैन साहित्य के प्रेमियों के लिए विशेषतः उपयोगी सिद्ध होगा ।

रजत जयन्ती स्मृति ग्रन्थ : प्रकाशक--पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, निकलसन रोड, अम्बाला छावनी; पृष्ठ संख्या (बड़े आकार के)--२६०; मूल्य--६ रु० ।

पंजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन की रजत जयन्ती इसी वर्ष यथेष्ठ धूमधाम से मनाई गई है । यह सचित्र ग्रन्थ इसी अवसर को स्थायित्व प्रदान करने के लिए निकाला गया है । गत २५ वर्षों में पंजाब में हिन्दी-प्रसार तथा हिन्दी साहित्य के निर्माण तथा प्रकाशन के लिए जो प्रयत्न हुए हैं, इन पर खूब अच्छा प्रकाश इस स्मृति ग्रन्थ में डाला गया है । इस ग्रन्थ से पुराने लाहौर की याद ताज़ा हो जाती है । कुछ लेखों में आत्म प्रशंसा की भी झलक है । सब मिला कर यह स्मृति ग्रन्थ सराहनीय है । छपाई-सफाई में सुधार की गुंजाइश है ।

--चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

●

ऊर्म्मिला काव्य : लेखक--बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'; प्रकाशक--अतरचन्द कपूर एण्ड सन्स, दिल्ली; पृष्ठ संख्या--६००; मूल्य--१० रु० सजिल्द ।

१९२२-२३ के आसपास असहयोग आन्दोलन के दिनों में कानपुर के प्रताप प्रेस में एक रात ऊर्म्मिला का कुछ अंश श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से सुनने का अवसर मिला था । उन दिनों नवीन जी प्रताप प्रेस की एक कोठरी में रहते थे । उस दिन कांग्रेस का काम करके थके-मांदे लौटे तो रात को मुझे देखा । थोड़ी ही देर में ऊर्म्मिला काव्य के द्वारा उन्होंने अपना हृदय खोल कर रख दिया । शायद पांचवे सर्ग में आये ब्रजभाषा के दोहे थे । स्वर सहित दोहों का पाठ सुनकर मुझे लगा जैसे कोई 'अभिनव बिहारी' वियोग शृंगार का वर्णन कर रहा है । न जाने कब तक मैं मौन, मूक होकर सुनता रहा । वह दोहे याद नहीं रहे किन्तु जो रसानुभूति हुई वह मैं बहुत दिनों तक नहीं भूल सका । इधर बिहारी की अनुकृति पर और भी बहुत से लोगों ने लिखा है । उसे सुना और पढ़ा भी, किन्तु ऊर्म्मिला के दोहे तो 'घाव करें गंभीर' थे । नवीन जी की रचनाओं में कई कविताएं ऐसी हैं जिन्हें भूल सकना कठिन है, फिर भी मुझे कभी-कभी ऐसा लगा कि उनकी रचनाओं पर दर्शन छा रहा है । भक्त प्रवण, संस्कृति प्रेमी उनका मन कभी मार्क्सवाद की धज्जियां बिखेरने को टूट पड़ा है, कभी संस्कृति के गुण गान में जीवन के उदात्त स्तर पर पहुंच कर प्रवचन कर रहा है । निश्चय ही कवि के जीवन में एक ऐसी अवस्था भी आती है जब वह आध्यात्मिक स्तर से जीवन को देखने लगता है । इसी बीच मुझे नवीन जी पर लिखे गए लेखों को पढ़ने का अवसर मिला है । उनमें नवीन जी की करुणा, दया, मैत्री और अल्हड़पन के विविध रूप मिले ।

मैं यह नहीं कह सकता कि आज ऊर्म्मिला पर लिखते समय मैं नवीन जी के साथ कहां तक न्याय कर सकूंगा । तो भी मैं यह कह देना चाहता हूं कि आलोचक की हैसियत से नहीं, एक पाठक की दृष्टि से मैं ऊर्म्मिला काव्य पर कहना चाहूंगा क्योंकि आलोचना का मापदण्ड मेरे पास नहीं है । मैं सजग पाठक को ही सही आलोचक मानता हूं ।

नवीन जी की सबसे बड़ी खूबी यह है कि उनका यह काव्य १९२१-२२ से लेकर १९३४ में समाप्त हुआ । इसके बाद १९५७ में प्रकाशित हुआ ? इस बीच इन तेईस बर्षों में न जाने कितने स्वनाम धन्य कवि पैदा हो गए ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी कृतियों ने नए वादों का उद्भावन किया, कितनी शैलियां बदलीं, कितने रूप अपरूप हुए किन्तु इन अल्हड़ कवि जी ने इतना भी नहीं किया कि वे अपनी रचना छपवा ही देते। यदि प्रयागनारायण त्रिपाठी जैसे हनूमान न मिलते तो कदाचित इस काव्य-सीता का पता हिन्दी पाठकों को न लग पाता ।

पहली बात यह है कि मैंने इस काव्य को आदि से अन्त तक पढ़ा है। इसको पढ़ते हुए मुझे काफी झुंझलाहट भी हुई है। प्रारम्भ कल्पना के आवाहन से हुआ है जिसमें कवि ने कलियुग की मसी को छोड़ कर टूटी कलम से त्रेता युग में वास करने की प्रार्थना की है। इसके बाद देवी ऊर्म्मिला का आवाहन है, फिर ध्यान। तदनन्तर जनक की मिथिला नगरी का वर्णन और जनकपुर प्रवेश। यहां तक काव्य का रूप एकदम वर्णनात्मक और मोटे-मोटे संस्कृत शब्दों से गुंफित छन्दों में प्रगट हुआ है। बाद में कवि ने 'प्रसाद प्रांगण' नामक उपशीर्षक से ऊर्म्मिला और सीता के बचपन का चित्र खींचा है। दोनों आपस में कहानी कहती हैं, लड़ती झगड़ती हैं।

वे दोनों कैसी थीं--

रुन-झुन, रुन-झुन, नन्हीं-नन्हीं पैजनियां झंकारें--
चरण-चलन की प्रांगण भर में फैल रही गुंजारें,
किलक-किलक मधु स्रोत बहाती हैं विदेह की ललियां,
प्रात पवन में चिटखी हैं दो छोटी-छोटी कलियां ।

प्रथम सर्ग में दो सौ चालीस छन्दों द्वारा सीता और ऊर्म्मिला के बालपन का बड़ा सरस और हृदयग्राही चित्रण है। यहां आकर मालूम होता है, कि कवि ने जो कल्पना को पुकारा है, उसमें वह वर्णन करते-करते इतना तन्मय हो गया है, कि पूरा सर्ग इन दोनों 'ललियों' के हृदयग्राही बालसुलभ सौन्दर्य में ही समाप्त हो जाता है।

द्वितीय सर्ग अवध के महलों में ऊर्म्मिला के सौन्दर्य, सौजन्य और सद्व्यवहार से प्रभावित सुमित्रा के आनन्द और मोद तथा लक्ष्मण की प्रेम अनुरक्ति में समाप्त होता है। लज्जा की मूर्ति ऊर्म्मिला ने अपने सौम्य स्वभाव और आत्म निवेदन द्वारा सारे घरभर को मोहित कर लिया है। शत्रुघ्न का ऊर्म्मिला की चित्रकला को देखकर मजाक कर बैठना और ऊर्म्मिला का--

"लला, पहले तो तुम मुझसे ले लो अभी कला की शिक्षा"
फिर अपनी झोली में, मां से लेना शासक-पद की भिक्षा ।" आदि

हास-परिहास द्वारा यह सारा सर्ग एक प्रकार से सजीव हो उठा है। ऊर्म्मिला ने आरम्भ से ही लक्ष्मण को महायोगी, इंद्रियजित और गुडाकेश माना है। यही रूप आगे चलकर उनका प्रगट होता है। एक बार लक्ष्मण और ऊर्म्मिला बसन्त विहार के लिए विंध्याचल पर्वत पर जाते हैं, वहां का वसन्त वर्णन पढ़कर ऐसा लगता है कि सम्पूर्ण प्रकृति मूर्तमान हो उठी हो--

गा उठो पक्षी स्वागत गीत,
छिटक जाए स्वागत का रंग।
ऊर्म्मिला लक्ष्मण का नव मोद,
देख लज्जित हो उठे अनंग।
कुरंगम कूदो, खेलो खेल,
हरिणियों, नांचो अपना नांच,
देखती हो क्या कौतुक भरी--
ऊर्म्मिला के लोचन नाराच ?

इस तरह लगभग इकत्तीस छन्दों में कवि ने पशु-पक्षी, वृक्ष-वनस्पति, झरने-नदी, का सजीव चित्रण किया है। लक्ष्मण और ऊर्म्मिला का वन विहार कल्पनातीत ढंग से चित्रित हुआ है। न वहां आज का 'हनीमून' है और न कालिदास वर्णित पार्वती और शिव का अनंगरंगोत्सव है। बल्कि प्रेम के शुद्ध रूप का वर्णन है। जिसमें न वासना है, न सांसल तृप्ति और न इंद्रियाचार। वहां प्रेम के सम्बन्ध में ऊर्म्मिला और लक्ष्मण में प्रश्न और उत्तर की झड़ी लग रही है। एक तरह जीवन के प्रारम्भिक काल से लेकर प्रेम के भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन करते हुए लक्ष्मण कहते हैं--

थाम लो तुम मेरी धनुडोर,
थाम लूं मैं तव अंचल छोर।
अग्रसर हो उस पथ में जहां,
उठ रहा पूर्ण प्यार का रोर ।
प्रेम क्या है ? जीवन की गांठ--
बंधी जिससे प्राणों की लड़ी,
हृदय कम्पन जिससे संचलित--
थिरकता रहता है हर घड़ी ।

यह प्रेम तन्मयता का प्रेम है, जिसमें न आदान है न प्रदान। तादात्म्य भाव का रूप ही यहां प्रदर्शित किया गया है। देखिए--

फल उठे इष्ट सिद्धि का विटप,
बनो तुम मैं, मैं तुम बन रहूं,
धनुष तुम धारण कर लो, और
तुम्हारे लाज वचन में कहूं ।
ऊर्म्मिला का विभिन्न अस्तित्व,
अरे हां, भूतल से मिट जाय,
और लक्ष्मण का विरहित अहं
स्वप्न की चादर सा सिमिटाय,

यद्यपि प्रेम का यह रूप कृष्ण-भक्ति शाखा के कवियों में कई तरह से चित्रित हुआ है, और ब्रजभाषा में तत्स्वरूप, तादात्म्य की महिमा राधा कृष्ण के रूप में कई स्थलों पर प्रदर्शित हुई है, फिर भी खड़ी बोली के काव्यों में इतना हृदयग्राही वर्णन कदाचित और कहीं नहीं हुआ है। परिणाम स्वरूप--

लखन के धन्वा की टंकार--
ऊर्म्मिला की नुपुर झंकार,
अवश उत्कम्पित करने लगी--
चिरन्तन 'एकोऽहं' के तार ।

यही पूर्णता है। जहाँ पहुंचकर लक्ष्मण और ऊर्म्मिला की हृदयतंत्रियां एक मन और एक स्वर हो जाती हैं, और यदि कभी उनमें शारीरिक विक्षोभ भी होता है, तो भी वह अपने संयम को नहीं तोड़ता--

नहीं अति लंघित रेखा हुई,
× × ×
प्रणय उनका गम्भीर विदेह
× × ×
योग निद्रा नयनों में भरे,
भुजाओं में भर शक्ति अखंड ।

यहां आकर राधा और कृष्ण की तरह एकात्म्य होने पर भी उनका पौरुष और नर नारी की दीप्ति अक्षुण्ण बनी रहती है। सम्पूर्ण द्वितीय सर्ग इसी एकात्म भाव की प्रतीति में लिखा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय सर्ग की कथा म लक्ष्मण के बनवास-गमन के समय ऊर्म्मिला को सान्त्वना देना और सीता राम का आकर ऊर्म्मिला को समझाना आदि कथाएं हैं। वह सब अपने में अपूर्ण होती हुई भी इतने अविच्छिन्न प्रवाह में लिखी गई हैं, कि पाठक छन्दों के प्रवाह के साथ-साथ ऊपर-ऊपर चढ़ता चला जाता है। जैसे छन्दों की यह गति पाठक के सम्पूर्ण चेतन को अपनी ओर खींच रही हो। यहां आकर नवीन का कवि उच्छल, उत्फुल्ल और उद्दाम वेग से बह उठता है। छन्द पर छन्द बिना अटक के बिना प्रतिरोध के अजस्त्र भाव से बहने लगते हैं। भारतीय संस्कृति की अमर दीक्षा के लिए राम और लक्ष्मण के वन गमन का उद्देश्य विभिन्न रूपों में प्रवाहित हुआ है। जब राम ऊर्म्मिला को समझाने आते हैं, उस समय राम का वर्णन भी पठनीय है--

जिनके पगमग पर डगमग,
डगमग भूमंडल होता था,
जिनकी स्मिति रेखा पर जग सब
अपनी सुधबुध खोता था,

इस सम्पूर्ण सर्ग में काव्य छटा अनुभूति के शिखर पर पहुंच गई है। मालूम होता है, जैसे कवि अपने सम्पूर्ण रूप में एक कल्पना मात्र बन गया है। चौथे सर्ग में विरह की मीमांसा की गई है। इसमें विरह की अपेक्षा जीवन में निराशा का जो पद-पद पर दर्शन होता है, उसकी व्याख्या है। काव्य की दृष्टि से यह सर्ग मुझे साधारण लगा। कम से कम मुझे इसने अपील नहीं किया। कवि प्रतिभा का चमत्कार पंचम सर्ग में दिखाई देता है? जहां अपने पूर्ण रूप में बियोगिनी ऊर्म्मिला लक्ष्मणमयी हो गई है। क्या ही अच्छा होता यह वियोग सर्ग खड़ी बोली में लिखा जाता। फिर भी इस सर्ग का अपना महत्व है। छटे सर्ग में राम का विभीषण को राज्य देना तथा संस्कृति का महत्व वर्णन है। यहां काव्य कम दर्शन अधिक है। अध्यात्म छलछला उठा है। इन छः सर्गों में यह काव्य समाप्त हुआ है।

नवीन जी का यह काव्य कई दृष्टियों से अद्भुत है। वे जिस प्रसंग का वर्णन करने लगते हैं, उसमें जैसे सम्पूर्ण विषय वस्तुओं को छान डालते हैं। वहां न भाषा उनके सामने रुकावट डालती है, न निर्झर की तरह प्रवाहित छन्द। उनकी काव्य सरस्वती जैसे रुकना ही नहीं जानती। फिर भी जहां कविता का सौन्दर्य है, वहां कथा का प्रवाह विश्रृंखलित हो गया है। जब लेखक को कथा कहते-कहते कुछ नहीं सूझता तो कल्पना का आवाहन करके आगे की कथा जोड़ता है। एक तरह सारा कथा प्रवाह बिखरा-बिखरा है। कदाचित इसमें कवि ने केवल ऊर्म्मिला को रामायण की सम्पूर्ण कथा से निकालकर जोड़ने का प्रयत्न किया है, इसीलिए कथा का रूप एक दूसरे से जुड़ नहीं पाया है। संवाद कहीं-कहीं पर बहुत ढीले हैं। छन्दों में भरती के शब्द बहुत हैं। कहीं-कहीं लगता है, हम 'प्रियप्रवास' पढ़ रहे हैं। मुझे लगता है यह कथा प्रबन्ध काव्य नहीं है, बल्कि काव्य प्रधान कथा-वृत है। लोक बोली के शब्दों का प्रयोग नवीन जी की अपनी विशेषता है, फिर भी कहीं-कहीं उन्होंने बहुत जोर जबरदस्ती की है। बात को 'बाता', यशस्वी को 'सुयशी', मरकत को 'मर्कत' ऐसे कई प्रयोग हैं, जहां कवि न छद के अनुसार उन्हें ह्रस्व दीर्घ कर दिया है। एक जगह हास की जगह उपहास का भी प्रयोग किया गया है।

'यों उपहास वचन भाभी के सुनकर श्री शत्रुघ्न लजाये'

कहीं-कहीं चमत्कारहीन प्रयोग भी हैं।

'अब तो मेरी जीजी को बस मन्तर जन्तर सूझ रहा है,
क्यों है ठीक बता मेरी यह? लो कुछ अनुचित नहीं कहा है।'

ऊर्म्मिला काव्य में जहां दर्शन है, अध्यात्म चिंतन है वहां काव्य अपने पूर्ण रूप में मैंने पाया। यदि कहीं साकेत और यशोधरा जैसा उच्छल रस है तो कामायनी जैसा दर्शन भी इसमें मिलता है। अनुभूति और कल्पना के सुन्दर स्थलों का चित्रण भी इसमें है।

वनगमन के समय ऊर्म्मिला सीता से अपनी धरोहर (लक्ष्मण) को सुरक्षित रखने के लिए कहती है--

"आर्य राम के श्री चरणों में--
करना नित मेरा वंदन।
तनिक सम्हाले रखना, हैं अति
उग्र सुमित्रा के नंदन।
मेरे सेंदुर की रक्षा तुम
घन-वन में करती रहना,
हे तुम अच्युत सती भवानी,
हे मेरी अच्छी बहना।'

कुछ सुन्दर स्थल--

लक्ष्मण, सीता और ऊर्म्मिला
दोनों के संग 'यों निखरे--
ज्यों मध्याह्न, उषा सन्ध्या को
लेकर, संग-संग विचरे,

जब लक्ष्मण और ऊर्म्मिला का पुनर्मिलन होता है--

अब-जब मिले, सिद्ध थे दोनों
आरम्भिक चांचल्य न था,
हृदय-मिलन-क्षण नयन अजल थे,
वहां हृदय चापल्य न था,
नयनों में अति नीरवता थी,
वाणी में था मौन परम,
हृदयों में अनुभूति बोध था,
प्राणों में थी शान्ति चरम,
मन ही मन थे लखन निछावर एक ऊर्म्मिला की टक पे,
और ऊर्म्मिला न्यौछावर थी उनके एक चरण नख पे।

मैं इस काव्य का मूल्यांकन तो नहीं कर सकता फिर भी मैं इतना कह सकता हूं, कि नवीन जी के इस काव्य ने हिन्दी के गत्यवरोध को दूर करके एक नया द्वारा खोला है। उनका यह काव्य किसी वाद से प्रभावित काव्य नहीं है बल्कि स्वच्छ, सुन्दर, मौलिक काव्य है जिसे 'काव्य' कहा जा सका है।

कवि नवीन की सरस्वती के चरणों में मेरा प्रणाम।

--उदयशंकर भट्ट

●

अगले पांच साल : लेखक--आचार्य जी० एस० पथिक; प्रकाशक--आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली; पृष्ठ संख्या--२८८; मूल्य--५ रुपये।

यह पुस्तक १९५२ में प्रकाशित हुई थी और लेखक ने जिन अगले पांच सालों का जिक्र किया है वे पांच साल गुजर चुके हैं। इसलिए मैंने विशेषकर इस पुस्तक को ध्यान से पढ़ा तो आश्चर्य हुआ कि लेखक बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुलझे हुए विचार रखते हैं और उन्होंने भारत की सारी समस्याओं पर अच्छी तरह चिन्तन किया है। वे यह नहीं मानते कि गांधी जी के प्रताप से ही भारत स्वतन्त्र हुआ, बल्कि यह कहते हैं--"दैवयोग से सन् १९४७ एक ऐसा वर्ष आया, जब कि भारत की राष्ट्रीयता ने इस देश से अंग्रेजों के पैर उखाड़ दिए। उन्हें विवश होकर यहां से भागना पड़ा। वे लाचार थे, क्योंकि दूसरा और कोई उपाय नहीं था।" यह देवयोग शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। वे यह नहीं मानते कि अंग्रेजों ने भारत को स्वतन्त्र करके भारत के साथ कोई एहसान किया, बल्कि वे कहते हैं--"अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को केवल दो टुकड़ों में--विभाजन ही नहीं किया, बल्कि उसके परिणामस्वरूप इस देश में आग लगाने वाली कई विकट समस्याएं उत्पन्न कीं।" वे संग्रह के पहले ही लेख में यह पूछते हैं कि हमें किस रूप में स्वतन्त्र भारत का निर्माण करना है--"हमें आगे बढ़ने पर इस बात का ध्यान रखना है कि जिस हिन्दुस्तान को हमने स्वतन्त्र किया है, उसे हम किस रूप में निर्माण करने वाले हैं। क्या यह बुद्ध, अशोक, गांधी और जवाहरलाल का हिन्दुस्तान होगा अथवा उन लोगों का होगा जो बुद्ध, अशोक, गांधी और जवाहरलाल की परम्परा में विश्वास नहीं करते। प्रत्येक देशवासी को यह समस्या हल करनी है। हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपने तईं लूथर के समान यह कहे--"यहां मैं खड़ा हूं, मैं इसके विपरीत नहीं चल सकता।"

'इस लाश को उतार फेंको', इस लेख में वे चीन का उदाहरण देते हुए उसके सम्बन्ध में कहते हैं कि उसकी महान् सफलता का कारण यह है कि उन लोगों ने पुराने, गले-सड़े आवरण को एकबारगी ही बदल दिया और सबको एक समान दरजे पर खड़ा किया। लेखक इस बात से दुखी है कि यहां जीवन के किसी भी क्षेत्र में क्रांति नहीं आ पाई और हमारे सपने पूरे नहीं हुए। वे कहते हैं--

"भारत स्वतन्त्र हुआ। इसके पूर्व हमने जो बड़े-बड़े सपने देखे थे, अपने देश का जो नक्शा हमने खींचा था, आज हम उस दिशा में देश को एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा सके। हमारा राष्ट्र उसी करार पर खड़ा है, जहां आज से पहले खड़ा था। जीवन के किसी भी क्षेत्र में क्रान्ति नहीं आ पाई। समाज का वही पुराना रूप-रंग बना है। अन्ध-विश्वास और रूढ़ियां समाज के गले तक घिरी हुई हैं।"

लेखक ने १९५२ में ही यह अनुभव किया था कि व्यापारी वर्ग देश की स्वतन्त्रता का बेजा फायदा उठा रहा है और वह स्वतन्त्रता को सफल बनाने के लिए किसी तरह का भी त्याग करने के लिए तैयार नहीं। वे समस्या की जड़ तक जाकर यह कहते हैं कि देश में जो भ्रष्टाचार है उसके लिए व्यापारी वर्ग ही जिम्मेदार है। उनका कहना है--"व्यापारी वर्ग हर प्रकार के शोषण में लगा हुआ है और उसके जीवन से ही राष्ट्र का भयानक नैतिक पतन हुआ है। उनके ही कृत्यों से छोटे-बड़े सभी वर्ग के लोग भ्रष्टाचार में डूब गए। व्यापारी भ्रष्टाचार को व्यापार का अंग मान बैठे हैं और अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए वे छोटे-बड़े राज-कर्मचारियों को पैसों से खरीदते हैं। यद्यपि सरकारी कर्मचारी भी पाप करता है, किन्तु वह धनी नहीं बनता, उसके काम से व्यापारी और उद्योगपति धन कमाते हैं। इस भ्रष्टाचार का नाश तब तक न होगा, जब तक कि अनेक व्यक्ति कठोर दण्ड न पाएंगे या राज्य ऐसे लोगों की सारी सम्पत्ति जब्त न कर लेगा। भ्रष्टाचार करने वाला चाहे किसान हो या जमींदार, या व्यापारी तथा उद्योगपति अथवा छोटे-बड़े सरकारी नौकर--सबको कड़ी सजा जब तक नहीं मिलेगी, तब तक हमारा राष्ट्र आगे न बढ़ पायेगा। इस प्रकार के लोग सहसा कानून के शिकंजे में नहीं आते।" स्मरण रहे कि लेखक ने यह बातें १९५२ में लिखीं थीं, पर आज भी ये बातें विचार्य हैं।

पाकिस्तान पर लिखते हुए लेखक इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं--"भारत में मुसलमानों की आबादी अब भी ३ करोड़ ६ लाख है, और पाकिस्तान में उनकी संख्या ६ करोड़ ५० लाख है। पाकिस्तान की अधिक जनसंख्या पूर्वीय बंगाल में है, और वहां के हिन्दू और मुसलमानों दोनों की भाषा बंगला है। इस दृष्टि से पाकिस्तान में बंगला-भाषा-भाषियों की संख्या भारत की अपेक्षा अधिक है और भारत में पाकिस्तान की अपेक्षा उर्दू पढ़ने और लिखने वालों की संख्या अधिक है।"--यह एक मजेदार तथ्य है कि बंगला पढ़ने वालों की संख्या पाकिस्तान में अधिक है और उर्दू पढ़ने वालों की संख्या पाकिस्तान की तुलना में भारत में अधिक है। यह स्थिति कई और समस्याएं उत्पन्न कर देती हैं। पर लेखक पाकिस्तान की जहादी मनोवृत्ति से पथ भ्रष्ट न होने की राय देते हैं। वे सही तौर पर कहते हैं--"हम इस उत्तेजनापूर्ण वातावरण में भी पथ-भ्रष्ट न होंगे। हम अन्याय के आगे तो अपना सिर कभी न झुकायेंगे, किन्तु इन्सानियत की खोपड़ियों पर फतह और नफरत के मीनार कभी खड़े न करेंगे।"

लेखक ने उसी युग में यह महसूस कर लिया था कि--"भारतीय राष्ट्र के लिए यह परीक्षा का समय है कि वह किधर जाएगा, --उत्थान की ओर या पतन की ओर। सम्प्रदायवादी ऐसी करार पर खड़े हैं कि वे देश को ले डूबेंगे। पर यदि वे अपनी शक्तियां समाज के उत्थान में लगायें जिससे कि राष्ट्र का एकीकरण हो तो देश का भविष्य मंगलमय हो सकता है। पर क्या यह सम्भव है? क्या उनकी शक्तियां फिरकापरस्ती से बाहर राष्ट्र-निर्माण में लगेंगी। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने देश में विनाशकारी तत्व न रहने दें। उनके समूल नाश में ही राष्ट्र का अभ्युदय निहित है।"

क्या आज भी परिस्थिति ऐसी नहीं है? पं० जवाहरलाल के सशक्त नेतृत्व के बावजूद क्या यह कहा जा सकता है कि हमारे यहां लोकतन्त्र इस हद तक सफल हुआ है कि अब साम्यवाद की जरूरत ही नहीं रही? इसमें सन्देह नहीं कि हमारे यहां विशुद्ध लोकतन्त्र है जिसका प्रमाण केरल की साम्यवादी सरकार का होना है। पर साथ ही बहुत सी समस्याएं जो सुलझी नहीं और सुलझती भी नहीं दिखाई देतीं उनका क्या हल है? पूंजीपति तो सहयोग दे ही नहीं रहे हैं।

पैसा : लेखक--विराज; प्रकाशक--नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई सड़क, दिल्ली; पृष्ठ संख्या--७२; मूल्य--दो रुपये।

इस छोटी सी पुस्तक में सरल भाषा में सिक्कों पर ज्ञातव्य तथ्य दिए गए हैं। स्कूली बच्चों के लिए यह पुस्तक उपयोगी है।

त्रिवेणी-अवगाहन : लेखक--भुवनेश्वरी चरण सक्सैना; प्रकाशक--रामप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा; पृष्ठ संख्या--२३६; मूल्य--तीन रुपये।

यह पुस्तक छात्रों के लिए लिखी गई है और इसमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध संग्रह त्रिवणी का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। जिनके लिए यह पुस्तक लिखी गई है उनके लिए यह उपयोगी है।

कृषि यन्त्र-शास्त्र : लेखक--ब्रह्मदेव गुप्त; प्रकाशक--आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली; पृष्ठ संख्या--९०; मूल्य--दो रुपये।

(शेष पृष्ठ ५८ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

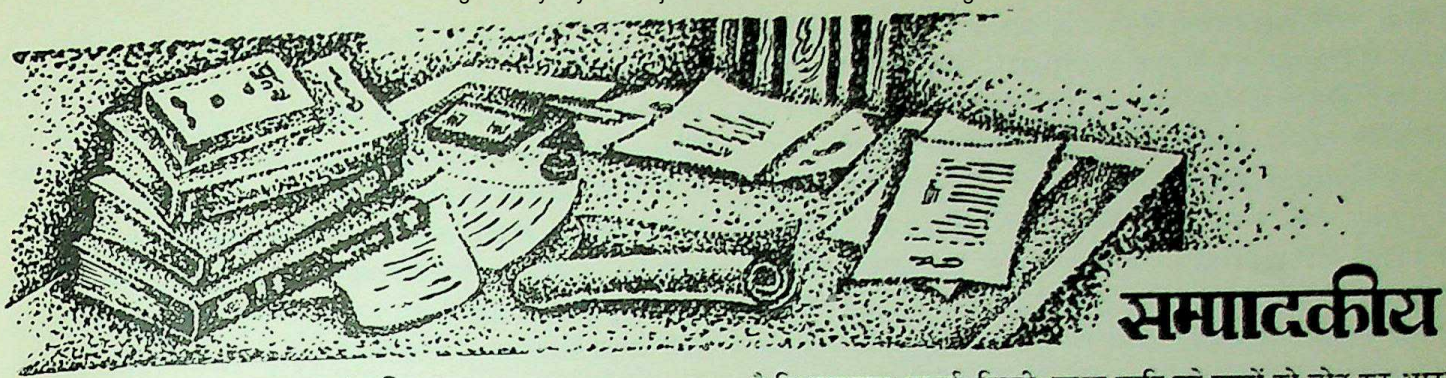

समादकीय

श्रद्धांजलि

२ अक्तूबर, १९५८ को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का ८९वां जन्म दिन है। आज के भारत में जो निष्ठा, एकता और आदर्शवाद है, उस सबका संस्कार राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने किया था। वह १२५ वर्ष जीने का इरादा कर रहे थे, पर विभाजन से उत्पन्न परिस्थितियों ने उन्हें इतनी पीड़ा पहुंचाई थी कि वह प्रभु से अपने को इस दुनिया से उठा लेने तक की चाह करने लगे थे। एक धर्मान्ध भारतीय ने जिस तरह उनकी हत्या की, वह भारत के इतिहास का सबसे बड़ा कलंक है। उनका नश्वर शरीर तो चला गया, पर उनकी भावना, उनका यशःशरीर और उनके आदर्श अमर हैं। इस अवसर पर हम राष्ट्रपिता के अदृश्य चरणों में 'आजकल' परिवार की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

●

हिन्दी भारत की राजभाषा के रूप में

भारतीय संविधान के अनुसार २६ जनवरी, १९६५ से देवनागरी लिपि में हिन्दी भारत की एकमात्र राजभाषा बन जानी चाहिए। पर कितनी ही परिस्थितियों के कारण यह निश्चय किया जा चुका है कि उक्त तारीख के बाद भी अंग्रेज़ी भारत की राजभाषा के रूप में जारी रहेगी। जिन परिस्थितियों के कारण यह स्थिति आई, उन पर प्रकाश डालना हमारी इस टिप्पणी का उद्देश्य नहीं है। सरकारी भाषा के सम्बन्ध में पार्लियामेंट द्वारा नियुक्त कमेटी आजकल उक्त परिस्थितियों, उनके कारणों तथा भावी कार्यक्रम पर विचार कर रही है। इस कमेटी में भारतीय भाषाओं के विशेषज्ञ यथेष्ट संख्या में हैं, इससे हमें विश्वास है कि यह कमेटी उपयोगी और व्यावहारिक उपायों का निर्देश करेगी। यहां हम इतना ही कहना चाहते हैं कि यह घोषणा अभी से हो जानी चाहिए कि २६ जनवरी, १९६५ से भारत की राजकीय भाषा के रूप में हिन्दी और अंग्रेज़ी का स्थान एक समान हो जाएगा। अभी उस तारीख के आने में ६ वर्ष से भी ऊपर बाकी हैं। इन ६ वर्षों में आवश्यक पारिभाषिक शब्दों के निर्माण के सम्बन्ध में यथेष्ट कार्य कर लिया जा सकता है।

●

भारत की राष्ट्रीय भाषाओं के लिए अवसर

भारत में १४ राष्ट्रीय भाषाएं हैं। इनमें से संस्कृत को छोड़कर शेष १३ भाषाएं--काश्मीरी, पंजाबी, उर्दू, बंगला, असमी, उड़िया, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलियाली, मराठी, गुजराती और हिन्दी--भारत के किसी न किसी प्रदेश में व्यवहृत होती हैं। स्वाधीन भारत में इन सभी भारतीय भाषाओं का विकास हो रहा है। पिछले कुछ वर्षों से, सब प्रयत्नों के बावजूद भारत में अंग्रेजी भाषा के अध्ययन का स्तर गिर रहा है। यह एक तथ्य है कि कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, मद्रास आदि बड़े नगरों को छोड़ कर भारत के शहरों में अवस्थित कालेजों में अंग्रेज़ी का स्तर इतना गिर गया है कि एम० ए० के विद्यार्थी भी अंग्रेजी के व्याख्यान समझने में तथा अंग्रेजी में उत्तर पत्र लिखने में दिक्कत अनुभव करने लगे हैं। इसी तरह मुफ़स्सिलों के डाकखानों, सरकारी दफ्तरों आदि के बाबू अब जिस तरह की अंग्रेज़ी लिखते या पढ़ते हैं, वह बहुत बार परेशानी उत्पन्न करती है। इस दशा में इस सम्बन्ध में बहुत शीघ्र कुछ न कुछ करना आवश्यक है। हमारी राय है कि भारत में अंग्रेज़ी भाषा के अध्ययन के स्तर में तथा उसके परिणाम स्वरूप जो न्यूनता आई है, उसकी पूर्त्ति भारतीय भाषाओं को करनी चाहिए। अर्थात् शिक्षा, छोटी अदालतों तथा राज्यों के सरकारी काम-काज आदि में प्रादेशिक भाषाओं का समानुपातिक प्रयोग बढ़ता जाना चाहिए। यह अत्यन्त आवश्यक है। धीरे-धीरे हिन्दी भारत भर की राजभाषा का स्थान लेती जाएगी, पर इस समय जो रिक्तता उत्पन्न हो रही है, उसकी पूर्त्ति भारतीय भाषाओं को ही करनी होगी।

●

हिन्दी का क्षेत्र

हिन्दी इस देश की सबसे अधिक व्यापक भाषा है। भारत की लगभग आधी आबादी की भाषा हिन्दी है और शेष भारत में भी हिन्दी जानने वाले का काम मज़े में चल जाता है। मुख्यतः इसी कारण हिन्दी को भारतीय संविधान में देश की राजभाषा का स्थान दिया गया है। अभी यह कहना कठिन है कि हिन्दी कब तक भारत में राजभाषा का स्थान पूर्णतः ले सकेगी। इसी प्रश्न का दूसरा पहलू यह है कि हिन्दी भाषा कब तक इतनी सम्पन्न बन पाएगी, जब उसमें भारत की राजभाषा बन सकने की सामर्थ्य उत्पन्न हो जाए। यानी पार्लियामेंट में विधानों का निर्माण, हाइकोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट की कार्यवाही, उच्चतम टैकनिकल शिक्षाओं--इंजीनियरिंग, चिकित्सा, रसायन आदि--का प्रदान आदि सभी हिन्दी में हो सके।

पार्लियामेंट की जिस कमेटी का ज़िक्र ऊपर किया गया है, वह इस सम्बन्ध में भी विचार कर रही है। इस बीच हमारा सुझाव है कि इस महत्वपूर्ण कार्य का प्रारम्भ एक अन्य दिशा से भी अविलम्ब हो जाना चाहिए।

हिन्दी भारत के ५ प्रमुख राज्यों की प्रादेशिक भाषा भी है। ये राज्य हैं--उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और पंजाब (हिन्दी तथा पंजाबी दोनों)। ये पांचों राज्य यदि एक साथ और एक दूसरे के सहयोग से हिन्दी को सम्पन्न करने तथा अपने भीतर हिन्दी को राज-भाषा का अधिकाधिक स्थान देते जाने का निश्चय कर लें, तो हिन्दी के हित की दृष्टि से इससे अधिक महत्वपूर्ण बात दूसरी नहीं हो सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये पांचों राज्य मिल कर एक हिन्दी समिति का निर्माण कर सकते हैं, जो हिन्दी के सम्बन्ध में एक विस्तृत योजना बनाए और इन पांचों राज्यों में उक्त योजना को कार्यान्वित करे। इस कार्य में केन्द्रीय सरकार का अधिकतम सहयोग उक्त समिति को प्राप्त करना चाहिए और सम्पूर्ण योजना का संचालन केन्द्रीय सरकार की नीति के अनुकूल होना चाहिए।

उक्त पांचों राज्य हिन्दी को सही अर्थों में राजभाषा बनाने, तथा हिन्दी में विधान निर्माण आदि कार्य करने में एक दूसरे के सहयोग से असाधारण सफलता प्राप्त कर सकते हैं। इस समिति की देखरेख में एक अत्यन्त महत्त्व का कार्य यह भी हो सकता है कि उक्त हिन्दी क्षेत्र में विद्यमान १५ विश्वविद्यालय एक दूसरे के सहयोग से हिन्दी पारिभाषिक शब्दों के निर्माण तथा टैकनिकल विषयों पर हिन्दी में उच्चतम पुस्तकों के निर्माण और प्रकाशन का योजनाबद्ध कार्य आपस में बांट लें। हमारी राय से इस कार्य का महत्त्व बहुत बड़ा है।

संयुक्त राष्ट्र दिवस

२४ अक्तूबर को संसार भर में संयुक्त राष्ट्र दिवस मनाया जा रहा है। प्रथम महायुद्ध के बाद जिन कारणों तथा जिन उद्देश्यों से लीग आफ़ नेशन्स की स्थापना हुई थी, वे सर्वविदित हैं। जिन कारणों से लीग आफ़ नेशन्स का अवसान हो गया, वे भी स्पष्ट हैं। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान में ही संयुक्त राष्ट्र संघ का निर्माण किया गया था। संसार के अधिकांश राष्ट्र उसके सदस्य हैं। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना विश्व शांति तथा मानव-कल्याण के महानतम उद्देश्यों से की गई है। आज के मानव को एटम की जो महान शक्ति उपलब्ध हो गई है, उसका यदि दुरुपयोग किया जाए, तो अब तक की सम्पूर्ण मानव संस्कृति और निर्माण विनष्ट हो सकते हैं। विभिन्न राष्ट्रों में आज इतना गहरा वैमनस्य विद्यमान है, जो घृणा की सीमा तक पहुंचता जा रहा है। इन परिस्थितियों में मानव जाति का कल्याण एकमात्र संयुक्त राष्ट्र संघ के आदर्शों में ही निहित है। हमें आशा है, २४ अक्तूबर को संसार के सभी राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों को हृदयंगम करने का प्रयत्न करेंगे। अक्तूबर ही में महात्मा गांधी का जन्मदिन इस प्रेरणा को और भी सबल बनाने में सहायक हो सकता है।

लेखकों से निवेदन

१. लेखकों से अनुरोध है कि 'आजकल' के लिए कोई रचना भेजने से पूर्व यदि वे उसके विषय में सम्पादक से पत्र-व्यवहार कर लिया करें, तो इससे बहुत सुविधा होगी। 'आजकल' समकालीन भारतीय साहित्य, भारतीय कला और संस्कृति तथा राष्ट्रीय चर्चाओं का पत्र है।

२. अनाहूत रचनाओं को वापस करने का उत्तरदायित्व 'आजकल' कार्यालय का नहीं है।

३. रचनाओं पर लेखक का पूरा पता लिखा रहना आवश्यक है।

४. 'आजकल' कार्यालय में इतनी अधिक स्वीकृत सामग्री विद्यमान है कि उसके प्रकाशन में काफ़ी समय लग सकता है।

पुस्तक समालोचना—(पृष्ठ ५६ का शेषांश)

यह खुशी की बात है कि यन्त्र-शास्त्र पर थोड़े-बहुत ग्रन्थ हिन्दी म प्रकाशित हो रहे हैं। इस पुस्तक में हल के तमाम प्रकारों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बताया गया है कि हल के लिए कौन सा लोहा सबसे उपयुक्त होता है, हल की रक्षा कैसे की जाती है? इसके साथ ही जुताई के तरीके, ऋतु के अनुसार जुताई के विभाजन आदि पर भी रोशनी डाली गई है। पुस्तक कृषि-विद्यालय के छात्रों और आम किसानों के लिए उपयोगी है।

—मन्मथनाथ गुप्त

रूस के सिबिरों का पिता बैकाल—(पृष्ठ ४९ का शेषांश)

वातावरण स्वच्छ और प्रिय था। साइबीरिया में वास्तव में मौसम मास्को से अच्छा रहता है, साल में २०८ दिन धूप होती है और सरदियों में बरफ गिर कर जम जाती है, इसलिए हवा में नमी के कारण भारीपन नहीं होने पाता और मनुष्य आसानी से सांस ले सकता है।

सिबिर की जनता अपने प्यारे बूढ़े बैकाल और उसकी पुत्री अंगारा के बारे में एक बहुत ही रोचक कहानी कहती है। हमारी मार्गदर्शिका ने हमें उसे इस प्रकार सुनाया—बूढ़े बैकाल की ३३९ पत्नियां थीं, परन्तु सबसे प्यारी थी उसे अपनी इकलौती बेटी अंगारा। बैकाल ने अपने किनारों पर ऊंची-ऊंची शिलाएं खड़ी कर के एक किला-सा बना लिया था, जिसमें अंगारा उसे छोड़ कर कहीं और न जा सके। बैकाल अंगारा को हृदय से प्यार करता था। धीरे-धीरे अंगारा बड़ी हुई, उसके शरीर में यौवन का संचार हुआ, शक्ति आई और इच्छाएं जगीं। पश्चिम से चलने वाली हवाएं उसके पास आने लगीं और उत्तर की ओर बहते हुए विशाल 'यानासे' के बल और यश की खबरें लाने लगीं (रूसी भाषा में 'अंगारा' शब्द स्त्रीलिंग और 'यानासे' शब्द पुल्लिंग है)। धीरे-धीरे अंगारा यानासे से प्रेम करने लगी, और अपने आप को उस में खो कर उसके साथ दूर आर्कटिक के ठण्डे पानी की सैर करने की प्रबल इच्छा उसके मन में जाग गई। एक दिन अंगारा ने पिता बैकाल से 'यानासे' से विवाह करने की अनुमति मांगी। प्रस्ताव सुन कर बैकाल स्तब्ध रह गया। उसने स्वप्न में भी न सोचा था कि एक दिन उसकी पुत्री घर छोड़ने की इच्छा प्रकट करेगी। वह क्रोध से उमड़ने लगा, ऊंची-ऊंची लहरें उसके वक्षःस्थल को चपेटने लगीं। उसने अंगारा को कस कर छाती से जकड़ लिया, और गरज कर कहा, "तू मेरी बेटी, घर छोड़ कर कहीं नहीं जा सकती, भूल जा उस नवयुवक 'यानासे' को।"

परन्तु एक दिन जब आधी रात बूढ़ा बैकाल सोया पड़ा था, आकाश में पूर्णिमा का चांद चमक रहा था, अंगारा चुपके से उठी और पिता का घर छोड़कर दूर बहुत दूर प्रियतम यानासे के पास भाग गई और अपने जल को उसकी ठंडी, गहरी लहरों में मिला दिया। अगले दिन जब बैकाल सोकर उठा तो उसने देखा अंगारा नहीं है। दुःख से उसकी छाती फटने लगी, और क्रोध के आवेश में वह किनारे के पत्थर और भारी शिला उठा-उठा कर अंगारा के पीछे फेंकने लगा।

उस स्थान पर जहां बैकाल से अंगारा निकलती है, आज भी ऊंचे-ऊंचे पत्थरों की शिलाएं खड़ी हैं। सिबिरनिवासी इन्हें 'शमन' शिलाएं कहते हैं मानों बूढ़े पिता का कन्या विरह अनन्त काल के लिए पत्थरों का रूप लेकर यहां तपस्या कर रहा हो। प्रति वर्ष दूर-दूर से अनेकों यात्री यहां आकर बैकाल को अपनी श्रद्धांजलि भेंट करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमुनोत्री, गंगोत्री तथा गोमुख की यात्रा—(पृष्ठ ४५ का शेषांश)

है। लेकिन वह मार्ग बड़ा ही दुर्गम है। हां, यदि समय और साहस हो तो दो मील बर्फ पर चलकर तथा वन आदि मनोरम स्थानों के दर्शन किए जा सकते हैं।

उस पुनीत स्थान से हटने को जी नहीं करता था, पर डर था कि कहीं बादल न घिर आएं और वर्षा न होने लगे, जैसा कि दोपहर बाद वहां प्रायः होता है। अन्तिम बार हमने उस पुण्य भूमि को प्रणाम किया और चल दिए। लौटते समय प्रकृति ने प्रसन्न होकर हिम वर्षा की और हम लोगों ने प्रकृति माता के प्रसाद को बड़े आनन्द से ग्रहण किया।

चीड़वासा के छोटे से कमरे में सारी रात आग जलाकर एक रात पुनः काटी और तीसरे दिन गंगोत्री वापस आ गए।

वापसी की यात्रा बहुत शीघ्रता में की गई। टिहरी से नरेन्द्र-नगर, ऋषिकेश, हरिद्वार होते हुए हम लोग दिल्ली लौट आए। कुल मिलाकर लगभग सवा दो सौ मील पैदल चले और बस की यात्रा को सम्मिलित करके कुल २८ दिन इस यात्रा में लगे।

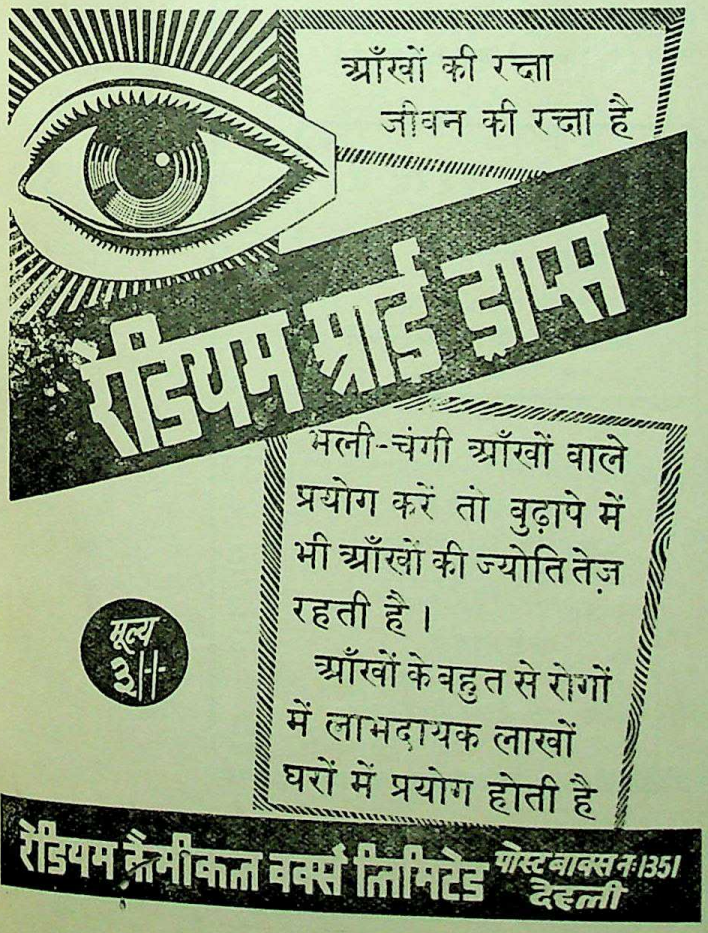

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश के कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन

विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या	मूल्य
बुद्ध जयन्ती चित्रावली	..	..	६ रुपया
फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश	आधारभूत सामग्री	५१४	१० रुपये
ट्रायल्स आफ अवर डिमोक्रेसी	डा० सम्पूर्णानन्द	३५	७५ नये पैसे
इण्डियन इण्टेलेक्टुअल	डा० सम्पूर्णानन्द	३२	७५ नये पैसे
स्पेस ट्रेवल	डा० सम्पूर्णानन्द	२६	७५ नये पैसे
साइण्टिफिक फाउण्डेशन आफ एस्ट्रालाजी	डा० सम्पूर्णानन्द	२०	७५ नये पैसे
स्पार्कस काम ए गवर्नर्स एनविल : भाग १ :	श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी	३९६	५ रुपया
स्पार्कस काम ए गवर्नर्स एनविल : भाग २ :	श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी	६१३	८ रुपया
गदर के फूल	श्री अमृत लाल नागर	२९२	४ रु० ५०न.पै.
संघर्षकालीन नेताओं की जीवनियां (द्वितीय संस्करण)	अनेक विद्वानों द्वारा लिखित	..	१ रुपया
समाजवाद (हिन्दी)	डा० सम्पूर्णानन्द	३९	७५ नये पैसे
भारतीय बुद्धिजीवी (हिन्दी)	डा० सम्पूर्णानन्द	३१	७५ नये पैसे
चन्द्रसखी के लोकगीत और भजन	श्री प्रभुदयाल पीतल	९१	२ रुपया
कालीदास	बालोपयोगी	१२	१० नये पैसे
अमीर खुसरु	..	२०	२५ नये पैसे
जगदीशचन्द्र बसु	..	१६	१० नये पैसे

स्वच्छ छपा और आकर्षक आवरण इन ग्रन्थों की अपनी विशेषता है। पुस्तक बिक्रेता बिक्री के नियमादि के लिए कृपया पत्र-व्यवहार करें।

प्राप्ति स्थान

१. प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ।

२. सूचना साहित्य, फरीदी बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ।

३. समस्त जिला सूचना अधिकारी, उत्तर प्रदेश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेट्रिक प्रणाली

क्या है ?

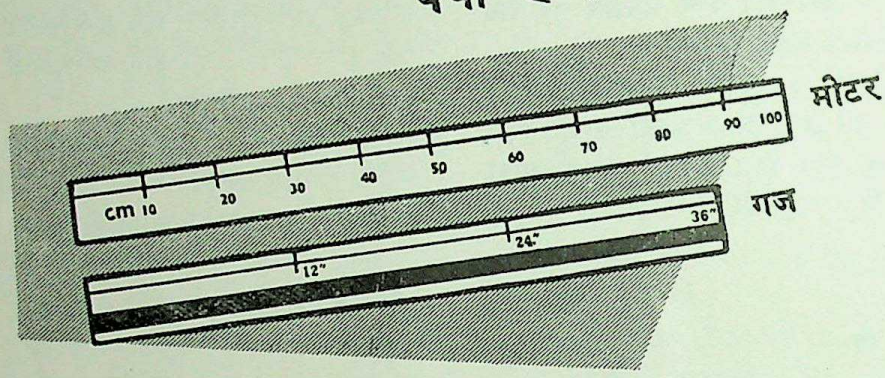

मेट्रिक प्रणाली का नामकरण मीटर से हुआ है जो कि लम्बाई नापने की आधारभूत इकाई है । सभी दाशमिक प्रणालियों की तरह ही इस प्रणाली में भी हिसाब-किताब का आधार १० होता है । लम्बाई, तौल या घनफल की किसी भी इकाई को १० से भाग दे देते हैं अथवा गुणा कर देते हैं ।

मेट्रिक प्रणाली में इकाई से बड़े पैमानों के नाम के पूर्व डेका (१० गुना), हैक्टो (१०×१०=१०० गुना), और किलो (१०×१०×१० =१,००० गुना) शब्द जोड़े जाते हैं तथा उप-इकाइयों के पहले डेसी (१/१०), सेंटी (१/१००) और मिली (१/१,०००) शब्द जोड़ देते हैं ।

अक्तूबर, १९५८ से मेट्रिक प्रणाली के प्रवर्तन का आरम्भ

लम्बाई नापने के मेट्रिक पैमानों को जानिये

लम्बाई नापने की आधारभूत इकाई
मीटर
=लगभग ४० इंच
१ किलोमीटर=५ फर्लांग

उप इकाइयां

१० मिलीमीटर	=१ सेंटीमीटर
१० सेंटीमीटर	=१ डेसीमीटर
१० डेसीमीटर	=१ मीटर

बड़े पैमाने

१० मीटर	=१ डेकामीटर
१० डेकामीटर	=१ हैक्टोमीटर
१० हैक्टोमीटर	=१ किलोमीटर

OA 58/109

2

भारत सरकार द्वारा प्रसारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

... नारी के प्रकोप से
प्रलय आ सकती है!

स्त्री चाहे कितनी भी साधारण क्यों न हो, अपने घर की रानी है। उस की इच्छाओं, विचारों और सुझावों को ठुकरा कर उस के प्रकोप का पात्र कौन बने? और फिर हमारा तो यह विश्वास है कि घर की जरूरतों को उस से बेहतर कोई नहीं जानता!

सच बात तो यह है कि हिन्दुस्तान लीवर के उत्पादनों में जो ख़ूबियाँ आप पाते हैं उस का श्रेय वास्तव में गृहलक्ष्मी को ही है। उस की जरूरतें जानने के लिए हम देश भर में 'मार्केटिंग रिसर्च' द्वारा पूरी पूछ ताछ करते हैं। हमारे उत्पादनों को जब नया रंग रूप दिया जाता है तो वह भारतीय नारी के सुझावों को ही सामने रख कर किया जाता है।

इन तबदीलियों के बाद, उत्पादनों की हर अवस्था पर उन की ख़ूबियों को बनाये रखने के लिए कड़ी जांच पड़ताल की जाती है... और इस तरह हम आप की सुलझी हुई जरूरतों को पूरा करने के लिए बढ़िया माल तय्यार करते हैं।

हिन्दुस्तान लीवर का आदर्श — घर घर की सेवा

HLL. 15-X52 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरती

और

करघा

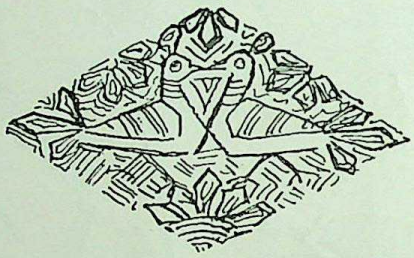

भारत की अर्थव्यवस्था के मूल आधार रहे हैं। सदियों तक करोड़ों लोगों के जीवन पर इनकी छाप रही है। समय की गति के साथ हमारे कई रीति-रिवाज बदल गये पर हाथकरघा वस्त्रों की अपरिमित विविधता में तनिक भी न्यूनता नहीं आई। इनकी निरन्तर उत्कृष्टता का श्रेय उन भारतीय बुनकरों की अतुलनीय दक्षता और कलाकारिता को है जो प्राचीन और आधुनिक डिजाइनों का अनूठा समन्वय करने में सिद्धहस्त हैं।

भारतीय

हाथकरघे के वस्त्र

अखिल भारतीय हाथकरघा बोर्ड,

शाहीबाग हाउस, विटेट रोड, बम्बई

ALL INDIA HANDLOOM BOARD

DA 58/158

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

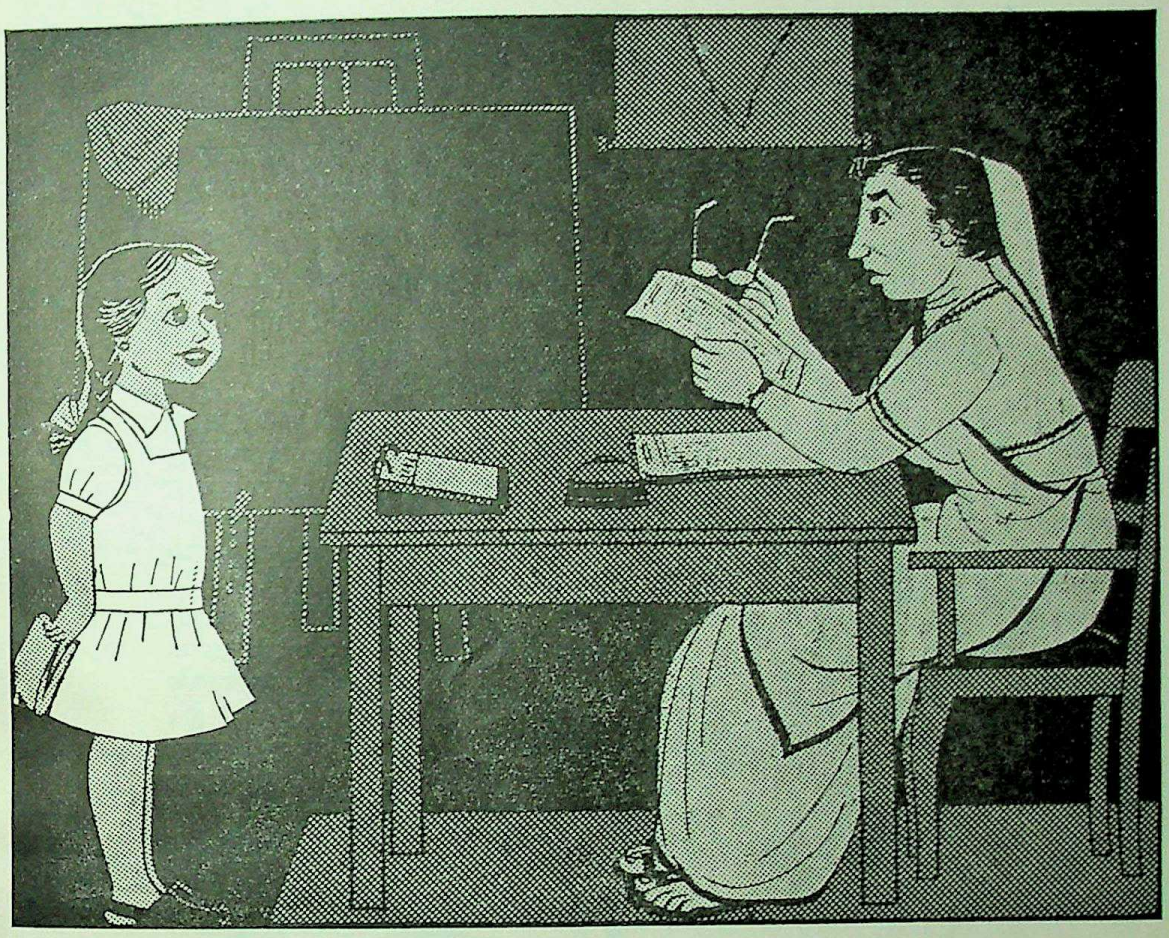

"कांता, तुम्हारे अंक तो खास अच्छे नहीं है
परन्तु तुम्हारे स्कूल के कपड़े **टिनोपाल**
के उपयोग से हमेशा चमचमाते सफेद
होतें हैं इसलिए तुम दूसरी कक्षा
में चढ़ाने लायक हो।"

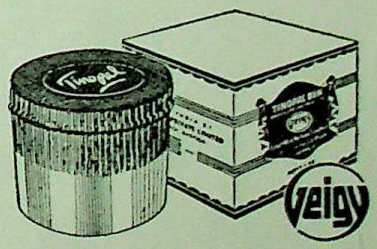

'टिनोपाल' जे. आर. गायगी, एस. ए., बाळ, स्विटजरलैंड का रजिस्टर्ड ट्रेड मार्क है।

निर्माता : सुहृद गायगी प्राइवेट लिमिटेड, वाडी वाडी, बडौदा
एकमात्र वितरक: सुहृद गायगी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड, पो. आ. बॉक्स ९६५, बम्बई

थोडा-सा टिनोपाल सफेद कपडों को सबसे अधिक सफ़ेद बनाता है

SISTA'S-SG-44-HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपका कल्याण

और

राष्ट्र का उत्थान

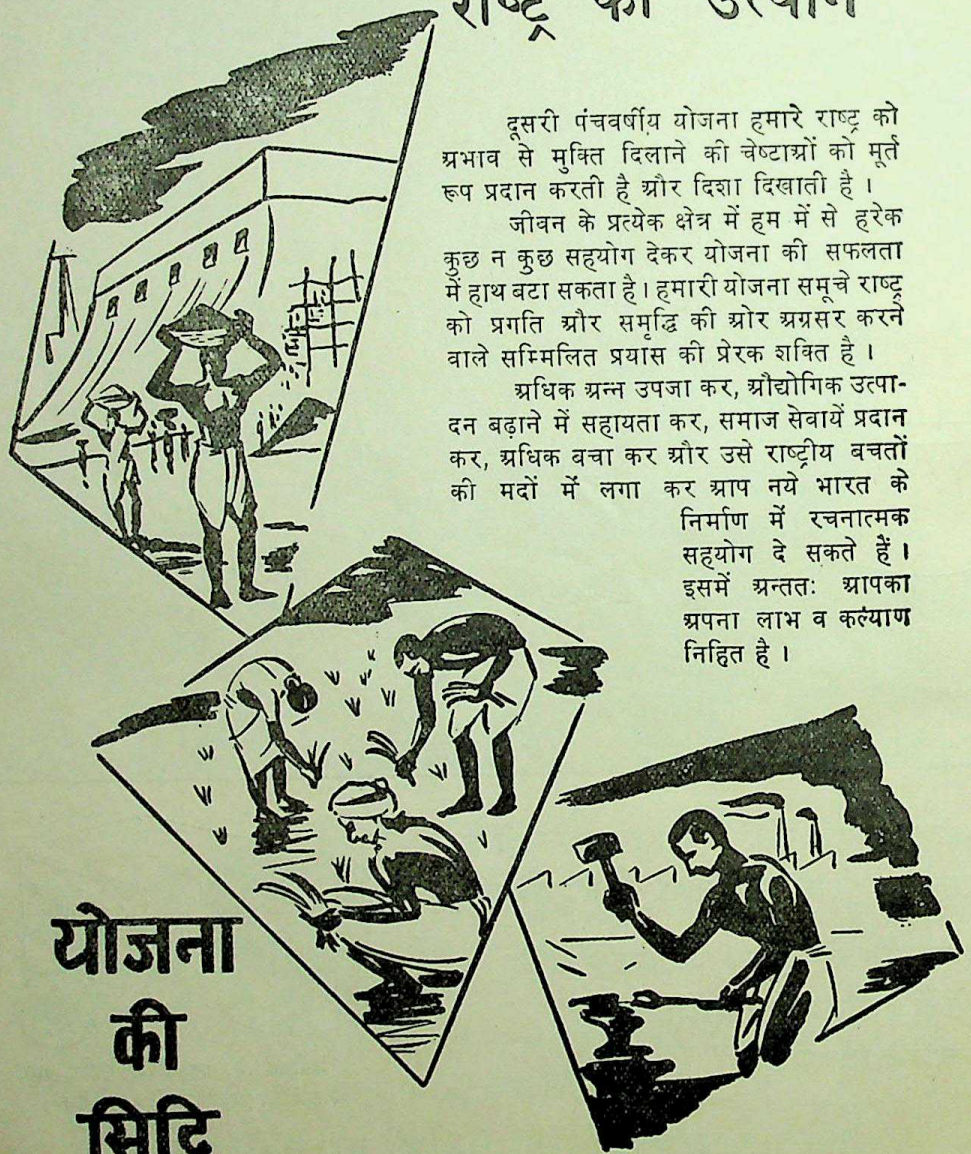

दूसरी पंचवर्षीय योजना हमारे राष्ट्र को अभाव से मुक्ति दिलाने की चेष्टाओं को मूर्त रूप प्रदान करती है और दिशा दिखाती है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हम में से हरेक कुछ न कुछ सहयोग देकर योजना की सफलता में हाथ बटा सकता है। हमारी योजना समूचे राष्ट्र को प्रगति और समृद्धि की ओर अग्रसर करने वाले सम्मिलित प्रयास की प्रेरक शक्ति है।

अधिक अन्न उपजा कर, औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने में सहायता कर, समाज सेवायें प्रदान कर, अधिक बचा कर और उसे राष्ट्रीय बचतों की मदों में लगा कर आप नये भारत के निर्माण में रचनात्मक सहयोग दे सकते हैं। इसमें अन्ततः आपका अपना लाभ व कल्याण निहित है।

योजना की सिद्धि

आपकी समृद्धि

DA-58/172

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो विशेष संदर्भ ग्रन्थ

	मूल्य	डाक-व्यय
रूसी हिन्दी शब्दकोश (पृष्ठ संख्या ९५६)	३५·००	—
४०,००० रूसी शब्दों के हिन्दी अर्थ		
अठारह सौ सत्तावन डा० सुरेन्द्र नाथ सेन	४·५०	०·८५

इसमें डा० सेन ने १८५७ की घटनाओं से सम्बन्धित अंग्रेज़ों तथा भारतीयों को निर्पेक्ष दृष्टिकोण से आंका है ।

सभी प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं से प्राप्त या सीधा लिखें--

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पोस्ट बॉक्स नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट

दिल्ली - ८

इण्डिया डायरी--१९५९

(सचित्र)

आकार ८½" × ६"

नए वर्ष के लिए एक उत्तम उपहार

दिनचर्या को नोट करने के लिए अति उपयोगी । हर सप्ताह के लिए एक पृष्ठ । हर पृष्ठ के सामने भारतीय जीवन तथा दृश्यों के रंग-बिरंगे सुन्दर चित्र ।

अक्तूबर १९५८ में उपलब्ध होगी

मूल्य : ५ रुपए, डाक खर्च ५० नए पैसे (रजिस्ट्रेशन व्यय अलग)

पच्चीस रुपए अथवा इससे अधिक मूल्य की प्रतियों पर डाकखर्च नहीं लिया जाएगा ।

रेखांकित पोस्टल आर्डर भेजने से सुविधा रहती है ।

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पो० बॉ० नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली - ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पत्रिकाओं को अपने वाचनालय में सम्मिलित कीजिए

ग्राम सेवक (मासिक)

ग्राम सुधार की विभिन्न योजनाओं के बारे में ग्रामीण जनता के योग्य सामयिक सूचना और समाचार। भाषा अति सरल और छपाई सुन्दर। वार्षिक शुल्क १·२५ रुपये।

मैट्रिक मापतौल

मापतौल प्रणाली के महत्वपूर्ण विषय पर प्रकाश डालने वाली नवीन द्विमासिक पत्रिका। वार्षिक चन्दा २·०० रुपये।

कुरुक्षेत्र (मासिक)

सचित्र मासिक पत्र, जिसमें देश के सामुदायिक विकास-कार्यक्रम सम्बन्धी समाचार तथा लेख प्रकाशित होते हैं। वार्षिक शुल्क २·५० रुपये।

बाल-भारती (मासिक)

नन्हे मुन्नों की सचित्र मासिक पत्रिका जिसमें सरल भाषा में मनोरंजक कहानियां, शिक्षाप्रद कविताएं, उपयोगी लेख और रेखाचित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। वार्षिक शुल्क ४·०० रुपये।

योजना

सब क्षेत्रों में हुई प्रगति का आलोचनात्मक मूल्य आंकने वाली, भारत की पंचवर्षीय योजनाओं का पथप्रदर्शक पाक्षिक पत्रिका। वार्षिक शुल्क २·५० रुपये।

भारतीय समाचार (पाक्षिक)

अधिकृत सरकारी सूचनाएं व विकास सम्बन्धी गतिविधियों के समाचारों के लिए एक उत्तम पाक्षिक पत्रिका। छात्रों, शिक्षकों, व सार्वजनिक विषयों से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। वार्षिक शुल्क ५·०० रुपये।

बिक्री बढ़ाने के लिए इन पत्रिकाओं में विज्ञापन दीजिए

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पो० बॉ० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट

दिल्ली - ८

Edited and Published by the Director, Publications Division, Old Secretariat, Delhi—8 and printed by the Assistant Manager, Government of India Press, Faridabad.

Regd. No. D—510

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल

विश्व-दर्शन सहित

नवम्बर १९५८

●

मूल्य
पचास नये पैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयोगी तथा रोचक प्रकाशन

	मूल्य	डाक-व्यय
राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के भाषण (१९५२-५६)	३·५०	०·८५

इस पुस्तक में डा० राजेन्द्र प्रसाद के जनवरी, १९५२ से मई, १९५६ तक के भाषण संग्रहीत हैं। तिथि-क्रम से दिए गए इन भाषणों में अनेक विषयों पर प्रकाश डाला गया है और उनमें डा० राजेन्द्र प्रसाद का व्यक्तित्व एक राज-नीतिज्ञ, विद्वान, इतिहासकार, शिक्षा-शास्त्री, आदर्शवादी, समाजसुधारक और सबसे अधिक एक महान रचनात्मक विचारक के रूप में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

स्वाधीनता और उसके बाद (जवाहरलाल नेहरू के भाषण १९४६-४९)	५·००	१·३५

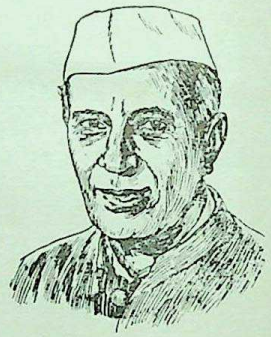

भारत द्वारा आज़ादी प्राप्त करने के प्रायः डेढ़ वर्ष पूर्व तथा पश्चात् में दिए गए प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू के ऐतिहासिक भाषणों का संग्रह।

प्रधान मंत्री के अनुपम व्यक्तित्व ने भाषणों के विषयों को एक आधारभूत एकता प्रदान की है। ये भाषण जिनमें से कुछ सामयिक इतिहास पर प्रकाश डालते हैं, कुछ में नीति के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार है और कुछ में भावनाओं का संचार है, राष्ट्र को अत्यधिक उद्योग करने के लिये अनुप्रेरित करते हैं।

भारत की एकता का निर्माण (सरदार पटेल के भाषण)	५·००	१·३०

भारत की आज़ादी से पूर्व ५८४ देशी राज्यों के एकीकरण का श्रेय स्वर्गीय सरदार वल्लभभाई पटेल को है। उसी महान नेता के २७ विविध विषयक भाषणों का संग्रह।

(रजिस्ट्री व्यय अलग)

२५ रुपये या इससे अधिक की पुस्तकें मंगाने पर डाक खर्च नहीं लिया जायेगा। मूल्य अग्रिम आना चाहिए, क्रॉस्ड पोस्टल आर्डर द्वारा सुविधा रहती है।

सभी प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं से प्राप्त या सीधा लिखें

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पो० बॉ० नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरियेट
दिल्ली-८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल

वर्ष १४ अंक ७ पूर्णांक १७३

सम्पादक मण्डल :
बनारसीदास चतुर्वेदी
नगेन्द्र
मोहन राव
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (मंत्री)

सहायक सम्पादक—वीरेन्द्र कुमार त्यागी

नवम्बर १९५८

(१० कार्तिक से ९ मार्गशीर्ष १८८०)

जीवन-जयन्ती (आचार्य विनोबा के जन्म-दिन पर)	सियारामशरण गुप्त	३	साहित्य सदन, चिरगांव (झांसी)
जाते-जाते (बंगला कविता)	सुभाष मुखोपाध्याय	५	६, सूतारकिन स्ट्रीट, कलकत्ता
विद्यार्थी और राजनीति (गुजराती से)	कृष्णलाल श्रीधराणी	६	२, लिटन लेन, नई दिल्ली
मैं किसके लिए लिखता हूं ?	उपेन्द्रनाथ अश्क	९	नीलाभ प्रकाशन, ५-खुसरोबाग रोड, इलाहाबाद
कला में मौलिकता	सुधीर खास्तगीर	१३	प्रिंसिपल, लखनऊ स्कूल आफ़ आर्ट्स, लखनऊ
विदा (कविता)	रामदरश मिश्र	१६	प्राध्यापक हिन्दी, बड़ौदा विश्वविद्यालय, बड़ौदा
हृदय-परिवर्तन	शान्तिप्रिय द्विवेदी	१७	लोलार्क कुण्ड, भदैनी, बनारस
परीलोक का राजकुमार (हिन्दी कहानी)	मोहनसिंह सेंगर	१९	७ डी, सी० आई० टी० बिल्डिंग, मदन चटर्जी लेन, कलकत्ता
गीत (उड़िया कविता)	नित्यानन्द	२२	द्वारा श्रीनिवास उद्गाता, कवि कुटीर, बंगलौर
'श्रीकान्त' की पृष्ठभूमि—मुज़फ़्फ़रपुर	राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह	२३	३२-क्वीन विक्टोरिया रोड, नई दिल्ली
नर्स, मां और शिशु (गुजराती कहानी)	पीताम्बर पटेल	२५	
मास्को में	नगेन्द्र भट्टाचार्य	२८	पब्लिकेशन्स डिवीज़न, ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली
संतुलन (कविता)	मनोरंजन प्रसाद सिंह	२९	प्रिंसिपल, राजेन्द्र कालेज, छपरा (बिहार)
प्राचीन दिल्ली नए रूप में	आर० के० रामध्यानी	३०	सचिव, सूचना एवं प्रसार मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
कमीज़ (पंजाबी कहानी)	महिन्दरसिंह सरना	३७	द्वारा अमृता प्रीतम, ८/२०-वैस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली
सामुदायिक विकास की नई मंज़िलें	अशोक	४०	२८/११ शक्ति नगर, दिल्ली
हिप्नोटिस्ट (हिन्दी हास्य कथा)	बेढब बनारसी	४७	सम्पादक 'प्रसाद', बनारस
आज का सिंगापुर	श्रीधर त्रिपाठी	५०	पोस्ट बाक्स नं० २६२७, जी० पी० ओ०, सिंगापुर
पुस्तक समालोचना	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	५२	४-पटौदी हाउस, नई दिल्ली
	मन्मथनाथ गुप्त		सम्पादक 'योजना'; १९०-खैबरपास मैस, दिल्ली
	उदयशंकर भट्ट		२४५ ई०, गवर्नमेण्ट क्वार्टर्स, करौलबाग, नई दिल्ली
सम्पादकीय	...	५९	

आवरण चित्र : "महात्मा बुद्ध" : सुधीर खास्तगीर

इस मास का फोटो : "गन्ने के खेत में" : कान्तिचन्द्र सौनरेक्सा

वार्षिक मूल्य—६ रुपये, एक डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—पचास नये पैसे, दस सेंट या नौ पैंस

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीज़न, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"गन्ने के खेत में"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

फोटो : कान्तिचन्द्र सौनरेक्सा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १४ नवम्बर १९५८ अंक ७

जीवन-जयन्ती

(श्री विनोबा के जन्म-दिन पर)

सियारामशरण गुप्त

आज की मिति–
तुम अहो चिरकाल सहचर,
यह तुम्हारी जन्मतिथि,
है अन्य सब में अनुस्यूत अभिन्न,
मौन मुखर समान सूचित
एक रूपित
धूप-छांह प्रकाश-तम में सहसुषुम सम्पन्न,
सर्व सम यह अनिरुपम निःशेष,
काल की निशि-दिवस-माला की कुसुममणि एक ।
नित्य सा ही यह दिवस,
घन नील व्योम अगाध अविकृत–
लुप्त जिसके विपुल बुद्बुद् अतल में
ग्रह नरवत अगणित,
नित्य ज्यों यह
हरित वसुधा नयनगति पर्यन्त विस्तृत–
रूप जिसका विनत-उन्नत लोल-लहरित,
नित्य ज्यों यह
नयन के नेपथ्य में चल वायु सुस्वन–
भूमि के उर-अंग में नभ के परस की
पुलक सिहरन,
नित्य ज्यों यह
बढ़ रहा है अदिख दिशि की ओर सुख सह
उच्च नीच अपार जनगण स्रोत,
यह तुम्हारी जन्मतिथि है नित्य में परिप्रोत ।।

कुछ दशक पहले इसी तिथि के अजिर में
है विरज भूचारी, हुए तुम अवतरित,
तुम हे पयव्रत निष्कलुष निर्मल रुधिर में,
आज ही भू पर तुम्हारे श्वास के लघु डग
प्रथम थे संचरित,
कुछ भी असाधारण हुआ उस दिन नहीं,
था सब कहीं
सुस्थिर प्रतिष्ठित लोक का लोकत्व,
चाहकर अद्भुत अलौकिक कम नहीं उसने
किया रंचक स्वकीय महत्व ।
उस दिन निपट संयोग से हम-से इतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे-बड़े कितने मनुज
छोटे-बड़े कितने घरों में जन्म पाकर
बन गए सहसा तुम्हारे आयुजन अग्रज अनुज ।।

तुमने पिया मां का वही जन-जन-सुलभ धारोष्णपय,–
हंस कर किलक कर हम सबों की भांति ही
निज जनक का पौरुष परुष–
उनका स्व-रत मोहित मनस, उन्नत वपुस
लघु-लघु करों से कर लिया निज में विलय ।
तब कौन जान सका वहां,––अलिखित किसी
जय ग्रन्थ की–
यह है पुनर् नव अवतरणिका,
आ गई यह दूर भव्य भविष्य से उड़ कर
उजलती,
नव निरायुध समर थल की
रेणु कणिका ।
उस सद्य शैशव के अचेतन में वहां,
किस भांति संगोपित रहा तुम में कहां
वह सुकृत सौरभ बीज चिर अज्ञात ?
झपटने पाए नहीं उसको जगत के
शत मरुत उत्पात ।।

फिर-फिर पलट कर
चलित जीवन चक्र रथ पर,
जन्म तिथि चिर कालिका,–
यह अम्बिका स्थिति पालिका,–
हिलमिल अलक्षित भीड़ में आती रही,
भाती रही
सब के सदृश सबके सहित,
थे तुम निरन्तर आयुपोषित
सह पथिक सम भाव में
अग्रज-अनुज अपनाव में
आगे निकल, पीछे ढिकल
बढ़ते गए, उठते गए तुम अन्य सब के साथ चल ।
वे संगिजन शुभ संभ्रमित,
सहसा चकित
अवलोकते हैं एक दिन,–जो थे यहां,
इस भांति कितने उठ गए किस द्रुत
निमिष में तुम वहां !
तुम थे प्रतिक्षण चिर सजग
हे संयमी, जब और सब की थी निशा,
अन्तर शिराएं रक्त-चंचल जगर जगमग
थी तुम्हारी एक निष्ठित गति दिशा ।
थी मर्त्य रज ही सब कहीं
पर के निमित्त जहां निपट निःसार,
घट भर लिया तुमने वहीं
पाकर उछलता अमृत उत्स अपार ।।

चिरकाल के अक्षय कमण्डलु से सवित,
यों दिख रहे आरम्भ से प्रतिक्षण क्षरित
दुर्लभ-अदुर्लभ
रात दिन ये मास कितने वर्ष सब
झड़ने नहीं पाए कि पावक कुण्ड में द्रुत
हो गये हुत ।
ज्वालजिह्व दुरन्तकाय सदा सुसह
आदन्त विष दुर्धर पृथुल संहार अहि यह !
लहकते इसके फनों पर
डाल चिर दीपित स्वजीवन वर्ष दीपक माल,
कर दिया है आयुजित, तुमने उसे उज्ज्वल सुमणिधर,
हो उठा सुन्दर कठोर कराल ।
झुलसे हुए-से बुद्धिहत
हम जो सतत
उस मरण के हुंकार से संत्रस्त,
फिर हैं हरे मानो उबर कर
आज इस अविरल तुम्हारी अभयधारा में निखर,
अप्रिय अनिष्ट विनष्ट ।।

हे शुद्ध सत्तम,
पा सके हैं मार्ग में हम
कुछ तुम्हारा साथ,
हो सके अनजानते कुछ अनुसरित सा ह्लाद ।
निज गोद से जिस भूमि जननी ने तुम्हें
आमोदयुत ऊपर उछाल उछाल कर,
सर्वत्र व्यापक गगन के उद्यत
भुजों पर डाल कर
आनन्द नित नूतन दिया,
जिस दिग् दिगन्त अनन्त का निज भाल पर
सस्नेह तुमने परस रस चुंबन लिया,
पानिप दिया तन और मन को जिस सलिल ने,
श्वांस के मृदु तार झूले पर झुलाया जिस अनिल ने,
जिस अनल न उष्ण रक्त अजस्र संचालित किया,
निःशेष सब का सब वही उनका प्रसारित दान
पा रहे हैं आत्म जन सम
ये सभी हम
अविच्छिन्न स-मान अविरल रात दिन,
हम विमन थे, भूला हमें था मान,
इस तुम्हारी जन्मतिथि जीवन जयन्ती के दिवस,
लेकर तुम्हारे स्मरण से नव प्राण रस
पाया उमड़ता आत्म भावित मान ।
तुम अहो वे उच्च तल उन्नीत,
हो रहे थे ज्ञात कितने दूर लोकातीत ।
भिन्न हम सब से नहीं,
इसी अचला के गगन में हो यहीं ।
निखिल जन के बीच से इस मृत्तिका से उठे ऊपर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास है निर्मल तुम्हारा इसी भू पर ।
निकट जन आत्मीय स्वजन समान,
दीप्त है हम में तुम्हारा असामान्य महान ।।

पुनर्जीवित आज सहसा स्मृति हमारी,
यह तुम्हारी जन्मतिथि जागृति हमारी ।
प्राण का यह पर्व,
निहित निरहंकार इसमें है हमारा गर्व ।
आज का दिन है तुम्हारी ओर दृष्टि निपात का,
आज का यह दिन समग्र प्रभात का ।
आज की अभिवन्दना में,
दूर तक झलमल उजल अभिनन्दना में
आ बसा उस ताम्रचूड सुपर्ण का स्वर,
वह जो अतन्द्र निहारता
घन तिमिर धारा से धुले पर पार का
निशि की कसौटी पर दिवस का प्रचुर शुद्ध सुवर्ण भास्वर ।।
आज का आनन्द अक्षय
चित्त उन्मुख विगत संशय ।
दूर का संकीर्ण पथ भी है विमुक्त सुदूर से सन्नद्ध,
लघु निमिष लघुमिति दिवस सब हैं
चिरन्तन चरण आश्रय लब्ध ।
क्षुद्र से भी क्षुद्र जन का गगन चुंबित भाल
लघु हमारे हृदय में है नव अतिथि बनकर समासित
अपरिमित निःसीम यह चिरकाल ।
आज के आनन्द में तुम आत्मलब्ध अकाम हे !
नव जन्म जीवन प्राण से शतधा पुरस्कृत,
गौरवान्वित विनत शत-शत
लो हमारे दिवस दीप्त प्रणाम ये ।।

●

बंगला कविता

जाते-जाते

सुभाष मुखोपाध्याय

'और फिर जा-ते जा-ते जा-ते
एक नदी दिखाई दी ।
पैरों में उसके घुंघरू बंधे थे
पहनी थी वह
मचलती लहरों का
नीला लहंगा ।
उस नदी के दो मुंह थे ।
एक मुंह से वह मुझे 'आती हूं' कहकर
खड़ा रखकर
दूसरे मुंह की ओर
दौड़ती हुई चली गई ।
और
जाते-जाते बतला गई
मैं यों ही आती हूं
यों ही चली जाती हूं ।
बतला गई
मैं रहकर भी नहीं हूं
न रहकर भी हूं ।
मेरे कंधे पर समय ने
अपना हाथ रखा ।
फिर कानों के पास
फुसफुसा कर बोला--
देखा !
काण्ड देखा !
मगर मैं कभी
तुम्हें छोड़ कर नहीं रहता ।
उसकी बातें सुन
मैंने हाथ की मुट्ठी खोल दी ।
कल रात के वे बासी फूल
सचमुच सूखकर काठ से हो गए थे ।'....
सिर पैर न होने की वजह से
दकियानूस श्रोताओं को
कहानी अच्छी न लगी ।
और अलावे इसके
कहानी मनगढ़न्त थी ।
बाद में वे कहीं उठ न जाएं
इसी डर से मैंने फिर
कहानी जल्दी जल्दी शुरू की :
'और फिर जा-ते जा-ते जा-ते
एक घने जंगल के बीच
प्रकाश से भरा एक विशाल शहर देखा ।
वहां हर मकान खाली था,
और सभी सीढ़ियां
ज्यों स्वर्ग को उठ गई थीं ।
उन्हीं के एक घर में देखा
बाल फैलाए हुए बैठी थी
एक परम सुन्दरी राजकन्या ।'....
श्रोताओं की आंखें चमक उठी
उनकी आंखों में आंखें रख
मैं कहने लगा--
फिर उस राजकन्या न
मेरी उंगलियों में उंगलियां फंसा ली ।
मैंने उससे धीरे से कहा :
तुम आशा हो,
तुम मेरा जीवन हो ।
'सुनकर उसने कहा :
इतने दिन तुम्हारे लिए
आंखें बिछाकर मैं बैठी थी ।'
दकियानूस श्रोताओं का कौतूहल बढ़ गया
पूछा : फिर क्या हुआ ?
ताकि बात उनके दिमाग में घुसे
मैंने
अंधेरे में खो जाते हुए
कहा--
'फिर ? क्या बताऊं--
उसी राक्षसी ही ने मुझे खा लिया ।'

अनुवादक--कृष्णचन्द्र चौधरी

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती से

विद्यार्थी और राजनीति

कृष्णलाल श्रीधराणी

हमारे सिर पर राज्यवाद (स्टेटिज्म) का एक बड़ा भय लटक रहा है। जिस प्रकार हमारी कुटुम्ब संस्था बुजुर्गवाद से तरबतर है, उसी प्रकार हमारी संस्कृति राज्यवाद से सिक्त है। हमारी आर्थिक परिस्थिति भी ऐसी है कि उदर-दरी को झटपट पूर्ण करने के लिए कभी-कभी हम जीवन के अन्य मूल्यों को गंवा देने के लिए तैयार हो जाते हैं। इसलिए प्रजासत्तात्मक प्रणालियों की रक्षा करना आज का बड़े से बड़ा धर्म है। आर्थिक उन्नति कुछ मन्द भी पड़ जाए तो भी प्रजातन्त्र के मार्ग पर चलते रहना अधिक वांछनीय है।

अन्य वर्गों की अपेक्षा प्रजातन्त्र के लिए यदि कोई वर्ग विशेष यत्न कर सकता है, तो वह है विद्यार्थी वर्ग--युवक वर्ग। प्रथम आवश्यकता होती है, अध्ययन और मनन की। उसमें विद्यार्थी समाज निपुण होता है। उसके पश्चात विचारों के आदान-प्रदान और सार्वजनीन चर्चा की आवश्यकता होती है। इस बात में भी विद्यार्थी पीछे नहीं रहते। हमारे देश के लिए प्रत्येक प्रश्न के लिए प्रौढ़ विचारणा और सार्वजनीन चर्चा की आवश्यकता है। दुर्भाग्य का विषय है कि कांग्रेस पार्टी के सदस्य, अमुक प्रकार के अनुशासन का दावा करते हुए, विशेष सार्वजनिक चर्चा में नहीं पड़ते। वे यह मान कर विरोधी पक्षों की अवगणना करते हैं कि उनका मतभेद केवल विरोध करने के लिए ही है। हमारे समाचार-पत्रों ने भी अभी तक सार्वजनिक चर्चाओं के लिए अपने कालम मुक्त रखने की आदत नहीं अपनाई है। ऐसी अवस्था में विद्यार्थी-मंडलों, शिक्षक-मंडलों और शिक्षा-संस्थाओं पर ही, विचार के लिए, अध्ययन के लिए और चर्चा के लिए, आशा लगाई जा सकती है। जहां सार्वजनिक चर्चा नहीं, वहां सच्ची जनतंत्रता नहीं हो सकती। अपने से भिन्न विचारवालों का भी हमें समादर करना चाहिए। इस दिशा में भी विद्यार्थी वर्ग--युवकवर्ग--ही अग्रणी हो सकता है।

परन्तु विद्यार्थी समाज से यह आशा तभी रखी जा सकती है, जब वह सक्रिय राजनीति से अलिप्त रहकर, डांवाडोल जगत के प्रति तटस्थ और स्वस्थ दृष्टिपात कर सके। मेरी सम्मति में, उनके लिए राजनीति का अध्ययन अनिवार्य है--भले ही वे चिकित्सा शास्त्र (डाक्टरी) के लिए अथवा इंजीनियरिंग के लिए अध्ययन कर रहे हों। प्रत्येक डाक्टर, इंजीनियर या अध्यापक एक नागरिक तो है ही। यदि वह अपने राजनीतिक अधिकारों का, अपने राजनीतिक दायित्व का विचार और अनुशीलन न करे, तो वह पेशेवर राजनीतिक पुरुषों के जाल में या पेशेवर कूटनीतिज्ञों की चालाकियों में फंस जाएगा। परन्तु यह एक समस्या है कि छात्रों को राजनीति में किस सीमा तक दिलचस्पी लेना उचित है।

छात्रों के लिए--युवकों के लिए--एक महत्वपूर्ण प्रश्न खड़ा हो गया है। वैसे तो यह प्रश्न सदा का ही है, परन्तु इस समय यह प्रश्न अधिक विकट हो गया है। प्रश्न यह है--विद्यार्थियों को राजनीति में पड़ना चाहिए या नहीं? युवकों को राजनीति के कार्यक्षेत्र में भाग लेना चाहिए या नहीं?

इस समस्या का जवाब मैं दो हिस्सों में दूंगा। पहली बात तो यह कहूंगा कि सक्रिय राजनीति में विद्यार्थियों को नहीं पड़ना चाहिए। यही आदर्श आदरणीय है। दूसरी बात मुझे यह कहनी है कि संप्रति ऐसी परिस्थिति विद्यमान नहीं है कि ऊपर का आदर्श विद्यार्थियों को स्वीकार्य हो। अतः वह आदर्श आज तो आधे अंश में ही मान्य हो सकता है।

यह वांछनीय है कि सुघड़ और समृद्ध समाज में, विद्यार्थी अपने अध्ययन में ही लीन रहे। इतना ही नहीं सुघड़ और सुसंस्कृत समाज में विद्यार्थी स्वभावतः राजनीति से दूर रहता है। छात्रावस्था का ऐसा अवसर और ऐसा लाभ फिर कब मिलेगा? कमाने की आवश्यकता नहीं, किसी की चिंता करने की आवश्यकता नहीं। अपनी बुद्धि को अधिक तीव्र करने के सिवाय, अपने मन को अधिक विकसित करने के सिवाय और अपने व्यक्तित्व को अपने भविष्य के दायित्वों के लिए तैयार करने के सिवाय विद्यार्थी अन्य किसी बात की चिन्ता करे भी क्यों? उसकी चिंता उसके परिवार को और उसके समाज को करनी चाहिए। ऐसा अवसर फिर नहीं आएगा, अतः इस अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाने की उत्सुकता विद्यार्थी को होनी चाहिए। राजनीति का भी उसे अध्ययन करना चाहिए परन्तु राजनीति में पड़ कर अपने अमूल्य अवसर को गंवाना नहीं चाहिए यह पहला अवसर है और साथ ही अंतिम अवसर भी है।

विद्यार्थी-जीवन का यह आदर्श, यौवन का यह बड़ा लाभ, पश्चिम के बहुत से देशों में परिपालित हो रहा है, मान्य हो चुका है, व्यवहार में भी लाया जा रहा है। भारत में वैदिक-युग के पश्चात इसका पालन ठीक तरह नहीं हुआ तथापि यह पूर्णतया हिन्दू आदर्श है। विचारकों द्वारा प्रस्तुत ब्रह्मचर्याश्रम का यह आदर्श तो जीवन के चार आश्रमों की पहली बुनियाद है। परन्तु आज यदि विद्यापान के इस आश्रम (ब्रह्मचर्याश्रम) का परिपालन नहीं हो रहा तो उसका कारण यह है कि हमारे बुजुर्ग वानप्रस्थाश्रम और सन्यासाश्रम का पालन नहीं कर रहे।

मैं अपनी दूसरी बात पर पहुंच गया हूं। आज इन चार आश्रमों में से कोई आश्रम-धर्म पाला जा रहा है तो वह है गृहस्थाश्रम। आज कोई वानप्रस्थी नहीं बनता, और कोई सन्यास नहीं लेता। ऐसी दशा में केवल विद्यार्थियों को ही आर्य संस्कृति के ब्रह्मचर्याश्रम का आदेश देना कहां तक ठीक है?

अंग्रेजी में एक कहावत है कि राजगद्दी प्राप्त करने से पहले ही जिस राजकुमार के बाल श्वेत हो जाएँ, वह अवश्य ही खराब निकलेगा। अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करने से पूर्व ही यदि वृद्धावस्था आ जाए तो अवश्य ही निष्फलता प्राप्त होगी। आजकल तरुणाई की जो व्यर्थता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उछल-कूद दृष्टिगोचर होती है, वह युवकों की बेचैनी को ही व्यक्त करती है तथा प्रौढ़ लोगों की बेदरकारी सिद्ध करती है।

आज तो घर-घर में राजा हैं और राजकुमार हैं। अतः इस कहावत का अर्थ द्वार-द्वार तक पहुंच रहा है। रामचन्द्रजी एक आदर्श विद्यार्थी थे, क्योंकि उनके पिता दशरथ एक आदर्श वानप्रस्थी थे। अपना पहला श्वेत बाल देखते ही निवृत्त होने की उदारता प्रकट करने वाले दशरथ आज दिल्ली, बम्बई, लखनऊ, अहमदाबाद अथवा भावनगर में कितने हैं? अधपके केशवालों की बात जाने दीजिए। जिनका एक-एक बाल परिपक्व हो चुका है, उनमें से कितने ऐसे व्यक्ति हैं जो यह कहने को तैयार हैं--"उदीयमान प्रजा के लिए हम स्थान छोड़ने को तैयार हैं।"

सच तो यह है कि वानप्रस्थ या सन्यास के आदेशों को न पालन करनेवाले लोगों के मुख से ब्रह्मचर्य का उपदेश शोभा नहीं देता। चीन के संत कनफ्यूशियस ने ठीक ही कहा है कि अभद्र मुख से निकलते हुए भद्र वचन भी दुर्गन्धित हो जाते हैं। अतः यदि कुछ युवक या विद्यार्थी अपने बुजुर्गों को उनका वानप्रस्थ या सन्यास का कर्तव्य समझाने के लिए राजनीति में प्रविष्ट होते हों तो कुछ आश्चर्य नहीं। हां, यह अवश्य वांछनीय है कि युवक गण शोभायात्रा (जुलूस) निकालने में या पत्थर फेंकने में ही अपनी शक्ति का अपव्यय न करें। परन्तु मैं यह भी चाहता हूं कि अधिकारपूर्ण पदों पर चिपके रह कर वृद्ध जन भी युवकों को हताश और निराश न करें। मर्यादापालन को मैं एक महान गुण समझता हूं, परन्तु फल भार से झुके हुए आम्र कुंज की नम्रता को मैं उससे भी बड़ा गुण समझता हूं।

छात्रजन और युवकगण राजनीति में भाग लेने के लिए अधिक आकृष्ट होते हैं, उसमें उनका दोष देखने की अपेक्षा यदि हम अपने राष्ट्रीय जीवन की त्रुटियों का अध्ययन करेंगे तो अधिक तत्वदर्शन होगा। यदि राष्ट्र-जीवन रसमय होगा, उदीयमान प्रजा को प्रोत्साहित करने वाला होगा, नानाविध संभावनाओं, गुंजायशों और अवसरों से भरपूर होगा तथा जीवन के अनेक पहलुओं द्वारा व्यक्तित्व को बहलाने वाला होगा तो युवकगण स्वयमेव राजनीति से पृथक रह कर, अपेक्षाकृत अधिक रसिक व्यवसायों में लग जाएंगे।

ऐसी परिस्थिति अनेक पश्चिमी देशों में है। अमेरिका में मैंने बारह वर्ष बिताए हैं। वहां के अनुभव के आधार पर मैं वाचकों को बताना चाहता हूं कि वहां पर विद्यार्थी राजनीति की ओर आकृष्ट करने पर भी आकृष्ट नहीं होते। अपने अध्ययन के अतिरिक्त वे अनेक प्रकार की प्रवृत्तियों में दिलचस्पी लेते हैं। यात्रा, फुटबाल, सिनेमा, बालरूम-डांसिंग, नाटक, संगीत, तैरी, नाना क्रीड़ाएं, प्रणय, साहित्य वाचन आदि विषयों की ओर उनका प्रबल आकर्षण रहता है। यहां तक कि बड़े-बड़े मंत्री भाषण देने आते हैं तो भी व्याख्यान भवन की कुर्सियां खाली रहती हैं। और यदि कोई बड़ा साहित्य सेवी, सिनेमा-स्टार या कोई बड़ा वैज्ञानिक आ जाए तो भीड़ उमड़ पड़ती है।

एक बात तो यह है कि विविध विषयों के प्रति दिलचस्पी पैदा करने की, अमेरिका सदृश देशों के पास, आर्थिक और बौद्धिक शक्ति विद्यमान है। इसके सिवाय जीवन में आने के लिए, मान प्राप्त करने के लिए या कमाई के लिए वहां राजनीति की अपेक्षा अन्य क्षेत्र अधिक अवसर प्रदान करते हैं। नेता का अभिप्राय वहां केवल राजनीतिक नेता से नहीं है। बड़ा लेखक बनकर, गायक बनकर, वैज्ञानिक बन कर, डाक्टर बनकर या व्यापारी बनकर व्यक्ति वहां सनेटरों की अपेक्षा भी अधिक कीर्ति प्राप्त करते हैं।

हमारे देश की परिस्थिति विपरीत है। सत्ता प्राप्त करने का एक ही मार्ग है--राजनीति। अखिल भारतीय कीर्ति प्राप्त करने का एक ही मार्ग है--राजनीति। अरे, अब तो पैसा प्राप्त करने का भी एक ही मार्ग है--राजनीति। अतएव यह स्वाभाविक है कि उत्साही और महत्वाकांक्षी युवकगण राजनीति की ओर आकृष्ट हों। किसी कवि को शायद ही पुष्प-मालाएं मिलती होंगी। और मामूली संसद-सदस्य को पुष्पमालाओं से दबाकर हैरान कर दिया जाता है। ऐसी परिस्थिति में विद्यार्थीगण इस सर्वशक्तिमान लोलचुम्बक से आकृष्ट हुए बिना कैसे रह सकते हैं। अरे, इन विद्यार्थियों को शिक्षा देने वाले वरिष्ठ (बुजुर्ग) लोगों के विषय में इन छात्रों को यह आशंका रहती है कि कदाचित जमाने के संघर्षों और अनुभवों से परिपक्व हुआ यह वरिष्ठवर्ग भी अधिकार और सम्मान प्राप्त करने के एकमात्र साधन-रूप, इस भारतीय जादूमंत्र (राजनीति) को अपने हाथों से निकलने देना नहीं चाहता।

इसका अर्थ यह नहीं कि शिक्षा देने वाले समस्त पूज्य जन स्वार्थी हैं। कितने ही निस्पृह और गहन विचारक चाहते हैं कि युवकगण विद्यार्थी अवस्था का लाभ उठाएं, गहरा अध्ययन करें, शरीर को समुन्नत बनाएँ और आने वाले उत्तरदायित्वों के लिए अपने को तैयार करें। जवाबदारियां तो अवश्य ही आएंगी, तो उन्हें उठाने के लिए शीघ्र ही क्यों कर तत्पर न हुआ जाए। परन्तु खेद का विषय तो यह है कि ऐसे निःस्पृह और आदरणीय विचारक कम बोलते हैं, और राजनीति में रचेपचे महारथी लोग ही कहते रहते हैं--'राजनीति से दूर रहो'। इसका प्रभाव विपरीत होता है। युवक शक्ति का मनमाना उपयोग उठाने वाले ये लोग, उस समय छात्रों को ब्रह्मचर्याश्रम के आदर्श याद दिलाते हैं, जब ये छात्र विरोधी पक्ष की ओर झुकते हैं। इस प्रकार वे अपना सम्मान गंवाते हैं। इससे तो छात्रगण अधिक उत्तेजित होते हैं।

इसलिए, राजनीति का त्याग करने का यह उपदेश आज भारतीय युवकों के गले नहीं उतरता। पहले तो ब्रह्मचर्याश्रम का सफल उपदेश देने वाले, वानप्रस्थाश्रम और सन्यासाश्रम का ठीक-ठीक परिपालन करने वाले वरिष्ठों का एक वर्ग खड़ा करना होगा। सिंहासनारूढ़ वरिष्ठजनों की यह बात बुद्धिसंगत है कि विद्यार्थियों को अध्ययन में तल्लीन रहना चाहिए। इसी प्रकार असह्य परिस्थिति में पलते हुए युवकजनों का यह कहना भी युक्तियुक्त है कि वरिष्ठजन वानप्रस्थ का सेवन करें, सत्ता से सन्यास लें। इस प्रकार दोनों तरफ के अपरिपक्व लोग एक दूसरे को परिपक्व बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

कुछ एक लोक नेता ऐसे हैं, जो साठ वर्ष के बाद भी युवक प्रतीत होते हैं और युवकों जितना काम कर सकते हैं। उनको क्षेत्र-सन्यास क्यों दिया जाए? यह प्रश्न अवश्य खड़ा हो सकता है। परन्तु इस प्रकार के विरल व्यक्ति यदि अधिकार छोड़ कर क्षेत्र-सन्यास ले लें तो उनकी सेवा करने की शक्ति कुछ कम नहीं होगी। प्रत्युत उनकी महिमा बढ़ेगी। महाभारत के एक किनारे पर बैठकर तारतम्य की तुला द्वारा संतुलन रखने की भीष्म पितामह जैसी शक्ति जिनके पास है, उनका सम्मान तो सदा ही होता रहेगा। राज्यकर्ता जन बालक के समान उनकी सलाह लेने के लिए आते ही रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गान्धीजी का उदाहरण बिल्कुल ताजा है। एक दूसरा उदाहरण हमारे भावनगर के दीवान श्री गौरीशंकर ओझा का है। परिपक्व उमर में उन्होंने दीवान पद छोड़ा और सन्यास लिया। नगर से दूर रूपावरी स्थान के समीप रह कर वे माला जपने लगे। उनके पश्चात बने हुए दीवान के विषय में खूब शिकायतें आने लगीं। उन्होंने दीवान को बुलाया। स्वयं तो वे भगवाधारी थे। उन्होंने दीवार की खूंटी की ओर इशारा करते हुए कहा--"मैंने भगवे वस्त्र स्वीकार किए हैं, परन्तु मेरी नागरशाही पगड़ी, अंगरखा और धोती वहां टंगी है। नीचे लकड़ी भी रखी हुई है। यदि सुधरोगे नहीं तो पुनः पगड़ी पहन लूंगा और तुम्हारी खबर लूंगा।" इस प्रकार का अधिकार तो अनुभव सिद्ध बुजुर्गों के पास रहेगा ही। परन्तु, उससे पहले सन्यास लेने की शक्ति प्राप्त करनी होगी। ब्रह्मदेश के प्रधान मंत्री ऊ नू का उदाहरण ताजा ही है।

इसके अतिरिक्त अमुक वृद्धों में यदि हम शाश्वत यौवन का दर्शन कर सकते हों तो फिर अमुक युवकों में परिपक्वता का दर्शन क्यों न करें? यदि हम अमुक वृद्धों को युवकों का कार्य करने की छूट उत्साहपूर्वक दे सकते हैं तो फिर वृद्धों का काम उठा लेने के लिए थिरकते हुए युवकों का हम स्वागत क्यों न करें?

नई पौध के भयस्थान बढ़ते जा रहे हैं। केवल भारत में ही नहीं, पर सारी दुनिया में। ज्यों-ज्यों आरोग्य के साधन बढ़ते जा रहे हैं, त्यों-त्यों मनुष्य की आयुष्य-मर्यादा भी बढ़ती जा रही है। अमेरिका और आस्ट्रेलिया सदृश देशों में तो सामान्य मनुष्य का आयुष्य इतना अधिक बढ़ गया है कि उन देशों को प्रौढ़ों के देश कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं। इसी कारण उदीयमान प्रजा को अधिक स्पर्धा करनी पड़ती है। यह परिस्थिति कुछ अंशों में भारत में भी है। अधिकांश युवक मंडलों के अग्रणियों के नाम देखें तो वे अधिकांश में प्रौढ़ ही मिलेंगे। वाल्टर पिटनिक नामक एक अमेरिकन अध्यापक ने एक पुस्तक लिखी थी। उस का नाम है--'लाइफ़ बिगिन्स एट फोर्टी' अर्थात् जीवन का प्रारम्भ चालीस वर्ष से होता है। अपने भारत में किसी को पुस्तक लिखनी चाहिए--'यूथ बिगिन्स एट फोर्टी' अर्थात जवानी चालीस वर्ष के पश्चात प्रारम्भ होती है।

इस प्रकार युवकों को नवीन दिशा प्रदर्शित करने का एक राजमार्ग यह है कि वरिष्ठजन अपने-अपने जीवनाश्रम का पूर्णतया पालन करके आदर्शरूप बनें। दूसरा मार्ग यह है कि हम अपने राष्ट्र जीवन में ऐसा वैविध्य उत्पन्न करें कि हमारे यहां केवल राजनीति ही समस्त आशाओं और आकांक्षाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु न रहे--समस्त महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने वाली जादूगरनी न रहे। ज्यों-ज्यों विविध कलाओं और विविध क्षेत्रों क तजस्वी उपासकों को नेतृत्व का यश और महात्म्य प्राप्त हो जाएगा, त्यों-त्यों विद्यार्थी जीवन ठीक ठिकाने पर आता जाएगा। ज्यों-ज्यों अदने व्यक्ति की कीमत बढ़ती जाएगी और नेतृत्व नाना प्रकार के क्षेत्रों से उठना प्रारम्भ होगा त्यों-त्यों राजनीति का लोभ और मोह कम होता जाएगा।

ऐसी विषम परिस्थिति होने पर भी, भारत के विद्यार्थी विद्या के ही अर्थी बनकर, राजनीति की उछल-कूद और सरगर्मियों से पृथक् रहेंगे, तभी अपना हित साधन कर सकेंगे, इसमें कोई संशय नहीं। माता कुमाता हो जाए पर क्या पुत्र को कुपुत्र होना चाहिए? यह जमाना उल्टा है और इसीलिए मुझे 'बरगद' (लेखक की एक सुन्दर रूपक-कृति) लिखने के बाद 'उल्टा बरगद' लिखना पड़ा है। बरगद का पेड़ भाद्रपद मास के भिण्डी के पौदे का परिहास तो करता ही है। परन्तु यदि अपने विकास से वंचित एक पौदा, अपना हित सोच-विचार कर, बरगद की छाया से हटकर आत्मोन्नति का सूर्य-प्रकाश प्राप्त करके, स्वयमेव महावृक्ष बनने की इच्छा प्रदर्शित करे तो उसमें क्या बुरा है?

अनुशासन पालन करना छात्रों के लिए हितकारी है। आत्म-संयम ही अनशासन का मार्ग है--बड़ों की हां में हां मिलाना अनुशासन नहीं। यदि हम इतनी बात समझ जाएं तो 'अनुशासन' शब्द के प्रति हमारे मन में जो घृणा पैदा हो गई है, वह निकल जाएगी। क्रोध से, अमले से, उपद्रवों से और जुलूसों से हमारी शक्तियां काफी अंश में योंही निकम्मी खर्च हो रही हैं। क्रोध को तो घूंट-घूंट करके पी जाना चाहिए। तपाक से हाथ में तलवार लेने की शीघ्रता को रोकना चाहिए। यदि ऐसा होगा तो, समयानुसार जो पुण्य-प्रकोप प्रकट होगा वह निर्वाचन के समय भली-भली सत्ताओं को परिवर्तित कर सकेगा। यदि उपद्रवों और उफानों में ही मन रीझता रहेगा तो फिर शक्ति-संचय का काम रह जाएगा। अनुशासन, स्वदेश प्रेम और सहयोग से काम करने का सामर्थ्य विद्यार्थी जगत को शक्ति प्रदान करेगा। इन गुणों से दूसरे के गुलाम नहीं बनते। अपने को अपना गुलाम बनने से तथा उसके द्वारा अन्यों के आधीन बनने से यदि अपने को रोकना है, तो अनुशासन, स्वदेशभक्ति और समूह-बल की आवश्यकता है।

अनुवादक--शंकरदेव विद्यालंकार

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मय दूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम्॥

(भर्तृहरि)

विद्वान लोग अपने विद्याभिमान में फूले रहते हैं, अमीर लोग धन के घमण्ड में चूर रहते हैं, साधारण जनता प्रायः नासमझ होती है, ऐसी दशा में श्रेष्ठ कवियों के सुभाषित पड़े-पड़े सड़ा करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं किसके लिए लिखता हूं ?

उपेन्द्रनाथ अश्क

मैं किसके लिए लिखता हूँ ? कोई भी रचना करते समय मैंने अपने आपसे कभी यह प्रश्न नहीं पूछा । जब भी किसी घटना, चरित्र, विचार अथवा समस्या ने मुझे प्रभावित, परेशान या औप्रेस (आक्रान्त) किया है, मैंने सदा उसे किसी रचना द्वारा अंकित कर, उसके भार से मन को मुक्त किया है । भरा हुआ बादल जैसे बरसने के लिए विवश है, इसी तरह मैं लिखने को विवश हूँ ।

कोई किसके लिए लिखता है ? इसका एक उत्तर नहीं, भिन्न लेखक इसका भिन्न उत्तर देंगे । उदाहरण के लिए--

ऐसे भी लेखक हैं जो महज़ रोज़ी कमाने के लिए लिखते हैं ।

ऐसे भी लेखक हैं जो ख्याति की आकांक्षा के लिए लिखते हैं ।

ऐसे भी लेखक हैं जो किसी पार्टी विशेष के आदेशों की पूर्ति के लिए लिखते हैं ।

ऐसे भी लेखक हैं जो किसी विशेष विचारधारा के प्रतिपादन के लिए लिखते हैं ।

ऐसे भी लेखक हैं जो अपने मन के सन्तोष के लिए लिखते हैं ।

मैं जब अपने लेखन की प्रक्रिया के बारे में सोचता हूँ तो पाता हूँ कि अपने मन का सन्तोष मेरे लिए सर्वोपरि रहा है । मन के उस संतोष के पीछे किसी विचारधारा का प्रतिपादन भी हो सकता है, ख्याति की आकांक्षा अथवा किसी मित्र का अनुरोध भी हो सकता है, पर केवल रोज़ी की समस्या उस संतोष के पीछे प्रायः नहीं रही ।

रोज़ी कमाने के लिए लिखनेवाले लेखक को पत्रिका के सम्पादक अथवा प्रकाशक अथवा ग्राहक का मुंह देखना पड़ता है । जैसी चीजें वे चाहते हैं, वैसी लिखनी पड़ती हैं ।

मेरे सामने पहले दो-एक वर्षों को छोड़कर, यह समस्या कभी नहीं रही । मैं रोज़ी के लिए पहले पत्र-पत्रिकाओं में और बाद में दूसरी जगह नौकरी करता रहा और अवकाश के समय अपनी अन्तःप्रेरणा से, अपने विचारों के अनुसार, अपने संतोष के लिए लिखता रहा । किसी दूसरे की इच्छा अथवा आदेश के अनुसार लिखने की समस्या मेरे सामने कम ही आई । रोज़ी कमाने के लिए मैंने अखबार बेचे, अनुवाद किया, विज्ञापन लिखे, ट्यूशनें कीं, रिपोर्टरी की, रेडियो और फ़िल्म में नौकरी की, लेकिन पैसे के लिए अपनी इच्छा के विरुद्ध मैंने कम ही लिखा ।

ऐसे लोगों को, जो यह जानते हैं कि मैंने सदा अपनी कृतियों के लिए पारिश्रमिक चाहा है और कई बार पेशगी लिया है, मेरी बात में कुछ विरोधाभास दिखाई देगा । लेकिन यह सत्य है कि पारिश्रमिक ने मुझे कभी 'ऐसा' अथवा 'वैसा' लिखने पर बाधित नहीं किया । मैं अपने मन के मुताबिक लिखता रहा हूँ । कई बार चीज़ें वर्षों मेरी फ़ाइलों में अप्रकाशित पड़ी रही हैं । पर जब छपी हैं, मैंने उनका पारिश्रमिक लिया है । कई बार जब मुझे किसी से पेशगी पारिश्रमिक पाने अथवा किसी मित्र के अनुरोध की रक्षा के लिए, लिखना पड़ा है तो मैंने अपने दिमाग में पकते हुए किसी नाटक अथवा कहानी को कागज़ पर उतार भर दिया है । अच्छा या बुरा---जो भी मैंने लिखा, कुछेक कृतियों को छोड़कर, सदा अपने संतोष के लिए लिखा ।

शायद मैं इसीलिए ऐसा कर सका कि रोज़ी की समस्या कभी मेरे सामने वैसी विकट नहीं रही । ज़रूरत भर के लिए रुपया कमाना मुझे कभी भी कठिन नहीं लगा । मेहनत करने में किसी प्रकार का संकोच न होने के कारण, मैंने आवश्यकता भर के लिए सदा कमा लिया और शेष समय को साहित्य-सृजन के सुख और संतोष में लगाया । इसीलिए किसी दूसरे का संतोष कभी मेरा उद्देश्य नहीं रहा । कई बार ऐसा भी हुआ कि मित्रों, पाठकों और आलोचकों ने किसी चीज़ की प्रशंसा भी की, पर मेरा संतोष नहीं हुआ और मैंने उसे बदल दिया ।

रोज़ी कमाने के लिए लिखना बुरा है, अथवा जो रोज़ी के लिए लिखता है, वह अनिवार्यतः बुरा लिखता है, यह बात नहीं । बाल्ज़ाक और दास्तोवस्की ने आर्थिक कठिनाई को दूर करने के लिए लिखा और प्रायः अच्छा लिखा । अंतर यही है कि उन्होंने चाहे पैसे के लिए लिखा, पर लिखा अपनी अन्तः-प्रेरणा से ।

हमारे देश में अच्छे साहित्य के बल पर जीना अब भी कठिन है । इसीलिए यदि साहित्य से रोज़ी कमाना भी अभीष्ट हो तो, वही चीज़ लिखी जाएँगी, जिनकी माँग प्रकाशक अथवा साधारण पाठक करते हैं । यही सोच कर मैं रोज़ी दूसरे साधनों से कमाता रहा और अवकाश के समय लिखता रहा ।

लेकिन यही प्रश्न उठता है कि यदि अपना सुख और संतोष ही मुझे अभीष्ट है, तो मैं कोई चीज़ लिखकर, सुख और संतोष पाकर उसे दराज़ में क्यों बन्द नहीं करता ? उसे छपवाता क्यों हूँ ?

मैंने इस प्रश्न पर कभी पहले विचार नहीं किया था । अब जब मैं इस सम्बन्ध में सोचता हूँ तो समझता हूँ कि सामाजिक प्राणी होने के नाते जो सुख अथवा दुख मैंने पाए हैं, उनकी अनुभूति दूसरे भी पाएँ, इसीलिए मैं रचनाएँ छपवाता हूँ । किसी समस्या पर यदि मैं शिद्दत से सोचता हूँ तो सामाजिक प्राणी होने के नाते चाहता हूँ कि दूसरे भी सोचें और जब दूसरे भी उस अनुभूति को पाते हैं, उसी तरह सोचते हैं अथवा मेरी रचना को पसन्द करते हैं तो मेरा सुख और संतोष दुगुना हो जाता है । तो मुझे अपना संतोष ही अभीष्ट नहीं, दूसरों का संतोष भी अभीष्ट है । पर प्रश्न उठता है कि किन दूसरों का ?

और तब प्रश्न का उत्तर उतना आसान नहीं रहता । कई बार ऐसा होता है कि जैसा मैं महसूस करता हूं, मेरी रचना पढ़कर दूसरे वैसा महसूस नहीं करते । तब दो ही बातें सामने आती हैं । या तो मेरी रचना में त्रुटि है, अथवा पाठक या आलोचक का स्तर भिन्न है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज़ादी से सोचने और लिखने वाले को कभी न कभी ऐसी स्थिति से दो-चार होना पड़ता है। भवभूति ने कभी ऐसी ही स्थिति में लिखा था--"काल की कोई अवधि नहीं और पृथ्वी विशाल है, कभी न कभी मेरा समान-धर्मी पैदा होगा जो मेरी रचनाओं का उचित मूल्यांकन करेगा।" इसमें सन्देह नहीं कि लेखक अपने समय से, समय की विचारधाराओं और समस्याओं से प्रभावित होता है, पर कई बार उसके सोचने और लिखने का ढंग ऐसा होता है कि पाठक या आलोचक उसका साथ नहीं दे पाता। और कई बार वह अपने समय के लिए, उसके बारे में लिखता हुआ भी उसकी परिधि पार कर जाता है और पाठक अथवा आलोचक पीछे रह जाते हैं।

मेरे सामने यह समस्या उतनी शिद्दत से नहीं आई। प्रायः मेरी कृतियाँ लोकप्रिय हुई हैं। यदि आलोचकों ने कुछ कृतियों को पसन्द नहीं किया तो पाठकों ने उन्हें अपनाया है। लेकिन तो भी ऐसी रचनाएँ हैं, जिनका मूल्याँकन वैसा नहीं हुआ, जैसा कि मैं समझता था कि होना चाहिए। ऐसी स्थिति में भवभूति के कथन को दुहरा कर संतोष पाने के सिवा दूसरा कोई चारा भी तो नहीं है।

ऊपर मैंने जो कुछ कहा वह इस प्रश्न का आत्म-परक रूप था, जहाँ मन के संतोष का सम्बन्ध है। लेकिन सामाजिक प्राणी होनें क नाते जब मेरे दायित्व का प्रश्न उठता है और मैं सोचता हूँ कि मैं किसके लिए लिखता हूँ तो कई बातें मेरे सामने आ जाती हैं।

सबसे पहले मुझे पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के एक अग्रलेख की याद आती है जो उन्होंने अप्रैल १९३४ के 'विशालभारत' में लिखा था। मैं यद्यपि तब उर्दू में लिखता था, पर हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ बाकायदा पढ़ता था और 'विशालभारत' मेरा प्रिय पत्र था। चतुर्वेदी जी के लेख का शीर्षक था "कस्मै देवाय ?"

उन्होंने लिखा था--

"सेठ जी दिन भर सट्टेबाजी करके, रात को भरी हुई जेब और खाली दिमाग़ लेकर घर लौटते हैं। अवश्य ही उनकी मोटी अक्ल और कमज़ोर स्नायुओं लिए किसी हल्की चीज़ की ज़रूरत है। वे ऐसी कहानियाँ पढ़ना पसन्द करेंगे, जिनमें कोई निरुद्देश्य युवक किसी कामुक युवती से आंखें लड़ा रहा है। सेठ जी के निर्बल अंगों को तभी संतोष हो सकता है, जब गल्प-लेखक उस युवती को उस युवक के साथ भगा दे।"

और चतुर्वेदी जी ने पूछा था--"क्या हम इन सेठ जी के लिए लिखें ?"

और इसी लहजे में उन्होंने मवक्किलों को लूटने वाले वकील, कालेज के एक बेफ़िक्रे छात्र और किसी रिश्वत लेने वाले अफ़सर की ऊबी, थकी, बेकार लड़की का उल्लेख किया था जो चटपटी चीज़ें पसन्द करती है और पूछा था--"क्या हम इनके लिए लिखें ?"

फिर अन्त में उन्होंने एक किसान का ज़िक्र किया था जो जान-तोड़ मेहनत करने पर भी इतना नहीं पाता कि दो-जून पेट भर सके, धीरे-धीरे यक्ष्मा की ओर सरक रहा है, पर तो भी काम करने को विवश है। और उन्होंने सुझाया था कि--"हमें उस किसान के लिए लिखना चाहिए।"

मुझे अच्छी तरह याद है, उस अंक में उन्होंने उस किसान का चित्र भी छापा था और किसान के बारे में श्री श्रीराम शर्मा द्वारा लिखित एक संस्मरण भी प्रकाशित किया था। महात्मा बुद्ध के प्रवचन का उल्लेख कर लेखकों को परामर्श दिया था कि "जन के सुख, जन के हित और जन की अनुकम्पा के लिए लिखना चाहिए (बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय)।"

आज भी उस लेख की याद मेरे मन में ताज़ी है, विशेषकर इसीलिए कि उस लेख में सरलता के बावजूद जो उलझाव था, वह बाद के प्रगतिशील आन्दोलन में भी वैसा ही उलझाव रहा और आज भी वह कायम है।

यद्यपि चतुर्वेदी जी की यह बात मुझे ठीक लगी कि जन के हित जन के सुख और जन की अनुकम्पा के लिए लिखना चाहिए, पर जिस तरह उन्होंने वह प्रश्न रखा, वह मुझे ग़लत लगा।

जिस किसान का उन्होंने ज़िक्र किया, वह शायद अनपढ़ था, साहित्य उसको लेकर सृजा जा सकता है, पर उसके लिए वह काला अक्षर भैंस बराबर ही तो होगा।

फिर यदि वह कुछ पढ़ जाए तो क्या गारण्टी है कि जब वह थक हारकर घर लौटेगा तो उसको रूमानी और चटपटी चीज़ें अच्छी न लगेंगी ?

जन के मनोरंजन को यदि उद्देश्य बनाकर लेखक साहित्य सृजेगा तो वह चटपटा ही होगा। मैं उत्तरप्रदेश के देहातों की बात नहीं जानता, पर पंजाब में जहाँ चार किसान--मज़दूर इकट्ठे होते हैं, 'हीर-रांझा', 'सोहनी-महीवाल', 'सस्सी-पुन्नू', और 'शीरीं-फ़रहाद' के रूमानी किस्से गाते हैं और उन निरुद्देश्य, निठल्ले प्रेमियों के रूमान में आनन्द पाते हैं। उनकी स्थिति उस सेठ, वकील, कॉलेज के छात्र अथवा धनी बाप की उस बेकार बेटी से कैसे भिन्न है ? आज ये जो इतनी फ़िल्में बनती हैं, ये किनके बल पर चलती हैं ? प्रकट है कि उसी अशिक्षित अथवा अर्द्ध-शिक्षित जनता के बल पर। इसलिए जन का सुख (मनोरंजन के अर्थों में) किसी प्रबुद्ध लेखक का उद्देश्य नहीं हो सकता। जन का सुख (हित के अर्थों में) उसका उद्देश्य होना चाहिए।

लेकिन यहीं दो-एक और उलझनें पैदा हो जाती हैं।

पहली यह कि 'जन' में कौन शामिल है और कौन शामिल नहीं है ?

दूसरी यह कि लेखक अपनी जिस कृति को 'जन-हिताय' रचित समझता है, उसी में कुछ आलोचक जन का अहित समझते हैं। इसका निर्णय कौन करे ? क्या सत्तारूढ़ आलोचक अथवा कोई राजनीतिक दल अथवा सरकारी अफ़सर ?

जहाँ तक जनता का प्रश्न है, हमारे कुछ प्रगतिशील आलोचक केवल मज़दूर-किसानों को जनता समझते हैं। निम्न-मध्यवर्ग, मध्यवर्ग और उच्च-वर्ग उनके ख़याल में जनता नहीं और उनके लिए अथवा उनके बारे में साहित्य लिखना उनकी राय में समय और सामर्थ्य का अपव्यय करना है।

मैं समझता हूं कि यदि साहित्य की सीमाएँ इस तरह बाँध दी जाएँ तो संसार के 'क्लासिकल' साहित्य का बहुत बड़ा भाग साहित्य की सीमा से बाहर हो जाएगा। कालिदास की 'शकुन्तला' क्या उस समय की जनता का चरित्र-चित्रण करती है ? तालस्ताय का अमर उपन्यास 'वार एण्ड पीस' क्या मज़दूरों-किसानों का चरित्र-चित्रण करता है ? यदि मज़दूर-किसान जनता शिक्षित हो जाएगी तो क्या उन अमर कृतियों में आनन्द न पाएगी ?

ये आलोचक जो केवल मज़दूर-किसानों को लेकर साहित्य-सृजन पर ज़ोर देते हैं, समझ लेते हैं कि मज़दूर-किसान सदा अशिक्षित ही रहेंगे, कभी शिक्षित होकर उच्च कोटि के साहित्य का रस पान करने योग्य नहीं बन सकेंगे। उनकी शायद यह भी राय है कि साहित्यिक को अपनी कला की बुलन्दियों से उतरकर साहित्य-सृजन करना चाहिए, आज जो वर्ग पढ़ा-लिखा है, उसके लिए न लिखकर जो आज अशिक्षित है, उसके लिए लिखना चाहिए।

यद्यपि व्यक्तिगत रूप से मैं उस साहित्य को उच्चकोटि का मानता हूँ, जो कला की तमाम बारीकियों के बावजूद भी बोधगम्य हो और जिसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण शिक्षित और अर्ध-शिक्षित समानरूप से रस पा सकें। मेरा अपना साहित्य कहाँ तक इस आदर्श पर पूरा उतरता है, यह मैं नहीं कह सकता। पर मेरा उद्देश्य यह अवश्य रहा है। मैं सदा यह प्रयत्न करता हूँ कि साधारण पाठक कला की बारीकियों को चाहे न समझ पाए, पर मेरी रचना को दिलचस्पी से पढ़ अवश्य जाए।

लेकिन ऐसी कलाकृति की मैं कल्पना कर सकता हूँ, जिसका स्तर आम पाठक की समझ से किंचित ऊँचा हो। हमारे कुछ आलोचकों का दावा है कि ऐसे साहित्य की कोई जरूरत नहीं है। मेरे ख़याल से ऐसे साहित्य की जरूरत है, उन पाठकों के लिए जो पूरे तौर पर शिक्षित होकर उस कृति की कला का रसास्वादन कर सकेंगे।

यदि हम केवल आज की अनपढ़, विपन्न जनता के स्तर ही का ख़याल रखें तो साहित्य का ही नहीं, दूसरी ललित-कलाओं का भी गला घोंट देना होगा। कश्मीर तथा ग्रामोद्योग के दूसरे केन्द्रों में जो इतनी सुन्दर कलाकृतियाँ बनती हैं, उनकी क्या जरूरत है? मजदूर-किसान तो उसका उपभोग नहीं कर सकते, जनता का काम उनके बिना चल जाता है। लेकिन इस पर भी स्वतन्त्र देश को अपने इन कलाकारों पर गर्व है।

यहीं हम फिर पं० बनारसीदास चतुर्वेदी जी द्वारा उठाए गए प्रश्न पर आते हैं--तो क्या उस रस की सृष्टि चटपटी चीजों द्वारा की जाए? क्योंकि हमारी अर्ध-शिक्षित जनता तो उसी में रस पाती है।

मेरे ख़याल से साहित्य और उसका स्तर एक ओर पाठकों के आर्थिक और बौद्धिक स्तर पर निर्भर करता है, दूसरी ओर साहित्यिक के अपने स्तर पर।

यदि पाठक आर्थिक और बौद्धिक रूप से पुष्ट हैं तो वे सरस और उत्कृष्ट रचनाएँ पढ़ना पसन्द करेंगे और कला की बारीकियों को भी समझेंगे और उनमें रस पाएँगे।

कलाकार यदि ऊँचे स्तर का है तो वह अपने पाठकों का मनोरंजन करने के साथ ही साथ उनकी मानसिक और बौद्धिक भूख भी मिटा सकेगा।

यदि दोनों का स्तर नीचा है, तो निम्नकोटि का चटपटा साहित्य पढ़ा और लिखा जाएगा। यदि वह चटपटा न होगा तो कला और शिल्प से विहीन होगा।

किसी ऊँचे दर्जे के कलाकार से यह माँग करने के बदले कि वह कलावला को छोड़कर साधारण जनता की जरूरत की चीजें लिखे, मेरे ख़याल से एक ओर पाठकों के स्तर को ऊँचा करने का प्रयास करना चाहिए और दूसरी ओर लेखक से यह माँग करनी चाहिए कि वह अपनी कृति को कला के प्रसाधनों से वेष्टित करने के साथ-साथ उसे यथासम्भव बोधगम्य बनाए और अपनी रचना द्वारा रस देने के साथ-साथ जनता के बौद्धिक स्तर को उठाए।

मैंने अपने सामने यही आदर्श रखा है और मैं कोशिश करता हूँ कि जहाँ मेरी रचनाएँ जन का मनोरंजन करें, वहाँ उसका कल्याण भी करें। लेकिन इसका निर्णय कौन करे कि लेखक की रचना जन का हित करती हैं, अहित नहीं?

पहला निर्णायक तो कलाकार स्वयं है, दूसरा समय, यानि इतिहास और तीसरा जागरूक संवेदनशील वातावरण।

जहाँ तक कलाकार के स्वयं निर्णायक होने का प्रश्न है, उसकी पहली शर्त यह है कि वह दयानतदार और जागरूक हो, अपनी कृतियों का निरपेक्ष भाव से मूल्यांकन कर सके और उसमें पर-आलोचना के साथ-साथ आत्मालोचन की भी क्षमता हो। यह काम कठिन है और प्रायः साहित्यिक, 'निज कवित्त केहि लाग न नीका?' के अनुरूप अपनी कृतियों के दुर्गुण नहीं जान पाते। लेकिन ऊँचे दर्जे के साहित्यिकों ने साहित्य के इतिहास में बार-बार यह निर्णय किया है। महाकवि ग़ालिब ने जब अपना दीवान संकलित किया, तो बीसियों शेर बड़ी निर्ममता से काट दिए। चूँकि कवि अपनी रचना के प्रति इतना निर्मम हो सका, इसीलिए अपने बारे में कह भी सका--

"तुझे हम वली समझते जो न बादा-ख़्वार होता।"

उसके समकालीनों को उसकी यह गर्वोक्ति चाहे न स्वीकार हुई हो पर इतिहास ने उसे स्वीकार किया।

रहा इतिहास। कोई रचना जो जन का अहित करती है, किसी समय में कितनी भी लोकप्रिय क्यों न रही हो, अधिक समय तक लोकप्रिय नहीं रहती और इतिहास उसे भुला देता है। लेखकों, आलोचकों अथवा पाठकों की कमेटियाँ (विशेषकर जब वे दलगत पार्टी अथवा राजसत्ता-गत होती हैं) किसी कृति का ठीक मूल्यांकन कर सकती हैं, इसमें मुझे संदेह है। हो सकता है कि वे एक लेखक का ठीक मूल्यांकन करें और दूसरे का एकदम ग़लत। लेखकों और आलोचकों ने अपने समकालीनों के सम्बन्ध में बहुत बार ग़लत मत दिए हैं। रहे पाठक, तो जहाँ तक समूह का सम्बन्ध है, उन्हें किसी कृति के पक्ष या विपक्ष में, कम से कम अस्थायी काल के लिए भड़काया जा सकता है। जर्मनी में हिटलर का ज़माना इस बात का साक्षी है। लेकिन यदि कृति में दम है तो किसी समय में उसे चाहे गुमनामी के गर्त में फेंक दिया जाए, अनुकूल वातावरण मिलने पर वह साहित्य में स्थान पा ही लेती है।

रचना की उत्कृष्टता का अन्तिम निर्णायक तो इतिहास है, लेकिन कई बार जब समय अथवा प्रचलित रूढ़ि की उपेक्षा किसी लेखक का ठीक मूल्यांकन नहीं कर सकती अथवा जब राजसत्ता इतिहास को अपनी नीति के के अनुसार बदल देती है, तब जागरूक संवेदनशील वातावरण ही उसकी प्रतिष्ठा करके इतिहास के पन्ने उसके लिए सुरक्षित करता है। कई बार ऐसा होता है कि कोई लेखक अथवा कवि अपने समय से आगे बढ़ जाता है तब वह स्वयं अथवा कोई आलोचक उसके अनुकूल वातावरण बनाता है। ग़ालिब को अपने समय में स्वयं यह वातावरण बनाना पड़ा था। छायावाद के कवियों ने स्वयं वह वातावरण बनाया। आज के ज़माने में नई कविता के लिए इलियट को स्वयं यह वातावरण बनाना पड़ा। फिर इतिहास द्वारा भुला दिए गए उमरख़य्याम को फिट्जजेरार्ल्ड ने खोज निकाला और उनके लिए उपयुक्त साहित्यिक वातावरण तैयार किया।

प्रायः यह कहा जाता है कि लेखक अपनी रचना का स्वयं निर्णायक नहीं हो सकता, क्योंकि हर लेखक अपनी कृति को अच्छा समझता है, इसलिए लेखकों और पाठकों की कमेटियों को बहुमत से इस बात का निर्णय करना चाहिए कि वह उत्कृष्ट है या नहीं, जन हिताय लिखी गई है या नहीं। साधारण लेखक की असमर्थता में मानता हूँ, लेकिन राजसत्ता, राजनीतिज्ञ अथवा सरकारी या अर्द्ध-सरकारी आलोचक यह काम कर सकते हैं, इसमें मुझे सन्देह है। उनके हाथों साहित्य का अहित भले ही हो, हित नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए यदि कोई प्रधान मन्त्री अथवा किसी सत्तारूढ़ पार्टी का प्रधान अथवा सेक्रेटरी खुलेआम किसी कृति को निकृष्ट घोषित कर देता है तो किस सरकारी अथवा अर्द्ध-सरकारी कमेटी की हिम्मत है (भले ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें नामी लेखक या साधारण पाठक हों) कि उसका विरोध करे। व्यक्तिगत पाठक उसका पक्ष ले सकते हैं, स्वतन्त्र आलोचक भी उसका पक्ष ले सकते हैं, लेकिन सरकारी या अर्द्ध-सरकारी कमेटी या राजनीतिक पार्टी के सदस्य नहीं ले सकते। कृति लाख जन हिताय लिखी गई पर वे उसमें जनता का अहित ढूंढ़ निकालेंगे।

× × ×

'लिए' शब्द में शायद 'के बारे में' भी निहित है। जब चतुर्वेदी जी ने लिखा था कि हमें शोषित किसान-मजदूरों के लिए लिखना चाहिए तो उनका शायद अभिप्राय था कि लेखकों को उनके सम्बन्ध में, उनकी समस्याओं को लेकर लिखना चाहिए।

तब श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने चतुर्वेदी जी के उस लेख के उत्तर में 'विशाल भारत' के ही अगले अंक में लिखा था--"साहित्य का घेरा बहुत बड़ा है। रिश्वतखोर अफ़सर की जिस बेटी के प्रति चतुर्वेदी ने बड़ी उपेक्षा का भाव दर्शाया है उसकी कुण्ठा ही एक बड़ी सुन्दर कहानी का विषय हो सकती है जो शायद उस किसान के संस्मरण से बेहतर साहित्यिक कृति बन जाए। साहित्य का घेरा मानव मात्र को अपने में समा लेता है, किसान-मजदूर, धनी-निर्धन, बेकार-आवारे, निठल्ले और निकम्मे, वेश्याएँ, सट्टेबाज, जुआरी और दुराचारी सभी उसका अंग बन सकते हैं। लेखक का उद्देश्य उनके चरित्र-चित्रण में क्या है, उसने अपने पात्रों को कितनी करुणा, कितनी संवेदना दी है, यही दो बातें उसकी रचना की उत्कृष्टता अथवा निकृष्टता का फ़ैसला करती हैं। गोर्की ने स्वयं अपनी कहानियों में ऐसे पात्रों का चरित्र-चित्रण बड़ी मानवीयता से किया है, एलेग्जेण्डर कूपरिन का उपन्यास 'यामा' (वेश्यालय का चित्रण होने के बावजूद) रूसी साहित्य का क्लासिक है।"

लेखक अपनी सामग्री का प्रयोग किस प्रकार अपने साहित्य में करता है, उसी से उसकी शक्ति और जागरूकता की पहचान हो जाती है। आज के युग में राजाओं और नवाबों का, मिटते हुए सामन्तवाद का चित्रण करना बुरा नहीं, पर यदि लेखक उस दौर को फिर लाना चाहता है तो प्रकट है कि वह इतिहास का पहिया पीछे को मोड़ना चाहता है और उसकी यह कोशिश सारी कलाकारिता के बावजूद असफल रह जाएगी। जागरूक लेखक प्रायः समय का साथ देता है, बल्कि कई बार आगे की सोचता है। वह अपने साहित्य में किस सामग्री का प्रयोग करता है, यह महत्वपूर्ण नहीं, किस दृष्टि से प्रयोग करता है, यह बात महत्व की है।

जहाँ तक मेरा व्यक्तिगत प्रश्न है, मैं चतुर्वेदी जी की बात से सहमत होते हुए भी किसान-मजदूरों के बारे में ज्यादा नहीं लिख सका। मैं निम्न मध्यवर्ग में पैदा हुआ, पला और बढ़ा और उसी वर्ग का चरित्र-चित्रण मैंने अपनी कृतियों में अधिकांशतः किया है। बिना किसी व्यक्ति अथवा वर्ग का पूरा ज्ञान प्राप्त किए, साहित्य-सर्जना मेरे ख़याल में बददयानती है। लेखक जहाँ है, जिस वर्ग में है, जिस प्रदेश में है, जिसका पूरा ज्ञान उसे प्राप्त है उसी वर्ग, समाज और प्रदेश को जन कल्याण और जन सुख के हेतु उसे अपने साहित्य में चित्रित करना चाहिए, ऐसी मेरी धारणा है। यदि लेखक किसानों और मजदूरों से उठा है, अथवा उनमें रहता है तो उन्हें छोड़कर उच्च वर्ग का चित्रण उसके लिए ग़लत होगा, इसी तरह उच्च वर्ग के साहित्यिक के लिए बिना निम्न वर्ग की परिस्थितियों का पूरा ज्ञान प्राप्त किए केवल बौद्धिक सहानुभूति के बल पर, उनका चित्रण ठीक न होगा और उसके साहित्य में वह गुण न आएगा जो अनुभूति के सच्चे और खरेपन से पैदा होता है।

× × ×

लेकिन व्यक्ति और समाज से परे साहित्य का एक रूप है, जो देश-काल के बन्धन में नहीं बँधता। उत्कृष्ट साहित्य वह माना गया है, जो देश-काल की सीमाओं को लाँघ जाता है। तो क्या लेखक को केवल अपने समाज की अथवा व्यक्ति की तात्कालिक समस्याओं तक ही अपने आपको सीमित रखना चाहिए अथवा आनेवाली नस्लों का भी ख़याल रखना चाहिए?

वास्तव में यह प्रश्न जितने सीधे हैं, उनके उत्तर उतने सीधे नहीं हैं। मैंने यथासम्भव सरलता से इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया है। जहाँ-तक आनेवाली नस्लों के लिए लिखने का प्रश्न है, पहली बात तो यह है कि कौन-सी साहित्यिक कृति देशकाल की सीमाओं को लाँघ जाएगी और पचास अथवा सौ वर्ष बाद भी उसी चाव से पढ़ी जाएगी, यह कहना कठिन है। हो सकता है कि जिस कृति के बारे में लेखक समझता है कि १०० वर्ष बाद ज़िन्दा रहेगी, वह उसकी ज़िन्दगी ही में गुमनामी के गर्त में जा पड़े और जिस कृति को वह केवल तात्कालिक समस्या के हल के लिए लिखता है, वह अपनी अनुभूति की सच्चाई और खरेपन के कारण सदियों बाद भी पढ़ी जा सके। मेरे ख़याल से अनुभूति की सच्चाई और खरापन, अपने पात्रों के प्रति लेखक की संवेदना और करुणा, दृष्टि की बारीकी और विशालता रचना को सार्वभौमिकता और अमरत्व प्रदान करती हैं। यों लेखक को इन बातों की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए और अमरत्व के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। कम से कम मैं ऐसा नहीं करता। वर्तमान को भूलकर अपनी दृष्टि आज से सौ वर्ष बाद पर रखना मेरे लिए कठिन है। आज से पचास सौ वर्ष बाद के पाठक यदि मेरी कृतियों को पढ़ें और मेरे समाज और वर्ग, उसके सुख-दुख, उलझनों और पेचीदगियों को जान सकें तो मैं अपना श्रम असफल नहीं समझता। इतिहास-लेखक भी यही काम करता है, पर जहाँ इतिहासज्ञ केवल किसी काल के बाहर का खाका देता है, साहित्यिक उस काल के अन्तर में झांकता है। हम रूस पर नेपोलियन के आक्रमण के बारे में जो बात इतिहास में पढ़ कर नहीं जान पाते, वह तालस्ताय के 'वार एण्ड पीस' को पढ़कर जान लेते हैं। यहीं साहित्य कोरे इतिहास से भिन्न और श्रेष्ठ होता है।

मैं सदा इस बात की कोशिश करता हूँ कि अपनी अनुभूतियों की सच्चाई और खरेपन तथा कला और शिल्प की सौष्ठवता के साथ अपने वर्ग और समाज का चित्रण करूँ--समाज के हित और कल्याण के लिए मेरी कृति आज से १०० वर्ष बाद ज़िन्दा रहेगी या नहीं, इसकी चिन्ता मैं नहीं करता।

और रही किसके लिए लिखने की बात, तो जो कृति छप जाती है वह किसी एक की नहीं रहती। वह उन सब के लिए हो जाती है जो उसे पढ़ सकते हैं, अमीरों के लिए अथवा उनके बारे में लिखी गई चीज़ को ग़रीब मजदूर पढ़ सकते हैं और मजदूरों-किसानों के लिए लिखी गई चीज़ में धनी-मानी भी रस ले सकते हैं। यदि उसमें सार्वभौमिकता के गुण हैं तो वह देश, काल और वर्ग की सीमाओं को लांघ जाएगी और यदि वे गुण उसमें नहीं हैं, तो वह लाख शोर मचाने पर भी गुमनामी के गर्त में जा पड़ेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला में मौलिकता

सुधीर खास्तगीर

आज मुझ से यह आशा न कीजिए कि मैं कोई नवीन कहानी कहने जा रहा हूं। अपने जीवन की कुछ एकत्रित भावनाओं को आपके सामने रखूंगा। मुझ आशा है कि इसे आप मेरे विचारों की शेष पंक्ति न समझेंगे। अभी बहुत कुछ जीवन से सीखना बाकी है। परन्तु वह शायद हमेशा ही रह जाता है।

बेस्वाद खाने की तरह पुरानी भावनाएं लोगों को शायद कुछ दिनों के बाद भाती नहीं हैं। रूढ़िबद्ध धारणा और उसका चिरपुरातन प्रकाश चेष्टाहीन चिन्ता और दुर्बलता का प्रमाण है।

कला निदर्शन को नवीन भावना देना बहुत कठिन है। कला में नवीनत्व का लाना केवल कुछ महान लोगों से ही सम्भव है, जिन्होंने भगवान के अपार रूप को विभिन्न मूर्ति में विकसित होते देखा है। यह नवीन प्रकाश केवल उस मूर्ति को स्वाभाविक रूप देना ही नहीं है। वरन कुछ उससे भी आगे है। कभी भावनाओं को हमारे अवचेतन व काल्पनिक मन की रुचि अनुसार आगे बढ़ाकर प्रकृति को थोड़ा भिन्न रूप देना भी पड़ता है, जिसे बदलना भी कहा जा सकता है।

परन्तु इतना समझते हुए भी ईश्वर के चिरलीलामय रूप को विभिन्न रूप में देखकर कभी प्रतीत होता है कि कुछ सर्वथा मौलिक निजत्व दिखाना कठिन है। परन्तु पुनरावृत्ति हर स्थिति में, हर समय में हो रही है, मनुष्य, पतंगा, पौधे, ईश्वर की हर एक रचना में। जन्म के बाद मृत्यु, ऊषा के बाद रात्रि, दुःख के बाद सुख, यह गति चिरन्तन गति के साथ चलेगी। परन्तु यह भावना, कि हम जब संसार में आए हैं तो एक दिन जाना भी है, हमको किसी भी प्रकार का निजी रूप देने में असमर्थ कर सकती है। मनुष्य के मन में एक दूसरी धारा भी बहती है, जो उसको नवीन रेखापात करने में प्रेरित करती है। तभी तो हम प्रतिदिन नवीन ऊषा का आनन्द से स्वागत करते हैं, हर सुन्दरता के साथ हमारा चिरनूतन मन गाकर नाच उठता है, अपनी विभोरता को दिखाने। प्रेम मनुष्य पर सृष्टि-कर्ता का सबसे बड़ा आशीष है। यही निविड़ प्रेम मनुष्य हृदयवीणा को बार-बार छेड़ कर नित्य नव रूप में दिखाता है। इसी कल्पना को बार-बार रूप मिलता है। हर एक मनुष्य की उस अपार प्रेम को अनुभव करने की क्षमता में अन्तर है। तभी तो उसके प्रकाश में भी विभिन्नता है। इस अपूर्व प्रेमधारा में ही प्रेरित होकर, हम अपनी कृतज्ञता में डूब कर नवीन रूप में विकसित हो उठते हैं, बार-बार। यह केवल अन्तस की अभिव्यक्ति नहीं है, यह तो कल्पना देवी की उपासना में मनुष्य हृदय का आत्मसमर्पण है, तभी तो देखेंगे प्रकृति में नवीन रूप व कल्पना को? विश्वस्रष्टा की असीम अपूर्व रचना को देख, उस अनन्त आनन्दम् की अनुभूति से मनुष्य चमक उठता है, असीम को अपनी समझ के अनुसार मानसिक रूप देना

सुधीर खास्तगीर

'गोलकीपर'

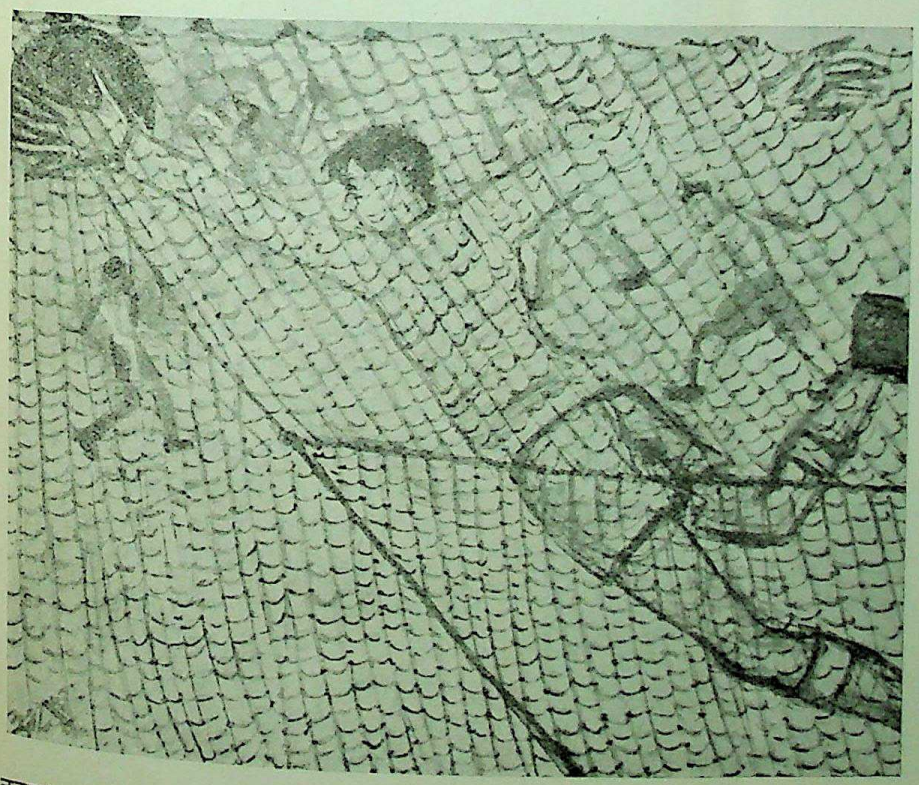

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

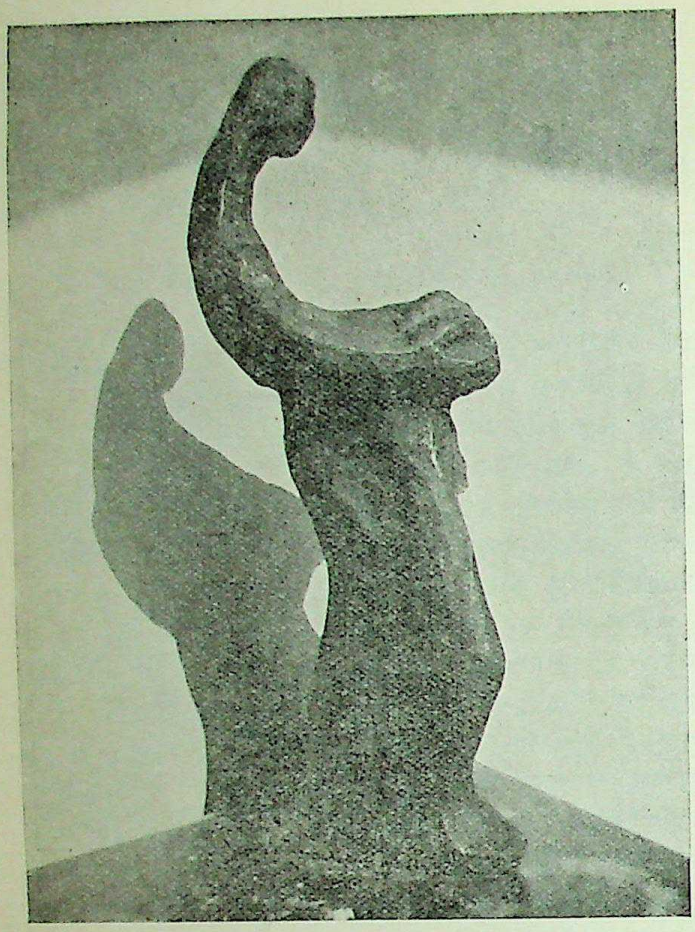

'डूमर'—टर्रा कोटा

'नृत्य'

चाहता है। यही है महान के साथ चिर परिवर्तनीय को जोड़ने की चिर पुरातन चेष्टा।

'पतझड़ का तूफान'

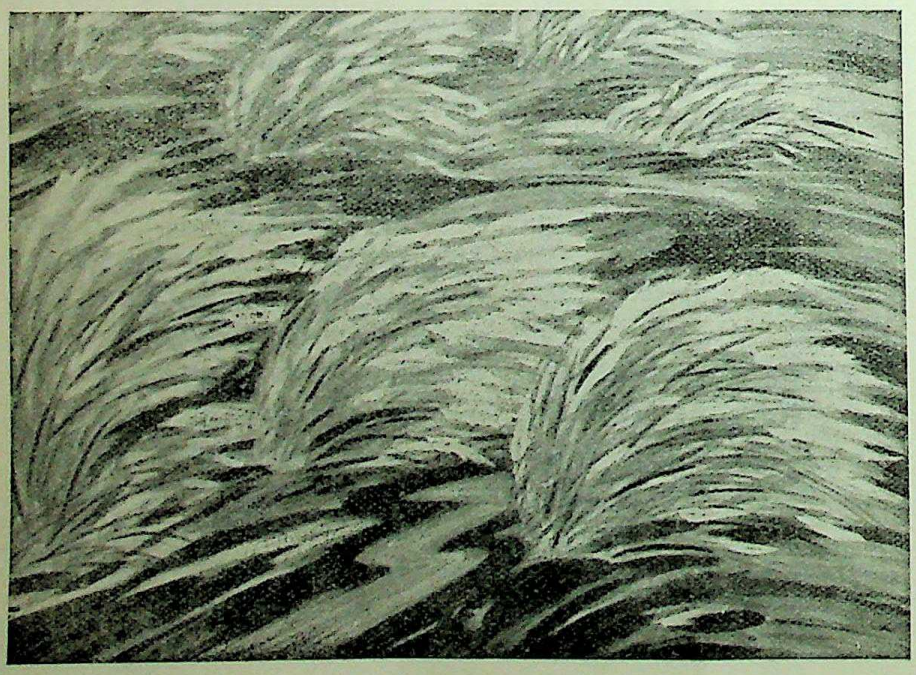

प्रकृति तो बार-बार एक ही रूप को दिखाती है, और यह भी अनुभव है कि तभी गतिशील शक्ति को हम छू पाते हैं। एक भय है कि यह पुनर्जीवन अधिक होने से मानसिक दुर्बलता पर प्रकाश डालती है। कलाकार जितना अधिक प्रकृति की रूप अर्चना करता है, उतना ही उसके माधुर्य के पास पहुंचता जाता है। विश्वस्रष्टा से एकीभूत होने में चित्रकार की आत्मा उस स्वर्गीय संगीत के झंकार में स्पन्दित हो उठती है। इसी स्पन्दन में स्वाभाविक निज प्रकाश है।

कलाकार पूछता है क्या कोई और भी रास्ता है? आत्मा कहती है, है तो—प्रकृति के स्वाभाविक रूप को बदलने में। परन्तु ऐसा करने में इसको निर्भीक होकर सच्चाई के मार्ग पर चलना पड़ेगा। यह भी तभी हो सकता, जबकि उसमें वह समझ और अनुभव हो, जिससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कांटा लागो रे !'

'क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार की मूर्ति'

उसको बदल सके। विश्वपुरुष, किसी साधारण नियम के साथ हमेशा नहीं चलता है। हमारा दर्शन कहता है अव्यय पुरुष प्रकृति में प्रतिबिम्बित होता है, और चिर चंचला उसे जगत का नव रूप देती है। तभी कुछ महान रचना पहले प्रकृति में प्रतिबिम्बित होकर ही तो उसकी गहराई तक पहुंच पाती है--उसके साधारण नियम को बदलने की स्पर्धा कर सकती है। तभी महान युग कवि रवीन्द्रनाथ ने कहा है, "मेरे जीवन देवता से मुझ प्रेम है, क्योंकि इन्कार करने की क्षमता दी है उसने।" अभिज्ञ कलाकार महान कल्पना के सहारे प्रकृति को बदल सकता है-- उसके माधुर्य को लोगों के सामने ला सकता है। कवि के शब्दों में इस प्रकार का परिवर्तन एक नियम में रूपान्तरित

'मां'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न करना चाहिए, वह एक कलाकार कें अपने व्यक्तित्व और अभिज्ञता का परिचय है, सम्पूर्ण निजी रूप है। ऐसे पुनर्चित्रण से नवीन कलाकार का निजी परिचय नहीं हो सकता है। वास्तव में एक ही महान कलाकार अवनीन्द्र है, जिसकी शक्तिशाली कलम के साथ हजारों चलते हैं। एक नन्दलाल के दीप से हज़ारों दीप प्रज्वलित होंगे। नवीन कलाकार या महान किसी को भी अनुकरण के लिए दोषी न कहना चाहिए। सच्चे कलाकार आपस में प्रेम और समझ से चलते हैं और चलना भी चाहिए। इसका न होना ईर्ष्या का परिचय देता है। परन्तु वास्तव में ईर्ष्या अपनी दुर्बलता का परिचय देती है। आप दूसरों के बड़प्पन को मानते हैं। क्या यही शेष है? कलाकार होना अनन्त की पूजा है। और दूसरी तरफ ईर्ष्या का भाव अहम् का परिचायक है। हम अमृत की सन्तान हैं, उस आनन्द को छकर अनन्त के प्रान्त तक पहुंचना चाहें तो अपनी संकीर्णता से उठकर हमें महत् की तरफ जाना होगा।

'दीवाली नृत्य'

अपने जीवन की एक महान शिक्षा से मैं आज की कथा समाप्त करना चाहता हूं। जो तब नहीं समझ सका था, परन्तु आज समझता हूं, आज अपनी सच्चाई की गहराई तक पहुंच पाया हूं। अपने शिक्षान्त पर मेरे गुरुदेव श्री नन्दलाल ने कहा, "जाने से पहले गुरु दक्षिणा के रूप में अपनी द्वेष भावना और हिंसा दान दे जाओ।" आज मैं गुरुदेव के स्मरण में उस महान की उपलब्धि पर सिर झकाता हूं।

विदा

रामदरश मिश्र

हिलते हुए रूमाल
बहुत कुछ कहने को कांपते ओठ
उठती गिरती पलकें
मूक आंखों में तड़पते
कितने कहे अनकहे सन्देशे
प्लेटफार्म विदा के कोलाहल से कसमसा उठा
अह, कौन है मेरे लिए यहां !
सन्नाटा. . . . .सन्नाटा. . . . . सन्नाटा
कोलाहल के महासागर में
सन्नाटे के द्वीप में

आकाश के उस कोने में लटके हुए
कमल के दो बड़े-बड़े सम्पुट थरथराए,
खुल गए
सन्नाटा और गहर गया

जैसे किसी पुकार से निर्जन अंधेरी रात
सम्पुट बन्द हो गए
जैसे किसी ने चलती हुई गाड़ी की जंजीर खींच दी
सब कुछ ठहर गया
मैं ?
मैं, मानो मैं न रहा
धीरे-धीरे सम्पुट कांपे और फिर खुल गए
उनसे आंसुओं की धारा सी झरने लगी
लगा कि सारा ठहराव, सारी जमावट
गल-गल कर बह रही है
विदा. . . .विदा. . . .विदा
अर्घ्य-जल की तरह ढरने लगा
चौंक कर देखा
गाड़ी चल रही है
और धीरे-धीरे मेंह बरस रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय-परिवर्तन

शान्तिप्रिय द्विवेदी

बर्बर पशुओं से आक्रान्त, श्रावस्ती के वन्यप्रान्तर में एक नरपशु भी रहता था। उस विकराल व्याघ्र का नाम अंगुलिमाल था। वह मनुष्यों को मारकर अंगुलियों की माला पहनता था। उसके आतंक से पीड़ित होकर त्रस्त प्रजा ने राजा प्रसेनजित से आवेदन किया--देव ! उस दुर्दान्त दस्यु से हम लोगों की रक्षा कीजिए।

राजा प्रसेनजित ने उसके दमन के लिए बहुत उपाय किया, किन्तु वह निष्फल हुआ। सैनिक शक्ति के रहते हुए भी प्रसेनजित दस्युजित नहीं हो सका।

अंगुलिमाल जन्म से ही दुर्दान्त दस्यु नहीं था, कभी वह नरपशु भी मनुज-शिशु था। कोशलराज के पुरोहित गार्ग्य की भार्या मैत्रायणी की कोख से उत्पन्न हुआ था। किशोरावस्था में वह तक्षशिला के गुरुकुल का सुशील छात्र था। आचारवान, आज्ञाकारी और प्रियभाषी था। उसके शील और प्रतिभा से मन्दबुद्धि सहपाठियों को द्वेष होने लगा। आपस में परामर्श करने लगे--कैसे इसे नीचा दिखाएं। वे उसका छिद्रान्वेषण करने लगे, किन्तु उस निष्ठावान और प्रज्ञावान भाणवक में उन्हें कोई दोष नहीं दिखाई दिया। तब उन्होंने निश्चय किया--आचार्यपत्नी को निमित्त बनाकर इसे लांछित किया जाय।

उस सुशील भाणवक पर आचार्यपत्नी का अपत्य स्नेह था, अत्यन्त वात्सल्य था। माता की तरह ही वे विद्यामाता उसके योग-क्षेम का ध्यान रखतीं, घर आ जाने पर उसका सत्कार करतीं और आशीर्वाद के रूप में अन्नपूर्णा का प्रसाद देतीं।

विद्वेषी सहपाठियों ने गुरुकुल में यह प्रवाद फैला दिया : आचार्यपत्नी से ढोंगी भाणवक का अनुचित सम्बन्ध है।

बारी-बारी से प्रवाद को पुष्ट करने के लिए विद्वेषियों ने अपने को तीन टुकड़ियों में विभक्त कर लिया।

पहली टुकड़ी आचार्य के पास जाकर अभिवादन और वन्दना करके खड़ी हो गई।

आचार्य ने पूछा--क्या है आयुष्मानो !

उत्तर मिला--वह भाणवक आपके अन्तःपुर को दूषित कर रहा है।

आचार्य ने डांट दिया--जाओ शूद्रो ! मेरे शीलवान पुत्र और मुझ में विग्रह मत उत्पन्न करो।.....

बीच-बीच में कुछ दिन छोड़ कर दूसरी-तीसरी टुकड़ी ने भी पहली टुकड़ी की बात दुहराते-तिहराते हुए कहा--यदि आचार्य को हमारी बात पर विश्वास नहीं है तो स्वयं परीक्षा करके देख लें।.....

एक दिन भाणवक आचार्यपत्नी के चरणों में उपस्थित होकर सदा की भांति सहज संलाप कर रहा था। शिशु की तुतली बातों से दुग्ध वत्सला मां की भांति विह्वला आचार्यपत्नी भाणवक की सरलता से आत्म-विभोर हो रही थीं। आचार्य ने परोक्ष दृष्टि से देख लिया। व संभ्रम में पड़ गए। सोचने लगे--इस दुष्ट को कैसे दण्ड दूं। यदि मारता हूं तो मुझे दुर्दण्ड समझ कर अन्य छात्र यहां पढ़ने नहीं आएंगे, गुरुकुल सूना हो जाएगा।

सोचते-सोचते उन्हें यह सूझा कि इससे ऐसी गुरुदक्षिणा मांगनी चाहिए जिससे यह हिंसक होकर हिंसा से ही समाप्त हो जाय। उन्होंने भाणवक से कहा--वटुक, तुम्हारी शिक्षा पूरी हो चुकी है। अब मुझे अपनी गुरुदक्षिणा दो।

भाणवक ने विनम्र होकर कहा--आचार्यश्री के चरणों में क्या दक्षिणा अर्पित करूं।

आचार्य ने आज्ञा दी--सहस्र नर-नारियों को मार कर अपन साहस का परिचय दो, तुम्हारा साहस ही मेरी दक्षिणा है।

सरलहृदय भाणवक सिहर उठा। उस नम्र स्नातक ने सात्विक दृढ़ता से कहा--आचार्य ! मैं अहिंसक कुल में उत्पन्न हुआ हूं, यह जघन्य पाप नहीं कर सकता।

आचार्य न क्रुद्ध होकर कहा--मेरी मनोवांछित दक्षिणा न देने से तुम्हारी विद्या निष्फल हो जायगी।

भाणवक ने आचार्य की रुष्ट आंखों की ओर देखा, उनकी शिक्षा की तरह ही उन आंखों का रक्तारक्त रोष भी उसके कोरे चित्त में अनुरंजित हो उठा। सात्विक स्वभाव में तामसिक प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ। अहिंसक भाणवक हिंसा के पथ पर चल पड़ा। अकेले सहस्र नर-नारियों का सामना नहीं कर सकता था, अतएव, पांच हथियार लेकर जंगल में छिप गया।

वह मनुष्यों को केवल मारता था, धन और वस्त्र नहीं छीनता था। संख्या याद रखने क लिए गिनता जाता था। जब गिनती याद नहीं रख सका तब मृतकों की एक-एक अंगुली काट कर रखन लगा। अंगुलियां रख स्थान पर खो जाती थीं, वह उनकी माला बनाकर पहनने लगा। उसक भय से जब लोगों ने काम-काज क लिए जंगल में जाना बन्द कर दिया तब वह रात में गांव में आकर पैर के आघात से दरवाजा खोलकर सोतों हुओं को मार कर गिनती गिनता चला जाता। गांव निगम में, निगम नगर म भाग कर राजा को गुहारने लगा।

उस समय तथागत बुद्ध अनाथपिण्डक के जेतवन में विहार करते थे। पर्वाह्न में जब वे भिक्षाटन कर रहे थे तब उन्होंने अंगुलिमाल स पीड़ित प्रजा का आर्त्तनाद सुना। अपराह्न में वे उस दिशा की ओर चले जिधर अंगुलिमाल रहता था। उन्हें उधर जाते देख कर गोपालकों पशुपालकों, कृषकों और पाथकों ने कहा--महाश्रमण, उस ओर मत जाइए। उधर पचासों आदमी एक-साथ जाकर भी अंगुलिमाल के चंगुल से नहीं बचते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथागत ने कहा--अंगुलिमाल से तुम लोग इतना डरते हो, क्या वह अपने-अपने मनोविकारों से भी अधिक भयंकर है!

लोग हतबुद्धि होकर उन्हें देखते रह गए। निर्भयचित्त तथागत आगे बढ़ गए।

अंगुलिमाल ने उन्हें जब अकेले ही आते हुए देखा तब वह आश्चर्य में पड़ गया--कौन है यह जो मेरे सामने आने का साहस कर रहा है। अरे, यह तो कोई श्रमण है। क्या इसे मारूं?

तथागत के दीप्तिमान व्यक्तित्व से अभिभूत होकर क्षणभर वह असमंजस में पड़ गया, फिर उसे अपने हिंसात्मक संकल्प का ध्यान आ गया। उसने कड़क कर कहा--ठहरो!

तथागत रुके नहीं, चलते ही रहे। अंगुलिमाल को ऐसा जान पड़ा, यह श्रमण उसकी दुर्द्धर्ष शक्ति का तिरस्कार कर रहा है। क्षुब्ध होकर तथागत को पकड़ने के लिए उसने दौड़ने का प्रयत्न किया, किन्तु अपनी मानसिक उलझन (दुविधा) में ऐसा उलझ गया कि जहां का तहां निश्चल रह गया। वह सोचने लगा--दौड़ते हुए हाथी को, घोड़े को, रथ को, मृग को पकड़ लेने वाला मैं इस मन्दगति श्रमण से क्यों पिछड़ गया! मुझ पर यह कैसा सम्मोहन छा गया!!

उसकी देवासुर प्रवृत्तियों में आन्तरिक संघर्ष होने लगा। अपने दुर्दम पशु-शरीर को आस्फालित कर उसका असुरत्व प्राणपण से एक बार फिर हुंकार उठा--खड़ा रह श्रमण!

तथागत ने कहा--चलने में मुझे कोई कष्ट नहीं, निरुद्विग्न हूं, अतएव मैं सुस्थित हूं, तू ो सुस्थित हो अंगुलिमाल!

अंगुलिमाल ने विस्मित होकर पूछा--श्रमण, यह कैसी पहेली है! तुम चलते जा रहे हो, फिर भी अपने को सुस्थित कहते हो, म खड़ा हूं, फिर भी मुझे अस्थित कहते हो।

तथागत ने कहा--जो उद्धत है, असंयत है, वह खड़ा होकर भी चंचल है; जो उदात्त है, वह संयत चलते हुए भी अविचल है।

तथागत की मार्मिक वाणी से उस प्रसुप्त मानव की मानसिक मूर्च्छा प्रेतबाधा की तरह दूर हो गई। दुर्दान्त दस्यु के भीतर तिरोहित तक्षशिला का शीलवान प्रज्ञावान भाणवक जाग उठा। उसकी आंखों के सामने अतीत चलचित्र की तरह घूम गया। उसे अपनी वर्त्तमान प्रवृत्ति से आत्मग्लानि होने लगी। उसने अनुभव किया--मरी शिक्षा का शुभारम्भ अब हो रहा है!

हथियार फेंक कर वह अपने नए शास्ता तथागत के चरणों में प्रणत हो गया। करुणामय ने अपनी शरण में ले लेने के लिए बांहें फैलाकर उसे आहूत किया--'आ भिक्षु!'--यह नवीन सम्बोधन ही उसका सन्यास हो गया। अब वह अंशुमाल था।

अंगुलिमाल ने पश्चात्ताप और कृतज्ञता से विगलित होकर कहा--भगवन! मेरे पापों का क्या प्रायश्चित है, यह अधम आप के प्रति भी दुर्विनीत हो गया था।

तथागत ने कहा--वत्स, तेरा पश्चात्ताप ही तेरा प्रायश्चित्त है। अब तू किसी के द्वारा प्रताड़ित किए जाने पर भी प्रतिकार मत करना, प्रतिशोध मत लेना। हिंसा के बाद अब तू प्रतिहिंसा से भी विरक्त हो जा।

अंगुलिमाल ने उनकी पदधूलि मस्तक से लगाकर कहा--मैं तथागत के चरणों का चिरअनुगत रहूंगा।

अंगुलिमाल को अपना अनुगामी श्रमण बनाकर तथागत जेतवन लौट आए।

ोशल-नरेश प्रसेनजित प्रजा की पुकार से विवश होकर पांच सौ घुड़सवारों के साथ अंगुलिमाल का दमन करने के लिए स्वयं श्रावस्ती से प्रस्थान कर रहा था। तथागत का आशीर्वाद पाने के लिए वह अकेले पहले जेतवन में गया। उसे उदास देखकर तथागत ने पूछा--राजन, इतने चिन्तित क्यों हो? क्या किसी दूसरे राजा ने तुम्हारे ऊपर धावा बोला है?

प्रसेनजित ने कहा--भन्ते! किसी राजा ने नहीं, डाकू अंगुलिमाल ने मेरे सारे राज्य को संकट में डाल रखा है। मैं उसी का निवारण करने जा रहा हूं। आपका आशीर्वाद चाहिए।

तथागत ने मुस्करा कर कहा--राजन, यदि अंगुलिमाल का हृदय परिवर्तन हो गया हो, वह एकाहारी ब्रह्मचारी अहिंसक परिव्राजक हो गया हो तो आप उसके साथ कैसा व्यवहार करेंगे?

प्रसेनजित ने कहा--भन्ते! हम प्रत्युत्थान करेंगे, आसन के लिए निमन्त्रित करेंगे, संन्यास के उपकरण प्रदान करेंगे, सब तरह से रक्षा करेंगे, किन्तु उस दुःशील पापी से क्या शील-संयम सम्भव है।

अंगुलिमाल तथागत से थोड़ी दूर पर बैठा हुआ था। तथागत ने उसकी दाहिनी बांह पकड़ कर राजा के सामने उपस्थित करते हुए कहा--राजन, यह है तुम्हारा अपराधी अंगुलिमाल।

इस आकस्मिक संवाद से प्रसेनजित सिर से पैर तक कांप उठा। उसे चकित और रोमांचित देखकर तथागत ने ढाढ़स दिया--राजन! डरो मत, इस आतंककारी में अब कोई डंक नहीं है। एक बार इसे भर-आंख देखो तो सही।

प्रसेनजित ने आश्वस्त होकर ध्यान से देखा--ग्रीष्म का प्रचण्ड मार्त्तण्ड शिशिर का सुकोमल आतप हो गया है।

सम्मानपूर्वक खड़े होकर राजा ने अंगुलिमाल को सांजलि अभिवादन किया। उस नूतन ब्रह्मचारी ने अपनी सौम्य दृष्टि से राजा को अभिशिक्त कर आशीर्वाद दिया--तथागत के चरणों में सबका कल्याण हो।

नितरां नीचोऽस्पीति त्वं खेदं कूप! मा कदापिकृथाः।
अत्यन्त सरस हृदयो यतः परेषां गुणगृहीताऽसि॥

--पंडितराज जगन्नाथ

हे कूप! यह मत समझ कि बहुत नीचे होने से तू सचमुच नीच हो गया, क्योंकि तेरा हृदय तो बहुत ही सरस है और तू दूसरों के गुणों (रस्सियों) का ग्राहक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीलोक का राजकुमार

मोहनसिंह सेंगर

एक तो प्रशान्त बाबू को घर से निकलने में ही देर हो गई थी, दूसरे आज उनका मन और शरीर भी बहुत अच्छा नहीं था। सो ज्यों ही वे भीतर के ताक में रखी काली की मूर्ति को नमस्कार कर बाहर निकलने को हुए, देहलीज के बाहर खड़े सिसकते सुकान्त को देखकर उनके तेवर चढ़ गए। बाहर जाने के वक्त किसी का दरवाजे पर आकर सिसकना वैसे ही कम अशुभ न था, फिर जब सुकान्त ने रोनी-सी आवाज में पुकारा--"बाबा"। तब तो उनका रहा-सहा धीरज भी जाता रहा। कड़क कर बोले--"क्या है रे? तू मेरे जीते-जी ही सुबह-सवेरे मुझे रोने क्यों बैठ गया है?"

दहशत के मारे जैसे सुकान्त के मुंह से कोई शब्द नहीं निकला। इस पर प्रशान्त बाबू ने फिर डपटकर कहा--"क्या बात है, बोलता क्यों नहीं? जब मुझे टोक ही दिया है, तो बताता क्यों नहीं कि क्या बात है?"

"मैं आज स्कूल नहीं जाऊंगा।"--रोनी-सी आवाज में सुकान्त बोला--"कल मास्टर ने मेरे कपड़े गन्दे होने के कारण मुझे क्लास से निकाल दिया था। सब लड़के भिखारी-भिखारी कह कर मेरी हंसी उड़ाते हैं।"

प्रशान्त बाबू का पारा थोड़ा नीचे उतरा। उन्होंने देखा कि सुकान्त के शरीर पर जो बनियान और निकर हैं, वे सचमुच बड़े मैले हो गए हैं। उन्होंने आश्वासन भरे स्वर में कहा--"तो सीधी तरह क्यों नहीं कहता? कल तो याद नहीं रहा, आज तेरे लिए कपड़े जरूर लेता आऊंगा।"

यह कह कर प्रशान्त बाबू चलने को तैयार ही हुए थे कि नीचा सिर किए खड़े सुकान्त ने फिर कहा--"बाबा।"

किंचित आश्चर्य से उसकी ओर देखते हुए प्रशान्त बाबू ने कहा--"अब और क्या बात है?"

उसी गिड़गिड़ाने के स्वर में सुकान्त बोला--"स्कूल में छुट्टी के घंटे में मुझे मूड़ी खाते देखकर सब लड़के चिढ़ाते हैं। एक पैकेट बिस्कुट का भी ला दें। मैं वादा करता हूँ कि रोज दो से ज्यादा बिस्कुट कभी नहीं खाऊँगा, हाँ।"

प्रशान्त बाबू का चेहरा मुरझा गया। दफ्तर जाते वक्त बच्चे ने यह कह कर उनके मन को फिर कचोट दिया था। पर अपनी आर्थिक दुरवस्था की बात वे इस नन्हे को कैसे समझाते? इसीलिए कभी झूठ बोलकर और कभी डाँट-डपटकर वे सुकान्त को चुप कर देते थे। पर यह भी आखिर कब तक चल सकता था? सो आज वे उबल ही तो पड़े--"देख सुकान्त, तुझे दूसरों की नकल नहीं करनी चाहिए। अगर कोई हाथी-घोड़े या मोटर पर चढ़कर आए, तो क्या तू भी वैसा ही करेगा? मेरे जैसा मामूली क्लर्क, जो दोनों जून अपना और अपने परिवार का पेट भरने की क्षमता नहीं रखता, भला तुझे राजकुमार की तरह कैसे खिला-पहना सकता है?"

फिर न जाने क्या सोचकर उन्होंने सिसकते हुए सुकान्त के सिर पर धीरे-धीरे हाथ फेरा और उसे भीतर जाकर स्कूल जाने के लिए तैयार होने को कह वे दफ्तर की ओर चल पड़े।

जब प्रशान्त बाबू के पाँव की आहट विलीन हो गई, तो सुकान्त ने सिसकना बन्द कर दोनों हाथों से अपनी आँखों के आँसू पोंछे और घर के भीतर जाने को सिर ऊपर उठाया ही था कि उसे अपने सामने चॉकलेट का एक चमचमाता हुआ पैकेट दिखाई पड़ा। उसे जैसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। कुछ और सिर ऊपर उठाकर उसने देखा कि एक जवान भिखारी हाथ आगे बढ़ा कर उसे वह पैकेट दे रहा है। उसकी आँखों में एक अजीब-सी स्नेहसिक्त चमक थी और चेहरे पर चाँदनी-सी शीतल मुस्कराहट। कोमल स्नेहिल स्वर में उसने कहा--"लो, यह तुम्हारे लिए ही है।"

"नहीं, मैं वैसे नहीं लूंगा। यह कितने पैसे का है?" सुकान्त ने पूछा।

"पैसे की भला क्या बात? मैं कोई चॉकलेट बेचने वाला थोड़े ही हूँ?"

"तो तुम कौन हो?"

"मैं हूँ परियों के देश का राजा, जो भिखारी का भेष बनाकर तुम्हारी यह दुनिया देखने को निकला हूँ। और तुम हो मेरे राजकुमार।"

"मैं और राजकुमार?"--सुकान्त रुआंसा होने पर भी हँस पड़ा। बोला--"अरे, तुम कहीं पागल तो नहीं हो गए हो?"

"नहीं राजकुमार, मुझे गलत न समझो।" और यह कह कर उसने अपने कन्धे से लटके झोले में से एक खिलौना निकाला और उसमें चाबी भर कर सुकान्त के पाँवों के पास छोड़ दिया। सुकान्त ने देखा कि एक मोटे तार पर आगे-आगे एक चूहा भाग रहा है और उसके पीछे-पीछे एक बिल्ली दौड़ रही है; पर चूहे को वह पकड़ नहीं पा रही।

खिलौना देख कर सुकान्त एक बारगी ललक उठा। उसने बन्द होने से पहले ही खिलौना उठा लिया और गद्गद् होकर बोला--"अरे वाह! ऐसा खिलौना तो मैंने आज तक देखा ही नहीं! यह कितने का..?"

इसी समय भिखारी ने अपने झोले में से रंग-बिरंगे चमकीले कागजों में लिपटे टॉफी और लेमनजूस के कई टुकड़े निकाल कर उन्हें सुकान्त की ओर बढ़ाते हुए कहा--"लो इन्हें खा लेना और तुम जिस खिलौने की इतनी तारीफ कर रहे हो, वह तो कुछ भी नहीं। हमारे परीलोक में तो इससे कहीं बढ़-चढ़ कर बड़े-बड़े नए नवाढ़ खिलौने हैं।"

सुकान्त की बाँछें खिल गईं। उसने उत्सुकतापूर्वक पूछा--"तो क्या तुम मुझे दिखा सकते हो अपना वह परीलोक?"

"छिः छिः, तुम भी क्या नासमझी की बातें कर रहे हो, राजकुमार?" भिखारी ने बड़े नाटकीय ढंग से बनावटी नम्रता के साथ कहा--"अरे, वह तो है ही तुम्हारा। मैं तो तुम्हारा चाकर ठहरा। जो हुकुम करो, करने को तैयार हूँ।"

"तो चलो मैं तुम्हारा वह परीलोक देखना चाहता हूं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों हाथ जोड़ और सिर झुका कर बड़े विनीत भाव से भिखारी ने कहा--"जो आज्ञा राजकुमार। तो चुपचाप मेरे पीछे-पीछे चले आओ। बीच में कहीं भी न रुकना और न किसी से कुछ कहना।"--यह कह कर भिखारी एक ओर चल पड़ा।

"हाँ, हाँ, चलो।"--कहकर सुकान्त भी उसके पीछे-पीछे चल पड़ा।

(२)

न जाने कितनी गली-रास्ते पार कर तथा मुड़-मुड़ा कर सुकान्त को लिए वह भिखारी शहर की बस्ती से बाहर एक बड़े मोटर-गैरेज के सामने आकर रुका जहाँ पुरानी और टूटी-फूटी कई मोटरें पड़ी थीं। कहीं तारों की जालियाँ थीं, तो कहीं कँटीले तारों के बड़े-बड़े लच्छे पड़े थे। सब पर जमी जंग की मोटी परत से प्रकट हो रहा था कि बरसों से ये चीजें बिना साज-सम्भाल के यहीं पड़ी हैं। अभी हक्का-बक्का होकर सुकान्त इन्हें देख कर समझने की कोशिश ही कर रहा था कि यह भला कैसा परीलोक है कि साथ आए भिखारी ने कसकर उसका एक हाथ पकड़ा और भीतर घसीटते हुए रुखाई से बोला--"भीतर चल।"

इससे चौंक कर ज्यों ही सुकान्त ने एक सहमी हुई-सी नजर उसके चेहरे पर डाली कि वह डर से सिहर उठा। कुछ ही क्षण पहले मुस्कराकर मीठी-मीठी बातें बनाने वाले और उसे राजकुमार के आदरपूर्ण नाम से पुकारने वाले भिखारी के चेहरे पर अब कठोरता और क्रूरता नृत्य कर रहे थे और उसकी आँखों में जैसे शैतान उतर आया था। वह कहता भी तो क्या और किससे? आस-पास कोई आदमी भी तो न था।

उन पुरानी मोटरों और तारों के बीच में से मुड़ते-मुड़ाते आखिर वे लोग गैरेज से सटे एक दालाननुमा स्थान के सामने आ निकले, जहां चारों ओर से बन्द होने के कारण धौली दोपहरी में भी काफी अँधेरा था। एक कोने में बने एक ताक में रखी एक ढिबरी जल रही थी। जब दोनों उसके द्वार पर रुके, तो एक आदमी और एक औरत एक युवती के शरीर पर के कपड़े फाड़ और उसके बालों में धूल डाल रहे थे और वह हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ा रही थी--"बस, बस, बहुत हो गया। इतने कपड़े फाड़ देने से तो मैं एकदम नंगी दिखने लगूंगी न।"

और पास खड़े पुरुष ने, जो लँगड़ा कर आगे-पीछे बढ़ रहा था, उसके मुंह पर एक चपत रसीद करते हुए झिड़क कर कहा--"तो इसमें हर्ज ही क्या है? जवान औरत का नंगापन देखकर ज्यादा भीख मिलती है, पगली! आखिर शौकीन बाबू लोग कोई सिर्फ दया या धर्म से पसीजकर ही भीख थोड़े ही देते हैं!"

औरत ने नीचे झुक कर एक कटोरे से थोड़ा-सा कालौस-मिला तेल लिया, उसे अपनी दोनों हथेलियों पर फैलाया और फिर युवती के चेहरे पर इस तरह मल दिया कि देखते ही देखते उसका सुन्दर साँवला चेहरा काला-कलूटा और डरावना हो गया।

लँगड़े व्यक्ति ने एक तोलने की दृष्टि से उसके चेहरे को देखा और फिर तेल से सना एक मैला कपड़ा लेकर जहाँ-तहाँ से कालौंस पोंछता हुआ बोला--"इस मंगती को भी न जाने कब अक्ल आएगी। अरे, इतनी कालौंस से तो यह बिल्कुल बनावटी दिखने लगेगी। मेकअप तो इतना सूक्ष्म होना चाहिए कि स्वाभाविक-सा लगे और नजदीक से भी दर्शकों की आँखों में आसानी से धूल झोंकने में कामयाब हो सके।"--और यह कह कर उसने युवती के गाल पर एक चिकोटी भरी और ही-ही कर हँस पड़ा।

सुकान्त के साथ आए भिखारी ने आगे कदम बढ़ा कर डपटने के स्वर में कहा--"क्यों बे लंगड़दीन, यह क्या हो रहा है? यह अभी तक भीख माँगने गई नहीं?"

लँगड़े ने सहसा सहम कर कहा--"इसमें मेरा कोई कसूर नहीं, उस्ताद। सरदार ने इसे अभी थोड़ी देर पहले ही तो छोड़ा है। जब-जब मैं बुलाने गया, तो मुझे झिड़क दिया कि इसकी तो शाम की पाली है, अभी से जल्दी क्यों मचा रहा है?"

"हूँ" कहकर उस्ताद ने अपनी आँखें ऊपर उठाईं। ऊपर की कोठरी का दरवाजा अधखुला था और वहाँ से रह-रह कर हा-हा, ही-ही, ठहाके और डपटने के स्वर आ रहे थे। इसी समय लँगड़े ने उस्ताद के जरा पास आकर धीरे से कहा--"कल रात जो दो नई छोकरियाँ आई हैं न, सरदार उन्हीं को लेकर पागल हो रहा है। मैंने पूछा कि सरदार आज बाहर नहीं निकलोगे क्या, तो बोला कि नहीं, तुझे मेरे ऐश से डाह क्यों होती है रे? अब तुम्हीं बताओ उस्ताद, भला मुझे क्यों डाह होने लगी उससे, हाँ।"

"अच्छा, अच्छा, तू अपना काम कर।"--बात टालने के स्वर में उस्ताद ने कहा--"और हाँ, इसकी गोद में देने को बच्चे का क्या हुआ?"

"वह सब इन्तजाम हो गया है, उस्ताद।"--लँगड़ा सहज भाव से बोला।

इसी समय मँगती ने कपड़े में लिपटा एक बच्चा, जिसका सिर्फ मुंह-भर ही खुला था, उठाकर युवती को देते हुए कहा--"देख भीख माँगते समय आँखों में आँसू भर कर इसका सिर्फ मुंह-भर खोल कर दिखाना। बाकी हिस्सा अगर किसी ने देख लिया, तो समझ जाएगा कि बच्चा मरा हुआ है, हाँ।"

"क्या कहा? बच्चा मरा हुआ है?"--उस्ताद ने कड़क कर पूछा।

"हाँ, उस्ताद।"--सकपकाकर मँगती ने कहा--"जब लँगड़े को कोई जिन्दा बच्चा न मिला, तो मैं मसान से इसी को चुरा लाई। पर उस्ताद, इसकी सिर्फ पलकें ही तो नहीं झँपती, बाकी चेहरे-मोहरे से देखने में तो यह बिल्कुल जिन्दा-सा लगता है।"

"लगे, लेकिन अगर कोई बच्चे को देखकर भी भीख न दे, तो नाखून चुभाकर या हाथ-टाँग मरोड़ कर बच्चे को रुलाना भी तो पड़ता है। इसीलिए बच्चे का जिंदा होना ही जरूरी है।"

कुछ क्षण सब चुप रहे। फिर उस्ताद ने लंगड़े को सम्बोधित करके कहा--"तू बड़ा कामचोर होता जा रहा है रे। शायद गया ही नहीं होगा कहीं।"

"नहीं उस्ताद! आपकी कसम, मैंने तलाश करने में कोई कसर नहीं रखी।"

"कसर नहीं रखी?"--मुंह बिराकर उस्ताद बोला--"यह मैं हर्गिज नहीं मान सकता। अरे, बड़े-बड़े घरों और अस्पतालों के सामने पड़े कूड़े के टबों में रोज नाजायज तौर पर पैदा हुआ एकाध बच्चा तो जरूर ही पड़ा मिलता है। तू पता नहीं कहाँ झक मारता रहा? तू भी कहीं झींक रहा होगा अपना भाग्य किसी छोकरी को लेकर। मुफ्त का जो माल ठहरा!"

यह कह और बिना लँगड़े के उत्तर की प्रतीक्षा किए उस्ताद ने आगे बढ़कर युवती की गोद में लिए मुर्दा बच्चे को नजर भरकर देखा और फिर अपने बांए हाथ से उसकी ठोड़ी ऊपर उठाकर कहा--"लगती तो तू बिल्कुल इसकी माँ जैसी ही है। पर देख जरा आँखों में आँसू लाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कराहती-सी आवाज में ही भीख माँगना। और इसे पल-भर दिखा कर फिर इसके मुंह पर कपड़ा ढक देना। नहीं तो सारी पोल खुल जाएगी, हाँ।" फिर उसके कँधे पर थपकी देते हुए बोला--"अच्छा जा, भगवान तेरी मदद करे।" और सुकान्त को अपने साथ घसीटते हुए वह आगे बढ़ गया।

दो-चार कदम चल कर उस्ताद ने सामने पड़ी एक काली-सी गठरी को ठोकर मारी। दरअसल यह गठरी नहीं, एक लड़का था जो कपड़ों के अभाव में सर्दी से बचने के लिए घुटनों के बीच सिर छिपाए सो रहा था। ठोकर खाकर अरब के जादुई पात्र की तरह वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। उस्ताद ने कड़ककर पूछा--"क्यों बे, तू अभी तक पड़ा-पड़ा आराम ही कर रहा है! गया नहीं आज?"

उस्ताद कहीं मार न बैठे, इस भय से एक हाथ सिर पर रख और गर्दन टेढ़ी कर उस्ताद की ओर तिरछी नजर से देखते हुए लड़के ने कहा--"आज सुबह से मुझे खाने को कुछ भी नहीं मिला, उस्ताद। पेट में भूख से बड़ी जलन हो रही है। भूखा कैसे जाता?"

"यह तो बड़ी अच्छी बात है!"--ठहाका मार कर क्रूर हँसी हँसते हुए उस्ताद ने कहा--"कल तू जो सिर्फ साढ़े सात आने लाया था न, यह उसी की सजा है। ठीक से काम नहीं करेगा, तो तुझे खाने को पत्थर मिलेंगे! समझा?"

पता नहीं, वह बेचारा कुछ समझा या नहीं, पर बोला वह कुछ नहीं। सुकान्त को दिखाकर आगे बढ़ते हुए उस्ताद ने कहा--"आज तेरे लिए एक नया साथी लाया हूँ। अभी तैयार किए देता हूँ इसे भी।"

फिर सुकान्त को घसीटता हुआ लेकर वह एक कोने में आया। यहाँ छत के टूटे टीन से छन कर कुछ धुंधला-सा प्रकाश पहुँच रहा था। एक बड़े-से पत्थर पर वह खुद बैठ गया और सुकान्त को सामने खड़ा कर पहले उसका बनियान और फिर निकर उतार दिए। कालौंस मिले तेल से भीगे कपड़े से उसने उसके सारे शरीर को पोता। फिर पास पड़े टेढ़े-मेढ़े मुड़े टीन के एक ढक्कन से उसने उसके गाल, ललाट और हाथों पर खरोंच के कुछ निशान बनाए, जिनमें खून चमक आया। अब सुकान्त चुप न रह सका। भय और पीड़ा से वह बिसूरने लगा। उस्ताद ने एक जोर का चपत उसके गाल पर रसीद किया और डाँटा--"देख अगर फिर मुंह से आवाज निकाली, तो जान से मार डालूंगा। समझा?" और यह कहने के साथ ही उस्ताद ने सुकान्त का बांया हाथ इस तरह मोड़ दिया कि एक कड़क-सी हुई और शायद वह कोहनी के पास से उतर भी गया। एक चीख के साथ सुकान्त जमीन पर गिर पड़ा और पानी से बाहर निकली हुई मछली की तरह तड़पने लगा। इसी समय उस्ताद ने एक तेज उस्तरे से उसके दूसरे हाथ की बिचली अँगुली का नाखून आधा कच्चा काट लिया, जिससे खून बह निकला। फिर जल्दी से उसने उस अँगुली में एक मैले-से कपड़े की पट्टी बाँध दी, जो देखते-ही देखते खून से तर-बतर हो गई। इसके बाद सुकान्त के सिर, घुटनों और पाँवों पर भी तेल से सने मैले कपड़े की पट्टियाँ बांध दी गईं और उनके नीचे तेल में घुले सिन्दूर की बूंदें इस तरकीब से टका दी गईं, जिनसे लगता था मानो पट्टियों के नीचे के घाव से खून बह रहा है।

यह करके उस्ताद पास पड़े एक सूखे चिथड़े से हाथ पोंछ और उठकर द्वार की ओर बढ़ गया। बाहर निकलने से पहले उसने मँगती से कहा--"इस नए छोकरे पर जरा नजर रखना। मैं अभी चलता हूँ। एक जरूरी काम है।" और वह बाहर चला गया।

(३)

दफ्तर से निकल कर प्रशान्त बाबू ट्राम लेने के लिए स्टॉप पर आ खड़े हुए। इसी समय पीछे से किसी ने अनुनय-भरे स्वर में कहा--"बाबू, एक पैसा। गरीब मुहताज को। भगवान तुम्हारा भला करेगा।"

पर उन्होंने सुनी-अनसुनी कर दी। आजकल कलकत्ते में हर गली रास्ते में तथा हर चौराहे और मोड़ पर इतनी बड़ी तादाद में भिखमंगे मँडराते हैं और आने-जाने वालों को भीख माँग कर सताते हैं, कि उन्होंने इस ओर कोई ध्यान देना उचित नहीं समझा। इसी समय उन्होंने देखा कि किसी की नरम अँगुलियों ने उनके पाँवों को छुआ और इसके साथ ही और फिर वही कातर स्वर सुनाई पड़ा--"बाबू, एक पैसा। गरीब-मुहताज को, सुबह से कुछ नहीं खाया है, बाबू।"

प्रशान्त बाबू के मन में तो आया कि इस तरह पीछे पड़ने वाले भिखारी को लात मार कर दूर कर दें पर उसके कंठ-स्वर ने जैसे उनकी विस्मृति के पर्दे को चीर कर एक दबी पड़ी स्मृति को उभार दिया था। काश, यह सुकान्त ही न हो। आवाज़ तो जसे उसी की-सी लगती है। और यह सोचकर उन्हें रोमांच हो आया। डरते-डरते सहमी-सी दृष्टि से ज्यों ही उन्होंने पीछे मुड़कर नीचे देखा, एक काला-कलूटा लड़का, जिसके सिर, हाथों, घुटनों और पाँवों की अँगुलियों पर तेल-सने मैले कपड़ों की पट्टियाँ बँधी थीं और मुंह पर कुछ सूजन-सी आ गई थी, अपने हाथ का टीन का डिब्बा उनके सामने बढ़ा कर बोला--"बाबू, एक पैसा। गरीब मुहताज..."

और प्रशान्त बाबू को अपनी ओर ताकता देख सहसा वह कहते-कहते रुक गया। प्रशान्त बाबू ने उसे ज़रा और झुक कर पूरे ग़ौर से देखा। उनके मुंह से हठात निकल पड़ा--"सुकान्त, मेरा बेटा।"

लँगड़े भिखारी का अभिनय करने वाले उस लड़के ने एक क्षण आश्चर्य और भय-मिश्रित दृष्टि से प्रशान्त बाबू की ओर देखा और फिर हाथ का टीन एक ओर फेंक उठकर तेजी से भाग चला। यह देख प्रशान्त बाबू चिल्ला उठे--"पकड़ो, पकड़ो। यह मेरा लड़का सुकान्त है। अरे, कोई पकड़ो, पकड़ो।"

इस समय चारों ओर आने-जाने वालों की भीड़ इतनी थी कि किसी का भागकर ज्यादा दूर जाना संभव ही नहीं था। अतः एक आदमी ने 'पकड़ो-पकड़ो' का शब्द सुन कर भागते हुए लड़के को पकड़ ही तो लिया और मजबूती से उसका हाथ पकड़कर प्रशान्त बाबू के पास लाते हुए कहा--"क्या आपकी क़लम लेकर भागा यह शैतान या बटुआ?"

और प्रशान्त बाबू कुछ कहें, इससे पहले ही आस-पास खड़ी भीड़ द्वारा उस लड़के पर लात-घूंसे बरसने लगे। अपने दोनों हाथों से घेर कर बच्चे को बचाते हुए उन्होंने कहा--"अरे नहीं महाशय, इसने मेरा कुछ भी नहीं चुराया। यह तो मेरा लड़का सुकान्त है, जो कई महीनों पहले खो गया था।"

प्रशान्त बाबू की बात सुनकर सब हक्के-बक्के रह गए। अब तक वहाँ काफ़ी लोगों की भीड़ जमा हो गई थी। इसी समय एक पुलिस का सिपाही उधर आ निकला। भीड़ को संबोधित कर आगे बढ़ते हुए वह बोला--"यह भीड़ काहे को लगा रखी है आप लोगों ने? देखते नहीं रास्ता जाम ...." और प्रशान्त बाबू को एक भिखारी लड़के का हाथ पकड़े देखकर सहसा वह रुक गया। फिर उत्सुकतापूर्वक उसने पूछा--"क्या बात है, बाबूजी? क्या इसने आपकी जेब काटी है? आजकल ये साले..."

"अरे, नहीं, नहीं।" जल्दी से उसकी बात काटकर प्रशान्त बाबू बोल पड़े, "यह मेरा लड़का सुकान्त है, जो कुछ महीने पहले खो गया था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुलिस वाले ने आगे बढ़ कर लड़के का हाथ अपने हाथ में थामते हुए कहा--"तब तो आपको मेरे साथ थाने चलना होगा।"

और बिना कुछ कहे प्रशान्त बाबू उसके साथ हो लिए। थाने में पहुंचकर सुकान्त ने अपनी सारी आपबीती कह सुनाई। पर कलकत्ते के गली-रास्तों से अपरिचित होने के कारण वह लड़के-लड़कियों तथा स्त्री-पुरुषों को पेशेवर भिखारी बनाने वाले उस अड्डे का ठीक-ठीक पता-ठिकाना न बता सका। आखिर पुलिस ने यही तय किया कि रात को ९½ बजे जब उस्ताद उसे लेने आए, तब वह उसे काबू में करे। अतः उसने सुकान्त को फिर चौरंगी के फुटपाथ पर उसके निश्चित स्थान पर ले जाकर छोड़ दिया और उसे भीख माँगते रहने की ताकीद कर सादे कपड़ों में कुछ पुलिस वाले इधर-उधर छिप गए।

ज्यों ही घड़ियाल में साढ़े नौ का घंटा बजा कि उस्ताद सुकान्त की ओर बढ़ता हुआ दिखाई दिया। उसके पास आकर वह रुका। झुककर उसने सुकान्त के हाथ का टीन लेकर उसमें देखते हुए पूछा--"आज कितना कमाया?" और सुकान्त कुछ कहे, इससे पहले ही उसने टीन के पेंदे में चमकने वाले दो-चार छोटे सिक्कों को देखकर एक लात जमाई सुकान्त की पीठ पर और डपटकर कहा--"क्यों बे बेईमान, क्या यही है आज दिन-भर की कमाई? या तू भी चोरी करना सीख गया है?"

रोज की तरह आज सुकान्त न तो रोया और न गिड़गिड़ाया। उसने दोनों हाथों से कस कर उस्ताद का एक पाँव पकड़ लिया। उसके इस अप्रत्याशित व्यवहार पर अभी उस्ताद अपनी हैरत या गुस्सा भी प्रकट नहीं कर पाया था कि चारों ओर से पुलिस वालों ने आकर उसे घेर लिया।

पुलिस ने लाख चेष्टा की, पर उस्ताद ने पेशेवर भिखारी बनाने के अड्डे का अता-पता कुछ भी नहीं बताया। आखिर उसे एक नाबालिग बच्चे को भगाने और उसे क्रूर उपायों से पेशेवर भिखारी बनाने के जुर्म में सख्त कैद की सजा दी गई।

सजा सुनाए जाने के बाद जब पुलिस उसे अपनी काली गाड़ी में चढ़ाकर जेल ले गई, तो बाहर दरवाजे से सटे उसके सहयोगी मँगती और लँगड़ा भी खड़े थे। पर उसने उनकी ओर इस तरह देखा, मानों उन्हें पहचानता ही न हो। जब पुलिस उसे ले गई, तो लँगड़ा और मँगती भी वहाँ से हट गए। फिर वहाँ से लौटते समय लँगड़े ने खुश होते हुए कहा--"भई, उस्ताद भी आदमी है कैंडे का! उसकी तारीफ़ करनी ही पड़ेगी।"

"क्या खाक तारीफ़ करनी पड़ेगी?" जरा विरसता से मँगती ने कहा--"सजा तो हो ही गई।"

"सो भले ही हो जाए।" लापरवाही से लँगड़े ने कहा "उसमें क्या है, थोड़े दिन बाद छूट आएगा। जेल में खाने-पीने की तो कोई तकलीफ़ है नहीं। पर मैं तो यह कह रहा था कि उसने पकड़े जाने के बाद से और सजा सुनाए जाने के बाद तक पागल और गूंगे का जो सफल अभिनय किया, वह कमाल का था। अगर कहीं सारी बातें बता देता, तो जरा सोच, तेरा-मेरा क्या हाल होता?"

"हाँ, यह बात तो जरूर कमाल की रही"--कहकर मँगती ने एक अर्थ-भरी दृष्टि से लँगड़े की ओर देखा और दोनों ठहाका मार कर हँस पड़े।

उड़िया कविता

गीत

नित्यानन्द

जब समागम हुआ जीवन में यौवन का मेरा
नहीं मानस मेरा वश में था,
जिस मधुर लग्न में हुआ साक्षात उनसे,
क्या उनका भी अवसर था?
वह मुखावलोकन अमृत मय, वह तूलि रंजित
अरुण फल्गु की अरुणिमाएं
होरी फागुन की सज्जित की संगोपन में,
प्रथम गुलाल रंजित की रक्तिमाएं
जीवन वेला में मेरे प्रणय की फेनिल लहरें,
उठा था नाच अन्तर मेरा।

आशा ले मिलन की शान्त मलय--
बोला था कुछ कानों में मेरे
अनजाने से सृजित हो उठीं जीवन के तट पर
कितनी प्रणय की मीनारें मुग्ध,
उठे नाच वन में, उपवन में, किसलयों में,
उठे समन स्वर्णिम खिल स्निग्ध,
यह संसार पूति गन्ध-मय पलभर में सुवासित हो,
सृजन क्या आत्महरा ही सदैव?
टूटे जब सपने मेरे; तुम तो थे नहीं,
थे गए कहां? दुःख दे अभिनव!

अनुवादकः श्रीनिवास उद्गाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'श्रीकान्त' की पृष्ठभूमि—मुज़फ़्फ़रपुर

राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह

कवि के सम्बन्ध में यह उक्ति कि 'कवयः किं न पश्यन्ति, किं न भक्षयन्ति वायसाः' कवि के कल्पना-लोक में विचरने की ओर इशारा करती है। और यह सही है कि अपनी कल्पना से ही कवि बहुत सी बातों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है और शायद इसीलिए महाकवि शेक्सपियर ने कवि और पागल को एक ही दर्जे में रख कर कहा है कि ये दोनों ही कल्पना से भरे होते हैं।

कथा और उपन्यास का निर्माता भी कल्पना से काम लेता है, पर उसमें और कवि में बड़ा अन्तर है। कवि अपने घर के किसी कोने में बैठा हुआ—यहाँ तक कि गिरिकन्दरा में रह कर भी, काव्यसृष्टि कर लेता है, पर एक सफल उपन्यासकार के लिए यह आवश्यक होता है कि वह जीवन के हर प्रकार के अनुभव प्राप्त करे, संसार के विभिन्न प्रकृति के लोगों से मिले, बाजार के धक्के खाए, समाज के उस जीवन तक से सम्बन्ध स्थापित करे जिसे आमतौर से गर्हित—गिरा हुआ माना जाता है। यही नहीं, यदि उसे इसका वास्तविक अनुभव प्राप्त करना है तो स्वयं कुछ दिनों के लिए वैसा ही जीवन बिताना भी कभी उसके लिए आवश्यक हो सकता है, जैसा कि 'यामा दि पिट' के सुप्रसिद्ध लेखक कुप्रिन ने किया था। तभी एक लेखक समाज के हर पहलू का सही चित्रण कर सकता है, उपन्यास के पात्र-पात्रिओं का सही खाका खींच सकता है, उनका यथार्थ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा चरित्र-चित्रण कर सकता है, समाज की रूप-रेखा को सही तौर पर अंकित कर सकता है, अन्यथा उसकी कृति और वास्तविकता में, कृति में चाहे कितनी भी रोचकता क्यों न हो, कोसों की दूरी रह जाएगी, और उसकी कलम से जो गौहरे-मजमूं निकलेंगे, वे बे-आबदार होंगे। इस तरह स्थायी साहित्य के निर्माण करने में वह असमर्थ रहेगा। उसकी वही दशा होगी जो जन-जीवन से दूर रहने वाले नेता की होती है।

इस तथ्य को पूरी तरह हृदयंगम करने वालों में थे शरत बाबू, जिन्हें आज इस देश के उपन्यासकारों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। अपनी जवानी के दिनों में उन्होंने इतने तरह के अनुभव प्राप्त किए कि आश्चर्य होता है: साधु-सन्तों का साथ किया, भांग-गांजा पिया, जमींदार-मित्रों के साथ बन्दूक से शिकार खेला, महफिलों में रातें बिताईं, शराब पी, वेश्याओं की सोहबत की, ताश और चौपड़ के खेल में दिन-दिन भर बिताया, निशिद्ध प्रेम-बन्धन में पड़े, माशूका के लिए लड़ाई की, आधी रात के घनान्धकार में श्मशान की यात्रा की—ग़रज यह कि जिसे अंग्रेजी में बोहेमियन जीवन कहते हैं, उसे पूरी तरह बिताया। और इसका ही यह परिणाम है कि उनके उपन्यास के पात्र इतने सजीव मालूम पड़ते हैं, कि जिनके संग रोजमर्रा के जीवन में हमारा साथ हुआ करता है। किस परिस्थिति में मनुष्य के हृदय में कैसी भावनाएँ उठती हैं, इसका यथार्थ चित्रण हमें उनके उपन्यासों में मिलता है।

शरत बाबू के बोहेमियन जीवन का आरम्भ भागलपुर—जहाँ वे पाले-पोसे गए—से होता है, पर इसकी पूर्णता होती है मुज़फ़्फ़रपुर में जहाँ पूरे तीन वर्ष उन्होंने परकीया-प्रेम, शराब और शिकार में बिताए।

१९०१ में सर्वप्रथम वह मुज़फ़्फ़रपुर में आए, वह भी एक विचित्र परिस्थिति में। भागलपुर में एक लड़की थी, जिससे वह प्रेम करते थे। पर वह प्रेम करने लगी आबकारी के एक दरोगा के साथ। उसी के संग वह भागलपुर से मुज़फ़्फ़रपुर भाग आई। उसका पीछा करते हुए शरत बाबू मुज़फ़्फ़रपुर पहुंचे। यहाँ वह अपने परिचित निशाबाबू के घर पर रुके। निशाबाबू बंगला भाषा की प्रसिद्ध उपन्यास लेखिका अनुरूपा देवी के देवर थे। अनुरूपा देवी के साथ शरत बाबू का पहला साक्षात्कार यहीं हुआ। काफी दिनों तक वह उनके घर पर रहे, फिर एक 'मेस' में चले गए, जो चन्दर बाबू नामक एक व्यक्ति के दवाखाने के सामने पड़ता था और जिसमें तार और पोस्ट आफिस के बाबू (क्लर्क) रहा करते थे।

मुज़फ़्फ़रपुर पहुँच कर वह कई दिनों तक अपनी प्रेमिका की तलाश में घूमते रहे, अन्त में उसका पता पाया पर उसे लेकर पूर्वोक्त दरोगा के साथ उनकी भिड़न्त हो गई। और वह उसे वापस लाने में सफल नहीं हो पाए।

उन्हीं दिनों मुज़फ़्फ़रपुर में एक नवयुवक जमींदार रहा करता था, महादेव साहु, जिसकी उम्र अठारह साल की थी। उसकी संगत अधिकतर शहर के बंगाली युवकों के साथ थी। स्वयं बंगला लिखना-पढ़ना, उन्हीं जैसी पोशाक पहनना उसने अच्छी तरह सीख लिया था और उन्हीं बंगाली लड़कों के द्वारा शरतबाबू से उसका परिचय हुआ। फिर तो वे दोनों ऐसा घुल-मिल गए कि खाना-पीना, सोना, सभी एक साथ होने लगा। शराब पीना, वेश्यागमन, आदि सभी में दोनों मित्र एक-दूसरे का साथ देने लगे। क्रमशः महादेव साहु की अपनी पत्नी से अनबन हो गई और उसके यहाँ सारी रात महफिलें बैठने लगीं। उसका घर शहर की तवायफों का अड्डा बन गया। पिता कुछ ही वर्ष पहले अच्छी जमींदारी और कई लाख रुपए छोड़ कर मरे थे। बस, वे रुपए पानी की तरह बहने शुरू हुए।

महादेव साहु पर शरत बाबू का इतना रोब बैठ गया कि वह जो कुछ कहते, उसके लिए वह ब्रह्म-वाक्य हो जाता। 'शरत-दादा' उसके सबसे बड़े आदर्श बन गए। शरत बाबू उन दिनों अनीश्वरवादी थे, महादेव को वह हमेशा यही समझाते कि ईश्वर नाम की कोई वस्तु नहीं है। महादेव भी 'शरत दादा कहते हैं कि ईश्वर नहीं है' कह कर ईश्वर के अस्तित्व पर सन्देह करने लगा और पूरा नास्तिक बन बैठा। इस बात को लेकर परिवार वालों से उसका काफी खिचाव हो गया।

महादेव साहु और शरत बाबू की घनिष्टता उत्तरोत्तर वृद्धि पाती गई। शहर में चारों ओर उसकी चर्चा होने लगी कि भागलपुर से आया हुआ एक बंगाली युवक महादेव को बरबाद कर रहा है। पर इसका उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारस्परिक सम्बन्ध पर कोई असर न हुआ। संयोगवश दोनों के रंग-रूप में भी घनिष्ठ सादृश्य था और देखने में ऐसा लगता कि मानो दोनों एक ही माता-पिता की सन्तान हों।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, महादेव साहु का घर दिन-रात सारंगी के स्वर तथा तबले की ठमक से निनादित रहने लगा, तवायफ, नाच-गाना, शराब--इन्हीं में महादेव तथा उसके साथियों का सारा समय व्यतीत होता था। पुटी नाम की एक सुन्दर वेश्या थी। बहुधा वे दोनों उसके घर पर रातें बिताया करते थे।

शरत बाबू के अंतरंग साथियों में एक समवयस्क ब्राह्मण कुमार था --राधाकान्त। वह रहने वाला मुज़फ़्फ़रपुर जिले ही के एक गाँव बाजितपुर का था, जिसकी मृत्यु अभी पिछले दिनों सत्तर साल की उम्र में हुई।

उन दिनों की चर्चा वृद्ध राधाकान्त कुंअर बड़े विस्तार तथा उमंग के साथ किया करते थे।

महादेव साहु के एक अन्य साथी श्री प्रमथनाथ राय ही अब जिन्दा बच रहे हैं, जिनकी उम्र अस्सी के किनारे लग चुकी है, जिनसे शरत बाबू के मुज़फ़्फ़रपुर जीवन-सम्बन्धी बातों का प्रमाणिक तौर पर पता लगता है।

महादेव साहु को शिकार का शौक था। बहुधा वह तथा उसके साथी जिनमें शरत बाबू भी हुआ करते थे निकटवर्ती 'भरथुआ चौर' (झील) में जल-बतख़ों के शिकार के लिए जाया करते थे।

इन सारी बातों के बावजूद भी शरत बाबू की प्रतिभा धीरे-धीरे प्रस्फुटित होने लगी। अक्सर शराब की बोतल लेकर वह स्थानीय सरिता के तट पर एकाकी चले जाते और घण्टों वहीं बैठे हुए लिखा करते थे। लिखित चीजों में कहानियाँ, उपन्यास, व्यक्तियों के स्केच होते थे। महादेव साहु के घर पर विभिन्न प्रकार के लोग उपस्थित होते। कुछ तो रंगरेलियों में शामिल होने वाले होते थे और कुछ जमींदारी के काम-काज के सिलसिले में आते थे। शरत बाबू तो वहाँ रहा ही करते थे, आगन्तुकों की पूरी दिनचर्या को वह बड़े गौर से देखते, उनकी बातें सुनते तथा उनके चले जाने पर उनके स्केच लिख-लिख कर साथियों को सुनाते थे, जो रसिकता से परिपूर्ण होते थे। साथ ही उनमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का काफी पुट रहता था। ऐसे लेखों से भरे हुए कई ट्रंक वह अपने साथ मुज़फ़्फ़रपुर से जाते समय लेते गए थे। चरित्र-चित्रण की उनकी योग्यता तब तक काफ़ी विकसित हो चुकी थी।

शरत बाबू को संगीत का ज्ञान भी था। वह क्लेरियोनेट बड़ी दक्षता से बजाया करते थे और सुनने वालों को मुग्ध कर लेते थे।

उन्हीं दिनों उनका परिचय एक सौन्दर्यमयी महिला के साथ हुआ, जो आगे चलकर उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'श्रीकान्त' की मुख्य पात्री बनी। वह थी राजबाला, जिसका 'श्रीकान्त' में राजलक्ष्मी के नाम से उल्लेख है। यद्यपि यह सच है कि उन्हीं दिनों मुज़फ़्फ़रपर में महादेव साहु की रंग-महफिलों में शामिल होने वाली एक राजलक्ष्मी नाम की गणिका से भी जो रहने वाली पटना की थी उनका परिचय हुआ जो पीछे चलकर काफी घनिष्ट भी हुआ, पर श्रीकांत की राजलक्ष्मी राजबाला ही है, पटना वाली राजलक्ष्मी नहीं। हां, पटना की राजलक्ष्मी के जीवन की कतिपय घटनाओं से उन्होंने प्रेरणा अवश्य ली, यही नहीं, उसे आगे चलकर अपने संग रक्खा भी पर इस सुप्रसिद्ध उपन्यास की मख्य पात्री का ढांचा उन्होंने राजबाला पर ही घड़ा, राजलक्ष्मी पर नहीं जो उसके जीवन से पूरी तरह वाकफियत रखने वालों को 'श्रीकांत' के पढ़ने से साफ-साफ परिलक्षित होता है। हां, एक भद्र परिवार की महिला होने के कारण नाम उन्होंने राजबाला का न रखकर राजलक्ष्मी का ही रक्खा।

राजबाला मुज़फ़्फ़रपुर के एक चिकित्सक, न्यू-डिस्पेंसरी नामक एक एलोपैथिक औषधालय के मालिक, चन्दर बाबू की पत्नी थी। उसका वंश-परिचय भी एक रोमान्टिक कहानी है। जो इस प्रकार है :

हाजीपुर मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले का एक नगर है, जो नारायणी नदी के तट पर बसा हुआ है। पटना से रेल की जो लाइन मुज़फ़्फ़रपुर जाती है वह इस नगर से होकर गुज़रती है।

हाजीपुर में एक बंगाली वकील रहा करते थे, जो नियमानुसार सन्ध्याकाल में हाजीपुर रेलवे स्टेशन पर सैर-सपाटे को जाया करते थे। एक दिन जब वह प्लेटफार्म पर विचर रहे थे, उन्होंने एक बंगाली दम्पती को ट्रेन से उतरते देखा। ट्रेन चली गई, पर वे दोनों वहीं खड़े रहे। वकील साहब को उनका परिचय प्राप्त करने की उत्कंठा प्रबल हो उठी और उन्होंने उनसे जाकर उनका नाम-धाम और हाजीपुर आने का उद्देश्य पूछा। पत्नी चुप रही, पर पति ने कहा कि हम बंगाल के रहने वाल हैं, कलकत्ता स यहाँ वायु-परिवर्तन के लिए आए हैं, बड़ी कृपा हो यदि आप अपने पास हमें शरण दें। वकील साहब ने इस प्रार्थना को मंजूर कर लिया तथा उन्हें अपने घर पर ले आए। वकील साहब के साथ वे ठहरे। पति देखने म दुबला-पतला पर गौरवर्ण था, पत्नी मोटी, सांवली पर यौवनसम्पन्ना थी।

दो-चार दिनों के बाद पति महोदय एकाएक कहीं चले गए, फिर लौट कर न आए। पत्नी अकेली रह गई।

अब सुनिए ये कौन थे।

स्त्री कलकत्ता के एक तत्कालीन ख्यातिप्राप्त वकील की पुत्र-वधू थी। पुरुष एक छोटा-मोटा व्यापारी था, जिसके संग मोहब्बत में पड़कर वह भाग आई थी। न तो वह उसकी पत्नी थी, न वह उसका पति। जिस तरह भौंरा कभी किसी एक पुष्प के संग नहीं रहता, उसी तरह कामी पुरुष भी किसी एक स्त्री से नहीं बंधे रहते। सो कुछ दिनों के बाद वह पुरुष अपनी कामपिपासा पूरी कर, वहाँ से चलता बना। स्त्री वकील साहब के जिम्मे पड़ी। वकील साहब ने उससे शादी कर ली और उससे उन्हें छः सन्तानें हुईं--दो पुत्र और चार पुत्रियाँ। इन्हीं चार पुत्रियों में एक राजबाला थी।

कुछ दिनों के बाद वकील साहब अपने इस परिवार को लेकर मुज़फ़्फ़रपुर चले आए और वहीं प्रैक्टिस शुरू कर दी।

लड़कियाँ सयानी हुईं। उनके विवाह का प्रश्न उनके सामने आया।

उन्हीं दिनों मुज़फ़्फ़रपुर के मशहूर दवाखाने 'दि चीप डिसपेंसरी' का एक कम्पाउन्डर गिरीश दवाखाने से अलग हो गया और उसने 'दि न्यु डिसपेंसरी' नामक एक दवाखाना खोला। इसके कुछ ही दिनों के बाद वह अपने घर (कहीं बंगाल में) गया, पर दवाखाने की चाबी वकील साहब के पास छोड़ गया। घर जाकर उसकी मृत्यु हो गई। उसका कोई वारिस नहीं था, अतएव दवाखाना बन्द पड़ा रहा।

तभी चन्दर नाम का एक व्यक्ति वीरभूम ज़िले से मुज़फ़्फ़रपुर आया तथा वकील साहब के पास ठहरा (ऐसा लगता है कि वकील साहब का घर भी वीरभूम ज़िले ही में था)। वकील साहब ने उसकी शादी राजबाला से कर दी तथा दहेज में गिरीश का वह दवाखाना उसे दे दिया, जिसकी चाबी

(शेष पृष्ठ ४९ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नर्स, मां और शिशु

पीताम्बर पटेल

"सिस्टर, आठ नम्बर स्पेशल में बुलाते हैं।"

"सिस्टर, बारह नम्बर जनरल में चिल्ला रहा है।"

"सिस्टर, मेट्रन आप को बुला रही हैं।"

सिस्टर ! सिस्टर !!—यह सिस्टर आखिर कितनी जगह जाए ! तिस पर आज एक लड़की छुट्टी पर है, उसे फ्लू हो गया है। इससे उसका काम भी मुझे पूरा करना है। यानी स्पेशल वार्ड भी मुझे ही देखना है। काम की तो कोई चिन्ता नहीं। काम करने तो आई हूं। पर एक पूरा नहीं हो पाता कि दो नई आवाजें आ जाती हैं !

मरीज़ों को भी मैं क्या दोष दूं ? उन्हें कष्ट है, तभी तो यहां आए होंगे न ! नहीं तो अस्पताल में कौन आए ! पर अस्पताल में आते ही दर्द मिट जाए, ऐसा तो प्रायः नहीं होता। बहुत बार मेरे जी में आता है कि क्या ऐसा इन्जेक्शन नहीं बन सकता जिसे देते ही चाहे जैसा दर्द हो दूर हो जाए ! जैसे सभी ताले खोलने की 'मास्टर की' होती है।

चलूं आठ नम्बर में हो आऊं ! जाती हूं कि मरीज़ चिल्ला उठता है—

"सिस्टर, पेट में गैस भरी हुई है, बहुत ही दर्द है, कुछ इलाज करो। ओह. . . . ." और चीत्कार करता है। उसके चेहरे पर से ही लगता है कि उस के पेट में गैस ज़ोर मार रही है। दो दिन पहले ही इस भाई का एपेंडिसाइटिस का आपरेशन हुआ है। आपरेशन के बाद बहुतों को गैस की शिकायत होती है।

"भाई ! हिम्मत से काम लो मैं अभी दवा ले आती हूं। और सेक के लिए गरम पानी की थैली भेजती हूं। उससे आराम हो जाएगा।"

"कान जी ! ओ कान जी ! ·····कहां गया वह ?" ये भंगी कर्मचारी भी विचित्र हैं। ड्यूटी पर रहेंगे तो भी बीड़ियां पीते या एक साथ बैठकर गप्पें हांकते रहते हैं।

"जाओ, कान जी से कहो कि आठ नम्बर में 'वाटर बेग' दे जाए !"

हमारी मेट्रन साहेबा काफी कठोर हैं। अब तो वृद्ध हो गई हैं, इससे उनकी वृत्ति धर्म की ओर लग गई है। उनके कमरे में भगवान ईसा का वध-स्तम्भ वाला चित्र लटक रहा है। मेरी का भी चित्र है। ईसाई नर्स होती है, तो उसके लिए उन्हें काफी स्नेह रहता है। ड्यूटी निर्धारित करते समय भी वह बराबर इस बात का ख्याल रखती हैं। उन्हें जो नर्स अच्छी लगती हैं उसे वह स्पेशल वार्ड में ही रखती हैं, जहां काम कम होता है। मुझे तो इसकी भी शिकायत नहीं है। ड्यूटी तो ड्यूटी ही है, चाहे जहां रखें। हमें काम ही तो करना है ! और नर्स के लिए सभी मरीज़ समान ही होने चाहिएं।

"गुड नाइट, मैडम · · · ·" कहती हुई मैं मेट्रन के कमरे में प्रवेश करती हूं कि तभी वह बोल उठती हैं—"इन्दु ! देखो आज वह मराठी लड़की बीमार है। आज स्पेशल वार्ड और इस वार्ड में तुम अकेली ही हो। बड़ी सिस्टर से मैंने कहा है कि वह तुम्हें मदद करेंगी। ड्यूटी में जरा भी ढिलाई नहीं आनी चाहिए !"

"बहुत अच्छा सिस्टर ! मैं सब ठीक सम्भाल लूंगी। ड्यूटी के विषय में आप को कुछ कहना नहीं पड़ेगा।"

"मुझे मालूम है, तुम बहुत अच्छी लड़की हो। जाओ, अपनी ड्यूटी देखो।"

और यह कहकर अधेड़ वय की एवं स्थूल काय मेट्रन साहेबा ने कृपा बरसाती हुई मुसकराहट मेरी ओर फेंकी। नर्स बनने आई लड़कियों को प्रोत्साहित करने की हमारी मेट्रन की रीत गजब की है ! वैसे वह काफी कठोर हैं। पर अवसर मिलते ही हमारे काम की प्रशंसा करने में कुछ भी कमी उठाकर नहीं रखतीं।

अभी तो मुझे सबका टेम्परेचर लेना है। चार-पांच लोगों को दवा एवं गोलियां देनी हैं। यह काम चटपट खतम कर लूं, तो मरीज़ों को आराम की नींद तो आ सके।

इन मरीज़ों की दुनिया भी विचित्र है। कोई दर्द से चीखता है, कोई दिलासा ढूंढता है, तो कोई फटी आंखों से ताकता रहता है। तो कोई-कोई तो जैसे मुझे सम्पूर्ण की सम्पूर्ण को अपनी आंखों में समा लेना चाहता है।

जब से मैं हस्पताल की इस दुनिया में आई हूं तब स मैंने मन ही मन तय कर लिया है कि जहां तक सम्भव हो वहां तक मरीज़ों से ऐसा व्यवहार करूंगी कि उन्हें राहत और आश्वासन मिले। इसका असर भी जादू के समान होता है। हां, जादू ही तो। हमारे प्रेम भरे दो शब्द भी मरीज़ को नया बल देते ह, उनमें नया उत्साह पैदा करते हैं। टेम्परेचर लेते समय मैं लगभग प्रत्येक रोगी के साथ सस्मित बातें करती हूं।

"काका ! अब कैसा लगता है ?"

"आप को अब दो-चार दिनों म आराम हो जाएगा।"

"देखिए, आप का यह घाव अब मिट गया है ! समझे !"

"काका, रात में नींद तो ठीक से आती है न ?"

"घबराएं नहीं, धीरे-धीरे अच्छा हो जाएगा।" आदि

और इस प्रकार टेम्परेचर लेती-लेती एक बिस्तरे से दूसरे बिस्तरे की ओर आती हूं। कितने ही पुराने, ठीक-ठीक परिचित हो गए मरीज़ प्रश्न भी करते हैं—"सिस्टर, आज नाइट ड्यूटी है ?"

"सिस्टर, आप बहुत अच्छी हैं ! वे जो दूसरी सिस्टर हैं, वे तो जैसे धमकाती रहती हैं !"

"सिस्टर, अब मुझे कितने दिन रहना पड़ेगा ?"

कितने तो याचना करते हैं, डरते हैं, जैस जेल में बन्द हों। उनकी मानसिक यातना मैं समझ सकती हूं। उन्हें यहां के वातावरण में 'घर' जैसा नहीं लगता। दर्द स्वयं एक ऐसी चीज है, जो मरीज़ों को स्वजनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ख़याल कराने लगती है। इस स्पेशल वार्ड में मैं बहुत परेशानी अनुभव कर रही हूं। सभी मरीज़ 'यह लाओ, वह लाओ' करते जाते हैं। मैं इनसे पूछती हूं कि--

"भाई ! अब तो ठीक लगता है न ?"

"नहीं सिस्टर नहीं ! अभी तो पेट में वैसे का वैसा ही है।"

"सो जाइए तो दुख भूल जाएगा।"

"पर नींद नहीं आती, यही तो भारी कठिनाई है। कौन जाने डाक्टर कैसा ट्रीटमेंट करते हैं कि कुछ आराम नहीं पड़ता।"

और दूसरे नींद आने की गोली मांगते हैं। एक ब्लड प्रेशर के मरीज़ हैं, वह सिर दर्द की ही चीख लगाया करते हैं। बेचारी सिस्टर क्या करे ?

स्पेशल वार्ड के दस नम्बर का मरीज़ भिन्न ही प्रकार का लगा। उसने हर्निया का आपरेशन कराया है। चार दिन हुए हैं। अब तो सुधार पर है। वह बातों का जबरदस्त रसिया है। मैं बोलूं या नहीं, तो भी कहेगा--

"नमस्कार सिस्टर !"

"सबके टेम्परेचर ले लिए ?"

"आप को तो सारी रात जागरण करना है, क्यों ?"

"मरीज़ों की चीख-चिल्लाहट से आप घबरा नहीं जतीं ?"

मैं इन सब बातों में पूरी दिलचस्पी लूं तो मेरी ड्यूटी ही न पूरी हो। इसलिए विवेक से हंसकर संक्षेप में उत्तर दे कर खिसक जाती हूं। उन महाशय का टेम्परेचर लेकर मैंने कहा--

"आप की यह पत्रिका ले जाऊं ? रात में पढ़ने के काम आएगी।"

"हां हां, ले जाइए मेरे पास तीन-चार हैं, चाहे जो ले जाएं।"

टेम्परेचर लेने के बाद बैठी ही थी कि कान जी की आवाज सुनाई दी।

"सिस्टर, जनरल वार्ड में नम्बर ४ चीख रहा है। जरा चलें न !" और जाकर देखती हूं तो, 'अरे-रे ! मर गया रे ! पेट में दर्द है ! सिस्टर, कुछ करें ! अरे, मैं तो मर जाऊंगा।"

"काका, आपको आज टट्टी हुई थी ?"

"नहीं हुई !"

"कल ?"

"कल सुबह एक बार गया था, बस !"

"सिस्टर ! पेट साफ हो जाए ऐसी दवा दें। पेट भारी-भारी हो गया है।"

और हमारी बड़ी नर्स डाक्टर को बुलाती हैं। एनीमा देने का निश्चय होता है।

"कान जी ! कहां गया ? चलो, नम्बर चार पर परदा डाल दो।"

और एनीमा दिया जाता है। कानजी यह व्यवस्था करता है।

मैं उस मासिक का पृष्ठ पलटने लगती हूं कि तभी स्पेशल वार्ड की घंटी बजती है। मैंने आया को भेज दिया। वह खबर लाई कि नम्बर आठ को नींद नहीं आती और वह नींद की गोली मांगता है।

नींद की गोली तो कैसे दूं। उसके लिए तो बड़े डाक्टर से पूछना पड़ेगा। आपरेशन का केस है। हमारी बड़ी सिस्टर ने डाक्टर के घर फोन किया तो डाक्टर साहब ने एक गोली देने की अनुमति दे दी।

"चलो मंजु, यह गोली दे आएं।"

नाइट ड्यूटी में दिन की अपेक्षा कम दौड़ धूप रहती है, पर उससे बड़ी तकलीफ है जागरण की। सारी रात जागना सरल काम नहीं है। इसलिए तो एक-दो बार चाय बनाती हूं और तीन-चार चक्कर लगाती हूं। पर कभी तो नींद आंखों में ऐसी आ चढ़ बैठती है कि पलकें खुलती ही नहीं। ऐसे भी बैठे-बैठे ऊब तो आती ही है। इसलिए अवसर मिलते ही मैं पढ़ने बैठती हूं। गम्भीर लेख पढ़ने योग्य मानसिक स्वस्थता तो भाग्य से ही रहती है। अतः लघु कहानियां पढ़ती हूं। पृष्ठ पलटते-पलटते एक कहानी पर आंखें स्थिर हो गईं। एक निःसन्तान नारी की यातना का यथार्थ चित्रण किया गया था। बालक की इच्छा रखने वाली नारी का हृदय कैसा उफनता है, उसका असंतुष्ट वात्सल्य कैसा मचलता है, इसका इतने प्रभावशाली शब्दों में वर्णन किया गया था कि मैं पढ़ती ही रह जाती हूं। पढ़ते-पढ़ते मन में विचार आता है !

"मेरे अन्दर की 'नारी' क्या मातृत्व नहीं चाहती ?"

"मुझ में क्या मां बनने की इच्छा नहीं जागती ?"

"और ईश्वर की कृपा होती तो शायद मेरी गोद कब की भर गई होती। पर जहां सौभाग्य ही फूट गया वहां !" एक सिसकता निःश्वास फूट पड़ा।

मुझे उस पथरी के आपरेशन वाले पढ़ाकू की पूछताछ याद आती है। पिछले सप्ताह दिन की 'ड्यूटी' थी। सुबह मैं स्पेशल वार्ड में उसे स्पंज करने गई थी। चश्मे के अन्दर से निरख रहीं उस मरीज़ की आंखें जैसे मुझे पढ़ रही थीं। वह बातों का काफी रसिया है। वह मुझ से पूछने लगा "सिस्टर ! आपको इस काम से घबराहट नहीं उत्पन्न होती ?"

"नहीं भाई, घबराहट कैसी ! ड्यूटी तो ड्यूटी है। जो काम सौंपा जाए, उसे करना ही चाहिए न !"

"पर तरह-तरह के मरीज़ हों, वे तकरार करते हों, इन सबके बीच आप किस तरह मुस्कराती रह सकती हैं ?"

"इसमें मरीज़ों का क्या दोष है ? उन्हें दुःख होता है।"

दूसरे दिन पुनः प्रश्न शुरू हुआ--

"सिस्टर, आप आती हैं तब ऐसा लगता है कि जैसे संजीवनी आई·····सचमुच ही आपका स्वभाव, आपकी वाणी, आपका हास्य ऐसा प्रिय लगता है कि आधा दर्द आप से आप मिट जाता है।"

"काफी मरीज आपके जैसे उद्गार प्रकट करते हैं। पर ऐसा कुछ नहीं। मैं तो अपनी ड्यूटी बजाती हूं।"

"सिस्टर, बुरा न लगे तो एक प्रश्न पूछूं ?"

"पूछिए।"

"इस प्रकार मरीज़ों के सम्पर्क में आने पर किसी के साथ कभी आप की आत्मीयता उत्पन्न होती है ?"

"नहीं भाई। मरीज़ों को संतोष देने के लिए, उनका दर्द कम करने के लिए ही मैं उनसे बातें करती हूं। हमारे लिए तो सभी मरीज़ एक समान हैं।"

हां, मैंने इस भाई से यह सब कहा था, पर इतना सच है कि मरीज़ों के मन में सभी नर्सें एक समान नहीं होतीं। कितने तो मेरी जैसी नर्सों में बहुत अधिक रस लेते हैं। कभी जाते-जाते 'प्रेज़ेण्ट' भी देते हैं। पर मैं कभी किसी का 'प्रेज़ेण्ट' स्वीकार नहीं करती। इसकी अपेक्षा तो किसी गरीब मरीज़ का आत्म संतोष भरा उद्गार मेरे लिए अधिक मूल्यवान होता है।

और मेरे जीवन का सब से कीमती उपहार तो मुझसे विधाता ने एकाएक छीन लिया था।

मेरे हाथ में वह मासिक पत्र पड़ा था और आंखें अंधकार को चीरती हुई दूर सुदूर तक पहुंच गई थीं। मेरे पति ऐसे ही अस्पताल में पड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। अंतड़ियां खोखली पड़ गई थीं। आपरेशन कराया था, फिर भी केस न सुधरा। अस्पताल में ही उनका अवसान हो गया था।

वह दिन याद आता है और कंपकपी छूटने लगती है। मेरे पति गए, और साथ ही मेरा सौभाग्य लेते गए।

कपाल पर बदनसीबी लिखाकर आई हूं, वहां किसे दोष दूं? मुझ बदनसीब पत्नी के मां बनने के अरमान हमेशा के लिए अधूरे रह गए!

और सहज ही मेरे हृदय में से निःश्वास फूट पड़ते हैं। मैं पुनः कहानी पढ़ने लगती हूं। पर यह क्या! कौन "मां! मां!" की चीख लगा रहा है?

"मां! मेरी मां को बुलाओ! मुझे मां के पास जाना है। मां! मां!! तुम क्यों आती नहीं?"

मेरे कानों में किसी के लाड़ले की 'मां! मां!' की पुकार सुनाई देती है। या फिर यह मेरा भ्रम है!

"मुझे मेरी 'मां' के पास ले जाओ! मां! ओ मां!! तुम क्यों आती नहीं?" स्पेशल वार्ड से पुनः आवाज आती है।

दो दिन पहले ही एक मिल एजेण्ट के बेटे का हर्निया का आपरेशन हुआ था। दिन में तो सेठ और सेठानी भी आते-जाते थे। पर रात में तो आया ही उसके पास रहती थी। और अभी कल ही आया से मालूम हुआ था कि बेटे की मां उसे दो वर्ष का ही छोड़कर मर गई थी! यह तो नई सेठानी थी। बेटा दूसरी मां के पास नहीं जाता था, आया के पास ही पलता था। पर आपरेशन के बाद दर्द सहन न होने पर अपनी मर गई मां को याद करता था।

बालक को मां चाहती थी। मेरी जैसी नारी को शिशु चाहता था। बालक ऊंची-ऊंची चीखें मार कर मां को बुला रहा था। जब कि मुझे तो यह पुकार अपने अन्तर में ही छिपा कर रखनी पड़ती थी।

'मां! मां!!' की पुकार सुनकर मैं तुरन्त खड़ी हो गई और उस बालक के पास दौड़ी गई।

"क्यों बेटा! क्यों रोते हो?" चीख रहे बालक के माथे पर हाथ फेर कर मैंने पूछा।

"मुझे मां के पास जाना है! मुझे मेरी मां के पास ले चलो!"

"तुम्हारी मां को बुलवाया है, अभी आएगी। देखो बेटा, तुम राजा बेटा बन जाओ।" और बालक की बगल में बैठकर उसके चेहरे और उसके सिर पर मैंने वात्सल्य भरा हाथ फेरा।

"देखो, तुम अब बिलकुल ठीक हो जाओगे।"

मेरी कोई भी बात न सुनकर बालक कहे जा रहा था—"मेरी मां अभी तक क्यों नहीं आई? मुझे मां के पास जाना है।"

"तुम्हारी मां आएगी। देखो, तुम रोओगे तो वह वापस चली जाएगी।"

"मैं न रोऊं तो मां आएगी?" सहम कर बालक ने पूछा।

"हां! तुम सो जाओ तो तुम्हारी मां जरूर आएगी। आएगी और तुम्हें परी की कहानी सुनाएगी, अच्छा-सा मीठा-सा गीत सुनाएगी, तुम्हें खूब-खूब प्यार करेगी।"

"मां मुझे प्यार करेगी?"

"करेगी, जरूर करेगी। वह आएगी और तुम्हें पुचकारेगी, तुम्हारे मुंह पर हाथ फेरेगी। तुम्हें अपनी छाती से चिपका लेगी और अच्छी-अच्छी बातें सुनाएगी।"

और बालक के चेहरे पर मेरा हाथ लगातार घूमता रहा। मेरी वाणी से वात्सल्य फूटने लगा, जैसे मेरा ही बालक बिस्तरे पर पड़ा हो! एकाएक मेरे अन्तर से स्नेह फूटने लगा और मैं कब उसकी 'मां' बन गई, इसका भी मुझे पता नहीं चला। मैं बालक को सुलाने के लिए उसे परियों की कहानी कहने लगी।

"फिर परी उस लड़के को कहां ले गई? परी ने उस लड़के का क्या किया?" ऐसे प्रश्न पूछता हुआ बालक कहानी की दुनिया में लीन हो गया।

कहानी समाप्त हुई तो बालक ने प्रसन्नता से मेरी ओर देखा। उसकी महीन दंतुलियां खिल रही थीं। मेरा हाथ पकड़ कर उसने पूछा—

"मां, ऐसी ही कहानी सुनाएगी?"

"हां, हां, जरूर। मां ऐसी कहानी कहेगी।"

"आप मुझे रोज ऐसी कहानी सुनाएंगी?"

"हां, बेटा, मैं तुम्हें रोज कहानी सुनाऊंगी, अच्छा! अब तुम राजा बेटा बनकर सो जाओगे।"

"पर आप तो कहती थीं कि मां गीत सुनाएगी। आप भी तो मुझे गीत सुनाएं।"

"जरूर सुनाऊंगी। अच्छा, तुम अब सोने की कोशिश करो और मैं तुम्हें गीत सुनाती हूं।"

और स्कूल के दिनों में याद किया एक लोरियों की लय का गीत मैं धीमे स्वर में गाने लगी। बालक धीरे-धीरे सोने लगा। मैंने अभी अपना गीत पूरा भी नहीं किया था कि अस्पताल की आया ने आकर आवाज दी—"सिस्टर, जनरल वार्ड नं० ४ चिल्ला रहा है कि उसके पेट में ऐंठन हो रही है।"

मैंने उसे इशारे से कहा कि तुम जाओ, मैं आती हूं। और बालक की आया को जरूरी सूचनाएं देकर मैं जनरल वार्ड में गई।

पर तब से इस बालक के प्रति मेरा हृदय निरन्तर आकर्षित हो रहा है। रह-रह कर पांव उसके पलंग के पास जाते हैं। मुझे देखकर वह कैसा प्रसन्न हो उठता है! जैसे फूल हंसता हो, वैसे उसकी दंतुलियां हंसती हैं। जैसे उसकी आंखें, उसका चेहरा, उसका सारा अस्तित्व कह रहा हो—

"मां! तुम आ गईं।"

और वे भोली भाली छोटी आंखें कैसी प्यारी-प्यारी लगती हैं। यह शिशु मेरा बन जाता है।

तीन दिनों में शिशु के टांके खोले जाएंगे। एक सप्ताह में तो खेलने भी लगेगा। वह अपने घर जाएगा। फिर?

"इस अस्पताल में जो मरीज आते हैं, वे सब मेरे ही हैं न! मैं भी सब की मां क्यों न बनूं?—" जैसे मेरे अन्तर की 'मां' बोल उठती है। तब मुझे यह अस्पताल, ये मरीज और ये सब शिशु कितने प्रिय लगने लगते हैं। "ये सब मेरे हैं और मैं इन सबकी मां हूं।" इस खयाल मात्र से मेरी खिन्नता, उदासीनता, बुझ जाती है और अन्तर में प्रसन्नता व्याप्त हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मास्को में

नगेन्द्र भट्टाचार्य

खाने पीने के बाद थोड़ी देर तक विश्राम किया, इसके बाद हम लोग आर्ट अकादमी की इमारत में पहुंचे। हम लोग दर्शकों को चित्र दिखलाते थे और पारी बांधकर चित्र की व्याख्या सुनाते थे। अबकी बार दो और भी दुभाषिया महिलाएं हमारे काम में सहायता देने के लिए आई थीं। एक का नाम हेनरियता मिखालेवना विलायेता और दूसरी का नाम तात्याना आलेक्जान्द्रेवना सिरोचिना था। हेनिरियता भाषा शिक्षा के स्कूल में अंग्रेजी सीखती थी और तात्याना स्वास्थ्य विभाग में दुभाषिए का काम करती थी। जब राजकुमारी अमृतकौर और डाक्टर सैफीउद्दीन किचलू रूस में आए थे तब श्रीमती तात्याना उनके साथ दुभाषिया का काम करती थीं। इसके पहले हेनरियता भारतीय महिलाओं के शिष्टमंडल में दुभाषिया का काम करती थी। पहली मुलाकात में ही इन लोगों ने यह बात साफ कर दी कि ये हमारे साथ काम करने में खुश हैं।

हरकिशन तानिया (तात्याना) को लेकर और हैब्बर हेनरियता के साथ विभिन्न दर्शक दलों को चित्रों की व्याख्या सुनाने में लग गए। इनमें उत्साह भी प्रबल था। पता नहीं कब मेरी पुकार पड़े, पर इस समय तो मैं बेकार बना रहा, पहले तो इस कमरे, उस कमरे में चक्कर लगाता रहा। अन्त में आर्ट अकादमी के पुस्तकालय में खिसक गया। चारों तरफ पुस्तकों की अलमारियों की कतारें लगी हुई थीं। मेज पर तरह तरह की कला सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएं लगी हुई थीं, वहां दो-चार घण्टे चुपचाप काट देना कोई मुश्किल बात नहीं थी। इसके बजाय प्रदर्शनी के अन्दर स्वयं ही दर्शनीय वस्तु बनकर अकेले-अकेले समय काटना बहुत कठिन था। धीरे-धीरे लोग जमा हो रहे थे।

यहां की भाषा आती नहीं थी और कोई दुभाषिया भी पास में नहीं था, इसलिए हाथ मिलाना या अभिवादन के उत्तर में हाथ उठाकर नमस्ते करने के सिवा और कोई चारा नहीं था। शायद किसी समय इन लोगों को आटोग्राफ लेने की झक सवार हो तो खड़े-खड़े पचास कापियों पर दस्तखत करना पड़ेगा। कोई-कोई तो यह भी अनुरोध कर बैठता था कि भारतीय भाषा में कुछ अवश्य लिखा जाए। चारों तरफ उत्सुक जनता इकट्ठी हो जाती थी और जो लोग चित्र देखना चाहते थे, उनके काम में बाधा पहुंचती थी। बाहर जनता प्रतीक्षा कर रही थी। चार-चार की दो फर्लांग लम्बी क्यू बनी थी। जब तक हाल में मौजूद लोग बाहर न जाएं, तब तक बाहर के लोगों को भीतर आने की सम्भावना नहीं थी। प्रदर्शनी खुलने के दिन से लेकर बन्द होने के दिन तक हर रोज इसी प्रकार भीड़ का तांता बंधा रहा।

बाद को देखा कि केवल मास्को में ही नहीं, कीव, लेनिनग्राद सर्वत्र यही हालत रही। मास्को में तेरह दिन के अन्दर लगभग ६० हजार लोगों ने भारतीय कला की प्रदर्शनी देखी। इस तजरबे से लाभ उठा कर कीव में और भी प्रशस्त कलावीथी की व्यवस्था की गई। वहां यूक्रेनियन कलावीथी की पूरी ऊपरी मंजिल इस काम के लिए लगा दी गई। लगभग ९५ हजार दर्शकों ने प्रदर्शनी देखी और अन्तिम दिन तक उसी प्रकार क्यू लगी रही। अन्तिम बार लेनिनग्राद में प्रदर्शनी हुई। सुविख्यात आर्मिताज वीथी के एक विराट भाग में कला प्रदर्शनी की व्यवस्था हुई। इस प्रकार लेनिनग्राद में डेढ़ लाख आदमियों ने यह प्रदर्शनी देखी। यहां यह बता दिया जाए कि दर्शकों की संख्या और जनप्रियता की दृष्टि से आर्मिताज की भारतीय कला प्रदर्शनी ने वहां होने वाली दूसरी सारी कला प्रदर्शनियों का रेकार्ड तोड़ दिया था।

सबेरे से शाम तक दर्शकों का तांता बंधा रहता था। बालक-वृद्ध, युवक-युवती, स्त्री-पुरुष, सब श्रेणियों और सब उम्र के लोगों ने घण्टों धैर्य के साथ प्रतीक्षा की, कदाचित कुछ लोग लौट भी गए। इन लोगों की इस प्रकार मुसीबत देखकर हम लोगों को बहुत बुरा लगता था, इसलिए हमारे अनुरोध पर मास्को में प्रदर्शनी के बारह घण्टे खुले रखने की व्यवस्था हुई। इसके बाद रात को और भी तीन घण्टे के लिए स्पेशल शिफ्ट में विभिन्न शिक्षा संस्थाओं या कर्मचारी संघों के सदस्यों के लिए प्रदर्शनी खुली रखी जाती थी। हजारों लोगों ने प्रदर्शनी देखी। बुद्धि जीवी वर्ग के साथ-साथ मिल के मजदूर किसान और सैनिक भी आते थे।

एक दिन राष्ट्रपति मार्शल वोरोशिलाफ आए और दो घण्टे तक प्रदर्शनी में जमे रहे। उन्होंने प्रत्येक चित्र के सम्बन्ध में ब्योरेवार प्रश्न पूछे। उन्हें जो चित्र अपनी रुचि और नीति के विरुद्ध ज्ञात हुआ, उस पर उन्होंने साफ-साफ अपना मत बता दिया, जो चित्र अच्छा लगा, उसकी दिल खोल कर प्रशंसा भी की। वोरोशिलाफ बहुत दिनों से रूसी कला आन्दोलन के पृष्ठ पोषक हैं। बहुत से कलाकार उन्हें अपना मित्र मानते हैं। बात करते-करते वह हैब्बर से लिपट गए और बोले——खाने-पीने पर ध्यान क्यों नहीं देते? तुम में तो हड्डियों के अलावा कुछ है ही नहीं।

वृद्ध हो जाने पर भी उनकी शक्ति या उत्साह में कोई कमी नहीं थी। यूक्रेन के राष्ट्रपति ग्रेचुका कृषिशास्त्रीय इंजीनियर थे। वे धीरे-धीरे यूक्रेन प्रजातन्त्र के सर्वोच्च पद पर पहुंचे थे। उन्होंने सरकारी कर्त्तव्य निपटाने के लिए नहीं बल्कि कलारसिक की दृष्टि से प्रदर्शनी देखी।

रूस के कलाकारों ने हमारी कला प्रदर्शनी देख कर यह कहा कि भारत का दृष्टिकोण और रंगों का अपूर्व प्रयोग बहुत समय तक उन्हें नई-नई बातें सोचने की अनुप्रेरणा देगा। श्रेष्ठ रूसी कलाकार तथा कला-समालोचकों ने भारतीय कला की प्रशंसा और आलोचना करते हुए निबन्ध प्रकाशित किए। साधारण दर्शकों में भी बहुत आग्रह पाया गया, उन्होंने बहुत कुतूहल दिखलाया और तरह-तरह के प्रश्न पूछे। चित्रों पर बात चलते-चलते देश पर चली जाती थी और फिर जनता की जीवन यात्रा और आचार-व्यवहार की बात होने लगती थी। चित्रांकन पद्धति के सम्बन्ध में भी आलोचना होती थी, इन लोगों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंग-ढंग और बातचीत से भी मालूम होता था कि ये चित्र देखने के आदी हैं और इन्हें कला की पहचान है इसलिए इनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए आनन्द आता था। जब छुट्टी मिलती थी, तो मैं कला के पुस्तकालय में चला जाता था। हमारे सभी मित्र जानते थे कि हमने यह मौज का आस्ताना ढूंढ लिया है।

इसी तरह एक दिन बैठे-बैठे मैं विभिन्न पुस्तकों के पन्ने उलट रहा था कि जिनिग्रादस्काया आकर बोलीं--जल्दी आइए, हैब्बर को बचाइए।

मैंने कहा--मामला क्या है ?

होना क्या है ? जब से आए हैं तब से लैक्चर झाड़ रहे हैं, न तो विश्राम करते हैं और न रुकते हैं। एक के बाद दूसरा दल जुटाकर वे लगातार चिल्लाते जाते हैं। हमारे देशवासियों में ज्ञान-पिपासा बहुत अधिक है, पर इसलिए हम यह नहीं देख सकतीं कि वे लगातार चिल्लाकर अपने को बीमार कर लें। वे बिल्कुल घोड़े की तरह काम कर रहे हैं।

मुझे बड़ी लज्जा आई, मैंने कई बार उससे कहा था कि तुम विश्राम करो, मैं तब तक दर्शकों से निपटूंगा और उनके प्रश्नों का उत्तर दूंगा, पर हर बार वह यही कह देता था कि बस इस दल को निपटा दूं, फिर तुम्हारी बारी है। मैं तो उस पर भरोसा करके यहां बैठा हूं, और वह एक दल के बाद दूसरे दल को लेता जा रहा है।

मैं कला पुस्तकालय से निकल कर उधर जाने लगा तो जिनिग्राद-स्काया बोलीं-- आप उन लोगों को लेकर यहां चले आइए, वहां न रहिए।

मैंने कहा--यह कैसे हो सकता है ? मैं उन लोगों को चित्रों का परिचय देता रहूंगा।

वे हंस कर बोलीं--हेनरियता को भी थोड़ी देर विश्राम करना चाहिए, इसके अलावा प्रदर्शनी बन्द होने का समय भी करीब है।

उसके इस कथन को मानना ही पड़ा फिर भी मैं लज्जित था। वह समझ गई और हंसकर बोली-- जरा काम भी है। सेन, हरकिशन और तानिया को हम अपने दफ्तर में बैठा आई हैं आप लोग भी जल्दी चले आएं।

प्रदर्शनी के अन्दर गया, तो वहां सबसे अन्तिम हाल के कोने में भारी भीड़ थी। हैब्बर का सिर दिखाई दे रहा था और सबसे ऊपर हेनरियता की खनखनाती हुई आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। वह रूसी भाषा में कह रही थी--खुदोशनिक (कलाकार) प्रताप सेन ने बंगाल के देहात का एक चित्र बनाया है। संध्या समय एक लड़की घर का काम-काज समाप्त कर पैर में लाल रंग लगा कर अपना प्रसाधन समाप्त कर रही है। एक देहाती घर है, अगल-बगल फूल के पौधे हैं और बीच में यह लड़की है, कुल मिलाकर सुन्दर और स्वाभाविक जीवन का चित्र सामने आ गया है। इसके बगल में जो चित्र है वह जी० डी० कुलकर्णी का बनाया हुआ है। यह बम्बई के एक तरुण कलाकार हैं। इन्होंने भारतीय किसान का एक चित्र बनाया है। किसान के जीवन की धारावाहिकता और उसके मानसिक जीवन की अपरिपक्वता को प्रकाश में लाने के लिए इन्होंने जो तकनीक चुनी है, वह आल्तामिरा गुफा के रहने वाले कलाकारों के अनुरूप है।

इस प्रकार से वह चाभी भरे हुए कल की तरह जरा भी न थम कर एक के बाद एक चित्र का परिचय दर्शकों को देती जा रही थी। बड़ी मुश्किल से भीड़ के भीतर घुसकर हैब्बर को लेकर जिनिग्रादस्काया के घर पर आ गई। मैंने कहा-- लीजिए, यह रहे दो और, अब आप इनको जो सजा देना चाहती हैं दीजिए।

उन्होंने कहा--जरूर। इसके बाद वे दराज खोलकर उसमें से एक बड़ी छुरी, कुछ चम्मच और प्लेट निकालने लगीं। एक और दराज से अच्छे बक्स में पैक की हुई बहुत बड़ी आइस्क्रीम निकाली। सजा की लम्बाई-चौड़ाई देखकर एक कदम आगे बढ़ने की सामर्थ्य नहीं रही। मैंने अपनी प्लेट भी भर ली और धीरे-धीरे मजे ले-लेकर खाने लगा। मैंने कहा-- आप की तरह कठोर प्रशासक न हो तो अकादमी की इतनी धाक कैसे जमे ? हमने सोचा है कि हम आपको साथ में ले चलें और अपने यहां की कला सोसायटियों की कर्णधार बना दें।

वे बोलीं-- दो-चार दिन तो इस तरह सभी मीठा बोलते हैं, फिर मेरा कड़ा शासन सहन न कर पाएंगे ? यहां के कलाकार उठते-बैठते यही कहते हैं कि यह बुढ़िया डाइन मरे तो निजात मिले।

हम सब लोगों ने एक साथ कहा-- यहां आप के रहने की जरूरत नहीं है, आप हमारे साथ चलें। हम लोग मिलकर आपको अपने यहां के कलाजीवन को संगठित करने में नियुक्त कर देंगे।

बात बदलते हुए उन्होंने कहा--यह बात बाद को होगी। अभी मैं एक बार गालियां खाने जा रही हूं। रात के नौ बज रहे हैं, अब हाल खाली करने के संकेत के रूप में बत्तियां बुझाने का काम शुरू करना पड़ेगा।

वे मुस्कराती हुई चली गई। हमने कर्त्तव्य में कठोर और स्नेह, ममता की प्रतिमा इस वृद्धा को जितना ही देखा उतना ही हमारा मन भक्ति और प्रेम से भर गया।

अनुवादिका--माया गुप्त

●

संतुलन

मनोरंजन प्रसाद सिंह

हां, इधर से उधर--फिर, उधर से इधर,
पेंडुलम हिल रहा है, घड़ी चल रही।
मन इधर से उधर--फिर, उधर से इधर
अपने जीवन का भी है रवैया यही।
हा बहुत इस तरफ, ना बहुत उस तरफ,
ठीक रखना हो तो संतुलन चाहिए,
मन है चंचल-चले, किंतु, बहके नहीं,
संतुलित ही रहे ऐसा मन चाहिए।
संतुलन के बिगड़ते बिगड़ती घड़ी,
पेंडुलम जो रुका तो घड़ी बन्द है,
संतुलित मन हो तो संतुलित जिन्दगी,
संतुलन की शरण में ही आनन्द है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन दिल्ली नए रूप में

आर० के० रामध्यानी

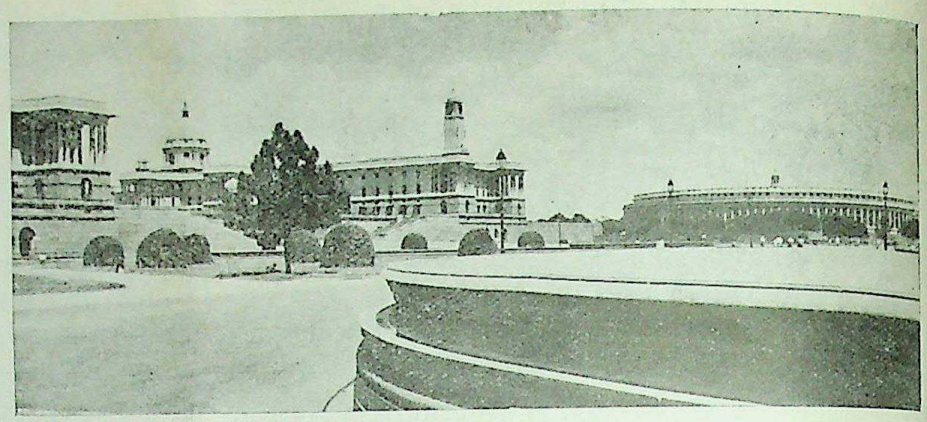

वर्तमान केन्द्रीय सचिवालय

यदि दिल्ली के कल्पित संस्थापक राजा दिलीप, जिनके नाम पर सम्भवतः दिल्ली का नाम पड़ा, एक बार फिर जन्म ले कर यहां आएं तो, उन्होंने आरम्भ में जिस स्थान पर अपना यह शहर बसाया था, उसका पता लगाना उनके लिए भी असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होगा। ऊंची-नीची धरती इकसार कर दी गई है, यमुना के प्रवाह की दिशा भी बदल गई है और इतना आमूलचूल परिवर्तन हुआ है कि जहां पहले जंगल था या खेती होती थी, वहां अब बस्तियां बस गई हैं। केवल कुछ मुख्य-मुख्य पहाड़ियां ही अभी तक भी वैसी ही हैं जैसी वे सम्भवतः दो या तीन हजार साल पहले थीं। पहले, दिल्ली शहर के चारों ओर किले की एक दीवार थी और उसके अन्दर यह एक स्वतःपूर्ण शहर था। लेकिन यदि अब राजा दिलीप इसे देखें तो उन्हें मालूम होगा कि उस पुराने दिल्ली शहर के स्थान पर दूर-दूर तक अब कई आंशिक रूप से स्वतःपूर्ण उप-नगर बस गए हैं और अब उन्हें दिल्ली के वर्तमान शासक की सम्पत्ति एवं अन्य बातों का पता लगाने तथा उसको जीतने के लिए कितनी सैनिक शक्ति की आवश्यकता होगी—इस सबके लिए अपने सलाहकारों की सहायता लेनी पड़ेगी। और अधिक ध्यान से देखने पर राजा दिलीप को पता चलेगा कि किले की एक दीवार अब तक भी विद्यमान है परन्तु आबादी की वृद्धि के कारण यह दीवार टूट गई है और दिल्ली के दक्षिण में बहुत-से मकान तथा शानदार इमारतें बन गई हैं। इस नए प्रकार की स्थापत्य कला और नई बस्तियों की बसावट (जिसे बहुत से लोग पर्याप्त सुन्दर मानते हैं) के बारे में उनके क्या विचार होंगे, यह कहना कठिन है।

तुगलकाबाद के अवशेष

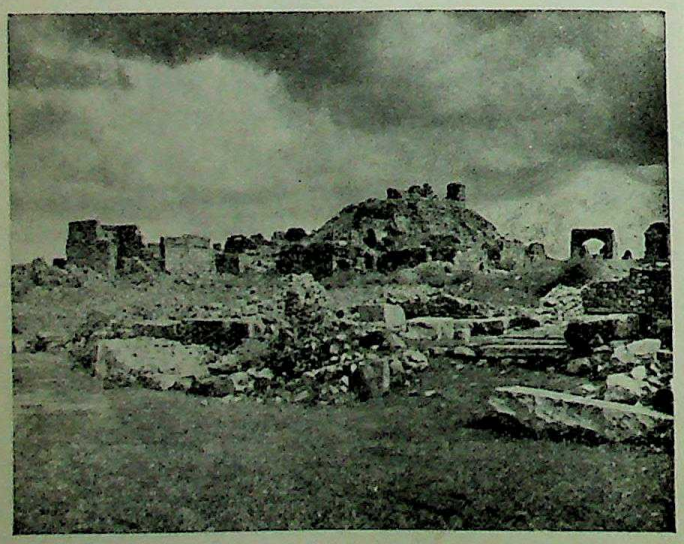

संसार के समस्त पुराने शहरों की भांति, दिल्ली का आरम्भ किस प्रकार हुआ, यह अज्ञात सा ही है? यदि थोड़ी-सी कल्पना के सहारे हम भूत-काल के नील आवरण को उठा कर देखें तो हमें पाण्डव राजाओं के प्रसिद्ध शहर इन्द्रप्रस्थ के दर्शन होते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि वर्तमान समय का इन्दरपत नामक गांव इसी इन्द्रप्रस्थ के मूल स्थान पर बसा हुआ है। ऐसा माना जाता है कि पांडव राजाओं ने अश्वमेघ यज्ञ किया था। इसलिए उस समय जिस क्षेत्र को भारतवर्ष कहा जाता था उसकी राज-धानी होने का श्रेय इन्द्रप्रस्थ को दिया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि इन्द्रप्रस्थ का यह गौरव बहुत दिनों तक अक्षुण्ण नहीं रहा, परन्तु अत्यन्त मोहक वीर गाथाओं एवं महाकाव्यों में इन्द्रप्रस्थ की यह महिमा चिर-स्थायी हो गई है। भारत के इतिहास में पुराने जमाने से अभी तक प्रायः पश्चिम से पूर्व की ओर लोगों के आने का क्रम रहा है और ज्ञात इतिहास के उषःकाल में बिम्बसार की राजधानी पूर्व में, यानी राजगृह थी। सम्भवतः पाटलिपुत्र ही सबसे पहला शहर है, जिसे वस्तुतः एक भारतीय साम्राज्य की राजधानी होने का गौरव प्राप्त था, यद्यपि देश का सुदूर दक्षिण का भाग इस साम्राज्य से बाहर ही रहा। इस समय मौर्य साम्राज्य की सीमाएं अफगानिस्तान तथा बिलोचिस्तान तक फैल गई थीं। कुषाण काल में पुरुषपुर के कुषाणों की राजधानी बन जाने पर पाटलिपुत्र का यह गौरव थोड़े समय के लिए अवश्य धुंधला पड़ गया था परन्तु गुप्त काल में पाटलिपुत्र की महिमा फिर से और भी अधिक बढ़ गई। हर्ष के राज्य-काल में पूर्व की अपेक्षा पश्चिम का बोलबाला हुआ, जबकि उसने कान्यकुब्ज को अपने साम्राज्य की राजधानी बनाया। हर्ष का यह साम्राज्य दक्षिण में नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। पश्चिम की ओर से मुसलमानों के आक्रमण निरन्तर बढ़ते गए और इन आक्रमणों एवं प्रत्या-क्रमणों का केन्द्र-स्थल होने के कारण अन्ततोगत्वा दिल्ली मुसलमान शासकों की राजधानी बन गई।

इतिहास के उतार-चढ़ावों के कारण दिल्ली पहले भी कई बार बन और बिगड़ चुकी थी। दिल्ली की शक्ति एवं गौरव का यह क्रम कभी भी एक-सा नहीं रहा। और दिल्ली को भाग्य के और भी बहुत से उलट-फेर देखने थे। दिल्ली का नव-निर्माण और विनाश होता रहा। दिल्ली उजड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जामा मस्जिद

दिल्ली के चित्र

सफ़दर जंग का मकबरा

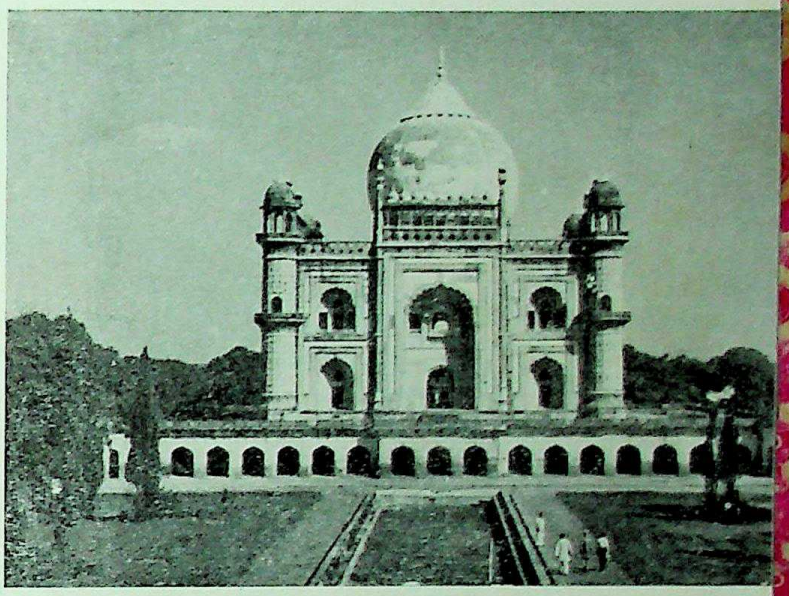

लोदी का मकबरा

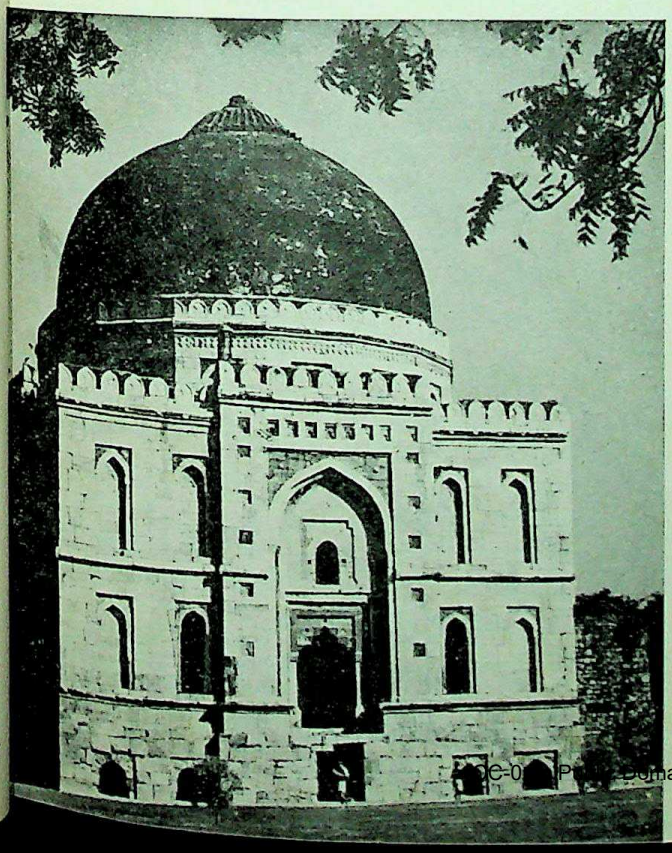

पुराने किले की एक इमारत

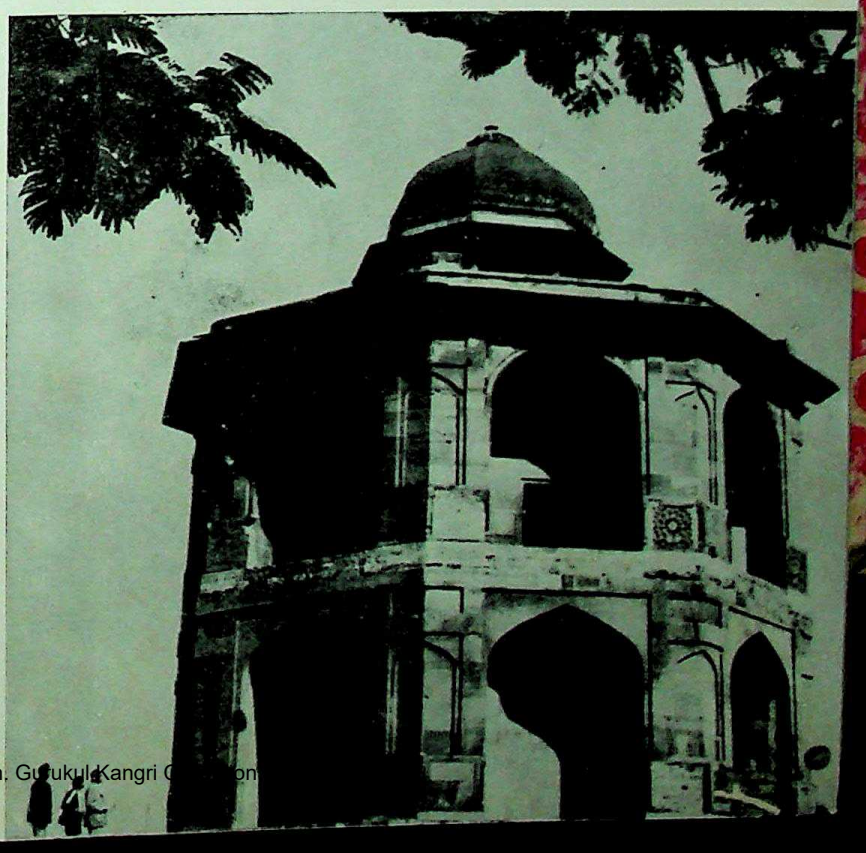

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

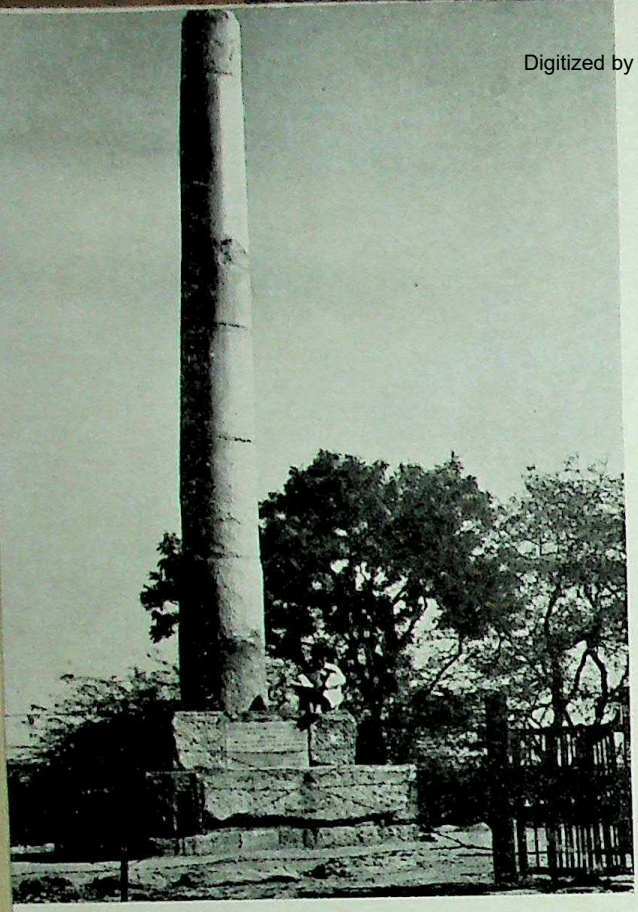

पहाड़ी पर अशोक स्तम्भ

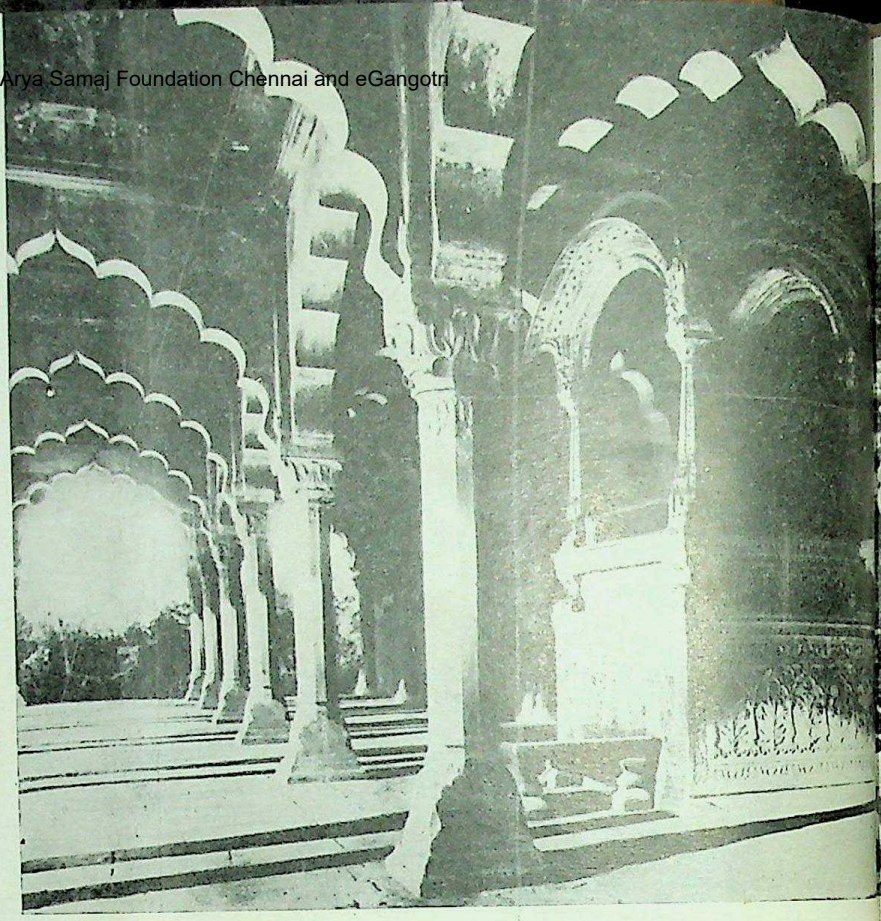

लाल किले में दीवाने-आम तथा राज सिंहासन

लाल किले की मोती मस्जिद

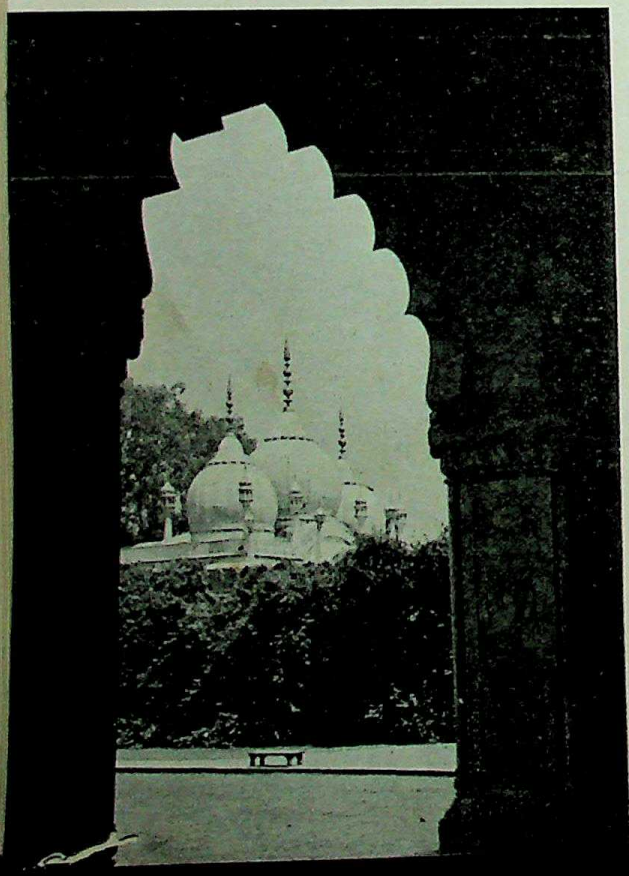

लाल किले में दीवाने-खास

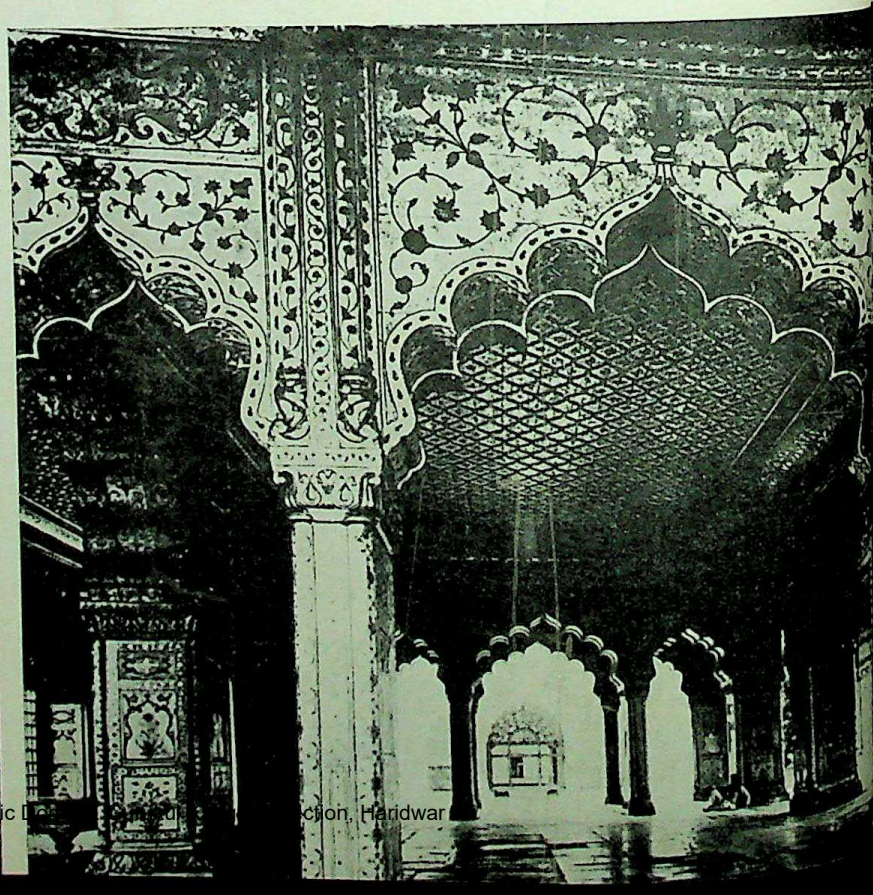

ic D... Haridwar ...ction, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई दिल्ली का लक्ष्मीनारायण मन्दिर

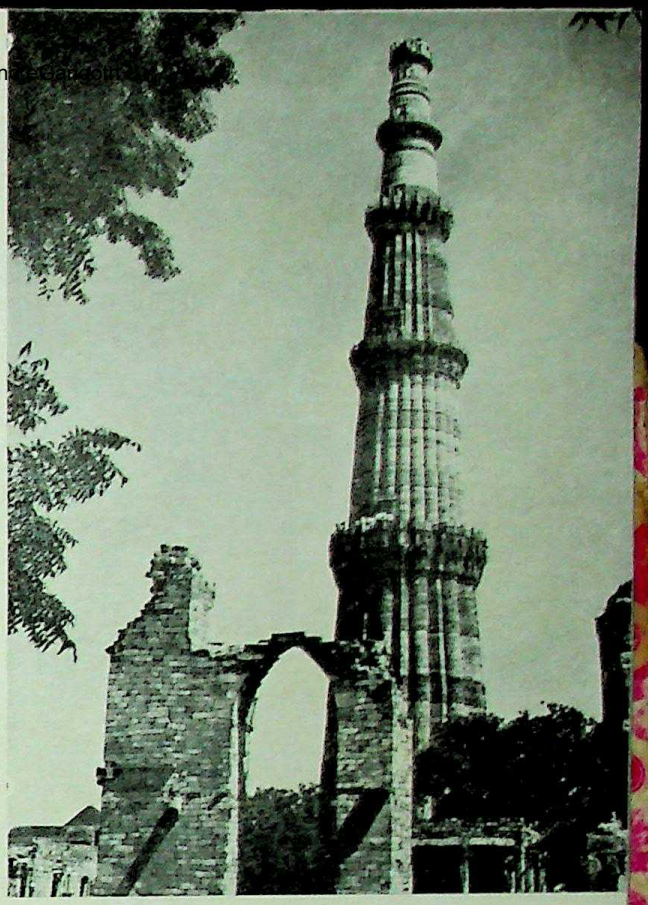

कुतुब मीनार

जन्तर मन्तर

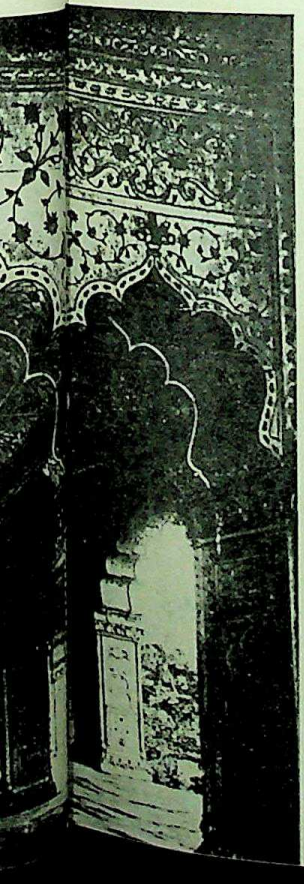

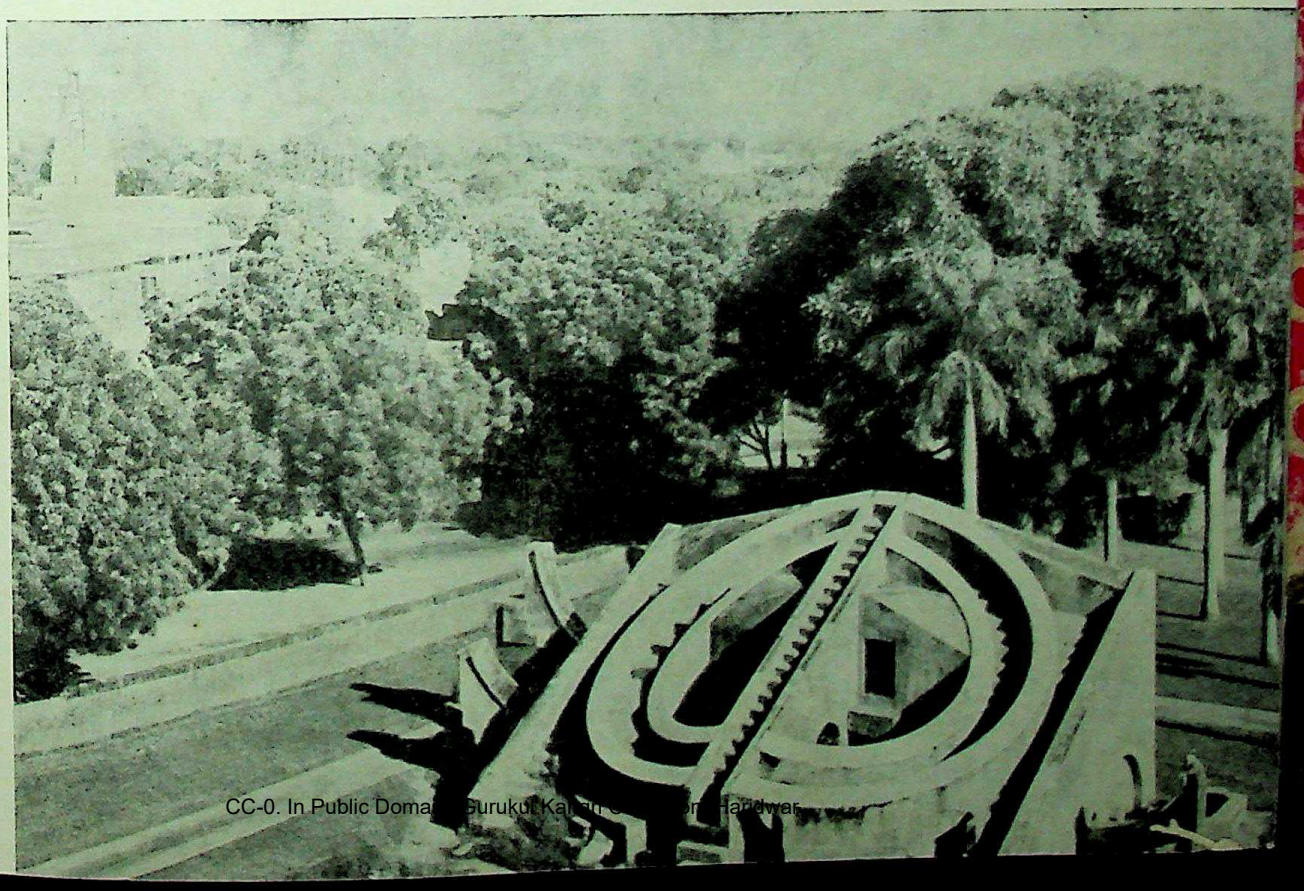

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

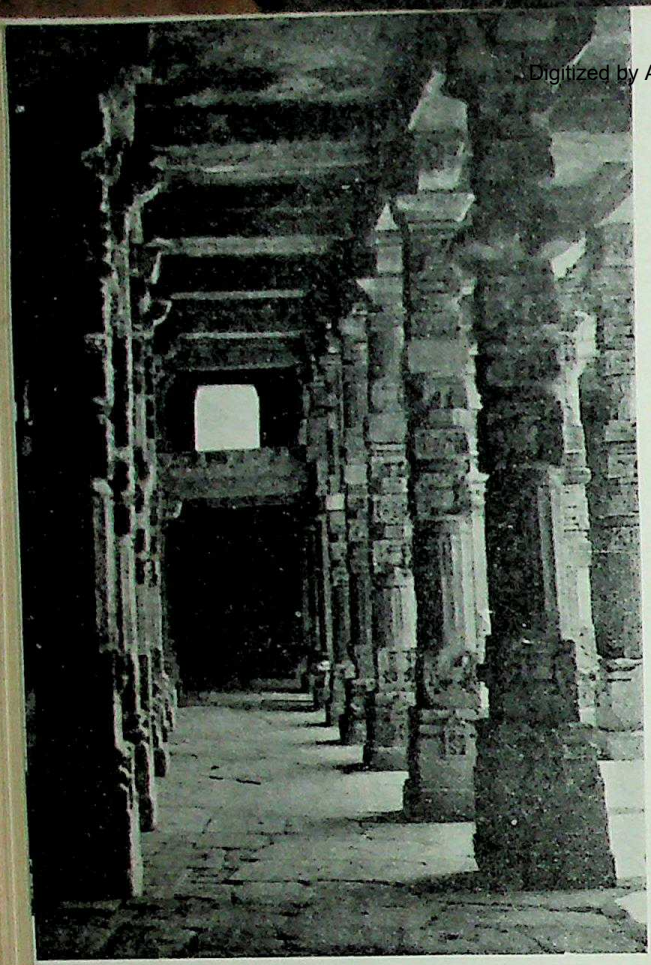

कुतुब के पास राय पिथौरा
मन्दिर के अवशेष

हुमायूं का मकबरा

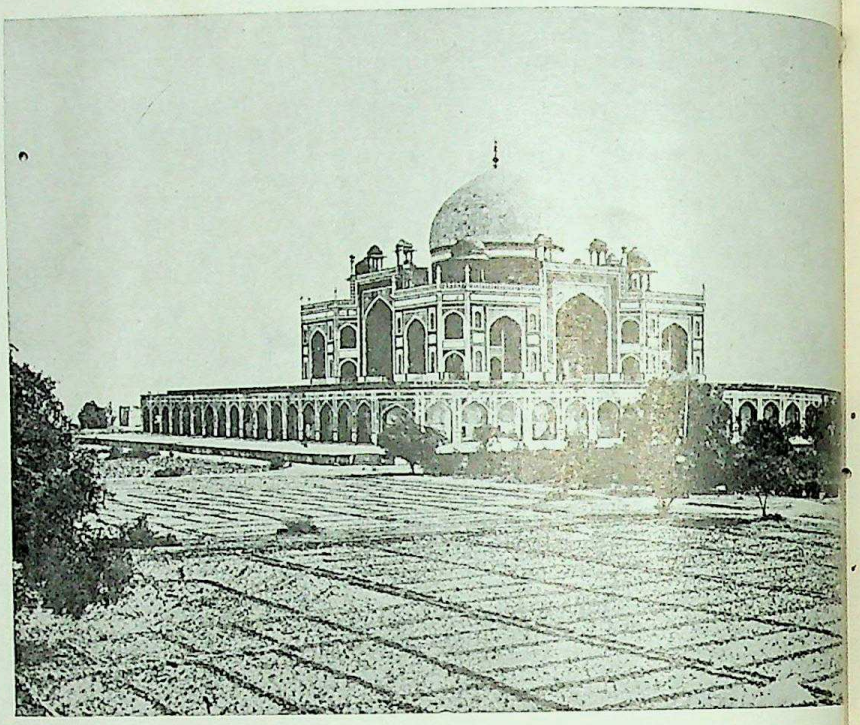

पुराने किले का
मुख्य द्वार

नीचे बाएं : राष्ट्रपति भवन तथा
उसका मुगल उद्यान

ग्रेट प्लेस से पार्लियामेण्ट भवन का दृश्य

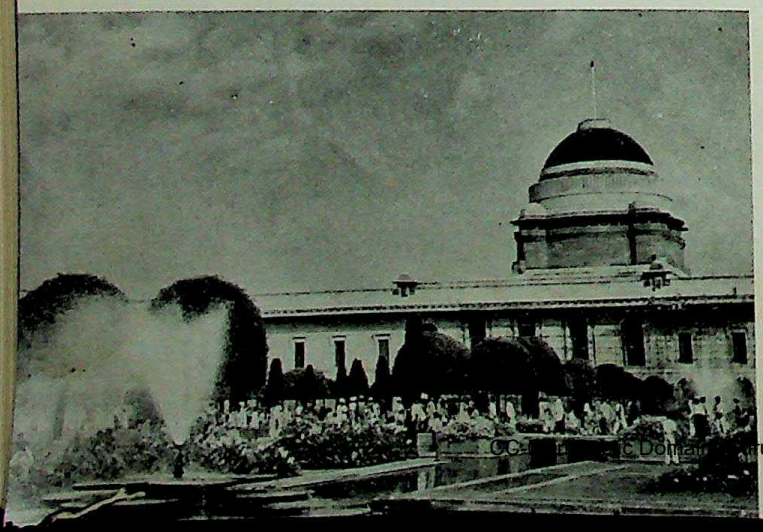

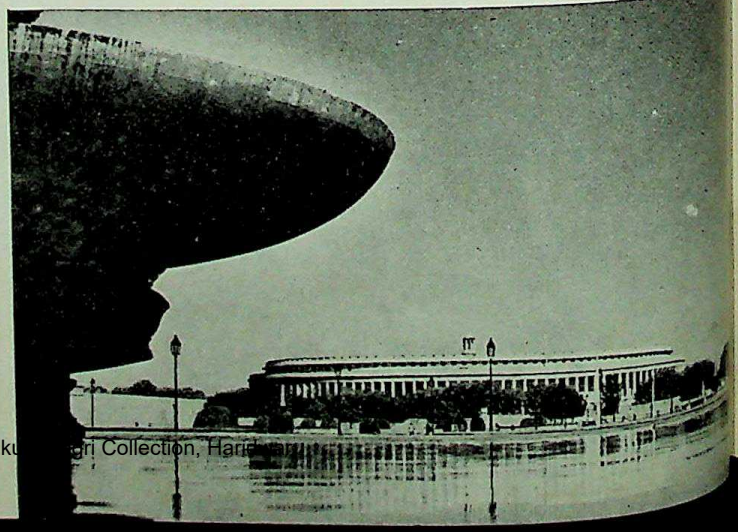

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर अपने ही भग्नावशेषों पर फिर बनी और फिर उजड़ी। दिल्ली के ये प्रस्तर खण्ड, भग्नावशेष और शिलाएं यदि बोल पातीं तो वे निस्सन्देह अद्वितीय वैभव, भयंकर लड़ाइयों, शानदार विजयों, विघातक पराजयों, नृशंस मार-काट, क्रूर हत्याओं, अमीरी और गरीबी, तथा यातनाओं और वीर बलिदानों की विस्मयकारी गाथाएं सुनातीं, क्योंकि ये सब दिल्ली में होने वाले सभी परिवर्तनों के मूक साक्षी रहे हैं। ऐसा कौन-सा शहर है कि जिसे अपने शासक के क्रोध का भयंकर परिणाम भुगताना पड़ा हो, जहां की सारी आबादी उसे छोड़ कर चली गई हो, और जो कुछ थोड़े लोग पीछे रह भी गए हों उन्हें या तो मौत के घाट उतार दिया गया हो या जिन्हें सैकड़ों मील तक सड़क पर घसीटे जाने की सजा दी गई हो? और कौनसा ऐसा नगर है जिसका राजा अपनी एक नई राजधानी बनाकर सचमुच १५ साल तक उस नई राजधानी में रहा हो, और फिर भी उसने अपना पुराना यश पुनः प्राप्त कर लिया हो? क्या ऐसा कोई और अन्तरवर्ती शहर है जिसे, किसी बन्दरगाह पर अपना सदर-मुकाम स्थापित करने वाली एक सामुद्रिक शक्ति की राजधानी बनने का यश प्राप्त हुआ हो? इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दिल्ली का अनेक बार उत्थान एवं पतन हुआ। दिल्ली के प्राचीरों से अनेक शासकों के झण्डे लहराए हैं परन्तु वे जनता की सच्ची शक्ति पर आधारित न होने के कारण अस्थायी सम्पूर्ण प्रभुत्व सत्ता के केवल फीके प्रतीक मात्र बन कर रह गए। १,००० वर्ष तक दिल्ली का इतिहास वस्तुतः भारत का इतिहास रहा है और इसमें जो उतार-चढ़ाव हुए उनसे ही भारत के लोगों क भाग्य एवं दुर्भाग्य का निर्माण हुआ है। अन्त में केवल एक सौ एक वर्ष पूर्व दिल्ली नगर एक ऐसे विप्लव का महत्वपूर्ण केन्द्र बना, जो भूतकाल में हुए इस प्रकार के विद्रोहों से सर्वथा विभिन्न था, क्योंकि यह जनता का विद्रोह था, भले ही वह सफल न हो सका हो। पहले समस्त युद्ध एवं विद्रोह मुख्यतः राजाओं और पेशेवर सैनिकों के ही मसले होते थे और नागरिक तथा गांव में रहने वाले अन्य लोग साधारणतया इन संघर्षों से अछूते रहने की आशा करते थे, बल्कि प्रायः वे इन से अलग ही रहते थे। यहां तक कि १८५७ में दिल्ली के घेरे के समय हमें एक असाधारण दृश्य दिखाई देता है जब कि दिल्ली के व्यापारी घेरा डालने वालों को आवश्यक सामान पहुंचाते थे और उनकी हर प्रकार की सुख-सुविधा की व्यवस्था करते थे। नए-नए शासक आए और चले गए, परन्तु व्यापार और व्यवसाय सदा की भांति बराबर अबाध गति से हीचलता रहा।

यद्यपि दिल्ली के ऐतिहासिक और राजनीतिक फेर-बदल को समझ सकना पर्याप्त आसान है, परन्तु इसके नागरिक पहलुओं के बारे में जानकारी प्राप्त करना अपेक्षाकृत अधिक कठिन है। यह माना जा सकता है कि विभिन्न युगों में दिल्ली का नागरिक प्रशासन समयानुकूल प्रणालियों के अनुसार होता रहा और दिल्ली में एल्डर्ज़ (वरिष्ठों) के अधीन अथवा एक पंचायत या निगम की एक परम्परागत प्रथा के अनुसार यह शासन रहा हो, किन्तु यह बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती। दिल्ली के देश की राजधानी होने के नाते इस बात की अधिक सम्भावना है कि यहां के नागरिक प्रशासन में यहां के शासक के प्रत्यक्ष अनुशासन का तत्व विद्यमान रहा हो। मुसलमान काल में एक कोतवाल होता था जिसका कार्य रक्षा करना, कर वसूल करना तथा अन्य नागरिक कर्तव्यों का पालन करना था। पिछले दिनों दिल्ली में केन्द्रीय सरकार के होने से यहां के नगरपालिका सम्बन्धी प्रशासन पर केन्द्रीय सरकार का पर्याप्त प्रभाव रहा है। ब्रिटिश काल में अन्य कस्बों और शहरों में स्थापित स्वायत संस्थाओं की भांति दिल्ली की नगरपालिका समिति भी लगभग ९५ वर्ष तक कार्य करती रही है, और भारत के कई अन्य महत्वपूर्ण नगरों में कारपोरेशन की स्थापना के काफी समय बाद हाल ही में दिल्ली में कारपोरेशन की स्थापना की गई है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि देश की राजधानी होने के कारण दिल्ली का विशेष महत्व है और स्वाधीनता के बाद यह मांग की गई थी कि दिल्ली का प्रशासन एक पृथक राज्य के रूप में हो।

दिल्ली म्युनिसिपल कारपोरेशन एक्ट

नई दिल्ली और दिल्ली छावनी को छोड़कर यह नया अधिनियम दिल्ली के समस्त संघीय क्षेत्र पर लागू होता है। अब तक संघीय प्रदेश में खेती की कुछ जमीनें भी सम्मिलित थीं, किन्तु इनमें बड़ी शीघ्रता से वैयक्तिक एवं सार्वजनिक भवन-निर्माण का कार्य हो रहा है। इस प्रकार कारपोरेशन का क्षेत्र लगभग उतना ही है जितना कि संघीय क्षेत्र, क्योंकि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों का भेद अब शीघ्रता से कम होता जाएगा। कारपोरेशन में न केवल शहरी और ग्रामीण क्षेत्र ही एक साथ सम्मिलित किए गए हैं, अपितु इसके अन्तर्गत कई नागरिक क्रिया-कलाप भी हैं, जैसे शहर का विकास, बिजली की पूर्ति, परिवहन, जल की पूर्ति और जल-मल की निकासी इत्यादि। इस प्रकार नगरपालिका समिति के स्थान पर स्थापित किए जाने वाले कारपोरेशन का अधिकार क्षेत्र और अधिकार नगरपालिका की अपेक्षा बहुत अधिक व्यापक एवं विस्तृत हैं।

मेयर, डिप्टी मेयर, एल्डरमैन, और कौंसिलर अब दिल्ली की जनता की नागरिक सुविधाओं के लिए उत्तरदायी हैं और साथ ही उन पर जनता के नागरिक नियंत्रण का दायित्व भी है। निस्सन्देह उनके अधिकार और कार्य बड़े प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण हैं और यह आशा की जाती है कि दिल्ली के नगरपालिका सम्बन्धी प्रशासन का स्तर अब काफी उन्नत हो जाएगा। मेयर, डिप्टी मेयर आदि नामों को स्वीकार करने और अधिनियम के सामान्य ढांचे से यह धारणा बन सकती है कि दिल्ली में नगरपालिका सम्बन्धी निगम की एक अंग्रेजी प्रणाली लागू की जा रही है। और यह भी सम्भव है कि कारपोरेशन के कार्य-सम्पादन में कुछ अंग्रेजी नाम-रूप एवं तौर-तरीके भी स्वीकार किए जाएं। प्रायः ऐसा करना सुविधाजनक होता है और जहां सुविधा को ध्यान में रखना हो वहां कोई विदेशी प्रणाली केवल इसलिए स्वीकार न की जाए कि वह विदेशी है, यह बात युक्तियुक्त नहीं है। हां, इस बात पर विचार करना आवश्यक

केन्द्रीय सचिवालय से राजपथ के वाम पार्श्व का दृश्य

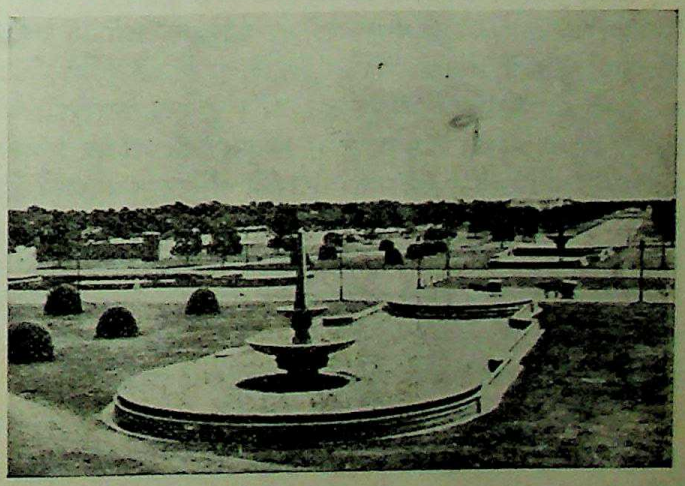

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

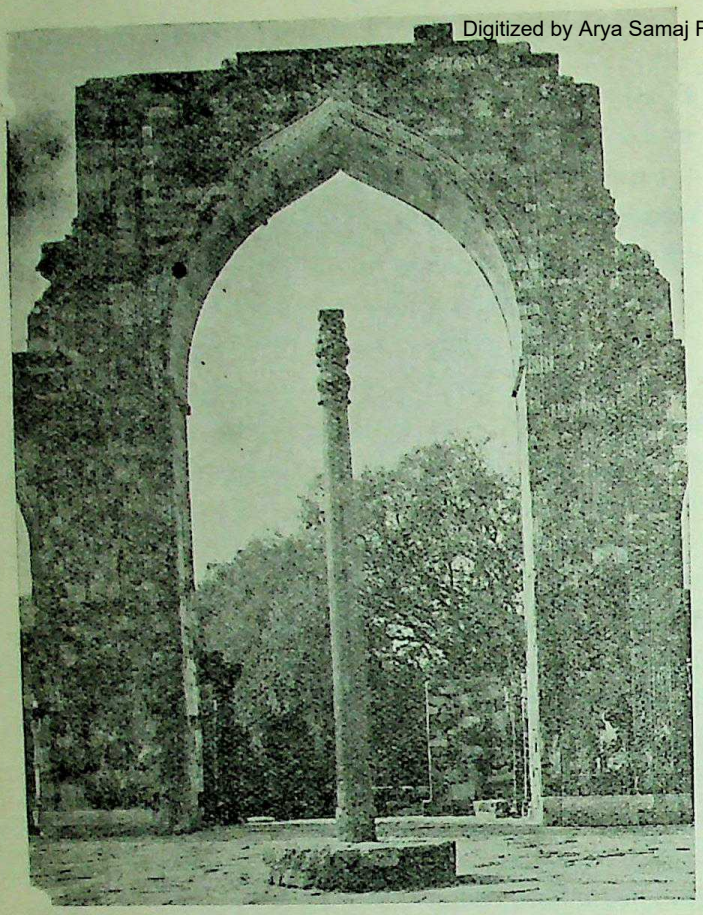

लोहे की किल्ली—कुतुब के निकट

है कि कोई विदेशी प्रणाली हमारी स्थानीय परिस्थितियों के अनुकल है या नहीं और उसमें स्थानीय गुणों का विकास हो सकता है या नहीं ? क्योंकि यह सम्भव है कि कोई विदेशी पौध भारत की भूमि में जड़ न पकड़ सके और विकसित न हो सके।

इस दृष्टि से हमें पता चलता है कि हमारी स्थानीय स्व-शासन की परम्पराओं में बहुत-सी बातें ऐसी हैं जो इस समय स्वीकार की गई कारपोरेशन प्रणाली के समानान्तर हैं। भूतकाल में नागरिक प्रशासन का सर्वोत्तम उदाहरण सम्भवतः पाटलिपुत्र का है, जो २२ से २५ शताब्दी पूर्व मौर्यों की राजधानी था। ३० सदस्यों के एक आयोग द्वारा पाटलिपुत्र का प्रशासन होता था और यह आयोग ६ पटलों (बोर्डों) में विभक्त था। यह कमीशन सार्वजनिक कल्याण के सब मामलों के लिए उत्तरदायी था, जिनमें मूल्यों का नियमन भी सम्मिलित था। मेरा खयाल है कि वर्तमान दिल्ली कारपोरेशन को यह कार्य करने का अधिकार नहीं। ये बोर्ड औद्योगिक कलाओं, जन्म और मरण के रिकार्ड, फुटकर व्यापार प्रणालियों, कर-वसूली और विदेशियों की देखभाल आदि के लिए उत्तरदायी थे। प्रो० राधाकुमुद मुकर्जी का कहना है कि स्वशासन की भारतीय प्रणाली, जो युद्धों तथा शासकों में होने वाले परिवर्तनों से सामान्यतः अप्रभावित रहती थी, पेशेवर संघों द्वारा निर्मित थी और उनकी राय में ये संघ इंग्लैण्ड के गिल्ड्स जैसे ही थे। इस प्रकार यह प्रतीत होगा कि भारतीय शहरों के लिए प्रशासन की कारपोरेशन प्रणाली को स्वीकार करते हुए मुख्यतः स्वरूप एवं अभिव्यक्ति की सुविधा को ही ध्यान में रखा गया है और इस में किसी विदेशी संस्था को लादने का उद्देश्य नहीं है।

दिल्ली की कारपोरेशन जैसी एक उच्चाधिकार प्राप्त संस्था से क्या आशा की जा सकती है ? दिल्ली शहर की आबादी १९४१ में ५

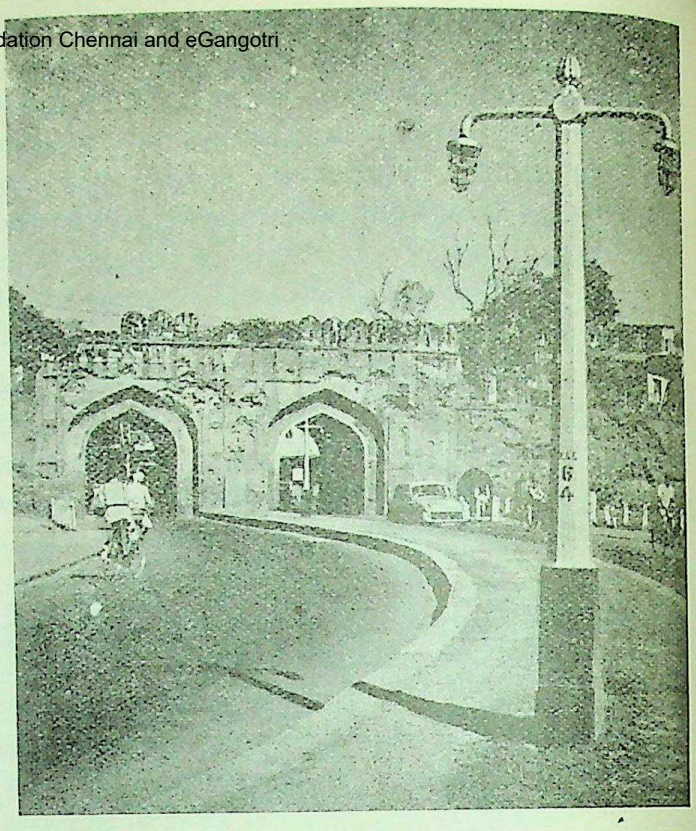

काश्मीरी दरवाज़ा

या ६ लाख थी, जो अब बढ़ कर सम्भवतः २० लाख से भी अधिक हो गई है। पहले दिल्ली शहर से किले की दीवार के भीतर पुरानी दिल्ली और छितरी आबादी वाले तथा शानदार ढंग से बसाए हुए नई दिल्ली नामक सरकारी क्षेत्र का बोध होता था जो साल में ६ महीने खाली रहता था। किन्तु अब मुख्यतः पिछले १० वर्षों में यह एक बहुत बड़ी राजधानी बन गई है और अब इसकी आवश्यकताएं इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि इसमें जो नागरिक सुविधाएं प्राप्त हैं, उनसे उनकी पूर्ति नहीं हो सकती। देश के अन्य बड़े-बड़े शहरों के विपरीत, दिल्ली का औद्योगिक विकास अबाध रूप से नहीं होने दिया गया है और किस हद तक यह विकास रोका जा सकेगा, यह एक विचारणीय प्रश्न है। दिल्ली के नागरिक के जीवन की गति बड़ी तीव्र हो गई है और अब उसके लिए ऐसी परिस्थितियों में रहना बड़ा दूभर एवं कष्टप्रद हो गया है कि जिनमें महत्वपूर्ण नागरिक आवश्यकताओं की भी कमी है। परिवहन, स्कूल, जल-पूर्ति और बिजली आदि की मुख्यतः कमी है और इस बात की आवश्यकता है कि व्यापारियों तथा फेरीवालों द्वारा फैलाई जाने वाली गन्दगी को रोका जाए। पिछले कुछ वर्षों में सड़कों पर भीड़-भाड़ बहुत अधिक बढ़ गई है और सम्भवतः ऐसी स्थिति आ गई है कि जब दिल्ली में भूगर्भ मार्ग एवं ऊपरी-मार्ग बनाने की बात पर विचार किया जाना चाहिए, जिससे कि दिल्ली की कुछ सड़कों पर यहां के नागरिकों की सुरक्षा हो सके। क्योंकि तभी सड़कों पर चलने वालों के लिए सड़कों के आर-पार सुरक्षित रूप में जाना सम्भव हो सकेगा। किसी भी टूटी-फूटी सड़क की भांति दिल्ली की सड़कें भी बहुत खराब हो गई हैं और उनसे गाड़ियों की बहुत अधिक टूट-फूट होती है। और उनसे नुक्सान पहुंचता है। यूरोप के छोटे-छोटे शहरों में सार्वजनिक स्नानागार तथा आधुनिक ढंग के मूत्रालयों जैसी कई अन्य सार्वजनिक सुविधाएं प्राप्त हैं। नया कारपोरेशन दिल्ली में भी इन सुविधाओं को सुलभ बनाने की ओर ध्यान दे सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमीज़

महिन्दर सिंह सरना

सबेर होने से पहले ठण्डी पुरवा चली। गर्म रात की बेचैनी के पश्चात सुखद पवन का एक झोंका बाबू लोकनाथ की नींद को एक बार झकझोर गया। एक बड़ा मीठा और रंगीन सपना लोकनाथ ने देखा। वह दोस्तों के साथ निशात में एक हिन्दुस्तानी फिल्म देखकर निकला था। पात्रों के अभिनय की प्रशंसा करते हुए वे शाहालमी के सामने कैलाश रेस्टोरां में घुस गए। वहां उन्होंने कुलफी, फलूदा और अनानास की रसीली फांकें खाईं। उसके बाद बनारसी पान की गलोरी मुंह में दबाए वे अनारकली की सैर को चल दिए। ओफ! अनारकली की वह चहल-पहल, वह फैशन, वह रंगीनी, वह फुरतीली पोशाक से सजी लड़कियों के झुण्ड। वे इतने मस्त हुए कि जब वे कालेज के होस्टल में पहुंचे तो करीब एक बज चुका था और होस्टल का सुपरिन्टेण्डेण्ट गुस्से से तम-तमा रहा था। और जब उसने प्रिंसिपल के पास रिपोर्ट करने की धमकी दी तो भय से बाबू लोकनाथ की आंख खुल गई।

फिर उसने देखा कि वह नई दिल्ली की लोदी कालोनी में अपने क्वार्टर के सामने लान में सो रहा था। अपनी पत्नी और बच्चों की खाटों के बीच में उसकी टूटी-सी खाट जकड़ी हुई थी और कालेज की जिन्दगी बस एक सपना बन कर रह गई थी।

कालेज में वह गृहस्थाश्रम के खिलाफ़ कितना ज़हर उगला करता था और अब चारों ओर गृहस्थ ही गृहस्थ लेटा था। बड़ा तुनक कर तब वह कहा करता था--जिन्दगी क्या है, बी० ए० पास करो, क्लर्की करो, शादी करके दुनिया की आबादी बढ़ाओ और उम्र भर नमक, तेल और लकड़ी की चिन्ता करते मर जाओ। वह इस राह पर अपनी जिन्दगी को नहीं चलाएगा। वह कोई नई जीवन-राह पकड़ेगा और जिन्दगी के तत्वों को कोई अलग ही रूप देगा। पर न जाने कब उसे घेर कर जिन्दगी उसी जीवन की राह, उसी मंझधार की ओर बहा ले गई थी। उसका रोम-रोम कबीलेदारी में जकड़ा था और बड़े गहरे पानी में उसकी गृहस्थ की नैया झकझोले खा रही थी।

उसके साथ वाली खाट पर उसकी बड़ी लड़की माधुरी हाय, हाय! कर रही थी। कितने दिनों से बेचारी की आँखों में पीड़ा थी। डिस्पेंसरी के डाक्टर ने कुकरे कह कर कास्टिक छुआ दिया था। उस दिन से ऐसी तकलीफ हुई कि किसी दवाई से लाभ नहीं हो रहा था। बेचारी, कई रातें मलाई के फहे रखकर सोती रही थी। पर लाली कम होने का नाम ही नहीं लेती थी और जब टीस पड़ती थी तो माधुरी तड़प उठती थी। कल रात उसकी माँ ने रसौंद, अफीम और फटकरी पीसकर आँखों के छप्परों पर गाढ़ा-सा लेप कर दिया था। अब छप्पर बिलकुल ही जुड़ गए थे, और अपना निचला होंठ दांतों में भींचती हुई वह आँखें खोलने के प्रयत्न में बेचैन हो रही थी। बाबू लोकनाथ का दिल भर आया और वह टीस के साथ बिस्तर से उठ बैठा। उसने प्यार से माधुरी को पुचकारा। माधुरी उसे सब बच्चों से लाड़ली थी। और वह अभी तेरह बरस की भी नहीं हुई थी कि उसने बड़ी समझदारी, हमदर्दी और तत्परता से घर का आधा काम अपने कन्धों पर उठा लिया था।

"माधुरी, माधुरी, बेटा आँखें नहीं खुलतीं क्या?"

इसी समय उसकी पत्नी घर का कामकाज समाप्त कर प्रमीला को जगाने वहाँ पहुँची। वह आसन्नप्रसवा थी। उसने अपना पेटीकोट और धोती निचोड़ कर मुण्डेर पर सूखने डाल दिया था। बच्चा पैदा होने के दिन निकट थे। उसके लिए हिलना-डुलना भी दुःसाध्य था, पर फिर भी वह सबेर-सार नहा-धोकर अपने जिस्म के कपड़े और छोटे अशोक के फ़्राक और जांघिए धो डालती थी। लोकनाथ उसे कई बार मना कर चुका था, पर वह बड़ी हठीली थी। सारा दिन उसके अंग-अंग में पीड़ा रहती थी और रात वह बड़ी बेचैनी से काटती थी। सरकारी डिस्पेंसरी का डाक्टर खून और कैलशियम की कमी बताता था, फिर भी वह मुश्किल से मुश्किल काम को भी हाथ में ले लेती थी। क्षण भर के लिए बाबू लोकनाथ ने उस मिट्टी के सम्बन्ध में सोचा, जिससे भगवान न इस औरत को बनाया था।

"उठ री!" उसकी पत्नी प्रमीला को झकझोरती हुई कह रही थी "उठ, मर परे, इकट्ठी क्यों हुई जा रही है। देखो, सुनती ही नहीं। हरामखोर कहीं की! उठ! तेरे लिए अब क्या कोई नई दुपहर चढ़ेगी! और उधर देखो, जग कर वे एक टक देखे जा रहे हैं। इतना नहीं हो सकता कि पास से बच्चों को ही उठा दें। अभी कहने लगेंगे कि मुझे दफ्तर को देरी हुई जा रही है। ओ री, मैं तुझी से कह रही हूँ, उठेगी या कि मुझ से हड्डियाँ तुड़वा कर उठना है!" और लड़की की कोमल-सी कलाई पकड़ कर उसे बिस्तर से उठा कर बैठा दिया।

प्रमीला हिचकियाँ लेकर रोती रही। लोकनाथ सब्र का घूंट भर कर रह गया।

इतने में छोटा अशोक भी जाग पड़ा और रोने लगा। "तू अभी जग पड़ा रे बैरी! अभी तो सारा दिन पड़ा है, मेरी हड्डियाँ जलाने को। घड़ी भर तो साँस लेने दे। कैसे तुम जम की तरह मेरी जान से चिपटे हुए हो। न मेरी जान निकलती है और न छुटकारा मिलता है।"

और वह जोर-जोर से उसे थपथपाने लगी। इस थपकी की मार से बच्चा चिल्लाने लगा। माँ ने एक झटके के साथ उसे बाँह से पकड़कर उठाया और जिबह किए गए मुर्ग़े की भांति उसे हवा में उछालती भीतर ले गई।

बाबू लोकनाथ ने सब्र का एक और घूंट भीतर निगल लिया।

यह सुशिक्षित माताओं का हाल था। अपढ़ माताओं के बच्चों का तो भगवान ही रक्षक होगा। यह सच था कि ऐसी दशा में सब औरतें कड़ुवे और चिड़चिड़े स्वभाव की हो जाती हैं, पर इसका यह मतलब नहीं कि बच्चों की बोटी-बोटी नोच डाली जाए। फिर एकाएक यह सोच कर बाबू लोकनाथ नर्म पड़ गया कि अपनी पत्नी को इस दशा तक पहुँचाने की उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी भी तो जिम्मेदारी थी, उसके स्वभाव को कड़वा बनाने में उसका भी तो हाथ था। यह सच है कि इस बार कुछ दैवयोग से ही जल्दबाजी हो गई थी, नहीं तो उनके पहले बच्चों के बीच तीन-चार बरस का अन्तर जरूर रहता था। सारा दोष कुदरत के मुँह पर थोप कर बाबू लोकनाथ बरी हो गया। बरामदे में पड़ी सुराही को तिपाही पर से उठा कर लोकनाथ भीतर ले गया। फिर सुराही में से ठण्डे पानी का एक कटोरा भर कर वह माधुरी की आँखें धोने लगा। रसौंद के लेप से माधुरी का मुँह अभी तक भयावना बना हुआ था। रसौंद के धुल जाने से वह नर्म, सफेद और कोमल निकल आया था। बड़ी कारीगरी और सलीके के साथ लोकनाथ ने उन जुड़ी हुई पलकों को अलग किया। लड़की की खुली आँखों की लाली देख कर वह काँप गया। उसे जरूर माधुरी को बड़े अस्पतालों में दिखाना चाहिए था। आँखों का मामला हुआ, फिर बेटी का धन। उसने सोचा आज जरूर सुपरिन्टेण्डेण्ट से छुट्टी लेकर एक घंटा पहले दफ्तर से आ जाएगा।

"उठ बेटा, उठ अब!" बिस्तर समेटने से पहले लोकनाथ ने अपने बड़े लड़के मोतीलाल को जगाया। मोतीलाल की टाँगें फोड़ों से भरी हुई थीं और आधे से अधिक फोड़े बिस्तर के साथ चिपक गए थे। एक-एक करके बाबू लोकनाथ ने उन्हें बिस्तर से उतारा। काली मरहम पर खून और मवाद के लाल-पीले निशान बन गए थे। बिस्तर समेटने का काम माधुरी और मोती लाल के जिम्मे था; पर जब से माधुरी की आँखें और मोतीलाल की टाँगें खराब हो गई थीं, लोकनाथ ने यह काम स्वयं सम्भाल लिया था। सब बिस्तर समेट लिए, सिर्फ अपना बिस्तर उसने बिछा हुआ रहने दिया। इसके पीछे भी कोई रहस्य था। उसके बिस्तर की चद्दर और तकिए का गिलाफ कल ही धोबी धो कर लाया था। लान में अभी बहुत से लोग सोए हुए थे। अभी उन्होंने जगना था, इर्दगिर्द देखना था। अभी कुछ देर बाबू लोकनाथ अपने पड़ौसियों के सम्मुख अपनी सफेदपोशी का प्रदर्शन करना चाहता था।

पंखा झलते प्रमीला की बाहें थक गई थीं, पर अंगीठी सुलगने का नाम नहीं लेती थी। गाढ़ा धुआँ सारे घर को घेरे हुए था और धुएँ की मार से आँखें बचाती हुई माधुरी अलमारियों में छिपती फिरती थी। अंगीठी सुलगाने में प्रमीला मानी हुई उस्ताद थी, पर आज घर में कच्चे कोयले नहीं थे और कच्चों के बिना पक्के आग नहीं पकड़ते। बड़ी देर तक बाबू लोकनाथ घर में कोई रद्दी कागज ढूंढ़ते रहे जिसकी सहायता से पक्के कोयलों को सुलग उठने के लिए उत्तेजित किया जा सके। अन्त में उनकी निगाह एक मरोड़ी हुई कापी पर पड़ी, पर उठाने से पहले ही प्रमीला ने टोक दिया :—

"बाबू जी, यह तो मेरी भूगोल की कापी है।"

भिण्डी तोरी काट रही माँ लड़की को फिर से डांटने लगी—"भूगोल की कुछ लगती, स्कूल की कापियाँ नुक्कड़ों में छिपा रखती है तू! कल फिर कहेगी, मैंने नई कापी लेनी है।" अन्तिम शब्द रोने के लहजे में कुछ इस तरह फैला कर कहे गए कि बाबू लोकनाथ मन ही मन में अपनी पत्नी की कुदरती अदाकारी की प्रशंसा किए बिना न रह सका।

अन्त में एक सन्दूक के पीछे से बाबू लोकनाथ को पुराने अखबार का एक टुकड़ा मिल गया। उस टुकड़े पर दिए फिल्म के इश्तहारों पर उसकी आंखें अटक गईं। कितनी मनोरंजक और सुन्दर तस्वीरें थीं। बाबू लोकनाथ ने एक ठण्डी साँस खींची। अब तो बरसों हो गए थे कोई फिल्म देखे। आखिरी फिल्म जब उन्होंने देखी थीं, तब प्रमीला तीन बरस की थी। वह डर गई थी और फूट कर रोने लगी थी। उसकी माँ ने उसे चुप करा कर सुलाने की बड़ी कोशिश की थी, पर लड़की ने ऐसी तान छेड़ी कि उन्हें फिल्म अधूरी छोड़ कर हाल में से उठ कर आना पड़ा था। फिल्म तो एक ओर रही, अब तो अखबार खरीदे भी काफी अर्सा हो गया था। जब छोटा अशोक पैदा हुआ था, तो बढ़ रहे बजट को घटाने के लिए बाबू लोकनाथ ने अखबार लेना बन्द कर दिया था। अब वह पड़ौस के रेडियो से इक्का-दुक्का समाचार सुनकर या दफ्तर में किसी के अखबार पर निगाह डालकर ही दुनिया के सम्बन्ध में अपनी जानकारी को ताजा करता था।

अंगीठी सुलगाते हुए उसका मंदा हाल हो गया था और पेचदार धुँआँ उसके दिमाग में घुस रहा था। उसने शीशे में अपना मुँह देखा तो उसे लगा जैसे वह रोकर अभी चुप हुआ है। आँखों से उसका ध्यान अपनी बढ़ी हुई दाढ़ी की ओर गया तो उसने सोचा कि आज उसे जरूर शेव करनी चाहिए थी। पिछले तीन दिन से उसने शेव नहीं की थी और उसका मुँह कांटेदार चूहे की पीठ का-सा हो गया था। शायद इसी से वह जीवन में अफसल था। चुपड़े मुँह वाले कल के छोकरे उस्तरे और क्रीम की सहायता से आज उसके सुपरिन्टेण्डेण्ट बन गए थे, और वह अभी तक दफ्तरी जिन्दगी के सबसे निचले डण्डे पर लटक रहा था। आज उसने शेव करने का पक्का इरादा बना लिया। पौने आठ बज चुके थे। नौ बजे उसने दफ्तर पहुँचना था। शेव की बात उसने कल पर छोड़ी और अंगोछा कन्धे पर डाल कर गुसलखाने में घुस गया।

गुसलखाने में वह सब कुछ भूल गया। नल की मोटी धार के शोर में गृहस्थ का शोर जैसे खो गया और एक पुराना फिल्मी गाना बाबू लोकनाथ के होठों पर तैर गया। साबुन अपने शरीर पर मलता हुआ वह लम्बी टेक में गाता रहा पर उसने नल बंद किया तो गाना उसके होठों पर ठिठक गया और फिर खामोश हो गया। बाहर छोटे अशोक के रुदन की आवाज सुनाई पड़ रही थी। इस रुदन के अपने ही स्वर और अपने ही अन्तरे थे। फिर इस रुदन में और कई रुदन मिल गए और सारा घर एक सरगम की पंचम से गूँज उठा।

"मोआ, कुत्ता!" प्रमीला की आवाज आई—"रण्डी छोड़ना, आज ही मरे।"

"चुप रहती है या नहीं?" उसकी माँ उसे चपत लगाते हुए बोली—"समय नहीं देखती, मौका नहीं देखती। उसे गालियाँ बके जा रही है! तू ही मर परे, क्या पड़ा है तेरे बिना?"

"और मुझे चूंटी क्यों काटी है इसने?" प्रमीला ने शिकायत की।

"तो तूने जूठा पानी क्यों डाला मुझ पर!" मोतीलाल मां की तरफदारी से अकड़ कर बोला।

"अच्छा, चुप रह। चाय पीओ मरो!"

जल्दी-जल्दी लोकनाथ ने जिस्म पोंछा और अंगोछा निचोड़ते हुए कन्धे पर डाल गुसलखाने से बाहर निकल आया।

घर के शोर-शराबे से बचता हुआ वह दफ्तर की तैयारी में लग गया। अचानक उसके मुँह पर एक खुशी की रेखा उभरी। कल की धुलाई में धोबी उसकी एक कमीज लाया था। धोबी की धुली हुई कमीज पहन कर दफ्तर जाने के विचार के साथ ही उसके भीतर एक हुलास आ गया। कितने महीने हो चले थे, धोबी का धुला हुआ कपड़ा पहने। और जब उसने कलफ से अकड़ी बर्फ की तरह सफेद कमीज को हाथों में पकड़ा तो भावना से उसकी अंगुलियाँ काँप गईं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर जब उसने कमीज़ खोली, तो उसका चेहरा मुरझा गया और उसका दिल धोबी जाति के विरुद्ध क्रोध से भर गया। तभी तो उन्होंने पिछले साल धोबी को हटा दिया था! और अब भी अगर उसकी पत्नी इस दशा को न पहुँचती और माधुरी की आँखें खराब न होतीं, तो उन्होंने कब धोबी की ओर देखना था? एक बेहोशी की सी हालत में बहुत देर तक वह उस फटी हुई कमीज़ की ओर देखता रहा।

उसकी पत्नी अब उस कमीज़ को सीने में लगी हुई थी। फटी भी वह कोई थोड़ी नहीं थी। सीने के बाद ताजे टांके साफ दिखाई पड़ते थे और कन्धों के पास से कमीज़ बहुत खिंच गई थी। पर चलो, साफ और सफेद तो थी। आजकल सफेदपोशी का जमाना है। सफेद कपड़े की इज्जत है और पीठ के पीछे लगे हुए टांके कौन देखता है।

एक मुसीबत खत्म होती थी, तो दूसरी आ पड़ती थी। अब मोतीलाल ने यह जिद पकड़ ली कि वह भी धोबी की धुली कमीज़ पहनेगा। यह सच था कि वह दस बरस का हो चला था। घर का बड़ा बेटा था, उसके साथ बड़ी-बड़ी आशाएँ जुड़ी हुई थीं। पर उस समय वह फर्श पर कुछ इस तरह लोट रहा था कि बाबू लोकनाथ को बड़ी ग्लानि हुई और बच्चों के नाम रखने की अपनी योग्यता पर उसे सन्देह होने लगा। उस समय बाबू लोकनाथ अपनी ही नजरों में गिर गया। यह सच था कि फोड़े-फुंसियों ने मोतीलाल को बहुत ढीठ और जिद्दी बना दिया था, पर धोबी की धुली कमीज़ कोई ऐसी चीज तो थी नहीं कि आँख झपकते पैदा की जा सकती? आखिर उसकी माँ को याद हो आया कि लुधियाना की नई कमीज़, जो पिछली गर्मियों की छुट्टियों में मोतीलाल ननिहाल से लाया था, अभी तक कोरी पड़ी थी। पर वह तो कहीं बिस्तरों वाले बड़े सन्दूक में पड़ी थी और उस सन्दूक पर तीन और भी भारी ट्रंक टिके हुए थे।

जब बाबू लोकनाथ सब से ऊपर का ट्रंक उतार रहा था तो एक बड़ी बारीक और दिल-तोड़ आवाज पैदा हुई और चौंक कर उसने कन्धों को हाथ लगा कर देखा--घिसी हुई कमीज़ दोनों कन्धों से बिलकुल फट गई थी। उसने जल्दी-जल्दी कमीज़ उतार दी और उसे देखता भर रह गया। साफ था कि अब बड़ी से बड़ी मरम्मत भी उसे संवार नहीं सकती थी।

अब वह क्या करेगा? कौन-सी कमीज़ पहनेगा। कल जो कमीज़ वह दफ्तर पहनकर गया था, वह एकदम मैली और खराब हुई पड़ी थी। धोबी की कमीज़ की आशा के लिए वह कमीज़ पहने ही सो गया था, नहीं तो आगे वह सदा बनियान पहन कर सोया करता था।

छोटी प्रमीला ने एक सुझाव दिया--"बाऊ जी, मैं.... मैली कमीज़ धो देती हूं। एक सैकण्ड में धुल जाती है।"

"हां, बेटा धो डाल!" बेटी के इस सहयोग पर, शुक्र से भर कर बाबू लोकनाथ ने कहा।

कमीज़ धुल गई, पर वह अब सूखे कैसे? बाहर धूप बहुत थोड़ी थी और दफ्तर जाने में पहले ही देरी हो गई थी।

माधुरी कहने लगी--"मैं बंगालियों के घर से इस्तरी माँग लाती हूँ।" बात तो ठीक थी। एक पंथ, दो काज।

कमीज़ सूखती भी जाए और साथ-साथ प्रेस भी होती जाए। पर प्रेस के लिए कच्चे कोयले दरकार थे, और कच्चे कोयले घर में नहीं थे।

प्रमीला कहने लगी--"मैं कुछ ढूंढ़ देखती हूँ, शायद उपलों के नीचे और पेटी के पीछे से कुछ कोयले निकल आएँ।"

बाबू लोकनाथ आज छोटी बेटी की कुर्बानी के आगे झुकता चला जा रहा था। कोयले की तलाश में प्रमीला पसीने से नहा गई, फिर भी सिर्फ चार-पांच कोयले हाथ लगे। इनसे इस्तरी कैसे गर्म होती?

"मैं बताऊँ, बाऊ जी!" प्रमीला ने एक और सुझाव दिया, "पीतल की कटोरी में कोयले डाल कर कमीज़ पर फेरने से प्रेस हो जाएगी।"

यह सुझाव सब ने मान लिया। प्रमीला तो गुणों का भण्डार थी। पर किसी ने उसकी कद्र नहीं जानी थी।

"हाथ नहीं लगाना बाऊजी," प्रमीला ने चीखकर कहा--"कटोरी बहुत गर्म है।" पर उसके कहने से पहले ही लोकनाथ कटोरी को हाथ लगा चुका था। हड़बड़ा कर उसने कटोरी हाथ से छोड़ दी थी और सुलगते कोयलों ने गीली कमीज़ पर काले और कभी न जा सकने वाले निशान डाल दिए थे।

उसकी पत्नी ने एकदम उसका हाथ पकड़ कर आटे के टीन में दबाया और फिर गुसलखाने में से तेल घोल कर ऊपर थोप दिया। पर फिर भी उसकी तीन उंगलियों पर छोटे-छोटे छाले पड़ गए।

उन फफोलों की पीड़ा बिलकुल मामूली थी। असली पीड़ा तो वह थी जिसकी टीस उसके दिल में उठ रही थी। नई कमीज़ सिलाने के लिए, नए आने वाले बच्चे के लिए जोड़ कर रखी रकम में से खर्च करना अब आवश्यक हो गया था। एकाएक बाबू लोकनाथ निराश हो गया। थोड़ी बात पर वह हिम्मत नहीं हारता था, पर अब उसने दिल छोड़ दिया। निराशा के पाताल में पहुंच कर उसने प्रमीला की भूगोल की कापी उठाई और एक सफा फाड़ कर उस पर लिखना शुरू किया :--

"जनाब सुपरिन्टेण्डेण्ट साहब,

प्रार्थना है कि एक घरेलू दुर्घटना के कारण मैं दफ्तर में उपस्थित नहीं हो सकता। इस दुर्घटना में मेरा दायां हाथ बिलकुल जल गया है और कुछ दिन के लिए मैं दफ्तर की जिम्मेदारियां निबाहने में असमर्थ हूं।"

कुछ सोचने के बाद उसने लिखा--

"मेरे उपस्थित न होने का एक कारण यह भी है कि मेरे पास कोई कमीज़ नहीं है। नई कमीज़ सिलाने के लिए मुझे कम से कम दो दिन का अवकाश चाहिए।"

बाद में कुछ सोच-विचार कर उसने अन्तिम पंक्तियां काट दीं और एक नए कागज पर अर्जी लिखनी शुरू कर की।

रूपान्तरकार : प्रीतम सिंह 'पंछी'

"अग्राह्याः कार्यकालेषु कर्षका राजपुरुषाश्च।"

[कौटिल्य अर्थशास्त्र]

खेत में काम करने वाले किसान को फसल के दिनों में और ड्यूटी पर तैनात सरकारी कर्मचारी को हिरासत में नहीं लेना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामुदायिक विकास की नई मंज़िलें

अशोक

गान्धी जी कहते थे--

"अगर गांव नष्ट हो जाएं तो हिन्दुस्तान ही नष्ट हो जाएगा। वह हिन्दुस्तान ही नहीं रह जाएगा, दुनिया में उसका 'मिशन' ही खतम हो जाएगा।"

"हिन्दुस्तान के सच्चे लोकराज में शासन की इकाई गांव होगा, सच्चा लोकराज केन्द्र में बैठे हुए बीस आदमियों से नहीं चल सकता। उसे हर गांव के लोगों को नीचे से चलना होगा।"

इसलिए स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद "भारत के लाखों गांवों में बसे हुए देहातियों तक आजादी का प्रकाश पहुंचाने, सात करोड़ परिवारों में जीने के अधिकार की लालसा पैदा करने अथवा भारत के गांवों में एक मक और अहिंसात्मक क्रान्ति लाने के लिए" गान्धी जी के जन्म दिवस २ अक्तूबर, १९५२ को सामुदायिक विकास-कार्यक्रम का विधिवत उद्-घाटन किया था।

भारत और अमेरिका के टैक्नीकल सहकार समझौते के अन्तर्गत देश भर में ५५ सामुदायिक योजना क्षेत्रों में यह कार्यक्रम शुरू किया गया। इन योजना क्षेत्रों में २५,२६४ गांव आते थे और १,६४,००,००० लोग रहते थे।

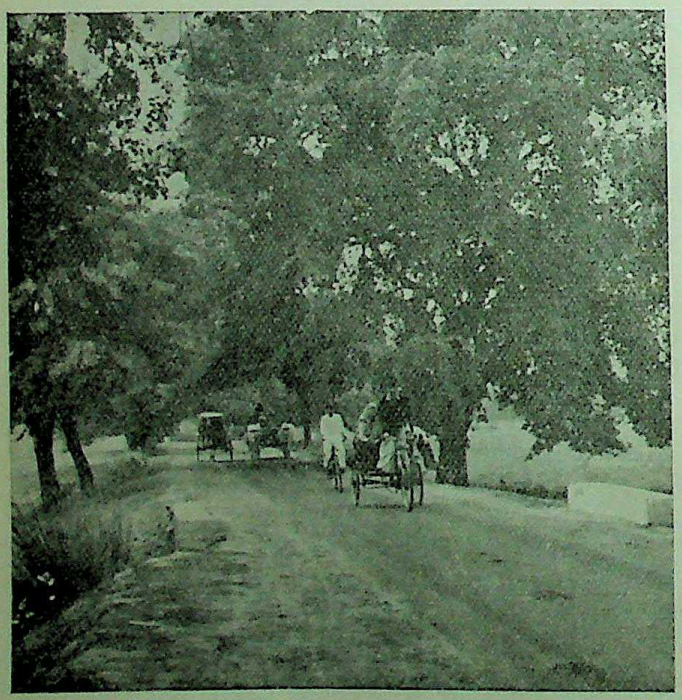

गांववालों द्वारा निर्मित शमसपुर की नई सड़क

पंजाब के एक गांव की पंचायत का अधिवेशन

इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामवासियों का बहुमुखी विकास करना है, जिसमें आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विकास भी शामिल है। कार्यक्रम में इन बातों पर विशेष ध्यान दिया गया है--

(क) आपसी भाईचारे और मेल-जोल से गांववालों में सामुदायिक भावना पैदा करना, जिससे अन्ततः उत्पादन के बुनियादी साधनों जैसे भूमि पर सारे समाज का अधिकार हो जाए।

(ख) जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं जैसे भोजन, कपड़े और मकान के बारे में गांव को आत्मनिर्भर बनाना।

(ग) व्यक्ति में आत्मविश्वास भरना और समाज में पहले करने की भावना पैदा करना ताकि गांववाले अपना काम और प्रबन्ध खुद चला सक और गांव को पंचायतों तथा सहकारी समितियों की मदद से विशाल भारतीय गणराज्य की स्वशासी इकाई बनाना।*

कार्यक्रम में निम्नलिखित बातों को प्राथमिकता दी गई है:--

(क) कृषि--

(१) बेकार पड़ी हुई ऊसर भूमि को खेती योग्य बनाना;

(२) सिंचाई की सुविधाओं को बढ़ाना;

(३) अच्छे बीज, बढ़िया खाद और खेती के सुधरे औजारों को लोकप्रिय बनाना, पशुचिकित्सा की व्यवस्था करना, भूमि के सम्बन्ध में नए-नए परीक्षण करना; खेती की पैदावार की बिक्री का प्रबन्ध करना और खेती के लिए ऋण दिलवाना; और

(४) देश में मछली-पालन का विकास करना तथा फलों और सब्जियों की खेती को प्रोत्साहन देना।

(ख) संचार व्यवस्था--

पुरानी सड़कों की मरम्मत करना और नई सड़कें बनाना।

*माउण्ट आबू में सामुदायिक विकास के राष्ट्रीय सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्ताव से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) शिक्षा--

मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध करना, स्कूल खोलना और उनकी इमारतें बनवाना, समाज शिक्षा की व्यवस्था करना तथा नए-नए पुस्तकालय, वाचनालय आदि खोलना ।

(घ) स्वास्थ्य--

साफ़-सुथरे कुएं बनवाना, गन्दे पानी की निकासी के लिए नालियों का प्रबन्ध करना, रोगियों के लिए डाक्टरी सहायता और जच्चा-बच्चा के लिए प्रसूतिका केन्द्रों की स्थापना करना।

(ङ) प्रशिक्षण--

कारीगरों, किसानों, विस्तार कार्यकर्त्ताओं स्वास्थ्य निरीक्षकों और विकास कार्यक्रम के अन्य कार्यकर्ताओं के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था करना ।

(च) कुटीर एवं ग्रामोद्योग--

बेकारी को दूर करने के लिए कुटीर लघु एवं ग्रामोद्योगों की स्थापना करना और तैयार माल की बिक्री की व्यवस्था करना ।

(छ) आवास व्यवस्था--

नए, हवादार और साफ़-सुथरे मकान बनाना तथा पुराने घरों का सुधार करना ।

(ज) समाज कल्याण--

गांवों में खेल कूद प्रतियोगिताओं और मेलों का आयोजन करना और मनोरंजक व सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करना।

(झ) सहकारी समितियां--

सहकारी समितियों की स्थापना करना ।

कार्यक्रम का संगठन

हर विकास खण्ड में औसतन १०० गांव होते हैं जिनमें प्रायः ६० से ७० हजार तक लोग रहते हैं। एक खण्ड का औसत क्षेत्रफल १५० से १७० वर्गमील तक होता है। खण्ड के सारे काम के संचालन का उत्तरदायित्व खण्ड विकास अधिकारी पर होता है जिसे बी० डी० ओ० भी कहते हैं। प्रत्येक पांच या दस गांवों के लिए एक ग्राम सेवक होता है । किसी एक गांव में वह अपना दफ्तर बना लेता है और बाकी गांवों का दौरा करता रहता है। ग्राम सेवक की सहायता के लिए प्रत्येक खण्ड में एक से तीन तक समाज शिक्षा संगठक होते हैं जिनका काम समाज शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, मेलों, प्रदर्शनियों आदि का आयोजन करना होता है। खेती-बाड़ी, पशु-चिकित्सा, घरेलू उद्योग, भूमि को फिर से खेती योग्य बनाने, सिंचाई और कुएं खोदने, स्वास्थ्य और सफ़ाई, जनकल्याण, शिक्षा और मनोरंजन सहकारिता आदि की समस्याओं के हल के लिए विशेषज्ञ रखे जाते हैं जिन्हें विस्तार अधिकारी के नाम से पुकारा जाता है। ग्राम सेवक और गांववाले इन से बराबर मदद लेते रहते हैं ।

प्रायः हर खण्ड में बीजों के विकास के लिए एक परीक्षण केन्द्र, एक औषधालय, एक पशु चिकित्सालय, एक नस्ल सुधार केन्द्र भी खोला जाता है। खेती के नए तरीके अपनाने के सम्बन्ध में गांवों में सभाएं और प्रदर्शन किए जाते हैं। किसानों या गांववालों से पूछा जाता है कि उनकी सबसे बड़ी समस्या क्या है और उसके हल करने के लिए क्या कदम उठाए जाने चाहिए और फिर परिस्थितियों को देखते हुए कार्य शुरू किया जाता है ।

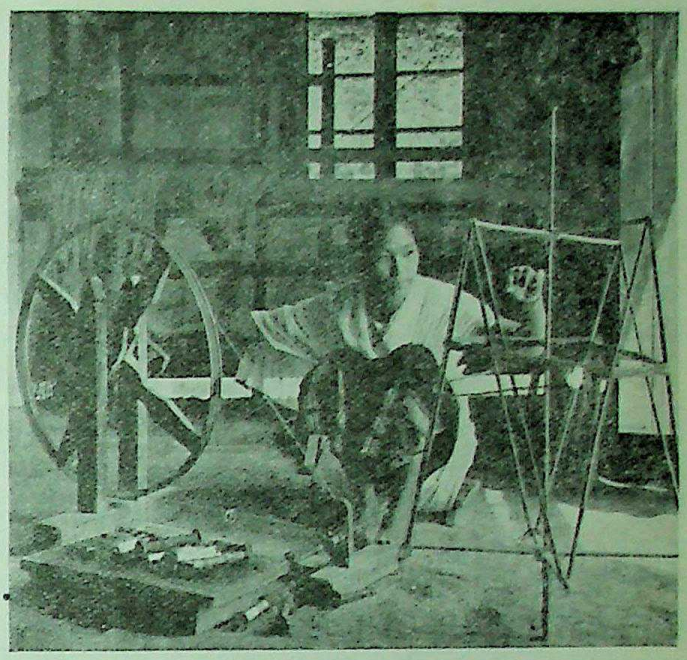

एक गारो बालिका चरखा चलाते हुए

वास्तव में ग्राम सेवक ही इस कार्यक्रम की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी होते हैं। गांववालों से सीधा सम्पर्क उन्हीं का रहता है। विशेषज्ञों का ज्ञान गांववालों तक पहुंचाने का उत्तरदायित्व उन्हीं का होता है। वे गांववालों की समस्याएं उच्च अधिकारियों तक और उच्च अधिकारियों के निर्देश

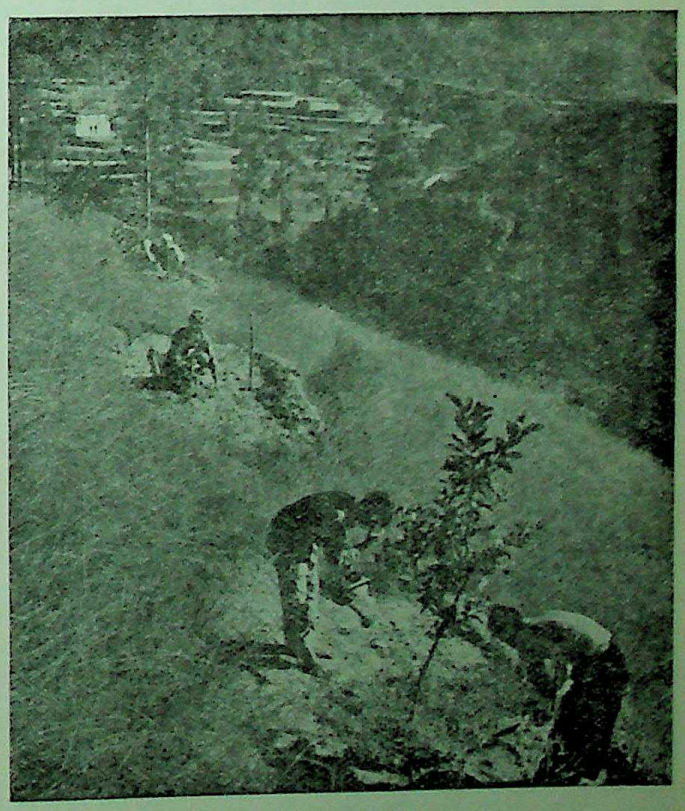

कुमायूं में पर्वतों पर वृक्षारोपण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांववालों तक पहुंचाते हैं। कार्यक्रम को कार्यान्वित करना भी उन्हीं का काम होता है।

जिले भर में विकास कार्यक्रम की देखरेख का भार कलक्टर पर होता है। राज्य स्तर पर इसका संचालन विकास आयुक्त करता है। विभिन्न राज्यों के कार्यक्रम में समन्वय स्थापित करने के लिए केन्द्र में योजना आयोग के अन्तर्गत सामुदायिक योजना प्रशासन बनाया गया; पर कार्यक्रम के महत्व को देखते हुए इस प्रशासन को २० सितम्बर, १९५६ को सामुदायिक विकास मन्त्रालय का रूप दे दिया गया। श्री सुरेन्द्र कुमार दे इस मन्त्रालय के मन्त्री नियुक्त हुए।

कार्यक्रम की प्रगति

पहली पंचवर्षीय योजना की अवधि में जन सहयोग से विभिन्न क्षेत्रों में जो सफलताएं मिलीं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं-- सामुदायिक विकास योजना और राष्ट्रीय विस्तार सेवा क्षेत्र में १४,००० नए स्कूल बनाए गए; ५,१५४ प्राइमरी स्कूलों को बुनियादी स्कूलों में बदला गया; ३५,००० प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र खोले गए जिनमें ७,७३,००० व्यक्तियों को साक्षर बनाया गया; ४,०६९ मील लम्बी पक्की तथा २८,००० मील लम्बी कच्ची सड़कें बनाई गईं; तथा गांवों में ८०,००० शौचालय तैयार किए गए।

कुल मिला कर मार्च १९५६ तक इस कार्यक्रम पर ७२·१५ करोड़ रुपए व्यय हुए थे जिसमें से जनता ने २६·१३ करोड़ रुपए का सहयोग दिया था और सरकार ने ४६·०२ करोड़ रुपए का। दूसरे शब्दों में सरकार ने जितना व्यय किया उसका ५६ प्रतिशत भाग जनता ने दिया। यह सब कुछ इस बात के बावजूद हुआ कि हमारी ग्रामीण जनता अत्यन्त निर्धन है और उसके पास श्रम के अतिरिक्त और कुछ दान करने के लिए नहीं है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में ३,९०० नए विकास खण्ड खोलने की योजना बनाई गई और इनमें से १,१२० को सामुदायिक विकास खण्डों में बदलने का लक्ष्य रखा गया जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है--

विकास खण्डों की संख्या

वर्ष	राष्ट्रीय विस्तार सेवा	सामुदायिक विकास खण्डों में परिवर्तन
१९५६-५७	५००	--
१९५७-५८	६५०	२००
१९५८-५९	७५०	२६०
१९५९-६०	९००	३००
१९६०-६१	१,०००	३६०
योग	३,८००	१,१२०

इस कार्यक्रम के लिए कुल दो अरब रुपए की व्यवस्था की गई। यह परिकल्पना की गई कि राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्ड के लिए ४ लाख रुपए और सामुदायिक विकास खण्डों के लिए १२ लाख रुपए की व्यवस्था की जाए। विभिन्न मदों में इस प्रकार व्यय किया जाएगा--

	(करोड़ रु०)
१. कर्मचारी और उपकरण--खण्ड मुख्यालय	५२
२. कृषि (पशु-पालन और कृषि विस्तार, सिंचाई और भूमि को खेती योग्य बनाना)	५५
३. संचार	१८
४. ग्रामोद्योग और कला	५
५. शिक्षा	१२
६. समाज शिक्षा	१०
७. स्वास्थ्य और गांव की सफ़ाई	२०
८. आवास	१६
९. विविध (केन्द्रीय व्यय)	१२
	२००

पुराने और नए ढंग से की गई खेती का अन्तर

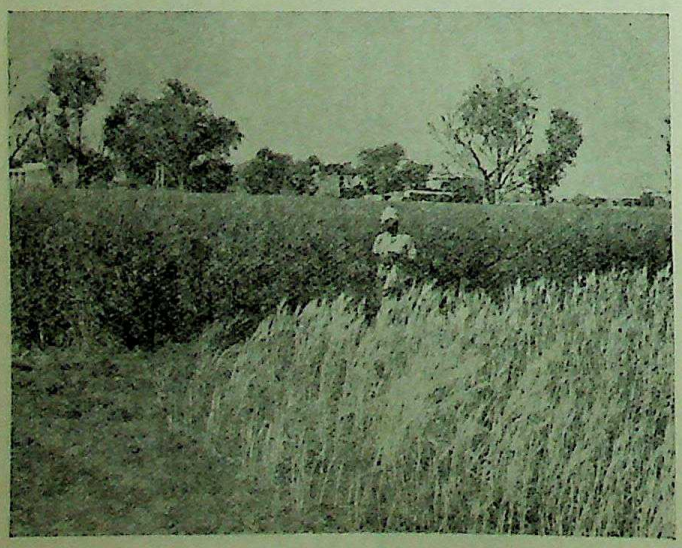

सूचनाओं द्वारा शिक्षा

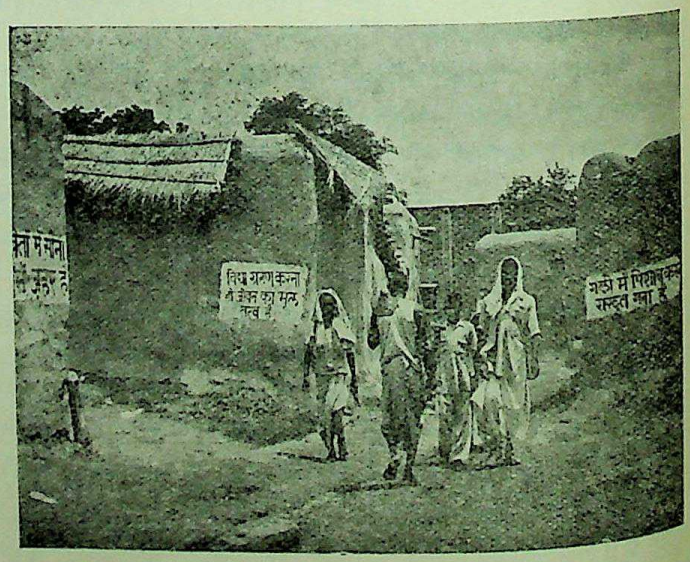

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतिशील कार्यक्रम

सामुदायिक विकास-कार्यक्रम ऐसा नहीं है कि पुरानी लीक पर ही चलता जाए। अनुभव से जो ज्ञान प्राप्त होता है, उससे लाभ उठाया जाता है, और जो गलतियां पता चलती हैं, उन्हें दूर करने का प्रयास किया जाता है। इसके लिए हर वर्ष लोकसभा में मन्त्रालय के बजट के समय संसद-सदस्य अपने विचार प्रकट करते हैं, प्रति वर्ष विकास आयुक्तों का सम्मेलन होता है जिसमें नई-नई सिफ़ारिशें की जाती हैं, (इस वर्ष से विकास आयुक्त सम्मेलन की जगह अधिक व्यापक राष्ट्रीय सम्मेलन होने लगा है जिसमें सरकारी अधिकारियों के अतिरिक्त जन-प्रतिनिधि भी भाग लेते हैं, कार्यक्रम जांच संगठन अपनी वार्षिक रिपोर्ट देता है, समाचारपत्र भी अपनी राय देते हैं तथा विदेशी विशेषज्ञों से भी सलाह-मशविरा लिया जाता है।

आलोचनाएं

इस कार्यक्रम की जो आलोचनाएं की जाती हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं--

(१) यह कार्यक्रम अभी तक जनता का कार्यक्रम नहीं बना। अब भी यह सरकारी कार्यक्रम है। जनता केवल सरकारी अधिकारियों या कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के कहने पर विकास-कार्यों में भाग लेती है, स्वयं पहल नहीं करती। ज्योंही सरकार का सहयोग मिलना बन्द होता है, काम भी ठप्प हो जाता है। कुछ लोगों का तो यह भी कहना है कि जनता का उत्साह उत्तरोत्तर कम होता जाता है। अभी तक इस कार्यक्रम का नेतृत्व जनता के हाथ में नहीं आया।

(२) जितना धन इस कार्यक्रम पर व्यय किया जा रहा है, उतना लाभ नहीं होता।

(३) इस कार्यक्रम से आवश्यकता से अधिक आशा की गई है। तीन या पांच वर्षों में जितने काम की आशा की जाती है, वह किसी तरह पूरा हो ही नहीं सकता।

इसी तरह ग्राम सेवक को भी ५-१० गांवों और ६-७ हजार आबादी वाला इतना बड़ा क्षेत्र सौंप दिया जाता है कि पूरी ईमानदारी से प्रयत्न करने पर भी वह अपने काम से न्याय नहीं कर पाता।

(४) एक काफी बड़ी आलोचना यह की जाती है कि कार्यक्रम के कर्मचारी अपना काम पूरी लगन से नहीं करते। बहुत-से उच्च अधिकारी अपनी पैंट की क्रीज़ का ज्यादा खयाल रखते हैं। जब तक जीप न हो, वे गांवों में जाना ही पसन्द नहीं करते। कई ग्राम सेवक भी ऐसे होते हैं जो और कहीं नौकरी न मिलने के कारण ग्राम सेवक बन जाते हैं। और बहुत-से लोग शहरी वातावरण में पले होने के कारण अपने आपको गांव-वालों के अनुरूप नहीं बना पाते।

(५) ग्राम सेवकों और अन्य अधिकारियों को ठीक ढंग से प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। उनको सामूहिक रूप से काम करना सिखाया ही नहीं जाता। न वे गांववालों में से नेताओं का चुनाव कर सकते हैं। कुछ अधिकारी बिना बाहरी हस्तक्षेप के ही काम चलाना पसन्द करते हैं। उनमें अफ़सरशाही की बू बहुत अधिक होती है।

(६) इस बात के लिए भी कार्यक्रम की आलोचना की जाती है कि कार्यक्रम में शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। जब तक हम शिक्षित न होंगे नई-नई चीजों के अपनाने में हिचकेंगे और जमाने के साथ कदम न बढ़ा सकेंगे।

(७) एक और आरोप यह लगाया जाता है कि यद्यपि इस कार्यक्रम के द्वारा हमें भौतिक सफलताएं तो प्राप्त हुई हैं पर आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पहलू की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। जनता की मनोवृत्ति नहीं बदली है। आज भी गांववाले अन्धविश्वासों व पुराने रीतिरिवाजों में जकड़े हुए हैं, ग्रामीण महिलाओं में अब तक जो जागृति हुई है, वह नहीं के बराबर है।

(८) जब कोई सड़क आदि बना ली जाती है, तो फिर उसकी देखभाल कोई नहीं करता। कई जगह श्रमदान आदि से सड़कें बनाई गईं पर एक ही वर्षा में वे चौपट हो गईं।

(९) यह शिकायत भी की जाती है कि सब विकास खण्डों में एक जैसा काम नहीं हो रहा; खण्ड के मुख्यालय के आस-पास अधिक काम होता है जबकि खण्ड के अन्तर्वर्ती गांव उपेक्षित रह जाते हैं। फिर इस कार्यक्रम का लाभ गांव के सबल, धनी और शक्ति-शाली वर्गों को ही हो रहा है। गरीब तबका आज भी उतना ही उपेक्षित है।

पंजाब के एक गांव में ढोलक पर सामूहिक गान

शिमोगा में बेंत का सामान बनाने का केन्द्र

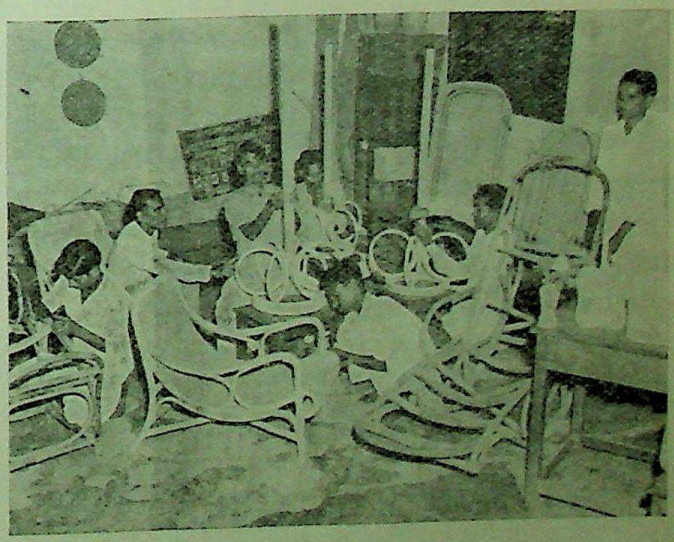

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

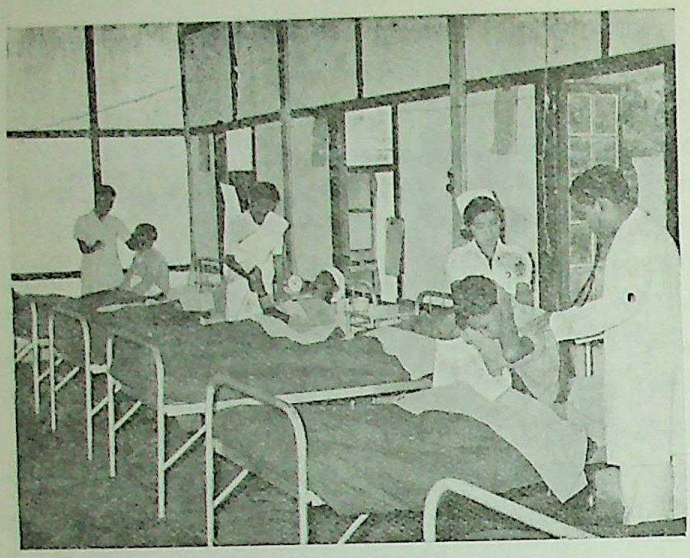

गारो हिल का एक नया अस्पताल

जिस किसान के पास थोड़ी-बहुत जमीन है, उसे तो रासायनिक खाद मिल जाती है; जिसका घर है, उसकी मरम्मत कर दी जाती है। परन्तु जिनके पास न जमीन है और न जिनके घर है, उन्हें इस कार्यक्रम से कोई लाभ नहीं पहुंचा।

इन सभी आलोचनाओं में कुछ न कुछ सचाई अवश्य है। पिछले वर्ष जुलाई, १९५७ में सामुदायिक विकास मन्त्री श्री सुरेन्द्रकुमार दे ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया था कि "राज्यों का सहयोग प्राप्त करने और विभागीय दोषों का पता लगाने में योजना प्रशासन 'विशेषता' के साथ उत्तीर्ण हुआ; विकास सम्बन्धी समस्त सरकारी संगठनों के बीच समन्वय स्थापित करने में वह केवल 'उत्तीर्ण' हुआ है जबकि वास्तविक सफलता प्राप्त करने में उसे केवल 'दूसरी श्रेणी' मिली। जहां तक इस कार्यक्रम से जनता के प्रतिनिधियों के सम्बद्ध होने का प्रश्न है, यह कार्यक्रम 'पूर्ण रूप से असफल' रहा है।" मन्त्री महोदय ने यह भी स्वीकार किया कि "गैर-सरकारी प्रतिनिधियों के सहयोग के बिना विकास भले सम्भव हो जाए, किन्तु सामुदायिक विकास नहीं हो सकता।"

टेलर रिपोर्ट

इन शिकायतों को दूर करने के लिए निरन्तर प्रयत्न किए जाते हैं। पिछले वर्ष अमेरिका के प्रसिद्ध समाजशास्त्री डा० कार्ल सी० टेलर को फोर्ड फाउण्डेशन की ओर से सामुदायिक विकास-कार्यक्रम के बारे में सलाह देने के लिए बुलाया गया था। उन्होंने अपनी रपोर्ट में जन दो बातों पर जोर दिया, वे थीं उचित प्रशिक्षण और जन-सहयोग। प्रशिक्षण के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा--"सारे सामुदायिक विकास-कार्यक्रम को कार्यान्वित करने में खण्ड विकास अधिकारी का सबसे अधिक महत्व है। उनका चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे काफी कार्यकुशल हों और इसीलिए उन्हें सबसे अधिक प्रशिक्षण दिया जाए।" इसी तरह टेलर महोदय ने अन्य कर्मचारियों के प्रशिक्षण पर जोर दिया। जन-सहयोग के सम्बन्ध में उन्होंने तीन बातों पर जोर दिया-- (१) स्थानीय जनता के दल संगठित करना; (२) स्थानीय जनता में से ही नेता तैयार करना; और (३) ऐसे ग्राम समुदाय संगठित करना जो उत्तरदायित्व वहन कर काम करने को तैयार हों। श्री टेलर ने यह भी कहा कि ग्राम सेवक को दल नेता की जगह नहीं लेनी चाहिये।

सी० ओ० पी० पी० की रिपोर्ट

इसके बाद एक और महत्व की रिपोर्ट बलवन्तराय मेहता अध्ययन टोली या सी० ओ० पी० पी० की जांच रिपोर्ट है। इसकी रिपोर्ट का सारांश इस प्रकार है :--

गांवों के विकास का काम जनता द्वारा चुनी हुई स्थानीय समितियों को सौंप देना चाहिए और उनको इसके लिए आवश्यक साधन और अधिकार देने चाहिए। इस समिति का चुनाव गांव पंचायतों द्वारा होना चाहिए और इस का नाम पंचायत समिति होना चाहिए। ग्राम सेवक को गांव पंचायतों का विकास सचिव बनाना चाहिए। गांवों की योजनाओं की तफ़सील और कार्यक्रम जनता के प्रतिनिधियों को बनाने चाहिए। पंचायत समितियों के जिम्मे ये काम होने चाहिए--खेती की उन्नति, पशु-पालन, गांवों के धन्धों का विकास, जन-स्वास्थ्य और न्याय कार्य, प्राइमरी स्कूलों का प्रबन्ध और सांख्यिकी संग्रह आदि। इस तरह टोली ने लोकतन्त्री विकेन्द्रीकरण पर विशेष बल दिया।

सामुदायिक विकास-कार्यक्रम में इस समय तीन सोपान होते हैं-- पहला राष्ट्रीय विस्तार, दूसरा सघन विकास और तीसरा सघन विकास के बाद का। इस विभाजन को खतम करने की सिफ़ारिश की गई।

ग्राम सेवकों का क्षेत्र छोटा कर दिया जाए; एक ग्राम सेवक के जिम्मे ८०० परिवार या ४,००० आदमियों से अधिक न हों। दूसरे शब्दों में हर खण्ड में ग्राम सेवकों की संख्या बढ़ाकर २० कर दी जाए। खर्च न बढ़ने देने के लिए विकास खण्ड के अन्य कर्मचारियों से भी ग्राम सेवक का काम लेना चाहिए। इन कर्मचारियों के स्थायी संवर्ग भी बनाने चाहिए।

खेती की पैदावार बढ़ाने की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। कृषि जन्य पदार्थों के मूल्यों की गारंटी दी जा सकती है। अलग-अलग सहकारी समितियां खोलने की बजाय बहूद्देशीय सहकारी समितियां खोलनी चाहिए। किसानों को सहकारी समितियां ऋण दें और सूद की दर सवा छः प्रतिशत से अधिक न हो।

समाज कल्याण बोर्ड और सामुदायिक विकास-कार्यक्रम के बीच कल्याण कार्य बंटे हुए हैं। इस दोहरे प्रबन्ध का अन्त होना चाहिए। केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की योजनाएं राज्य सरकारों को सौंप दी जानी चाहिए।

ग्रामोद्योगों पर भी विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए और इस सम्बन्ध में विभिन्न दस्तकारी बोर्डों से समन्वय स्थापित करना चाहिए।

टोली ने विनोबाजी के ग्रामदान आन्दोलन से भी सहयोग स्थापित करने पर बल दिया और कहा कि ग्रामदान में मिले गांवों में अधिक उत्साह नजर आता है और वहां सामुदायिक विकास-कार्यक्रम अधिक सफलतापूर्वक चलाया जा सकता है।

ग्रामदान और सामुदायिक विकास

ग्रामदान और सामुदायिक विकास-कार्यक्रम के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रश्न यलवल में सितम्बर, १९५७ में हुए सर्वपक्षीय सम्मेलन में भी उठाया गया था और दिसम्बर, १९५७ में भी नई दिल्ली में सामुदायिक विकास मन्त्रालय और सर्व-सेवा-संघ के प्रतिनिधियों में भी बातचीत हुई और सब ने यह स्वीकार किया कि दोनों आन्दोलनों के बीच घनिष्ठ सम्पर्क होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाल में माउण्ट आबू में हुए सामुदायिक विकास के राष्ट्रीय सम्मेलन में भी इस बात पर जोर दिया गया । सम्मेलन ने ग्रामदान में मिले गांव की परिभाषा इस प्रकार की--"ग्रामदान ऐसा गांव है जिसके जमींदारों और गांवों में रहने वाले कम से कम ८० प्रतिशत व्यक्तियों ने अपनी जमीन गांव समाज को दान में दे दी हो और ऐसी जमीन की मात्रा गांव की कुल जमीन के ५० प्रतिशत से कम न हो। इस में गांव में रहने वालों और गांव के बाहर रहने वालों द्वारा दी गई जमीन सम्मिलित है। साथ ही उस गांव के कम से कम ८० प्रतिशत वयस्क इस आन्दोलन में सम्मिलित हों।"

ग्राम सहायक शिविर

इसी तरह हाल के वर्षों की एक और महत्वपूर्ण घटना है ग्राम सहायक शिविरों का लगना। सन् १९५७ में मसूरी में हुए विकास आयुक्त सम्मेलन ने इस बात की सिफारिश की थी। यह अनुभव किया गया कि हर गांव के कुछ चुने हुए व्यक्तियों के शिविर लगाए जाएं जिनमें उन्हें (१) कृषि, पशु-पालन और छोटी सिंचाई योजनाओं, (२) पंचायतों, सहकारी समितियों और ग्राम संचार, (३) ग्रामोद्योगों और ग्रामीण आवास (४) शिक्षा, समाज शिक्षा, महिला कल्याण आदि विषयों के बारे में कुछ प्रशिक्षण दिया जाए जिसमें इन क्षेत्रों की प्रगति व नए तरीकों की जानकारी दी जाए। पर अनाज की कमी को देखते हुए यह फैसला किया गया कि शुरू में केवल कृषि और उससे सम्बद्ध विषयों के शिविर लगाए जाएं। यह आशा प्रगट की गई कि इन शिविरों के प्रशिक्षार्थी या ग्राम सहायक जो कुछ खेती के नए तरीकों के बारे में सीखेंगे, उन्हें अपने-अपने गांवों के अन्य किसानों को भी बताएंगे व उन्हें वे तरीके अपनाने के लिए प्रेरित करेंगे।

२ अक्तूबर, १९५७ से देश के विभिन्न भागों में ग्राम सहायक शिविर लगने शुरू हुए। हर ग्राम सेवक क्षेत्र के सब गांवों से ५० व्यक्तियों का किसी सुविधाजनक स्थान पर तीन दिवसीय शिविर लगाया जाता है जिसमें उन्हें सैद्धान्तिक और व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाता है। आशा है, १९५८ के अन्त तक १०,७६,००० ग्राम सहायक प्रशिक्षण पा चुके होंगे।

इसी तरह सामुदायिक विकास के अन्वेषण तथा अध्ययन की केन्द्रीय संस्था का भी ९ जून, १९५८ को उद्घाटन किया गया जिसमें विभिन्न राज्यों एवं केन्द्रीय सरकार के विकास कार्यकर्ताओं को लोक संग्रह के गुण सिखाए जाते हैं।

लोकतन्त्री विकेन्द्रीकरण

लोकतन्त्री विकेन्द्रीकरण पर भी अब बहुत जोर दिया जाने लगा है। मेहता अध्ययन टोली ने पंचायत समितियां बनाने पर जोर दिया था। पंचायत समितियां बनाने का काम राज्य सरकारों को सौंप दिया गया है। इस दिशा में आन्ध्र प्रदेश ने पहल की है। जुलाई, १९५८ में वहां हर जिले के एक-एक खण्ड में एक-एक एडहाक पंचायत समिति बना दी गई है। हर पंचायत समिति में खण्ड की गांव की पंचायतों के सभापति सम्मिलित होते हैं। जिन गांवों में पंचायतें नहीं हैं, कलक्टर उनके प्रतिनिधि नामजद कर देता है। खण्ड के सामाजिक कार्यकर्ताओं, उत्साही नवयुवकों और अर्थशास्त्रियों का भी सहयोग लिया जाता है। विभिन्न विभागों के जिम्मे खण्ड क्षेत्रों के जो विकास कार्य हैं, उन्हें पंचायतों को सौंपा जा रहा है। हर समिति की चार उप-समितियां होंगी जो निम्न मामलों की देख-भाल करेंगी--(१) कृषि, पशु-पालन, और छोटी सिंचाई योजनाओं का विकास; (२) ग्रामोद्योगों व सहकारिता का विकास; (३) शिक्षा, स्वास्थ्य और समाज कल्याण का विकास, और (४) वित्तीय मामले। विकास खण्डों के बजट और विकास विभागों की विविध योजनाओं के लिये जो धन निर्धारित किया गया है, वह इन समितियों को सौंप दिया जाएगा। खण्ड विकास अधिकारी मुख्य प्रबन्धक (एक्जीक्यूटिव) होगा और सरकार तथा पंचायत समितियों के बीच कड़ी का काम करेगी। जिला अधिकारी टैक्नीकल सहायता देंगे व निरीक्षण का कार्य सम्हालेंगे। इसी दिशा में अन्य राज्यों में भी कदम उठाए जा रहे हैं। नई-नई पंचायतें खोलने की ओर ध्यान दिया जा रहा है जैसा कि निम्न आंकड़ों से स्पष्ट है-- सन् १९५१ में देश में पंचायतों की संख्या ८३,०८७ थी जो १९५६ में बढ़ कर १,१७,५९३ हो गई है। १९६१ तक इन की संख्या बढ़ कर २,४४,५६४ होने की आशा है।

पंचायतों और सामुदायिक विकास मन्त्रालय में और अधिक सहयोग हो सके, इस उद्देश्य से ८ मार्च, १९५८ का पंचायतों का काम स्वास्थ्य मन्त्रालय से ले कर सामुदायिक विकास मन्त्रालय को सौंप दिया गया। आजकल सामुदायिक विकास मन्त्रालय एक पंचायत अधिनियम तैयार कर रहा है जो विभिन्न राज्यों के लिए एक मॉडल का काम दे सके। पंचायत सचिव अपना काम अच्छी तरह चला सकें, इसके लिए उन्हें दो महीने का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जा रही है। यह कदम इतना महत्वपूर्ण है कि सामुदायिक विकास मन्त्री श्री सुरेन्द्र कुमार दे ने इसे "दूसरे मोर्चे" की संज्ञा दी है।

प्रशिक्षण

इस कार्यक्रम के कतिपय आलोचकों ने प्रशिक्षण की त्रुटियों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। इस दिशा में भी कुछ मूलभूत परिवर्तन किए जा रहे हैं। टैक्नीकल व्यक्तियों, कलक्टरों, विकास आयुक्तों और विभागीय अध्यक्षों आदि को अध्ययन और अनुसन्धान की विशेष सुविधाएं दी जा रही हैं। प्रशिक्षण संस्थाओं के अध्यापकों व प्रिंसिपलों को प्रशिक्षण देने के लिए एक केन्द्र खोला जा रहा है। विकास अधिकारियों को आजकल नीलोखेड़ी, रांची, हैदराबाद और बख्शी का तालाब में प्रशिक्षित किया जाता है। अब वहां नया पाठ्यक्रम लागू किया जा रहा है। चालू वर्ष में ही

गांवों में नए मकान और वीथियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार-पांच नए प्रशिक्षण केन्द्र खोलने का भी विचार है। महिला कर्मचारियों को अलग से प्रशिक्षण देने का प्रश्न भी विचाराधीन है। ग्राम सेवकों को भी अब १८ मास की जगह दो वर्ष का प्रशिक्षण लेना होगा। आजकल उन्हें एक साल तक बुनियादी कृषि स्कूल में काम सीखना पड़ता है और इसके बाद उन्हें छः महीने तक किसी अन्य प्रशिक्षण केन्द्र में काम सिखाया जाता है। अब यह स्वीकार कर लिया गया है कि दोनों पाठ्यक्रमों को मिला दिया जाए और उन्हें एक ही संस्था में दो वर्ष तक प्रशिक्षण दिया जाए।

दो सोपान

अब तक सामुदायिक विकास-कार्यक्रम के अन्तर्गत तीन प्रकार के खण्ड होते हैं--राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्ड, सामुदायिक-विकास खण्ड और सघनोत्तर विकास खण्ड। पर देखा यह गया कि इस तरह काम में ढील पड़ जाती है। सघन विकासोत्तर सोपान में बहुत कम काम हो पाता है। लक्ष्य तो यह था कि एक बार काम शुरू होने के बाद जनता स्वयं इसे चलाती रहे। दूसरे शब्दों में यह कार्यक्रम स्थायी और निरन्तर चलने वाला होना चाहिए। पर ऐसा होता नहीं। इसलिए बलवन्तराय मेहता समिति ने भी सिफ़ारिश की थी कि इन तीन प्रकार के खण्डों का अन्तर समाप्त कर दिया जाए और यह कार्यक्रम छः-छः वर्ष के दो सोपानों में पूरा किया जाए जिनके लिए क्रमशः १५ लाख और ५ लाख रुपए की व्यवस्था रहे। प्रधान मन्त्री श्री नेहरू की अध्यक्षता में केन्द्रीय समिति ने इन सिफ़ारिशों पर विचार किया और इस फैसले पर पहुंची कि वर्तमान राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्डों को सामुदायिक विकास खण्डों में बदल दिया जाए और पहले से अधिक धन की व्यवस्था की जाए। हर खण्ड के पहले और दूसरे सोपान के लिए क्रमशः १२ लाख रुपए और ५ लाख रुपए की व्यवस्था रहे। ये दोनों सोपान पांच-पांच वर्ष के होंगे। साथ ही देश भर में राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्ड खोलने का काम १९६१ की बजाय १९६४ तक पूरा किया जाए।

श्रमदान

सर्व साधारण जनता माल और नकदी के रूप में बहुत ही कम सहयोग दे पाती है। अधिकांश जन-सहयोग श्रमदान के रूप में ही मिलता है। देश के कुल २,३९१ खण्डों में से २,०९५ खण्डों में ३० मार्च, १९५८ तक ५७ करोड़ ६५ लाख रुपए का जन-सहयोग मिला था जो कुल सरकारी व्यय का लगभग ५८ प्रतिशत है। हिसाब लगाया गया था कि १९५६ में राजस्थान में जो श्रमदान पखवाड़ा मनाया गया था उस में कुल १,३७,८२,००० रुपए का श्रमदान हुआ यानी हर खण्ड में २,७५,३१० रुपए का श्रमदान हुआ। हर गांव का औसत २,५७७ रुपए रहा। खण्डों के सभी गांवों में प्रति व्यक्ति औसत श्रमदान ३·६ रुपए था भले ही उन्होंने इसमें भाग लिया हो या नहीं। सबसे अधिक औसत श्रमदान १०·२ रुपए हुआ अधिकतर श्रमदान पीने के जल और सिंचाई व्यवस्था के लिए हुआ--कुल श्रमदान का ४२·२ प्रतिशत। इसके बाद स्कूलों व होस्टलों के निर्माण पर बल दिया गया--कुल श्रमदान का २० प्रतिशत। सड़कों पर १० प्रतिशत श्रमदान लगा। इसके अतिरिक्त दवाखाने और चिकित्सालय कल्याण केन्द्र आदि भी बनाए गए।

कुछ नए आंकड़े

सामुदायिक विकास मन्त्रालय की १९५७-५८ की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार भारत की आधी से अधिक देहाती जनता जो देश के लगभग ५० प्रतिशत गांवों में बसती है, सामुदायिक विकास-कार्यक्रम के अन्तर्गत आ गई है। पहली जनवरी, १९५८ को देश में कुल २,१५२ खण्ड थे जिनके अन्तर्गत २,७६,०२६ गांव और १५ करोड़ व्यक्ति आते हैं।

जनता ने नकदी, वस्तुओं और श्रम के रूप में ३० सितम्बर, १९५७ तक ४८ करोड़ ३४ लाख रुपए का सहयोग दिया जो कुल सरकारी व्यय का लगभग ६० प्रतिशत है। कृषि के क्षेत्र में जून, १९५७ को समाप्त होने वाले वर्ष में सुधरे हुए तरीकों के १६,५३,००० प्रदर्शन किए गए थे जबकि पिछले वर्ष उनकी संख्या केवल ९,९४,००० थी। अक्तूबर, १९५६ से सितम्बर, १९५७ तक १ करोड़ ९ लाख मन से भी अधिक उर्वरक बांटे गए। इनसे पिछले बारह महीनों में ७४·४ लाख मन उर्वरक बांटे गए थे।

सितम्बर, १९५७ तक २२ लाख ७७ हजार एकड़ भूमि को फिर से खेती योग्य बनाया गया। अक्तूबर, १९५६ से जून, १९५७ तक १२,३१,०० एकड़ और अधिक भूमि में छोटे साधनों से सिंचाई होने लगी।

लघु और ग्रामोद्योगों के भरपूर विकास के लिए विभिन्न राज्यों में २४ पाइलट योजनाएं शुरू की गईं। सितम्बर, १९५७ तक इनमें २३,६९२ कारीगरों को पूरे समय का और ५,१८३ कारीगरों को थोड़े समय का अतिरिक्त रोजगार मिला। ९ लघु-उद्योग बस्तियों की भी स्वीकृति दी जा चुकी है। इनमें से प्रत्येक पर १० से १५ लाख रुपए तक व्यय होंगे। १९५७-५८ के लिए २० बस्तियां रखी गई हैं जिनमें प्रत्येक पर दो से तीन लाख रुपए तक व्यय होने का अनुमान है।

सहकारिता के क्षेत्र में जून, १९५७ तक ५९,००० नई समितियां खोली गईं। नए सदस्यों की संख्या ३१.१३ लाख है। ३० सितम्बर, १९५७ को १,१९४ औद्योगिक सहकारी समितियां काम कर रही थीं जिनकी सदस्य संख्या ६३,४४३ थी।

आदिम जाति क्षेत्रों का सर्वांगीण विकास करने के लिए विभिन्न राज्यों में ४२ विशेष बहूद्देशीय योजनाएं चालू की गईं। प्रत्येक योजना के लिए २७ लाख रुपए रखे गए।

लगभग सात हजार नए स्कूल खोले गए और २,९०५ स्कूलों को बुनियादी स्कूलों में बदला गया। सितम्बर, १९५७ तक ४७,००० साक्षरता केन्द्रों में २० लाख से भी अधिक प्रौढ़ों को साक्षर बनाया गया।

सामुदायिक विकास क्षेत्रों में काम करने के लिये प्रशिक्षित व्यक्तियों की संख्या जनवरी, १९५८ में ४९,५२२ थी। दिसम्बर, १९५६ में यही संख्या ३२,६१५ थी। प्रशिक्षित व्यक्तियों में ३७,०३६ ग्राम सेवक थे, ७१६ ग्राम सेविकाएं थीं, ३,३०७ ग्राम स्तर के कार्यकर्ता थे, ३,२६३ समाज शिक्षा संगठक थे, १,१५३ विस्तार अधिकारी (उद्योग) थे, ८१० विस्तार अधिकारी (सहयोग) थे और १,८११ खण्ड विकास अधिकारी थे। विभिन्न राज्यों के २५५ प्रशिक्षण केन्द्रों में १५,४६५ व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे।

श्री नेहरू ने भी २० जुलाई १९५८ को कलकत्ते में कहा था--"भारत की नींव मजबूत बनाने के लिए तीन चीजें बहुत जरूरी हैं। वे इस प्रकार हैं--सामुदायिक विकास योजनाएं, सुदृढ़ गांव पंचायत और एक अच्छी ग्राम सहकारी समिति।

"अगर ये तीन काम हो जाएं तो मुझे इस बात की परवाह नहीं कि दूसरे क्षेत्रों में क्या होता है।

"इनसे देश की नींव मजबूत हो जाएगी। फिर कोई भी चीज, युद्ध या अणुबम भी, देश को खण्डित नहीं कर सकेगी। क्योंकि उस दशा में प्रत्येक ग्रामीण राजनीतिक, आर्थिक या अन्य कठिनाइयों से डरे बिना, डट कर खड़ा हो जाएगा और मुसीबतों का सामना करेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिप्नोटिस्ट

बेढब बनारसी

चायपान भी किसी विश्वविद्यालय से कम महत्व नहीं रखता। विश्वविद्यालय में भले ही केवल पुस्तकों पर मालिश होती हो, चायपान के अवसर पर विचारों का विनिमय होता है। चाय की घूंट और मौलिकता में वही सम्बन्ध है जो कामा बैसिलस और कालरा में है। गले के नीचे चाय उतरी नहीं कि विचार उबलते पानी की भाप की भांति निकलने लगते हैं। आप उन्हें रोक नहीं सकते। सुना करते थे कि अंगूर की बेटी में ही यह गुण पाया जाता है। ढालने पर विचार ढलने लगते हैं। परन्तु चाय में यह गुण कम नहीं है। वशिष्ठ तथा अनिरुद्ध के साथ मैं चाय पी रहा था। वशिष्ट यहां एक डिगरी कालेज में अंग्रेजी के लेक्चरर हैं। पंजाब के निवासी हैं। विभाजन के बाद कानपुर में आकर बस गए। आर्यसमाजी होने के कारण प्रगतिशील विचारों के हैं। कहते हैं हम मानव हैं, वैदिक धर्म मानते हैं। यों जात के बढ़ई हैं। पर जात आदि से क्या। सभ्य हैं, भले आदमी हैं। संस्कृत व्यक्ति हैं। इतना बहुत है। अनिरुद्ध वकील हैं। वकालत साधारण है। किसी प्रकार काम चल जाता है। किन्तु अभी है ही कितने दिनों की। पांच-छः साल हुए। इतने दिनों में तो पुत्र भी पिता को अच्छी तरह पहचान नहीं पाता।

एक प्याला चाय समाप्त हो चुकी थी। दूसरे का आरम्भ था। अनिरुद्ध ने कहा---

"कल कोटि भास्करन के प्रदर्शन में आप गए थे ?"

"मैं तो न जा सका। यद्यपि इच्छा मेरी थी।" मैंने साधारण ढंग से कहा।

"मुझे एसी वाहियात बातों में विश्वास नहीं है।" वशिष्ठ ने गम्भीरता से कहा। गम्भीरता उसके लिए वैसी ही थी, जैसी रक्त के लिए लाली होती ह। वैज्ञानिक होने के कारण उसे गम्भीर बनना भी पड़ता था। यदि कोई वैज्ञानिक हास-परिहास करता देखा जाता है तो समझा जाता है कि उसने फैरेडे, न्यूटन, क्यूरी के नाम पर दाग लगा दिया। साइन्स वाले क लिए मुस्कराना वैसा ही समझा जाता है, जैसे गुलाब जल में नेपथलीन की महक आना। इस परिपाटी का निर्वाह वशिष्ठ महोदय बड़ी कला से करते थे। कुछ रुक कर उन्होंने कहा--"जो बात प्रयोगों द्वारा सिद्ध नहीं होती, उस पर मूर्ख विश्वास करते हैं।"

मैंने कहा--"तुमने सुना तो है ही नहीं कि यह क्या कह रहा है। उसका विरोध करने लगे। विज्ञान की यह भी कोई पद्धति है क्या?"

"मैं जानता हूं वह क्या कहने वाला है।" वशिष्ठ बोला।

"अच्छा तो आपने भौतिक विज्ञान ही नहीं, ज्योतिष का भी अध्ययन किया है। आप जान जात हैं कि क्या होने वाला है।" मैंने कहा।

"ज्योतिष आदि मूर्खों को ठगने के लिए हथकंडे हैं। मैं उन्हें सीखना अपना, विज्ञान का, बुद्धि का, और मानव का अपमान समझता हूं", वशिष्ठ जी बोले।

"तब तुम कैसे कहते हो कि मैं जान गया वह क्या कहेगा। उसकी बात तो सुन लेते।" मैं बोला।

"यह तो साधारण सी गणित है। दो और दो चार ही हो सकते हैं। तीन या पांच नहीं। यह कोटि भास्करन का व्याख्यान सुनने गए थे। वह क्या बोलते हैं मैं जानता हूं। समझ गया यह क्या बताएंग।" वशिष्ठ ने भावुकता से कहा।

"अच्छा तो चुपचाप सुनो, यह क्या कह रहे हैं।" मैंने विनोदात्मक ढंग से कहा।

अनिरुद्ध ने प्याला एक हाथ में उठा लिया। वह बोला--"कल जो कुछ मैंने देखा, वह मेरी समझ में तो आया ही नहीं। वह इतना आश्चर्यजनक था, कौतूहलपूर्ण था, बुद्धि को चकरा देने वाला था कि कहते नहीं बनता। भास्करन ने कुछ प्रयोग दिखाया। आदमी को बेहोश करते और उससे बातें पूछते तो मैंने अनेक खेल देखें हैं। भास्करन ने तो कमाल कर दिया। उन्होंने कहा उपस्थित जनता में से कोई आ जाए। मैं उसे बेहोश कर दूंगा और उसकी आत्मा से जो चाहे आप पूछ सकते हैं।"

"अरे हम जानते हैं। सब मिले होते हैं। लोगों के बीच बैठे रहते हैं। जान पड़ता है दर्शकों में हैं।" वशिष्ठ बोला।

"अजी साहब, यह बात हो ही नहीं सकती। किचलू साहब जो कलक्टर हैं न, उसने उनकी साली को बेहोश कर दिया। उनके मिले रहने की बात ही नहीं हो सकती। बेहोश करने के बाद लोगों ने कितने ही प्रश्न पूछे और उस लड़की ने ऐसे उत्तर दिए कि लोगों को दांतों तले उंगली दबानी पड़ी। और दर्शकों में आप क्या समझते हैं, कि भेड़ बकरी थीं। नगर के बुद्धिमानों का समूह यहां एकत्र था। अफसर तो थे ही वकील भी थे। अध्यापक, लेक्चरर, डाक्टर और व्यापारी सभी पीढ़ियों के लोग वहां थे।"

वशिष्ठ ने कहा--"आजकल सरकारी कर्मचारी तथा अधिकारी पूजा-पाठ में बहुत विश्वास करने लगे हैं। नौ बजे दिन तक बाथरूम में रहते हैं और ग्यारह बजे तक पूजा पर रहते हैं। कभी सवेरे जाकर देख लीजिए। उनका विश्वास भी योगी-यती, सन्त-सन्यासी, भूत-प्रेत, मन्त्र-तंत्र में बढ़ गया है। राज्य धर्म निरपेक्ष होत ही सारा धर्म घूमकर इन लोगों के हृदय में आ गया है। और यह एक तरह अच्छा ही हुआ। राज्य से धर्म निकल ही गया। यह लोग भी न अपना लते तो फिर वह लोप ही हो जाता।"

मैंने कहा--"आप कृपा कर सुन तो लीजिए।"

अनिरुद्ध ने आगे कहा--"बड़े-बड़े मूख होते हैं। किसी ने पूछा तुलसीदास से भेंट कर सकती हैं आप ? उस लड़की न दो मिनट के बाद कहा--हां मैं ठीक उनके समक्ष हूं। आज उनके मकान के चारों ओर कुछ लोग हड़ताल कर रहे हैं। संस्कृत के विद्यार्थी हैं। तुलसीदास ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम-चरित मानस में उनकी उपमा दादुर से दे दी है। सभी इससे बहुत नाराज हैं। वह मना रहे हैं। इस समय उनसे बात नहीं हो सकती।"

वशिष्ठ ने कहा--"यह सब गप्प है। किसी को इस पर विश्वास हो सकता है?"

फिर भास्करन ने कहा--"कल का समय हम देते हैं। जो चाहे आए हम उसे बेहोश करेंगे।"

वशिष्ठ जोश में आ गया। बोला--"अच्छा मैं चलूंगा। कहूंगा मुझे बेहोश कीजिएगा देखूंगा उन का हिप्नोटिज्म।"

तै हुआ। ६ बजे संध्या से सभा थी। पांच बजे से ही यह तैयार होने लगे और साढ़े पांच बजे यह लोग जाकर सबसे आगे बैठ गए। जैसें आजकल महंगी के दिनों में किसी दावत का निमंत्रण पाकर भूखा परिवार आसन जमा लेता है। ६ बजे के लगभग हाल भर गया। परलोक के प्रति इतनी आस्था लोगों को है, यह उसी दिन जान पड़ा। भारत की विशेषता है कि इस लोक की ओर कम ध्यान रहता है। मृत्यु के पश्चात जिस लोक में मनुष्य जानेवाला होता है, उसी की ओर अधिक आकर्षण रहता है। कोटि भास्करन महोदय ठीक समय से पधारे। कुरता-धोती के ऊपर आपन लाल मखमल का बिना बटन का लम्बा ओवरकोट पहन रखा था। ओवरकोट के ऊपर पचास-साठ पदक टंके हुए थे, जैसे रक्त में कार्पसल (रक्ताणु) टहल रहे हों। आप के सामने, मंच पर एक लम्बी मेज रखी थी। उस पर साफ नीले रंग की चादर बिछी थी। आपने मेज के सामने खड़े होकर दर्शकों को नमस्ते किया, और कहा:-- "देवियो और सज्जनो, आपने कल मेरा प्रयोग देखा। भगवान की कृपा है, मैंने दूसरे जगत से संपर्क स्थापित कर लिया है। राकेट अथवा स्पुतनीक से चांद और मंगल ग्रहों पर भौतिक विज्ञानवादी भले ही पहुंच जाएं, किन्तु आत्मा के संसार में उनका पहुंचना असम्भव है। वे आप को स्वर्ग की झांकी नहीं दिखला सकते। यद्यपि अभी एक-एक ही व्यक्ति स्वर्ग का दर्शन कर सकता है। मैं वह समय लाऊंगा जब आप में से प्रत्येक व्यक्ति अपनी आंखों से स्वर्ग देखेगा, अपने मृत सम्बन्धियों से भेंट करेगा। पृथ्वी तथा स्वर्ग की दूरी न रह जाएगी। आज इस समूह में जो चाहे, जिस की इच्छा हो यहां आ जाए। मैं उसे हिप्नोटाइज करूंगा। अचेतन अवस्था में ले जाऊंगा, और तब उसे जहां कहिएगा, ले जाऊंगा। आप जो चाहें वहां का हाल पूछ लीजिएगा।"

उनके भाषण में सत्य का उतना ही बल जान पड़ता था, जितना सेना के कच करने के पहले सेनापति के भाषण में होता है। दो-तीन मिनट तक हाल में शांति रही। इसके पश्चात पीछे की कुरसी से एक सज्जन उठे। आगे की कुरसी से वशिष्ठ उठे। जब तक पीछे वाले सज्जन मंच तक पहुंचे, वशिष्ठ मेज के पास पहुंच गए। कोटि भास्करन ने कहा-- "आप को स्वर्ग में विश्वास है। क्योंकि जिसे विश्वास न होगा, वह बेहोश नहीं हो सकता।"

वशिष्ठ ने कहा--"मुझे पूरा विश्वास है। मैं स्वर्ग देखकर विश्वास और पक्का करना चाहता हूं।"

कोटि भास्करन ने उन्हें मेज पर लेटा दिया और एक कागज पर कुछ लिखकर दिया कि इस मंत्र को पांच बार और पढ़ लीजिए मन में। वशिष्ठ जब मन्त्र पढ़ चुके भास्करन ने उनके ऊपर हाथ घुमाना आरम्भ कर दिया। पांच-सात मिनट तक वह हाथ घुमाते रहे। इसके बाद भास्करन ने कहा:--"कहिए आप कहां हैं?"

कोई जवाब नहीं।

भास्करन ने पुनः कहा:--देखिए मैं पूछ रहा हूं। आप इस समय कहां हैं?"

वशिष्ठ ने धीमे स्वर में कहा:--"अंधकार, घोर अंधकार।"

जनता की उत्सुकता बढ़ गई। प्रायः सभी लोग जानते थे कि वशिष्ठ अमुक कालेज में प्राध्यापक हैं। उनके चरित्र से भी सभी अभिज्ञ थे। उन्हें बेहोश देखकर सब लोगों की उत्सुकता बेहद बढ़ गई।

कोटि भास्करन ने दो मिनट बाद पूछा--"अब क्या देख रहे हैं आप?"

एक क्षण के पश्चात धीमे-धीमे स्वर में वशिष्ठ बोले:--"आप मुझे कष्ट न दीजिए, वाह, वाह! ऐसा प्रकाश मानों सोने में किसी ने दूध मिला दिया। यह शीतलता, कौन लोक है, कौन देश है। चला जा रहा हूं। सड़क डनलपिलो से भी कोमल किसी वस्तु की बनी है। मेरे आगे एक फाटक है, बहुत विशाल हरा-हरा! पन्ने का बना मालूम होता है। उसके ऊपर इंद्रधनुषी अक्षरों में लिखा है: "स्वर्ग प्रथम लोक! इसी में प्रवेश कर रहा हूं।"

कोटि भास्करन ने कहा--"अब इस महानुभाव की आत्मा ने स्वर्ग में प्रवेश किया है। मैं तो आप को जनता भी नहीं। नाम भी नहीं जानता। आप लोग यदि कोई प्रश्न पूछना चाहते हैं। अथवा किसी की आत्मा से कुछ जानना चाहते हैं तो कृपया पूछें।"

पचासों हाथ उठ गए। कोटि भास्करन ने कहा: "यह मैं जानता हूं आप सभी स्वर्ग का परिचय प्राप्त करने को उत्सुक हैं। बात ही ऐसी है। पहले से परिचय प्राप्त कर लेने के पश्चात आप को जब वहां जाने का सौभाग्य होगा, तो कितनी सुविधा होगी। परन्तु आप यह भी जानते हैं कि समय हमारे पास कितना है। आपके जिन महानुभाव की आत्मा इस समय स्वर्ग पहुंची हुई है, उन्हें भी इस अवस्था में अधिक देर तक नहीं रखा जा सकता। एक बार ऐसा हुआ कि कुछ देर तक आत्मा स्वर्ग में विचरती रही। उसका मन वहां ऐसा लगा कि वह वापस आना ही नहीं चाहती थी। बड़ी कठिनाई से उसे वापस बुला सका। यदि कहीं प्रोफेसर साहब का वही हाल हुआ, तब क्या होगा। शायद आप ऐसा न चाहते होंगे। यद्यपि स्वर्ग सुन्दर स्थान है, फिर भी आप यह न चाहेंगे कि वह अभी से वहां के नागरिक बन जाएं। आप लोगों में से सिर्फ पांच व्यक्ति प्रश्न पूछें।"

एक सज्जन तुरन्त खड़े हुए और उन्होंने पूछा--"कृपया यह बताने की कृपा करें कि मेरे ससुर स्वर्ग में हैं कि नरक में। उन्होंने जितना दहेज देने का वादा किया था, उतना नहीं दिया।"

कोटि भास्करन ने कहा --"आप लोग इस कार्य को हंसी न बनाएं यह बहुत गम्भीर काम है।"

वह सज्जन बोले--"मैं बिल्कुल हंसी नहीं कर रहा हूं। मैं यह जानना चाहता हूं कि वादा तोड़ने का दंड मिलता है कि नहीं।"

कोटि भास्करन ने उक्त सज्जन से उनके ससुर का नाम पूछा और तब वशिष्ठ जी से कहा--"मुरादाबाद निवासी सेठ पेड़ामल इस समय स्वर्ग में हैं कि नरक में?"

जनता बड़ी उत्सुकता से उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी। एक मिनट के बाद उत्तर मिला--"सेठ पेड़ामल यहां नरक में आए। जिस दिन आए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमराज का पांव दाबना आरम्भ किया। और उनकी देह भी दबाने लगे। ऐसा आज तक किसी ने नहीं किया था। चार घंटे के बाद वह स्वर्ग भेज दिए गए। अब वह यमराज के शरीर पर मालिश करते हैं और इस समय बहुत आनन्द से जीवन बिता रहे हैं। वह यम की पत्नी घूमोर्णा के प्रसाधन का सामान प्रतिदिन एकत्र करते हैं। उन्ही की सिफारिश से वह स्वर्ग का सुख भोग रहे हैं।"

इसके बाद अनेक लोगों न अनेक प्रश्न किए। किसी ने अपनी पत्नी का हाल पूछा, तो उसके बारे में बताया गया कि उसे अब स्मरण नहीं है कि पृथ्वी पर किसी से विवाह हुआ था भी कि नहीं। उसने बताया कि मृत्यु लोक से यहां आने पर शराब तुरन्त पिलाई जाती है। उसका हरा रंग होता है। स्वाद में वह मीठी होती है। यह सब को पीनी पड़ती है। चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, जैन हो या बौद्ध, ईसाई हो या मूसाई, आर्य-समाजी हो या वाममार्गी। उसके बाद कुछ याद नहीं रहता हम कहां थे या नहीं थे। कुछ और प्रश्न के पश्चात कार्य समाप्त हुआ। कोटि भास्करन ने जनता को धन्यवाद दिया और बताया कि मैं आज संध्या को मैसूर चला जाऊंगा। यदि कोई विशेष रूप से मिलना चाहे तो जहां मैं ठहरा हूं वहां मिल सकता है।

वशिष्ठ लौटकर हम लोगों के पास आ गए। मेरा मन आश्चर्य से उसी प्रकार भर गया था, जैसे नेताओं की गर्दन स्वागत में गजरों से भर जाती है। चित्र के समान चुप था। अनिरुद्ध से न रहा गया। उसने कहा--"कहो भाई, तुम तो विश्वास ही नहीं करते थे। तुम्हें उसने कैसे हिप्नोटाइज कर दिया!"

वशिष्ठ मुसकराया। बोला--"यह सब उस मंत्र की करामात थी, जो उसने पुरजे में लिख कर दिया था।"

मैंने कहा, "अरे तब तो वह विचित्र और बहुत ही उपयोगी मंत्र रहा होगा। तुम याद कर लते तो बहुत अच्छा होता।"

वशिष्ठ ने कहा --"मैंने याद कर लिया है।"

मैंने कहा--"यह तो तुमने करामात की। हम लोगों को भी बेहोश करना। और हम लोग भी दूसरे लोकों से बातचीत कर सकेंगे।"

वशिष्ट ने कहा--" मंत्र बहुत सरल है। अभी बता सकता हूं।"

अनिरुद्ध ने पूछा --"क्या था?"

वशिष्ठ ने कहा--"उसने कागज पर लिख कर दिया था कि 'हमारी इज्जत और रोटी का सवाल है। आप भले आदमी हैं। ऐसा न कीजिए कि मेरा अपमान हो।"

★

'श्रीकान्त' की पृष्ठभूमि--मुज़फ़्फ़रपुर--(पृष्ठ २४ का शेषांश)

उनके पास थी। चन्दर एकाएक चन्दरबाबू के नाम से चिकित्सक तथा दवाखाने का मालिक बन गया तथा पैसे कमाने लगा।

राजबाला की उम्र उस समय कम थी। उम्र बढ़ने के साथ-साथ उसका सौन्दर्य भी निखरने लगा। कुछ ही दिनों में उसकी अद्वितीय सुन्दरता की शोहरत शहर भर में फैल गई। जिन्होंने उन दिनों उसे देखा था इनमें एक-दो सज्जन अभी जीवित हैं। उनका कहना है कि वह एक बड़े ऊंचे दर्जे की हसीन औरत थी। देखने में गौरवर्ण थी तथा उसके सभी अंगों से असीम सौन्दर्य टपकता था। शहर के मनचले लोगों की वह हृदय-वल्लभा हो गई थी।

शरत बाबू का परिचय राजबाला के साथ तब हुआ, जबकि वह अनु-रूपादेवी के घर से अलग होकर राजबाला के घर के सामने के एक 'मेस' में आकर रहने लगे थे। शीघ्र ही वह उसके प्रेम-जाल में फंस गए और फिर तो रोज ही वह उसके घर पहुँचने लगे।

१९०३ तक शरत बाबू मुज़फ़्फ़रपुर में रहे। वहीं रहते-रहते उन्हें डाक-तार-विभाग में नौकरी मिल गई, तथा उनकी नियुक्ति बर्मा में हुई। तदनन्तर वह बर्मा चले गए।

मुज़फ़्फ़रपुर के अपने तीन साल के अधिवास में शरतबाबू ने जिस प्रकार का जीवन व्यतीत किया, वह वांछनीय नहीं था--

किन्तु जल मिट्टी में ही स्वर्ण
प्राप्त करता है उज्ज्वल वर्ण,

आग में तपकर ही तो सोने की वास्तविक सुन्दरता निखरती है, उनके लिए यह अनुभवों की आंच थी, जिससे निकल कर वह एक देदीप्यमान, सफल उपन्यासकार के रूप में प्रकट हुए। जीवन के इन अनुभवों के फल-स्वरूप बर्मा पहुँचते ही उन्होंने कई श्रेष्ठ उपन्यास लिख डाले, जो आज भी उपन्यास-जगत की विभूति बने हुए हैं। शरतबाबू के जब हम उपर्युक्त बोहेमियन जीवन पर ध्यान देते हैं, फिर दूसरी और उनकी कृतियों पर तो हमें कवीन्द्र रवीन्द्र की इस उक्ति का स्मरण हो आता है, जिसका सम्बन्ध महाकवि कालिदास से है :-

जीवन-मंथन से निकला विष,
वह तो तुमने पान किया,
और अमृत जो बाहर आया,
उसे जगत को दान दिया।

राजबाला की शेष तीन बहनें वकील साहब के साथ लहेरियासराय (दरभंगा) चली गईं। वहाँ से कलकत्ता। इनमें से दो, सुशीला और विनो-दिनी, आगे चलकर कलकत्ता की प्रसिद्ध नर्तकियाँ हुई। उन्होंने काफ़ी धन पैदा किया, यूरोप तक की सैर की, बड़ी-बड़ी कारें रक्खीं, जिन्हें वे खुद चलाती थीं। मैं जिन दिनों कलकत्ता में पढ़ा करता था, ये अक्सर इडेन-गार्डेन में सैर-सपाटे को खुद कार चलाती हुई आया करती थीं।

चौथी बहन कालीदासी से कलकत्ता के एक बड़े अफसर के पुत्र का प्रेम हो गया। वह उससे शादी करना चाहता था, पर उसमें माता-पिता राज़ी न हुए। अन्त में उसने आत्महत्या कर ली और उसके शोक में कालीदासी ने भी आत्मघात कर लिया।

मुज़फ़्फ़रपुर में उन दिनों प्रायः प्रतिवर्ष जाड़ों में प्लेग का प्रकोप जोरों में हुआ करता था। १९२० में राजबाला के पति चन्दर बाबू भी उसके चुंगल में फंसे और उनका देहान्त हो गया। राजबाला ने तब न्यू डिसपेंसरी को चन्दरबाबू के भांजे नित्य गोपाल सिद्धान्त (उपनाम बंकू) के (जिनकी मृत्यु पिछले वर्ष हुई) हाथ बेचकर कलकत्ता का रास्ता पकड़ा। आज से प्रायः बीस वर्ष पहले कलकत्ता में ही राजबाला का भी देहावसान हो गया। जीवन के अन्तिम दिनों में वह अपने एक भाई के साथ धर्मतल्ला स्ट्रीट में रहा करती थी।

ऊपर जिन बातों की चर्चा की गई है, उन्हें दृष्टि में रखकर यदि हम 'श्रीकांत' को पढ़ें, तो हमें यह समझने में देर न लगेगी कि उसकी पृष्ठभूमि कौन-सी है। उसके पात्रों में मुख्य पात्र मुज़फ़्फ़रपुर के हैं और कतिपय घटनाएं भी। श्रीकान्त शरतबाबू स्वयं हैं तथा इसमें महादेव (ज़मीन्दार),

(शेष पृष्ठ ६२ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज का सिंगापुर

श्रीधर त्रिपाठी

पूर्व का सम्पन्न उपनिवेश सिंगापुर, जिसे कुछ लोग दक्षिण-पूर्व एशिया का स्विट्ज़रलैण्ड कहते हैं, नए तथा पुराने जगत को मिलाने के कारण महत्वपूर्ण स्थान है। इस छोटे द्वीप की लम्बाई २६ मील तथा चौड़ाई १४ मील है तथा मलय देश के जौहर राज्य से पौन मील लम्बे समुद्री पुल एवं रेल से इसका चौबीस घण्टे सम्बन्ध बना रहता है।

भौगोलिक दृष्टि से निर्विवाद स्वरूप यह मलाया का अंग है, परन्तु ऐतिहासिक अध्ययन के अनुसार इसके अतीत पर प्राचीन भारतवर्ष का अमिट प्रभाव है। सम्प्रति जनसंख्या के अनुसार एक प्रकार से यह लघु चीन है, परन्तु यह सब होते हुए भी वैधानिक रूप से इसका सम्बन्ध ब्रिटिश सत्ता से है। गत वर्ष जब मलय देश ने स्वतन्त्रता प्राप्त की तो इसे अपने में विलय करने से अस्वीकार कर दिया, जिसके फलस्वरूप एशिया की भूमि पर सैनिक अड्डे के रूप में आज यह पाश्चात्य प्रभुत्व का परिचायक है।

जो लोग यहां बसे हैं, उनमें सर्वाधिक संख्या चीनियों की है। ये कुल आबादी के ८० प्रतिशत हैं। भारतीय एवं पाकिस्तानी ९४,०००, मलय (जिनमें अधिकांश इण्डोनेशिया के हैं) १,४८,०००, यूरोपियन १४,००० तथा यूरेशियन १०,००० हैं। सन् १९५३ में समस्त जनसंख्या ११,२३,९७२ थी। प्रवासी भारतीयों में अधिकतर तमिल हैं, शेष क्रमशः मलयालम, सिख, सिन्धी, गुजराती, पंजाबी, हिन्दू, बंगाली, मारवाड़ी, तेलगु व अन्य प्रान्तों के भी व्यक्ति हैं। इस द्वीप की सम्पूर्ण जनसंख्या में आधे से अधिक इक्कीस वर्ष से कम की आयु वाले हैं एवं बालिकाओं व स्त्रियों की अपेक्षा बालकों व पुरुषों की संख्या बहुत कम है। विश्व की अधिकाधिक भाषाओं के बोलने वालों तथा विभिन्न वेशभूषा धारण करने वालों का यह समाज है और जब सायंकाल नगर एवं समुद्र तट के एलिजाबेथ पार्क पर इनका समुदाय एकत्र होता है, तो एक मनोहारी दृश्य उपस्थित हो जाता है।

'सिंगापुर' नाम के मूल रूप के बारे में कहा जाता है कि यह संस्कृत शब्द 'सिंह पुरम्' का अपभ्रंश है, जो कालान्तर में क्रमशः 'सिंहापुरा' से सिंगापुर हो गया। कहा जाता है कि आज से सात सौ वर्ष पहले यवद्वीप (जावा) से एक राजकुमार यहां आया और उसने सर्वप्रथम यहां की पहाड़ी (वर्तमान फोर्ट कैनिंग) पर बैठे एक सिंह को देखा और उसी के कारण यहां का नाम सिंहपुर रखा। उसका राज्य सन् १३७७ में समाप्त हो गया। वर्तमान सिंगापुर को सन् १८१९ में सर स्टैफर्ड रैफल्स ने बसाया, जिनके नाम पर यहां आज अजायबघर व शिक्षा संस्थान आदि बने हैं। सन् १८५६ ईसवीं तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी यहां शासन करती रही और इसके उपरान्त भारत सरकार ने इसका शासन अपने हाथ में ले लिया। ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने वाले जिन देशभक्तों को देश निष्कासन का दण्ड मिलता था, व यहां लाकर बसाए जाते थे। आज भी यहां पर अनेकों सड़कें भारतीय गवर्नर-जनरलों के नाम पर उन लोगों की याद दिलाती हैं। अब भी कितने ही परिवार हैं, जिनके पूर्वज काले पानी की सजा के कारण ही यहां लाए गए थे। १५ फरवरी सन् १९४२ को द्वितीय महायुद्ध में जापान ने इस पर अधिकार कर लिया, तथा ब्रिटिश सेनाओं ने ५ सितम्बर १९४५ को यहां सैनिक शासन स्थापित किया। १ अप्रैल १९४६ को इसे उपनिवेश घोषित किया गया तथा इसके अन्तर्गत ही क्रिसमस व कोको द्वीप (जो अब आस्ट्रेलिया को दे दिए गए हैं) के प्रशासन की व्यवस्था भी की गई।

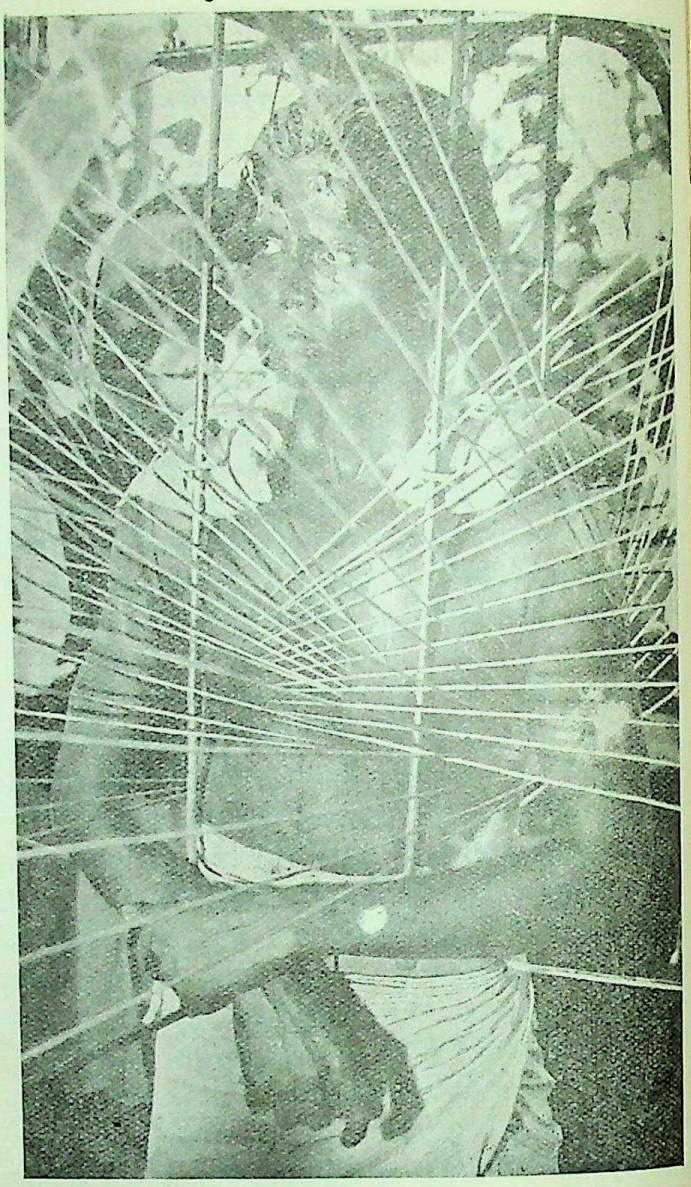

शरीर म लोहे की कीलें चुभाकर प्रदर्शन करने वाला एक तमिल युवक

प्राकृतिक दृष्टि से यह द्वीप बहुत ही सुन्दर है। साथ ही धनी भी। भूमध्य रेखा के निकट कुछ ही उत्तर पर स्थित होने के कारण वर्षा यहां लगभग ५० इंच होती है। दिसम्बर व फरवरी में कभी-कभी बाढ़ भी आ जाती है। तापक्रम वर्षपर्यन्त ७५ व १०० डिग्री (फारन हाइट) के बीच रहता है, समस्त द्वीप छोटी-छोटी सैकड़ों पर्वतमालाओं से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आच्छादित है। प्रकृति ने इसे अक्षय सौन्दर्य प्रदान किया है। दो सौ फुट से भी अधिक ऊंचे वृक्ष लता-गुल्मों से सजे रहते हैं। धरती सदैव हरा मखमली परिधान धारण किए रहती है तथा आकाश कभी स्वच्छ, नीला, प्रकाशमय तथा कभी श्यामल मेघमालाओं से परिपूर्ण। रबड़, नारियल, इलायची, लवंग, पुंगीफल (सुपारी), दुरियन, पनसफल (कटहल) क वृक्ष एवं विभिन्न प्रकार के केलों के वन (कदली वन) हृदय को लुभा लेते हैं। मिट्टी कहीं पीली और कहीं लाल है। कीचड़ों में मगर तथा जंगलों में बन्दर अधिक पाए जाते हैं। ऊंट आज तक यहां नहीं देखा गया। पक्षीगण तो अनेकानेक प्रकार के हैं, जिनका मधुर शब्द व सुन्दर प्रकृति मन को मोह लेती है।

सिंगापुर फ्री पोर्ट है, अतः व्यापार यहां उन्नति पर है। केवल मादक वस्तुओं पर ही कर लिया जाता है। पाश्चात्य जगत की बनी सभी वस्तुएं यहां सुलभ होने के साथ ही अत्यन्त सस्ती भी हैं। एशिया में यहीं का जीवन स्तर सब से अधिक ऊंचा है। साधारणतः मजदूर भी पन्द्रह रुपये रोज कमा लेता है तथा सड़क साफ करने वाले की कलाई पर भी रिस्ट वाच बंधी ही रहती है। अध्यापक, डाक्टर, पुलिस यहां एशिया के किसी भी देश की अपेक्षा अधिक वेतन प्राप्त करते हैं। प्रारम्भिक पाठशाला का साधारण अध्यापक कम से कम पांच सौ रुपये से वेतन प्रारम्भ करता है आफ़िसों में काम करने वाले साधारण क्लर्क भी कार, या मोटर साइकिल तथा रेडियो रखते हैं। नगर में इतनी मोटरें हैं कि उनके चलाने के लिए सरकार को विशेष व्यवस्था करनी पड़ती है। इसका एक कारण यह है कि सिंगापुर में कारें सस्ते मूल्य पर तथा सुविधापूर्वक मिल जाती हैं। ऊंचे-ऊंचे वाणिज्य भवन व कार्यालय जिनका सम्बन्ध विश्व के देशों से निरन्तर बना है, समस्त आधुनिक प्रशासनों से सुसज्जित सागर तट पर अतीव शोभा देते हैं। सामने लहराते हुए नील सागर के वक्ष पर देश विदेश के सैकड़ों जलयान लंगर डाले एकटक नगर को देखते रहते हैं। होटलों, रेस्ट्रां, मद्यपान गृहों तथा नृत्य गृहों की संख्या वृद्धि के लिए यहां का सामरिक महत्व व सैनिक अड्डा उत्तरदायी है।

यहां का मुख्य उद्यम व्यापार है। बैंक, गोदाम, बीमा कम्पनियां, हवाई अड्डा व बन्दरगाह धनोपार्जन के माध्यम हैं, जिनके द्वारा विदेशी मुद्रा सदैव यहां प्रभूत मात्रा में आती रहती है। मलाया में आने वाली ७५ प्रतिशत वस्तुएं सिंगापुर बन्दरगाह से ही होकर आती हैं और बाहर भेजी जाने वाली वस्तुएं टिन, रबर, नारियल का तेल, अनन्नास, बेंत व विभिन्न मसाले आदि इसी राह जाते हैं। विश्व में टिन व रबर का सर्वाधिक उत्पादन मलाया करता है तथा दोनों ही युद्ध सामग्री हैं, अतः धनी पाश्चात्य देश उन्हें खरीदने के लिए पौण्ड व डालर देने में कमी नहीं उठा रखते। मलायन डालर यहां का सिक्का है, जिसमें सम्राज्ञी एलिजाबेथ द्वितीय का चित्र अंकित है, तथा यह दशमलव प्रणाली पर आधारित है। इसका मूल्य भारतीय १ रुपए ९ आने के बराबर है। १ सेण्ट, ५ सेण्ट, १० सेण्ट, २० सेण्ट, ५० सेण्ट और फिर १०० सेण्ट का एक डालर का नोट--इस प्रकार के सिक्के हैं। एक सेण्ट तांबे का होता है, शेष सभी मिली हुई चांदी के।

बहुसंख्यक चीनी लोग बौद्ध धर्मानुयायी हैं। मलय व पाकिस्तानी मुसलमान तथा प्रवासी भारतीयों में अधिकांश हिन्दू हैं। ईसाई विभिन्न देशों के हैं। बौद्ध व हिन्दू मन्दिरों, मस्जिदों तथा गुरुद्वारों से यहां गिरजा-

(शेष पृष्ठ ६१ पर)

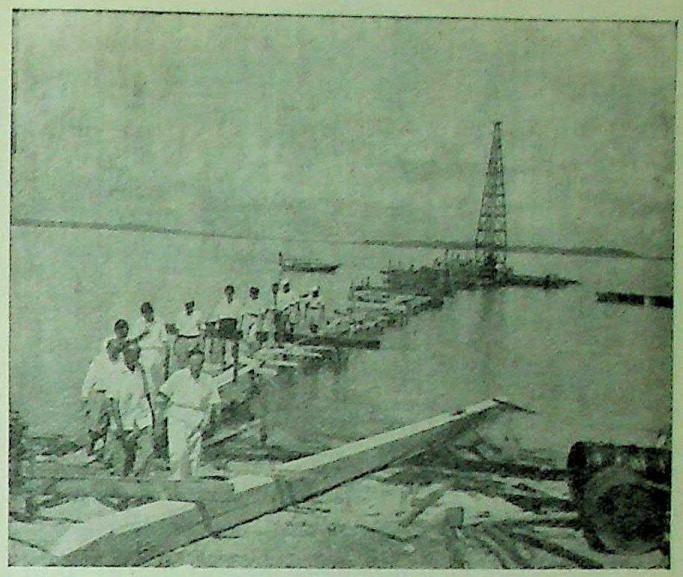

भारतीय पत्रकार मण्डल द्वारा जहाज़ निरीक्षण

सिंगापुर का सर्वोच्च न्यायालय भवन

नीचे : जल-विहार का दृश्य

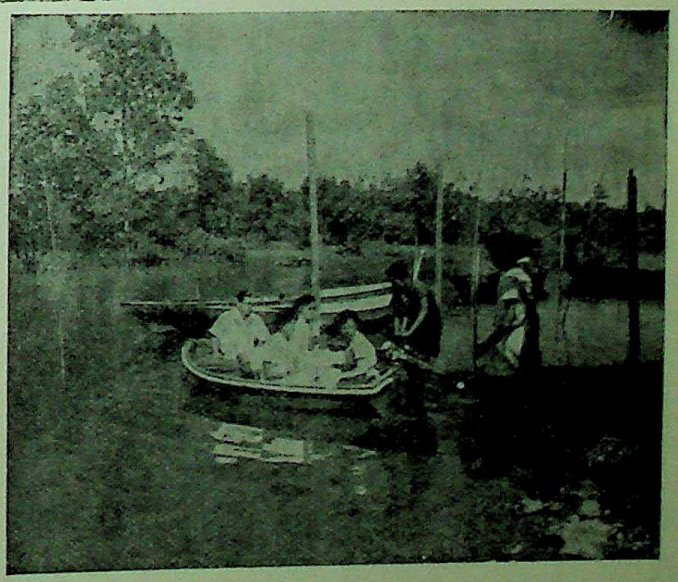

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक समालोचना

महात्मा गांधी—दी लास्ट फेज़ (दूसरा भाग) : लेखक—प्यारेलाल; प्रकाशक—नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद; पृष्ठ संख्या–(बडे आकार के) ८८८+५० पृष्ट आर्ट पेपर पर ६४ चित्र; मूल्य २०) रु० खादी की सुन्दर जिल्द सहित।

'दि लास्ट फ़ेज़' के प्रथम भाग की चरचा इन कालमों में यथासमय की जा चुकी है। इस दूसरे भाग की प्रतीक्षा उसी समय से की जा रही थी। हमें प्रसन्नता है कि यह दूसरा भाग सभी दृष्टियों से आशानुरूप है। इस भाग में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के जीवन के अन्तिम दस महीनों का क्रमबद्ध जीवन वर्णित है। ये १० महीने भारत के इतिहास का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण काल सिद्ध हुए। इन्हीं महीनों में देश के विभाजन का निश्चय हुआ, इन्हीं महीनों में भारत की स्वाधीनता के साथ ही साथ पाकिस्तान नाम से एक नए राष्ट्र का जन्म हुआ, इन्हीं महीनों में संसार के इतिहास की सबसे बड़ी आबादियों की अदला-बदली हुई और इन्हीं महीनों में भारत के राष्ट्रपिता शहीद हुए। इन सब ऐतिहासिक घटनाओं का अत्यन्त प्रामाणिक, सुलिखित और सिलसिलेवार वर्णन आपको इस रचना में मिलेगा। इस तरह यह ग्रन्थ इस वर्ष का अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से भी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। प्यारेलाल जी महात्मा गान्धी के निजी सचिव थे। जिन दिनों के सम्बन्ध में यह ग्रन्थ लिखा गया है, विशेषतः सितम्बर १९४७ से जनवरी १९४८ तक, उन्हें तथा श्री बृजकृष्ण चांदीवाला को गान्धी जी के निकटतम सह-निवास का अवसर प्राप्त हुआ था। इस तरह यह एक ऐसे अत्यन्त प्रामाणिक व्यक्ति का लिखा हुआ ग्रन्थ है, जो सौभाग्य से बहुत अच्छे लेखक भी हैं। यह विशेष संतोष का विषय है कि यह ग्रन्थ लिखते हुए प्यारेलाल जी एक नई ऊँचाई पर पहुंचे हैं। इस काल के सम्बन्ध में महात्मा गान्धी के बारे में अभी तक जितने ग्रन्थ लिखे गए हैं, उन सब में यह ग्रन्थ सबसे अधिक प्रामाणिक और निस्सन्देह सर्वश्रेष्ठ है।

'लास्ट फ़ेज़' के इस भाग के कितने ही स्थल ऐसे हैं, जिन्हें पढ़ते हुए पाठक की आँखें आपसे आप आँसुओं से भर आएँगी, पुस्तक के अक्षर उसके सम्मुख धुंधले पड़ जाएंगे और वह आप से आप कुछ सोचने लगेगा, जैसे अपनी धुंधली दृष्टि के सम्मुख वह भूतकाल का कोई चौंका देने वाला चित्र देख रहा हो। यह ग्रन्थ पढ़ते हुए पाठक कितनी ही बार सिहर उठेगा और कितने ही स्थलों पर वह रोमांचित हो उठेगा। मानवता का चरम विकास और साथ ही साथ मानवता का अधिकतम पतन—दोनों का चित्रण इस ग्रन्थ में अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से हुआ है। एक ओर यह रचना एक श्रेष्ठ उपन्यास के समान मनोरंजक है और दूसरी ओर धर्म ग्रन्थ के समान यह रचना आत्मा को ऊँचा उठाने वाली है।

गान्धी जी की बिहार यात्रा, उनका कलकत्ते का चमत्कार, देश की स्वाधीनता, गान्धी जी का दिल्ली निवास, उनका अन्तिम अनशन और अन्त में उनका बलिदान—इन सब का विस्तृत वर्णन इस ग्रन्थ में है। २३ अगस्त, १९५७ को स्वाधीन भारत के प्रथम गवर्नर जनरल लार्ड माउण्टबेटन ने महात्मा गान्धी को लिखा था—

"मेरे प्रिय गान्धी जी,

पंजाब में हमारे ५५,००० सिपाही हैं, फिर भी वहाँ भयंकर मारकाट जारी है। बंगाल में हमारी प्रतिरक्षा सेना सिर्फ़ एक आदमी की है, फिर भी वहाँ कोई रक्तपात नहीं हो रहा!

एक सेवारत अफ़सर तथा एक प्रशासक के नाते मुझे इजाजत दीजिए कि इस 'एक मनुष्य की सीमान्त सेना' को मैं अपनी श्रद्धाँजलि अर्पित कर सकूँ। मैं आपके सहायक श्री सुहरावर्दी को भी नहीं भूल रहा हूँ।

आपने सुना होगा कि १५ अगस्त को संविधान-सभा में आपका नाम लेते ही कितना उत्साहपूर्ण करतलवादन हुआ था। उस दिन हम सब लोग आपको बहुत अधिक याद करते रहे।

एडवीना (लेडी माउण्टबेटन) आज राजकुमारी अमृतकौर के साथ इस साहसपूर्ण इरादे से पंजाब गई है कि शायद वहाँ शरणार्थियों के दुख और कष्ट को कुछ कम कर सके।

गहरी सद्भावनाओं के साथ आपका-
माउण्टबेटन आफ़ बर्मा"

इस तरह के कितने ही ऐतिहासिक प्रलेख इस ग्रन्थ में उद्धृत किए गए हैं। गान्धी जी की दिनचर्या के सम्बन्ध में प्यारेलाल जी निरन्तर डायरी रखते रहे हैं। यह ग्रन्थ मुख्यतः उसी डायरी के आधार पर लिखा गया है, साथ ही महात्मा गान्धी के लेखों, पत्रों और भाषणों का भी खूब खुला उपयोग इस ग्रंथ में किया गया है। मुख्यतः इसी कारण यह ग्रन्थ इतना विशाल बन गया है। महात्मा गान्धी का सर्वांगीण जीवन तो शायद कभी भविष्य में लिखा जाएगा। पर उसके लिए खूब अच्छी सामग्री अवश्य एकत्र हो गई है। यह मूल्यवान ग्रन्थ उस सामग्री का एक श्रेष्ट भंडार है और जिस काल के सम्बन्ध में यह ग्रन्थ लिखा गया है, उसके बारे में इससे अच्छा सन्दर्भ ग्रन्थ अन्य कोई नहीं है। इस अत्यन्त सुन्दर और मूल्यवान ग्रन्थ के लेखक और प्रकाशक दोनों बधाई के पात्र हैं। क्या हम आशा करें कि 'लास्ट फ़ेज़' के दोनों भागों का अविकल अनुवाद बहुत शीघ्र भारतीय भाषाओं में भी उपलब्ध होगा। इस कार्य का प्रारम्भ हिन्दी अनुवाद से होना चाहिए।

जन गीता : प्रतिध्वनिकार—हरिवंश राय बच्चन; प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट दिल्ली; पृष्ठ संख्या (बड़े आकार के) ९६; मूल्य ३) रु० सजिल्द।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे राष्ट्रीय जागरण में गीता का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस युग में लोकमान्य तिलक, श्रीमती एनी बेसेंट, महात्मा गांधी, सन्त अरविंद, डा० राधाकृष्णन, श्री राजगोपालाचार्य, आचार्य श्री विनोबा भावे आदि विद्वानों और सन्तों ने अपनी-अपनी रीति से गीता को अपने स्वाध्याय, चिन्तन अथवा अनुवाद का विषय बनाया। यों तो गीता के बहुत से अनुवाद खड़ी बोली हिन्दी के गद्य-पद्य में भी हुए, परन्तु हिन्दी की एक अत्यन्त लोकप्रिय शैली अवधी में जब तक गीता का कोई अनुवाद नहीं था, अवधी की वह शैली जिसमें गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस लिखकर जन मानस को शान्ति दी। डा० हरिवंश राय बच्चन ने गीता का अनुवाद अवधी भाषा में, रामायण की दोहा-चौपाई शैली में कर उस कमी को पूरा किया है।

गीता का पद्यानुवाद एक अत्यन्त कठिन कार्य है। पर डाक्टर हरिवंश राय बच्चन को इस कार्य में निस्सन्देह यथेष्ठ सफलता प्राप्त हुई है। पाठक पाएंगे कि बच्चन जी इस अनुवाद में केवल रूपान्तकार ही नहीं, अपितु जैसे सच्चे अर्थों में प्रतिध्वनिकार हैं। मानो किसी असाधारण प्रेरणा के वशीभूत होकर पूरी तन्मयता से उन्होंने यह दुस्साध्य कार्य किया है। यद्यपि आचार्य विनोबा के समान समश्लोकी अनुवाद का प्रयत्न उन्होंने नहीं किया, तथापि इस अनुवाद की सम्भावनाएं अत्यन्त असाधारण हैं। कौन जानता है कि एक दिन यह रूपान्तर हिन्दी जगत में, विशेषतः उत्तर प्रदेश के ग्रामीण समाज में कितना लोकप्रिय हो जाएगा।

पाठकों की जानकारी के लिए हम यहां इस अनुवाद का एक अंश दे रहे हैं। यह अंश दूसरे अध्याय का उत्तरांश है, जिसका पारायण गांधी जी कि प्रार्थना सभा में प्रतिदिन होता था : 'स्थितधीः किं प्रभाषेत् किमासीत् व्रजेत किम् ?" से—

चौपाई

कृष्न-बचन सुनि, कुरु-कुल-स्वामी,
पार्थ, पुकारेउ, "नाथ, नमामी !
थिरमति जोगस्थित को अहई ?
केहि बिधि बोलइ, डोलइ, रहई ?"
पार्थ प्रस्न सुनि, जदु-कुल-राई,
बोलेउ ग्यान-गिरा मुसुकाई,
"जो मनगत अभिमत-समुदाई,
रोकि, हटाइ, मिटाइ, बिहाई,
आपु आपु मुंह रहइ समाई,
सोइ पावइ चित-सुस्थिरताई।
अरजुन, सुनु, सुस्थिर-मति रीति,
दुख सन खुनिस न सुख सन प्रीती,
दैन्य न हारेहुँ, दंभ न जीती,
रंच न राग, न रोष न भीती।

दोहा

बांधत नहिं थिर-बुद्धि कहुँ कबहुं मोह कर पास,
हुलसित करत न सुभ कबहुँ, असुभ न करत उदास।

चौपाई

जिमि कच्छपु सब अंग सकोरी,
छन महुं लेइ उदर सन जोरी,
तिमि इंद्रिन्हि बिषयन्ह तें मोरी,
देइ सुथिर-मति निज महुँ बोरी।।
अरजुन, बिषयन्ह तें मुख मोरें
मोह न तिन्हकर छूटइ भोरें,
बिषयन्ह-मोह तजइ नर सोई,
ब्रह्म-भगति अपनावइ जोई।
इंद्रिय, पार्थ, प्रबल अति आहीं,
केहु सन सहज न बस करि जाहीं,
बिग्य करहिं जे जतन बहूता,
होहिं बिबस तिन्हतें अभिभूता।
तिन्हतें उबरहिं तेइ बड़भागी,
जे तिन्हकहुं संजम सन त्यागी,
सम-सुस्थिरचित ध्यावहिं मोहीं,
मोह-बिषय बस बहुरि न होहीं।
जब नर इंद्रिन्ह-बिषयन्हि ध्यावहिं,
मन महुं राग बिषम उपजावहिं,
राग जनइ अभिमत बहु भांति,
अभिमत रोष जनइ उतपाती,
रोष जनइ संमोह बिकारा,
मोह करइ मति-भ्रम बिस्तारा,
करइ मतिभ्रम बुद्धि बिनासा,
बुद्धि नसें बिनसइ सब आसा।

सोरठा

होइ संजम-संजुक्त, इंद्रियगत करतब्य करि,
राग-द्वेष तें मुक्त, सांति लहइ नर बिस्व महुं।

चौपाई

सांति करइ सब दुख कर नासा,
दुख बिनसें आनंद प्रकासा,
आनंद अंतर माझ समाई,
देइ तुरित चित-सुस्थिरताई।
संजम बिनु बुधि थिर नहिं होई,
मन महुँ जागइ भाव न सोई,
जामहुं ब्रह्म करइ अधिबासा,
ब्रह्म बरे बिनु सांति दुरासा,
अरजुन, सांति न जानइ जोई,
सुख सन ताकरि भेंट न होई।
इंद्रियगत करतब्य निबाहत,
जो तिन्हकें सँग मनहुँ लगावत,
दूरि करत चित-सुस्थिरताई,
देत पवन जिमि नाव बहाई।
इंद्रियगत करतब्य निबाहत,
जो मन पर अंकुस रखि पावत,
ताकरि थिर मति, पार्थ प्रतापी,
डिगत न बिनसत कतहुँ, कदापी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेहि जामिनी सबु सोवनिहारा,
जागइ जोगी जोग सम्हारा,
जेहि जामिनी जगु जागनिहारा,
जोगी सोइ करइ भिनुसारा ।
दिसि-दिसि उमगि नदी जिमि धाई,
अंबुधि महुँ प्रबसहिं असहाई,
किंतु समुद्र न चलइ तोराई,
अरजुन, तिमि अभिमत-समुदाई
सुस्थिर चित महुं करहिं प्रबेसा,
किंतु न बिचलहिं तेहि लवलेसा,
सांति लहइ सोइ सांत-सुभाऊ,
अभिमत-मत्त लहइ नहिं काऊ ।
छोरइ जो अभिमत-समुदाई,
तोरइ ममता-मोह-सगाई,
आनइ नहिं मन महुं अभिमाना,
रहइ सदा सो सांति-समाना ।

दोहा

असि ब्रह्मस्थिति पाइ नर, भ्रमित कबहुँ नहिं होय,
अंतुहुँ पावइ ब्रह्म-पद, ब्रह्मस्थिति महुँ सोय ।' १७१

मेरी राय से 'जन गीता' के इस प्रथम संस्करण में यदि मूल गीता के श्लोक भी फुटनोट के रूप में ने दिए जाते, तो वह बहुत सुविधाजनक होता। बच्चन जी ने कुछ पारिभाषिक दार्शनिक शब्दों को समझा कर कहने का प्रयत्न किया है, जैसे ऊपर "कामाः" का अनुवाद 'अभिमत समुदाई' किया गया है। देखना यह है कि इस तरह के पारिभाषिक शब्दों को जन साधारण ठीक से समझ पाता है या नहीं। आचार्य विनोबा ने अपने मराठी समश्लोकी अनुवाद में परिभाषिक शब्द उसी प्रकार रखे हैं।

हमारे युग का एक नायक : लेखक-म० यू० लेर्मोन्तोव; अनुवादक--राजेन्द्र यादव; प्रकाशक--विदेशी भाषा प्रकाशगृह, मास्को; पृष्ठ संख्या ('आजकल' साइज़ के) २०८।

सुप्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार लेर्मोन्तोव का जन्म सन् १८१५ में हुआ था। सिर्फ २५ वर्ष की आयु में उन्होंने स्थायी महत्व का यह उपन्यास लिखा था, जिसने उस युग में एक तहलका-सा मचा दिया था। इससे पूर्व लेखक एक क्रांतिकारी कवि के रूप में ख्याति-प्राप्त कर चुका था और तत्कालीन रूसी सरकार का कोप भाजन बन कर काकेशिया में निर्वासित जीवन बिता आया था। लेर्मोन्तोव का यह प्रथम उपन्यास वास्तव में ६ पृथक्-पृथक् कहानियों के रूप में लिखा गया है, जिनमें पेचोरिन नामक एक कुलीन सैनिक की विभिन्न समयों की डायरी दी गई है। यह पेचोरिन तत्कालीन रूसी कुलीन समाज का प्रतीक है और उस युग की पूरी गैर-जिम्मेवारी, ऐशपरस्ती आदि का बहुत अच्छा चित्रण इस उपन्यास में है। इस उपन्यास को बहुत लोकप्रियता प्राप्त हुई, पर लेर्मोन्तोव बहुत से लोगों की निगाह में शूल-सा चुभने लगा। पहले तो उसे पुनः काकेशस-निर्वासन की सज़ा दी गई। वहाँ से वापस आया तो २७ जुलाई १८४१ को एक द्वन्द्व युद्ध में उसकी हत्या कर दी गई। इस तरह यह अत्यन्त प्रतिभाशाली लेखक २७ वर्ष आयु में ही चल बसा और एक से अधिक उपन्यास न लिख पाया।

लेर्मोन्तोव का यह उपन्यास निस्सन्देह अत्यन्त श्रेष्ठ है। कथानक अत्यन्त मनोरंजक और घटनापूर्ण है ही, शैली और निर्माण भी एकदम मौलिक हैं। यह उपन्यास अत्यधिक लोकप्रिय होना चाहिए। एक प्रतीकात्मक उपन्यास इतना अधिक मनोरंजक हो सकता है, यह देख कर अचम्भा होता है।

अनुवाद सब मिला कर काफ़ी अच्छा हुआ है। पर उसमें अभी परिष्कार की गुंजाइश है। उदाहरण के लिए--

"लेकिन जो कुछ होना होता है, उसका चेहरा प्रथम स्पर्श को ही प्राप्त होता है।" (पृष्ठ १३८)

"मैंने दो मग निकाले, उनमें चाय उडेली और एक कप्तान के सामने रख दी।" (पृष्ठ १८-१९)

"बोझ इतना भारी और वजनी था।" (पृष्ठ ८०)

"बालों पर गौर जरा दीजिए।" (पृष्ठ ९९)

इसी तरह पृष्ठ १४१ पर बाल रूम नृत्य के 'स्टैप्स' के लिए 'मुद्रा' शब्द का प्रयोग किया गया है; कितनी ही जगह लम्बाई का माप 'वर्स्ट' में दिया गया है और यह नहीं बताया गया कि 'वर्स्ट' कितना लम्बा होता है।

कुछ वाक्य अस्पष्ट रह गए हैं। जैसे "विरोधी के प्रति उदारता जितनी अधिक होगी, दुश्मन के हृदय में घृणा की मात्रा भी उसी अनुपात में बढ़ेगी।" (पृष्ठ १०३)

"दोस्त, मैं लोगों से घृणा करता हूँ ताकि उनकी उपेक्षा न करूँ, और अगर ऐसा न होता तो मेरी ज़िन्दगी मजाक बन कर रह गई होगी।" (पृष्ठ ९९)

पर जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, सब मिला कर अनुवाद खासा अच्छा है और यदि उसका सूक्ष्मता से निरीक्षण कर लिया गया होता और वह और भी अधिक अच्छा बन जाता। इस तरह की अत्यन्त श्रेष्ठ रचनाओं का अनुवाद निर्दोष होना चाहिए।

तूफान के बादल : लेखक--मन्मथनाथ गुप्त; प्रकाशक--राजहंस प्रकाशन, सदर बाजार दिल्ली-६; पृष्ठ संख्या--२२४; मूल्य ४) रु० सजिल्द।

'तूफान के बादल' श्री मन्मथनाथ गुप्त का सबसे ताज़ा उपन्यास है। इस उपन्यास का घटना क्षेत्र पूर्वी बंगाल है और काल १९४६ का है, जब पूर्वी बंगाल में भयंकर सामुदायिक मारकाट हुई थी। जहाँ तक उत्तर-पश्चिमी भारत का सम्बन्ध है, उन दिनों की मारकाट पूरी तरह साम्प्रदायिक थी। पूर्व में, यानी बंगाल में, महात्मा गान्धी के प्रयत्नों से विभाजन लगभग शान्तिपूर्वक हुआ था। पर उससे पूर्व श्री जिन्ना के १६ अगस्त, १९४६ के डाइरैक्ट एक्शन दिवस के परिणामस्वरूप पूर्वी बंगाल में भयंकर मारकाट हुई थी। लेखक ने अपने इस उपन्यास में उस मारकाट आदि को एक विशेष अर्थ देने का प्रयत्न किया है। उनके दृष्टिकोण से उक्त मारकाट को उकसाने वाले अंग्रेज थे तथा उसका संगठन उत्तरी-पश्चिम से आए मुसलमानों ने किया था। उस मारकाट में हिन्दू रैयत ने भी हिन्दू जमींदारों को बचाने की कोई कोशिश नहीं की। 'तूफ़ान के बादल' में ब्राह्मण पुरोहित का पुत्र परिमल तथा शकूर हसन इस साम्प्रदायिक नृशंसता के विरुद्ध खड़े होने का साहस भी करते हैं। इस विरोध का महत्व इस कारण बढ़ जाता है कि परिमल के पिता, माता तथा बहनों की अत्यन्त नृशंसतापूर्वक हत्या की गई है और शकूर का भाई इसी साम्प्रदायिकता की आंधी में मारा जा चुका है। इसी तरह अन्य भी कितनी ही नई बातें या नए दृष्टिकोण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने का प्रयत्न लेखक ने किया है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी न्यूनता यह है कि उतनी बड़ी घटना पर यह एक अत्यन्त छोटी रचना है। उपन्यास की नायिका रेणु का की जो दुर्दशा इस उपन्यास में दिखाई गई है, वह अनुभूतिशील पाठक को रुचिकर प्रतीत नहीं होगी। फिर भी उपन्यास सोद्देश्य, घटनापूर्ण तथा मनोरंजक है।

--चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

●

काव्य की भूमिका : लेखक--श्री रामधारीसिंह दिनकर; प्रकाशक--उदयाचल, पटना; पृष्ठ संख्या--१४७; मूल्य--चार रुपए।

इस पुस्तक में दिनकर जी के ग्यारह निबन्धों का संग्रह प्रकाशित किया गया है। इन सब लेखों में दिनकरजी का मौलिक चिन्तन सामने आता है। रहा कहाँ तक वह हिन्दी के विद्वानों को मान्य होगा यह दूसरी बात है, पर अब तक शास्त्रीय ढंग से सोचने वाले लोगों में जिस तरह से साहित्य पर विचार करने का तरीका था उससे दिनकरजी के विचार का ढंग बिल्कुल अलग है। उदाहरण स्वरूप 'रीतिकाल का नया मूल्यांकन' नामक उनका पहला लेख लिया जाए, जिसमें वे कहते हैं: "रीतिकालीन साहित्य में ऐसा अंश बहुत कम है, जिसमें अपने समय का ताप हो अथवा जिसके भीतर तत्कालीन समाज की भावनाओं का प्रतिबिम्ब मिलता हो या जिसमें यह ताकत हो कि वह पढ़नेवालों के मन को किसी यात्रा पर भेज सके। रीतिकाल की सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि उससे यह मालूम ही नहीं होता कि उस युग के साहित्यकार समाज की समस्याओं से परिचित थे अथवा उन्हें इस बात का ज्ञान भी था कि समाज की भी समस्याएँ हुआ करती हैं। ऐसा लगता है कि रीतिकालीन कवियों के मन के किसी भी स्तर पर कोई सवाल नहीं था, जिसका उत्तर खोजने को वे संघर्ष में पड़ते अथवा किसी प्रकार की द्विधा और द्वन्द्व का सामना करते। उनका ध्यान जीवन पर नहीं, कला पर है, काव्यशास्त्र की गुत्थियों पर है और उन्हीं को समझाने के लिए उक्तियों और चित्रों का निर्माण करके वे निश्चिंत हो जाते हैं। तत्कालीन समाज के हृदय में जो शंकाएँ रही होंगी, लोग जिन समाधानों की कामना कर रहे होंगे, रीतिकाल के कवियों को वे सुनायी नहीं पड़े। इनमें से अधिकांश कवियों के कान संस्कृत के काव्यचार्यों की पोथियों की ओर थे, अतएव, जो कुछ उन्होंने सुना, वह इन्हीं पोथियों की आवाज थी, जिंदगी की शंकाएँ नहीं। अथवा उसे हम शुद्ध कला का स्वर भी कह सकते हैं।"

ऊपर जो उद्धरण दिया गया उसमें कोई प्रगतिशील आलोचक क्या जोड़ सकता है। रीतिकाल के इस मूल तक गई हुई आलोचना के अतिरिक्त वह कई जगह पर अन्य रूप में भी परम्परावादी आलोचकों की लीक से अलग जाते हैं। वह कहते हैं --"कमाल केवल बिहारी को ही हासिल नहीं है, रीतिकाल के छोटे और बड़े, प्रत्येक प्रकार के कवि में यह कला विलक्षण रूप से सफल दीखती है।" यह कथन एक तरह से उन लोगों को चुनौती है जो देव या बिहारी में ही रीतिकाल की सर्वोच्च देन पाते हैं।

सबसे मौलिक बात यह है कि दिनकर प्राचीन और आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा की एकता और निरन्तरता स्थापित करते हैं। वह भी विश्वनाथ प्रसाद के इस कथन को कि हिन्दी कविता के भीतर जो बेचैनी और मार्मिकता पाई जाती है वह सूफी कवियों की देन है मानते हुए भी इस बात की ओर विशेष रूप से दृष्टि आकर्षित करते हैं कि अनुभूति की मार्मिकता और दर्द की बेचैनी की मांग हिन्दी में छायावाद काल में खूब बढ़ी, किन्तु यह चीज छायावाद में कहीं बाहर से नहीं आई थी।

इसी प्रकार वह इस प्रश्न को भी विचारणीय मानते हैं कि नवीन हिन्दी कविता के प्रथम कवि भारतेन्दु हैं या घनानन्द। उनका कथन है कि रीतिकाल का कोई एक कवि अगर छायावादी कवियों का आत्मीय बन्धु कहा जा सकता है तो वह घनानन्द है।

इस पुस्तक के दो लेखों में छायावाद का विशद् विवेचन किया गया है। संक्षेप में उनका यह कथन है कि हिन्दी में छायावादी आन्दोलन रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से उत्पन्न नहीं हुआ था। वह कहते हैं कि प्रसाद और माखनलाल पर छायावाद के रवीन्द्र का कोई भी प्रभाव नहीं है। पर छायावाद के दो अन्य अग्रणी कवियों पंत और निराला पर रवीन्द्र का प्रभाव स्पष्ट है, इसके बाद महादेवी वर्मा पर फिर उनका प्रभाव नहीं है। फिर भी वह मानते हैं कि जब निराला और पंत आए, उनके साथ कुछ रावीन्द्रिक प्रभाव हिन्दी कविता में सम्मिलित हो गया।

प्रयोगवाद पर लिखते हुए वह प्रयोगवाद के कारण हिन्दी क्षेत्र में कवियों की जो बाढ़ आ गई है, इससे विचलित नहीं हैं बल्कि वह समझते हैं कि इससे लाभ ही रहेगा। यह सुपरिचित है कि दिनकरजी प्रगतिवाद को कोई साहित्यिक आन्दोलन नहीं मानते। पर वह कहते हैं: "प्रयोगवाद पर ऐसा कोई भी आक्षेप नहीं लगाया जा सकता। वह, आदि से अन्त तक, शुद्ध साहित्यिक आन्दोलन है, कला का आन्दोलन है और उसका मुख्य ध्येय काव्य एवं कला-सम्बन्धी हमारी धारणाओं को परिवर्तित करना है।"

उनका विचार है कि प्रयोगवाद हिन्दी-कविता को जिस ओर जाने का संकेत दे रहा है, वह काव्य की सबसे श्रेष्ठ दिशा है और इसीलिए प्रयोग की साधना भी ऐसी साधना है जिससे अधिक कठोर साधना की कल्पना नहीं की जा सकती।

इस पुस्तक के सभी लेख काफी दिलचस्प हैं। यद्यपि दिनकरजी प्रगतिवाद को कोई आन्दोलन नहीं मानते पर उनकी पुस्तक से यह स्पष्ट है कि वह प्रगतिवादी विचारों से अत्यधिक प्रभावित हैं। आलोचना के क्षेत्र में प्रगतिवाद की माँग केवल इतनी है कि कृति को सामाजिक परिस्थिति से संयुक्त करके दिखाया जाए, अवश्य इसी से एक साध्य यह भी निकलता है कि चूंकि समाज साहित्य को प्रभावित करता है इसलिए साहित्य भी समाज को प्रभावित कर सकता है। सच तो यह है कि रीतिकालीन कविता का जो मूल्यांकन दिनकरजी ने किया है और जिसे हमने कुछ हद तक उद्धृत किया है उससे यह भनक आती है कि वह आत्मा से प्रगतिवादी हैं पर किसी न किसी कारण से वह अपनी देह को या बहिरंग को दूसरा रूप देना चाहते हैं। उन्होंने इस पुस्तक में साहित्य में अन्तर्निहित दर्शन शास्त्र पर काफी विचार किया है। वह विशेषकर हर जगह निवृत्तिवादी दर्शन का विरोध करते हैं। ऐसे अवसरों पर भी वह जो दर्शन शास्त्र सामने रखते हैं वह बहुत कुछ प्रगतिवादी ही हैं। अवश्य उसमें और भी बहुत कुछ है। पुस्तक विचारोत्तेजक है।

श्री मुकुन्द केशव पाण्डे के एकांकी नाटक : १. विश्वबन्धु, २. गुरु सेवक, ३. शराबी, ४. दुर्दशा, ५. समाज शत्रु; प्रकाशक--भारती भण्डार, रामपुर; पृष्ठ संख्या--(क्रमशः) ३४, ३८, २८, ४४ और ७१; मूल्य (क्रमशः) ११२ आने, १२ आने, ६ आने, १२ आने और १ रुपया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विभिन्न विषयों को लेकर व्यावसायिक दृष्टि से जो बहुत-सी रचनाएँ प्रकाशित हो रही उन्हीं में इन नाटकों को गिनाया जा सकता है। इनमें से नमूने के तौर पर मैंने एक नाटक पढ़ा तो मालम हुआ कि लेखक का प्रयास काफी अपरिमार्जित है और ऐसी पुस्तकों से वास्तविक प्रचार कार्य होने की कोई आशा नहीं है। हाँ, हमारी ग्रामीण जनता के मनोरंजन का स्तर इतना गिरा हुआ है कि यदि इन नाटकों को खेला तो क्या इनके वाक्यों को खड़े होकर जनता के सामने बोला जाए, तो उससे भी कुछ न कुछ भलाई हो सकती है क्योंकि लेखक का उद्देश्य अच्छा है, पर जब प्रचार पर इतना खर्च हो रहा है तो अच्छी रचनएँ क्यों न प्रस्तुत की जाएँ यह मेरी समझ में नहीं आता। भाषा भी यथेष्ट सरल नहीं है।

(१) **लोक-नीति** : लेखक—विनोबा; प्रकाशक—अ० भा० सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन; पृष्ठ संख्या—२१६; मूल्य—सवा रुपया।

(२) **साम्य-सूत्र** : लेखक व प्रकाशक—वही; पृष्ठ संख्या—७५; मूल्य—सैंतीस नए पैसे।

विनोबा जी के व्याख्यानों तथा वक्तव्यों को बड़ा महत्व दिया जाता है। लोक-नीति नामक पुस्तक ३ खण्डों में विभाजित हैं। भूमिका लेखक का कहना है कि राजनीतिज्ञों तथा राजनीतिक विद्यार्थियों को यह पुस्तक नई दृष्टि प्रदान करेगी। पुस्तक पढ़ने से यह पता लगता है कि विनोबा जी वर्तमान शासन-पद्धति स सन्तुष्ट नहीं हैं। इसलिए वह किसी न किसी रूप में अराजक, पर साथ ही अत्यन्त उच्च कोटि के काल्पनिक समाज का चित्र पेश करते हैं।

साम्य-सूत्र विनोबा जी के प्रकाशित ग्रन्थों में सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें पुराने ढंग से संस्कृत सूत्रों में विनोबा जी के विचार बताए गए हैं और कुल ८१ सूत्र दिए गए हैं। अन्तिम सूत्र है—

भक्त्या एव तु निस्तारः (सूत्र ८१)

इस प्रकार कुछ व्यावहारिक बातों के साथ-साथ अध्यात्मवाद का मिश्रण है। उनका सारा दर्शन इन शब्दों में आ जाता है—

"मान लीजिए कि किसी मनुष्य के फेफड़े ठीक काम कर नहीं रहे हैं, तो उसके लिए क्या उपाय करते हैं? कोई क्षय-रोगी है, उसे स्वच्छ हवा मिलनी चाहिए। हम उसे किसी ऊँची जगह पर ले जाते हैं, क्योंकि वहाँ उसे स्वच्छ हवा मिलेगी। जिसके फेफड़े अच्छे होंगे, वह तो यहीं कमरे से भी अच्छी हवा खींच सकेगा। परन्तु उस बीमार के लिए खुली हवा ही चाहिए, क्योंकि हवा खींचने की उसकी शक्ति क्षीण हुई है। इस तरह उसके फेफड़ों को बाहर की मदद दी जाती है। यह मदद साधारण मनुष्य के लिए अनावश्यक है। हमारे इस शरीर में किसी की भी कमी हो, तो उसकी पूर्ति सृष्टि की ओर से होती है। यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है।

यदि किसी की आँखें क्षीण होती हैं, तो सूर्य-किरणों की मदद से वे दुरुस्त हो सकती हैं। सूर्य की किरणें पर्वतों पर पड़ती हैं, घास पर पड़ती हैं। और वहाँ से जिसे 'परावृत्त किरणें' कहते हैं, वे हमारी आँखों में पहुँचती हैं, तो उससे आँखें सुधर जाती हैं। इस तरह आँखों को जो शक्ति कम हुई थी, वह हमने बाहर से हासिल की। यह बिम्ब-प्रतिबिम्ब न्याय के अनुसार होता है। हमारे शरीर में जो तत्व या शक्ति है, वह सारे ब्रह्माण्ड में भी है। यदि शरीर में उनकी कमी होती है, तो बाहर से पूर्ति भी हो सकती है। हमारे शरीर में रक्त है, तो सृष्टि में पानी है। हमें आँखें हैं, तो बाहर उसका तत्व सूर्य में है। हमारे अन्दर प्राण हैं, तो बाहर वायु है। हमारे रक्त में लोहा है, तो बाहर सृष्टि में भी वह रहता है। रक्त में लोहे का अंश कम होने पर डाक्टर लोहा खाने को लिए कहते हैं—यानी जिस चीज में लोहे का अंश हो, ऐसी तरकारी या गुड़ खाने के लिए कहते हैं। इसप्रकार बाहर से मदद मिलने की प्रक्रिया को हम तत्वज्ञान की भाषा में 'अनुग्र' कहते हैं। हमारी आवश्यकता की पूर्ति के लिए हम पर ब्रह्माण्ड-शक्ति का अनुग्रह होता है। ऐसी कोई शक्ति बाहर अवश्य है, जिसकी मदद आध्यात्मिकता के क्षेत्र में जरूरत पड़ने पर हमें मिल सकती है।"

पूजातत्व : प्रकाशक—श्री गोपीनाथ कविराज, रिटायर्ड प्रिंसिपल, गवर्नमेंट संस्कृत कॉलिज, वाराणसी; पृष्ठ संख्या—१४४; मूल्य—४) रु०।

इस पुस्तक को एक भक्त ने लिखा है जिन्होंने किसी कारण से अपना नाम गुप्त रखा है। यह पुस्तक किसी भी प्रकार से उन पुस्तकों से भिन्न नहीं है जो ऐसे विषयों से सम्बद्ध होती है। हाँ, इस पुस्तक में जो परिशिष्ट है वह किसी हद तक संदर्भ कार्य के लिए महत्व का है। पर कुण्डलिनी, इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना आदि का विवरण विज्ञान के द्वारा समर्थित नहीं है और न वैज्ञानिक शरीर शास्त्र उनके अस्तित्व का समर्थन करता है। ऐसी हालत में इस भाग का भी मूल्य अनुमेय है।

गबन : एक सरल अध्ययन—लेखक—श्रीराम और सरस्वती; प्रकाशक—उषा प्रकाशन मन्दिर, मदास-१७; पृष्ठ संख्या—९२; मूल्य—१ रु० २५ नए पैसे।

इस पुस्तक में विद्यार्थियों के लिए गबन पर विस्तृत आलोचना प्रस्तुत की गई है।

मुझको जानो : लेखक—श्री सर्वदानन्द; प्रकाशक—श्री गंगाप्रसाद; पृष्ठ संख्या—लगभग ४००; मूल्य—६ रु०।

यह बृहद् पुस्तक किस उद्देश्य को लेकर लिखी गई है समझ में नहीं आता। पढ़ने पर ऐसा मालूम होता है कि किसी उन्मादग्रस्त व्यक्ति के हाथ में लेखनी दे दी गई है और उसने मनमाने ढंग से जहाँ जो तबीयत आई है वह वहाँ लिख दिया। लेखक का यह सारा पुराण गद्यपद्यात्मक है। उनके आविष्कारों आ एक-आध नमूना लिया जाए:

"जनसंघ—भारत की जनता का सूचक है।

काँग्रेस—सामन्तशाही का।"

इससे यह भ्रम होगा कि लेखक शायद जनसंघी है, पर यह बात नहीं आगे चलकर लेखक धर्म निरपेक्ष राज्य की प्रशंसा करते हैं। फिर वह यह लिख जाते हैं, कि हिन्दू कोडबिल कोई पुस्तक है जिसकी सरकार ने अन्याय-पूर्वक रचना की है। वह गर्म होकर लिखते हैं: "हिन्दू कोडबिल बनाने का अधिकार शासकों के पास कहां से आया। कभी सोचा आपने। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह एक धर्म ग्रन्थ है। इसमें हिन्दू के धार्मिक पहलुओं को आलोचना की गई है। यह एक नई सभ्यता और क्रांति की चीज है।"

वह कहते हैं—"सन सत्तावन का स्वागत एक नारा लगा कर कीजिए। अन्धकार प्रकाश है।"

इस पुस्तक को देखकर यह धारणा होती है कि हमारी कानून की किताबों में कोई ऐसा कानून होना चाहिए जिसके द्वारा इस प्रकार कागज, स्याही आदि का अपव्यय निषिद्ध हो सके।

मन्मथनाथ गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर : लेखक---श्री विष्णु प्रभाकर; प्रकाशक---राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली; मूल्य---२·५० रुपये ।

श्री विष्णु प्रभाकर हिन्दी के लिए नए नहीं हैं । एक नाटककार के रूप में उन्होंने काफी ख्याति प्राप्त की है । इधर उनके नाटकों ने भी हिन्दी में अपना स्थान बना लिया है । प्रस्तुत नाटक 'डाक्टर' उनकी नई कृति है । नाटक की कथा बहुत संक्षिप्त है ।

"अनीला सतीशचन्द्र शर्मा (इंजीनियर) की पहली पत्नी है । शर्मा ने अपढ़ होने के कारण उसे छोड़ कर दूसरा विवाह कर लिया ! अनीला को उसके भाई ने पढ़ा लिखा कर डाक्टर बना दिया । अनीला 'क्लिनिक खोलकर रोगियों की सेवा करने लगी । इसी बीच सतीशचन्द्र की दूसरी पत्नी बीमार हो गई और अनीला के अस्पताल में इलाज के लिए लाई गई । अनीला ने उसका आपरेशन किया । डाक्टर के मन का संघर्ष और सतीश चन्द्र से बदला लेने की भावना आपरेशन के समय प्रगट होती है । डाक्टर अपने मन पर काबू पाकर आपरेशन द्वारा रोगिणी को ठीक करती है यही इस नाटक की कथावस्तु है !"

नाटक के सम्वाद प्रारम्भ से ही चुस्त है । घटना-प्रवाह तेजी से बढ़ता है और सतीश की पत्नी के आपरेशन के बाद नाटक तीन अंकों में समाप्त हो जाता है । नाटक में यथार्थता लाने के लिए नाटककार ने काफी परिश्रम किया है । जैसा कि उसने भूमिका में लिखा है--"दो बार दिल्ली की एक प्रगतिशील और सुप्रसिद्ध संस्था देहली आर्ट थिएटर के कलाकारों के सामने इसे पढ़ा भी । काफी बहस हुई । काफी लोगों ने इसे पसन्द भी किया कुछ संशोधन भी सुझाए । कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने इसके अन्त को आदर्श-वादी बताया । अभिनय की दृष्टि से भी उनका मत है कि इसका तीसरा अंक सफलतापूर्वक रंगमंच पर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता । उसके लिए बहुत ही कुशल अभिनेत्री की जरूरत होगी ।"

मैं भी इस भूमिका भाग से सहमत हूं । मैं समझता हूं कि यदि नाटककार तीसरे अंक को सरल व्यावहारिक बना कर प्रस्तुत करता तो निश्चय ही नाटक के अभिनय में सफलता प्राप्त हो सकती थी । शायद ही ऐसी कोई कम्पनी हो जो दया करके हम लोगों के नाटक खेले । प्रायः एमेच्योर अभिनेता स्कूल और कालज के विद्यार्थी हिन्दी के नाटक खेलते हैं । उस दशा में इस नाटक का अभिनय सबके लिए एक समस्या बनी रहेगी । इसके अतिरिक्त डाक्टर में कई खटकने वाली बातें हैं ।

पहली बात यह है कि इस नाटक में 'सस्पैन्स' का अभाव है तीन चार पृष्ठ पढ़ते ही नाटक का अन्त पाठक के सामने उपस्थित हो जाता है । इसलिए नाटक का शेष भाग मन पर जोर डालने पर ही पढ़ा जा सकता है । फिर अनीला के मानस-संघर्ष का परिणाम भी दिखाई देने लगता है । नाटककार ने अनीला का जो रूप चित्रित किया है रोगियों के प्रति कल्याण भावना डाक्टर के मन में जाग्रत की है उसको जानते हुए दूसरे प्रकार का परिणाम हो ही नहीं सकता था ।

डाक्टर अनीला के मानस-संघर्ष के सम्बन्ध में मेरा मत है कि जो स्त्री इतनी पढ़ी लिखी है, रोगियों के कल्याण की भावना मन में रखती है, जिसका तन मन रोगी की सेवा के लिए अर्पित है, उसका मन सतीशचन्द्र की निरपराध पत्नी को देखकर इतना विचलित कैसे हो सकता है । इस प्रकार के पाशविक विचारों का डाक्टर के अवचेतन मन में यदि कोई भी अंश हो तो भी इस प्रकार का स्वास्थ चेता व्यक्ति परिस्थिति पर आसानी से काबू पा सकता है । और मानस-संघर्ष की स्थिति आ ही नहीं सकती । हो सकता है कि एक साधारण सा झटका सतीशचन्द्र की पत्नी को देख कर उसके मन पर हुआ हो । किन्तु उसका विकराल रूप प्रदर्शित करना अस्वाभाविक लगता है । मालूम होता है कि लेखक ने बहुत ही साधारण स्थिति वाले उग्र मानस व्यक्तित्व का आरोपण इस डाक्टर में कर दिया है यह सम्भव ही नहीं है कि डाक्टर जैसा व्यक्ति इतना नीचे उतरे । वह तो सरलता से रोगिणी का आपरेशन करके सतीशचन्द्र की नीचता के सामने अपने शील सौजन्य का परिचय ही देगा । यही स्वाभाविक भी है । किन्तु उस दशा में जैसा कि नाटककार ने चाहा है, नाटक का क्लाइमेक्स उतना तीव्र नहीं रह पाता । अच्छा होता उस परिणाम के लिए अनीला को एक पेशेवर डाक्टर के रूप में दिखाया जाता जिसके हृदय में न माया है न ममता । उस दशा में सतीशचन्द्र की निरपराध पत्नी से बदला लेने की भावना सार्थक हो सकती थी । (यद्यपि मैं नहीं मानता कि सतीशचन्द्र की पत्नी का इसमें कोई अपराध है । सतीशचन्द्र जैसा आदमी दूसरी पत्नी के मरने पर तीसरी शादी भी तो कर सकता था फिर बदला लेकर उसको दुख पहुंचाने पर डाक्टर की भावना कहां तक सफल हो सकती थी ?) एक तरह से अनीला की क्रिया उसकी चेतना के अनुरूप नहीं है । नाटक की कथा भी तो इतनी संक्षिप्त है कि वह एक एकांकी नाटक बन सकता था, इससे अधिक नहीं । यही कारण है कि नाटक का बहुत सा भाग कलेवर बढ़ाने के लिए लिखा दिखाई देता है ।

हां दादा का चरित्र काफी प्रौढ़ है और नीरू का व्यर्थ । उससे नाटक में कोई सहायता नहीं मिलती । राम्भू नौकर की भाषा न बेबड़या हिन्दी है न बंगाली हिन्दी । हां वह ढीठ अवश्य है । एक बात और, सतीशचन्द्र की पत्नी के दाखिले के लिए उसके दस बारह साल के लड़के का बार-बार आना कुछ समझ में नहीं आया । जबकि उसकी पत्नी इतनी बीमार है और दाखिले में रुकावटें पड़ रही हैं तब वह स्वयं क्यों नहीं आता, बार-बार लड़के को क्यों भेजता है । नाटक के क्लाइमेक्स को सुरक्षित रखने के लिए लेखक ने यहां अस्वाभाविक स्थिति पैदा कर दी है ।

रंगारंग : लेखक---श्री चिरंजीत; प्रकाशक---आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली; मूल्य---२) रुपये ।

दादी मां जागी के बाद श्री चिरंजीत का यह दूसरा एकांकी संग्रह है । इस संग्रह में लेखक के सात नाटक हैं---'व्याह की धूम', 'मेहमान', 'होली आई रे', 'लला', 'वह आया', 'पतझड़ की एक रात', 'पतित पावन' और 'महाश्वेता' । इन सभी नाटकों में मध्यवर्गीय जीवन के सशक्त चित्र हैं । मुझे इन नाटकों को पढ़ कर आनन्द मिला । मैं समझता हूं कि चिरंजीत अब उस स्थिति को पहुंच चुके हैं जहां से उनके नाटककार का रुप प्रारम्भ होता है । रेडियो में नाटक विभाग के अध्यक्ष होने के नाते उनका अनुभव परिपक्व हो गया है । यही कारण है कि उनके य नाटक जीवन के विभिन्न स्तरों को, उनकी समस्याओं को सफलतापूर्वक सहज स्वाभाविक ढंग से व्यक्त कर सके हैं । और पाठक के मन को गुदगुदाते हुए यह पात्र अन्त तक उसे खींचे रखते हैं । विस्तार से सब नाटकों के सम्बन्ध में कहन की आव-श्यकता नहीं है फिर भी व्याह की धूम में शेक्सपीयर के (कामेडी आफ एरर) का सा हल्का आनन्द है । पुष्पा के बाप की परेशानी, उसके चाचा का रूप, पत्नी की शादी क लिए बेचैनी, स्वयं बूढ़े पति को दखकर पुष्पा का विरोध, यह सब बातें बड़े स्वाभाविक ढंग से नाटक में प्रस्तुत की गई हैं । मेहमान नाटक में निम्न मध्य वर्ग के एक क्लर्क जीवन का चित्र है । जिसके यहां मेहमान चौमासे में मक्खी की तरह भिनभिना रहे हैं । आर्थिक संकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ग्रस्त ललित मोहन किसी तरह भी अपना उद्धार नहीं कर पाता। उसकी पत्नी आशा को अपनी बहन और उसके पति के आदर की चिन्ता है। सम्बन्धी मौसी न केवल अकेली ही उसके घर आ धमकी है अपने लड़के और दामाद को भी बुला लाई है। दिल्ली के जीवन का यह दृश्य बड़ा ही दम-घोटू है। इस नाटक को पढ़ कर जीवन की वास्तविकता पाठक के सामने प्रगट हो जाती है। 'वह आया' नाटक एक रमणी के भय के चित्र उपस्थित करता है जिसकी शादी पहले एक बदमाश लड़के से होने जा रही थी। बाद में दूसरे अच्छे आदमी से हो गई। शादी के समय वह पहला लड़का हमला करके शीला को उठा ले जाना चाहता है।

मूसलाधार वर्षा के समय जब कि सब ओर एक प्रकार की भयंकरता व्याप्त हो रही है अकेली एक नौकरानी के साथ प्रकाश की पत्नी का भय उस बदमाश लड़के का ख्याल करके उभरता है। घटना पर घटनाएं उपस्थित होती हैं जिससे शीला के मन में सन्देह विश्वास के रूप में बदलता है। कथानक बड़ा प्रवाहपूर्ण और मनोवैज्ञानिक है। महाश्वेता नाटक एक बड़े अजीब ढंग से लिखा गया है। इसमें महाश्वेता की मूर्ति को आधार बना कर पैत्रिक सम्पत्ति के लिए छोटे भाई का षडयन्त्र दिखाया गया है। नाटक का प्रारम्भ जिस तेजी से होता है अन्त उससे पहले ही दिखाई देने लगता है। शेष नाटक साधारण हैं। इनमें से कुछ नाटक रंगमंच पर खेले जा चुके हैं जैसा कि भूमिका में लेखक ने लिखा है।

इन दिनों रेडियो के कारण जो नाटकों का सृजन हो रहा है उनमें अधिकतर भरती के नाटक ही लिखे जाते हैं। कुछ नाटक ही ऐसे होते हैं जिनमें स्थायी मनोरंजन होता है। चिरंजीत के कुछ नाटक अवश्य ही उस अन्तिम श्रेणी के हैं। और मैं समझता हूं कि यदि वे कठोरता से अपने सृजन-मोह को परिष्कृत कर सके तो न केवल रेडियो के लिए बल्कि रंगमंच के लिए भी वे बहुत अच्छे नाटक लिख सकेंगे। आशा की जानी चाहिए कि उनका नाटककार अपनी लेखनी के प्रति ईमानदारी बरतेगा। हास्य उनका विषय है। अच्छा हो वे इधर ध्यान दें। रंगारंग के नाटकों के लिए मेरी बधाई। —उदयशंकर भट्ट

●

मेरे कथा गुरु का कहना है : लेखक—रावी; प्रकाशक—भारतीय ज्ञान पीठ, काशी; पृष्ठ संख्या—२४०; मूल्य—३) रु० सजिल्द।

इस पुस्तक में रावी जी की ८८ लघु कथाएँ संग्रहीत हैं। किसी तरह की शिक्षा देना इन लघु कथाओं का उद्देश्य प्रतीत होता है। प्रत्येक लघु कथा के अन्त में कथा गुरु द्वारा प्राप्त शिक्षा का उल्लेख भी है। मनोरंजकता की कमी और अस्पष्टता—ये दोनों बातें रहते भी इस सोद्देश्य रचना को हीन कोटि का नहीं कहा जा सकता।

सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियाँ : सम्पादक—शिव गोपाल मित्र और रावल ओम्प्रकाश सिंह; प्रकाशक—विद्या मन्दिर प्रकाशन, ग्वालियर; पृष्ठ संख्या—१४६; मूल्य—४) रु० सजिल्द।

श्री ईश्वरदास कृत प्रेमाख्यान 'सत्यवती कथा' तथा उनकी अन्य कृतियों का मूल्यांकन, व्याख्या और टीका इस पुस्तक में है। श्री ईश्वरदास का समय सोलहवीं सदी का पूर्वार्ध माना जाता है। इस पुस्तक में प्रेमाख्यानों की महत्ता तथा शैली के सम्बन्ध में भी यथेष्ट सामग्री है। श्री हरिहर निवास द्विवेदी लिखित २० पृष्ठों की प्रस्तावना विशेष उपयोगी है।

साहसी जीवन : लेखक—विराज; प्रकाशक—नैशनल पब्लिशिंग हाउस, नई सड़क, दिल्ली; पृष्ठ संख्या—९४, मूल्य—१२५ नए पैसे।

इस पुस्तिका में बालोपयोगी शैली में लक्खी बनजारा, माना झाला, गोरा, शिवाजी, नेताजी सुभाष और तेनजिंह की जीवनियाँ दी गई हैं। पुस्तक सुबोध शैली में लिखी गई है, पर कुछ नामों में परिवर्तन कर दिया गया है।

हाजिरजवाबी और विनोद : सम्पादक—शिवनाथ सिंह शाडिल्य; प्रकाशक—भारती एसोसिएशन, गाजियाबाद; पृष्ठ संख्या—५२; मूल्य ८५ नए पैसे।

इस पुस्तिका में विभिन्न क्षेत्रों के महत्वपूर्ण व्यक्तियों के वास्तविक जीवन से सम्बद्ध हाजिरजवाबी और विनोद की घटनाएँ एकत्र की गई हैं। प्रयत्न अभिनन्दनीय है।

कार्यालय क्रियाविधि : लेखक—चिरंजीलाल; प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई सड़क, दिल्ली; पृष्ठ संख्या—८०; मूल्य—१) रु०

कार्यालय सम्बन्धी कारवाइयों की जानकारी प्राप्त करने के लिए यह पुस्तिका उपयोगी है। इस पुस्तिका के अन्त में परिभाषिक शब्दों तथा उनके समानार्थी अंग्रेजी शब्दों की सूची देना आवश्यक था।

चतुर्वेदी जी : लेखक—रमेन्द्र प्रसाद सिंह विद्यार्थी; प्रकाशक—विद्यार्थी प्रकाशन, बैंक रोड, पटना; पृष्ठ संख्या—८०; मूल्य—१४ आना।

मनोविनोद के उद्देश्य से लिखा गया यह साधारण कोटि का हास्य रसात्मक लघु उपन्यास है।

ताई की कहानियाँ : सम्पादक—श्रीराम चिचलीकर; प्रकाशक—अ० भा० सर्व० सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, काशी; पृष्ठ संख्या—४२; मूल्य २५ नए पैसे।

सुश्री विमला ताई ठकार की भूदान सम्बन्धी ये कहानियाँ उपयोगी तो हैं ही, आशा है, भारतीय किसानों में ये कहानियाँ विशेष लोकप्रिय सिद्ध होंगी।

विज्ञान विनोद : लेखक—विनोदीलाल सक्सेना; प्रकाशक—विज्ञान मन्दिर, लश्कर; पृष्ठ संख्या—८०; मूल्य—१) रु०

इस पुस्तिका में मनोरंजक ढंग से वैज्ञानिक तथ्यों का परिचय दिया गया है।

भारत सेवक समाज के प्रकाशन

१. **निर्माण की कहानियाँ :** पृष्ठ संख्या—१३६; मूल्य—१।।) रु०

२. **चोर :** लेखक—रामाश्रय दीक्षित; पृष्ठ संख्या—४६; मूल्य—८ आना।

३. **पुष्पांजलि :** पृष्ठ संख्या—३२; मूल्य—६ आना।

४. **गाँवों में नारी कल्याण :** लेखिका—सरोजिनी सिन्हा; पृष्ठ संख्या—२०, मूल्य—४ आना।

लोक शिक्षा के उद्देश्य से प्रकाशित ये चारों पुस्तिकाएं उपयोगी हैं। विशेषतः अन्तिम पुस्तिका। प्राप्ति स्थान है—१७ थियेटर कम्यूनिकेशन्स बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली।

दिल्ली लायब्रेरी बोर्ड के ८ प्रकाशन : हमारा भारत, हमारे बालक, राष्ट्र निर्माण और योजनाएँ, संयुक्त राष्ट्र संस्था, डाक तार, रेशम का कीड़ा, दीपक और सड़कें; पृष्ठ संख्या (बड़े आकार के)—८० से ४८ तक, मूल्य—१ रु० २ आना से १० आना तक; प्रकाशक—अत्तरचन्द कपूर एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली।

ये सब सचित्र पुस्तिकाएं युनेस्को की एक योजना के अन्तर्गत जामिया

(शेष पृष्ठ ६० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

पाकिस्तान में सैनिक शासन

गत ७ अक्तूबर को पाकिस्तान का केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल दो बार बदला, उसी रात पाकिस्तान के राष्ट्रपति श्री इस्कन्दर मिर्ज़ा ने पाकिस्तान का संविधान एकाएक रद्द कर दिया और सम्पूर्ण देश में सैनिक शासन स्थापित हो जाने की घोषणा कर दी। इस सैनिक शासन के प्रधान व्यवस्थापक पाकिस्तानी सेना के अध्यक्ष जनरल आयूब खां नियत कर दिए गए।

संविधान रद्द हो जाने पर राष्ट्रपति का पद भी उसी तरह विलीन हो जाता है, जिस तरह प्रधान मन्त्री का पद। फिर भी श्री इस्कन्दर मिर्ज़ा २७ अक्तूबर तक पाकिस्तान के राष्ट्रपति बने रहे। इससे पाकिस्तान के उक्त परिवर्तन को संवैधानिक भाषा में एक क्रान्ति ही कहा जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि पाकिस्तान की यह क्रान्ति एकदम बिना रक्तपात के हुई है और इस क्रान्ति योजना में सम्मिलित छहों व्यक्ति लगभग २० दिनों तक पूरी सफलता से अपना रहस्य गुप्त रख पाए।

सैनिक शासन के अधीन पाकिस्तान में बहुत से अपराधों के लिए प्राणदण्ड की सज़ा घोषित कर दी गई है। कितने ही अन्य छोटे-बड़े अपराधों के लिए कोड़ों की मार से लेकर १८ वर्ष की सख़्त कैद दी जाएगी। एक अपराध के सभी कैदियों से एक समान व्यवहार किया जाएगा। मार्शल ला के अनुसार जारी किए गए निर्देशों के आधार पर वहां एक ओर पांच-छः भूतपूर्व मन्त्री गिरफ्तार कर लिए गए हैं, जिनमें पाकिस्तान के भू० पू० सुरक्षा मन्त्री खुहरो भी हैं, दूसरी ओर खान अब्दुल गफ़्फ़ार खान, खान अब्दुल समद और मौलाना भषानी जैसे लोकप्रिय नेता भी।

यह सैनिक शासन पाकिस्तान का घरेलू मामला है। संसार के अन्य देश स्वभावतः नई सरकार को उस देश की वर्तमान सरकार स्वीकार करते हैं। पर जैसा कि भारत के प्रधान मन्त्री ने कहा है, भारत का विश्वास प्रजातन्त्र प्रणाली में है और आज के युग में वही प्रणाली एक मात्र उपयुक्त प्रणाली है, क्योंकि उसमें व्यापक सहनशीलता एक आधारभूत शर्त है। पाकिस्तान में यदि कभी आम चुनाव हुए होते तो शायद यह नौबत न आती, क्योंकि तब वहां किसी प्रभावशाली प्रजातन्त्रात्मक दल का विकास हो जाने की पूरी सम्भावना थी।

२७ अक्तूबर की रात को एकाएक सारे संसार ने आश्चर्य से सुना कि श्री इस्कन्दर मिर्ज़ा अपने पद से पृथक हो गए और श्री आयूब खां प्रधान मन्त्री से राष्ट्रपति बन गए। प्रधान मन्त्री का पद उड़ा दिया गया है और श्री आयूब खां के मन्त्रि-मण्डल में सैनिक नेताओं के अतिरिक्त कुछ नागरिक विशेषज्ञ भी हैं। पाकिस्तान में दो व्यक्तियों का शासन २० दिन से अधिक नहीं चल पाया। हमारे पड़ौसी राज्य में घटनाओं की रफ़्तार बहुत तेज हो गई है।

बर्मा में सैनिक शासन

बर्मा भारत का अत्यन्त घनिष्ठ मित्र देश है। दोनों देश कुछ ही व्यवधान से स्वाधीन हुए थे। बर्मा की स्वाधीनता से कुछ ही समय पूर्व १९४७ में वहां के सर्वमान्य नेता श्री आंगसेन तथा उनके कुछ सहकारियों की हत्या कर दी गई थी। यह हत्या बर्मा के लिए इस कारण और भी बड़ी चिन्ता का विषय बन गई थी कि पिछले विश्वयुद्ध में बर्मा को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी थी। यद्ध से विध्वस्त बर्मा के सर्वमान्य नेता की हत्या उसके लिए बहुत भयंकर सिद्ध हो सकती थी, पर बर्मा के सौभाग्य से स्वाधीनता प्राप्ति के साथ-साथ यू नू के रूप में वहां एक अन्य प्रतिभाशाली व्यक्तित्व प्रकाश में आया। यही यू नू अभी तक बर्मा के शासन की बागडोर अपने हाथ में संभाले हुए थे। बीच में कुछ समय के लिए उन्होंने अवकाश ग्रहण भी किया था, पर उन दिनों भी पार्टी नेता वही थे।

पर हाल ही में श्री नू ने ६ मास के लिए बर्मा का शासन सैनिक श्रेणी के हाथ में दे देने का निश्चय किया। नए चुनावों को पक्षपात रहित बनाने तथा शासन में निश्चयार्थता, दृढ़ता और द्रुतगामिता लाने के उद्देश्य से यह कार्य किया गया है। जनरल ने विन के मन्त्रिमण्डल में केवल सैनिक अफसर ही नहीं, अन्य लोग भी लिए गए हैं। इस तरह सैनिक शासन की बागडोर अब भी आंशिक रूप में नागरिक पक्ष के हाथ में है, पर बर्मा की किसी पार्टी का कोई व्यक्ति इस सरकार में नहीं है। कितने ही पूर्वी देशों में जिस तरह पार्टियों का संचालन सिद्धान्तों के आधार पर न होकर व्यक्तियों की सुख-सुविधा के आधार पर होता है, उसके विरुद्ध श्री नू ने यह कदम उठाया है। इस परीक्षण का परिणाम क्या होगा, यह तो भविष्य ही बताएगा। पर हमारी राय से किसी भी दशा में गणतन्त्रात्मक या प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली को स्थगित नहीं करना चाहिए। इन पद्धतियों के संचालन में जो दोष आ गए हैं, उन्हें दूर करना नितान्त आवश्यक है, पर गणतन्त्र पद्धति को स्थगित कर देना बड़े खतरे की सम्भावना उत्पन्न कर सकता है। हमें विश्वास है कि श्री नू जैसा प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने देश को उन्नति के पथ पर ले जाने का भरसक प्रयत्न करेगा और जनरल ने विन उन्हीं के कदमों पर चलेंगे। उन्होंने अपने बयान में कहा भी है कि वह बर्मा में प्रजातन्त्र को सुरक्षित रखेंगे। हर हालत में यह स्थिति पाकिस्तान की स्थिति से एकदम भिन्न है, क्योंकि यह कदम प्रजातन्त्र को सबल बनाने के उद्देश्य से तथा निश्चित समय के लिए उठाया गया है।

●

प्रधान मन्त्री की भूटान यात्रा

भूटान एक अत्यन्त दुर्गम देश है, जिसे सदा भारत की सुरक्षा प्राप्त रही है। हाल ही में कितने ही खतरे उठा कर भारत के प्रधान मन्त्री वहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए थे। सम्पूर्ण भूटान में उनका जो शानदार स्वागत हुआ, वह उस देश के लिए एक नया रिकार्ड है। प्रधानमन्त्री की यह यात्रा निस्सन्देह ऐतिहासिक महत्व की थी। इस यात्रा से भारत, सिक्किम और भूटान के सम्बन्ध और भी अधिक सद्भावनापूर्ण तथा सहयोगपूर्ण बनेंगे।

चाँद पर राकेट फेंकने का प्रयत्न

हाल ही में संयुक्त राज्य अमेरिका के वैज्ञानिकों ने चांद पर पुरे एक मन का एच राकेट फेंकने का प्रयत्न किया था। इस प्रयत्न में अमेरिकन वैज्ञानिकों को सफलता नहीं मिली। फेंकने का कोण पूरी तरह सही नहीं था, ऊससे वह राकेट इस पृथ्वी से ८०,००० मील दूर जाकर भी कुछ ही घण्टों में पुनः पृथ्वी पर लौट आया। यहां पहुँच कर वह राकेट पूरी तरह नष्ट हो गया। फिर भी पृथ्वी से ८०,००० मील दूर तक राकेट को पहुँचा सकना और उसका वापस लौट सकना वर्तमान विज्ञान की एक बहुत बड़ी विजय है। यह दूरी पृथ्वी और चांद के कुल अन्तर का एक तिहाई है। आशा है कि शीघ्र ही मानव अपने इस प्रयत्न में भी सफल हो जाएगा। देखना चाहिए कि इस सफलता का सेहरा किस वैज्ञानिक के सिर पर बंधता है।

नाटक और रंगमंच

स्वाधीन भारत में हिन्दी-साहित्य की जो उन्नति हो रही है, वह पूरी तरह समतुलित नहीं है। उदाहरण के लिए पिछले ११ वर्षों में हिन्दी कविता और हिन्दी-उपन्यास में खूब अच्छी उन्नति हुई है। हिन्दी कहानी की स्थिति भी सन्तोषजनक है। पर नाटक, हास्य रस तथा जीवनियों की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य की उन्नति की रफ्तार सन्तोषजनक नहीं है। इसी तरह पिछले कुछ वर्षों में गम्भीर विषयों पर काफ़ी अच्छा साहित्य हिन्दी में प्रकाशित हुआ है, पर वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में जितना काम हुआ है, वह अभी तक बहुत अधूरा है।

यहां हम नाटकों की चर्चा कर रहे हैं। हिन्दी में अच्छे नाटकों की कमी का मुख्य कारण हिन्दी रंगमंच का अभाव था। यह एक दुश्चक्र बन गया था। अच्छे नाटक नहीं हैं, इससे हिन्दी नाटकों का अभिनय नहीं हो पाता और रंगमंच नहीं है, इससे अच्छे नाटक नहीं लिखे जा सकते!

हमारा ख्याल है कि अब वह दुश्चक्र टूट गया है। भारत की राजधानी दिल्ली में जिस बड़ी संख्या में हिन्दी नाटकों का अभिनय हो रहा है, उसे देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी में रंगमंच नहीं है। यहां कितनी ही अच्छी-अच्छी रंगमंच सम्बन्धी संस्थाएं हैं, जिन्हें अच्छे हिन्दी नाटकों की तलाश रहती है। विशेषतः इस वर्ष ये संस्थाएं और भी अधिक सतर्क और गतिशील बन गई हैं। हमें आशा है कि हिन्दी नाटककार इन संस्थाओं में अधिकाधिक और क्रियात्मक दिलचस्पी लेंगे, ताकि उक्त दुश्चक्र पूरी तरह टूट जाए। साहित्य में नाटक का महत्व तो बहुत अधिक है ही, साथ ही आज की परिस्थितियों में रंगमंच द्वारा देश की सर्वसाधारण जनता को सही मानों में शिक्षित करने का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य आसानी से किया जा सकता है।

पुस्तक समालोचना—

(पृष्ठ ५८ का शेषांश)

मिलिया के तत्वाधान में तैयार की गई हैं। उन पुस्तिकाओं का उद्देश्य नव-साक्षरों को सम्बद्ध विषयों का आवश्यक और आधारभूत ज्ञान देना है। पुस्तिकाओं की भाषा सरल और प्रवाहमयी है और उनमें आवश्यक जानकारी अच्छे ढंग से की गई है। चित्र सुन्दर तथा उपयोगी और छपाई, सफाई, कवर, कागज आदि आकर्षक तथा उत्तम हैं। पुस्तिकाओं पर क्रम संख्या दे दी जाती तो पढ़ने वालों को सुविधा रहती।

राजपाल एण्ड सन्ज के बालोपयोगी प्रकाशन : १. निराला जानवर, २. चांद का सफ़र (लेखक—प्रकाश), ३. इन से बचिए, ४; सूझबूझ की कहानियां (लेखक—राजेन्द्रनाथ मिश्र); पृष्ठ संख्या—३२ प्रत्येक, मूल्य—१२ आना प्रत्येक।

बालोपयोगी ये चारों सचित्र प्रकाशक सुन्दर रूप में छापे गए हैं। चित्र, छपाई आदि आकर्षक हैं। पुस्तिकाएं उपयोगी हैं।

नैशनल पब्लिशिंग हाउस, नई सड़क, दिल्ली के प्रकाशन : १. कहानी की कहानी, २. पढ़ो और बनो, ३. तपदिक, लेखक—(क्रमशः) सन्तराम वत्स, हरिकृष्ण दास गुप्त और सन्तराम वत्स। पृष्ठ संख्या— २८, ५४ और ४०, मूल्य—६५; ८५ और ७५ नए पैसे।

प्रथम पुस्तिका में गुणाढ्य की कहानी बहुत अच्छे और रोचक ढंग से दी गई है, दूसरी में ३ बालोपयोगी कहानियाँ हैं, तीसरी में तपेदिक की रोकथाम के उपाय कहानी के रूप में बताए गए हैं। सभी पुस्तिकाएँ सचित्र और आकर्षक हैं।

कविता पुस्तिकाएं

१. आज़ादी के तराने : प्रकाशक—पब्लिकेशन्स ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश; लखनऊ; पृष्ठ संख्या—३२; मूल्य—१२ नए पैसे।

सन् १८५७ की याद में भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में प्रचलित ३७ लोकप्रिय गानों का उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सुन्दर रूप में प्रकाशित यह संग्रह, हमें विश्वास है, यथेष्ठ जनप्रिय सिद्ध होगा।

२. स्मृति पूजा, ३, कवि और सैनिक : लेखक—श्री कृष्ण सरल; प्रकाशक—पुस्तक सदन, पाटनकर बाजार, लश्कर, ग्वालियर; पृष्ठ संख्या—६४ और ६६; मूल्य—१।) रु० प्रत्येक।

प्रथम प्रकाशित में श्री कृष्ण सरल की गान्धी जी सम्बन्धी ११ कविताओं का संग्रह है और द्वितीय रचना में सरल जी ने कवि और सैनिक के छन्दो-बद्ध वार्तालाप के रूप में दोनों का दृष्टिकोण देने का प्रयत्न किया है।

४. पंचतन्त्र : पद्यानुवादक—महावीर प्रसाद जोशी; प्रकाशन—कला निकेतन, साहलपुर, राजस्थान; पृष्ठ संख्या—१२२, मूल्य—२) रु०।

मूल पंचतन्त्र गद्य और पद्य दोनों में है और दोनों का अत्यन्त श्रेष्ठ समन्वय उसमें है। यह अनुवाद एक ही छन्द में और "मित्र भेद" नामक एक ही तन्त्र का है। इसे अनुवाद नहीं, भाव-रूपान्तर कहना चाहिए। हमारी राय से पंचतन्त्र का अच्छी चम्पू शैली पर वास्तविक अनुवाद कहीं अधिक उपयोगी और अच्छा रहता।

५. युगधारा : लेखक—देवेन्द्र नारायण वर्मा; प्रकाशक—युगधारा प्रकाशन, फोर्ट रोड, ग्वालियर; पृष्ठ संख्या—९०; मूल्य—१।।) रु०।

तरुण कवि श्री देवेन्द्र नारायण वर्मा की इन रचनाओं में पकड़ है। आशा है, उनकी भावनात्मकता और भी विकसित होगी।

६. ऊर्मिला : लेखक—शान्ति स्वरूप सरोज; प्रकाशक—सरोज कुटीर, कांसली, राजस्थान; पृष्ठ संख्या—६४; मूल्य —१।) रु०।

प्रचलित शैली और प्रचलित विषयों पर लिखित श्री सरोज की कविताओं का यह संग्रह उन के उत्साह और स्फूर्ति के प्रतिरूप है।

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

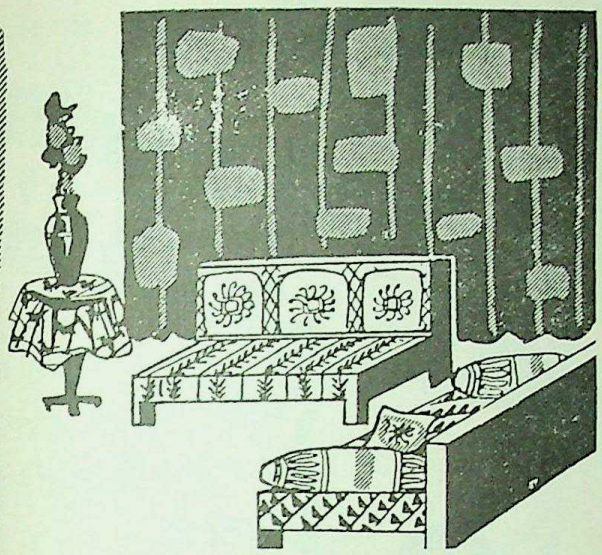

सजावट के लिये श्रेष्ठतम

हाथकरघे के सजावटी वस्त्र नयनाभिराम और आधुनिक रुचि के अनुकूल होते हैं। इनमें प्राचीन और अर्वाचीन डिजाइनों का समन्वय साधारण से साधारण कमरे का रूप भी निखार देता है और इनसे सजे हुए कमरे विशेष आकर्षक हो उठते हैं।

ये वस्त्र देखने में सुन्दर लगते हैं, केवल इसीलिये विख्यात नहीं, बल्कि इनकी उत्कृष्ट बुनावट और पक्के रंग पर मौसम और लम्बे समय का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यही तो कारण है कि आजकल आधुनिक कार्यालय भवनों, होटलों और क्लबों में ही नहीं, परन्तु घर घर में भी सजावट के लिये इन वस्त्रों का उपयोग किया जाता है।

हाथकरघे के वस्त्र

सौष्ठवपूर्ण जीवन के लिये

अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड
शाहीबाग हाउस, विटेट रोड, बम्बई

ALL INDIA HANDLOOM BOARD

DA-58/221

आज का सिंगापुर--(पृष्ठ ५१ का शेषांश)

गिरजाघरों की संख्या अधिक है। यहां का सबसे प्राचीन देवस्थान, जिसे इतिहासकार इस देश का ईंट पत्थर का बना प्रथम गृह मानते हैं, आर्चर रोड पर स्थित भगवान शिव का मन्दिर है। जो प्राचीन शिलालेख इस पर (संस्कृत व पाली में) खुदे हैं, उन्हें देखने के लिए आज भी यात्री आते हैं।

मरियम मन्दिर में प्रति वर्ष महान उत्सव होता है। विभिन्न जातियों, सम्प्रदायों तथा देशों के व्यक्ति हिन्दू भक्तों को जलते अंगारों पर चलते देखने के लिए एकत्र होते हैं। हजारों आंखें श्यामकार्तिकेय के भक्तों को पन्द्रह बीस फुट लम्बे अग्नि पथ पर कंधों पर बालकों को बैठाए बिना किसी भय के चलते हुए देखती हैं। टैंक रोड का चेटियर मन्दिर तथा वाटर लू का कृष्ण मन्दिर व सिरागून रोड का काली व विष्णु मन्दिर आदि यहां बहुत समय पहले हिन्दू धर्म के प्रचार के प्रतीक हैं।

इस बीसवीं सदी में संसार में जितने भी भारतीय प्रवासी बान्धव हैं उनमें संख्या की दृष्टि से ब्रह्मदेश (बर्मा) के उपरान्त मलाया का ही स्थान है, जिसमें अधिक सिंहापुर में हैं। इनमें अधिकतर श्रमिक व नौकरी करने वाले हैं। विभाजन के उपरान्त सिख व सिन्धी लोगों ने आकर इनकी संख्या में और वृद्धि कर दी है। यहां के व्यापारिक जीवन में भारतीयों का महत्वपूर्ण हाथ है। सभी ट्रेड यूनियनों के नेता भी भारतीय हैं और नगर समिति में तो इनका स्थान इतना महत्वपूर्ण है कि यदि वे हड़ताल करदें तो सारी सुन्दरता नारकीय जीवन में परिवर्तित हो जाए। इण्डियन चैम्बर्स आफ कामर्स, सिंगापुर भारतीय कांग्रेस, इण्डियन एसोसिएशन, बंगाली एसोसिएशन, नार्थ इण्डियन हिन्दू एसोसिएशन, गुजराती संघ, कमला क्लब, तमिल रिफार्म एसोसिएशन, द्रविण कडगम, केरल समाजम आदि भारतीयों की संस्थाएं सिंगापुर में हैं। सिंगापुर हिन्दी प्रचार सभा का भी रजिस्ट्रेशन सम्प्रति सरकार के समक्ष है। मुख्य भाषाएं, जो यहां राजकीय स्वीकृति प्राप्त कर चुकी हैं, वे हैं अंग्रेजी, चीनी, मलय व तमिल। उच्च शिक्षा के लिए यहां दो विश्वविद्यालय हैं--मलय विश्वविद्यालय व अनेकों विवादों के उपरान्त हाल ही में स्थापित नानयांग विश्वविद्यालय, जो चीनी जनों का है।

यहां पर जो दर्शनीय स्थान हैं, वे हैं श्री रामकृष्ण मन्दिर, बोधि मन्दिर, महात्मा गांधी मेमोरियल हाल, रैफल्स अजायबघर, जिन्दा मछलियों का चिड़ियाघर, और रात्रि के मध्य तक मानव जीवन के समस्त प्रसाधनों से युक्त हैपी वर्ल्ड, ग्रेट वर्ल्ड, न्यूवर्ल्ड पार्क, जिन्हें शायद ही कोई यात्री यहां आकर देखना न चाहे। समुद्र तट पर बने सुरम्य उद्यान में बुद्धदेव का मन्दिर, पौराणिक कथाओं व चीनी धर्म कथाओं पर आधारित स्वर्ग, नरक के विभिन्न रूप का परिचायक टाइगरवाम गार्डन सुदूरपूर्व की कला की दृष्टि से उत्तम हैं।

सिंगापुर नगर के बीच फोर्ट कैनिंग के पास बने गगनचुम्बी विशाल भवन कैथे को देखकर प्रवासी भारतीयों को अतीत की याद आ जाती है तथा हृदय राष्ट्र प्रेम व देशभक्ति से भर जाता है। यहीं नेता जी सुभाष चन्द्र बोस ने अस्थाई सरकार की स्थापना की थी। उस दिन यहां अपार भीड़ एकत्र हुई थी, जब सबने नेताजी के साथ भारत को स्वाधीन कराने की शपथ ग्रहण की थी। हिन्दुस्तानी स्वतन्त्रता लीग का ऐतिहासिक सम्मेलन २१ अक्तूबर, सन् १९४३ को साढ़े दस बजे आरम्भ हुआ था। पूर्वी एशिया के सभी प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया था। कर्नल चटर्जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने रिपोर्ट पढ़ी थी और स्वागत भाषण करने वाले रासबिहारी बोस थे। नेताजी ने अपने जोशीले भाषण से सब को मन्त्र मुग्ध कर दिया था। आज भी लोगों को वह शपथ याद है जो इस प्रकार है :

"ईश्वर को साक्षी करके मैं यह पुनीत शपथ लेता हूं कि मैं सुभाषचन्द्र बोस, हिन्दुस्तान और अपने अड़तीस करोड़ देशवासियों को स्वतन्त्र करने के लिए स्वतन्त्रता की इस पुनीत लड़ाई को अन्तिम क्षण तक जारी रखूंगा। मैं सदा हिन्दुस्तान का सेवक बना रहूंगा और अपने अड़तीस करोड़ भाइयों के कल्याण क्षेम की रक्षा करूंगा। यह मेरा सब से बड़ा कर्त्तव्य होगा। स्वतन्त्रता लेने के बाद भी स्वतन्त्रता को कायम रखने के लिए अन्तिम रक्त की बूंद बहाने के लिए तैयार रहूंगा।"

'श्रीकान्त' की पृष्ठभूमि--(पृष्ठ ४९ का शेषांश)

राजबाला, नित्य गोपाल बंकू जो बाल्यकाल में अपनी मौसी राजबाला के साथ रहा करता था, शिकार, श्मशान (मुज़फ़्फ़रपुर की प्रसिद्ध श्मशान-भूमि लकड़ीघाट) आदि सभी चित्रित हैं। शरतबाबू की कलम में जादू था, उसके द्वारा मुज़फ़्फ़रपुर की उपर्युक्त सारी घटनाओं तथा पात्रों को उन्होंने एक अद्भुत ढांचे में ढाल दिया, जिसे सिवाय उनके शायद ही कोई और इस सुन्दरता के साथ ढाल सकता था। अकबर का यह कथन कि

ऐ सानये अज़ल तेरी कुदरत पै मैं निसार,
क्या सूरतें बनाई हैं मुश्ते गुबार स !

शरतबाबू पर भलीभांति चरितार्थ होता है और इसका ज्वलन्त उदाहरण है श्रीकांत की राजलक्ष्मी। यह शरतबाबू की ही कलम की करामात थी, जिसने उसे इतना ऊँचा उठा दिया।

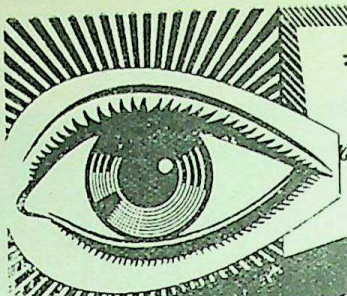
आँखों की रक्षा
जीवन की रक्षा है
रैडियम आई ड्राप्स
भली-चंगी आँखों वाले प्रयोग करें तो बुढ़ापे में भी आँखों की ज्योति तेज़ रहती है।
आँखों के बहुत से रोगों में लाभदायक लाखों घरों में प्रयोग होती है
मूल्य ३॥
रैडियम कैमीकल वर्क्स लिमिटेड पोस्ट बाक्स नं. 135 देहली

खाँसी!
चैन और आराम के लिये

ओबी
ऑल इम्युनिटि
बी · आइ · कफ सीरप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन भर काग़ज़ फाड़ना इन का काम है!

इस लिए नहीं कि इन्हें और कोई काम नहीं—बल्कि वास्तव में यही इन का काम है, काग़ज़ के रॅपर फाड़ कर वैज्ञानिक विधि से उन की मज़बूती जांचना!

हिंदुस्तान लीवर में रॅपर, डिब्बों, पेटियों और हर प्रकार के पॅकिंग के सामान की बड़ी कड़ी परीक्षायें की जाती हैं। और कच्चे माल से ले कर उत्पादन के पॅकिंग तक, वैज्ञानिक तथा जानकार उस पर कड़ी नज़र रखते हैं।

हम जानते हैं कि आप को हमारे माल के एकसे अच्छे होने का विश्वास है। इस विश्वास को बनाये रखने के लिए उत्पादन की हर अवस्था में उस पर कड़ी नज़र रखी जाती है।

यह गुण परीक्षा, राष्ट्रीय संपत्ति और निर्माण के क़ीमती समय की बचत में भी हमारी बहुत सहायता करती है।

हिंदुस्तान लीवर का आदर्श—घर घर की सेवा

HLL. 16-X.62 HJ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने रिपोर्ट पढ़ी थी
नेताजी ने अपने जो
भी लोगों को वह श
"ईश्वर को सा
बोस, हिन्दुस्तान औ
करने के लिए स्वतन्

आपके खरीदनेलायक

बढ़िया सायकिल

रैले

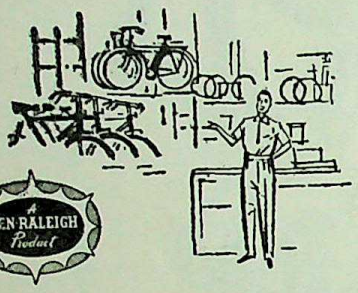

दुनिया की सबसे
मशहूर
सायकिल

A SEN-RALEIGH Product

THE RALEIGH CYCLE CO. LTD. NOTTINGHAM ENGLAND

SRC-53 HIN

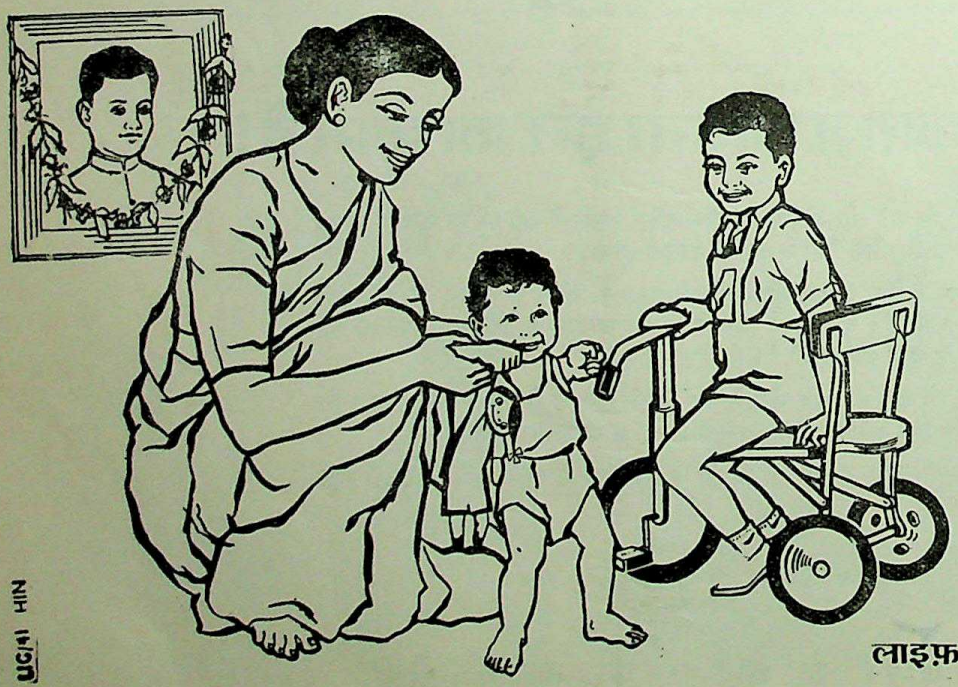

जीवन बीमा की
छत्र-छाया में सुरक्षित

दूरदर्शी मनुष्य पारिवारिक
सुरक्षा की योजना बनाता है—
जीवन बीमा इस योजना को
सम्भव बना देता है।

लाइफ़ इन्श्योरन्स कॉर्पोरेशन ऑफ़ इं

डिवीज़नल ऑफिस :
इन्डस्ट्रियल एण्ड प्रुडेनशियल बिल्डिं
आसफ़ अली रोड, दिल्ली

LIC/1 HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इण्डिया डायरी–१९५९

(सचित्र)

आकार ८½" × ६"

नए वर्ष के लिए एक उत्तम उपहार

दिनचर्या को नोट करने के लिए अति उपयोगी। हर सप्ताह के लिए एक पृष्ठ। हर पृष्ठ के सामने भारतीय जीवन तथा दृश्यों के रंग-बिरंगे सुन्दर चित्र।

प्रतियां अब उपलब्ध हैं

मूल्य : ५ रुपए, डाक खर्च ५० नए पैसे (रजिस्ट्रेशन व्यय अलग)

पच्चीस रुपए अथवा इससे अधिक मूल्य की प्रतियों पर डाकखर्च नहीं लिया जाएगा।

रेखांकित पोस्टल आर्डर भेजने से सुविधा रहती है।

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पो० बॉ० नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८

बौद्ध धर्म सम्बन्धी दो सुन्दर पुस्तकें

बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष

इस पुस्तक में गत ढाई हज़ार वर्षों में बौद्धमत की कहानी का संक्षिप्त लेखा है।

२५५ पृष्ठों की सचित्र पुस्तक का

मूल्य केवल ३·०० रु०

डाक व्यय ०·६० नये पैसे

भारत के बौद्ध तीर्थ

भारत में बौद्ध तीर्थ व पवित्र स्थानों पर सचित्र पुस्तक। आकर्षक छपाई व सजधज।

१०८ पृष्ठों की इस सुन्दर पुस्तक का

मूल्य केवल २·०० रु०

डाक व्यय ०·७५ नये पैसे

(रजिस्ट्रेशन व्यय अलग)

मूल्य अग्रिम आना आवश्यक है। रेखांकित पोस्टल आर्डर भेजने से सुविधा रहती है।

प ब्लि के श न्स डि वी ज़ न

पो० बॉ० नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली-८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पत्रिकाओं को अपने वाचनालय में सम्मिलित कीजिए

ग्राम सेवक (मासिक)

ग्राम सुधार की विभिन्न योजनाओं के बारे में ग्रामीण जनता के योग्य सामयिक सूचना और समाचार। भाषा अति सरल और छपाई सुन्दर। वार्षिक शुल्क १·२५ रुपये।

मैट्रिक मापतौल

मापतौल प्रणाली के महत्वपूर्ण विषय पर प्रकाश डालने वाली नवीन द्विमासिक पत्रिका। वार्षिक चन्दा २·०० रुपये।

कुरुक्षेत्र (मासिक)

सचित्र मासिक पत्र, जिसमें देश के सामुदायिक विकास-कार्यक्रम सम्बन्धी समाचार तथा लेख प्रकाशित होते हैं। वार्षिक शुल्क २·५० रुपये।

बाल-भारती (मासिक)

नन्हे मुन्नों की सचित्र मासिक पत्रिका जिसमें सरल भाषा में मनोरंजक कहानियां, शिक्षाप्रद कविताएं, उपयोगी लेख और रेखाचित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। वार्षिक शुल्क ४·०० रुपये।

योजना

सब क्षेत्रों में हुई प्रगति का आलोचनात्मक मूल्य आंकने वाली, भारत की पंचवर्षीय योजनाओं का पथप्रदर्शक पाक्षिक पत्रिका। वार्षिक शुल्क २·५० रुपये।

भारतीय समाचार (पाक्षिक)

अधिकृत सरकारी सूचनाएं व विकास सम्बन्धी गतिविधियों के समाचारों के लिए एक उत्तम पाक्षिक पत्रिका। छात्रों, शिक्षकों, व सार्वजनिक विषयों से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। वार्षिक शुल्क ५·०० रुपये।

बिक्री बढ़ाने के लिए इन पत्रिकाओं में विज्ञापन दीजिए

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पो० बॉ० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरियेट

दिल्ली-८

Edited and Published by the Director, Publications Division, Old Secretariat, Delhi—8 and printed by the Assistant Manager, Government of India Press, Faridabad.

Regd. No. D—510

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल

विश्व-दर्शन सहित

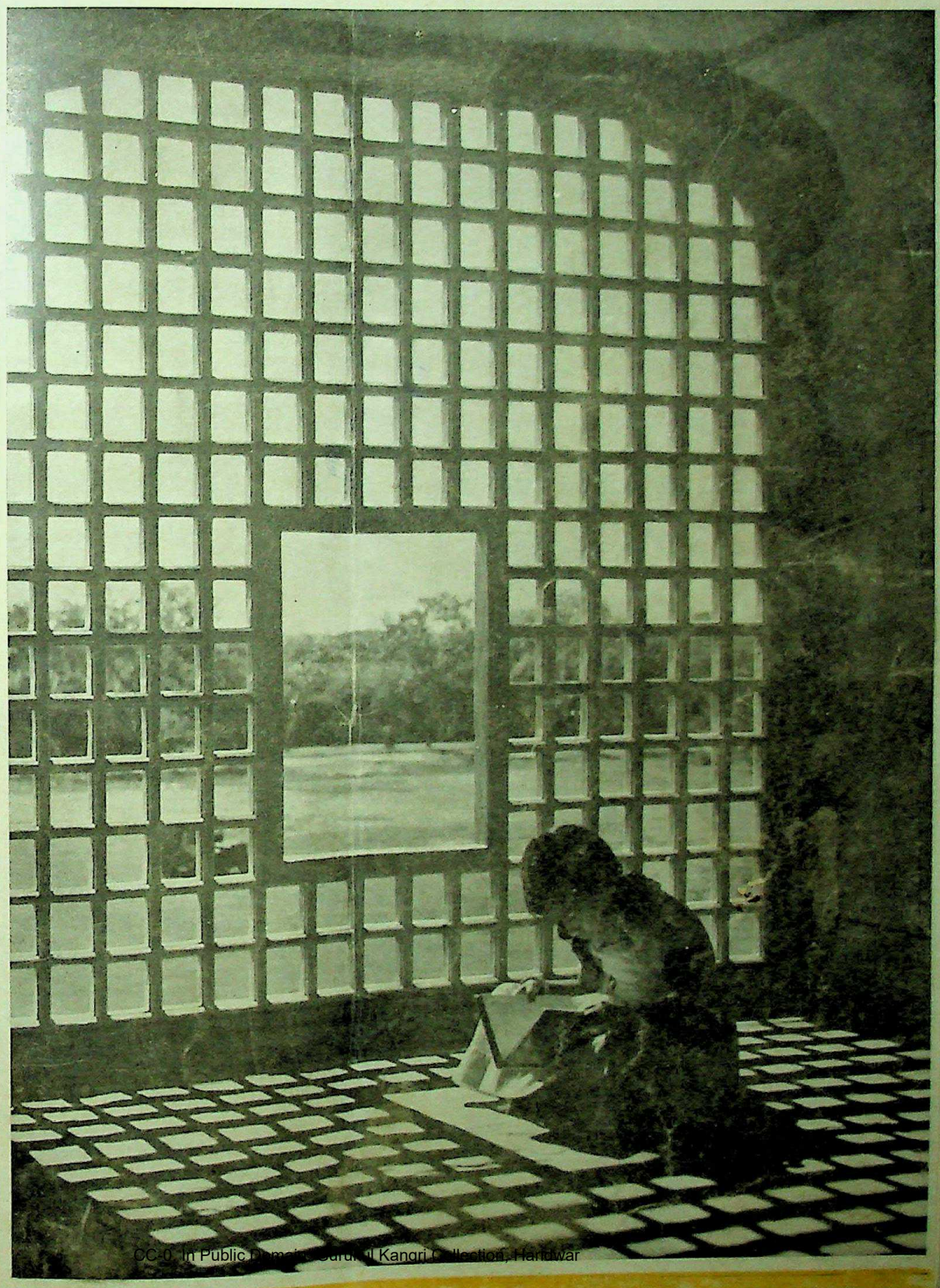

दिसम्बर १९५८
मूल्य : पचास नये पैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थायी महत्व की पुस्तकें

	मूल्य	डाक खर्च
रूसी-हिन्दी शब्दकोश--लेखक वीर राजेन्द्र ऋषि	३५.००	—
सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (ग्रन्थ १)–१८८४–१८९६	३.००	०.८५
भारत के पक्षी--राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह	१२.५०	१.५०
राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के भाषण (१९५२–१९५६)	३.५०	०.८५
स्वाधीनता और उसके बाद (जवाहरलाल नेहरू के भाषण) (१९४६–४९)	५.००	१.३५
भारतीय कविता १९५३	५.००	१.७५
अठारह सौ सत्तावन--डा० सुरेन्द्रनाथ सेन	४.५०	०.८५
भारत की एकता का निर्माण (सरदार पटेल के भाषण)	५.००	१.३०
बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष	३.००	०.४५
कर जांच आयोग के प्रतिवेदन का संक्षिप्त सार	२.५०	०.७५
भारतीय वास्तुकला के ५००० वर्ष	२.००	०.२५
दसवाँ वर्ष	१.५०	०.५०
अशोक के धर्मलेख	१.००	०.२५

(रजिस्ट्रेशन व्यय अलग)

पच्चीस रुपये या इससे अधिक की पुस्तकों पर डाक व्यय नहीं लिया जाएगा।

सभी प्रमुख पुस्तक-विक्रेताओं से प्राप्य या निम्न पते पर सीधा लिखें।

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पोस्ट बॉक्स नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट

दिल्ली - ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल

वर्ष १४ अंक ८ पूर्णांक १७४

सम्पादक मण्डल :
बनारसीदास चतुर्वेदी
नगेन्द्र
मोहन राव
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (मंत्री)

सहायक सम्पादक—वीरेन्द्र कुमार त्यागी

दिसम्बर १९५८

(९ मार्गशीर्ष से १० पौष १८८०)

एकाकी (बंगला कविता)	हुमायुन कबिर	३	संस्कृति तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान मंत्री, भा० स०, नई दिल्ली
एक गुनहगार (पंजाबी कविता)	अमृता प्रीतम	४	८/२०-वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली
एक सुनहली किरण उसे भी दे दो (कविता)	कीर्ति चौधरी	४	११४, साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली
राजभाषा के रूप में हिन्दी का विकास	डा० राजेन्द्र प्रसाद	५	राष्ट्रपति; राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली
पत्नी के प्रति (मराठी कविता)	केशवसुत	८	
भारत-वन्दना (कविता)	आरसी प्रसाद सिंह	८	
कविता के सम्बन्ध में श्री अरविन्द के विचार	सत्यनारायण त्रिवेदी	९	स० सम्पादक, 'हिन्दी, रिव्यू', पो० बॉ० ११, वाराणसी
दीदी का विवाह (तेलुगु कहानी)	को० कुटुम्बराव	११	
श्री जैनेन्द्रकुमार से भेंट	भीमसेन त्यागी	१३	२४-६, शक्ति नगर, दिल्ली-६
मास्को में छुट्टी का एक दिन	नगेन्द्र भट्टाचार्य	१६	पब्लिकेशन्स डिवीज़न, ओल्ड सक्रेटेरिएट, दिल्ली
गीत (कविता)	पद्मा सुधि	२१	२२, टेलर स्क्वेयर, नई दिल्ली
दसवां अन्तर्राष्ट्रीय कृषि अर्थशास्त्री सम्मेलन	महेश चन्द्र	२२	प्रो०; १६३ ममफोर्ड गंज, इलाहाबाद-२
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद (संस्मरण)	इन्द्र विद्यावाचस्पति	२६	चन्द्रलोक, जवाहर नगर, सब्ज़ी मण्डी, दिल्ली
गुनहगार (गुजराती कहानी)	रमणलाल वसंतलाल देसाई	२८	स्वर्गीय
'भारत १९५८'	(चित्रों में)	३१	
मुसलमान कवियों के काव्य में हिन्दू संस्कृति	ज़फ़रअली सैयद	३६	चमेली कुआं, बुरहानपुर (म० प्र०)
रम्यस्थली रवाईं	गोविन्द चातक	३८	५-पटल रोड, देहरादून
क्षत्राणी (हिन्दी कहानी)	उषादेवी मित्रा	४१	११५-व्योहार बाग, जबलपुर
बस्तर के आदिमजातीय	सुन्दरलाल त्रिपाठी	४३	बस्तर, मध्य प्रदेश
पुस्तक समालोचना	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	४७	४-पटौदी हाउस, नई दिल्ली
	राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह		३२-क्वीन विक्टोरिया रोड, नई दिल्ली
	उदयशंकर भट्ट		२४५ ई०-गवर्नमेण्ट क्वार्टर्स, करौल बाग, नई दिल्ली
	मन्मथनाथ गुप्त		सम्पादक 'योजना', १९०-खैबर पास मैस, दिल्ली
सम्पादकीय	....	५६	

आवरण चित्र : "गवाक्ष" : फोटो : रवीन्द्र कुमार पाल

इस मास का फोटो : भुवनेश्वर का लिंगराज मन्दिर

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीज़न, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८

वार्षिक मूल्य—६ रुपये, एक डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—पचास नये पैसे, दस सेंट या नौ पैंस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

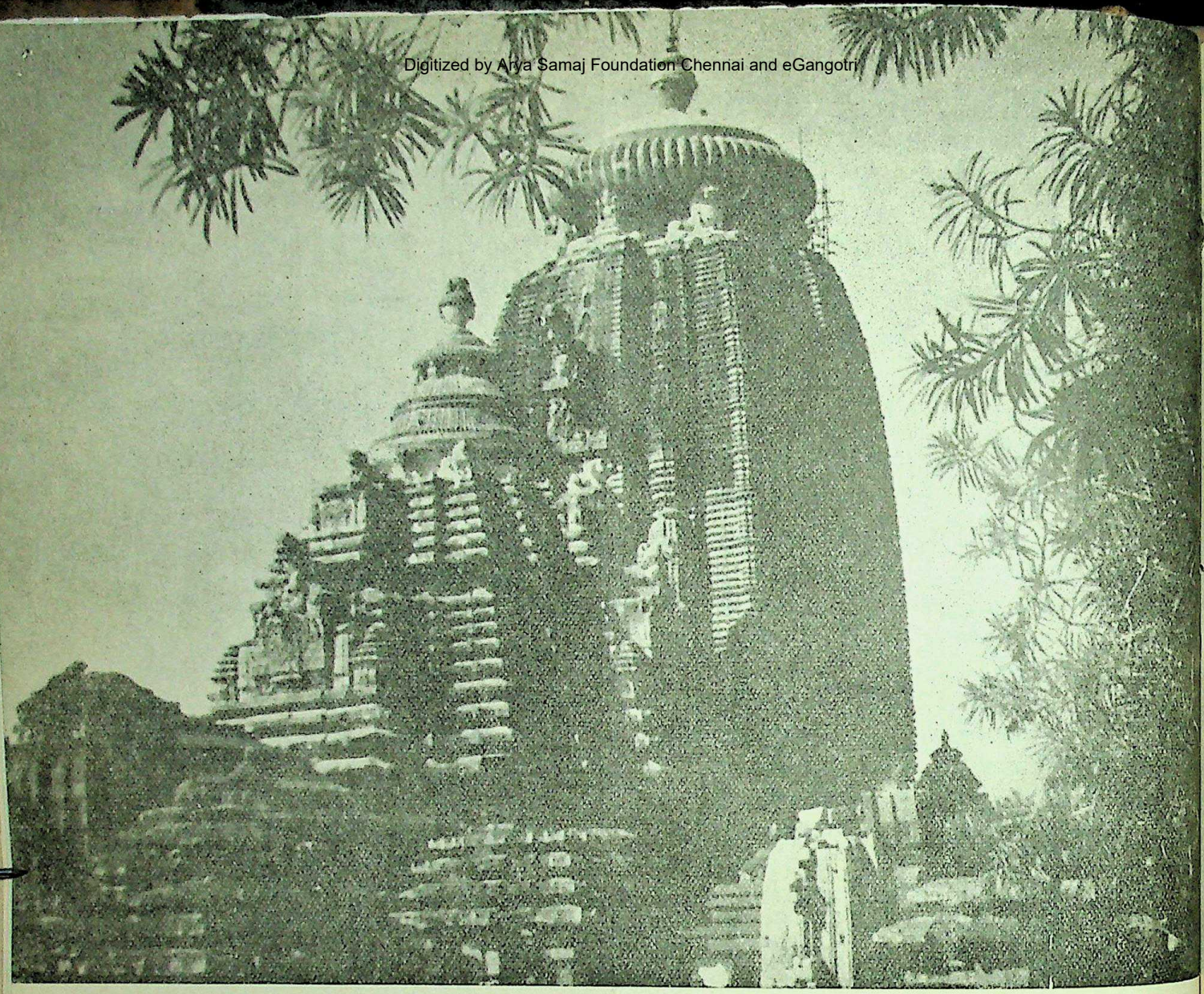

भुवनेश्वर का लिंगराज मन्दिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १४ दिसम्बर १९५८ अंक ८

बंगला कविता

एकाकी

हुमायुन कबिर

अपने भुवन में मैं अकेला ही रमता हूं ।
मैं वहां अकेला ही दिन-रात, दीर्घ मास और वर्ष काटता हूं ।
मेरे गगन में मेरा ही तपन खिलता है
और काले-काले बादल मेरे ही नीलाकाश में मंडराते हैं ।
मेरे ही भुवन में
सजल श्यामल अंधेरा उतर आता है
(सुनहली सन्ध्या ब्याह की लाल चूनर में
लज्जा से मुंह छिपा लेती है)
मेरे इस भुवन में कितने ही देश और कितनी ही नदियां हैं,
कितने ही रास्ते और कितने ही पहाड़ और जंगल हैं जिनमें मैं
निरन्तर भटकता ही रहता हूं,
कहीं जमे हुए फेन की तरह तुषार राशि
सुदूर गगन में तिर उठती है।
कहीं सुनहली फसल से धरती की
स्नेह पगी हंसी लहराती है,
जाने कहां से निर्झर की धारा
जाने कहां कौंध कर निकल जाती है
(पेड़ की छांह में मैं बनाऊंगा अपना
रैन बसेरा प्रेम के साथ,)
मेर छोटे-से बसेरे में मेरे छोटे सुख-दुख, साध तथा आशाएं हैं
उस घेर कर दक्खिनी पवन के सहारे
वसन्त बाग में फूलों के गुच्छे लगते हैं,
शरत के निशीथ में चुपचाप शेफालिकाएं झरती हैं
(पलकों पर प्रणय के स्पर्श से
नए सपने सिहरते हैं)
(फिर भी मैं--के इस कारागार में बैठ कर
मैं अपने ही संग से कातर हो जाता हूं)
और मेरा दम घुटने लगता है।
चारों तरफ कितनी ही बातें तथा गीत,
कितनी ही हंसियों और खुशियों, कितने मान-अभिमान
कितने ही अश्रुसागरों में वदना का ज्वार चढ़ता है
और चारों तरफ कलरव जगता है,
मेरा प्राण उस मेले में शामिल होने के लिए
रास्ते का पता पूछा करता है ।
मरी सुनसान हृदयरूपी बेलाभूमि पर
बाहरी दुनिया से निरन्तर
लहरें आकर टकराती हैं ।
फेनिल वारि में यह चंचलता क्यों ?
मैं समझ नहीं पाता कि वह क्या कहना चाहता है ।
समुद्र के उस पार से जाने कौन-सी वार्ता आती है ?
मैं उसे कितना समझना चाहता हूं,
पर मैं भला उसे कैसे समझ सकता हूं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि वह मेरी अभिज्ञता की सीमा रेखा के पर है।
मैं सबके चेहरे की तरफ मुग्ध नयन से घूरता हूं,
वे इतने पास हैं फिर भी
चिर रहस्य का गुण्ठन पड़ा हुआ है उन पर।
तुम्हारे हृदय में जो गुप्त व्यथा बजती रहती है,
हाय ! उसे मैं कभी अपने हृदय में नहीं सहूंगा
मैं कभी तुम्हारी दिन-रात और सन्ध्या को
हाय ! देख नहीं पाऊंगा।
मैं अपने ही मन के अनुसार अपने काम में व्यस्त चलता हूं,
मार्ग जिस जहां ले जाता है।
अपने भुवन में मैं अकला ही रमता हूं।
मुझे घेर कर बारहों महीने खारा सागर गर्जन करता है
उस छोटे-से द्वीप में दिन-रात बैठ कर
मैं देखता हूं कि घर-घर में बाती है।
मैं बैठ कर तुम लोगों के लिए जिस गीत को गूंथता हूं,
उसे किस प्रकार आकर सुनाऊं ?
मैं कैसे कहूं कि मेरे भाई, मेरे साथी,
मैं तुम लोगों को बहुत चाहता हूं।

अनुवादिका—माया गुप्त

●

पंजाबी कविता

एक गुनहगार

अमृता प्रीतम

रोज़ मानता हूं अक्ल की
आज न सही
रोज़ कहता हूं—'हां !'
आज 'न' सही।
मेरी तोबा :
नील चन्द्र की घाटी
यहां उम्र के बरस
सदियां पार करते
स्वच्छ आकाश भी तो
सदा अच्छे नहीं लगते
नीली नाड़ियों का रक्त
आज खौलता मेरा
और मेरे रक्त की-सी
काली स्याह अन्धेरी
दैत्यों के-से पर्वत
दानव के-से पत्थर
और वहां मुंह तोड़ते
बादलों की टक्कर
आज देखूं मैं देखूं
गुनाह की खाई-सी
गहरी खाई
और उसमें बादल
पानी बन कर बहते
स्वच्छ आकाश भी तो
सदा अच्छे नहीं लगते
रोज़ मानता हूं अक्ल की
आज 'न' सही
समाज की आवाज़ है जवान
मरी जब भी है जवान
मैं उसे परचा लूंगा
कुछ कहेगा धर्म
निवा कर माथा
मैं उसे मना लूंगा
बोलेगी आत्मा
और मेरे संस्कार
मांग कर 'साइकालोजी' से कारण
म उसे बहला लूंगा।
रोज़ मानता हूं अक्ल की
आज न सही
रोज़ कहता हूं—'हां'
आज 'न' सही।

●

एक सुनहली किरण उसे भी दे दो

कीर्ति चौधरी

भटक गया जो अंधियारे के बन में
लेकिन जिसके मन में
अभी शेष है
चलने की अभिलाषा—
एक सुनहली किरण उसे भी दे दो।
मौन कर्म में निरत
बद्ध पिंजर में व्याकुल
भूल गया जो
दुख जतलाने वाली भाषा—
उसकी वाणी को भी कुछ क्षण दे दो।
तुम जो सजा रहे हो
ऊंची फुनगी पर के ऊर्ध्वमुखी
नव पल्लव पर
आभा की किरनें।
तुम जो जगा रहे हो
दल के दल कमलों की आँखों के
सब सोए सपने !
तुम जो बिखराते हो भू पर
राशि-राशि सोना
पथ को उद्भासित करने !
एक किरण से
उसका भी माथा आलोकित कर दो।
एक स्वप्न उसके भी सोए मन में
जागृत कर दो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजभाषा के रूप में हिन्दी का विकास

डा० राजेन्द्र प्रसाद

आरम्भ में ही मैं यह कहना चाहता हूं कि यद्यपि हमारे संविधान में यह व्यवस्था की गई है, और वह भी सर्वसम्मति से, कि भारतीय गणराज्य की भाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी होगी, इसके लिए यह शर्त रखी गई है कि यह कार्य एक सुविचारित क्रम के अनुसार होगा और यह क्रम हर पांच वर्ष के बाद नियुक्त किए गए आयोगों की सिफारिशों पर और संसद् की विशेष समिति की रिपोर्ट के आधार पर किए एक सरकार के निर्णय के अनुसार होगा। यह आशा की गई है कि इस व्यवस्था को १५ वर्ष की अवधि में कार्यरूप दिया जा सकेगा। इसके लिए भी उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय की भाषा सम्बन्धी कुछ शर्तें रखी गई हैं। राज्यों की सरकारों के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि वे अपनी विधान सभा के निर्णय के अनुसार प्रादेशिक भाषाओं या हिन्दी का प्रयोग करेंगी।

इसलिए यह स्पष्ट है कि ऐसी कोई भी धारणा कि हिन्दी केन्द्रीय सरकार पर अथवा राज्यों की सरकारों पर लादी जा रही है, एकदम निराधार होगी। संविधान का अभिप्राय केवल इतना है कि संघ की अधिकृत भाषा के रूप में अंग्रेजी की जगह हिन्दी को देने के बारे में जितनी कार्यवाही की जाए वह सुगम और सुविधाजनक तथा प्रादेशिक भाषाओं और हितों की प्रतिनिधित्वयुक्त संसद् की समिति के परामर्श के अनुकूल हो। जो पहला भाषा आयोग नियुक्त हुआ था, उसने अपनी रिपोर्ट पेश कर दी है और अभी यह कहना सम्भव नहीं कि इसकी अन्तिम सिफारिशें, जो सरकार के निर्णय का आधार होंगी, क्या होंगी, क्योंकि वे अभी विचाराधीन हैं। इसलिए किसी को ऐसी आशंका नहीं होनी चाहिए, और मैं कह सकता हूँ न किसी को ऐसा विचार ही है, कि हिन्दी को किसी पर लादा जाए। जब कभी हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान दिया जाएगा, और ऐसा करने के लिए जो क्रमिक कार्यवाही की जाएगी, उसके बारे में समय और कार्य दोनों ही का निर्णय भारतीय संसद् करेगी। अन्य कार्यों की तरह इस मामले में भी संसद् ही देश के कानून और राष्ट्रीय नीति निर्धारित करने के लिए सर्वोपरि अधिकारपूर्ण संस्था है।

अब इस प्रश्न के पक्ष और विपक्ष के सम्बन्ध में विस्तार से कुछ कहना आवश्यक है। पहले तो यह जान लेना चाहिए कि राज्यों में हिन्दी और अंग्रेजी के बीच नहीं, बल्कि अंग्रेजी और प्रादेशिक भाषाओं के बीच प्रतिस्पर्धा है। मैं नहीं जानता कि किसी ने ऐसा प्रस्ताव भी रखा है कि प्रादेशिक भाषाओं के स्थान पर राज्यों में सरकारी कामकाज की भाषा अंग्रेजी ही बनी रहनी चाहिए। यह एक ऐसा सुझाव है जो न युक्तिसंगत है और न व्यक्त किए जाने योग्य है। करीब १५० वर्ष तक अंग्रेजी के शिक्षण के बाद यह नहीं कहा जा सकता, और न ऐसा किसी ने दावा ही किया है कि अंग्रेजी का ज्ञान इस देश की जन संख्या के एक बहुत ही छोटे भाग के अतिरिक्त अधिक व्यापक हो पाया है। यदि सरकारी कामकाज ऐसी भाषा में चलाया जाए जिसे जनता का एक लघु अंश मात्र, वह भी अधिकांश शहरों में रहने वाले लोग ही समझ सकते हों, तो यह जनतन्त्र प्रणाली की विडम्बना से बढ़ कर और कुछ नहीं होगा। अंग्रेजी न जानने वाले भारत के जनसाधारण की अवहेलना नहीं की जा सकती, क्योंकि राज्यों की सरकारों को अपना कामकाज प्रादेशिक भाषाओं में ही करना पड़ेगा।

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद

यह उचित और एकदम स्वाभाविक ही है कि राज्यों की विधान सभाओं ने अपना कार्य प्रादेशिक भाषाओं में चलाने के पक्ष में फैसला कर लिया है। अंग्रेजी को अपना स्थान यथाशीघ्र प्रादेशिक भाषाओं को देना होगा और जितनी ही इन भाषाओं की अभी तक अवहेलना हुई है उसी हद तक इन्हें शासन कार्य में समुचित स्थान हमें देना पड़ेगा। जब ये भाषाएं अपने-अपने क्षेत्रों में प्रशासन के समस्त कार्यभार को सम्भालने लगेंगी, और

अ० भा० राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन के अष्टम वार्षिकोत्सव (भोपाल) में दिया गया भाषण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे सार्वजनिक कामों में जनता द्वारा इनका पूरा प्रयोग हो ही रहा है, तब यह प्रश्न उठेगा कि यह कहां तक उचित है कि केन्द्रीय सरकार की और अंतःराज्यीय सम्पर्क की भाषा अंग्रेजी बनी रहे ? जब प्रादेशिक भाषाएं अपने-अपने क्षेत्र में उचित स्थानों पर आरूढ़ हो जाएंगी और जब अपने अनुभव से ये और भी समृद्ध हो जाएंगी और इसके साथ ही सब राज्यों के कर्मचारी इन भाषाओं के ज्ञान और प्रयोग में कुशल हो जाएंगे, तब यह प्रश्न सामने आएगा कि अंतःराज्यीय कामकाज के लिए इन लोगों को और कौन-सी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। स्पष्ट है कि वह भाषा भारतीय भाषाओं में से ही कोई एक हो सकती है। इस कार्य के लिए हिन्दी को चुना गया है, क्योंकि हिन्दी और प्रादेशिक भाषा में निकट का सम्बन्ध है, जिसका आधार है संस्कृत के व्यापक प्रभाव के कारण एक सामान्य ऐतिहासिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि। प्रादेशिक भाषाओं में शिक्षित लोग हिन्दी आसानी से सीख सकते हैं और अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा की अपेक्षा इसका ज्ञान अधिक सरलता से प्राप्त कर सकते हैं।

इस विचार का आधार व्यावहारिक है, किन्तु इस मामले में हम भावुकता को भी असंगत नहीं कह सकते। राष्ट्र का आत्मसम्मान, देश-भक्ति की भावना तथा एकता की भावना, इन सबकी यही मांग है कि भारतीय भाषा ही देश की सरकारी भाषा हो। अपने अनुभव से हम यह पहले ही महसूस कर चुके हैं कि बहुत-से विदेशी लोगों को यह देख कर आश्चर्य होता है कि विदेशी मामलों में अभी तक हम अंग्रेजी का ही क्यों प्रयोग कर रहे हैं। छोटे-छोटे देश भी अपने औपचारिक कागजात अपनी भाषाओं में ही लिखने और हमें प्रस्तुत करने का आग्रह करते हैं। मैंने स्वयं देखा है कि अंग्रेजी जानते हुए भी बहुतेरे विदेशी प्रतिनिधि, कम से कम औपचारिक अवसरों पर, निजी भाषाओं का ही प्रयोग करते हैं। ऐसे कागजात जो विदेशों को भेजने पड़ते हैं या जिनका विदेशी सरकारों से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध होता है, हमें भी हिन्दी में तैयार करने होते हैं। समय के साथ यह भावना और भी दृढ़ होती जाएगी।

मेरा विश्वास है कि इन बातों पर विचार करने के बाद सभी विचार-शील व्यक्ति राष्ट्रभाषा के प्रचार की आवश्यकता को स्वीकार करेंगे। आरम्भ में मैंने कहा कि भारत जैसे विशाल देश के लिए एक सामान्य भाषा का होना राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक है। मैं जानता हूँ कि राष्ट्र की एकता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए सामान्य भाषा की व्यवस्था मात्र ही काफी नहीं। और भी बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिनके होने पर ही राष्ट्रीय एकता का भवन तैयार हो सकता है, किन्तु यह निर्विवाद है कि जहां कहीं एकता की भावना को संबल देने वाली दूसरी बातें उपलब्ध हों, वहां राष्ट्रभाषा का होना राष्ट्रीय एकता की गारण्टी समझनी चाहिए। हमारे देश में कुछ इसी प्रकार की स्थिति है। हमारी प्राचीन परम्परा और विचारधारा, हमारे लौकिक और पारलौकिक आदर्श, हमारे हजारों वर्ष पुराने संस्कार--इन सभी के ताने-बाने से वह परिधान बन सका है जिसे हम राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता कहते हैं। मैं मानता हूं कि एकता का यह चित्र सदा सम्पूर्ण नहीं रहा। राजनैतिक दृष्टि से अनेक बार इस एकता पर आघात हुए और प्रायः यह विशाल देश कई टुकड़ों में बंट गया। यह श्रेय आधुनिक युग को है--और इस पर हम सब गर्व कर सकते हैं--कि सांस्कृतिक एकता के परिधान में हम राजनैतिक एकता के सूत्र भी जोड़ सके हैं। सौभाग्य से हमें ऐसे नेता मिले जिनके नैतिक बल और पथ-प्रदर्शन के परिणामस्वरूप हमने यह कठिन मंजिल पार की। अब जब कि सांस्कृतिक ऐक्य के कारण राजनैतिक एकता का पौधा इस भूमि में लग चुका है, हम सबका यह कर्तव्य है कि इस पौधे को सींचने में हम कुछ भी उठा न रखें। मैं समझता हूं कि राष्ट्रभाषा प्रचार का कार्य उन इने-गिने कामों में से एक है जिनसे इस पौधे को बल मिल सकता है।

इसलिए यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि कौन-सी भारतीय भाषा इस कार्य के लिए उपयुक्त है। हमारे देश में बहुत-सी भाषाएं हैं, जो उन्नत हैं और जिनके साहित्य समृद्ध हैं। हमें इनमें से एक को चुनना है। हमारी संविधान परिषद ने इस काम के लिए हिन्दी को चुना, क्योंकि किसी भी दूसरी भाषा की अपेक्षा यह अधिक व्यापक क्षेत्र में और अधिक लोगों द्वारा बोली तथा समझी जाती है। संविधान परिषद ने इसलिए भी यह निर्णय किया क्योंकि अतीत में अंग्रेजी न जानने वाले देशवासियों के लिए हिन्दी एक सामान्य भाषा के समान रही है। यात्री और व्यापारी लोगों को किसी न किसी बोलचाल की भाषा का आश्रय लेना पड़ता है और देश के विभिन्न भागों में जिस बोलचाल की भाषा का अधिकतम प्रयोग होता आया है वह एक प्रकार की हिन्दी ही है।

दक्षिण में हिन्दी प्रचार का आन्दोलन ४० वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ था और हम जानते हैं कि इस अवधि में इसके फलस्वरूप करीब ५० लाख आदमियों ने हिन्दी सीखी है, जबकि दक्षिण के राज्यों में अंग्रेजी पढ़े-लिखों की कुल संख्या १० लाख से कुछ ही ऊपर है। यह हो सकता है कि अंग्रेजी जानने वालों का ज्ञान-स्तर या इनमें से अधिकांश का स्तर हिन्दी शिक्षितों की अपेक्षा कुछ ऊंचा हो। किन्तु इसका इससे बढ़ कर और कुछ अर्थ नहीं कि हिन्दी के ज्ञान का स्तर ऊंचा करने की आवश्यकता है। यह सफलता ऐसे समय प्राप्त की गई जब कि अंग्रेजी के अध्ययन को पूर्ण प्रोत्साहन मिलता था और नौकरी आदि की सभी सुविधाएं अंग्रेजी पढ़े लोगों के लिए थीं, जबकि हिन्दी जानने वालों को कोई भी सुविधा प्राप्त न थी।

इस समय स्थिति यह है कि दक्षिण में ५,००० हाई स्कूल हैं और इनमें से प्रायः सभी में हिन्दी के पठन-पाठन की व्यवस्था है और २०० से ऊपर कालेजों में भी हिन्दी के शिक्षण का प्रबन्ध है। दूसरी विशेष बात यह है कि चाहे कहीं हिन्दी शिक्षा का अनिवार्य विषय हो अथवा ऐच्छिक, हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या बढ़ती चली जा रही है। आन्ध्र और केरल में हिन्दी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है और मद्रास राज्य में ऐच्छिक रूप से, किन्तु फिर भी मद्रास में ७५ प्रतिशत के ऊपर विद्यार्थी हिन्दी पढ़ते हैं।

दक्षिण के लोगों के लिए यह श्रेय का विषय है और यह उनकी देशभक्ति और राष्ट्रीयता का प्रमाण है। मद्रास राज्य के कुछ स्थानों में हिन्दी के अध्ययन पर आपत्ति उठाई गई है, किन्तु वहां भी यद्यपि राष्ट्र की सरकारी भाषा के रूप में हिन्दी को अपनाए जाने का विरोध है, फिर भी इसके शिक्षण और प्रसार को दृढ़ समर्थन प्राप्त है। जहां तक दक्षिण के दूसरे राज्यों का सम्बन्ध है, ऐसी विरोध की भावना उनमें से किसी में भी देखने में नहीं आई है। यह हर्ष का विषय है कि तमिलनाड में हिन्दी अध्ययन के प्रति पहले जैसा ही उत्साह अब भी दिखाई देता है। दक्षिण भारत प्रचार सभा द्वारा संचालित परीक्षाओं के १९५७ और १९५८ के आंकड़ों से भी यह प्रमाणित होता है कि मद्रास राज्य में हिन्दी परीक्षार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई है।

हिन्दी के विरुद्ध आलोचकों को सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि यह भाषा इतनी समृद्ध नहीं कि इससे आजकल की आवश्यकताएं पूरी हो सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह एक ऐसी आपत्ति है जो कम या अधिक सभी भारतीय भाषाओं पर लागू हो सकती है। इसका कारण सरल है और आसानी से समझ में आ सकता है। इन भाषाओं को अभी तक इन जरूरतों को पूरा करने का अवसर नहीं मिला। जिन विषयों में और जिन क्षेत्रों में हिन्दी तथा दूसरी भाषाएं कमजोर पड़ती हैं, वे सभी ऐसे हैं जो अभी तक हिन्दी या दूसरी भाषाओं के माध्यम से हमारे स्कूलों या कालेजों में नहीं पढ़ाए गए। हमारे शिक्षकों और अध्यापकों ने कभी इन्हें नहीं पढ़ाया और न ही इनके सम्बन्ध में अपने विचार हिन्दी अथवा दूसरी भाषाओं में व्यक्त करने का उन्हें अवसर मिला। ज्ञानोपार्जन की दिशा में उन्होंने जो कुछ अभी तक किया है वह अंग्रेजी के माध्यम से ही किया और स्वभावतः हमारी भाषाओं का इतना विकास नहीं हुआ जितना होना चाहिए था। जब कभी भी हमारी भाषाओं को कुछ कर दिखाने का अवसर मिला, जैसे दर्शनशास्त्र की व्याख्या आदि का, तो वे कसौटी पर पूरी उतरीं। अच्छे और महान लेखकों के हाथों में हमारी भाषाओं ने पूर्ण सफलता प्राप्त की, जिसकी बहुत प्रशंसा हुई।

मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि अवसर मिलने पर हमारी भाषाएँ वांछित स्तर तक विकसित हो सकेंगी। क्या कोई यह कह सकता है कि संसार की किसी भी भाषा में विज्ञान सम्बन्धी विषयों के लिए बनी-बनाई या सहल शब्दावली उपलब्ध थी? क्या यह सच नहीं है कि विज्ञान और टेकनोलोजी की उन्नति के साथ-साथ संसार की सभी भाषाओं में नए शब्द गढ़े गए हैं? तब, क्या कोई ऐसा कारण है कि यदि एक बार हम अपनी भाषाओं को आधुनिक एवं वैज्ञानिक विचारधारा को अभिव्यक्त करने का भार सौंपें तो भारत में भी ऐसा ही न हो? हमारे विज्ञानवेत्ता आवश्यकतानुसार नए शब्द गढ़ सकेंगे, और इस काम में उन्हें संस्कृत से विशेष सहायता मिलेगी। जरूरत केवल इस बात की है कि वे भारतीय भाषाओं में, जिनमें हिन्दी भी शामिल है, एक बार लिखना आरम्भ करें। जैसा कि मैंने कहा, उपयुक्त वैज्ञानिक शब्दावली का सभी भारतीय भाषाओं में अभाव है। मेरा यह विश्वास है कि संस्कृत की सहायता से हम सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक सामान्य वैज्ञानिक शब्दावली तैयार कर सकते हैं। भारत सरकार द्वारा इस दिशा में पारिभाषिक शब्दकोष तैयार करने का प्रयास किया जा रहा है वह असाधारण रूप में सफल रहा है। सम्भव है कुछ नए शब्द एकदम नवीन या विचित्र भी दिखाई दें किन्तु यह प्रयास उचित और प्रशंसनीय है। मुझे आशा है कि ये शब्द ज्यों-ज्यों व्यवहार में आएंगे भाषा में सुधार होता जाएगा और इस प्रकार वह समृद्ध भी होती जाएगी। सभी देशों में सभी भाषाओं को इस प्रकार की स्थिति से होकर गुजरना पड़ा है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि हमें भी ऐसे ही दौर में से गुजरना पड़े। जहां एक बार यह प्रक्रिया आरम्भ हुई हम भाषा सम्बन्धी सबसे बड़ी कठिनाई पर पार पा लेंगे और हमारे मार्ग में कोई रुकावट न रहेगी। सरकारी कामकाज की और प्रशासन सम्बन्धी शब्दावली तैयार करना इतना कठिन नहीं, और निःसन्देह इन क्षेत्रों में भारतीय भाषाएं विज्ञान और टेक्नोलोजी की अपेक्षा पहले ही सफलता प्राप्त कर लेंगी।

मेरा कहने का यह अभिप्राय नहीं कि अंग्रेजी जैसी उपयोगी भाषा का पठन-पाठन हमारे स्कूलों में बन्द कर दिया जाए। अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के क्षेत्र भिन्न हैं। इसलिए जब हमारी भाषाएं राज्यों में उचित स्थान ग्रहण कर लेंगी, तब इनमें और अंग्रेजी में किसी प्रकार के संघर्ष की गुंजाइश नहीं रहेगी। हम लोगों को अंग्रेजी पढ़ने से रोकना नहीं चाहते, यही नहीं बल्कि हम चाहते हैं कि हमारे देशवासी अंग्रेजी को उसी तत्परता से पढ़ें जैसे अन्य देशों में किसी भी महत्वपूर्ण विदेशी भाषा का अध्ययन किया जाता है।

यदि मैं यह कहूं कि जो हिन्दी विरोधी भावना हम आज देख रहे हैं उसका कारण बहुत हद तक हमारा अपना अनुचित उत्साह है, तो मुझे आशा है हिन्दी के प्रसार और इसकी उन्नति में दिलचस्पी रखने वाले भाई मुझे गलत नहीं समझेंगे। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने के लिए प्रचार और प्रसार की जिम्मेदारी हिन्दी भाषा-भाषियों पर नहीं आती है। यह कार्य अहिन्दी भाषी लोगों की सद्भावना और समर्थन से किया जाना चाहिए। अहिन्दी भाषी भाइयों को हमें यह विश्वास दिलाना चाहिए कि हिन्दी को अपनाने से उनके किसी भी हित को हानि नहीं पहुंचेगी और भारत के सरकारी कामकाज के लिए हिन्दी का प्रयोग हमारी राष्ट्र-भक्ति की भावना और राष्ट्रीयता की मांग है। मेरा अपना यह विश्वास है कि अहिन्दी क्षेत्रों में इस धारणा को जड़ पकड़ने में बहुत समय नहीं लगेगा। इस बीच में हिन्दी के सभी प्रेमियों का यह कर्तव्य है कि भाषा को उन्नत करने के महत्वपूर्ण और रचनात्मक कार्य में वे हाथ बटाएं, इसकी शब्दावली और इसके साहित्य को हिन्दी न जानने वालों के लिए आकर्षक बनाएं।

हिन्दी भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाने के लिए हिन्दी भाषियों को संकुचित दृष्टि नहीं रखनी चाहिए अपितु उदार दृष्टि से काम लेना चाहिए और अहिन्दी भाषियों की हिन्दी-शैली यदि थोड़ी-बहुत भिन्न हो तो इसके कारण उनके प्रति चिढ़ने के बजाय हिन्दी भाषा के शब्द भण्डार को बढ़ाने में और नए शब्द, नए मुहावरे, नई शैली और कुछ हद तक भाषा के व्याकरण के परिवर्तन में भी उनका सहयोग मानना तथा लेना चाहिए। परिणामतः यह सम्भव है कि इसके कारण किंचित विभिन्न शैलियों का उदय हो जाए, और वास्तव में देखा जाए तो आज भी किसी हद तक उनका अस्तित्व है ही, लेकिन हमें इस विभिन्नता को सहन ही नहीं बल्कि इसका स्वागत करना चाहिए। यदि हम केवल इंग्लैण्ड और अमेरिका के उदाहरण को ही लें तो जो कुछ मैंने कहा है उसकी पर्याप्त पुष्टि हो सकती है। यद्यपि अंग्रेजी दोनों देशों की भाषा है किन्तु दोनों देशों में जो भाषा प्रयोग की जाती है उसके रूप में बहुत-सी बातों में काफी अन्तर है। पर इस कारण से दोनों देशों की भाषा अलग नहीं समझी जाती और न ही अंग्रेजी के अलावा कोई दूसरा नाम ही उसे दिया गया है। यदि किसी लेखक या प्रदेश में भाषा, शब्दावली और मुहावरों में कोई भिन्नता या विशेष शैली झलकती है तो उसे हमको भाषा का ह्रास न समझ कर भाषा की उन्नति की निशानी समझनी चाहिए। हम केवल हिन्दी भाषा को ही लेकर सोचें तो हम देख सकते हैं कि 'प्रेम सागर' और प्रेमचन्द की भाषा और शैली में कितना अन्तर है और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की शैली और वर्तमान हिन्दी कवियों तथा लेखकों की भाषा शैली में भी अन्तर है। इसलिए, यदि एक महाराष्ट्री या बंगाली कुछ विभिन्न शैली में लिखता है तो हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि उस पर उसकी अपनी भाषा की शैली, शब्दावली और मुहावरों इत्यादि का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। जिस सीमित उद्देश्य के लिए हिन्दी का प्रचार वांछनीय है, उसकी पूर्ति के लिए इसी रूप से अहिन्दी भाषियों में हिन्दी प्रचलित और स्वीकृत हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें यह याद रखना चाहिए कि अपने-अपने क्षेत्र में हों सब भारतीय भाषाओं को उन्नत और विकसित होना है और उनके विकास में सहायता देने के लिए हम वचनबद्ध हैं और यह हमारा कर्तव्य भी है। इस प्रकार इन सब भाषाओं के विकास के लिए विस्तृत क्षेत्र है और जब यह विकसित हो जाएंगी हिन्दी को उनसे समुचित और यथोचित लाभ उठाने के लिए तैयार रहना चाहिए। मेरा विश्वास है कि केवल भौतिक समृद्धि में ही नहीं बल्कि भारत की भाषाओं के सम्बन्ध में भी यह बात सत्य है कि एक की उन्नति और विकास का प्रभाव दूसरे पर पड़े बिना नहीं रह सकता।

यदि हम इस शताब्दी के आरम्भ काल की ओर दृष्टिपात करें तो हमें यह स्पष्ट दिखाई देगा कि बंगीय साहित्य का हिन्दी साहित्य के विकास पर कितना असर पड़ा था। हिन्दी बहुतेरे अहिन्दी भाषी व्यक्तियों की, जिन्होंने साहित्य की समृद्धि में बड़ा मूल्यवान योग दिया है, ऋणी है और भविष्य में भी ऐसा हो सकता है। हिन्दी को केवल हिन्दी भाषियों की बपौती ही नहीं माना जा सकता। यह एक सामान्य अनुभव है कि एक व्यक्ति जब मातृभाषा के अलावा अन्य भाषा को सीखने का यत्न करता है तो वह उसका बेहतर और अधिक सावधानी से अध्ययन करता है और वह उस भाषा में उस भाषा के बोलने वाले लोगों से भी अधिक प्रवीण हो जाता है। आज भी दक्षिण भारत में ऐसे लोग हैं जो मेरे जैसे आदमी से अधिक सुन्दर, परिमार्जित और मुहावरेदार हिन्दी बोल और लिख सकते हैं। मेरी यह धारणा है कि जिस गति से हिन्दी का प्रचार हो रहा है और जिस लगन व उत्साह से कतिपय अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में उसका अध्ययन किया जा रहा है, उससे केवल हिन्दी भाषी चकित ही नहीं होंगे बल्कि बहुत स्थानों में अहिन्दी भाषी उनकी जगह भी ले लेंगे। अंग्रेज और अन्य विदेशी लोग भारतीयों के अंग्रेजी भाषा में बोलने और लिखने की सुन्दर शैली और प्रवाह से चकित हो जाते हैं। यह अनुभव हिन्दी के सम्बन्ध में भी होना अवश्यम्भावी है। जब कभी यह दिन आएगा, वह एक उल्लास का दिन होगा और तब तक हिन्दी के प्रति कोई विरोध का भाव नहीं रह जाएगा, बल्कि सभी प्रान्तों में खुशी के साथ लोग सार्वदेशिक कार्यों के लिए हिन्दी का उपयोग करने लग जाएंगे। हिन्दी भाषियों का यह कर्तव्य है कि व लगनपूर्वक हिन्दी की ऐसी सेवा करें कि वह सभी अहिन्दी भाषियों क द्वारा मान्य हो जाए और सभी प्रकार के आधुनिक भावों को व्यक्त करने के लिए वह योग्य माध्यम बन जाए और उसका साहित्य इतना समृद्ध हो जाए कि वह दूसरों को आकर्षित कर सके। दूसरे लोगों के देश प्रेम पर हमें भरोसा रखना चाहिए और उन पर यह छोड़ देना चाहिए कि किस गति से और किस तरीके से संविधान को कार्यान्वित किया जाए।

मराठी कविता

पत्नी के प्रति

केशवसुत

मैं दूर जाने के लिए सन्नद्ध हुआ,
तब तुम्हारा कंठ बहुत ही रुद्ध हुआ;
तुमने मुझ से गद्गद् स्वर में कहा--
'कुशलवृत्त लिखा कीजिए।'
तुम्हें आश्वासन देने के लिए मैंने कहा--'लिखूंगा',
परन्तु मैंने आगे का कुछ भी विचार नहीं किया;
अब जब मैं लिखने के लिए हाथ में पत्र लेता हूं
तब कुशल का क्षीणत्व प्रतीत होता है।

इन आंखों का तुम प्रकाश बन जाती हो,
अरी! मेरी आत्मा का तुम ही तो विकास हो;
मेरा रक्त तुम्हारे रक्त में बह रहा है,
मेरा हृदय तुम्हारे उर में हिल रहा है।
तुम अपने हाथ को टटोल कर देखो,
तुम अपने उर को तलाश करके देखो;
मेरा स्वास्थ्य तुम्हें वहां ज्ञात होगा,
मेरा अस्वास्थ्य तुम्हें वहां दिखाई देगा।

अनुवादक--भवानी शंकर

भारत-वन्दना

आरसी प्रसाद सिंह

जननी जय भरत-भूमि निखिल जगत्-माता।
जीवन-धन-धान्य-पूर्ण ऋद्धि-सिद्धि-दाता।
स्वयं जहां आदि शक्ति
प्रकटी बन ज्ञान-भक्ति।
दिव्य कर्म का प्रवाह जग में बह जाता।
जननी जय भरत-भूमि निखिल जगत्-माता।
भारत वह देश अरुण,
मधुमय चिरकाल तरुण,
रवि शशि का ज्योति-शिखर नवयुग-निर्माता।

जननी जय भरत-भूमि निखिल जगत्-माता।
जहां प्रथम अरुणोदय,
स्रोत अमृत का अक्षय,
प्रीति का विमुग्ध गीत मुक्त विहग गाता।
जननी जय भरत-भूमि निखिल जगत्-माता।
उर-उर में स्नेह-शान्ति,
मुख पर सौन्दर्य-कान्ति,
मिट्टी का स्वर्ग यही मांगता विधाता।
जननी जय भरत-भूमि निखिल जगत्-माता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता के सम्बन्ध में श्री अरविन्द के विचार

सत्यनारायण त्रिवेदी

महर्षि अरविन्द की गणना बीसवीं शती के श्रेष्ठ दार्शनिक चिन्तकों में की जाती है। भारतीय दर्शन में शंकराचार्य के पश्चात सम्भवतः उन्होंने ही अपना 'स्कूल' स्थापित किया। अरविन्द एक साथ ही दार्शनिक, कवि, राजनीतिक नेता, मनीषी विद्वान एवं महान योगी के रूप में हमारे सामने आते हैं। भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में उन्होंने अत्यन्त मनोयोग-पूर्वक कार्य किया किन्तु बाद में यांत्रिक युग में जकड़ी मानवता के उद्धार और मानवीय चेतना के उन्नयन के लिए वह योग की ओर उन्मुख हुए और यौगिक क्रियाओं द्वारा चेतना के विभिन्न गहरे स्तरों की सम्यक व्याख्या की। विगत बीस वर्षों में अरविन्द की विचारधारा का प्रभाव भारतीय साहित्य के विभिन्न अंगों पर अविच्छिन्न रूप से पड़ा है। श्री सुमित्रानंदन पंत, श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि लब्धप्रतिष्ठ कवियों की नवीनतम रचनाओं तथा अति यथार्थवादी कृतियों में अरविन्द के दर्शन का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित है। पंत द्वारा विरचित 'अतिमा' की 'सोन जुही' जैसी अनेक कविताओं में यह प्रभाव और भी मुखर हो उठा है। अति यथार्थ-वादी कृतियों का तो स्वयं उन्होंने परीक्षण और सहानुभूतिपूर्ण समीक्षा की है। वह इसे स्वीकार करते हैं कि अति यथार्थवादी रचनाओं का सम्बन्ध स्वप्नचेतना से है। किन्तु साथ ही साथ उनकी धारणा है कि अति याथार्थ-वादी चेतना के गहरे स्तरों तक नहीं पहुंच पाते हैं और इसीलिए उनकी रचनाओं में अस्तव्यस्तता और अस्पष्टता अपेक्षाकृत अधिक रहती है। अपने यौगिक अन्वेषणों द्वारा उन्होंने सिद्ध किया है कि चेतना के अनेक स्तर होते हैं और वहां तक पहुंचना अत्यन्त कठिन है। मानवीय व्यक्तित्व के तल में प्रवेश कर उसकी निश्चित व्याख्या करने में अरविन्द काफी सफल हुए हैं। उनके पत्रों में काव्य सम्बन्धी विचार यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं किन्तु काव्य के विभिन्न अंगों और तत्वों पर उन्होंने अपने विचार कुछ विस्तारपूर्वक अपनी एक पुस्तक में व्यक्त किए हैं। एक सिद्ध योगी होने के नाते उन्होंने अपनी यौगिक क्रियाओं द्वारा मानो प्रेरणा, लय, ताल, छन्द आदि काव्य-गत तत्वों का स्वयं साक्षात्कार कर उनको एक निश्चित रूप दिया है। अरविन्द के विचार मौलिक हैं। जो कुछ भी उन्होंने लिखा अपनी योगजन्य स्वयंसिद्धि और अंतःप्रेरणा तथा अनुभूति के आधार पर लिखा है, किसी पुस्तक को पढ़ कर अथवा किसी बाह्य प्रभाव से प्रभावित होकर नहीं। लोग उन्हें दार्शनिक कहते हैं किन्तु, जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, दर्शन की कोई पुस्तक उन्होंने नहीं पढ़ी। जो कुछ भी उनकी उद्भावनाएँ हैं सभी उच्चतम अथवा अतिचेतना के प्रकाश में उपलब्ध हुई हैं।

श्री अरविन्द काव्यसृजन का आधार आंतरिक या आध्यात्मिक चेतना मानते हैं। चेतना के विकास-क्रम में उनका अटल विश्वास है। उनका कहना है कि जैसे-जैसे मानव का चेतना-स्तर उठेगा, वैसे-वैसे उसकी साहि-त्यिक रचना का स्वभाव भी बढ़ेगा। उसमें उच्चतर सौंदर्य का आविर्भाव होगा। स्पष्टतया श्री अरविन्द काव्य को एक प्रगतिशील विकास की वस्तु मानते हैं। आंतरिक चेतना का क्रमिक विकास इसके लिए मुख्य वस्तु है किन्तु छन्द, लय, तुक आदि के बाह्य रूप की उपयोगिता भी काव्य से सम्बन्धित है। कविता के स्वरूप और उसके आवश्यक तत्वों की व्याख्या करते हुए श्री अरविन्द कहते हैं कि साधारण जनों के लिए कविता एक मनोरंजन है, कल्पना का सौंदर्यात्मक आनन्द है। किन्तु कविता की परिणति इसी में नहीं है। उसकी आत्मा, उसका लक्ष्य इन सामान्य रूपों के परे है। अन्य कलाओं की भांति कविता से हम भी आनन्द प्राप्ति की आशा करते हैं किन्तु यह बाह्य आनन्द काव्य का एक सामान्य तत्व है। वस्तुतः काव्यगत आनन्द का मूल स्रोत, उसका श्रेय और प्रेय आत्मा है। बुद्धि, कल्पना एवं बाह्य इन्द्रियां इस दिव्य आनन्द के साधन मात्र हैं, जितनी तत्परता से ये उपकरण अपनी अलग सत्ता का बहिष्कार कर सम्प्रेषण का कार्य करते हैं उतनी ही सरलता से शब्द आत्मा की गहराई तक पहुंच कर श्रेष्ठ कविता की उद्भावना करते हैं। अतः जब तक बाह्य साधनों से प्राप्त आनन्द को ऊंचा उठा कर कविता उसे आत्मा के गम्भीर दिव्य आनन्द में परिणत नहीं कर देती तब तक यही समझना चाहिए कि कविता ने सचमुच अपना चरम लक्ष्य प्राप्त नहीं किया है। कवि की आत्मा इसी अलौकिक आध्यात्मिक आनन्द का अनुभव करती है और जीवनगत कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के बाद कवि जन-जीवन के लिए इस आनन्द को प्रदान करने में समर्थ हो जाता है। यह परमानन्द मात्र मनोरंजन नहीं, वरन मानव जीवन को उन्नत और आलोकित करने वाली शक्ति है। कुछ आलोचक तथा बुद्धिवादी कलाकार विशुद्ध रचना विधान को ही कविता का अनिवार्य अंग मानते हैं किन्तु अरविन्द के मतानुसार रचना विधान श्रेष्ठ कविता की पहली सीढ़ी होते हुए भी उसका प्रधान तत्व नहीं है। कवि की कल्पना आध्यात्मिक शक्ति से प्रेरित होकर विधान और उपनियमों के ऊपर उड़ान लेती है। कवि रचना विधान का बहिष्कार नहीं करता किन्तु काव्यसृजन के उच्चतम क्षणों में विधान का बौद्धिक तत्व गौण हो जाता है, कवि उसे भूल जाता है। शैली और शब्दों की गति स्वतः उसकी आत्मा के स्वरूप को ग्रहण कर लेती है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर न भी एक स्थान पर लिखा है कि किसी कविता का सौंदर्य दृढ़ नियमों से निर्मित होता है किन्तु तब भी कवि उनसे परे रहता है। काव्य के नियम सौंदर्य के पंख हैं जो उसे भारावनत नहीं करते प्रत्युत स्वतन्त्रता की ओर ले जाते हैं। काव्य सौंदर्य का बाह्य रूप नियमों में प्रतिष्ठित है किन्तु उसकी आत्मा सौंदर्य में बसती है। काव्य-नियम सौंदर्य तथा स्वतन्त्रता की ओर ल जाने वाले प्राथमिक चरण हैं। आत्मा के अन्तराल से निकली हुई कवि की दिव्य वाणी जीवन सत्यों का उद्घाटन करती हुई मन्त्र का रूप धारण करती है। वे कविताएं जो आध्यात्मिक अनुभूति से विहीन होकर केवल बुद्धि, कल्पना, राग, लय आदि का ही प्रदर्शन करती हैं और जिनमें ये बाह्य उपकरण कवि की आत्मा में घुल-मिल कर पवित्र और उन्नत भावों की अभिव्यक्ति नहीं करते, उच्चकोटि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की नहीं होतीं और कुछ समय के बाद उनका प्रभाव समाप्त हो जाता है। ऐसी दशा में कविता का प्रभाव मस्तिष्क तक ही सीमित रहता है, वह हृदय को स्पर्श नहीं कर पाती, उसमें काव्य का सारभूत तत्व नहीं रहता और वह पद्य के आवरण में गद्य की कोटि में आ जाती है। सभी पदार्थों में, जिन्हें वाणी व्यक्त कर सकती है, दो तत्व रहते हैं। बाह्य अथवा यांत्रिक, तथा सारभूत अथवा आध्यात्मिक। रागों या मनोभावों में भी यही बात है। महान कवि केवल भावों को ही नहीं वरन उनकी आत्मा को भी व्यक्त करता है जिसके द्वारा रागात्मक अनुभूति और आनन्द की सृष्टि होती है। कवि अपनी वाणी में जीवन और जगत के सत्यों का उद्घाटन करता है। उनकी अभिव्यंजना के लिए काव्य की सशक्त भाषा ही समर्थ हो सकती है।

श्री अरविन्द का विचार है कि गम्भीर आध्यात्मिक अनुभूतियों की काव्यमय अभिव्यक्ति तभी सम्भव है जब लय और गति-शैली, विचार गांभीर्य और शाब्दिक रूप तथा सत्य की आत्मिक संप्रतीति--ये तीनों तत्व अपनी तीव्रतम अवस्था में मिल कर एक हो जाते ह। इन तीनों तत्वों का एकीकरण ही सभी महान कविताओं का उत्स है। इनमें से किसी का भी अभाव अथवा आधिक्य काव्य की असफलता का कारण हो सकता है। लय, शैली, विचार, शब्द आदि में सबसे अधिक महत्व लय को दिया गया है। बिना लय के अन्य उपकरणों की उपयोगिता सार्थक नहीं होती। विशुद्ध लय और गति से समन्वित कविता सम्प्रतीति तथा अन्य उपकरणों से कुछ अंश में हीन होती हुई भी अमरत्व को प्राप्त कर लेती है। कदाचित श्री अरविन्द ने 'लय' को एक विशिष्ट अर्थ म लिया है। 'लय' से उनका तात्पर्य केवल न्द सम्बन्धी पूर्णता से नहीं है। छन्द के महत्व को भी अरविन्द ने स्वीकार किया है। छन्द को केवल परम्परा का निर्वाह नहीं वरन काव्य की गति का आधार मानते हुए उन्होंने इस आधुनिकतम विचारधारा का विरोध किया है जिसमें काव्यसृजन के लिए न्द को बाधक मान कर उसका पूर्णतः बहिष्कार किया गया है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि इस प्रकार के विचार को प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिए। हमारे पुराने आचार्यों ने छन्द के रहस्य को समझा था। हमारे उपनिषद, हमारा समस्त वैदिक साहित्य छन्द के आधार पर लिखा गया है। छन्दयुक्त कृतियों में जीवन शक्ति अपेक्षाकृत अधिक रहती है। किन्तु साथ ही साथ श्री अरविन्द का यह भी कहना है कि केवल कोरी छन्द योजना और तुकबन्दी ही श्रेष्ठ कविता की परिभाषा नहीं हो सकती। इस प्रकार की कविता में कृत्रिमता और आडम्बर अधिक रहता है, जिसे कविता की छाया कह सकते हैं, सारभूत तत्व नहीं। ऐसी कविताएं सौंदर्यात्मक अनुभूति, कल्पना आदि की सन्तुष्टि करती हुई सुन्दर या अच्छी कही जा सकती हैं किन्तु महान नहीं। कविता का उद्देश्य न तो प्रकृति की यथार्थ अनुकृति और न ही रुमानी शब्दचित्रों का आदर्शवादी चित्रण है बल्कि चित्रों द्वारा एक सांकेतिकता प्रस्तुत करना है जिससे उसके सृजन के विभिन्न प्रच्छन्न स्तरों को समझने में सहायता मिल सके। निस्संदेह सबल और अनुप्राणित कविता हमारी संवेदनाओं को अधिक मात्रा में प्रभावित करती है; भावात्मक कविता हमारी भावनाओं को उद्वेलित करती हुई आवेगों का चित्र प्रस्तुत करती है और बौद्धिक कविता हमारी जीवनगत जिज्ञासाओं को संतुष्ट करती है अथवा मनोवैज्ञानिक या अन्य समस्याओं का वर्णन प्रभावपूर्ण ढंग से करती है। किन्तु ये सभी प्रकार की कविताएं मस्तिष्क और हमारी सतही चेतना को आनन्द प्रदान कर सकती हैं तथा चेतना की विकासोन्मुख प्रक्रिया में इस आनन्द का उपयोग किया जा सकता है। परन्तु यदि हम इसी आनन्द से संतोष कर लेंगे तो महान कविता के उच्चतम शिखर पर कभी नहीं पहुंच सकते। ऐसी कविताओं की शैली विषयवस्तु के अनुकूल तो होती है तथा भाषा और भाव में पूर्ण-संगति भी रहती है किन्तु वे मन्त्र का रूप नहीं धारण कर सकतीं।

श्री अरविन्द बार-बार काव्यगत 'आलोक' पर जोर देते हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार विश्लेषणात्मक निरीक्षण एक वैज्ञानिक की स्वाभाविक प्रतिभा है, उसी प्रकार कवि की विशिष्ट शक्ति काव्यगत 'आलोक' है। अपने इसी गुण के कारण कवि युगद्रष्टा अथवा ऋषि की उपाधि पाता है। वह अपनी कविताओं द्वारा हमारी अन्तश्चेतना में वह शक्ति उत्पन्न कर देता है जिससे हम प्रकृति और मानव जीवन के मार्मिक रहस्यों को समझने में समर्थ होते हैं। वाल्मीकि, होमर, कालिदास, शेक्स-पियर, दांते, तुलसी आदि अपने शब्दचित्रों अथवा रागों की मार्मिक अभिव्यक्ति के कारण इतने महान नहीं हुए वरन उन्होंने प्रकृति और मानव जीवन के 'आलोक' का उद्घाटन किया है, जीवन के वैविध्य को चित्रित किया है तथा सत्य का अन्वेषण किया है। किन्तु आज का कवि उस आदर्श से दूर हो गया है।

कवि दो प्रकार का व्यक्तित्व रखता है। जीवन और जगत के प्रति उसकी प्रतिक्रिया दो रूपों में होती है। पहले रूप में वह साधारण व्यक्ति की तरह विचार करता, देखता, और अनुभव करता है। अपने दूसरे रूप में वह अतिमानव अथवा महामानव है जिसका सम्बन्ध अतिचेतना से रहता है और जो सौंदर्य और आनन्द के अनन्त स्रोत से सान्निध्य स्थापित कर अपनी अनुभूतियों को दिव्य आनन्द में परिणत करता है। प्रारम्भ से ही यह माना गया है कि भौतिक पदार्थ की पृष्ठभूमि में आध्यात्मिक यथार्थ प्रच्छन्न रहता है। कविता के अध्यात्म पक्ष पर श्री अरविन्द का विशेष आग्रह है किन्तु उनका अध्यात्म जीवन और जगत के ठोस धरातल पर आधारित है। श्री अरविन्द की काव्य स्थापना न्यूनाधिक रूप में एडगर एलन पो के विचार से साम्य रखती है जहां उसने कहा है: "वह जो केवल गाता है, चाहे उसक गायन में कितना भी उत्साह निहित हो, उसकी कृति में ऐसे दृश्यों, ध्वनियों, रंगों, भावनाओं का वर्णन जिसका उसे अनुभव है कितना भी स्पष्ट और उभारा हुआ हो, मैं कहूंगा कि ऐसे कवि न अपनी वास्तविक महानता का परिचय नहीं दिया है। कवि-कर्म केवल साधारण सौंदर्य के दर्शन तक सीमित नहीं है बल्कि वह नैसर्गिक सौंदर्य तक पहुंचने का उन्मत्त प्रयास है। जीवन से परे जो सौंदर्य छिपा हुआ है उसके आभास से प्रेरित होकर कविगण ससीम जगत की वस्तुओं और विचारों के अनक मिश्रित निरूपणों द्वारा उस सौंदय को प्राप्त करन के निमित्त कठिन प्रयास करत हैं जिसका सम्पूर्ण ऐश्वर्य अनन्त का ही एक अंश है और इस-लिए जब हम विगलित होकर अश्रुपात करते हैं तो व हमारे आनन्दा-तिरेक का परिणाम नहीं होते वरन उद्वेलित और अधीर होकर राश्य और दुःख का अनुभव करते ह कि हम इस जगत और पार्थिव जीवन म उस दैवी और आह्लादमय परम सौंदर्य को तत्काल और सदा के लिए नहीं प्राप्त कर सकते जिसकी क्षणिक और अस्पष्ट झांकी हमें कविता में मिलती है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीदी का विवाह

को० कुटुम्बराव

श्वेताम्बरम के मित्रगण कहा करते--

"उनकी क्या है, बड़े माहिर हैं। अपनी बेटियों की शादी कर देना उनके लिए बाएं हाथ का खेल है।" और यह सुन कर श्वेताम्बरम के मन में एक तरह का निरुत्साह उत्पन्न हो जाया करता था।

दरअसल बात यह थी कि श्वेताम्बरम पिछले दो वर्ष से अपनी बेटी कल्याणी के लिए वर खोजते-खोजते थक चुका था। कहीं भी उसको योग्य लड़का नहीं मिल रहा था।

"अरे भाई! श्वेताम्बरम की लड़की की शादी तो बहुत दिन से रुकी हुई है। आखिर बात क्या है?"--एक ने पूछा।

"रुकी हुई है तो क्या हुआ? श्वेताम्बरम के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। वह चुटकी बजाते यह काम कर लेगा। समझते क्या हो तुम उसे?"--दूसरा कहता।

यह बातचीत श्वताम्बरम ने स्वयं अपने कानों से सुनी थी और इस तरह बात करने वाले कोई बाहर के नहीं, खुद उसके रिश्तेदार थे।

उसे आश्चर्य होता कि लोग उसके सम्बन्ध में इस तरह क्यों सोचते हैं, उसे क्यों इतना ऊपर उठाते हैं? उसकी असमर्थता की तरफ उनकी दृष्टि क्यों नहीं जाती?

यही नहीं, आखिर उसकी पत्नी गुणमणि ने भी एक दिन कहा कि कल्याणी की शादी तय करना तो आपके लिए मिनटों की बात है।

श्वेताम्बरम सात सौ रुपये तनख्वाह पाता था। यह देख कर लोग समझने लगते कि यह आदमी हर काम कर सकता है। अपनी बेटी की शादी के सम्बन्ध में एक बात कह दे तो लड़के कतार में खड़े हो जाएंगे।

पर कल्याणी की शादी नहीं हुई। दो साल से कोई लड़का नहीं मिला। हां, यह बात सच थी कि दो-एक जगह से लोग लड़की देखने आए थे। पर गुणमणि को वे रिश्ते पसन्द नहीं थे। वैसे तो गुणमणि को लोगों में गुण की बजाय दोष ही नजर आते हैं।

पर उसे अपनी बड़ी लड़की कल्याणी से अपार प्रेम है। वह उसकी प्रशंसा करते कभी नहीं थकती। अपनी छोटी लड़की सीता में उसे कई दोष नजर आते हैं।

गुणमणि श्वेताम्बरम से कहती--"सीता की बात छोड़िए, पहले कल्याणी के लिए एक अच्छा-सा लड़का ढूंढ़ लीजिए।"

श्वेताम्बरम ने अपनी पत्नी के उस 'अच्छा-सा' शब्द का अर्थ कभी नहीं समझा।

श्वेताम्बरम ने बड़ी दौड़-धूप की। पर कुछ फायदा नहीं हुआ। उसे कहीं भी कोई 'अच्छा-सा' लड़का नहीं मिला।

"जब आपको कल्याणी की शादी में कोई दिलचस्पी ही नहीं है, तो आखिर लड़का कहाँ से मिलेगा और क्योंकर मिलेगा?"--श्वेताम्बरम की पत्नी कहती।

"तुम्हारी लड़की कोई रम्भा या ऊर्वशी तो है नहीं कि लड़का इतनी आसानी से मिल जाए।" --श्वेताम्बरम उत्तर देता।

गुणमणि के पास इस बात के कई सबूत हैं कि उसके पति कल्याणी के विवाह में पूरी दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं।

"हां-हां, आप उससे नफरत इसलिए करते हैं कि लड़का देखने की मेहनत बच जाए? आपको तो दूसरे घर की बेटियों की शादी कराने में दिलचस्पी रहती है। अपने घर में दिया क्यों जलाने लगे?" गुणमणि यों बरस पड़ती।

श्वेताम्बरम अपनी पत्नी का इशारा समझ जाता। पर वास्तव में उसने पड़ोस की सुशीला की शादी में कुछ नहीं किया था। लड़के का चाचा उसका बचपन का मित्र था और इस नाते वह भी अपने मित्र के साथ लड़की वालों के यहां गया था। गुणमणि का यह विश्वास था कि उस शादी के सम्पन्न होने में श्वेताम्बरम का भी हाथ था।

श्वेताम्बरम अपनी पत्नी की दलील सुनता और मौन ही रहता।

सीता कई बातों में अपने पिता जैसी थी। श्वेताम्बरम की सहनशीलता उसमें भी थी; बौद्धिक कुशलता में भी वह किसी से कम नहीं थी। ठीक अपने पिता की ही तरह उसे एकान्त में रहना पसन्द था। वह अपने मन की बात कभी किसी से नहीं जताती।

सीता को यह सब कुछ अजीब-सा लगता। अपने मां-बाप के बीच का बर्ताव उसे कतई पसन्द नहीं था। आए दिन आपस में लड़ाई-झगड़ा करने वाले पति-पत्नियों को वह देख चुकी थी। पर अपने मां-बाप की तरह बात-बात में तिल का ताड़ बनाने वालों को उसने और कहीं नहीं देखा था।

पर मजे की बात यह थी कि सीता ने कई बार पास-पड़ोस के लोगों को यह कहते सुना था कि "श्वेताम्बरम और गुणमणि बड़े ही आदर्श दम्पति हैं।"

सीता पहले-पहल यह न समझ सकी कि उसके मां-बाप में कौन अच्छा था, कौन बुरा। पर समय गुजरने पर उसे इस बात का पता चला कि दोनों के दोनों गलत रास्ते पर थे।

सीता अपने मानसिक स्तर को मजबूत करने का प्रयत्न करती रही, ताकि घर के लोगों को समझने का कोई रास्ता निकल आए। पर वैसा कुछ नहीं हुआ। उसको देख कर उसकी मां कहा करती--"मालूम नहीं, यह दिन भर क्या सोचती रहती है। हिलती-डुलती तक भी नहीं। इसका मिजाज एकदम सख्त बन गया है।"

इस पर उसका बाप कहता--"हां-हां, मिजाज उसका सख्त ही है, ठीक मेरे ही जैसा।"

फिर मां कहती--"देखती हूं, दिन ब दिन उसमें अहं की भावना भी बढ़ने लगी है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीता चुपचाप उनकी बातचीत सुन लेती। सच पूछो तो उसे अपनी दीदी से कोई द्वेष नहीं। वह किसी की कमजोरी से खिलवाड़ नहीं करना चाहती। पर उसके पिता इसके उलटे हैं। वह दूसरों की कमजोरी का फायदा उठाना चाहते हैं। अपनी बीवी को वह कुछ नहीं समझते। अपने को बड़ा समझदार व्यक्ति मानते और गुणमणि को नासमझ। अपनी समझ से उस कमी की पूर्ति करना चाहते।

कल्याणी के साथ भी उसके पिता का व्यवहार ठीक नहीं था। वह उससे कुछ सख्ती से पेश आते थे। एक घर में रहने वालों को कुत्तों की तरह लड़ते-झगड़ते देख सीता को अचरज होने लगता।

सीता को देख कर उसके पिता गर्व करने लगते पर सीता इससे खुश नहीं थी। वह यह भी नहीं चाहती थी कि उसके पिता कल्याणी के प्रति उदासीन रहें।

गुणमणि ने एक दिन पूछा--"तो क्या आप तब भी यों मुंह फुलाए बैठे रहेंगे जब सीता की शादी की बारी आएगी?"

श्वेताम्बरम ने उत्तर दिया--"मैं समझता हूं कि मुझे सीता की शादी तय करने में आधे मिनट से अधिक समय नहीं लगेगा।"

यह बात सीता को बहुत बुरी लगी। 'पिता जी क्यों दीदी की शादी में इतनी टाल-मटोल करते हैं?'--सीता अपने मन से प्रश्न करने लगी। पर उत्तर नहीं मिला।

हां, दीदी की शादी अगर रुकी हुई है, तो उसकी एक वजह वह भी थी। दीदी को देखने जितने लोग आए, उन्होंने यह कह कर विदा ली थी कि "हमें आपकी बड़ी लड़की नहीं, छोटी लड़की पसन्द है।"

आखिर कल्याणी को देखने एक लड़का आया। उम्र उसकी कोई पच्चीस साल की होगी। ढाई सौ रुपया कमाता था। भाई के पांच बच्चों वाले परिवार का भी पालन-पोषण करने का भार उसी पर था। उसके भाई ने उसे पढ़ाया-लिखाया था। पिछले वर्ष ही बड़े भाई की मृत्य अचानक हो गई थी।

लड़के ने कल्याणी को देख लिया।

"अगर मुझे आपकी तरफ से कोई आर्थिक लाभ मिलने की गुंजाइश हो तो मुझे यह शादी मंजूर है। अगर मैं अमीर आदमी होता तो यह बात न कहता। पर मेरी घर की स्थिति अच्छी नहीं है, इसलिए मुझे यह प्रस्ताव आपके सामने रखना पड़ा।"--युवक प्रकाशम ने बिना किसी संकोच के श्वेताम्बरम से कहा।

"ठीक है, सोच कर उत्तर दूंगा।"--श्वेताम्बरम ने कहा।

प्रकाशम ने बाहर कदम रखा ही था कि गुणमणि बरस पड़ी--"कितना वाहियात आदमी है! मुंह के सामने कह दिया--मुझे पैसा चाहिए। कितना असभ्य है। ऐसे गंवार को अपनी लड़की कभी नहीं दूंगी। आपने कह क्यों नहीं दिया कि हमें यह रिश्ता मंजूर नहीं है?"

"कार्ड द्वारा सूचित कर देंगे। मुंह के सामने ऐसी बात कह देना सभ्यता थोड़े ही है?" --श्वेताम्बरम ने कहा।

"तो क्या आपके ख्याल में ऐसा लड़का हमें नहीं मिलेगा?" गुणमणि ने पूछा।

"मैं समझता हूं, इस लड़के में कोई बुराई भी तो नहीं है।"

"ऐसा आवारा लड़का मैंने कहीं नहीं देखा।"

"जिस बात पर गौर से सोचना पड़ता है, उस पर तुम गरम हो जाती हो। सुनो! इसका भाई हर महीने ढाई हजार रुपया कमाता था। अगर वह जिन्दा रहता तो तुम यों न कहतीं। झट से रिश्ता पक्का कर लेतीं।"

"आखिर वह तो अब जिन्दा नहीं है।"

श्वेताम्बरम जब किसी बात की उपयोगिता को सप्रमाण साबित करना चाहता, तो गुणमणि सुनने का नाम भी न लेती, उलटे बात को बिगाड़ देती। यह आए दिन की बात थी।

श्वेताम्बरम कुछ संभल गया।

"हम तो इतनी माथा-पच्ची कर रहे हैं, पहले कल्याणी से यह तो पूछ लेते कि आखिर उसे यह लड़का पसन्द है कि नहीं।" श्वेताम्बरम ने पत्नी से सुलह करने की आवाज में कहा।

कल्याणी वहीं थी।

"उसे तो पैसे का मोह है। ऐसा लड़का मुझे कतई पसन्द नहीं।" कल्याणी ने अपने मां-बाप की तरफ देखते हुए कहा।

श्वेताम्बरम की सहन-शक्ति पराकाष्ठा को पहुंच गई। उसने कहा--"मैं पूछता हूं, अगर वह पैसे के लिए शादी नहीं करता तो क्या तू समझती है कि वह तेरी सुन्दरता देख कर लट्टू हो जाएगा?"

"तो फिर आपने पूछी ही क्यों थी उसकी राय? पैसा देकर लड़का ठीक कर देते।" गुणमणि फिर बरस पड़ी।

दोनों में कुछ ऐसी ही बातें होती रहीं। थोड़ी देर तक सीता मां-बाप की खटपट सुनती रही।

"तो क्या अगर वह रिश्ता सीता के लिए आता तो आप मंजूर कर लेते?" गुणमणि ने अन्त में पूछा।

"ऐसी कोई बीमारी मुझे नहीं है। अब भी अगर सीता यह रिश्ता पसन्द कर ले, तो मुझे खुशी होगी।"--श्वेताम्बरम ने कहा।

"आपका बदन पसीने से तर हो जाएगा, अगर सीता भी इस रिश्ते को नापसन्द कर दे।"

श्वेताम्बरम नहीं चाहता था कि बातचीत का सिलसिला यों बढ़ता जाए। वह इस सम्बन्ध में कुछ कहने ही वाला था कि सीता ने वहां आकर कहा--"हां, क्यों नहीं, यह रिश्ता पसन्द करने में मुझे किसी तरह का एतराज नहीं है।" गुणमणि का मुंह खुला का खुला रह गया। सीता रुकी नहीं, कहती गई--"दीदी की शादी तक अगर वह महाशय रुक सकते हों, तो मेरी तरफ से कोई आपत्ति नहीं होगी उनके साथ शादी करने में। मेरी नजर में तो वह व्यक्ति असभ्य कदापि नहीं है जो अपने बड़े भाई के प्रति इतनी कृतज्ञता की भावना रखता है।"

सीता यह कह कर अन्दर चली गई। तीनों के तीनों एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। कोई कुछ नहीं बोला। एक सन्नाटा-सा छा गया।

अनुवादक--ए० एम० राव

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री जैनेन्द्रकुमार से भेंट

भीमसेन त्यागी

निश्चित कार्यक्रम के अनुसार एक दिन प्रातः मैं ८ बजे जैनेन्द्र जी के यहां पहुंचा तो वह किन्हीं सज्जन के साथ बातों में व्यस्त थे। कुछ देर बाद वह सज्जन चले गए, तो जैनेन्द्र जी ने मुझे सम्बोधित कर कहा --अच्छा, तो अब पूछना शुरू कीजिए ।

मैंने पहला प्रश्न किया--आपने लिखना कब आरम्भ किया ?

--सन् २७-२८ के आस-पास ।

--साहित्य में रुचि उत्पन्न होने के क्या-क्या कारण रहे ?

--बेरोजगारी, किसी भी अन्य कार्य की अपात्रता तथा दीक्षा का अभाव ।

--परिवार का वातावरण साहित्यिक दृष्टि से कसा था ? उस माध्यम से भी कुछ प्रेरणा मिली ?

--जाहिर तौर पर ऐसे कोई तत्व ज्ञात नहीं होते ।

--सबसे पहले आपने क्या लिखा ?

--कुछ गद्यकाव्य-सा था ।

--आपको सबसे अधिक सन्तोष अपनी कौन-सी रचना लिख कर हुआ ? अब तक की कृतियों में सर्वश्रेष्ठ किसे मानत हैं ?

--यह तो पाठक पर है ।

--अच्छा, आपने उपन्यास भी लिखे हैं और कहानियां भी। अपने को उपन्यासकार पहले मानते हैं या कहानीकार ?

--उपन्यास-कहानी बन भले ही गए हों, हम तो अपने को कुछ मानते नहीं ।

--आगे लिखने की आपकी योजना क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर जरा विस्तार से चाहूंगा ।

--योजना से कुछ बनता तो नहीं, क्योंकि 'परख' के बाद जो कुछ मन में था, वह अब तक नहीं लिखा गया ।

--उस 'कुछ' की रूपरेखा क्या थी ?

--रूपरेखा से हमारे उपन्यास बनते नहीं । भावतन्तु या विचार-तन्तु-सा था । 'आल जाल' नाम था । कबीर का एक पद है--

मोहे कहा पढ़ावत आल-जाल,
मोरी पटिया पै लिख देहु शिरी गुपाल ।
मैं जानूं रे बाबा राम नाम,
मो को और पढ़न सों नहीं काम ।

वहां से 'आल जाल' शब्द मन में आया और उस समय अनुभव हुआ कि दुनिया को 'वेनिटी फेयर' या 'रंगभूमि' मानना या 'मैंडिंग क्राउड' मानना उतना सही नहीं, जितना कि 'आल जाल' कहना है। लकिन 'आल जाल' नहीं लिखा जा सका ।

--'आल जाल' के न लिखे जा सकने के क्या कारण रहे ? क्या उससे अधिक अच्छी रचनाएं लिखे जाने के लिए सामने आती रहीं ?

--अच्छी तो नहीं, तात्कालिक चीजें सामने आ गईं। 'आल जाल' के विषय में धारणा यह थी कि १०००-१५०० तक पृष्ठ जा सकते हैं । मन्तव्य-विशेष अथवा विचार-विशेष का प्रतिपादन उसमें होगा नहीं । न ही कोई व्यूह-भेद होगा। जैसे चित्रपट होता है वैसे बस जीवनपट खुलता जाए ।

--आगे के प्रोग्राम में 'आल जाल' के अतिरिक्त और क्या है ?

--जिन्दगी किनारे लगी दीखती है, और उस पुस्तक का आभास तक नहीं ।

--शास्त्र तो कहते हैं--'जीवेम शरदः शतम्' और आप कह रहे हैं जिन्दगी किनारे लगी दीखती है ?

--हमारी जिन्दगी शास्त्रीय रही कब ? शास्त्रच्युत जिन्दगी रही हमारी तो ।

--अच्छा, 'आल जाल' के अतिरिक्त कुछ न कुछ तो आगे लिखने का मन होगा ही ?

--'दशार्क' उपन्यास लिखने की बात मुद्दत से बनी हुई है । कहानी यह है कि बहुत वर्ष हुए एक मित्र ने दस कहानियों के लिए अगाऊ पैसे भेज दिए । पैसे खत्म हो गए और कहानियां अब तक नहीं भेजी जा सकीं । 'दशार्क' का 'दश' शब्द वहां से आया है । सोचा कि एक ही चरित्र को लेकर दस विभिन्न चित्र उपस्थित कर दिए जाएं जो अपने में पूरे होकर भी अंततः एक पात्र के ही विविध पार्श्व हों । नाम के पिछले पद की ध्वनि है 'शार्क' ! शार्क भयानक मछली होती है, जो जीते आदमी को ही खा जाती है । सन्धि को तोड़ें तो होता है--दश-अर्क । अर्क किरण को भी कहते हैं । इससे कुल मिला कर इस पुस्तक का नाम 'दशार्क' स्थिर हो गया है । मेरी अपनी ओर से यह हमारे जीवन के विनिमय-मूल्य की समीक्षा और व्यंग के रूप में होगी । पर आगे भाग्य में क्षण कितने हैं--पता नहीं । कुछ और चीजें अधूरी हैं, जो उसी रूप में पत्रिकाओं में छपी भी थीं ।

--अधूरी रचनाओं में कौन-कौन-सी हैं ?

--एक का नाम 'अनाम स्वामी' है, दूसरी का 'एक प्रश्न', तीसरी का 'राजकुमार का देशाटन' ।

--ये सब उपन्यास ही हैं न ?

--जो कहो, न ढंग के उपन्यास, न कहानी ।

--और भी कुछ ?

--बातें मन में उठती रहती हैं, विलीन होती रहती हैं ।

--लिखने से पहले, लिखते समय और उसके पश्चात आप अपने को कैसी मानसिक स्थिति में पाते हैं ?--मैंने अगला प्रश्न किया ।

जैनेन्द्र जी ऐसे बोले जैसे अभी कोई रचना समाप्त की हो उन्होंने । --हां, लिखने के बाद थोड़ा अच्छा रहता है, जैसे सर से बला टली हो ।

--और लिखने से पहले ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—हां, लिखने से पहले ऐसा, जैसे सर पर बला बुलानी हो।

—तो लिखते-लिखते जरूर ऐसा लगता है, जैसे बला सिर पर सवार हो और टल रही हो ?

—लिखते-लिखते तो बहुत बुरी हालत होती है।

—बुरी हालत का नक्शा ?

—जैसे आरी से अपने को चीरा जा रहा हो। इससे मैं भरसक बचता ही रहता हूं। लिखना मेरे लिए बेबसी है। अन्दरूनी बेबसी नहीं, आजकल तो इस बेबसी को बाहर से आना पड़ता है। जैसे कोई सज्जन आकर डट ही जाएं और चारा न छोड़ें तो लाचार होना पड़ता है और छुटकारे के लिए लिखना पड़ता है। बाकी प्रमाद मुझे बहुत प्रिय है। इसके लिए दर्शन अपनाता हूं कि करना-धरना सब बेकार है, एक भगवान सब करते हैं।

—यह दर्शन निष्क्रियता उत्पन्न नहीं करता ?

—निष्क्रियता को समर्थन देने के लिए ही तो मैं दर्शन उत्पन्न करता हूं। यानी चुनौती के सामने 'उत्तिष्ठ' होने की मुझे आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि चुनौती के उत्तर में सामने दर्शन कर देता हूं। दर्शन सच ही बड़ी जबरदस्त ढाल है।

—इसे व्यक्तिगत दर्शन मानते हैं, या समाजगत दर्शन भी ?

—दर्शन तो सदा व्यक्तिगत होता है, यानी समाज-दर्शन भी।

—मेरा मतलब यह था कि इस दर्शन को आप केवल अपने पर लागू करना पसन्द करेंगे या सब पर ?

—सच पूछिए तो मैं अपने पर भी लागू करना पसन्द न करूंगा।

—अच्छा, यह बतलाइए कि हिन्दी अथवा हिन्दीतर भाषाओं के साहित्यिकों में से क्या आप किसी से प्रभावित हुए हैं ?

अप्रभावित तो मैं किसी से अपने को नहीं करता, फिर भी किसका प्रभाव कितना कहां पड़ा—यह मैं नहीं कह सकता।

—यानी कोई प्रभाव यदि है तो अप्रत्यक्ष है ?

—हां, इस बारे में मैं सम्मति नहीं दे सकता।

—कला की दृष्टि से आप विश्व कथा साहित्य में सबसे अधिक किसे पसन्द करते हैं।

—मेरे पास अलग-अलग दृष्टियां तो हैं नहीं। जैसे कला की एक, भाव की दूसरी। जैसे डास्टावेस्की और टालस्टाय मुझे अच्छे लगते हैं तो यह कहने में मुझे सार नहीं लगता कि कला की दृष्टि से मोपासां बढ़ कर है। दृष्टि मेरे पास है तो एक है, और सबके लिए है। नीति-विचार, कला-विचार, शिल्प-विचार सब वहां एकमेक हो जाता है।

—गोर्की के विषय में कुछ कहिए ?

—गोर्की मेरे मन के केन्द्र में हैं। उनकी रचनाएं तो अच्छी लगती ही हैं।

—और प्रेमचन्द के विषय में ?

—प्रेमचन्द के विषय में मैंने पहले लिखा ही है।

—हिन्दी के कथा साहित्य का भविष्य क्या है ?

—यथार्थवाद की प्रतिक्रिया आगे देखने में आ सकती है।

—किस रूप में होगी यह प्रतिक्रिया ?

—कुछ तो शुरू भी हो गई है।

—जो शुरू हो गई, उसके अंकुर कहां देखे जा सकते हैं ?

—यथार्थ की जैसे अति हो आई। विषम नहीं हम सम चाहते रहे हैं। यही स्वाभाविक है। कल्पना और आदर्श की उड़ान में वह सम भंग हो चला था। ऐसी रचना होती थी जो रंगीन दीखती थी पर भीतर से रीती और थोथी भी होती थी, जीवन-सत्व से हीन और हलकी। उस समय यथार्थ की प्रतिष्ठा का स्वर आवश्यक था। पर रेंगने लगने से धरती के साथ न्याय नहीं होता। यह तो ठीक है कि पैर धरती पर रहें पर सिर को भी धरती से लगाए रखने का आग्रह होगा तो मनुष्य सीधा खड़ा न हो सकेगा, वह कीड़ा बन जाएगा। तो यथार्थ के आग्रह में यह कुछ होने लग गया था। प्रकृतवाद का नाम देकर प्रगति की ओर से इसकी रोक-थाम करने की चेष्टा की गई, पर एकांगी आग्रह का तर्कयुक्त जो परिणाम सामने आना था, आए बिना न रहा। यथार्थवाद निम्न-गामी बन गया। प्रतिक्रिया का मतलब यही है कि अचरज नहीं अब स्वप्न-लोक की रचनाएं होने लग जाएं। ऐसे पात्र आएं जिनमें स्थूल शरीर कम, भाव शरीर विशेष हो। जो रचनाएं इधर देखने में आ रही हैं—पत्र-पत्रिकाओं में या नए प्रकाशन—उनमें इस आरम्भ के लक्षण देखे जा सकते हैं।

—आज की साहित्यिक गुटबन्दी के विषय में आपके क्या विचार हैं ? वह कैसे दूर हो सकती है ?

—हां !—दीर्घ श्वास लेकर जैनेन्द्र जी ने कहना शुरू किया—गुटबन्दी तो है, और एक तरह से यह अनिवार्य है। हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी तो अनेकानेक वे मार्ग भी खुले जिनके आगे लोभ था। लेकिन जो अटकेगा, वह रह जाएगा।

—नए लेखकों पर इस गुटबन्दी का क्या प्रभाव पड़ता है ?

—नए लेखकों पर निश्चय ही अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। पर जीवन सपाट दौड़ थोड़े ही है, 'हर्डल्स रेस' समझिए। नए लेखक के मार्ग में इस तरह के हर्डल्स आते हैं तो यह कहने का अवसर कहां है कि ये अड़चनें और बाधाएं हमारे मार्ग में उपस्थित क्यों की गईं ? पार करने में ही उनकी सार्थकता है।

—'कला कला के लिए, कला जीवन के लिए, या फिर जीवन ही कला के लिए' में से आपकी आस्था किसमें है ?

—यह तो इस पर निर्भर करता है कि कोई कला का मतलब क्या लेता है ? कला—मेरे निकट साधन है। यों सूक्ष्म विचार करने पर साधन साध्य से भिन्न नहीं रह जाता। इस दृष्टि से कला को स्वयं साध्य मान कर कोई चले तो हर्ज नहीं है। लेकिन अन्त में साधन साध्य से सतत अनुप्राणित रहे तभी साधन को वह गौरव मिलता है। अन्यथा साधन के समर्थन के लिए हमेशा साध्य की अपेक्षा आवश्यक होती है। कला के साध्य के रूप में 'जीवन' से अधिक मैं 'जीवन-स्रोत' या 'जीवन-सत्य' रखना चाहूंगा। इन दोनों को अपनी भाषा में मैं ईश्वर कहता हूं। अर्थात सब कुछ परमेश्वर में से और उस के लिए है। जो तन्मुख और तन्निमित्त नहीं है, वह कला हो, कुछ हो, मेरे लिए मूल्यहीन है। भगवान से अलग समर्थन मैं कहीं और नहीं देख पाता। अर्थात भगवान से निरपेक्ष होकर बात करें तो 'कला कला के लिए' यह पद मुझे अग्राह्य नहीं है। जो है सब अनन्त सच्चिदानन्द के प्रति अर्घ्य है। अर्थात सच्चिदानन्द के अतिरिक्त वह स्वयं-साध्य स्वयं-समर्थित तत्व है। आनन्द में से सृष्टि जिसकी वही तो कला है ?

—अभी आपने कहा—'कला के साध्य के रूप में मैं जीवन-स्रोत अथवा 'जीवन-सत्य' को रखना चाहूंगा। इन दोनों को मैं अपनी भाषा में ईश्वर कहता हूं।—आपके इस कथन को सुन कर मुझे याद हो आया कि एक बार टालस्टाय और गोर्की में हुआ पत्र-व्यवहार पढ़ा था। उसमें टालस्टाय—सत्य को ही मैं ईश्वर कहता हूं—लिखते हैं, गोर्की इसका विरोध इस तर्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर करते हैं कि आप सत्य को सत्य ही क्यों नहीं कहते ? इसमें क्या आपत्ति है ? सत्य को ईश्वर कहने से जनसाधारण में अनेक भ्रांतियां फैलती हैं। तो यही गोर्की वाला प्रश्न मैं आपसे करना चाहता हूं--आप जीवन-स्रोत अथवा जीवन-सत्य को ईश्वर का नाम देते हैं, सूक्ष्म दृष्टि से देखते हुए यह उतना बुरा नहीं है, किन्तु अशिक्षित जनसाधारण इस सूक्ष्म स्तर पर ईश्वर की रूप-रेखा अपने मन में स्थिर नहीं कर सकता। विचारक लोग ईश्वर में विश्वास करते हैं। इस आधार पर वह आपके ईश्वर के विकृत रूप पत्थरों और मूर्तियों में विश्वास करने लगता है, जिसे सम्भवतः आप भी पसन्द न करते होंगे।

--मेरा ख्याल है, अब प्रश्न स्पष्ट है ?

--हां, स्पष्ट है। वास्तव में सत्य के प्रति सम्बन्ध जब रागात्मक, भावनात्मक और घनिष्ठ होता है, तब हम उसको व्यक्तित्व प्रदान कर देते हैं। सत्य के प्रति जिज्ञासा है, किन्तु सत्येश्वर के प्रति प्रार्थना भी हो सकती है। सत्य यदि एकाग्र रूप से हमारे लिए उपास्य और आराध्य बनता है तब मानो अपनी ही लगन से हम उस अरूप को रूप, निर्गुण को गुण और निराकार को आकार दे देते हैं। इससे उसकी महिमा खंडित नहीं होती, केवल निकटतम आत्मीयता सम्पादित होती है। अपढ़ भी भगवान के उस सत्य से अपना नाता पैदा कर सकता है। यह सुविधा मेरी दृष्टि से ईश्वर के पक्ष में ही है, विपक्ष में नहीं। क्या हम सत्य को साक्षरों का सर्वाधिकार-सुरक्षित-सत्व बना देना चाहते हैं ? जब हम उसे ईश्वर कहते हैं तो मानो घोषित करते हैं कि यदि दुर्लभ है तो नितान्त दुर्लभ है, अन्यथा सबको एक-सा सहज सुलभ है। बुद्धि द्वारा जब कि उसका पार नहीं खोजा जा सकता, तब हृदय में हर कोई उसे ढूंढ़ और पा सकता है।

--सम्पादकों से आपके सम्बन्ध कैसे रहे हैं ? उनके प्रति आपकी क्या धारणा है ?

--मेरे सम्बन्ध सम्पादकों से अमधुर बनने ही नहीं पाए। मैंने अधिक लिखा ही नहीं कि सम्पादक के पास मुझे प्रार्थी होकर ठहरना पड़ता। शुरू में कुछ रचनाएं वापस आईं, लेकिन उस समय मेरे मन में यह आया ही नहीं कि ऐसा सम्बन्धों की न्यूनता या विषमता के कारण हो सकता है। मैंने तो कुपात्रता का कारण अपने में और रचना में ही माना। इससे मेरा नुकसान नहीं हुआ। अब मैं अनुभव करता हूं कि सम्पादक से सम्बन्ध सही और स्निग्ध रखना लेखक के लिए आवश्यक और हितकर है। सम्पादक की अपनी रुचि और सम्मति होगी ही--वह आपसे भिन्न हो, यह भी आवश्यक है। अब आप उस मनोवृत्ति के प्रति अन्तर रखते हुए या तो आदर का भाव रख सकते हैं या अवहेलना भी रख सकते हैं। सहसा अपने प्रति आत्मविश्वास के साथ दूसरे के निर्णय के प्रति आदर भाव रखना कठिन जान पड़ता है, और लेखक को यह कठिन साधना करनी ही होगी। परिस्थितियों से हम झगड़ नहीं सकते, उन्हें नम्र भाव से स्वीकार करके ही उनसे ऊंचे जाने का अवसर आ सकता है। बाजार की दर जो है, सो है। एक रोज अगर हम उस दर को बदलना चाहते हैं तो वह बाजार से मुंह मोड़ने से नहीं होगा। बल्कि उसको अंगीकार करते समय आदमी अपना मूल्य जो चाहे लगाए, पर जो मूल्य दूसरे लगाते हैं, उसको समझना और सीखना होगा।

--जी, और इसमें ऐसी सम्भावनाएं भी तो हैं कि हम अपने को 'ओवर एस्टीमेट' कर रहे हों ?

--हां, और यह भी हो सकता है कि आप स्वयं को 'ओवर एस्टीमेट' न कर रहे हों और आने वाला कल इसी प्रतीक्षा में हो कि देखें आपमें कितनी प्रतिभा है ? लेकिन आज जो आपका मूल्य दूसरे तय करते हैं, उसे न स्वीकार कर रोष मानने से आपकी ही हानि है। चल नहीं पाएंगे आप ऐसे।

--क्या आप समझते हैं कि साहित्यकार को केवल साहित्यकार ही होना चाहिए अथवा कोई दूसरा व्यवसाय भी करना चाहिए ? क्या आप समझते हैं कि हिन्दी में ऐसा वातावरण बन गया है कि साहित्यकार केवल साहित्यकार रह कर ही जीवन-यापन कर सकें ?

--जीवन-यापन ? यानी जीविकार्जन--इसके लिए मेरा विचार है कि कलम पर जीविका का बोझ न डाला जाए तो अच्छा है। इसमें दो लाभ हैं--एक तो सम्पादक और प्रकाशक के साथ की सौदेबाजी और खींचतान से लेखक बचा रहता है और सम्बन्ध मीठे रहते हैं, दूसरे--लिखना भी हार्दिक रहता है, व्यवसायी नहीं बनता। लेकिन फिर प्रश्न रहता है कि काम तो लिख कर कलम से करे, फिर दाम किस दूसरे साधन से पाए ? तो इस बारे में मैं अपनी ओर से कुछ भी नहीं कहना चाहता। कमाई के असंख्य उपाय हैं--कुछ वैध कहलाते हैं, कुछ अवैध। वैध-अवैध के बीच की लकीर कोई सख्त और पक्की नहीं है। नए-नए कानून बनते रहते हैं और उस लकीर को थोड़ा-बहुत इधर-उधर करते रहते हैं। मैं इस सम्बन्ध में यहां तक मौन-तटस्थ रहना पसन्द करूंगा कि वैध-अवैध की बात भी न करूं। भीख आज वैध नहीं मानी जाती, पर वाल्मीकि और तुलसी ने अपनी समस्या उसी तरह निबटाई थी। गांधी साहित्य इतना चलता है, और यह साहित्य तब बना जब बैरिस्ट्री उन्होंने छोड़ दी, अर्थात वे लिखते रहे और परान्न-जीवी होने से नहीं शरमाए। असल में जीविका का प्रश्न कितना भी जरूरी समझा जाए, है वह कृत्रिम। जहां जरा-से इशारे से करोड़ों की कमाई हो जाए और तन-तोड़ मेहनत से पेट जितना न जुटे वहां जीविका के सवाल को बनावटी न कहें तो क्या कहें ? इसलिए लेखक से जैसे बने, वह वैसे ही पेट के सवाल का हल निकाल ले। 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' वाली बात गलत हो सकती है, लेकिन जहां घी नहीं पीना, कलम चलाना है, वहां मैं उसे उतना गलत नहीं मानता। एक वर्ग है-- सर्वहारा। मेरा बस चले तो मैं सलाह दूं कि लखक उस वर्ग का बन जाए, यानी वह कि जिसका ठौर-ठिकाना नहीं, वृत्ति उसकी आकाशी हो। हर घर क्यों न उसके लिए अपना घर हो जाए ? पहले यह आकाशी-धर्म गेरुए कपड़े वालों का माना जाता था, लेकिन आज मैं नहीं समझता कि रंगा लिबास जरूरी है। पर इस आकाशी धर्म के महत्व को मानता हूं। वैसे लेखक होंगे तो साहित्य उठेगा और वह राजनीति का बंधुआ न होकर उसे दृष्टि देगा और आवश्यकता पड़ने पर उसे लगाम भी देगा। राज्य और समाज की धुरी माने जाने वाले लोगों का षड्यन्त्र है कि जीविका का सवाल सीधा-सादा नहीं रह गया है, बल्कि पेचीदा हो गया है। इसलिए उस कृत्रिम सवाल के जितने हल होंगे, वे कृत्रिमता से अछूते न होंगे। संक्षेप यह कि लेखक हार्दिक होकर जिए और हार्दिक भाव से लिखे।

--साहित्यकार के लिए राज्याश्रय ग्रहण करना उचित अथवा अनुचित है ? यदि उचित है तो सीमाएं क्या हों उसकी ?

--आश्रय ! आश्रय शब्द लेखक को प्रिय नहीं होगा। वह भाव लेखनी के तेज को हर सकता है। यों व्यक्ति के नाते राज्य से वह सम्बन्ध बनाए, चाहे इस सम्बन्ध में उसकी ओर से श्रम जाए और राज्य की ओर से पैसा आए, तो इसमें हर्ज नहीं है। पर आश्रित का भाव उसमें आया कि उसका दबाव हार्दिकता पर पड़े बिना न रहेगा और उसके तेज की हानि होगी। राज्य सावरेन है, तो व्यक्ति भी अपनी जगह सावरेन है। कोई कारण

(शेष पृष्ठ २५ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुट्टी का एक दिन

नगेन्द्र भट्टाचार्य

९ अगस्त को अलस्सुबह उठ गया था। कार्यक्रम यह था कि थोड़ा-बहुत नाश्ता करके और नहा-धोकर जल्दी से निकल पड़ेंगे। आज इन लोगों का कोई एयर डिस्प्ले था। कुछ दिनों से दीवारों पर तरह-तरह के रंगीन विज्ञापन दिखाई पड़ रहे थे। लोग तरह-तरह की कल्पना कर रहे थे। कल रात को बोरिस और हेनरीयता बार-बार यह कह गए थे कि देर न हो, इतनी भीड़ होगी कि कोई भी गाड़ी, यहां तक कि देश के बाहर से आए हुए अतिथियों की गाड़ी भी किसी तरह उसे पार करके आगे नहीं निकल सकती। दादा ने डिनर की मेज पर बहुत जोर का हुक्म तामील करवाया कि जो लोग ठीक समय पर तैयार न हो सकेंगे, वे छोड़ दिए जाएंगे और किसी प्रकार की कोई रियायत नहीं होगी।

सवेरे नींद खुलते ही जंगले से बाहर देखा, तो मालूम हुआ कि आसमान बादलों से ढका हुआ है और झींसी पड़ रही है। चारों तरफ की हवा में एक नमी-सी थी। हम समझ गए कि आज तो डिस्प्ले की कोई बात नहीं उठने की, फिर भी हम तैयार हो गए। नीचे उतरा तो मालूम हुआ कि नाश्ते की कोई जल्दी नहीं हो रही है। दादा के कमरे में पहुंचा तो देखा कि वे गुसल करने को तैयार हो रहे हैं। बोले कि बोरिस ने टेलीफोन से बताया है कि मौसम बिगड़ जाने के कारण आज के लिए डिस्प्ले बन्द कर दिया गया। यही बात रेडियो में भी कही गई थी। मैंने हेब्बर और हरकिशन को खबर दी, फिर अपने कमरे में आ गया। कमल सुन कर बोले--वाह यह खूब रहा। सवेरे-सवेरे चिल्ला कर नींद खराब की। अभी अंधेरा ही था कि हाय-हाय मच गई। मैं छोड़ने वाला नहीं हूं। एयर डिस्प्ले भले ही न हो, तुम्हें उस गीले मैदान में आसमान की तरफ घूरते हुए खड़े रहना पड़ेगा।

मैंने कहा--भई नाराज क्यों होते हो, बिस्तरा तो लगा ही है, अब जाकर बाकी नींद पूरी कर लो।

मैं बैठने के कमरे में जाकर लिखने की मेज पर जम गया। कई दिनों से रोजनामचा नहीं लिखा था। नोट बुक से तारीख मिला-मिला कर मैंने लिखना शुरू किया। कितनी देर तक लिखता रहा पता नहीं। एकाएक दरवाजे पर दस्तक आई--क्या मैं आ सकती हूं।

दरवाजे पर हेनरीयता का कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा। मैंने सिर बिना उठाए ही कहा--जरूर-जरूर, दरवाजा खुला है।

हेनरीयता आकर बोली--मैं खाने के कमरे में गई तो वहां देखती क्या हूं कि बोरिस, तानिया और मातिलदा मेज पर बैठे हैं और माननीय अतिथियों का पता नहीं है। इसीलिए मैं पता लेने के लिए आई कि आज कहीं जाना-वाना है या नहीं।

मैंने कहा--आज कहीं जाने की विशेष इच्छा नहीं है। सवेरे से नहाना-धोना खत्म करके तैयार बैठे हैं और इधर आसमान में थोड़े-से बादल आ गए और हवाई व्यायाम बन्द हो गया। तुम्हारे फौजी जवान कैसे हैं? देखो तो बाहर बादल फट रहा है और रोशनी हो रही है।

सचमुच इस समय बादल और कोहरा हट गए थे और मीठी रोशनी की एक झलक सामने की गीली सड़क पर झिलमिला रही थी।

हेनरीयता का कण्ठ-स्वर सुन कर कमल उमरखैयामी ढंग से ढीले पैजामे पर ड्रेसिंग गाउन पहन कर आंख मलते-मलते बगल के कमरे में आ धमके। हेनरीयता बोली--मिस्टर सेन, आप अभी तक सो रहे थे!

कमल बोले--सो कहां पाए? आधी रात से तुम्हारे भाई साहब ने वह ऊधम जोता, वह ऊधम जोता कि होटल के सब लोग जग कर ताण्डव नृत्य करने नहीं लगे, यही आश्चर्य है।

मैंने कहा--देखो गैनू! तुम्हारे निरीह दादा पर सेन साहब कितने नाराज हो रहे थे!

वे इसी तरह बातचीत करने लगे। इस बीच में मैंने, दादा हेब्बर और हरकिशन को बता दिया कि खाने की मेज पर प्रतीक्षा करती हुई बोरिस कम्पनी से हेनरीयता ने किस प्रकार हम लोगों पर चढ़ाई कर दी है।

रूस में जाने के बाद हम लोगों में से किसी-किसी का नाम काफी बदल गया था। अंग्रेजी 'ह' रूस में 'ग' हो जाता है। इसलिए अंग्रेजी में लिखे हुए 'भट्टाचार्य' के 'एच' के स्थान पर 'ग' जुड़ जाने के कारण मेरा नाम 'वग्टाचार्या' हो गया था और 'हेब्बर' और 'हरकिशन' बदल

रसायन विभाग के विद्यार्थी

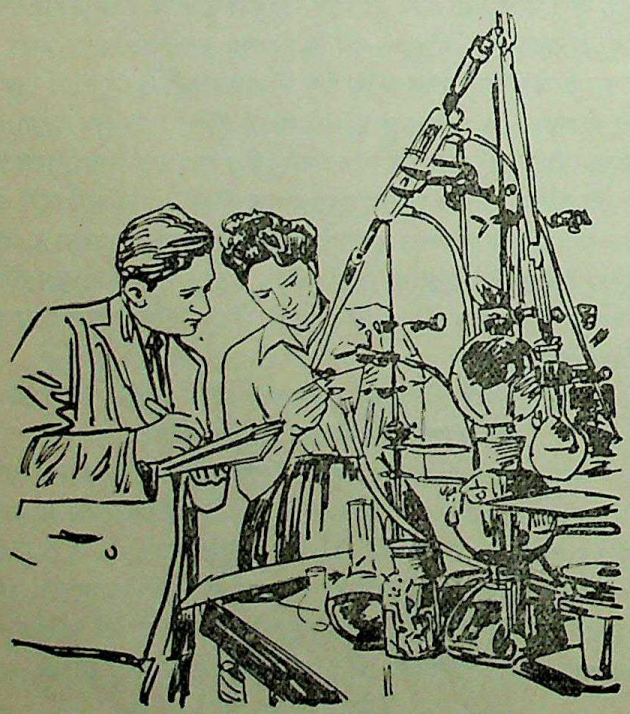

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सीधे-सीधे 'गेब्बर' और 'गरकिशन' हो गए थे। हिनरीयता को रूसी में गेनरीयता कहते हैं, जिसका संक्षिप्त रूप है 'गेना'। पर जिस दिन से उसने मुझे बड़ा भाई माना था, उस दिन से मैंने उसे बंगाली ढंग पर गेनू बना दिया था। एक दिन ऐसा हुआ कि हम रास्ते में चले जा रहे थे, तब उसने मुझसे कहा था--मेरा और कोई भाई बहन नहीं है, तुम मेरे बड़े भाई हो। मैं सोचूंगी कि भारतवर्ष में मेरा एक बड़ा भाई है। 'ह' और 'ग' के इस विभ्राट को विभीषका का रूप देते हुए हम लोग अक्सर आपस में यह कहा करते थे कि गरकिशन के लिए गोमियोपैथिक दवा लाने के लिए गेनरीयता गट गट करके गमन करती भई, वहां से उसे गिमालय की गिरफ्त में भेजा गया है ताकि गेब्बर के साथ भेंट हो।

जब हम लोग कीव पहुंचे तो मालूम हुआ कि वहां और भी गड़बड़झाला है। साधारण लोग गोर्की को होर्की कहते हैं। यह कुछ-कुछ उसी तरह हुआ जैसे 'लखनऊ' को 'नखलऊ' और 'मतलब' को 'मतवल' कहते हैं। गेनु या गेनरीयता गोर्की मार्ग की रहने वाली थी, इसलिए कीव से लौट कर उसे यह नई पदवी दी गई--होर्की मार्ग की गेनरीयता। हम सब लोगों के नाम इसी तरह विगाड़ कर बोले जाते थे, केवल दलपति वरदा उकील उर्फ दादा और कमल सेन इस उच्चारण विभ्राट से बचे रहे। पर रूस बहुत बड़ा देश है। वे भी अन्त तक इससे नहीं बचे। एक दिन हम लोग कीव में मोटर पर दूर की सैर में निकले थे। एकाएक किसी ने बातचीत करते हुए यूं ही कह दिया वरदा उकील। इतना कहना था कि ड्राइवर हंस कर लोटपोट हो गया। वह बार-बार कहता था--'वरदा वरदा' और हंसता जाता था। मैंने उससे कहा--वरदा हुआ, तो क्या हुआ?

वह चलती हुई गाड़ी का स्टेयरिंग छोड़ कर अपने चेहरे के दोनों तरफ लम्बी दाढ़ी का इशारा बनाते हुए हंसने लगा। बात यह है कि युक्रेन प्रांत की भाषा में वरदा के माने लम्बी दाढ़ी है। उसको यही आश्चर्य हो रहा था कि किसी का नाम लम्बी दाढ़ी भी हो सकता है। दादा ने सुनकर इस मुसीबत से अपना बचाव करने के लिए अपने नाम का अंग्रेजी उच्चारण करते हुए कहा कि मेरा नाम तो 'वाराडा' है। उसी समय आंख के सामने मित्रवर देवेन्द्र सत्यार्थी का चेहरा झलक गया। युक्रेन में सत्यार्थी जी का नाम वरदा होता तो बहुत सार्थक रहता!

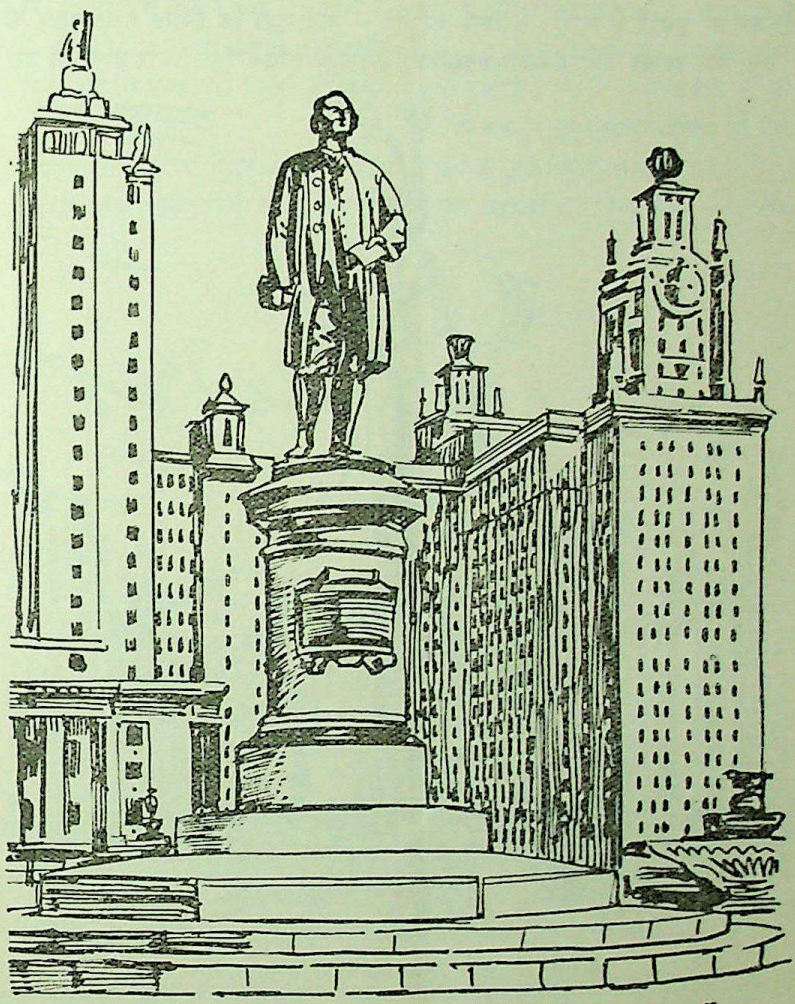

मास्को विश्वविद्यालय के संस्थापक मिखेल लोमोनोसोव की प्रस्तर-मूर्ति

इसके बाद हम लोग खाने की मेज पर एकत्र हुए। बोरिस और दूसरी महिलाओं के साथ-साथ मिलाने और सुप्रभात कहने के बाद हम लोग मेज की चारों ओर अपनी-अपनी जगह बैठ गए। रोटी, मक्खन, जैम, जेली, विख्यात रूसी सलाद, नाना रूप में अण्डे उबले हुए, आमलेट, पोच, जैसे जिसे पसन्द आएं, उबली हुई सूजी या सुल्की, कभी गरम दूध में मिला कर और कभी 'रिश्काशा' यानी नरम भात और दही के साथ मिला कर, तरह-तरह के बिस्कुट, केक, चाय, कोको, कहवा--जैसी जिसकी रुचि हो। और साथ ही में तरह-तरह के फल, नाशपाती, सेब या अंगूर कभी-कभी केला या अनानास भी रहता था। शेषोक्त दोनों फल रूस के बाहर से आते हैं। मेज पर 'आशा या गैला' खाने की तश्तरी में सामने आते ही हम कहते थे--'पापालम' यानी खाने की चीज को आधी कर लीजिए। उनकी तरफ से बराबर यह शिकायत बनी रहती थी कि हम लोग कुछ खाते ही नहीं और हम लोगों को यह फिक्र खाए जा रही थी कि तोंद पर एक केबाद एक परत पड़ती जा रही है। देश में किस प्रकार का चेहरा लेकर लौटेंगे, यह सोचकर सिहर उठते थे।

तानिया ने एक बड़ा-सा सेब लेकर मुझसे कहा--'पापालम' यानी इसका आधा नोश फरमाइए। दादा ने हंस कर कहा--प्रस्ताव खतरनाक है। बेचारे आदम को एक बार हव्वा के साथ सेब बांट कर खाने के कारण स्वर्ग छोड़ कर जाना पड़ा था। अब जो तुम्हारे मन में आए सो करो।

तानिया के हाथ से सेब का आधा लेकर खाते हुए मैंने कहा कि सेब वाली कहानी बिल्कुल मनगढ़न्त है। असली घटना मुझे मालूम है। ऐसा मैंने विरंचि बाबा की तरह अधखुली आंखों से कहा। इस पर हेब्बर ने पूछा कि मामला क्या है? बताओ।

मैंने कहा--घटना इस प्रकार है। तब ईश्वर ने प्रथम उत्साह में आकर रात और दिन के दो कर दिए। उन्होंने जल और स्थल की सृष्टि की। उन दिनों उनके दिमाग में सृजन के तरह-तरह के ख्याल बुदबुदा रहे थे। तब उन्होंने एक कन्या की सृष्टि की। उन्हें अपना यह नया सृजन बहुत पसन्द आया। एक निपुण कलाकार की भांति उन्होंने उसे लौटा-पौटा कर तरह-तरह से देखा। इसके बाद उन्होंने एक ही फूंक से जीवन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संचार कर दिया। तब वह कन्या आँख उघाड़ कर देखने लगी। इसके बाद उसमें वाणी आई, तब वह तरह-तरह के प्रश्न करने लगी। यह क्या है, वह क्या है, इसे कैसे बनाया, उसे कैसे बनाया ? सृजन की जरूरत क्या है ? इत्यादि। इसके बाद तरह-तरह की फरमाइश शुरू हुई। यह लाओ, वह लाओ, यह तोड़ दो, यह कर दो। पहले पहल करुणा-निधान भगवान को यह बातें पसन्द आईं। वह कन्या उनकी पीठ से लग कर तरह-तरह की बतकही करती थी। भगवान के एकान्त जीवन में इस प्रकार एक नए रस का संचार हुआ पर एक दिन उन्हें थोड़ा-सा सोचने का मौका मिला, तो उन्होंने यह महसूस किया कि यह नई सृष्टि उनके कार्य में बहुत बाधा पहुंचा रही है। पहले-पहल वे उसे अनेक प्रकार के खेलों में लगा कर अपने काम में जुट जाते थे, पर वह फिर आकर वही बकबक-भकझक शुरू कर देती थी। इस पर भगवान के काम में बड़ा हर्ज होता था। तब भगवान ने दिमाग पर बहुत जोर डाल कर एक पुरुष की सृष्टि की; यह भी बहुत जबरदस्त कृति रही।

उन्होंने कहा, चलो छुट्टी मिली। ये लोग आपस में बतकही करेंगे, घूमेंगे और वे चुपचाप अपनी प्रयोगशाला में काम कर सकेंगे। पर वहां कुछ और ही नजारा पेश आया। उनकी प्रयोगशाला के इर्द-गिर्द वे कभी एक-दूसरे से प्रेम जताते तो कभी लड़ पड़ते। कन्या तो जैसे बोलने की मशीन थी। हर समय बक-बक लगाए रहती थी और उसकी कोई न कोई बात भगवान के कान में आ ही जाती थी, जिससे उनका मन उचट जाता था। जब यह हालत बहुत दिनों तक चलती रही, तब भगवान ने कन्या को बुलाया और उसे समझाया कि वाक् संयम करना चाहिए और साधना के जीवन में मौन का बड़ा महत्व है। इस तरह उन्होंने बहुत भारी उपदेश दे डाला। पर प्रयोगशाला के अन्दर से निकलते ही कन्या इस तरह हंसने लगी कि बाढ़-सी आ गई। और सब लोग चौकन्ने हो गए। इस पर भगवान को बड़ा क्रोध आया और वे बोले--गेट आउट, अभी निकलो। मेरे स्वर्ग राज्य में तुम्हारा स्थान नहीं है।

इस पर भी उस लड़की को कुछ डर नहीं लगा और उसने जीभ निकाल कर मुँह बना कर भगवान से विदाई ली। एकाएक भगवान ने देखा कि पुरुष भी उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। पुरुष स्वभाव से शान्त और शिष्ट था। भगवान के मन में उसके प्रति अच्छी-खासी ममता थी। विशेषकर उन पर इस बात का बहुत प्रभाव पड़ा था कि वह किस प्रकार मुँह पर ताला लगाए स्त्री के अत्याचारों को सहन करता है। उन्होंने पुकार कर कहा--अरे ! मैंने तुम्हें जाने के लिए थोड़े ही कहा है ! तुम रह सकते हो।

पुरुष ने परम पिता से कहा--हे प्रभु, जब वह जा रही है, तो उसके साथ मुझे भी जाने की अनुमति दीजिए। मैं उसे छोड़ कर इस बीहड़ में अकेला नहीं रह सकता।

भगवान ने कहा--तो जाओ। तुम्हारे भाग्य में बहुत-से कष्ट लिखे हैं।

भगवान ने इस प्रथम नर-नारी के जोड़े को स्वर्ग राज्य से निकल कर क्षितिज में लुप्त होते हुए देखा और उन्होंने गहरी सांस ली, फिर वे अपने सृजन कार्य में जुट गए।

मैंने कहा कि शैतान ने जानबूझ कर फल हव्वा को देकर उसे अपनी तरफ आकर्षित किया और हव्वा ने उस सेब को आदम के साथ 'पापालम' करके बांट कर खा लिया और इस प्रकार उसे कहीं का नहीं रखा। यह कहानी पुरोहितों की मनगढ़न्त कहानी है। असली बात यों है कि भगवान ने स्त्रियों की बकबक से क्रुद्ध होकर उन्हें स्वर्ग से निकाल बाहर किया और पुरुष अपनी इच्छा से अपनी प्रेमपात्री का साथ देने के लिए चला आया। वह उसके लिए घर बनाने के उद्देश्य से खाद्य का संग्रह करता रहा। आज भी दोनों का रंग-ढंग तथा कार्य-कलाप बिल्कुल उसी प्रकार का बना हुआ है।

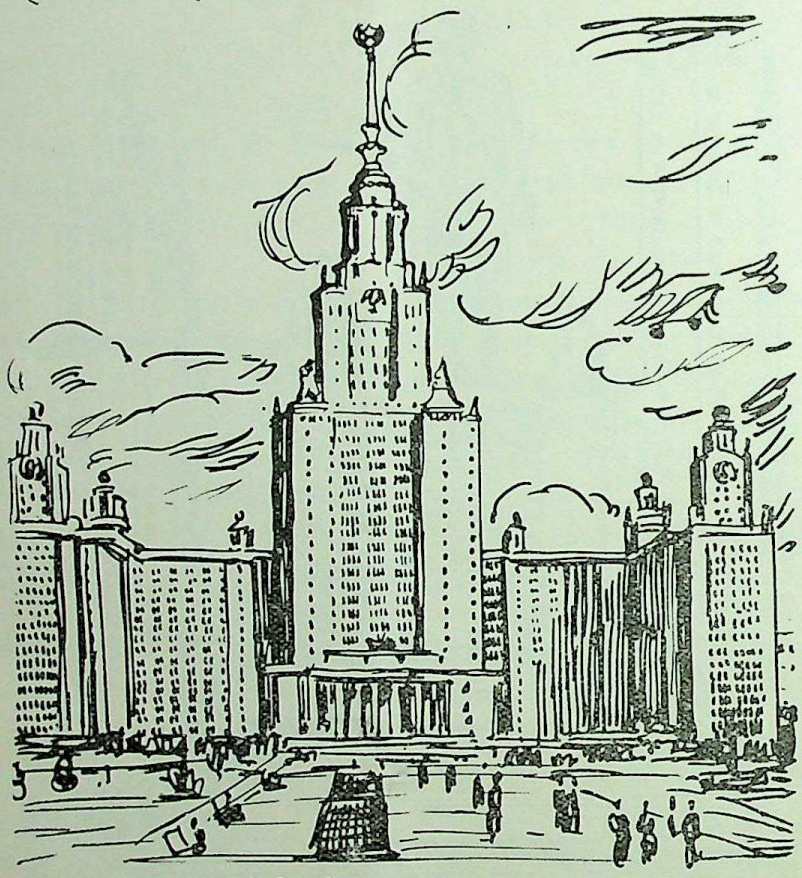

मास्को विश्वविद्यालय का नया मुख्य भवन

मेरी यह कहानी सुन कर जितने पुरुष थे, वे सब हंस पड़े और स्त्रियां बहुत नाराज हुईं। वे यह मानने के लिए तैयार नहीं थीं कि वे बातूनी हैं, इसीलिए उन्हें स्वर्ग से निकाला गया। तो अच्छी बात है, आज से हम लोगों ने बातचीत बन्द कर दी। इस पर मैंने आजिजी के साथ कहा--मेरी लक्ष्मी, ऐसी बात कभी न करना। जो तुम लोगों ने बातचीत बन्द कर दी, तो हम लोग बहरे और गूंगे हो जाएँगे, इसके अलावा हम भगवान की तरह उस प्रकार के कठोर उपादान से बने नहीं हैं। तुम लोगों की बातें सुनने के लिए हम लोगों ने जानबूझ कर शहादत अपनाई है, इसलिए हम पर इस तरह निर्दय होना तुम्हें नहीं फबता।

जब खाना खत्म हो गया तो बोरिस ने बताया कि मौसम खराब होने के कारण वायुयानों के व्यायाम का कार्यक्रम बन्द हो गया, इसलिए आप जो कुछ भी करना चाहें, हम उस पर राजी हैं। अगर चाहें तो आप लोग आज सवेरे घूमने जा सकते हैं।

दादा बोले कि उन्हें बहुत-सी जरूरी चिट्ठियाँ लिखनी हैं और लंच के बाद उन्हें मिस्टर मेनन से मुलाकात करने के लिए जाना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए आज दिन भर की छुट्टी थी। एक बड़ी जिम गाड़ी में खाना और मिनरल वाटर की बोतलें भर कर हम चार आदमी बोरिस और हेनरीयता के साथ सैर के लिए निकल पड़े। गाड़ी चालू होते ही हर मोड़ पर जिसकी तबीयत आती रही ड्राइवर को दाहिने या बाएं बताता रहा। इस प्रकार बिल्कुल अज्ञात-अपरिचित रास्ते में कतई लक्ष्यहीन ढंग से घूमते रहे। इस प्रकार ऐंड़े-बेंड़े चल कर जब ड्राइवर और हम लोग सबके सब ऊब चुके थे, तब हमने देखा कि गाड़ी एक चौड़ी सीधी सड़क पर चल रही थी। पूछने पर पता लगा कि इस सड़क का नाम पैरागफ मार्ग है। पैरागफ उन्नीसवीं सदी के एक मशहूर चिकित्सक थे, उन्हीं के नाम पर यह सड़क थी। इस मार्ग के दोनों किनारे जो बड़े-बड़े महल थे, वे पुराने जमाने के ड्यूकों के महल थे, पर अब इन्हें विभिन्न रोगों की चिकित्सा के लिए बड़े-बड़े अस्पताल बना दिया गया है।

इस बीच में सभी इस बात पर एकमत हो गए कि विश्वविद्यालय की तरफ चला जाए, इसलिए गाड़ी विश्वविद्यालय की चरफ चली। सारे इलाके को फिर से बनाया जा रहा था। इधर जो दलदल थे, उन्हें पाट करके नई-नई सड़कें, पार्क इत्यादि बन रहे थे। रास्ते के दोनों किनारों पर समान ऊंचाई के पेड़ों की कतारें थीं। पीठ पर झोला लटकाए हुए साइकलों पर लड़के और लड़कियां जा रही थीं। शायद दिन भर के लिए पिकनिक करने जा रही हों। दाहिनी तरफ मस्कवा नदी है और उसके किनारे से एक टीला बिल्कुल सीधे उठ गया था, जिसे सोवियत सरकार ने लेनिन पर्वत का नाम दिया है। बाई तरफ मास्को विश्वविद्यालय की नई इमारत है।

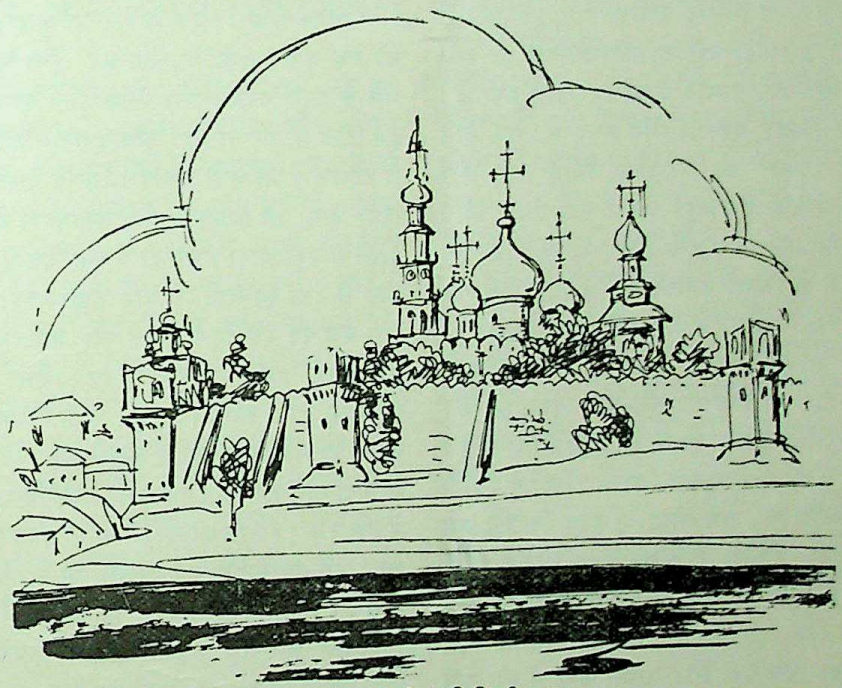

मास्को का नोवो-दिविची मठ

इस इमारत को सोवियत स्थापत्य शिल्प का एक विशिष्ट निदर्शन कहा जा सकता है। यह इमारत ७२० फुट ऊंची है और इसमें ३६ मंजिलें हैं। यूराल और काकेशस इलाके से लाए गए तरह-तरह के सुन्दर पत्थरों से यह इमारत बनी है। इस समय विश्वविद्यालय गर्मियों के कारण बन्द था, सितम्बर में खुलने वाला था, इसलिए हम लोग बाहर से ही इमारत और उसके सामने के बाग को देख कर लौट आए। बाद को जब हम कीव से लौटे, तब हम फिर विश्वविद्यालय देखने गए थे। भीतर जाने पर मालूम हुआ कि चारों तरफ बहुत सुन्दर सजावट है, तरह-तरह की मूर्तियां और मोजाइक यत्र-तत्र शोभायमान हैं। एक जगह पर देखा कि रूस के विशिष्ट वैज्ञानिकों की मूर्तियां कतार में रखी हुई हैं। पावलोव, दुकवस्की, मेन्दलीफ, मिचुरिन आदि वहां मौजूद थे। दूसरी तरफ देखा कि साहित्यकारों की निजामी, रुस्तावेली, लेरेमेन्ताफ, विनिस्की, नेकरासाफ, ताल्स्ताय, गोर्की और पुश्किन की मूर्तियाँ हैं। विश्वविद्यालय में एक सुन्दर रंगमंच भी बना हुआ था, जिसमें आठ सौ दर्शक एक साथ नाटक देख सकते थे। स्टेज पर सबसे पीछे शिल्प कलाकार कोरिन द्वारा प्रस्तुत एक विराट मोजाइक था, जिस पर सोवियत जनगण की जययात्रा दिखाई गई थी।

"फैकल्टी आफ साइंस" की आधी श्रेणियाँ अब विश्वविद्यालय के नए भवन में लगा करती हैं। मास्को विश्वविद्यालय के सत्रह हजार छात्रों में आठ हजार नई इमारत में ही शिक्षा पाते हैं। इनमें से छः हजार छात्रों के रहने की व्यवस्था भी विश्वविद्यालय के छात्रावासों में है। हम लोगों ने छात्रावास तथा कक्षाएँ देखना चाहा। छात्रों के लिए सुसज्जित तथा सुन्दर रूप से आलोकित छोटे-छोटे साफ-सुथरे कमरे देख कर हमें बहुत खुशी हुई। छात्रों में लगभग ९६ प्रतिशत अध्ययन के लिए ५०० रूबल मासिक वृत्ति पाते हैं। उनको कमरे के किराए के रूप में १५ रूबल, खाने के खर्च में दो सौ रूबल और विश्वविद्यालय की शिक्षा आदि के लिए ४०० रूबल देना पड़ता है। इस प्रकार साधारण छात्रवृत्ति के अलावा २५० छात्र ऐसे हैं जिन्हें विशेष छात्रवृत्ति के रूप में १,००० रूबल मिलते हैं। देखने में आया कि शिक्षा के लिए तरह-तरह की व्यवस्था है। कलाकारों को नियुक्त करके साढ़े तीन लाख मानचित्र तथा विभिन्न विषयों के चार्ट प्रस्तुत कराए गए हैं, जिससे कि छात्रों को शिक्षा की सुविधा हो। प्रयोगशालाएँ बहुत सुन्दर थीं और उनमें तरह-तरह के आधुनिक यन्त्र लगे हुए थे। सत्रह हजार छात्रों के लिए डेढ़ हजार प्राध्यापक और अध्यापक थे। इसके अलावा लगभग दो हजार तरह-तरह के कार्यकर्ता और 'प्रयोगशाला सहायक' थे जो छात्रों की सहायता करते थे। १४३ आडिटोरियम थे जिनमें प्रत्येक में ४० छात्र एक साथ बैठ कर व्याख्यान सुन सकते थे। इसके अलावा विभिन्न आकार के २३ और आडिटोरियम थे, जिनमें २०० से लेकर ६०० आदमी एक साथ व्याख्यान सुन सकते थे। हर आडिटोरियम में प्रयोजन के अनुसार फिल्म के द्वारा शिक्षा देने की व्यवस्था है। मास्को विश्वविद्यालय में कुल मिला कर कितने कमरे हैं, यह पूछने पर एक इंजीनियर ने बताया कि यदि आज कोई लड़का पैदा हो और वह हर रोज एक कमरे में जाए, तो सब कमरों म पहुंचते-पहुंचते उसकी उम्र अस्सी साल हो जाएगी और जब तक वह हर कमरे में पहुंच चुका होगा यानी आगामी ८० वर्षों में इतने कमरे और बन जाएंगे कि सौ साल में भी खत्म नहीं होंगे। यह जानने का स्वाभाविक कौतूहल हुआ कि इतनी बड़ी इमारत को साफ-सुथरा रखने के लिए कितने लोगों की जरूरत होती है। मालूम हुआ कि इसके लिए २,६०० कामगर हैं। पता नहीं यही दुनिया का सबसे बड़ा रेजिडेन्शियल विश्वविद्यालय है या नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस इमारत में लोगों के चलने-फिरने के लिए कुल मिला कर छोटे-बड़े ११३ लिफ्ट हैं। हम लोग लिफ्ट से सबसे ऊंची मंजिल पर पहुंचे और वहां से हमने मास्को का दृश्य देखा। ऊपर की मंजिल में बहुत बड़ी बत्तियाँ लगी हुई हैं, जिससे कि रात के समय कोई हवाई जहाज इससे टकरा न जाए।

विश्वविद्यालय के सामने बहुत बड़ा फूल बाग था, उसके दोनों किनारों पर महान लेखकों तथा वैज्ञानिकों की आवक्ष मूर्तियाँ थीं। बाईं तरफ फिर से वनस्पति विज्ञान सम्बन्धी उद्यान तैयार हो रहा था। उसमें तरह-तरह के देशी और विदेशी पेड़ कतारों में लगाए गए हैं। हमने पूछा कि उस बाग में हमारे देश के बड़ और पीपल लगाने की व्यवस्था है या नहीं और इस आबहवा में वे पनप सकते हैं या नहीं? पर बाहर घूमते समय कोई 'वनस्पति वैज्ञानिक' नहीं मिला, इसलिए इस प्रश्न का उत्तर भी हमें नहीं मिल पाया।

हम लोग फिर नदी के ऊंचे वाले किनारे पर चौड़े रास्ते से चलने लगे। नदी काफी नीची थी। सड़क के किनारे पालिश किए हुए ग्रेनाइट पत्थर की रेलिंग लगाई जा रही हैं। कहीं-कहीं यह काम समाप्त हो गया है और बाकी स्थानों में अभी तक इसकी सामग्रियों का ढेर लगा हुआ है। काम बराबर चालू है। सड़क के किनारे बहुत-से लोग जमा हैं। कुछ ऐसी योजना है कि सड़क से नदी के किनारे तक पेड़-पौधे लगाए जाएं और इस प्रकार नदी और सड़क के बीच में एक बहुत लम्बा पार्क तैयार हो।

नदी के किनारे बहुत-से लोग जमा थे। छोटे-छोटे स्टीमरों पर लोग सैर का आनन्द ले रहे थे। नदी के किनारे टहलने वाले लोग आइसक्रीम खरीद कर खा रहे थे। हम लोग भी घण्टे भर के लिए स्टीमर पर घूम आए। विश्वविद्यालय की ओर नदी का जो किनारा पड़ता है, वह ऊंचा और एकदम खड़ा है, पर दूसरी तरफ का किनारा कुछ ढाल लिए हुए है। इस किनारे पर पेड़ पालों के अलावा कल-कारखाने भी बड़ी संख्या में हैं। कुछ दूर चलते-चलते दाहिनी तरफ एक सुन्दर गिरजा दिखाई पड़ा। इसकी स्थापत्य शैली बहुत ही मनोज्ञ है। हम लोगों ने पूछा कि यह क्या है, तो हमें बताया गया कि यह नोवोविचि मनास्त्री या नोवोदिविचि विहार या मठ है। सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में इसकी स्थापना हुई थी। हम लोगों ने यह तय किया कि आज ही लौट कर नोवोदिविचि देखेंगे।

स्टीमर एक चक्कर घूम कर फिर वहीं लौट आया जहां से हम चले थे। नदी किनारे की चढ़ाई पार करने में हम लोग हांफ गए। उतराई के समय तो कोई तकलीफ नहीं हुई थी और हम लोग सरसरा कर उतर गए थे। रास्ते में जहां-तहां गोल बना कर एक-एक परिवार या मित्रमण्डली जमी हुई थी और टिफिन की टोकरी से खा रही थी या गपशप कर रही थी। छोटे-छोटे बच्चे घास पर उछल-कूद कर रहे थे। बड़ों में से भी कोई-कोई छोटों के हुल्लड़ में हिस्सा ले रहा था। बच्चे ढाल पार करने के लिए लुढ़कते-पुढ़कते जा रहे थे। पर हमने यह देखा कि उनके मां-बाप या अभिभावक इस पर जरा भी चिन्तित नहीं हो रहे थे कि उन्हें चोट लग सकती है और न कोई उन्हें चुप कराने के लिए ही उत्सुक मालूम होता था। हम लोग रास्ता तय करते हुए घास से रंगीन फूल लेकर बच्चों को देते रहे और उनके गाल थपथपा कर उनको दुलारते रहे और बड़ों के साथ सिर हिला कर हंसते हुए भद्रता दिखाते रहे।

हमने लौट कर देखा तो ड्राइवर साहब लम्बे होकर सो रहे थे। हम लोगों का हल्ला-गुल्ला सुन कर उनकी नींद टूट गई और वह कुछ हद तक झेंप गए। तो इसमें क्या बात थी? घण्टों गाड़ी लेकर बैठे रहना कोई मामूली बात है?

यह तय हुआ कि हम लोग नोवोदिविचि देखेंगे। विश्वविद्यालय को बाईं तरफ छोड़ कर गाड़ी सीधे नदी के किनारे की सड़क पर आगे बढ़ने लगी। कुछ दूर जाने के बाद दाहिनी तरफ एक छोटा-सा गिरजा मिला। सामने भीड़ जमा थी। हम लोगों ने बोरिस से पूछा कि हम इस गिरजे के भीतर जा सकते हैं? उसने कहा—बेशक जा सकते हैं, पर उसमें देखने लायक कोई खास बात नहीं है। फिर भी सड़क के किनारे गाड़ी रोक कर हम लोग भीतर गए। किसी ने हमें मना नहीं किया। गिरजे के अन्दर भक्तों की भीड़ थी। उसकी दीवारों पर ईसा मसीह के जीवन सम्बन्धी चित्र बने हुए थे। रविवार की विशेष प्रार्थना समाप्त हो गई थी। भक्तवृन्द माता मरियम या ईसा मसीह की मूर्ति के सामने घुटनों के बल बैठ कर प्रार्थना कर रहे थे। बगल में ही एक तालाबन्द बक्स रखा हुआ था, जिसमें एक छेद था। हमारे देश के कई मन्दिरों में रखे हुए दानपात्रों की तरह होगा।

गिरजे के अन्दर एक किनारे पर कुछ लोग खड़े थे। एक लंगड़ा बैसाखी की टेक लगाए खड़ा था, देख कर ऐसा मालूम हुआ कि भिखमंगा है। धर्म के साथ गरीबी और भिक्षावृत्ति का क्या सम्बन्ध है! बाद को जब हम कीव में गए तो वहां सन्त व्लादीमीर और सन्त आइन्तोनी के गिरजों के आंगन में भी इसी प्रकार भिखमंगे देखने में आए थे। यदि इनको छोड़ दिया जाए, तो ताशकन्द और लेनिनग्राद में राह चलते कभी कोई भिखारी देखने में नहीं आया। मास्को में एक दिन मैं बोल्शोई थियेटर के सामने वाले पार्क में रात को खाने के बाद चहलकदमी कर रहा था तो देखा कि एक बूढ़ा बेंच पर बैठे हुए लोगों से कुछ कह रहा था। फिर वह दूसरों के पास उसी तरह जाकर कह रहा था। ऐसा भी देखने में आया कि लोग उसे कुछ दे भी रहे थे। वह हम लोगों के पास भी आया पर परदेसी जान कर फौरन ही लौट पड़ा। इसमें कोई सन्देह नहीं था कि वह किसी न किसी रूप में भीख मांग रहा था। इसी प्रकार एक दिन होतेल मेत्रोपोल के पीछे की गली में एक १२-१३ साल की लड़की भी भीख मांगती दिखाई पड़ी थी। मुझे परदेसी जान कर वह कतरा कर निकल गई। कीव में भी मैंने एक भिखमंगा देखा था। वह किसी प्रकार इस बात को गुप्त नहीं रख रहा था कि वह भिखमंगा है। वह सड़क के किनारे कपड़े का टुकड़ा बिछा कर बिल्कुल ओरियन्टल स्टाइल से भीख मांग रहा था। उस कपड़े पर एक टोपी उल्टी रखी हुई थी जिसमें कोई राहगीर एकाध कोपेक डाल देता था।

जिस देश में राष्ट्र ने जनता का सब तरह का कल्याण का भार ले लिया है, वहां चाहे भीख मांगना और देना कितनी भी कम मात्रा में होता हो, वह बहुत ही अखरता था। इसलिए मैंने कई बार कई लोगों से यह बात पूछी कि राष्ट्र भीख मांगना बिल्कुल बन्द क्यों नहीं कर देता? मुझे जो उत्तर मिला वह मोटे तौर पर इस प्रकार का था। जो लोग कामधाम नहीं कर सकते, चाहे वह जिस कारण से भी हो, सरकार उन्हें पेंशन के रूप में कुछ रकम देती है। वे चाहें तो उसमें गरीबी में गुजर-बसर कर सकते हैं, पर यदि कोई ज्यादा शराब पीने का आदी हो, तो यह स्पष्ट है कि उसके लिए मिली हुई वृत्ति काफी नहीं होती, तब ऐसे लोगों को भीख मांगने में उतरना पड़ता है। कई बार ऐसा भी होता है कि अधिक लोभ वाले दुष्ट लड़के या लड़कियां सिनेमा या सरकस देखने के लिए भी जब तब लोगों के सामने हाथ पसार देती हैं। पर इस प्रकार की घटनाएं इतनी कम हैं कि राष्ट्र यह जरूरी नहीं समझता कि पुलिस की सहायता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर इसे जबरदस्ती बन्द कर दिया जाए। वे जिनके सामने हाथ पसारते हैं, उनकी इच्छा पर है कि वे कुछ दें या न दें।

मास्को से कीव जाते हुए रेलगाड़ी पर मादाम आरापोवा ने हमें गोर्की मार्ग की एक भिखमंगिन की बात सुनाई थी। एक अधिक उम्र की स्त्री गोर्की मार्ग में जहां-तहां भीख मांगती दिखाई पड़ती थी। उसका कोई अपना आदमी नहीं था। जब वह मरी तो सरकार की तरफ से लोग उसकी लाश उठाने गए। उस समय उसके बिस्तरे की तलाशी ली गई तो उसमें से बहुत-से कीमती जेवर और रुपए-पैसे निकले। ऐसी एक सम्पन्न स्त्री क्यों भीख मांगती फिरती थी? इसकी व्याख्या केवल इस प्रकार की जा सकती है कि वह मानसिक रूप से विकृत थी। हमारे देश में भी कई बार ऐसे भिखमंगों की खबर अखबारों में छपती रहती है।

हम गिरजे से निकल कर नोवोदिविचि की ओर चल पड़े। हम लोग अभी-अभी जिस गिरजे से निकले और वहां जिन लोगों से मिले, उनसे हमारी यही धारणा बनी कि लोगों के पूजा-पाठ पर सरकार की ओर से किसी प्रकार की कोई रोक-टोक नहीं है और लोगों को अपने मनपसन्द धर्माचरण की पूर्ण स्वतन्त्रता है।

गाड़ी नदी के समान्तराल में चल रही थी। थोड़ी देर तक चल कर गाड़ी नोवोदिविचि की तरफ चलने लगी। हमने झटपट एक स्केच तैयार कर लिया। नदी पार करके हम लोग भिक्षुओं के विहार के दरवाजे पर पहुंच गए। अब दिन ढल चुका था, भूख बहुत तेज लग रही थी। गाड़ी पर ड्राइवर का खाना रख कर बाकी खाने की टोकरियां लेकर हम लोग भीतर के बाग में पेड़ के नीचे नरम घास पर जम कर बैठ गए। सवेरे से निरन्तर दौड़-धूप के कारण थकान महसूस हो रही थी। यत्र-तत्र लोग पेड़ के नीचे बैठ कर विश्राम कर रहे थे। कई लोग घूम-घूम कर भिक्षुओं के कक्षों को देख रहे थे। कुछ कमरों में विहार के प्राचीन काल में काम आने वाली पोशाकों तथा बर्तन-भांडों का अजायबघर बना कर रखा गया था। लोग कतार बांध कर उसमें जा रहे थे और बहुत-से लोग घूम-घाम कर लौट रहे थे, यह भी हम बैठ कर देख रहे थे। खाना समाप्त करके हम लोग भी जाने वाले थे। बोरिस की बलिहारी है कि उसने खाने-पीने की चीजें प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत कर रखी थीं। जब हम लोग खा-पी कर तैयार हो गए, तब तक उस दिन के लिए अजायबघर का फाटक बन्द हो गया। इससे बड़ी कोफ्त हुई।

हेनरीयता ने तसल्ली देते हुए कहा कि अजायबघर भले ही बन्द हो गया हो, पर हम लोग बाहर घूम कर देख सकते हैं, उसमें कोई बाधा नहीं है। बाहर भिक्षुओं की समाधियां थीं। इस समय समाधियां देख कर तसल्ली करने का प्रस्ताव कुछ जंचा नहीं, पर जब हेनरीयता ने बार-बार कहा तो हेब्बर ने कहा—चलो यही सही।

नोवोदिविचि के आंगन में रूस के श्रेष्ठ सपूतों की समाधियां थीं। हेनरीयता ने ठीक ही कहा था कि यह भी एक अजायबघर है। रूसी उपन्यास-कार गोगल की समाधि एक नन्ही-सी कुटिया की डिजाइन पर पत्थर काट कर बनी हुई थी, उसमें प्रदीप रखने के लिए एक स्थान बना हुआ था। नाट्यकार तथा उपन्यासकार चेखव की समाधि पर उनकी एक सुन्दर आवक्ष मूर्ति बनी हुई थी। कलाकार सेरफ की समाधि पर एक पालिश किया हुआ चौकोर काला पत्थर बैठाया हुआ था। विख्यात पाइलट पोलीकार्पफ की समाधि पर ग्रीक लोक कथा के इकारस की मृत्यु की कहानी विख्यात भस्कर मेरकुराफ के द्वारा प्रस्तुत की गई थी। सरकस के खिलाड़ी डूरर की समाधि और स्टालिन की पत्नी आलुरायवा स्टालिन की समाधि पर विख्यात मूर्तिकार सादर ने मूर्ति बना रखी थी। गोर्की के लड़के की समाधि पर विख्यात महिला कलाकार मुहिना ने काम किया था। कितनी ही सुन्दर मूर्तियां, प्रतिकृतियां बनी हुई थीं कि देखते-देखते खत्म होने में नहीं आती थीं।

कला, विज्ञान, संगीत, नृत्य, साहित्य आदि क्षेत्रों में जिन लोगों ने यश प्राप्त किया था, उन सबकी यहां समाधियां बनी हुई हैं। अभिनेता आलेस्कीव, कलाकार स्पारोव, वैज्ञानिक कला आलोचक केमेनाफ और कितने ही योद्धा, देश प्रेमी नेता, सब यहां शान्ति से चिर निन्द्रा में सो रहे हैं; इन समाधियों पर जो मूर्तियां और फलक आदि बने हुए हैं वे बलिष्ठता और सुष्ठुता के परिचायक हैं। उन्हें एक दिन में देख पाना टेढ़ी खीर है।

सूर्य अस्ताचल को जा चुके थे। अंधेरा धीरे-धीरे उतर रहा था। हम लोग सिर झुकाए, क्लान्त शरीर लिए, इस पवित्र समाधि भूमि से निकल पड़े। मोटर तेजी से होटल की ओर दौड़ने लगी।

अनुवादिका—माया गुप्त

●

आंसू, बिना सूत की माला

पद्मा सुधि

आंसू, बिना सूत की माला।
बिन सागर बिन सीपी उपजे,
मुक्ता, बिना आब ही चमके,
बिना कूल बहती धारा-सी,
ये गिरि-अवरोहित जलमाला।
आंसू, बिना सूत की माला ॥
बिना गगन तारक-सी झिलमिल,
मणि उल्का-सी बन में गिरती,
व्यथा-क्षाण पर परख-परख कर,
खेल रही है कानन-बाला।
आंसू, बिना सूत की माला ॥
(ध्वनि बिन प्रतिध्वनियां सुनवाती,
बिना हुए मन को छू लेती,
नयन-तीर्थ हैं, ये मन्दाकिनी,
स्नापित इसमें विरहन ज्वाला।)
आंसू, बिना सूत की माला ॥
(बिना डोर के बिना ग्रन्थि के,
इस मन को उस मन से बांधे,
वन्दनवार नयन-मण्डप की,
ये माला मेरी वरमाला।
आंसू, बिना सूत की माला ॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दसवां अन्तर्राष्ट्रीय कृषि अर्थशास्त्री सम्मेलन

महेश चन्द्र

अन्तर्राष्ट्रीय कृषि अर्थशास्त्री सम्मेलन के अधिवेशनों का आरम्भ सन् १९२९ में हुआ था, परन्तु तब से प्रथम बार इसका दसवां अधिवेशन एशियाई भूमि पर सन् १९५८ में ही हुआ। एशियाई देशों की कृषि समस्याओं के महत्व की इससे पुष्टि होती है। एशियाई देशों की अर्थ-व्यवस्था का प्रतिनिधित्व भारतीय अर्थ-व्यवस्था द्वारा होता है, अतः दसवें अधिवेशन का भारत भूमि मैसूर में होना स्वाभाविक था।

सम्मेलन के उद्देश्य और प्रगति

कृषि अर्थशास्त्रियों की इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का मुख्य उद्देश्य कृषि अर्थशास्त्र सम्बन्धी अध्ययन और खोज को प्रोत्साहित करना है। संस्था इस हेतु भी प्रयत्नशील रहती है कि कृषि एवं ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित आर्थिक गवेषणाओं के निष्कर्षों का व्यावहारिक उपयोग बढ़े। इसलिए प्रति तीसरे वर्ष विभिन्न देशों में अधिवेशन किए जाते हैं। इसका नवम अधिवेशन (१९५५) फिनलैंड की राजधानी हेलसिंकी में हुआ था।

प्रत्येक अधिवेशन के लिए एक विषय चुन लिया जाता है। उसी के विभिन्न अंगों पर विभिन्न अर्थशास्त्री अपनी खोजों के आधार पर प्रकाश डालते हैं। सन् १९३०-४० के मध्य होने वाले अधिवेशनों में मुख्य विषय 'गवेषणा सम्बन्धी विधियां' होता था, यद्यपि उस दशाब्दि में होने वाली आर्थिक मंदी के कारण विशेषज्ञ कृषि समस्याओं के अध्ययन में दीर्घकालीन दृष्टिकोण की वांछनीयता को मानने लगे थे। कृषि को व्यापार एवं रोज़ी कमाने का साधन न मान कर जीवन-धंधा समझना प्रारम्भ हो गया था। स्काटलैण्ड तथा कैनेडा में होने वाले अधिवशनों में यह स्पष्ट हो गया कि अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विशषज्ञों का दृष्टिकोण यह हो चला है कि कृषकों का शेष समाज से उपयुक्त सम्बन्ध स्थापित होना चाहिए। सन्तुलित भोजन एवं कृषि पदार्थों के अनिश्चित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण सभी राष्ट्रों के सामान्य हित की ओर कृषि अर्थशास्त्रियों का ध्यान जाने लगा।

सन् १९४१ से १९४७ तक कोई अधिवेशन न हो सका। तत्पश्चात इंग्लैण्ड, इटली और अमेरिका में होने वाले अधिवेशनों के कारण यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि सम्मेलन के कारण आर्थिक आयोजन में कृषि अर्थशास्त्र के महत्व को माना जाने लगा है। सन् १९४९ में जहां इटली के अधिवेशन में 'निजी काश्त' के अंग-प्रत्यंग एवं पहलुओं पर विशेष विचार किया गया था, सन् १९५२ में विश्व खाद्य समस्या (उत्पादन एवं वितरण) पर प्रमुखतया ध्यान दिया गया। उस समय अधिवेशन का मुख्य विषय था 'भोजन एवं जनसंख्या का आर्थिक पहलू, और यह अनिवार्य था कि उपस्थित अर्थशास्त्रियों ने कम विकसित देशों तथा उनकी समस्याओं की अधिकतम व्याख्या की। फिर तो यह निश्चित था कि अगले अधिवेशनों में अविकसित देशों की कृषि समस्याओं को अन्तर्राष्ट्रीय प्रमुखता मिलेगी।

सन् १९५५ में जब फिनलैण्ड में नवां अधिवेशन हुआ तो कृषि अर्थशास्त्रियों ने 'कृषि में प्राविधिक परिवर्तन के अभिप्राय एवं प्रभाव' के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विनिमय किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि केवल उत्पादकता और उत्पादन वृद्धि ही पर्याप्त नहीं है। उत्तम बिक्री और पूर्व आयोजन आवश्यक तो है, परन्तु ये मानव आवश्यकताओं से सम्बन्धित किए जाने चाहिएं। न केवल आर्थिक वरन सामाजिक एवं सांस्कृतिक अर्थों पर भी ध्यान रखना आवश्यक है।

सन् १९५८ में अविकसित देशों के मध्य ही उनके कृषि-प्रधान आर्थिक विकास में योग देने की दृष्टि से सम्मेलन का दसवां अधिवेशन भारत में किया गया तथा 'कृषि तथा उसकी व्यापार विनिमय दर' यह विषय विचार-विनिमय के लिए चुना गया, जिसके तीन विभाग किए गए : (१) कृषि का बदलता भाग्य; (२) कृषि सम्बन्धी व्यापार विनिमय दर को प्रभावित करने वाली कुछ विशेष शक्तियों का विश्लेषण; तथा (३) राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय उपाय का क्षेत्र। अधिवेशन के सभापति थे प्रोफेसर एल्महर्स्ट, जिनके विशेष प्रयत्नों के फलस्वरूप इस सम्मेलन की स्थापना हुई थी।

एल्महर्स्ट के विचार

अधिवेशन आरम्भ होने से पूर्व प्रोफेसर एल्महर्स्ट ने अपने जो विचार संक्षेप में प्रकट किए थे, वे महत्वपूर्ण हैं। उनके अनुसार अविकसित देशों में अतिरिक्त (फालतू) ग्रामीण श्रम शक्ति को सामाजिक सेवाओं की ओर मोड़ देना चाहिए। जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण तथा परिवार-नियन्त्रण द्वारा भी विकास में सहायता मिल सकती है, परन्तु कृषि यन्त्रीकरण के कदम सावधानी से उठाने चाहिएं। भूमि की उर्वरता बनाए रखना अति आवश्यक है। भूमि पर जनसंख्या का भार अधिक है, इस कारण भी यह आवश्यक है कि भू-क्षरण रोका जाए। राज्य एवं जनता को चाहिए कि वह भूमि को धरोहर के समान समझे। प्रोफेसर एल्महर्स्ट भारत में कई वर्ष रह चुके हैं। अतः वे भारतीय किसान से भली-भांति परिचित हैं। उनके विचारानुसार भारतीय कृषक को यह ज्ञात है कि प्रति एकड़ अधिक पैदावार कैसे की जाए, परन्तु ऐसा करने के लिए वह कदम नहीं उठाता है, क्योंकि वह जितना अधिक परिश्रम करता है, उतना ही कम कमाता है। उसकी प्रेरक शक्तियां क्षीण हो गई हैं। उसकी भूमि का क्षेत्र कम से कम इतना तो होना चाहिए कि उसको कृषि में अपना दिमाग लड़ाना लाभप्रद प्रतीत हो। आश्चर्य तो यह है कि भारतीय कृषि अर्थशास्त्र के स्नातकों को खेतों में अपने हाथ से काम करने का अवसर बहुत कम मिलता है। निस्सन्देह प्रत्येक देश को अपनी समस्याओं का उपाय स्वयं ढूंढना पड़ता है। सभी समस्याओं का कोई एक समान हल नहीं है।

सभापति के पद से भाषण देते हुए प्रोफेसर एल्महर्स्ट ने उपर्युक्त विचारों को कुछ स्पष्टता से प्रकट किया, क्योंकि ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशनों में जिज्ञासा जागृत करने की आवश्यकता अधिक रहती है। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की कृषि स्थिति पर अधिक प्रकाश नहीं डाला। कृषक की समस्याओं पर अति व्यापक दृष्टिकोण से प्रकाश डालते हुए उन्होंने बतलाया कि प्रभाव डालने वाली शक्तियां अन्तर्राष्ट्रीय भी हो सकती हैं और आन्तरिक भी, वे राजनैतिक या सरकारी निर्णयों के कारण भी उठ सकती हैं अथवा प्राविधिक या तकनीकी परिवर्तनों के कारण भी, तथा बदलता हुआ सामाजिक प्राणिगत वातावरण भी अपना प्रभाव दिखला सकता है। क्योंकि कृषक समाज की अनिवार्य रूप में सेवा करता है, यह आवश्यक है कि मंडियां, धंधे, विश्वविद्यालय और राज्य उसको प्रतिफल स्वरूप आवश्यक सेवाएं दें। यदि नगरों को राज्य, विनिमय, उद्योग-धंधे के केन्द्र के रूप में महत्व देना ही है तो ग्रामीण केन्द्रों को जल, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, बाजार आदि की सुविधाएं दी जाएं। भारतीय ग्रामों में ७५ प्रतिशत श्रम-शक्ति अर्धबेकारी की स्थिति में है। ऐसी स्थिति में भी उन्हें अधिकतर बहुत-सी मामूली सहायता की कमी पड़ जाती है। यदि उन्हें उचित सहायता मिले तो वे स्वयं समृद्धि पथ पर अग्रसर हो उठें। भारतीय प्रादेशिक राज्यों को बहुमुखी भूमि उपयोग का कुछ वैसा ही प्रयत्न करना चाहिए जैसा दामोदर घाटी योजना के अन्तर्गत किया जा रहा है।

औद्योगिक विकास

प्रोफेसर एल्महर्स्ट ने एक अत्यन्त उल्लेखनीय विचार भारतीय सदस्यों के सामने रखा। सुधारों एवं सेवाओं को पूर्ण करना तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक प्रथम, द्वितीय और सम्भवतः तृतीय पंचवर्षीय योजना के रूप में औद्योगिक एवं नगरीय विकास नहीं कर लिए जाते। कुछ न कुछ तो तुरन्त किया जा सकता है परन्तु बड़ी मात्रा में पूंजी-विनियोग के हेतु अनुसन्धान, गवेषणा तथा संगठन पूर्वावश्यकताएं हैं। अतः पंचवर्षीय योजनाओं की प्रगति का सहानुभूतिपूर्वक मूल्यांकन करना चाहिए। इस विचार के पीछे यह खतरा अवश्य निहित है कि एक रूढ़िवादी सरकार कृषि की समस्याओं की उपेक्षा करती रहे। सन्तोष की बात है कि भारतीय जनता जागृत है तथा लोकतन्त्रीय शासन के अन्तर्गत विरोधियों के पक्ष रचनात्मक आलोचना का प्रयत्न कर रहे हैं।

ग्राम और शहर

पश्चिमी जगत के एक कटु अनुभव का उल्लेख अविकसित देशों के लिए शिक्षाप्रद है। प्रोफेसर एल्महर्स्ट ने कहा कि वहां इस मत को मान्यता नहीं मिली है कि ग्रामीण और शहरी केन्द्र के मध्य पारस्परिक सेवा की रीति स्थापित की जा सकती है। क्या कभी भी यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि नए उद्योग-धंधों एवं सेवाओं के कारण अतिरिक्त ग्रामीण मानव शक्ति ग्रामों से हट आएगी? इस अनुभव को बताने का एक ही उद्देश्य था: ग्रामों में ही उद्योग-धंधों का विकास किया जाए। भले ही पश्चिम अभी इस पाठ को हृदयंगम न करे (क्योंकि वहां अब भी यह राय दी जाती है कि कृषि को 'जीवन धंधे' के स्थान पर 'लाभ हेतु धंधे' का रूप दे देना चाहिए)। पूर्वी और अविकसित देशों को यह बात भली प्रकार समझ लेनी चाहिए। भारत में ग्रामीण इकाई, ग्रामीण समाज तथा पंचायत राज्य की अति प्राचीन परम्परा है। ग्रामीण आत्म-निर्भरता को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से ही सामुदायिक विकास मन्त्री श्री दे ने बंगाल के कुछ ग्रामों में सफलतापूर्वक ग्राम विनिमय केन्द्रों का प्रयोग किया था। इस बात को ही लेकर एक अन्य नवयुवक श्री तरलोक सिंह ने 'गरीबी और सामाजिक परिवर्तन' शीर्षक से अपनी ग्राम पुनर्निर्माण योजना दस वर्ष पूर्व हमारे सामने रखी थी। इसी बात को लेकर प्रयाग विश्वविद्यालय के अवकाश-प्राप्त वयोवृद्ध पण्डित दयाशंकर दुबे ने 'हमारी कृषि योजना' बनाई थी। भारत के समान परिस्थिति वाले अन्य देश इन सभी विचारों से पूर्ण लाभ उठा सकते हैं।

आर्थिक विकास और कृषि में श्रम

सम्मेलन में विश्व के कतिपय ख्यातिप्राप्त विशेषज्ञों ने अपने लेख पढ़े तथा विचार-गोष्ठियों का संचालन किया। इंग्लैण्ड के उदीयमान प्रोफेसर आर्थर लेविस ने श्रोताओं को बतलाया कि आज कृषि और उद्योग की स्पर्धा नहीं है वरन केवल उद्योगपतियों की स्पर्धा है। जब मूल्य अधिक ऊंचे होते हैं तब भी कृषक की आय कम बढ़ती है। अपने धंधे की व्यापार-विनिमय दर में कृषक का क्या हाथ है? उसके माल के मूल्य दूसरे (मध्यस्थ) लोग अनापशनाप तय करते हैं। कोई यह नहीं ध्यान रखता कि मूल्य के कारण कृषक की लागत भी निकल रही है या नहीं! कृषक के सभी त्यागों का प्रतिफल उसे कहां मिलता है? वैज्ञानिक उन्नति का कौन-सा लाभ हमने कृषक को बख्श दिया है? हमारी सभ्यता के सुख कृषक तक नहीं पहुंचते हैं। आज की नगरीय और औद्योगिक जनता को यह एक चुनौती है, उनके कार्य पर यह एक व्यंग्य है। कृषि में कृषकों की संख्या कम करना अनिवार्य है। अतः अविकसित देशों में अन्य उद्योग-धंधों की उन्नति करनी चाहिए। हमारी दृष्टि में यह उन्नति ग्रामीण क्षेत्र में ही की जानी चाहिए, अन्यथा स्थान परिवर्तन के कारण खाद्यान्न के उपयुक्त यातायात एवं वितरण की समस्या उठ खड़ी होगी।

प्रो० लेविस ने हमारे कृषि अर्थविशेषज्ञों को चेतावनी देते हुए ही कहा है कि यदि कृषि से मनुष्यों को नहीं हटाया जाता तो व्यापार नियन्त्रण, मूल्य नियन्त्रण आदि अनेक कृत्रिम ढंग से कृषक प्रतिफल को ऊंचा करने की चेष्टा की जाएगी जो विशेष सफल नहीं होगी। उनके इस संकेत में अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विशेषज्ञ सम्मेलन के प्रति भी एक व्यंग्य था।

भारतीय अर्थशास्त्री के विचार

प्रोफेसर लेविस के दृष्टिकोण से मिलता-जुलता भारतीय अर्थशास्त्री प्रोफेसर गेडगिल का दृष्टिकोण था। उन्होंने अर्ध विकसित देशों के विकास प्रयत्नों का सिंहावलोकन करते हुए बतलाया कि कृषक की समृद्धि पर सर्वाधिक प्रभाव सीधे राजकीय आर्थिक योग तथा मूल्य स्तर स्थायी रखने के प्रयत्न का पड़ेगा। व्यवहार में मूल्य नीति की विभिन्नताओं एवं भिन्न क्षमता के कारण यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि अर्धविकसित देशों में मूल्य नीति कहां तक सफल हुई है।

जहां तक राष्ट्रीय आय में कृषक के भाग का प्रश्न है, अविकसित देशों में यह लगभग एक-तिहाई है और यह कहना सम्भव है कि सन् १९५० के बाद यह सभी स्थानों में बढ़ा ही है। यथार्थ में इस बात की सम्भावना अधिक है कि कृषक का राष्ट्रीय आय में भाग घट गया है। अस्थायी अल्प-कालीन लाभों का फल कृषक को नहीं वरन मध्यस्थों को ही अधिक मिलता है। उत्पादन मात्रा की अस्थिरता तथा कृषि से बाहर श्रम शक्ति की कम गतिशीलता दो प्रमुख विपक्षी कारण हैं जिन्हें दूर करना चाहिए। परन्तु कैसे?

संस्थाओं का प्रभाव

जगरेब विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रुदोल्फ बिकेनिस ने कृषि तथा सामाजिक संस्थाओं की परिस्थितियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बतलाया कि विकसित देशों में पूंजीगत वस्तुओं का बाहुल्य होता है अतः उनका उपयोग कम क्षमतापूर्ण किया जाता है। इंग्लैण्ड में अधिक ट्रेक्टर और रूस में अत्यधिक मशीन ट्रेक्टर स्टेशन इस बात के उदाहरण रह चुके हैं। अवसर मिलने पर प्रत्येक कृषक अपनी पूंजीगत वस्तुएं रखने की चेष्टा करता है। परन्तु जहां ऐसा नहीं हो सकता वहां सहकारी व्यवस्था अधिक वांछनीय होगी। ग्राम स्तर पर एकाधिकारी क्रेता (बनिया-महाजन) के कारण कृषकों को उचित मूल्य नहीं मिलता है। क्रोशिया की मूल्य सम्बन्धी अपनी गवेषणा का उल्लेख करते हुए उन्होंने बतलाया कि स्थानीय बाजारों में किसान को प्रति सौ किलोग्राम गेहूं का जो मूल्य मिला वह निम्नतम ७० दीनार और अधिकतम १६५ दीनार था।

विनिमयाश्रित जीवन और सहयोग

हेलसिंकी विश्वविद्यालय (फिनलैण्ड) के ख्यातिप्राप्त प्रोफेसर वेस्टरमार्क ने पिछले तीस वर्षों के फार्म-ब्योरों के आधार पर यह प्रदर्शित किया कि छोटे तथा बड़े फार्मों पर किए गए कुल व्यय में नकद व्यय का अनुपात दुगुना हो गया है। इसी काल में डेन्मार्क में नकद व्यय का अनुपात केवल दस प्रतिशत बढ़ा है। अस्तु, छोटे पारिवारिक फार्म (या जोतों) पर नकद व्यय का अनुपात पचास प्रतिशत तक हो सकता है। फलतः यह स्वाभाविक है कि कृषि की लागत (अतएव कृषि का लाभ) मूल्यों के स्तर पर अधिक निर्भर होती है। स्वीडन के प्रोफेसर लेनर्ट ह्जेम ने तो यह सिद्ध किया है कि साठवर्षीय किसानों की ऋणग्रस्तता की अपेक्षा कम आयु वाले (नई पीढ़ी के) कृषकों की ऋणग्रस्तता दुगुनी है। सभी साधनों के सम्बन्ध में विनिमय और मूल्य का महत्व बढ़ रहा है। इसी प्रकार छोटे फार्मों की आय में नकद आय का प्रतिशत पैंतीस से बढ़ कर पिछहत्तर हो गया है। यह प्रगति समझ में सरलता से आ जाती है। जनसंख्या का जितना कम अनुपात कृषि कार्य में लगेगा उतना ही कृषि उत्पादन का अधिक अनुपात विनिमय द्वारा बेचना पड़ेगा। यह विनिमय अदल-बदल का रूप ले सकता था यदि ग्रामीण आत्मनिर्भरता कायम रहती। श्रम विभाजन, केन्द्रीकरण तथा गांव से दूर उद्योग केन्द्रों को स्थापित करने की प्रवृत्ति कृषक के क्रय-विक्रय में नकद को अधिक स्थान प्रदान करते हैं। जहां ऐसे नकद व्यापार बढ़ जाते हैं वहां बाजार को स्थिरता प्रदान करने के लिए वस्तुओं का क्रय-विक्रय अपनी (सहकारी) संस्थाओं के माध्यम से करना अधिक उपयोगी है। डेन्मार्क, फिनलैण्ड एवं स्वीडन के आंकड़ों का हवाला देते हुए विशेषज्ञ ने बताया कि लगभग तीन-चौथाई मांस और दूध का विक्रय उत्पादकों के निजी संगठनों के माध्यम से किया जाता है।

भारत जैसे अर्धविकसित देश के लिए प्रोफेसर वेस्टरमार्क के अध्ययन से दो शिक्षाएं मिलती हैं। प्रथम, मूल्यों के प्रभावों से कृषक को बचाने के लिए ग्रामीण विकास बहुमुखी और आत्म-निर्भरतामुखी हो। द्वितीय, कृषकों को उचित मूल्य दिलाने के लिए सहकारी बिक्री समितियों की स्थापना अति आवश्यक है।

कृषि अर्थशास्त्र की शिक्षा

किसी समय एग्रीकल्चर इंस्टीट्यूट, नैनी से सम्बन्धित प्रोफेसर मोशर ने कृषि सम्बन्धी शिक्षा की कमियों की ओर ध्यान दिलाया। कृषि विद्यालय के विद्यार्थियों को कम लागत, अधिक क्षमता, अनुकूलतम साधन-चुनाव आदि के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान मिलना चाहिए क्योंकि यह अनिवार्य है कि अर्धविकसित देशों को कृषि सम्बन्धी प्रयासों तथा रूढ़िवादी परिस्थितियों से उठ कर वैकल्पिक चुनावों पर अपनी अर्थ-व्यवस्था बनानी चाहिए। द्वितीय, कृषि अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों को अपने देश की तत्कालीन समस्याओं के सम्बन्ध में विचार करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। अतएव कृषि अर्थशास्त्र की परिकल्पनाओं, विश्लेषण पद्धतियों तथा क्षेत्र के सम्बन्ध में ऐसे परिवर्तन करने चाहिएं कि वह पश्चिमी जगत की पृष्ठभूमि वाली न रहें। तृतीय, कृषि अर्थशास्त्र की शिक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों को आर्थिक आंकड़ों को एकत्र करने, संक्षिप्तीकरण, विश्लेषण एवं निष्कर्ष निकालने का पर्याप्त अवसर मिले। चतुर्थ, विद्यार्थियों का ध्यान उन कमियों (अज्ञान-क्षेत्रों) की ओर दिलाना चाहिए जिनके कारण देश की समस्याओं का समुचित हल नहीं हो पा रहा है, और उन्हें इस बात का बोध कराना चाहिए कि वे इस अज्ञान को मिटाने में योग देकर देश की उन्नति में सहायता पहुंचा सकते हैं।

कृषि अर्थशास्त्र सलाहकार

केन्बरा (आस्ट्रेलिया) के ब्यूरो आफ़ एग्रीकलचर इकोनामिक्स के विशेषज्ञ स्ट्रांग ने अर्थशास्त्री सर डेनिस राबर्टसन के इस कथन का विरोध किया कि "अर्थशास्त्री का प्राथमिक कर्तव्य संसार को समझना है, उसको ठीक करना नहीं।" क्लासिकल अर्थशास्त्रियों और मरकेन्टेलिज़्म प्रभुओं के समय से कन्स के काल तक सदैव अर्थशास्त्रियों ने तत्कालीन आर्थिक समस्या और आर्थिक नीति को ध्यान में रख कर ही अपने सैद्धान्तिक अध्ययन तथा मतों का प्रतिपादन किया है। 'आर्थिक नीति क्या हो' की पृष्ठभूमि में ही अर्थशास्त्रियों के अध्ययन फलीभूत हुए हैं। अतएव राजकीय कृषि अर्थशास्त्रीय अनुसन्धान विभाग का यह कर्तव्य कि वह बताए कि कौन-सी नीति सबसे उत्तम है।

राजकीय विनियोग

हेग-स्थित इंस्टीट्यूट आफ़ स्टडीज़ के अध्यक्ष प्रोफेसर ब्रीज़ ने चाइल में किए गए खाद्य एवं कृषि संघ के प्रयोगों सम्बन्धित अनुभवों का उल्लेख करते हुए बतलाया कि कृषि प्रोग्राम तभी चल सकता है जब उसमें हस्तशिल्प प्रोसेसिंग (प्रक्रिया), बिक्री आदि को भी स्थान दिया जाए। आर्थिक ढांचे में यातायात, संवाद वहन एवं शक्ति की पर्याप्त मात्रा के साथ-साथ स्वास्थ्य, शिक्षा, जल, गृह आदि की पूर्ति का भी ध्यान रखना आवश्यक है। कृषि विकास को औद्योगिक विकास एवं नगरीकरण से अलग नहीं किया जा सकता है। ग्रामीण श्रम एवं कृषि पदार्थों के लिए विविध बाजार होने चाहिएं, तभी कृषि विकास लाभदायक होगा। जहां बड़ी जोतों को तोड़ कर छोटी जोतों को आरम्भ किया जाता है, वहां कृषि वित्त की अधिक आवश्यकता पड़ती है जिसकी पूर्ति वैयक्तिक या सहकारी प्रणाली के बल पर नहीं हो सकती। सहकारी ऋण समितियां उपयुक्त वातावरण में ही पनप पाती हैं। अतः स्पष्ट निष्कर्ष यह निकलता है कि राज्य को वित्त की अधिक व्यवस्था करनी पड़ेगी। जिन देशों में वैयक्तिक बैंक प्रणाली, कृषक संघ, आंतरिक एवं विदेशी बाजार अधिक उन्नत हैं, वहां भी राज्य कृषि विकास के लगभग सभी क्षेत्रों में विनियोग की व्यवस्था में राज्य का महत्वपूर्ण स्थान है। अर्ध विकसित देशों में ऐसी आवश्यकता अधिक होगी। भारतीय सरकार की नीति तो वित्त व्यवस्था करने के पक्ष में कई वर्ष पहले से हो गई है।

भारतीय कृषि आयोजन

यही नहीं, जैसाकि श्री अंजारिया (भारत) ने 'भारत में कृषि आयोजन' पर विचार करते समय बतलाया, भारत सरकार एक ओर राजकीय विनियोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा आर्थिक सुविधाएं प्रदान कर रही है तथा दूसरी ओर कृषकों के आत्म-बल और सहयोग की पुष्टि कर रही है। योजना आयोग यह सोचने लगा है कि कृषि क्षेत्र में आयात-निर्यात सम्बन्धी अध्ययनों की आवश्यकता है जिससे प्राविधिक एवं आर्थिक दृष्टि के अनुकूल व्यवस्था की जा सके। ग्राम स्तर से केन्द्र स्तर तक ऐसी व्यवस्था की कमी भी महसूस हो रही है जिससे स्थानीय आवश्यकताओं एवं सम्भावनाओं का पता चल सके और स्थानीय समाज के विचार तथा केन्द्रीय आयोजन अधिकारियों के विचारों का समन्वय किया जा सके। ग्राम पंचायत, सहकारी समिति तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा ऐसी संस्थाएं हैं जो कृषि विकास में योग देंगी। तभी लोकतन्त्रीय आयोजन और आर्थिक विकास पूर्ण होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

अधिवेशन के अन्तिम दो दिनों में हितोत्सुबाशी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर कजूशी ओकाबा ने जापान द्वारा अपनाई कृषि आयोजन पद्धति पर प्रकाश डाला तथा श्री करी ने कृषि अर्थशास्त्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की स्थिति पर विचार प्रकट किए। विशेष हितों को दृष्टि में रख कर कार्य करने वाली तीन संस्थाओं अर्थात कृषि उत्पादकों का अन्तर्राष्ट्रीय संघ, यूरोपीय पशुपालन संघ तथा कृषि सम्बन्धी यूरोपीय संगठन के कार्यों पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया। इनमें से केवल कृषि उत्पादकों का अन्तर्राष्ट्रीय संघ राष्ट्रीय हितों के ऊपर उठता है। भारतीय कृषकों का एक संघ उक्त संस्था से सम्बन्धित है। यह संस्था राष्ट्रीय सरकारों को कृषि समस्याओं से अवगत कराती है तथा एक देश के कृषि उत्पादकों को दूसरे देश के किसानों की समस्याओं एवं उद्देश्यों से परिचित कराती है।

अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण रख कर कार्य करने वाली संस्थाओं के उदाहरणस्वरूप विद्वान वक्ता ने विश्वव्यापी चर्च परिषद्, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र संघ तथा कृषि अर्थशास्त्रियों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का उल्लेख किया। विश्वव्यापी चर्च परिषद का उल्लेख इसलिए उचित है क्यों कि वह राजनैतिक संस्था नहीं है और हाल ही में उसने शरणार्थियों की समस्याओं के सम्बन्ध में आंकड़े एकत्र करने एवं अध्ययन करने के लिए विशेष आयोग की स्थापना की है। यही आयोग सभी अप्रत्याशित परिस्थितियों में प्रथम उपचार के सम्बन्ध में भी राय देगा। अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र संघ के नौ-वर्षीय-जीवन में विभिन्न अर्थशास्त्रीय समस्याओं पर वाद-विवाद और विचार-विनिमय की सदैव व्यवस्था रही है। यही ध्येय कृषि अर्थशास्त्री सम्मेलन का है। इनके अधिवेशनों में कोई प्रस्ताव नहीं पास किए जाते हैं। केवल चुने हुए विषयों पर विचार-विनिमय होता है। इन सम्मेलनों का ध्येय आर्थिक समस्याओं पर प्रकाश डालना मात्र है क्योंकि अर्थशास्त्र का मुख्य ध्येय यही माना जाता है।

सारांश

दस दिनों के इस अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन के फलस्वरूप हमारे कृषि अर्थशास्त्रियों को जो विचार-विनिमय का सुअवसर मिला वह अति लाभदायक सिद्ध होगा। सत्तर अविकसित, अर्धविकसित और अन्य देशों के लगभग साढ़े-तीन सौ कृषि अर्थशास्त्रियों को भी भारतीय आयोजन कार्य देख कर उनसे लाभ उठाने का महान अवसर मिला। ऐसे अधिवेशनों में भारत की ओर से निमन्त्रित शिष्टमंडलों के सदस्यों की यात्रा के व्यय का प्रबन्ध भारत सरकार की ओर से ही होना चाहिए अन्यथा सम्भव है कि अर्थाभाव में कुछ सदस्यों की विचार-सामर्थ्य से हम वंचित रह जाएं। पिछले अधिवेशन में ऐसा नहीं हो सका था।

★

श्री जैनेन्द्रकुमार से भेंट—(पृष्ठ १५ का शेषांश)

नहीं कि दोनों में असहयोग रहे। पर क्या मैं यह समझूं कि लेखक सदा शरणागत है और राज्य अशरण-शरण? नहीं, मैं मानता हूं कि सम्बन्ध सम भूमिका पर हो सकते हैं और इसमें कोई आपत्ति की बात मुझे नहीं दीखती।

—समय बहुत हो गया। आप असुविधा तो अनुभव नहीं कर रहे?

—नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।

—तो एक प्रश्न और पूछना चाहूंगा?

—पूछिए।

—कुछ लोगों की धारणा है कि आपके कथा साहित्य में मनोविज्ञान अति-परक है, यानी ऐसा लगता है कि कहीं-कहीं पात्रों का स्वाभाविक विकास नहीं हो पाया है और वे मनोविज्ञान की थीरियों के माडल भर बन कर रह गए हैं। आपकी सम्मति में इस कथन में कहां तक सत्य है?

—हो सकता है, और मुझे उसकी चिन्ता नहीं है। क्योंकि पात्र में अन्त तक उतना हाड़-मांस हो ही नहीं सकता जितना सचमुच के मनुष्य में। किताब में सौ पात्र हो सकते हैं और सब मिला कर हो सकता है कि किताब का वजन आधा पाव भी न हो, जबकि एक अदद आदमी डेढ़ मन तो कम से कम होना ही चाहिए। फिर मेरी ओर से यह भी सच है कि मेरे कहानी-उपन्यास के पात्र बाहर से नहीं लिये गए हैं, मेरे अन्दर से आए हैं, इससे बेचारे विवश हैं कि मेरे मनोनुकूल हों और मेरे हाथों साधन बनें। अति मनोवैज्ञानिकता की बात पाठक कहता है तो मैं सुन लेता हूं। उसके उत्तर की भी मुझे आवश्यकता नहीं है। कारण—जो हूं, हूं। उपन्यासकार और कहानीकार होने के लिए नहीं हूं, बल्कि जो हूं, उसकी शोध और अभिव्यक्ति के लिए उपन्यासकार का रूप है। उपन्यासकार नामक जीव का कोई बना-बनाया सांचा हो तो उसमें सही-सही फिट होने की आवश्यकता मुझे नहीं है। न अपनी कृति के लिए वैसी आवश्यकता मैंने मानी है। रचनाएं मेरी ओर से निर्द्वन्द्व प्रयोग हैं। यह सही है कि सत्य की खोज के लिए बाहर जाना मुझे उतना संगत नहीं दीखता, जितना कि अपनी आत्मचेतना में उतरना। इस प्रयास में अति की संभावना ही मैं नहीं देखता। क्या मैं कहीं किताबी बना दीखता हूं? तब तो विद्या का अभिमान हो सकता है, और उसके लिए मेरे पास अवसर नहीं है। और यदि वैसा नहीं है तो अपने में गहन से गहन अवगाहन में शरमाने या घबराने की क्या बात है?

जैनेन्द्र जी के इस कथन के पश्चात उन्हें धन्यवाद और नमस्कार अर्पित करते हुए मैं उठ खड़ा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

इन्द्र विद्यावाचस्पति

भारत की राजनीति में मौलाना आज़ाद का एक विशेष स्थान था। यद्यपि वह कांग्रेस दल के एक प्रमुख नेता थे, तो भी उन्हें केवल एकदलीय नेता नहीं कहा जा सकता। वह मध्यपूर्वी संस्कृति और वाङ्मय के बहुत ऊंचे दर्जे के प्रतिनिधि थे, उदार विचार वाले मुसलमानों के मार्गदर्शक थे और भारत के उस शिष्टाचार के शरीरधारी रूप थे जिसका निर्माण मुग़ल साम्राज्य के अन्तिम दिनों में लखनऊ और दिल्ली में हुआ था। इन सब विशेषताओं के होते हुए वह भारत की एकता और अखण्डता के अत्यन्त योग्य वकील थे।

परिमार्जित शिष्टाचार और राजनीति दोनों का अटूट सम्बन्ध नहीं है। परिमार्जित शिष्टाचार का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। वह समाज के प्रत्येक विभाग में पाया जाता है। ऐसे राजनीतिज्ञों का अभाव नहीं है जिनके लिए शिष्टाचार कोई आवश्यक वस्तु नहीं है। सभी देशों में ऐसे खुदरे स्वभाव के राजनीतिज्ञ पाए जाते हैं। वे अपने क्षेत्र में सफल भी हो जाते हैं, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि जिस व्यक्ति में राजनीति और शिष्टाचार का मिश्रण हो उसकी सफलता की संभावना बढ़ जाती है। मौलाना आज़ाद में इन दोनों गुणों का बहुत सुन्दर मेल था। आजकल भारतीय राजनीति में सफलता प्राप्त करने के लिए अंग्रेजी में बोलने का और लिखने का अभ्यास अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है। उसकी न्यूनता होते हुए भी मौलाना को जो अद्भुत सफलता प्राप्त हुई उसका मुख्य कारण यही था कि उनमें संस्कृति और राजनीति का बढ़िया समन्वय था। परिमार्जित शिष्टाचार संस्कृति का आवश्यक अंग है; वह मौलाना आज़ाद में प्रभूत मात्रा में विद्यमान था।

जब आप अधिकारयुक्त व्यक्तियों से मिलने जाएं तो आपको वहां तीन प्रकार का स्वागत मिलेगा। जिन व्यक्तियों में शिष्टाचार के संस्कार इतने गहरे हैं कि अधिकार की कुर्सी उन्हें धो नहीं सकी, उनका स्वागत नम्रता और शिष्टाचार से पूर्ण होगा। ऐसे दो नमूने राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद तथा मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के रूप में पेश किए जा सकते हैं। आप राष्ट्रपति जी से मिलने जाइए तो यदि वह विशेष कार्य में ही व्यस्त न हों तो आप उन्हें खड़े होकर और हाथ जोड़ कर नमस्कार करते पाएंगे। यह नम्रता उनके स्वभाव का अंग है जिसे राष्ट्र में सबसे ऊंचा पद मिटा नहीं सका। दूसरा नमूना मौलाना साहब का था। मैं जब कभी उनसे मिलने शिक्षा मंत्रालय में गया तो वह सदा, "आइए, प्रोफेसर साहब, बहुत दिनों में आए" कह कर हाथ बढ़ा देते थे और बड़े स्नेह से पास की कुर्सी में बैठा लेते थे। स्वास्थ्य का समाचार पूछने पर कहते थे, "ठीक है भाई, जिन्दा हैं।" विदा देते हुए भी शिष्टाचारपूर्वक हाथ मिलाना न भूलते थे।

अधिकार-सम्पन्न लोगों द्वारा स्वागत की दूसरी प्रणाली कुछ भिन्न है। सरदार पटेल की वह प्रणाली थी। वह न हाथ जोड़ कर खड़े होते थे और न प्रायः हाथ बढ़ाते थे। बैठे-बैठे ही हाथजोड़ कर और मुस्करा कर कहते थे,

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

"आओ, बैठो। क्या हाल है?" बस मुस्कराहट और इतने शब्दों से आने वाले को आश्वासन मिल जाता था और वह सरल भाव से अपनी बात कहने लगता था। इसी प्रकार हमारे प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल जी की शैली भी संयत है। विदेशों से आए हुए राजनीतिज्ञों को तो अवश्य ही नवीनतम शिष्टाचार की पद्धति से मिलते होंगे, परन्तु अपने आदमियों से मिलने का उनका ढंग बहुत सादा और प्रदर्शनहीन है। नमस्कार के उत्तर में बैठे ही बैठे नमस्कार करके वह बातचीत आरम्भ कर देते हैं। बातचीत में कोई ऐसी भावना नहीं आने पाती कि आगन्तुक का दिल घबराया रहे। बातचीत द्वारा दूसरे के मन में से आशंका तथा संकोच को दूर कर देना नेहरू जी को विरसे में प्राप्त हुआ है। उनके पिता श्रद्धेय पंडित मोतीलाल जी में भी यही विशेषता थी।

मिलने-जुलने की दृष्टि से अधिकार-सम्पन्न लोगों की एक तीसरी श्रेणी भी है। सम्भव है वे महानुभाव सार्वजनिक जीवन में आपसे बीस वर्ष पीछे हों, परन्तु अधिकार की कुर्सी पर बैठने के अनन्तर आपके कमरे के अन्दर पहुंचने पर मेज पर हाथ रख कर कहेंगे, "कहिए, क्या काम है?" यदि आपने नमस्कार कर दिया तो हलके मुंह से उत्तर दे देंगे अन्यथा बात जारी रखेंगे और पांच-सात मिनट बात करने के पश्चात् या तो कलाई की घड़ी देखने लगेंगे अथवा कोई फाइल अपने पास खींच कर दृष्टि दौड़ाने लगेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह प्रसंग कुछ लम्बा अवश्य हो गया परन्तु मौलाना आज़ाद की विशेषताओं को समझने के लिए इस श्रेणी-विभाग का स्पष्ट करना आवश्यक था। मौलाना की विशेषताओं को स्पष्ट करने के लिए मैं गुरुकुल के सम्बन्ध में अपनी एक छोटी-सी मुलाकात का विवरण लिखता हूं।

मैंने मौलाना के सेक्रेटरी से टेलीफोन द्वारा मिलने का समय ले लिया था। नियत समय पर जब मैं उनके पार्लियामेंट वाले दरवाजे पर पहुंचा तो अकस्मात वहां कोई चपरासी नहीं था। मैंने जाब्ते की ओर अधिक ध्यान न देकर दरवाजे का हैंडल घुमाया और कमरे के अन्दर पहुंच गया। मौलाना अकेले बैठे हुए कोई फाइल देख रहे थे। मुझे अकस्मात आया हुआ देख कर क्षण भर तो आश्चर्य में पड़े, परन्तु तुरन्त ही उनके चेहरे पर वही मुस्कराहट आ गई जो स्वागत के समय आया करती थी। फिर "आइए, प्रोफेसर साहब, बहुत दिनों में आए" कहते हुए हाथ बढ़ा दिया। इस तरह जाब्ते में भूल हो जाने के कारण उत्पन्न हुई मेरी घबराहट को दूर करके अपने सामने की कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। बैठते हुए मैंने कहा, "मौलाना साहब, माफ कीजिएगा, दरवाजे पर कोई चपरासी नहीं था, इसलिए मैं खुद ही दरवाजा खोल कर चला आया।" इस पर अत्यन्त मिठास के साथ मौलाना ने कहा, "आपको किसी से पूछने की क्या जरूरत थी। आप जब चाहें तब आ सकते हैं।"

शिष्टाचार का प्रसंग समाप्त हुआ तो मैंने निवेदन किया कि गुरुकुल से आपकी सेवा में रजिस्ट्री द्वारा दो आवेदन-पत्र भेजे गए थे। आपके निजी मंत्री की रसीद भी प्राप्त हो गई थी, परन्तु उनका कोई उत्तर नहीं आया, लिहाजा मुझे खुद आना पड़ा। इस पर मौलाना आज़ाद ने थोड़ी देर सोच कर उत्तर दिया कि मेरी नजरों से तो आप के कोई पत्र नहीं गुजरे, मैं मालूम करता हूं कि क्या बात है। चपरासी को भेज कर निजी सचिव को बुलाया गया। उनसे मौलाना ने पूछा तो निजी सचिव ने जवाब दिया कि गुरुकुल के पत्र आए थे, परन्तु वे जाब्ते के अनुसार दफ्तर में भेज दिए गए थे। इस पर मेरी ओर देख कर मौलाना साहब बोले, "यह हाल है हमारे दफ्तर का। गुरुकुल का खत आए तो मुझे मालूम तक नहीं। खैर, अब आप एक काम कीजिए। उन खतों को फिर से मेरे निजी सचिव के मार्फत मेरे पास भेजिए, मुझे जरूर मिल जाएंगे। तब आपको शिकायत न होगी।" इस एक बातचीत के विवरण से मौलाना का शिष्टाचार और कार्य करने की प्रणाली की झलक भली प्रकार मिल जाएगी। आवेदन-पत्र फिर श्री कृपलानी की मार्फत भेजे गए, रसीद तो आई ही, उनका परिणाम भी अच्छा हुआ। मौलाना ने उन पर नोट लिख कर आदेश दिया कि आवश्यक कार्यवाही तुरन्त की जाए।

मौलाना आज़ाद देशवासियों के लिए और विदेशियों के लिए भी खरी देश-भक्ति और दृढ़ हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतीक थे। स्वाधीनता संग्राम के दिनों में राष्ट्रीय क्षेत्र में काम करने वाले भारतवासियों के सामने अनेक ऐसे विकट अवसर आए जब उनकी देश-भक्ति और असाम्प्रदायिकता पर प्रबल आघात किए गए। कई बड़े-बड़े स्तम्भ टूट गए और बहुत-से झुक कर विरोधी शक्तियों में जा मिले, परन्तु अनेक प्रलोभनों के आने पर भी मौलाना आज़ाद न टूटे और न झुके, अपितु अपने मार्ग पर दृढ़ता से चलते गए। एक विशेष बात यह थी कि साम्प्रदायिकता का विरोध करते हुए भी वे मुसलमानों में कभी अप्रिय नहीं हुए। उलमा और मौलानाओं में उनका सदा ऊंचा स्थान बना रहा। इसका विशेष कारण यह था कि वे अपनी धर्म-भक्ति और देश-भक्ति को पूर्णतया निभाते थे। इस कठिन कार्य के लिए जितनी दृढ़ता और लचकीलेपन की आवश्यकता थी, दोनों का मौलाना साहब में बढ़िया समन्वय था। मूल सिद्धांतों के सम्बन्ध में दृढ़ता थी और उसके अवान्तर प्रयोगों के सम्बन्ध में लचकीलापन था। इस विषम-समन्वय की सफलता बहुत ऊंची प्रतिभा और बुद्धिमत्ता के बिना सम्भव नहीं।

यह कहना सत्य है कि मौलाना आज़ाद केवल व्यक्ति नहीं थे, एक संस्था थे। भारत की गत सौ वर्षों की राजनीति में ऐसे दो-चार महापुरुष ही हो गए हैं जिन्हें 'संस्था' की उपाधि दी जा सके। उनमें से एक पंडित मदनमोहन मालवीय थे, दूसरे मौलाना अबुल कलाम आज़ाद थे। मुझे ऐसा अनुभव होता है कि यदि पंडित जी कुछ और वर्ष जी जाते तो उन्हें भी कांग्रेस मंत्रिमंडल से बाहर न रखा जा सकता।

मौलाना की नीति कुशलता और समन्वय शक्ति का एक उत्तम दृष्टांत याद है। यह १९३२-३३ की बात है। कांग्रेस के सार्वदेशिक पार्लियामेंटरी बोर्ड की बैठक हो रही थी। सरदार पटेल अध्यक्ष थे। नागपुर के डा० खरे के साथ किसी बात पर सरदार का मतभेद हो गया। डा० खरे बहुत अड़ने वाले व्यक्ति थे। एक तो महाराष्ट्र के निवासी, फिर स्वभाव से हठीले, वह प्रायः सरदार से उलझ जाते थे। सरदार का स्वभाव तो शाही था ही। एक दिन बात बहुत बढ़ गई। डा० खरे उन दिनों मध्यप्रदेश के कर्ता-धर्ता माने जाते थे। दो प्रमुख व्यक्तियों के विवाद में हम युवक सदस्य कुछ स्तब्ध हो गए। सभा का तापमान इतना बढ़ गया कि तबीयत घबराने लगी थी। तब मौलाना साहब ने ठंडा पानी डालने का उपक्रम किया। आपने डा० खरे को सम्बोधन करके कहा, "डाक्टर साहब, सरदार साहब का वह मतलब नहीं है जो आप समझे हैं। उनका मतलब तो इतना है कि ....." फिर सरदार पटेल की ओर देख कर बोले, "सरदार साहब, डाक्टर साहब तो सिर्फ इतना कहना चाहते हैं....." इस तरह दोनों ओर बांध लगा कर उन्होंने लगभग बीस-पच्चीस मिनट में सभा के तापमान को इतना कम कर दिया कि काम शांति से चलने लगा। यह तो नहीं कह सकते कि दोनों महानुभाव मतभेदों को भूल गए हों क्योंकि उन मतभेदों का अन्तिम परिणाम अच्छा नहीं हुआ। डा० खरे को मध्यप्रदेश की कांग्रेस का नेतृत्व ही नहीं अपितु सभासदी भी छोड़नी पड़ी। परन्तु उस समय मौलाना की मंजी हुई वाणी का जादू चल गया और सभा का काम शांति से चलने लगा।

महात्मा गांधी को सभी प्रकार की राष्ट्रीय समस्याओं में मौलाना आज़ाद की सलाह पर गहरा विश्वास था। यह विश्वास पंडित जवाहरलाल नेहरू ने विरसे में प्राप्त किया था। नेहरू जी जब से प्रधान मंत्री बने, मौलाना उनके मुख्य सलाहकार और दाहिने हाथ रहे। मौलाना के वियोग का उन्हें कितना दुःख हुआ इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि मौलाना की मृत्यु के पीछे कई सप्ताह तक नेहरू जी के मन और शरीर दोनों असाधारण रूप से उदास और मुरझाए रहे। इस दशा से निकलने के लिए उन्हें कुल्लू की स्वास्थ्यदायक घाटी की यात्रा करनी पड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुनहगार

रमणलाल वसंतलाल देसाई

मैं गुनाह कबूल करता हूं। आपको मार-पीट करने या मेरे नाखूनों में सूइयां चुभाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, और न ही मुझे अधर लटकवाने की ही आप आवश्यकता अनुभव करेंगे। गुनाह कबूल न करने के विपरीत परिणामों से मैं भली-भांति परिचित हूं।

नहीं साहब, इसमें आपका कोई दोष नहीं है। (गुनाह करने वाले कोई सत्यवादी तो होते नहीं हैं, और न ही पुलिस वालों के पास दिव्य दृष्टि होती है कि गुनहगार का हृदय पढ़ सकें)। बिना मारे-पीटे गुनाह कबूल करवाना कितना कठिन काम है, यह मैं समझता हूं। फिर यदि आप मार-पीट न करें, तो क्या करें!

परन्तु मुझे मार नहीं खानी। अब मैं थक गया हूं, हार गया हूं। न तो मेरे शरीर में ही शक्ति रह गई है और न हृदय में ही। जिसके हृदय में शक्ति ही न हो, वह मार कैसे सहन कर सकता है? हां, (यदि आपके एक ही हंटर से मेरी मृत्यु हो सके, तो मैं आपके हंटर का स्वागत करूंगा)। पर एक हंटर तो क्या, दस हंटर भी मुझे मृत्यु की शान्ति नहीं दे सकते। और मुझे तो मौत चाहिए, मौत की शान्ति चाहिए। इस जीवन से ऊब गया हूं मैं।

नहीं, नहीं, इन फजूल की बातों से गुनाह की बात उड़ा देने की मेरी मंशा नहीं है। वह तो मुझे कबूल है। पुलिस के हाथ पकड़े जाने के बाद गुनाह उड़ा देने की मुझमें चतुरता नहीं है। (निर्दोष मनुष्य को भी पुलिस के सामने अपने पर लगाया गया झूठा आरोप मानना पड़ता है)। फिर मैं तो एक गुनहगार हूं। मैंने गुनाह किया है। फिर भला गुनाह की बात किस तरह उड़ा सकता हूं। मैंने कितने ही जुर्म किए हैं; आज वे सब ही आपके सामने कबूल करता हूँ। सुनिए!

मेरा जन्म उस जाति में नहीं हुआ जिसे कि आप जरायमपेशा समझते हैं। गुनाह तो हर जाति करती है, फिर केवल कुछेक जातियों को ही जरायम-पेशा समझना आपकी भूल है। प्रतिष्ठित जाति में जन्म लेकर भी मैंने गुनाह का आरम्भ बहुत ही देर से किया था। मैं गरीब था, पर धर्मच्युत नहीं था। गरीबी के कारण मैं ज्यादा नहीं पढ़ सका था। मैट्रिक करके ही मुझे स्कूल छोड़ देना पड़ा था। पर मेरे सौभाग्य से या दुर्भाग्य से मुझे एक सेठ के यहां गुमाश्ते की नौकरी मिल गई थी। बीस रुपये माहवार की इस नौकरी को पाकर मैं बहुत ही खुश हुआ था। साहब, गरीब आदमी थोड़े में ही खुश हो जाते हैं!

इस समय जैसा दिखाई दे रहा हूं तब मैं ऐसा नहीं था। इस समय तो आपको मुझमें और एक जंगली भील में ज़रा भी अन्तर नहीं दिखाई दे रहा होगा। परन्तु उस समय मेरी चमड़ी गोरी और सुन्दर थी, मेरा मुंह भी तब इस समय-सा कुरूप नहीं था। इस समय मेरी इन फटी-फटी आंखों में दिखता पागलपन उस समय नहीं था। भले ही आप विश्वास न करें, पर उस समय मैं खूबसूरत आदमी समझा जाता था। खैर, यह सुन्दरता की बात यहीं छोड़ता हूं।

गुमाश्ते के पद पर रह कर मैं कागज़-पत्र और बही लिखने का काम करता था। कुछ दिनों में मुझे लगा कि मेरा काम मुनीम और सेठ दोनों को अच्छा लगा है, यद्यपि मेरे सामने उन्होंने कभी इस बात का जिक्र नहीं किया था। पर हां, मेरे काम की कद्र करके ही वे मुझे और भी अधिक महत्वपूर्ण काम देते रहते थे। इतना ही नहीं, सेठ का घरू काम भी मेरे ही जिम्मे था।

काम से मैं कभी थका नहीं। सेठ की कृपादृष्टि का ध्यान करके ही मैंने अधिक काम का भी स्वागत किया। जो काम मुझे दिया जाता, उसे संकट उठाकर भी मैं पूरा करता।

पर सेठ को खुश रखना जितना आसान था, सेठानी को खुश रखना उतना ही कठिन था। घरू कामों की व्यवस्था सेठानी के द्वारा ही होती थी। सेठानी थी भी ज़बरदस्त औरत। सेठानी के साथ बैठा हुआ सेठ बिल्कुल ही मामूली आदमी लगता था। सेठानी की कठोरता से सारा घर कांपता था। सेठ तक को मैंने उसके सामने भीगी बिल्ली की तरह दबता देखा है। सेठानी की निगाह चारों ओर घूमती रहती थी और उसकी आवाज़ बंगले के कोने-कोने में गूंजती थी। घर के काम-काज के कारण ही मैं उस उग्र स्त्री के झपाटे में आ गया।

उस समय मेरा नाम कुन्दनलाल था। यह अलग बात है कि आज सब कोई मुझे कुन्दनिया, कुनिया या कुन्दो कह कर बुलाते हैं। मेरी बुआ ने क्या देख कर मेरा नाम कुन्दन रखा था, यह मैं आज भी नहीं समझ सका हूं। नाम जैसा गुण मैंने अपने में नहीं पाया।

पहली बार घर का काम सौंपते समय सेठानी ने भारी आवाज़ में, फूली हुई गरदन को अधिक फुला कर, आंखें निकाल कर कहा था—"मेरे सामने कोई गड़बड़ नहीं चलेगी, कुन्दन! जैसा मैं चाहूं, वैसा तुझे करना ही पड़ेगा, नहीं तो तुझे घर बैठना पड़ेगा!"

सेठ के अतिरिक्त प्रत्येक से सेठानी 'तू' कह कर ही बात करती थी। मुझे डर लगा। सेठानी के पास काम करने वाले अच्छे-अच्छे आदमी घर बैठ चुके थे। कांपते-कांपते मैंने उत्तर दिया—"आपको मुझसे कोई शिकायत नहीं होगी, मालकिन।"

सेठानी को दिए इस वचन का मैंने सदैव पालन किया। अक्सर रात के बारह-बारह बजे तक मैं उन्हीं के काम में पिला रहता। दिन में दफ्तर का काम करता था सो अलग। पर मैंने कभी भी काम की अधिकता की चिन्ता नहीं की। सेठ-सेठानी को अपने काम से खुश रखना ही मेरा ध्येय हो गया था। और इसी में मैंने अपनी उन्नति भी होती देखी। वास्तव में देखी नहीं, केवल कल्पना ही की थी।

सेठानी ने मुझे घर नहीं बैठन दिया, इससे मैं कह सकता हूं कि उसे मेरा काम पसन्द आया था। पर, कभी-कभी कोई बहाना निकाल कर वह मुझे यह नहीं भूलने देती थी कि मैं एक अदना नौकर हूं। (नौकरों को बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कसूर भी धमकाया जा सकता है, बिना कसूर धमका कर, दबा कर, भयभीत रखना सुव्यवस्था का सूत्र माना जाता है न ! किसी से कोई गलती हो जाने पर क्रोधित सेठानी मुझे भी चेतावनी देती रहती थी कि मैं कहीं ऐसी गलती न करूं ।

किन्तु जिस दिन सेठानी ने सेठ को एक हुक्म दिया, मुझे लगा कि मेरी सारी मेहनत, मेरा सारा जीवन सफल हो गया ।

"सुनते हैं न ? इस कुन्दन को अपने बगीचे में ही रहने को जगह दे दीजिए । पास रहेगा तो काम पड़ने पर बताती रहूंगी । दूर रहने क कारण इसे कोई काम भी नहीं कह सकती ।"

भले ही सेठानी का यह अभिप्राय रहा हो कि दूर रहने के कारण मुझ से अधिक काम नहीं ले सकती, पर मेरा यह अभिप्राय नहीं था । फिर भी सेठानी की बात से मुझे संतोष और गर्व हुआ । मुझे इतना विश्वास हो ही गया कि वह मेरे काम से सन्तुष्ट है ।

"पर उसे कहां रखोगी ?" सेठ ने पूछा ।

"उसे रहने के लिए कितनी जगह चाहिए ! दो-तीन कोठरी खाली करवा दूंगी ।" सेठानी ने कहा ।

जिस तरह कुत्ते के सामने ज्यादा या कम, बची हुई रोटी फेंक देते हैं, मेरे लिए कोठरी खुलवा देना भी वैसा ही था ।

"पर वह तो बाल-बच्चों वाला है । अभी कुछ दिन पहले मैंने उसकी तनख्वाह में पांच रुपये बढ़ाए हैं ।" सेठ ने कहा ।

छः-सात वर्ष की नौकरी के बाद सेठ ने मेरी तनख्वाह में पांच रुपये बढ़ा कर उदारता दिखाई थी, यह सच है ।

"उसके बाल-बच्चों को यहां से कोई ले तो नहीं जाएगा ! कोठरियों का किराया नहीं लेंगे । उसे इतनी छूट और दे दो ।"

मेरे छोटे-से परिवार में मैं, मेरी पत्नी और एक नन्ही बच्ची, कुल तीन प्राणी थे । बहुत छोटी उम्र में ही मेरा विवाह हो गया था । मेरी पत्नी भी मेरी ही तरह गरीब घर की थी । इसी कारण बिना ज्यादा लेन-देन और खर्च के हमारा विवाह हो गया था । मेरी पत्नी थोड़ी-बहुत गुजराती पढ़-लिख ले ी थी ।

वह केवल पढ़ी-लिखी हो, सो बात नहीं । वह बहुत ही शान्त स्वभाव की, मेहनती, आज्ञाकारी तथा सुशील थी । उसके नयन-नक्श भी आकर्षक थे । मुझे तो बहुत ही अच्छी लगती थी वह । मेरी निर्धनता पर कभी उसने असंतोष प्रगट नहीं किया था । उलटे, जब कभी मैं अपनी निर्धनता पर खीझ उठता था तो वह मुझे आश्वासन देती हुई कहती--"इतना असंतोष भी किस काम का ! मुझे तो कुछ भी नहीं चाहिए ।"

मौत के इच्छुक मनुष्य के ये आंसू जीवित रहते हैं ! पत्नी की याद आने पर आज भी आंसू उमड़ आते हैं । पर इन आंसुओं का मूल्य मेरे लिए ही है । वह तो स्वर्ग सिधार गई । अब उसकी बात नहीं करूंगा । आपकी आज्ञानुसार गुनाह से सम्बन्धित बात ही करूंगा । मैं जानता हूं कि आपको मेरी यह बकवास सुनने की फुरसत नहीं है ।

सेठानी की इच्छानुसार सेठ ने मुझे आज्ञा दी और मैं बगीचे में रहने लगा । बंगले के निकट की कोठरी मुझे बंगले-सी ही लगी । पर मेरी पत्नी ने उस अच्छी जगह रहने में कोई उत्साह नहीं दिखाया । वह अक्सर कहती रहती, "बड़े आदमियों का पड़ोस अच्छा नहीं होता । हम यहां शोभा नहीं पाते ।" पर मैं उसकी बात को हंसी में उड़ा देता था ।

मेरी एक सात वर्ष की बेटी थी । सेठ के भी लगभग इतनी ही उम्र की एक लड़की थी । मेरी बेटी का नाम सरिता था और सेठ की बेटी का नाम प्रियबाला । यहीं से मेरे गुनाह की कहानी आरम्भ होती है ।

सरिता प्रियबाला की अपेक्षा कम सुन्दर नहीं थी । मां-बाप की आंखों को तो अपने बच्चे वैसे भी कुरूप नहीं लगते । बच्चे बहुत शीघ्रता से आपस में मित्र बन जाते हैं । उस उम्र में गरीबी-अमीरी, ऊंच-नीच का अन्तर उन्हें मालूम नहीं होता । न जाने कब, कैसे सरिता और प्रियबाला में परस्पर मित्रता स्थापित हो गई । जब-तब उन्हें बगीचे में साथ-साथ खेलते देख मैं खुश हो जाता था ।

परन्तु मेरे भाग्य में यह खुशी ज्यादा दिन तक नहीं लिखी थी । बंगले के एक विशाल कमरे में बैठा मैं शेयर के कागज देख कर ब्याज लगा रहा था । सेठ-सेठानी का मैं इतना विश्वासपात्र हो गया था कि कभी-कभी उनकी तिजोरी और जेवरात के सन्दूक की चाबी तक वे मुझे दे देते थे । दूर एक कोने में बैठे सेठ अखबार पढ़ रहे थे । तभी जोर से कमरे का द्वार खुला और सेठानी का क्रुद्ध स्वर सुनाई दिया--"यह तो एक बड़ी मुसीबत है !"

सेठानी की असंख्य मुसीबतों में एक और मुसीबत की वृद्धि हुई देख सेठ ने कोई आश्चर्य प्रकट नहीं किया । फिर भी, जैसे बनावटी चिन्ता प्रकट करते हुए बोले--"क्यों, क्या बात है ?"

"आप नहीं देख रहे हैं ! अपनी प्रियबाला कमीनों के साथ खेलने लगी है ! ओह ! कितना बुरा असर पड़ेगा उस पर ।"

"यहां तो कोई ऐसा बच्चा नहीं है । नौकरों के बच्चे तो इधर आते नहीं हैं । तुमने जब से मना किया है, तब से . . . ."

"तो क्या यह कुन्दन तुम्हारा नौकर नहीं है ?" सेठानी इस तरह बोली जैसे मेरी उपस्थिति से अनभिज्ञ हो । सेठानी के शब्दों से मेरा मस्तिष्क भन्ना उठा ।

"अरे, तो इससे क्या हुआ ?" सेठ की आवाज में संकोच था, आगे बात न बढ़ाने का संकेत था । वह तो जानते थे कि मैं इतना करीब बैठा हूं कि हर शब्द सुन सकूं ।

"पूछ रहे हैं, इससे क्या हुआ ! देखते नहीं, रात-दिन उसकी छोकरी के साथ प्रियबाला भटका करती है ! इस तरह तो वह बिल्कुल बिगड़ जाएगी ।"

"ठीक है, देखूंगा ?" कह कर, सेठ जल्दी से कमरे से बाहर हो गए ।

सेठानी भी उनके पीछे-पीछे लपकी । मैं अकेला रह गया ।

मैं जरूर ही नौकर वर्ग में था । रुपये-पैसे में मैं सेठ से कमजोर था, इसी से प्रतिष्ठा में भी कमजोर था, यह मैं कबूल करता हूं । पर मैं यह मानने के लिए कतई तैयार नहीं कि मेरी गरीबी के कारण मेरी पुत्री प्रियबाला के साथ खेलने के लिए अयोग्य थी । सेठानी के शब्दों से मैं जल उठा । क्या एक ईमानदार नौकर बेईमान मालिक से निकृष्ट है ? यह कैसा न्याय है ।

सारे दिन मैं इस तरह काम करता रहा जैसे कुछ हुआ ही न हो । पर घर पहुँचते ही वह बात फिर ताजी हो गई । मेरी बेटी एक ओर खड़ी रो रही थी । और सदा शान्त रहने वाली मेरी पत्नी ने उग्र रूप धारण कर रखा था ।

"क्या हुआ ?" मैंने पूछा ।

"कुछ नहीं ।" पत्नी ने जवाब दिया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"फिर यह सरिता क्यों रो रही है ?"

"मां मेरे पांव तोड़ देने के लिए कह रही है !" रोते-रोते सरिता ने मां की शिकायत की ।

बातचीत में मैंने जाना कि सेठानी ने मेरी पत्नी को बुला कर डांटा-धमकाया था कि आगे से कभी सरिता को प्रियबाला के साथ न खेलने दे । सरिता प्रियबाला को बिगाड़ रही है । गरीब और तिसपर औरत जात ! वह किस पर गस्सा उतारती ! कोठरी में आकर सरिता को धमका कर उसने कहा था--"अब कभी तूने बंगले में पांव रखा, तो तेरे पांव तोड़ दूंगी !"

बच्ची के पांव तोड़ने की अपेक्षा सेठ का बंगला जला देना क्या ज्यादा अच्छा नहीं होता ? परन्तु मैं कुछ बोला नहीं । हंस कर बच्ची को अपनी गोद में खींच लिया । किन्तु मुझे और मेरी पत्नी को इस अपमान की याद से सारी रात नींद नहीं आई ।

दो-तीन दिन तक प्रियबाला और सरिता साथ-साथ नहीं दिखीं । पर एक दिन संध्या समय सेठानी की चीख-पुकार से मैंने जाना कि दोनों बगीचे में पेड़ के पीछे छप कर खेल रही हैं । तत्काल मैं उस ओर दौड़ा गया । सेठानी सरिता को धमकाने के बदले मुझे धमकाने लगी--"तुझे कितनी बार कहना पड़ेगा, कुन्दन? तेरी यह सरिता हरदम प्रियबाला के पीछे पड़ी रहती है । देख, आज इसने यह ट्राइसिकिल तोड़ कर रख दी है ! छोकरी को काबू में क्यों नहीं रखता?"

सेठानी को करारा जवाब देने के लिए मेरे हृदय में उबाल-सा उठने लगा । पर मेरी जबान को मालूम था कि मेरा पोषण सेठ की दी हुई तनख्वाह से ही होता है । सरिता को साथ लेकर मैं वापस लौटा । पीछे से मैंने सेठानी को कहते सुना--"कितना सिर चढ़ा रखा है इस छोकरी को ! एक शब्द भी तो नहीं कहता !"

और सच, मैंने सरिता से कुछ भी नहीं कहा ! पर वह रोने लगी थी । और उसे रोती देख पत्नी ने कहा था--"अब आगे से कभी प्रियबाला के साथ खेलने मत जाना ।"

"मैं खुद खेलने नहीं जाती हूं, मां । वही मुझे बुला कर ले जाती है ।"

"वह बुलाए तो भी अब कभी मत जाना । समझी?"

एकाध दिन शान्ति रही । नौकर या नौकर के बच्चों का अपमान करना तो मालिक का हक होता है । फिर सेठानी का क्या दोष ! जैसे कुछ हुआ ही न हो ! इस तरह सेठानी मुझसे पूर्ववत व्यवहार करने लगी और हुक्म देने लगी । उसे याद ही नहीं रहा कि कभी उसने मेरा अपमान भी किया था ।

दूसरे दिन सेठानी और प्रियबाला कहीं घूमने जा रही थीं । मेरी बेटी कोठरी की छत पर खेल रही थी । प्रियबाला ने उसे देख आवाज दी--"सरिता !"

सरिता ने उसकी ओर देखा, पर मां की सीख के कारण कुछ बोली नहीं । उलटे वह कोठरी में जा छिपी । सेठानी से यह गुस्ताखी सहन नहीं हुई ! सारा बगीचा सुन सके, इतनी जोर से बोली--"किस बात पर इतना घमंड है इस छोकरी को ? न बोले तो न सही ! कमीने और. . . ."

मैं कुछ नहीं बोला । पर उसी क्षण से मैं सेठ-सेठानी का दुश्मन हो गया । सेठानी का खून तक कर देने का मैंने विचार किया । उसे तड़पा-तड़पा कर मारने की मैंने कल्पना की, उनका धन लूट कर, उन्हें दर-दर भीख मांगते देखने के दृश्य को अपनी आंखों के सामने सजीव कर, मैंने अपनी वैर-वृत्ति को सन्तुष्ट किया । परन्तु तीस रुपये महीने की तनख्वाह ने मुझे इतना कायर बना दिया था कि उग्र कल्पना गढ़ कर भी मैं सेठ-सेठानी से एक उग्र शब्द तक नहीं कह पाया ।

बेचारी प्रियबाला ! एक दिन हमारी कोठरी में जा पहुंची । वह भोली बच्ची ऊंच-नीच का भेद-भाव क्या समझती ! अपनी मां की तरह सरिता को वह अस्पृश्य नहीं समझती थी । उसे तो खेलना था, और उसके लिए एक साथी की जरूरत थी । बोली--"सरिता के साथ खेलने आई हूं, कहां है वह ?"

उसे किस तरह सरिता के साथ खेलने से मना किया जा सकता था ! माता का अन्याय वह अस्पष्ट तरीके से समझती थी । मां और आया की नजर बचा कर सरिता के साथ खेलने आई थी । बालक हमेशा अपने हमउम्र साथी के साथ ही खुश रहता है । अब तक सरिता भी वहां जा पहुंची थी । और जाते ही प्रियबाला के साथ इस तरह खेलने लगी, जैसे हमसे आज्ञा लेने की कोई आवश्यकता ही न हो ।

पन्द्रह-बीस मिनट के बाद प्रियबाला की आया ने कोठरी के बाहर आकर धीरे से प्रियबाला को आवाज दी । प्रियबाला सुनते ही बाहर निकल आई । वह अपने जितने खिलौने लाई थी, आया वे सब उठा कर ले गई । न जाने कैसे एक गुड़िया मेरी कोठरी में रह गई ।

घंटे भर बाद प्रियबाला को गुड़िया की याद आई । आया वह गुड़िया ढूंढ़ती-ढूंढ़ती हमारी कोठरी में भी आई । और एक जगह गुड़िया रखी देख, बड़-बड़ाती हुई चली गई । कुछ देर बाद मेरा बुलावा आया । मैं सेठानी के पास गया । भाग्य से ही कभी नौकरों ने सेठानी को सौम्य रूप में देखा होगा !

मुझे देखते ही वह बोली--"बच्चों की बात तो कुछ नहीं, कुन्दन ! पर अब तू भी चोरी करने लगा ?"

मैं समझ गया । वह प्रियबाला की गुड़िया का उल्लेख कर रही थी । फिर भी मेरी आंखों में तथा कंठ में उष्मा आ गई--"क्या कह रही हो, मालकिन ? कैसी चोरी ?"

"एक तो चोरी की, ऊपर से सीना जोरी करता है? तेरी बहू उस छोकरी को चोरी करना सिखाती है । यह खिलौना आया लाई है तेरी कोठरी में से । अब समझा ?"

"यह खिलौना तो हमारा है, मैंने खरीदा था ।" क्रोध से मैं बोला ।

"यह बात है ! तीस रुपये तनख्वाह में तू इतने कीमती खिलौने भी खरीद सकता है ?"

बिजली जैसा कोई प्रकाश मेरे हृदय में कौंध गया । अपनी ईमानदारी-पूर्ण नौकरी से मैंने सेठ के अधिक नहीं तो आठ दस हजार रुपये बचाए थे । अन्य गुमाश्ते मेरी ईमानदारी को मूर्खता कहते थे । पर उनके रोज-रोज के तानों से मैं जरा भी विचलित नहीं हुआ था । और आज उसी ईमानदारी का मुझे इस रूप में बदला दिया जा रहा था !

मैं उसी दिन अपनी बच्ची के लिए एक ट्राइसिकिल और टोकरी भर कर खिलौने लाया । बच्ची बहुत-बहुत खुश हुई । उसे खुश देखने के लिए ही मैंने सेठ के रुपयों से वे खिलौने खरीदे थे । खिलौने खरीदते समय मुझे लगा था कि सेठ के रुपयों पर मेरा भी पूरा-पूरा अधिकार है । किन्तु मेरी पत्नी ने इस तरह खिलौनों में पैसे बरबाद कर सेठानी से बदला लेने के लिए मुझे मना किया । वह बेचारी समझती थी कि मैंने अपनी तनख्वाह के तीस रुपयों में से ही ये खिलौने खरीदे हैं ।

मुझे अब सेठ के पैसे अपने पैसे दिखने लगे । दलाली, कमीशन आदि से मुझे तनख्वाह से अधिक आय होने लगी । किसी को कुछ शंका भी न हुई ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उलटे सेठ के सम्पर्क में आने वाले व्यापारियों को मेरे इस कार्य से अधिक सुविधा होने लगी ।

एक दिन प्रियबाला हीरे की बंगड़ियां पहने मेरी कोठरी में आई । मैं वहां नहीं था । रात में मुझे मालूम हुआ । मेरी पत्नी ने सरिता को पीटा था । कारण, सरिता ने प्रियबाला जैसी हीरे की बंगड़ियों की मांग की थी । गरीब आदमी के बच्चों को अच्छी चीज पहनने की इच्छा हो तो बेचारों को पीटा जाए, यह कहां का न्याय है !

मैंने अपनी पत्नी से कहा--"अरे, इसमें मारने-पीटने की क्या बात है ? क्या बच्चों का मन नहीं होता ?"

"क्या कह रहे हैं आप ! इस छोकरी को बिगाड़ना है क्या ?"

मैं कुछ बोला नहीं । आज तक मुझे अपनी गरीबी कभी अखरी नहीं थी । पर जब यह गरीबी मेरी बच्ची की आंखों से आंसू बन बहती, तो मेरे लिए असह्य बन जाती । यही कारण था कि बच्ची की खातिर गरीबी दूर करने के समस्त पापकर्म मेरी दृष्टि में पाप-रहित हो गए ।

सेठ की तिजोरी की चाबी कभी-कभी मेरे पास रहती थी । एक दिन मैंने प्रियबाला की बंगड़ियां उठा लीं और पत्नी को देते हुए कहा--"कल यह बंगड़ी सरिता को पहना कर गांव ले जाना । कोई इसे पहने देखे नहीं, बस, इस बात का ध्यान रखना ।"

मेरी पत्नी ने पहले तो वह बंगड़ी हाथ में ली ही नहीं, पर जब मेरा उग्र रूप देख उसने बंगड़ियां लीं, तो जैसे जल गई हो, इस तरह चमक गई ।

क्षण भर बाद वह बोली--"कहां से लाए ?"

"तुम्हें क्या मतलब है ? जैसा मैं कहूं, वैसा करती जाओ ।"

"इस तरह किसी दिन हम बड़ी भारी विपत्ति में पड़ेंगे ।" पत्नी ने कहा ।

दूसरे दिन एकाएक सेठ ने मुझे काम से दूसरे गांव भेज दिया । मैं रात में ही वापस लौटने वाला था, पर काम की अधिकता से लौट न सका । दूसरे दिन जब मैं लौटा, तो मेरी कोठरी पुलिस से घिरी हुई थी । मेरा हृदय थरथरा उठा । सारे शरीर में कंपकंपी छूट गई । मैं संभल पाता, इससे पहले ही पुलिस ने मुझे पकड़ लिया । सब जान गए थे कि मैंने सेठ की हीरे की बंगड़ियां चुराई थीं ।

सेठानी मुझसे कहीं अधिक चालाक थी, यह मैं भूल गया था । जिस दिन मैंने प्रियबाला की गुड़िया अपनी बनाई थी और जिस दिन मैंने सरिता के लिए ट्राइसिकिल खरीदी थी, उसी दिन से सेठानी ने हम पर पहरा बैठा दिया था । मैं नहीं जानता था कि हमारे हर काम पर सेठानी की नजर रहती है । यद्यपि मैं कभी ऐसा काम नहीं करता था कि जिससे पकड़ा जाऊं, पर बेटी को हीरे की बंगड़ियां पहनाने की ममता में मैंने जो दुस्साहस किया था, वह अक्षम्य था । हीरे की बंगड़ी पहन मां के साथ देव-दर्शन को गई मेरी बेटी को सेठ की एक नौकरानी ने देख लिया था । उसने सेठानी से कहा । सेठानी ने तिजोरी खोल कर देखा, तो वहां बंगड़ियां नहीं थीं । पुलिस में रिपोर्ट की गई । पुलिस के आते ही बंगड़ियां मिल गईं । चोरी और विश्वास-घात का मुझ पर जुर्म लगा । और घर आते ही मैं पकड़ा गया । मैंने अपने बचाव में बहुत दलीलें दीं कि मैं विश्वासपात्र नौकर हूं । तिजोरी तक मैं खोला करता था । अव्यवस्थित रखी बंगड़ियों को ठीक तरह रखने के लिए निकाला गया था । भूल से वह मेरी जेब में ही रह गई । उसी दिन मुझे काम से दूसरे गांव जाना था, सो जल्दी और भूल से वापस तिजोरी में रखना भूल गया । अज्ञानतावश मेरी पत्नी ने हुलस में आकर सरिता को बंगड़ियां पहना दी थीं । चोरी करने का मेरा उद्देश्य नहीं था ।

मेरा बंगड़ियां चुराने का विचार था भी नहीं । तिजोरी की चाबी चूंकि मेरे पास थी, सो बच्ची को बंगड़ी पहना कर खुश करने की नीयत से मैंने उन्हें उठा लिया था । बच्ची को खुश कर मैं बंगड़ियां वापस यथास्थान अवश्य रख देता ।

पर मेरी झूठी-सच्ची दलील किसी ने न मानी । मुझे हिरासत में ले लिया गया । उसी रात मेरी पत्नी ने जहर खाकर आत्महत्या कर ली । कचहरी में मुकदमा चला । मैंने सारी हकीकत बयान कर दी । किसी तरह का बचाव नहीं किया । बचाव करने की मुझमें शक्ति थी भी नहीं । न्याया-धीश ने न्याय किया । मुझे दो साल की सजा हुई ।

मेरी इन बातों से आप ऊब गए हैं न ? ऊबेंगे ही । इसी कारण मैंने बस खास-खास बातें ही कही हैं । पर मेरी इन बातों से आपको क्या सरोकार!

कैद में मैं तड़प रहा था । सोते-जागते मेरी मृत पत्नी और जीवित बेटी आंखों के सामने घूमती रहती थी । मैं सारी दुनिया का, दुनिया भर के धनिकों का दुश्मन बन गया था । सेठानी की लड़की को हीरे की बंगड़ियां और मेरी बेटी को हीरे की बंगड़ियों की इच्छा रखने का भी अधिकार नहीं ! सेठ ने अपनी बुद्धि से पैसा पैदा किया था, यह बात कौन कह सकता है ? क्या धन के बल पर सेठ हम लोगों की बुद्धि से लाभ नहीं उठा रहा था ? धन की ढेरी पर सेठ-सेठानी कुत्ते की तरह धुड़कते खड़े रहें और सारा समाज उनकी सहायता करे !

जिस किसी तरह मेरी कैद की अवधि समाप्त हुई और जेल से छूटते ही बेटी से मिलने के लिए मैं दौड़ पड़ा । पर उसके पास क्या मैं खाली हाथ जाता ? मैंने एक दूकान से खिलौने चुराए और कपड़े की दूकान से कपड़ा चुराया ? बहुत सफाई से चोरी करने पर भी मैं पकड़ा गया । और बेटी का मुंह देखे बिना फिर एक बार साल भर के लिए कैद में जकड़ दिया गया ।

अब मुझमें उत्साह, वैर या शक्ति नाममात्र को भी नहीं रह गई थी । किन्तु बेटी को देखने के लिए मैं व्याकुल था । सजा पूरी होने पर मैं फिर बेटी से मिलने को अधीर हो गया ।

पर मुझे रेल का किराया कौन देता ? बिना टिकट गाड़ी में बैठने में कितनी जोखम है ? फिर पकड़ा गया तो बेटी को देखे बिना दुबारा जेल में जाना पड़ेगा ।

स्टेशन के पास एक स्थान पर भीड़ जमा थी । और रिपोर्ट करने वाले यह सज्जन भीड़ में खड़े कुछ देख रहे थे । इनकी फूली हुई जेब देख कर मेरा मन विचलित हुआ । भीड़ में घुसने का दिखावा करते हुए मैंने इनकी जेब में से यह बटुआ निकाल लिया । इन्हें तो कुछ ध्यान नहीं था, पर भीड़ में खड़े एक दूसरे आदमी ने मुझे बटुआ निकालते देख पकड़ लिया । और इन सज्जन को खबर की । इन्होंने मुझे पुलिस के हवाले कर दिया । इस तरह एक बार फिर मैं आपके सामने आया हूं ।

साहब, चोरी के अतिरिक्त अब किसी काम से मैं पैसा पैदा नहीं कर सकता । यों अब मुझे रुपये-पैसे की जरूरत है भी नहीं । मैं तो मरना चाहता हूं । मात्र एक इच्छा रह गई थी पुत्री को देखने की । मरने से पहले एक बार उसे देखना चाहता हूं ।

मैंने सुना था कि सरिता को मेरा एक रिश्तेदार अपने घर ले गया था । उसके यहां जाने के लिए मुझे रेल किराया चाहिए । बेटी के हाथ में देने के लिए कोई चीज चाहिए, पर अब मैं वह भी नहीं मांगता । क्या बेटी को देखने का अधिकार भी मुझसे छीन लिया जाएगा ?

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलमान कवियों के काव्य में हिन्दू संस्कृति

ज़फ़रअली सैयद

मुसलमान कवियों पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि शताब्दियों तक भारत में रहने पर भी उन्होंने अपने आपको विदेशी ही समझा, उन्होंने सदा इस्लाम का गुण-गान किया, गुलो-बुलबुल, शमा-परवाना, रुस्तम-सुहराब, शीरीं-फरहाद और क़ैस-लैला की दास्तानें दुहराईं। इस प्रकार उनके काव्य पर भारतीय आदर्श और भारतीय संस्कृति की छाप नहीं पड़ी।

किन्तु वास्तव में यह धारणा एक अतिशयोक्ति है। मुसलमान कवियों के काव्य का गम्भीर अध्ययन करने पर हम दावे के साथ यह कह सकते हैं कि उनमें से कितनों ही का काव्य हिन्दू आदर्श और हिन्दू संस्कृति से ओतप्रोत है, फिर चाहे उनकी रचनाएं हिन्दी में हों, फारसी में हों या उर्दू में। हिन्दू कवियों की भांति ही उनकी रचनाओं में हिन्दू संस्कृति इस प्रकार विद्यमान है जैसे शरीर में आत्मा।

जिन मुसलमान कवियों के काव्य में हिन्दू संस्कृति की गहरी छाप दिखाई पड़ती है उनमें अमीर खुसरो, मलिक मुहम्मद जायसी, अब्दुल रहीम खानखाना, सैयद इब्राहीम 'रसान' वाहिद, बहादुर शाह ज़फर, नज़ीर अकबराबादी, मौलाना ज़फरअली खाँ, मुर्तजा अहमदखाँ, सैयद अब्दुल जलील बिलग्रामी, हफीज जालन्धरी, अब्दुल मजीद भट्टी इत्यादि प्रमुख हैं।

योगिराज कृष्ण और पुरुषोत्तम राम के चरित्र भारतीय साहित्य में विशेष स्थान रखते हैं। कोई ऐसी भाषा या जाति नहीं जो इनके जीवन से प्रभावित न हुई हो। मुसलमान कवियों ने भी योगिराज कृष्ण पर लेखनी उठाई है और अपनी भक्ति के काव्य-पुष्प उनके श्रीचरणों में अर्पित किए हैं।

कवि रसखान तो कृष्ण भक्ति में इतने डूब गए थे कि उन्होंने प्रत्येक स्थिति में श्रीकृष्ण का सामीप्य चाहा है ––

मानुष हौं तो वही रसखानि
बसों ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बसु मेरो
चरों नित नन्द की धेनु मंझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि पै
जो धरयो कर छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तो बसेरों करौं
मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन।

कवि 'वाहिद' कृष्ण की मुरली पर ही मुग्ध हो गए––

सुंदर सुजात पर मंद मुसकान पर
बांसुरी की तान पर ठोर न लगी रहे।
मरति विशाल पर कंचन की माल पर
खंजनि सो चाल पर खोरन सजी रहे।
माहे धनु मैन पर लोने मृग नैन पर
शुद्ध रस वैन पर, 'वाहिद' पगी रहे।
चंचल से तन पर सांवरे वदन पर
नन्द के नन्दन पर लगन लगी रहे।

नज़ीर ने कृष्ण महिमा पर एक लम्बी कविता लिखी है जिसमें कंस का अत्याचार, कृष्ण का जन्म, उनका बालपन, गोपियों के साथ उनकी रास-लीला, उनका माखन चोरी कौशल इत्यादि का वर्णन बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है। कृष्ण के बालपन से सम्बन्धित पंक्तियां देखिए––

जब पांव चलने लागे बिहारी नवल किशोर
माखन उचक्के ठैर मलाई दहीं के चोर।
मन हाथ दूध से भर कपड़े भी शोर बोर
डाला तमाम ब्रज की गलियों में अपना शोर।
ऐसा था बांसुरी के बजैया का बालपन
क्या कहूँ मैं किशन कन्हैया का बालपन

अब देखिए कृष्ण की बांसुरी पर कुछ पंक्तियां––

हर मन की हो मोहनी और चित्त लुभावनी,
निकली जहाँ धुन उसकी, वह मीठी सुहावनी।
सब सुनने वाले कह उठे, जय जय हरी हरी,
ऐसी बजाई कृष्ण कन्हैया ने बांसुरी।

एक दूसरे कवि मौलाना ज़फरअली खाँ तो कृष्ण की मोहिनी मूरत पर ही रीझ गए हैं, कहते हैं––

कृष्ण तेरे हुस्न की तस्वीर है वह मोहिनी,
देखने से जिसको मुझ पै छा जाती है बेखुदी।

श्री मुर्तजा अहमद खाँ कृष्ण की वंशी से मस्त होकर लिखते हैं––

कान अब तक सुन रहे हैं बांसुरी की वह सदा
जो दिल एहले दर्ज का मथुरा में तड़पाती रही।

मुसलमान कवियों ने हिन्दुओं के धार्मिक ग्रंथों पर भी लिखा है। महाभारत के युद्ध में कृष्ण का अर्जुन को उपदेश आज हमारे सामने गीता का रूप लिये हुए है। मौलाना ज़फरअली खाँ गीता को सम्बोधित करते हुए लिखते हैं––

दिलों पर डालती आई है तेरे सिहर के गीता
नहीं मिटने में आई है यह जादू की लकीर अब तक।

इसी युद्ध में कृष्ण अर्जुन के रथवान बने थे और अर्जुन को विजयी बनाया था। शायद इसलिए मुर्तजा अहमद खाँ कृष्ण के सैन्य-संचालन की निपुणता के विषय पर लिखते हैं––

तेरी रथबानी का फिर हिन्दोस्तां मुहताज है।
और इस नम की हकीकत का जहां मुहताज है।

श्री सैयद अब्दुल जलील बिलग्रामी तो इस अधम संसार से परे श्री कृष्ण की शरण में जाना चाहते हैं ––

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधम उधारन नमवा सुनिकर तोर
अधम काम की बटियां गहि मन मोर
मन वच कायक निशि दिन अधमी काज
करत करत मन भुरिगा हो महाराज
बिलग्राम कर वासी मीर जलील
तुम्हारी शरण गहि गोह ये निधिशील।

हफ़ीज जालन्धरी की ज़बानी कृष्ण का रूप-वर्णन सुनिए--

यह कृष्ण की तस्वीर
गोकुल का ग्वाला--
यह नन्द का लाल
बलराम का भैया
मथुरा का बसैया
आ श्याम इधर आ--
बंशी तो बजा जा।'

यही नहीं, मुसलमान कवियों ने हिन्दुओं के प्रसिद्ध मेलों का भी सुन्दर वर्णन किया है। आइए, नज़ीर के साथ बलदेव जी के मेले की सैर करें--

सैकड़ों रंग रंग की छड़ियां, फूल गेंदों के हार की लड़ियां
कहीं छूटे अनार फुलझड़ियां, कहीं खिलती हैं दिल की गुलछड़ियां
कहीं उल्फत से अखियां लड़ियां कहीं बाहें गले में है पड़ियाँ
ऐशो इशरत की लड़ रहीं छड़ियां, दाल, मूठें, तिकोने और बड़ियां
रंग है रूप है झमेला है।
जोर बलदेव जी का मेला है।

अब जरा नज़ीर के ही संग 'सुलोनी की बहार' का मजा लूटिए--

मची है हर तरफ क्या क्या सुलोनी की बहार अब तो
हर इक गुलरू फिरे है राखी बांधे हाथ में खुश हो।
हवस जो दिल में गुजरे है कहूं क्या आह मैं तुम को
मैं अपने हाथ से प्यार के बांधूं प्यार की राखी।

हिन्दू धर्म में गंगा-यमुना जैसी पावन नदियों को धार्मिक महत्व प्राप्त है। मुसलमान कवियों ने भी इन नदियों के सामने श्रद्धा से अपना मस्तक झुका दिया है। बिस्मिल इलाहाबादी के शब्दों में यमुना की स्तुति सुनिए --

नाज़ क्यों न हो तुझे कृष्ण दुलारी यमुना
तू तो राधा की सहेली बनी प्यारी यमुना।

इसके अतिरिक्त मुसलमान कवियों ने हिन्दू त्यौहारों को बड़े ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। नज़ीर ने होली के सम्बन्ध में लिखा है--

कुछ घुंघरू ताल झनकते हों तब देख बहारें होली की।
जब फागुन रंग झमकते हों तब देख बहारें होली की।
और दफ के शोर खड़कते हों तब देख बहारें होली की।
सागर मय के छलकते हों तब देख बहारें होली की।"

फिर नज़ीर ने दिवाली पर्व पर अपनी लेखनी उठाई--

अजब बहार का है दिन बना दिवाली का
जहां में यारो अजब तरह का है यह त्यौहार
किसी ने नकद लिया और कोई करे उधार
खिलौनों, खीलों, बताशों का गर्म है बाज़ार
हर इक दूकान में चिराग़ों की हो रही है बहार।
सबों को फिकर है अब जावजा दिवाली का।

अब अमीरअली 'मीर' से विजया दशमी के बारे में सुनिए--

थी विजयदशमी यही जब राम ने दल साज कर
गिर-प्रवर्षण से चढ़ाई की थी लंका राज पर
मार रावण को वहां उद्धार सीता का किया
और लंका का विभीषण को तिलक था दे दिया।

श्रीकृष्ण के अतिरिक्त श्रीराम, राजा दशरथ, सीता इत्यादि पर भी मुसलमान कवियों ने लिखा है। विस्तार के भय से केवल एक उदाहरण ही प्रस्तुत किया जाता है। मौलाना ज़फरअली खाँ ने अपनी एक कविता 'एक ऋषि के दागे-जिगर की कहानी राजा दशरथ की ज़बानी' में राजा दशरथ के शिकार की एक दुर्घटना का वर्णन, जिसमें राजा दशरथ भूल से श्रवण पर तीर चला देते हैं, इतने करुण ढंग से किया है कि आंसू छलक पड़ते हैं। श्रवण की मृत्यु के बाद जब राजा दशरथ उसके वृद्ध माता-पिता के पास जाते हैं तो वे राजा दशरथ को ही श्रवण समझ बैठते हैं। तब दशरथ दुःख से कहते हैं--

मैं नहीं हूं ऐ भक्त भगवान के बेटा तेरा।
राजा हूं कम्बख्त दशरथ इस उजड़े देश का।

कविता तो बड़ी लम्बी है, किन्तु अन्त की ये पंक्तियां देखिए जिनमें ऋषि राजा को श्राप देता है--

याद रख लेकिन मेरा कहना ब ईं जाहो हशम
तेरी किस्मत में भी लिखा है तेरे बेटे का ग़म।

आधुनिक प्रगतिवादी मुसलमान कवियों की रचनाओं में हिन्दू संस्कृति तो जैसे कूट-कूट कर भरी है। स्थानाभाव के कारण इन कवियों में से एक कवि अब्दुल मजीद भट्टी की भगवान से नम्र शिकायत ही सुन लीजिए और अनुमान लगा लीजिए कि मुसलमान कवि हिन्दू संस्कृति से कितने प्रभावित हुए हैं --

तू मंदिर में बैठा है पहन के हीरे मोती।
मैं हैरान हूं इस पर तुझको उलझन क्यों नहीं होती।
तोड़-फोड़ कर द्वार धनुष सब कर दे एक समान।
जिस मंदिर में बस न सके तू मत कहला भगवान।

अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि मुसलमान कवियों ने अपने काव्य में हिन्दू संस्कृति के प्रायः सभी पहलुओं पर लेखनी उठाई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रम्यस्थली रवाईं

गोविन्द चातक

रवाईं हिमालय की गोद में एक छोटा-सा भू-भाग है। यह उत्तरकाशी का सीमावर्ती क्षेत्र है। इसके दक्षिण-पश्चिम में जौनसार बावर का सुप्रसिद्ध प्रदेश लगता है, जो अपनी निराली संस्कृति के कारण लोगों के आकर्षण का कारण बना हुआ है और पश्चिम सीमा हिमाचल प्रदेश से मिलती है। यह इन सीमावर्ती क्षेत्रों का ही प्रभाव है कि रवाईं की संस्कृति भी कई अंशों तक हिमाचल प्रदेश और जौनसार बावर के ही अनुकूल है। टिहरी-गढ़वाल का एक परगना होकर भी वह सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से पृथक प्रतीत होता है। यह पार्थक्य बहुत स्पष्ट है और ऐसा प्रतीत होता है कि हिमालय में गंगा और यमुना के पार्श्व में संस्कृति के दो विभिन्न रूप पनपे हैं। रवाईं-जौनपुर के लोग शेष गढ़वाल के लोगों को 'गंगाड़ी स्यालो' (गंगा प्रदेश का साला) कह कर गाली देते हैं। जौनसार और जौनपुर (रवाईं के समीपवर्ती क्षेत्र) शब्दों में 'जौन' शब्द जमना का ही रूप है।

यह रवाईं का दुर्भाग्य रहा है कि उसकी चर्चा बाहर के लोगों में आज तक न हो सकी। हां, शेष गढ़वाल के लोग उसे अवश्य रमणीक रवाईं (रौंत्याली रवाईं) कह कर पुकारते रहे। जो लोग वहां जाते थे वे या तो घर-जमाई बन कर वहीं रम जाते थे या उस प्रदेश की शोभा और संस्कृति की अनेक कथाएं सुनाने के लिए लौट आते थे। गढ़वाल में तब इसीलिए यह कहावत प्रसिद्ध हो गई थी कि 'जो रवाईं गया, उसने या तो जान गंवाई या वह घर-जमाई बना।' जान गंवाने और घर-जमाई बनने दोनों का एक ही कारण था। रवाईं सुन्दर रमणियों के लिए प्रसिद्ध रहा है और उनके स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों का या तो वरण ही पसंद होता या मरण ही। फलतः शेष गढ़वाल और बाहर से नौकरी, व्यवसाय और पर्यटन के लिए वहां जाने वाले लोगों ने उनकी प्रथाओं और मान्यताओं से लाभ उठाया और उन्हें हीन विशेषणों से कलंकित किया। आज आवश्यकता है कि लोग इस संस्कृति-सम्पन्न प्रदेश से परिचित हों और उसे अपने स्नेह और सराहना का गौरव प्रदान करें।

रवाईं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह सुन्दर है। वनों से ढकी वहां की ऊंची पर्वत श्रेणियां, दूर तक फैली हुई नदियों की तटवर्तिनी समतल भूमि, हरे-भरे 'बुग्याल' (चरागाह) और देवदारू, चीड़ आदि की छाया में बसे हुए गांव बड़े मनोरम लगते हैं। सीढ़ियों की भांति उठते खेत, कहीं चढ़ती और कहीं उतरती राहें, रवि की किरणों में विहंसती पर्वत की कटि से लिपटी सरिताएं न जाने हिमालय का कितना सौन्दर्य अपने में समेटे हुए हैं? हिमालय के मध्य भाग में स्थित होने के कारण रवाईं को प्रकृति का अपूर्व ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है। रवाईं की उत्तरी सीमा पर हिमालय पूर्व से पश्चिम की ओर फैला हुआ है। यहां से दक्षिण-पश्चिम और पश्चिम की ओर अनेक पर्वत शृंखलाएं निकली हैं। रवाईं का सबसे ऊंचा भाग यमनोत्री के उत्तर-पूर्व की ओर स्थित है। यहां कई ऐसी श्रेणियां

रवाईं की एक बाला

हैं जिनकी ऊंचाई २०,००० फुट से अधिक है। पूर्वी भाग में कई हिमागार हैं, जिनसे यमुना और तमसा (स्थानीय बोली में तौंस, अंग्रेजी उच्चारण टौन्स) जैसी प्रसिद्ध नदियां निकली हैं। इन दोनों नदियों का मूल बन्दर पूंछ पर्वत (२०,७३१ फुट) है। सौ कांठा (२०,१३५ फुट) और यमनोत्री कांठा (२०,०२९ फुट) इसकी दो अन्य श्रेणियां हैं। यमनोत्री कांठा की एक पर्वत शृंखला दक्षिण से पश्चिम की ओर गई है, इसे स्वर्गारोहण कहते हैं। कहते हैं पांडव इसी मार्ग से स्वर्ग गए थे। बन्दरपूंछ के विषय में भी एक ऐसी ही जनश्रुति का उल्लेख राहुल जी ने किया है जिसमें यह विश्वास प्रकट किया गया है कि विजय के बाद हनुमान तपस्या के लिए यहां आए थे।[1] इन पर्वत श्रेणियों की कई उपश्रेणियां हैं, जिनका क्रम बहुत दूर तक चला गया है। इनमें चांगसील, रतेड़ी, राड़ी और केदार-कांठा विशेष उल्लेखनीय हैं।

यमुना और तमसा इस क्षेत्र की दो प्रसिद्ध नदियां हैं। यमुना को पवित्र माना जाता है, किन्तु तमसा को लोक विश्वासों में कर्मनाशा कहा जाता है। उसके काले पानी से पुण्यों का नाश होना बताया जाता है। शेष सभी नदियां छोटी हैं और स्थानीय बोली में गाड कहलाती हैं।

रवाईं का सभी भाग पर्वतीय नहीं है। कमल नदी की सारी उपत्यका, रामासिराई और बड़कोट के क्षेत्र समतल हैं। वहां पर्वतों को लांघते हुए आकाश को चूमने का सुख मिलता है। इसीलिए वहां हर बरस लोग पर्वतारोहण के लिए जाते हैं। हर की दून और केदार कांठा का आकर्षण पर्वतारोहण के लिए अक्षुण्ण बना हुआ है। किन्तु रवाईं की उपत्यकाओं की भी अपनी शोभा है। ये घास से लदी मिलती हैं। बर्फ के पिघलते ही इन पर घास के साथ अनेक फूल खिल उठते हैं। रवाईं के बुग्याल अपने फूलों के लिए प्रसिद्ध हैं। गढ़वाल में भ्यंडार की घाटी से जो परिचित हैं वे इस तथ्य का अनुमान लगा सकते हैं। रवाईं के लोकगीतों में इन फूलों की शय्या का बड़ा सुन्दर चित्रण मिलता है। चरवाहे को फूलों के बीच

[1] हिमालय परिचय, पृष्ठ १२; राहुल सांकृत्यायन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरती दिखाई ही नहीं देती है, वह लेट कर उन्हीं का बिछौना बनाती है उन्हीं का ओढ़ना। इन घास के मैदानों के अतिरिक्त रवाई की वन संपदा उल्लेखनीय है। वहां चारों तरफ देवदार, चीड़, सुरिंड, तिलौंज, रिंगाल और रुई के सुन्दर वन दिखाई देते हैं। इन वनों को जीव जगत का अपार ऐश्वर्य मिला है। उनमें कई ऐसे जानवर रहते हैं जो अन्यत्र नहीं मिलते। पक्षी उनकी सजीव संपत्ति हैं। कफू, घुगती, हिलांस रवाई के प्रिय पक्षी हैं। मुनाल यहां सबसे सुन्दर और विशालकाय पक्षी होता है। उसके पंख इतने सुन्दर होते हैं कि मोर भी उनके सामने फीका लगता है। रवाई के लोक मानस में अपने पर्वतों, वनों, पशु-पक्षियों आदि प्रकृति के विभिन्न रूपों को बड़ी आत्मीयता मिली है। भारत के मैदानी भागों के लोगों ने पहाड़ों को भय की भावना से देखा है। जो यात्री बड़ा साहस करके रवाई में यमनोत्री तक चले भी आते हैं, वे धर्म की भावना से अवश्य प्रेरित रहते हैं, किन्तु अपनी आंखों और सौंदर्य वृत्ति का वे भी उपयोग नहीं कर पाते। किन्तु एक समय था जब भारतीय हृदय प्रकृति की सजीव आत्मीयता से अनुप्राणित था। यही कारण था कि हिमालय को प्राणवान (शिव के श्वसुर और पार्वती के पिता के रूप में) माना गया था और कवि कालिदास ने उसे 'देवतात्मा' की संज्ञा दी थी। रवाई के लोगों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने हिमालय को मूर्तिमान सत्य, शिव और सुन्दर के रूप में देखने का अभ्यास किया है। इनके लोकगीत इस बात के प्रमाण हैं।

प्रकृति की इस सुन्दर क्रीड़ा-स्थली में जन्म लेने के कारण ही रवाई का सामान्य मानव बहुत ही स्वच्छन्द, रोमान्टिक, विलासी, मदोन्मत्त और सौन्दर्य प्रेमी है। सुन्दर रमणियां रवाई की सम्पत्ति हैं। शीत जलवायु, स्वतन्त्र जीवन और आर्थिक सम्पन्नता ने उनके मुखमंडल पर रूप की वह आभा भरी है कि वहां सौन्दर्य घास की तरह उगता और फूल की तरह खिलता है। वे प्रकृति-पुत्रियां अपने इसी अप्सरा-तुल्य

किसान बाप और बेटी

सौन्दर्य के लिए ही 'बंदि' या 'बंठिया' कहलाती हैं, जिसकी व्युत्पत्ति 'बंध' से है। यह बंदनीय रूप प्रायः आभूषणों से लदा मिलता है। वहां स्त्रियां अत्यधिक आभूषणप्रिय होती हैं। यह आभूषणप्रियता कभी-कभी पति-पत्नी के शान्तिपूर्ण सम्बन्धों के बीच की खाई भी बन जाती है। वे नथ, बुलाक आदि के अतिरिक्त गले में चांदी का गहना पहनती हैं, जिसे 'कंठयालो' या 'खगवालो' कहते हैं। कानों में 'मुरखले' पहने जाते हैं और हाथों में कड़े, जिन्हें 'धागुला' कहते हैं। हार के रूप में रुपयों की या मूंगों की माला पहनने का भी रिवाज है। अधिकांश स्त्रियां चोली और घाघरा पहनती हैं और सिर पर 'ढाटू' बांधती हैं।

रवाई की स्त्रियां स्वेच्छाचारिणी होती हैं। वहां कहीं बहुपतित्व के दर्शन होते हैं, कहीं बहुपत्नीत्व के। वैसे कई परिवारों में संभोग और विवाह परस्पर सीमाओं में बद्ध नहीं हैं। दाम्पत्य जीवन की परिधि के बाहर भी वहां यौन सम्बन्धों की सम्भावनाएं बनी रहती हैं। स्त्री के लिए द्विविध नैतिकता के दर्शन होते हैं। उसके दो रूप हैं: एक 'ड्यांटी' और दूसरा 'राटी'। 'ड्यांटी' शब्द का मूल दुहिता है (धियाडिया + टी) जिसके साथ 'टी' प्रत्यय जोड़ा गया है। रवाई में कुमारी कन्या को 'ड्यांटी' कहते हैं। ससुराल में वह 'रांटी' (रानी) कहलाती है। विवाहित लड़की (रांटी) भी जब मायके में होती है, तो वह 'ड्यांटी' ही कहलाती है। ड्यांटियां (कुमारी कन्या या मायके में आई हुई विवाहित बेटी) यौन सम्बन्धों के लिए स्वच्छन्द होती हैं। ससुराल में उन्हें यह अधिकार प्राप्त नहीं होता। विलास के लिए रवाई के त्यौहार, मेले और देव-यात्राएं प्रसिद्ध हैं। दिवाली, मौण, बिसू, हरयाल्टी, माघ आदि त्यौहार बहुत उल्लासमय होते हैं। माघ में तो सारे महीने भर लोग खाते-पीते और नाचते रहते हैं। अपने घरों में रोज बनाई जाने वाली मदिरा पीकर वे आंगन में नाचने उतर जाते हैं। एक ओर पुरुषों की पांति होती है, दूसरी ओर स्त्रियों की। फिर नाच के साथ गीत प्रारम्भ होता है। एक टोली प्रश्न पूछती है, दूसरी उत्तर देती है। इस प्रकार वार्तालाप के रूप में रूप-चर्चा, आत्म-निवेदन और प्रणय की अभिव्यक्ति के साथ ये गीत और नाच प्रायः रात भर चलते हैं और अपने स्वच्छंद कामाचार के लिए प्रसिद्ध होते हैं।

रवाई में स्त्री परिवार की स्वामिनी होती है। उसकी सत्ता अधिक होती है। पुरुष प्रायः डरते रहते हैं कि स्त्री कहीं छोड़ कर न चली जाए। विवाह-विच्छेद वहां सामान्य प्रथा है। पुरुष की ओर से स्त्री को छोड़ देने के कम उदाहरण मिलते हैं। स्त्रियां ही प्रायः अपने पतियों को छोड़ देती हैं। इसे 'छूट' कहते हैं। 'छूट' दी गई स्त्री जब विवाह करती है तो जामाता से उसका पिता धन लेता है। कुमारी कन्याएं तो अल्प धन व्यय करने पर ही प्राप्त हो जाती हैं, किन्तु छूट दी गई स्त्री का मूल्य हजारों तक पहुंच जाता है, क्योंकि नए पति द्वारा उसके पहले पति को उसका मुआवजा देना पड़ता है, और बीच में कुछ पिता भी खा जाता है। एक स्त्री जितने अधिक घरों में जाए, उसे उतनी भाग्यवती माना जाता है और उसी क्रम से उसका मूल्य भी बढ़ता जाता है।

रवाई की स्त्रियां सुन्दर होती हैं तो पुरुष मानव जीवन की विपुल चेतना से अभिभूत दिखाई देते हैं। वृद्धावस्था के प्रति श्रद्धालु होते हुए भी वे जीवन में यौवन के समर्थक होते हैं। इसीलिए मदिरापान, उल्लास, नृत्य और गीत उनके रक्त में मिश्रित प्रतीत होते हैं। उनकी रसिकता विख्यात है। वे लोग रौंसिया (रमणसदृश सुख के अभिलाषी) और हौंसिया (उमंग वाले) होते हैं। चार्वाक के शिष्यों की भांति (धरती को अमर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

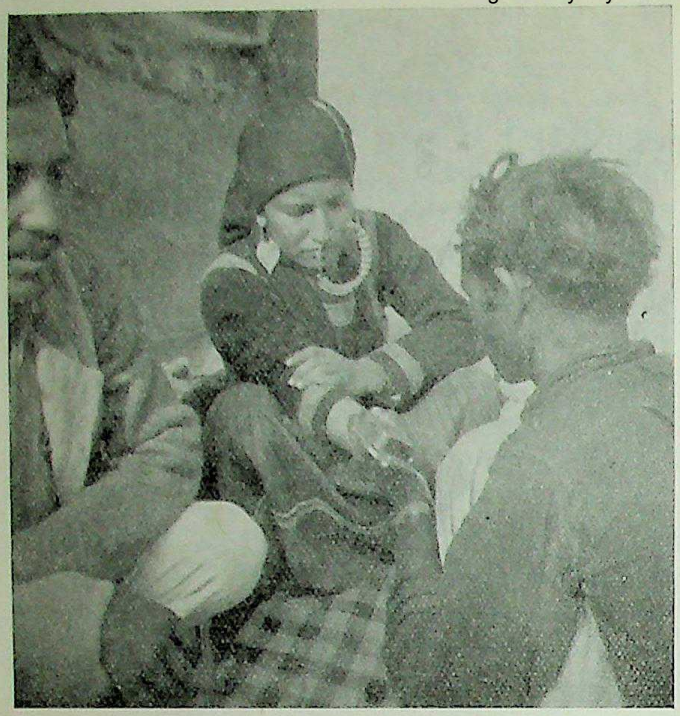

गुदना कराते हुए

मानते हुए भी) वे जीवन और उसके सुखों की सीमा इसी भौतिक जगत तक मानते हैं। उनके लोकगीतों में वर्तमान में ही अधिक से अधिक आनन्द लेकर जीवन को बिता देने का आग्रह मिलता है। कल का अर्थ काल समझते हुए वे जीवन से सब कुछ निचोड़ कर पी जाने के अभ्यस्त हैं। यही उनके जीवन की सबसे बड़ी सार्थकता है। इसीलिए वे ऊंचे मानव हैं। दुष्ट विचारों, विषम वित्त वितरण, और घृणा-द्वेष से दूर उनका जीवन प्रातः कमल की भांति खिलता है। लोगों में परस्पर सहयोग के अपूर्व दर्शन होते हैं, यह उनके सामूहिक भोजों, नृत्यों और कृषि के तरीकों से देखा जा सकता है। 'अतिथि देवो भव' का अर्थ रवाई के परिवारों में जाकर ही समझा जा सकता है। अतिथि को अपने घर पाकर वे अपना अहोभाग्य समझते हैं। उनकी स्त्रियां और कन्याएं सादर उसके हाथ-पैर धुलवा कर भोजन करवाती हैं। कुमारियां पहले सेवा के लिए प्रस्तुत

रवाई रमणियां धान कूटते हुए

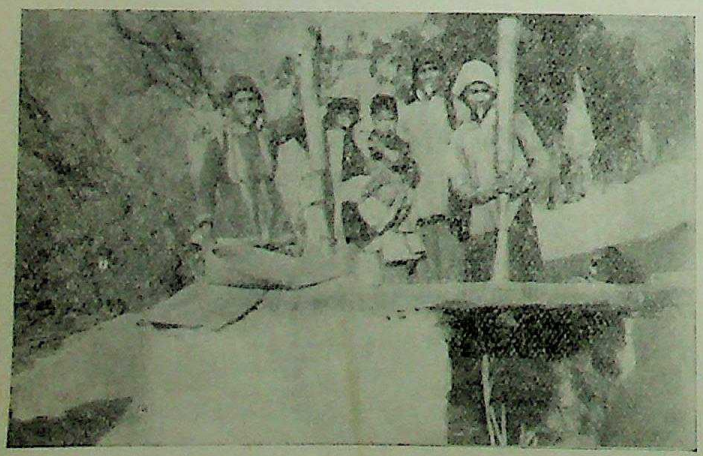

होती थीं, किन्तु बाहर के लोगों ने जो व्यभिचार की नींव डाली, उससे अब यह प्रथा समाप्त हो गई। अब वे बाहर के आदमी को शंका की दृष्टि से देखते हैं। अपनी सरलता में वे दूसरों के प्रति बहुत ममता वाले होते हैं किन्तु अपनी पत्नियों (बहिनों को नहीं) को छोड़ने पर उनसे अधिक निर्मम और कोई नहीं हो सकता।

यह प्रदेश सांस्कृतिक संगम का द्योतक है और अभी तक आदिम संस्कृति के अवशेषों को निभाता आ रहा है। यहां के नचाए जाने वाले देवी-देवता, मंदिरों की मूर्तियां, सिंहद्वारों पर अंकित चित्र, त्यौहार, नृत्य, गीत तथा थौल मेले एक जीवित किन्तु विचित्र संस्कृति के सहज सुन्दर स्वरूप को व्यक्त करते हैं। प्रागैतिहासिक काल में रवाई तथा गढ़वाल किरात, नाग, यक्ष आदि जातियों से सम्बन्धित रहा है। वहां के लोकगीतों में नाग संघर्ष के अनेक आख्यान आए हैं। यही नहीं, वहां विष्णु क अवतार कृष्ण को नागराज के रूप में पूजा जाता है। नगेलो, नाग, कलिंग-नाग वहां के नाग देवता हैं। किरात यहां के सम्भवतः मूल निवासी थे। यक्ष जाति का निवास हिमालय में ही था। कुबेर यक्षों का सम्राट था और उसकी अलकापुरी गढ़वाल की प्रसिद्ध नदी अलकनन्दा के किनारे ही कहीं रही होगी। जाख (यक्ष) रवाई का प्रसिद्ध देवता है। महासू में प्रयुक्त 'सू' शब्द किरात भाषा का है, जिसका अर्थ देवता होता है। महासू आरम्भ में रवाइ में किरातों का देवता ही रहा होगा। नाचने-गाने वाली वाद्यी जाति के पूर्वज संभवतः गन्धर्व थे। अप्सराओं को गंधर्वों की पत्नियां कहा जाता है। रवाई अप्सराओं को आछरियों के नाम से पूजा जाता है। खशों और आर्यों ने इस भूमि में बाद में प्रवेश किया और उन्होंने अपने पूर्व-वर्तियों की सारी संस्कृति की विरासत स्वीकार की। मध्यकाल में तो भारत के विभिन्न भागों से लोग यहां बसने के लिए आते रहे। गोरखों का आतंक इस क्षेत्र पर विशेष रहा है। देहरादून से निकट होने के कारण मुगलों के आक्रमण से भी यह न बच सका। वहां के लोकगीतों में इस आक्रमण का स्पष्ट वर्णन है। यह आक्रमण राजा फतेशाह के राज्यकाल में शाहजहां ने किया था।

इस प्रकार रवाई बाह्य प्रभाव से सर्वथा वंचित तो न रहा, किन्तु वह सदैव अपने वातावरण से ही घिरा रहा। वहां लोगों के स्थानीय देवता होते हैं, जिन पर उनका दृढ़ विश्वास होता है। पिछली बार जब चुनाव हुआ तो लोगों ने मतदान के विषय में महासू देवता से पूछा था। देवताओं का उस समाज में बड़ा उपयोग है। शत्रु को मारने, रोग को ठीक करने, अज्ञात सत्य को जानने, दुर्घटनाओं से मुक्ति चाहने, और अभीष्ट की प्राप्ति के लिए वहां देवताओं को पूजा और नचाया जाता है। उनके देवता मनुष्य पर उतर आते हैं। उन व्यक्तियों को 'धामी' कहते हैं। 'धामी' कांपते हुए नाचते हैं। यह कंपन स्वाभाविक होता है। देवताओं से यहां के लोग बहुत डरते हैं। ऐसा माना जाता है कि उनको न पूजने पर वे अनिष्ट कर बैठते हैं। फतेह पर्वत में नाग देवता के डर से लोग दूध नहीं पीते और जल से शौच नहीं करते, क्योंकि वे जल को विष्णु मानते हैं और उसे गंदा करने से डरते हैं। महासू के बाद पांडव यहां के सबसे लोकप्रिय देवता हैं। फतेह पर्वत क एक गांव में दुर्योधन का और सिंगतूर में कर्ण का मंदिर है, जहां उनकी पूजा होती है और लोग पांडवों का नाम नहीं लेते।

शब्द शक्ति, जादू-टोना और मंत्र-तंत्र पर लोगों का अत्यधिक विश्वास है। ओझा झाड़ा आदि का प्रयोग होता है। मध्यकाल में यहां की

(शेष पृष्ठ ५८ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत्राणी

उषादेवी मित्रा

नवाब साहब तब अपने रंगमहल में बैठे बादाम का गरम-गरम हलवा और फलों से नाश्ता समाप्त कर सुगन्धित हुक्का गुड़ागुड़ा रहे थे कि प्रवीन बेगम गुलबकावली की प्रधाना बांदी पहुंची, तीन बार कोर्निश किया और तीन बार पीछे हटी। नवाब की दृष्टि तब भारी-भरकम चांदी के हुक्के पर थी। कुछ देर बाद उसकी आंखें बांदी पर पड़ीं और नवाब ने पूछा--"तू कौन है ?"

बांदी ने बड़ी ही नम्रता से झुक-झुक कर कोर्निश किया और बोली--"दुनिया के मालिक, मैं सरकार बेगम साहेबा गुलबकावली बेगम की बांदी हूं।"

नवाब ने गद्दी पर से जरा गरदन उठा कर कहा--"ऐसा ? आखिर बात क्या है ?"

तब तक उस वृहत हाल में नवाब के कई उमराव, वजीरेजंग, गुलाम आदि आ चुके थे।

बांदी ने अर्ज किया--"जहांपनाह, आज तीन दिन से जनाब बेगम साहेबा की मुंहलगी सहेली कृष्णा बाई कहीं गायब हैं। और तीन दिन जनाब बेगम साहेबा जरदा या पुलाव का एक लुकमा भी गले से नीचे नहीं उतार सकीं। बड़ी-बड़ी आंखों की लाल-लाल डोरियों पर मुर्दनी छा गई है।" बांदी ने आंखें पोंछीं।

नवाब साहब की सवारी तुरन्त शीष महल में पहुंची। बेगम साहेबा को खबर दी गई। नवाब साहब बड़े प्रेम से अपनी नई बेगम से मिले और कहा--"एक छोटी-सी बात के लिए मुर्दनी सूरत बना कर बैठी हो ? अभी मैं उस बदकार को दरबार में पकड़ कर बुलाता हूं। क्या नाम है उसका ? कृष्णा बाई ? तो वह राजपूतानी है ?"

बेगम ने इत्र से तर रूमाल को मुंह पर फेर कर कहा--"जी हां।"

"क्या वह महल में नहीं रहती थी ?"

"नहीं, अपने घर रहती थी।"

"उसका घर कहां है ?"

"मैं नहीं जानती, जनाब। एक भारी तंजाम में बैठा कर उसके रिश्तेदार मुझे सौंप गए थे।"

"क्या तुम्हें यहां बांदियों की कमी थी ?"

"जी नहीं, लेकिन मुझे अपनी तसवीर बनवाने की बड़ी ही इच्छा थी, इसी वजह से अब्बाजान ने उसे ढूंढ़ कर भेजा था और कहलाया था कि वह इस फन में उस्ताद है और शायद किसी राजा की बहन है। इसे इज्जत के साथ रखना।"

आश्चर्य से नवाब ने पूछा--"तो उसने तुम्हारी तस्वीर भी बनाई ?"

साकी ने शराब की एक प्याली नवाब के मुंह से लगा दी, और दूसरी नवाब की बेगम के मुंह से।

"हां साहब, मेरी वह तसवीर सामने की दीवार पर टंगी है, और आपकी तस्वीर इधर टंगी है।"

अवाक विस्मय से नवाब दोनों ही तसवीरों को देखता रहा। दोनों चित्र प्रथम श्रेणी के थे और सिद्धहस्त कलाकार द्वारा बनाए गए प्रतीत होते थे। बहुत देर के बाद नवाब ने पूछा--"बगम साहेबा, मेरी तसवीर उसने कैसे बनाई ? यह तो अचम्भे की बात है।"

हंस कर बेगम ने कहा--"आपके सोते में। असल में वह परदे के अन्दर बैठ कर आपको दरबार में देखा करती थी और तस्वीर बनाया करती थी।" जरा रुक कर पुनः बेगम कहने लगी--"आज चार दिन की बात है वह घबराई हुई आई और बोली--"बेगम, आप सोती न रहें, हमारे नवाब साहब के दुश्मन घर ही में हैं। उन्हें होशियार कर दीजिए। क्योंकि यह गद्दी उनसे छिनने वाली है। बस, उसके दूसरे ही दिन स वह गायब हो गई।"

अत्यन्त विस्मय से नवाब ने मस्तक उठाया और पूछा--"क्या उस कृष्णा की भी कोई तस्वीर तुम्हारे पास है ?"

"हां जनाब" और बेगम ने आलमारी खोल कर एक बड़ा-सा चांदी का डिब्बा लाकर सामने रख दिया। डिब्बा खोल कर देखते ही नवाब चित्रवत अचल रह गया। इतने मूल्यवान गहन उसके महल में भी नहीं थे। तसवीर हाथ में लेकर मुग्ध विस्मय से नवाब उस अनुपम सुन्दरी के चित्र को अपलक नेत्रों से देखता रहा। मन में अवाज उठी--इस खूबसूरती का भी दुनिया में कहीं मोल है ?

बेगम ने टोका--"क्या आपने इन्हें पहचाना ?"

नवाब ने कोई जवाब नहीं दिया। तब बेगम ने कहा--"साहब, इस तसवीर को तो वापस कर दीजिए। यह कृष्णा के गुरु की बनाई हुई है। जेवर और तसवीर कुछ दिनों के लिए वह मेरे पास धरोहर के रूप में रख गई है।"

नवाब उस तसवीर को अपने जेब के हवाले करता हुआ बोला--"इसी तसवीर के जरिए ही तो उस नाजनीन का पता चलेगा। इसे वापस कैसे करूं ?"

कृष्णा को ढूंढ़ने के लिए सब ओर सिपाही दौड़ाए गए और स्वयं नवाब भी तुर्की घोड़े पर सवार हुए। संवाद मिला कि किले के अन्दर एक नारी घुसी है। नवाब वहां पहुंचे। किला अन्दर से बन्द था। मन्त्रियों ने नवाब को देखते ही सम्मान के साथ लौह द्वार खोल दिया। नवाब सीधा तोपखाने में पहुंचा और विस्मय से स्थाणुवत अचल हो रहा--वहां का दृश्य देख कर।

एक अपूर्व सुन्दरी युवती योद्धा के वेश में खड़ी हुई सिपाहियों से तोपों की सफाई करवा रही थी। बाहर कारीगर लोग किले की ऊंची दीवार पर चढ़ टूटी-फूटी दीवालों की मरम्मत कर रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवाब ने देखा, तोपों के भीतर, निकले हुए घुघ्घू, कबूतर, मैना और अनेक प्रकार के पक्षियों के घोंसलों का एक बड़ा ढेर एक तरफ लगा हुआ है, दूसरी तरफ साफ की हुई तोपें रखी हुई हैं। उस योद्धानारी की आज्ञा से सिपाही नाना प्रकार के कार्य कर रहे हैं।

नारी का हुक्म हुआ--"जाओ, बच्चे अब भोजन करें। तुम्हें किसी वस्तु की कमी तो नहीं है न ?"

नवाब एकाएक जैसे निद्रा से जागा। वह कृष्णा के निकट पहुंचा। तब सिपाहियों की दृष्टि नवाब पर पड़ी और वे झुक-झुक कर कोर्निश करने लगे। उसके बाद सिपाही चले गए।

नवाब ने पूछा--"क्यों यह क्या हो रहा है, कृष्णाबाई ? उधर शहर भर में आपकी खोज हो रही है।" न जाने क्यों नवाब के मुंह तुम न निकल कर आप ही निकला। कृष्णा निरन्तर चुप रही।

"तुम जैसी परी जमाल, गुलाब की रंगीन पंखुड़ियों की जरूरत तो नवाब के महल में है। इस कूड़ा-करकट तोपखाने में नहीं।"

कृष्णाबाई जरा मुसकराई। रंगीन किन्तु संयत मुसकान के साथ उसने कहा--"जहांपनाह, जब देश पर शत्रु के आगमन की बात निश्चित हो जाने पर भी नवाब साहब सचेत न हों, तब एक कृतज्ञ क्षत्राणी सुख की नींद सोए भी कैसे ?"

नवाब ने पूर्ण दृष्टि से उसे देखा और कहा--"क्या तुम मेरे साथ चल सकती हो ? डरोगी तो नहीं ?"

"नहीं जनाब, क्षत्राणी और डर ? वह भी अपने मालिक से ?"

नवाब की श्रद्धापूर्ण, मुग्ध दृष्टि उठी। फिर तंजाम में मखमली परदों के भीतर कृष्णा को नवाब के खास महल में पहुंचा दिया गया।

सन्ध्या टल चुकी थी। नवाब के खास हमाम से नववस्त्र परिहिता कृष्णा निकली। क्षुधा से वह व्याकुल हो रही थी। नवाब ने यत्नपूर्वक उसे अपने खास कमरे में बैठाया। नवाब ने पूछा--"पहले यह बताओ कि तुम्हें किले तक पहुंचने की इजाजत कैसे मिली ?"

उसने धीरे से नवाब की सील मोहर तथा अंगूठी निकाल कर चांदी की चौकी पर रख दी और कहा--"जब मुझे अपने मालिक पर संकट आने की पूरी खबर लगी, तब मैंने यह चोरी की जनाब। इसके लिए यदि आप मुझे मौत की सजा देना चाहें तो मैं तैयार हूं।"

विस्फारित नेत्रों से नवाब ने उसे देखा, फिर हाथ पकड़ कर अपने पास बैठाया। वह बोला--"कृष्णा, पूरी दास्तान मुझे सुनाओ।" धीरे-धीरे कृष्णा ने कहा--"आपके वजीर से लेकर कोतवाल आदि सब आपके विरोध में बग़ावत कर रहे हैं। भूखे सिपाही भी बाग़ी हो गए थे। तोप, तलवार आदि हथियार बेकार कर दिए गए थे। खजाना भी न जाने कैसे खाली है। यह गद्दी छिनने ही वाली है। आपके चचेरे भाई आप पर चढ़ाई करने की तैयारी कर रहे हैं। यह षड्यन्त्र उन्हीं का है। मैंने बाग़ी सिपाहियों को बुला कर उन्हें समझाया-बुझाया। अब वे आपके खैरख्वाह हैं। उनकी तनख्वाह आदि का इन्तज़ाम भी मैंने कर दिया है।"

"ऐसा ! पर इस बड़े काम के लिए पैसे इकट्ठे कैसे किए ?"

"मेरे पिता के जवाहरात, मोहरों के ढेर जमीन के अन्दर गाड़ कर रखे थे। उन्हीं से--"

नवाब ने पूछा--"तो तुम मेरे लिए इतना क्यों कर रही हो, कृष्णा ?"

"क्यों ? क्योंकि क्षत्रिय अकृतज्ञ नहीं हुआ करते, जनाब ?"

"मैंने तुम्हारे साथ कौन-सी नेकी की है, कृष्णा ?"

"मेरे दादा और पिता को आप ने ही मौत से बचाया था और उनके राज्य को आपने-----"

"ठहरो-ठहरो। क्या तुम मेरे ईमानदार और वफादार वजीरे जंग समरसिंह की लड़की हो ?"

"नहीं, उनकी नातिन हूं। मेरे दादा जी और पिता का कहना था कि हमारे नवाब पर कभी भी विपत्ति आए तो जी-जान लगा देना। क्षत्रिय धर्म न भूलना।"

स्वप्नातुर-सा नवाब सब कुछ सुन रहा था। फिर अचानक उसने कृष्णा को अपनी बाहों में समेटना चाहा।

कृष्णा एकाएक दूर हटी। वस्त्र के भीतर से किरिच निकाल कर वह बोली--"क्षत्राणी अपने प्रभु के लिए सब कुछ कर सकती है परन्तु अपना सम्मान नहीं दे सकती। जब उसका मान्यजन न्याय पथ को छोड़ कर अन्याय पथ पर चले, तो वह अपने ही हाथों खून बहा सकती है।"

विस्फारित नेत्रों से नवाब ने अग्निशिखा-सी उस नारी की ओर देखा और उसके वचनों को अनुभव किया। परम श्रद्धा से उसका जी भर उठा। गुनगुनाकर वह बोला, मानो अपने आपको सुना रहा हो--"जिन्दगी के आखिर में यही तो परम लाभ है कि मैं कृष्णा का मान्यजन हूं !"

उसकी गुनगुनाहट सुन कर कृष्णा मुसकराई। किरिच वापस रख उसने नवाब का हाथ पकड़ कर हिलाया। बोली--

"साहब, मैं चार दिन की भूखी हूं।"

"तुम चार दिन की भूखी हो !"

तुरन्त भोजन आया। दोनों ने भोजन किया। नवाब ने कहा--"तो कृष्णा कुमारी क्या तुम यहां सो सकोगी ? मुझसे बिल्कुल ही न डरो।"

"साहब, अब सोने का मौका नहीं है। दुश्मन से हम घिरे हुए हैं। केवल सेनापति राजसिंग और कई उमराह अपनी तरफ हैं। सेनापति चुपके-चुपके सेनाओं को इकट्ठा कर रहे हैं, और उनका भार संभाल रहे हैं। गोला-बारूद अब भी उनके कब्जे में हैं। मैं अभी घर जाऊंगी, और जनाब, आप भी नवाबी के सब आरामों को छोड़ कर मेरे साथ मेरे घर चलें--वीरता को अपनावें।"

इतना कह कर कृष्णा दूसरे कमरे में चली गई। नवाब ने युद्ध के वस्त्र पहन लिए तो वह लौट आई और युद्ध का साज उसे अपने हाथों पहनाने लगी। मन्त्रमुग्ध-से खुशी से परिपूर्ण नवाब ने अगूंठी आदि कृष्णा को सौंप दिए और तब दोनों चल पड़े।

"मेरे पीछे-पीछे चलिए। राह मैं बतलाती हूं। इस समय आपकी शरीर रक्षिका मैं हूं।" यह कह कर वह नवाब को सुरंग की राह ले चली।

विस्मय से नवाब ने पूछा--"इस सुरंग को मैं नहीं जानता। तुमने कैसे जाना ?"

"मेरे दादा ने मुझे बतलाया था और इसी रास्ते से बचपन में कई बार मैं यहां आ चुकी हूं।"

नवाब ने धीरे से पूछा--"तुम मुझे चाहती हो न, कृष्णा ? तुम मंजूर कर लो तो मैं तुम्हें अपनी पटरानी बनाऊंगा।"

कृष्णा ने टोका--"देखिए, यह प्रेमालाप का समय नहीं है। शहर का न्याय-दण्ड आपके हाथ में है, प्रजा आपकी तरफ निहार रही है। मैं कापुरुष को प्यार नहीं कर सकती।" उस अंधकार में नवाब को ठोकर खाते देख कर वह उसका हाथ पकड़ कर धीरे-धीरे चली।

(शेष पृष्ठ ५८ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस्तर के आदिमजातीय

सुन्दरलाल त्रिपाठी

मानव शास्त्र के विद्वान, जब से यह विद्या मुखर हुई है, प्रागैतिहासिक अथवा जिस युग का इतिहास प्राप्त नहीं है, उस युग की मानव जाति के सम्बन्ध में गवेषणाशील हैं। प्रत्नविद्या के पंडित इसी प्रकार युग से चिन्ताशील हैं कि प्रागैतिहासिक युगीन मानव जाति रक्त और आदिम निवास के क्रम से संसार के किन अंचलों से अभियानपूर्वक अथवा कष्टसाधना पूर्वक अग्रसर हुई और देश के किन अंचलों में वह आदिम युग से आदिम सभ्यता, संस्कृति आदि से संयुक्त निवास कर रही है। भाषा-तत्व के विद्वान अवसर-सुविधा के अनुसार यह जानने का प्रयत्न कर रहे हैं कि ये आदिमजातीय किन अंचलों में किस कुल अथवा परम्परा की भाषाओं अथवा बोलियों का प्रयोग करते हैं। उक्त विद्याओं के आचार्यों के साथ-साथ मनस्तत्व, समाज-शास्त्र, शिक्षा-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, राजनीति-शास्त्र के विद्वानों का आग्रह है कि किन-किन अवलम्बनों तथा उपादेयों से आदिम-जाति का स्तर उन्नत किया जाए। राज्य शासन का, वह चाहे जो हो, कर्तव्य है कि वह आदिम जाति को प्रत्येक प्रकार के अवलम्बनों तथा उपादेयों के सहित, संस्कृति, धर्म आदि के अर्थ में निरपेक्ष रह कर, मनुष्य के अधिकार उपयोग का स्तर प्रदान करे। जनतन्त्रीय राज्यशासन का तो यह सबसे अधिक प्रमुख कर्तव्य है।

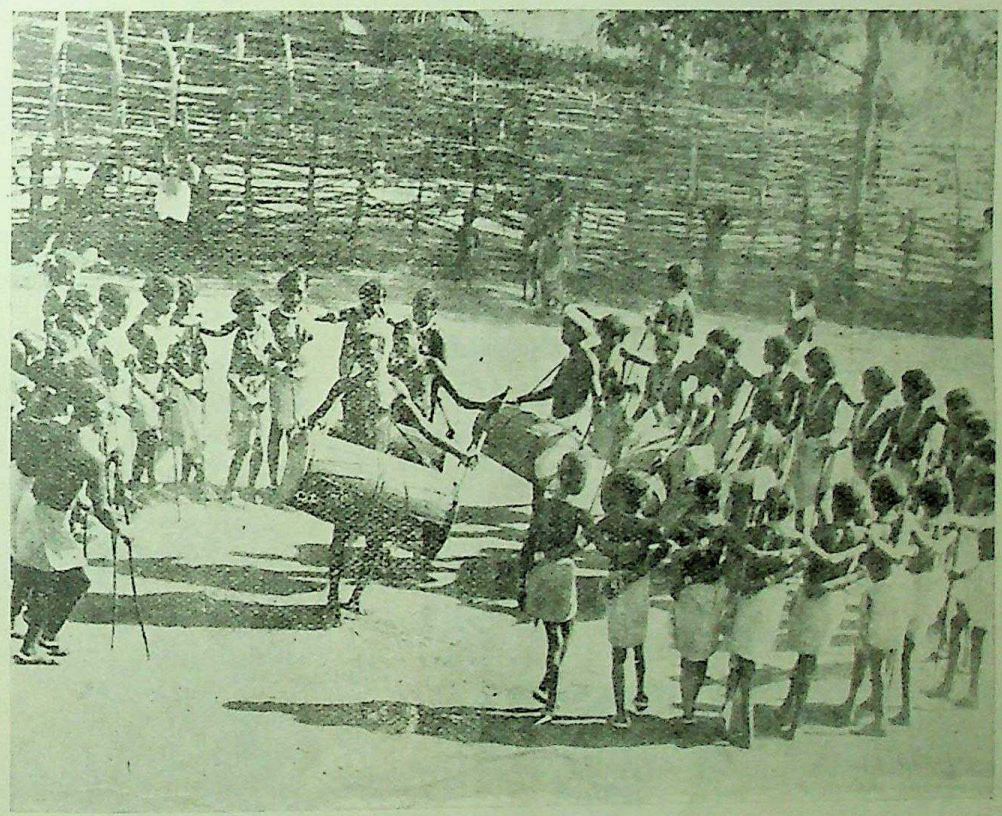

दुब्बा होरा के युवक-युवतियां नृत्य करते हुए

प्रागैतिहासिक युगीन आदिमजातियों—माड़िया, मुरिया, दोरला, परजा, भतरा, गदबा आदि ने किस युग में कितने सहस्र वर्ष पहल बस्तर में अपना निवास स्थिर किया, इस सम्बन्ध में इतिहास की गवेषणा मौन है। अवश्य हलबा जाति अपने इस स्थान पर आकर बसन के युग का अनुमान करती है।

प्रतीत होता है कि मध्ययुग तक बस्तर में जनतान्त्रिक पद्धति का जनपदीय शासन प्रचलित था, जिनके अधिपति स्थानीय प्रमुख अथवा आदिमजातीय मुखिया थे। ग्राम पंचायत, परगना पंचायत आदि संस्थाएं थीं, जो स्थानीय शासन व्यवस्था के लिए उत्तरदायी थीं। बारसूर, मैरमगढ़, दन्त्येवाड़ा, कुरुसपाल आदि स्थानों के मन्दिरों के अवशेषों से ज्ञात होता है कि इन अंचलों में भारतीय हिन्दू सभ्यता की शासन व्यवस्था भी विद्यमान थी। शिलालेखों आदि से यह भी ज्ञात होता है कि नवीं से बारहवीं शताब्दी तक बस्तर में पूर्वी चालुक्य, चोल, पश्चिमी चालुक्य तथा होयसल आदि राजाओं ने युद्ध-अभियान किए थे। शिलालिपि के अनुसार ही अनुमान है कि ग्यारहवीं शताब्दी में बस्तर के दक्षिण अंचल में—बारसूर, दन्त्येवाड़ा आदि में नागवंशियों का आंचलिक और आंशिक अधिपत्य रहा है। बारहवीं शताब्दी के अर्द्धांश से पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश तक वारंगल में काकतीयों ने अपना राज्य संचालन किया था। वारंगल के प्रबल पराक्रमी, यशस्वी, तथा विद्यानुरागी राजा प्रतापरुद्र पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में अहमदशाह बहमनी के द्वारा निहत हुए। अतः उनके भाई अन्नमदेव ने वारंगल परित्याग करके बस्तर में अभियान किया और अपना सम्पूर्ण राजत्व स्थिर किया। प्रतीत होता है कि राजा अन्नमदेव तथा उनकी परम्परा ने आदिमजातियों में प्रचलित राज्यशासन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अबूझ माड़ की कन्याओं को अभी हाल ही में वस्त्र पहनाए गए हैं

जनतन्त्र के आधार पर शान्ति तथा सौख्यपूर्ण रहा । बस्तर के आंचलिक फरिश्ता के अनुसार एक बार सन् १६१० में मुसलमानों ने दक्षिण से बस्तर में आक्रमण आरम्भ किया, परन्तु आदिमजातियों के जनविरल, निवास, अतिवर्षा यातायात की असुविधा तथा आवश्यक सामग्री के अभाव में पराङ्मुख हो गए । काकतीय राजपरम्परा ने यथाशक्य उत्तर की ओर अभियान किया और कांकेर, रतनपुर, रायपुर आदि के राजपूत राजाओं से अपना सम्बन्ध स्थापित किया । उन्होंने बड़े डोंगर के निकट अठारह गढ़ विजय किए तथा अपनी राज्यसीमा सिहावा तथा छत्तीसगढ़ की परिसीमा तक विस्तृत की ।

बस्तर का राज्यशासन अंग्रेजी राज्याशासन के आरम्भकाल तक बिना किसी बाधा के निभता चला आया । शिक्षा का प्रचार उन दिनों बिल्कुल नहीं था, यातायात के साधन भी नहीं थे । बंजारे व्यापारिक अभियान करते थे, जो नमक, वस्त्र तथा अन्यान्य आवश्यक वस्तुएं ले आते थे और आदान-प्रदान की प्रथा के अनुसार परिवर्तन में आदिमजातीयों से जंगलों में पैदा होने वाली चीजें ले जाते थे ।

सन् १७५० में राजा दलपतदेव तथा उनके छोटे भाई में परस्पर मनोमालिन्य हो गया, अतः अनुज ने मराठा-सहायता की याचना की ।

आदिमजातीय नृत्य का एक दृश्य

नीलू पंडित के अधीन एक मराठा सैनिक दल ने बाधा उपस्थित करके तत्कालीन राजकेन्द्र बस्तर पर अधिकार करने का यत्न किया, परन्तु दल निहत हुआ और नीलू पंडित की प्राण रक्षा एक बंजारे की सहायता से हुई, जो उन्हें गोने में सीकर अपने बैल पर लाद कर राज्य की सीमा से ले आया । सन् १७८० में राजा दरियावदेव ने अपने भाई अजमीरदेव के विपरीत मराठा-सहायता स्वीकार की । फलतः उन्हें नागपुर के भोंसला राज्य को प्रतिवर्ष ४,००० रुपया कर देना आरम्भ करना पड़ा । अवश्य मराठों ने पड़ोस के गोंड जमींदारों के द्वारा बस्तर की सीमा में आक्रमण करवाने का असफल प्रयत्न किया और चार-पांच वर्ष राज्य से कर न प्राप्त होने पर उसकी राशि ५,००० रु० कर दी । परन्तु बस्तर के राजन्यों को राज्यशासन की सम्पूर्ण स्वाधीनता तथा मृत्युदण्ड तक के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त रहे । तथापि अंग्रेजी राज्यशासन सन्दिग्ध हो उठा कि धर्म के अधिकार के आधार पर बस्तर में नरबलि होती है एवं राज्य की इष्टदेवता दन्त्येश्वरी के मन्दिर में दन्त्येवाड़ा में यह बलि प्रदान की जाती है । अतः अंग्रेजी राज्यशासन के द्वारा सन् १८३७ से हस्तक्षेप आरम्भ हुआ और इस प्रकार के तथ्य एकत्र किए जाने लगे। परिणामतः राजा भोपालदेव के भाई तथा उनके दीवान लाल दलगंजन-सिंह को अंग्रेजी शासन के रेजिडेन्ट ने साक्षी प्रदान करने के लिए नागपुर बुलवाया तथा नागपुर का एक पुलिस का दस्ता नरबलि बन्द करने के उद्देश्य से दन्त्येवाड़ा में रख दिया । परन्तु नरबलि प्रमाणित नहीं हुई।

सन् १८५३ में अंग्रेजों ने बस्तर में अपना सीधा राजकीय अधिकार आरम्भ किया और नरबलि प्रमाणित न होन पर भी राजा भैरमदेव के पक्ष में अनिवार्य आदेश प्रदान किया कि उन्हें अंग्रेजी राज्य-शासन का दीवान अपने राज्य में नियुक्त करना होगा । राजा भैरमदेव के देहावसान के समय सन् १८९१ में राजा रुद्र-प्रतापदेव के अल्प-वयस्क होने के कारण तथा अनेक राज

दन्त्येवाड़ा की एक सुभूषित कन्या

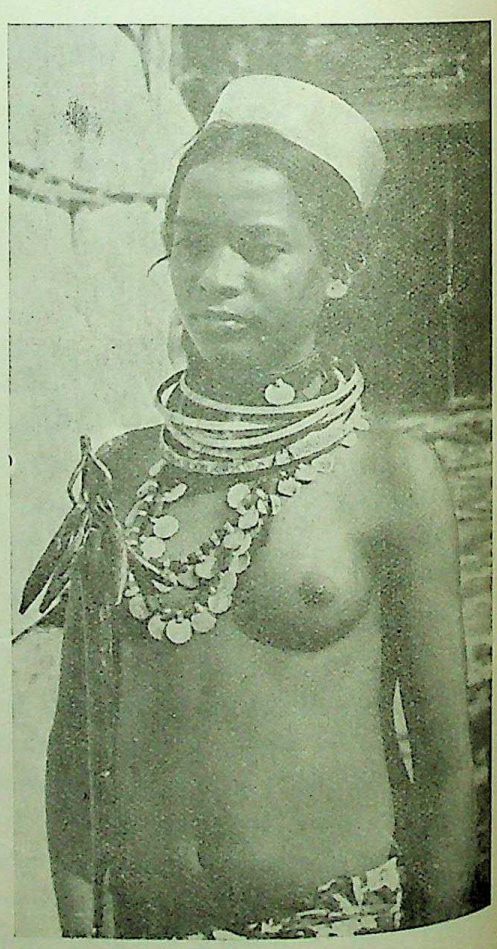

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीतिक कारण उपस्थित करके अंग्रेजों ने बस्तर में सम्पूर्ण राज्यशासन व्यवस्था आरम्भ कर दी।

जी० डब्ल्यू० गेयर के शासन काल में अधिकारियों ने मार्ग निर्मित करवाए, लगान यथाविधि निश्चित किया, चिकित्सा की यत्सामान्य व्यवस्था की। परन्तु बस्तरवासी प्रागैतिहासिक युगीन आदिमजातीय पैगन अथवा अविकसित, अर्थहीन, अनुन्नत, अशिक्षित जनमानव के उन्नयन साधन के लिए वास्तविक उन्नति एवं विकास की उल्लख योग्य योजनाएं दृष्टिगोचर नहीं हुईं।

गेयर का स्थान कालाहांडी राज्य के भूतपूर्व सफल दीवान पंड्या बैजनाथ ने ग्रहण किया, जो अभी वाराणसी की थियोसाफिकल सोसाइटी के सदस्य हैं। वह सन् १९१० तक राजा रुद्रप्रतापदेव के दीवान रहे। पंड्या बैजनाथ ने अपने शासनकाल में राज्य के विकास की आकांक्षा से प्राथमिक पाठशालाएं स्थान-स्थान में खुलवाईं तथा वन सुरक्षा की व्यवस्था की। प्रतीत होता है कि वन सुरक्षा योजना के मूल में हिताकांक्षा अधिक थी, परिणति की दूरदर्शिता का अभाव था। राज्य में मार्ग निर्माण आदि के सम्बन्ध में बेगार प्रथा के प्रति भी आदिमजातीय असन्तुष्ट थे। उनकी स्थानान्तरित कृषि पद्धति पर भी स्वभावतः व्याघात हुआ। राज्य के अभ्यन्तर में दुरभिसन्धिक प्रयोग भी पनप रहे थे। जो भी कारण हों, राज्यव्यापी एक विप्लव सन् १९१० में हो गया।

आदिमजातीयों का दमन हुआ और अंग्रेजी आभिसन्धिक राज्य व्यवस्था अग्रसर हुई—अंग्रेजों के अधीन राजा रुद्रप्रतापदेव को अथवा रानी प्रफुल्लकुमारी देवी को स्वाधीन रूप से राज्यशासन का अवसर प्राप्त नहीं हुआ।

परम्परा के अनुसार डब्ल्यू० वी० ग्रिग्सन तथा अल्फ्रेड नार्वल, मिचल तथा उनके प्रथम एवं परवर्ती अधिकारी हुए। तथापि आदिमजातीयों की स्थिति में कुछ अधिक सुधार हो नहीं सका। अवश्य ग्रिग्सन तथा मिचल ने उन्नति के कार्य किए, बेगार प्रथा बन्द की, ठेकेदारी पद्धति का अन्त किया, आदि-आदि। वन विभाग के यत्सामान्य मार्ग निर्मित हुए।

अबूझमाड़ का क्षेत्र, जनसाधारण के प्रवेश के लिए दुरूह तथा बाधामूलक रहा। अबूझमाड़ का क्षेत्र दन्त्येवाड़ा तहसील के हान्दावाड़ा से आरम्भ होकर बीजापुर तहसील के कुटरू अंचल चांदा की सीमा तक तथा नारायणपुर तहसील के परलकोट, सोनपुर, छोटे डोंगर, ओरछा आदि तक प्रसारित है। अधिकांश पर्वतीय अंचल है यह, जिसकी अनेक-अनेक चूड़ाएं हैं। ये चूड़ाएं २,०५० फुट से ३,३२२ फुट तक ऊंची हैं, बारह-चौदह चूड़ाएं ३,००० फुट से अधिक ऊंची हैं। सर्वाधिक प्रागैतिहासिक युगीन अबूझमाड़िया इसी अंचल के निवासी हैं। माड़ियों के पश्चात डन्डामी माड़ियों की, दोरलों की, मुरिया और परजा, भतरा आदि की गिनती होती है जो जिले के विभिन्न अंचलों में निवास करते हैं। कांकेर अंचल में तथा बड़े डोंगर के निकट हलबा जाति की विशिष्ट संख्या है।

अबूझमाड़ की मेरा कोहतूर कन्याएं नृत्य करते हुए

माड़िया युवक और युवतियाँ नृत्य करते हुए

दोरला ग्रामवासियों के बीच लेखक

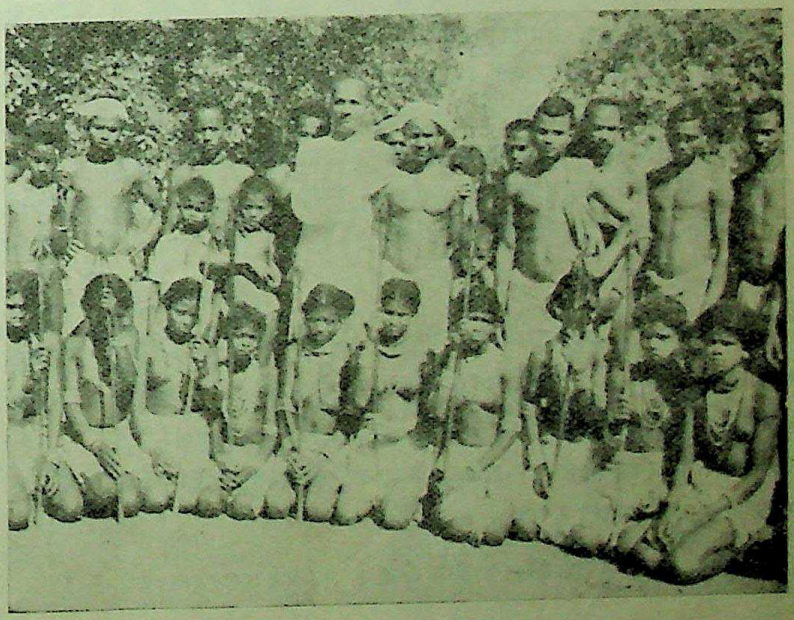

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

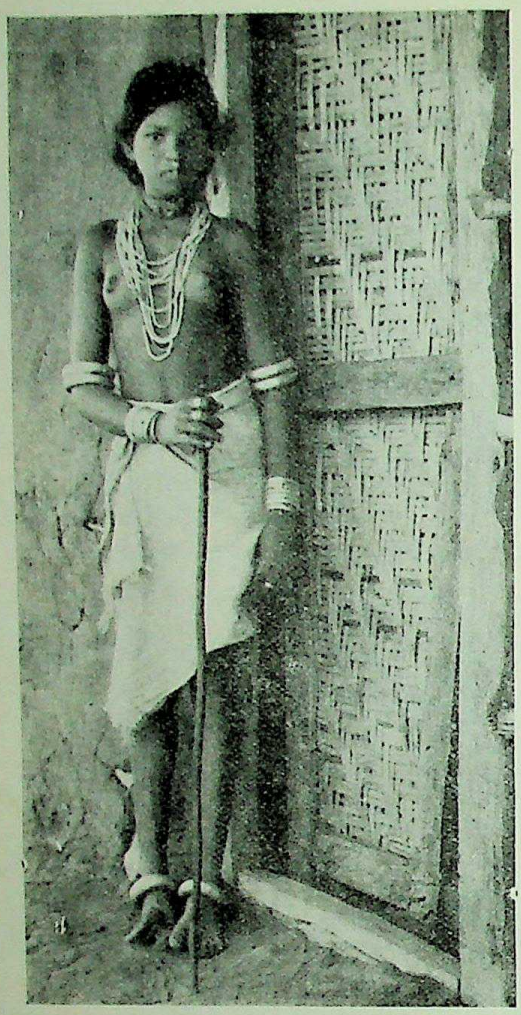

सदभूम की एक माड़िया कन्या

यद्यपि वे संख्या में अपेक्षाकृत अल्प हैं, तथापि अन्तागढ़, परतापुर, नारायणपुर, सोनपुर, कोलर, छोटे डोंगर तक प्रसारित हैं। बीजापुर तहसील तथा जिले के अन्य अंचलों में भी उनका निवास है। इन की भाषा हलबी को यद्यपि ग्रियर्सन ने मराठी भाषा की श्रेणी की बोली के रूप में परिगणित किया था, तथापि स्टेन कोनोग्र ने उसे पूर्वी हिन्दी की बोली के रूप में परिगणित किया है। हटन और गुहा ने द्वितीय सिद्धान्त को महत्व प्रदान किया है। आज सिद्धान्त निरूपित है कि वह अवधी, बुन्देलखंडी, अर्द्धमागधी, छत्तीसगढ़ी आदि का क्रमिक रूप-परिवर्तन मात्र है। अबूझ माड़िया, डन्डामी माड़िया, दोरला, परजा, भतरा आदि की विभिन्न भाषाएं अथवा बोलियां हैं।

आदिमजातीयों में समाज की, स्वभाव की, धार्मिक आचार की, खान-पान की एकता पाई जाती है। नेपाल तथा भूटान, आसाम, जैंतिया पर्वत श्रेणी, सिक्किम, कूचबिहार, बंगाल तथा बिहार के आदिम-

दोरला कन्याएं

जातीयों में तथा बस्तर के प्रागैतिहासिक युगीन निवासियों में उक्त समानता है।

बस्तर राज्य भारतवर्ष के समस्त राज्यों के समान उड़ीसा और मध्य प्रदेश के राज्यों के सहित जनतान्त्रिक राज्यशासन में विलीन हो गया, तथापि राजा के प्रति आदिमजातीय जनता की विशिष्ट आस्था एवं प्रीति है।

बस्तर के आदिमजातीय अतिथिपरायण और आस्थापरायण हैं। वे राज्यशासन के प्रति आदेशपरायण तथा उसके अनुगामी हैं। इसी कारण जनतन्त्र के आरम्भ के समय से बस्तर जिले में स्थानीय शासन व्यवस्था के द्वारा तथा राज्यशासन के उन्नयनमूलक विभागों के द्वारा जिले का उत्कर्ष सम्पन्न हुआ है। विलय के समय बस्तर जिले में कांकेर तथा बस्तर को सम्मिलित करके केवल ७५ प्राथमिक पाठशालाएं होंगी, किन्तु आज ७५० के लगभग हैं।

बस्तर के आदिमजातीय तथा अबूझ शब्द की अंग्रेजी संज्ञा के अनुसार कैनिबाल अथवा नरभक्षी नहीं हैं। वे मृदुल, मधुर, शिष्ट, प्रागैतिहासिक युगीन पृथ्वी की वरद सन्तति हैं।

★

गुनहगार--(पृष्ठ ३५ का शेषांश)

इन सज्जन का बटुआ मैंने बस इसलिए चुराया था कि अपनी बेटी के पास पहुंच सकूं। मैं इसे चोरी नहीं मानता। मरने से पहले बेटी का मुंह देखने का अवसर मुझे मिलना ही चाहिए! क्या सरकार प्रबन्ध करेगी? सरकार न करे, तो क्या समाज करेगा? और यदि दोनों ही न करें, तो क्या मैं अपने-आप भी प्रबन्ध न करूं?

आपको मेरा यह तर्क संगत न लगा होगा। आप मुझे जरूर सज़ा देंगे, पर जेल भेजने से पूर्व क्या मेरे साथ न्याय नहीं करेंगे? मुझे बेटी से मिलाने का प्रबन्ध नहीं करेंगे?

बेटी को देखने के लिए ही मैंने बटुआ चुराया था। आप इसे गुनाह कहेंगे, यह मैं जानता हूं। पर आप ही बताइए ज़रूरत पूरी करने के लिए गरीबों के पास गुनाह के अतिरिक्त दूसरा कौन-सा साधन है?

क्या आप को लगता है कि मैंने कोई गुनाह किया है?

अनुवादक : राजगोपाल माथुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

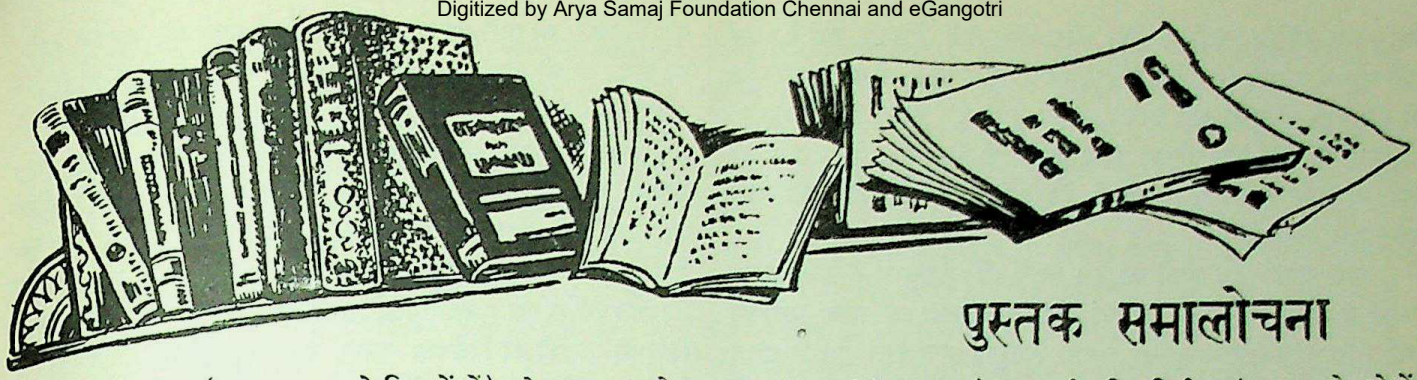

पुस्तक समालोचना

सोना और खून (प्रथम भाग, दो जिल्दों में) : लेखक—चतुरसेन शास्त्री; प्रकाशक—राजहंस प्रकाशन, सदर बाजार, रुई मण्डी, दिल्ली-६; पहली जिल्द की पृष्ठ संख्या—३०० और मूल्य—५) रु० सजिल्द; दूसरी जिल्द की पृष्ठ संख्या—५९० और मूल्य—९) रु० सजिल्द।

छोटे टाइप में छपा ९०० पृष्ठों का यह प्रथम भाग आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'सोना और खून' नामक प्रस्तावित पूरे उपन्यास के दशमांश से अधिक नहीं है। इस भाग में लगभग पौने तीन लाख शब्द हैं। इसका अभिप्राय यह है कि यह उपन्यास २५ लाख से भी अधिक शब्दों में सम्पूर्ण होगा। दूसरे शब्दों में 'सोना और खून' हिन्दी का तो सबसे बड़ा उपन्यास होगा ही, वह संसार के सबसे बड़े उपन्यासों में गिना जाएगा। आचार्य जी इस समय तक 'सोना और खून' का दूसरा भाग भी सम्पूर्ण कर चुके हैं।

इस उपन्यास को एक तरह से एक नया परीक्षण कहना चाहिए। सम्भवतः आचार्य जी का विचार पिछले १०० वर्षों के सम्बन्ध में यह उपन्यास लिखने का है। उपन्यास का प्रारम्भ सन् १८४३ से होता है और १० भागों में वह इसे सन् १९४७ तक लाकर सम्पूर्ण कर देना चाहते हैं। इस तरह एक पीढ़ी से अधिक के काल पर कितने ही सफल उपन्यास आप को विश्व साहित्य में मिलेंगे। पर वे उपन्यास या तो एक ही वंश की कुछ पीढ़ियों के सम्बन्ध में हैं, अथवा 'जो दास थे' नामक एशियाई रूसी उपन्यास की तरह कुछ संस्थाओं के सम्बन्ध में हैं, जहां जमींदार का बेटा जमींदार ही रहता है और किसान का बेटा किसान।

मेरा ख़्याल था कि आचार्य चतुरसेन शास्त्री भी उसी शैली का अनुसरण करेंगे। हमारे देश की समाज रचना काफ़ी गुथीली और बहुत अंशों तक अपरिवर्तनशील रही है। वह अच्छी थी या बुरी, इस सम्बन्ध में कोई भी राय दिए बिना मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि हमारे देश की उक्त रूढ़िग्रस्त तथा पेचीदा समाज रचना इस तरह के किसी बड़े उपन्यास का एक अत्यन्त शक्तिशाली विषय बन सकती है। और इसी बात की आशा मैंने आचार्य चतुरसेन के इस उपन्यास से की थी।

उपन्यास का प्रारम्भिक अंश पढ़ कर वह आशा और भी संगत प्रतीत होने लगी थी। 'सोना और खून' का प्रारम्भ पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर, मेरठ आदि जिलों से होता है। अंग्रेजी सत्ता के आगमन से किस तरह पुरानी राज संस्थाएं उखड़ने लगती हैं और सुसंगठित परिवार नए क्षेत्रों में किस तरह अपने प्रभुत्व का विस्तार कर बड़े-बड़े जमींदार बन जाते हैं। शास्त्रीजी ने इस उपन्यास का प्रारम्भ इसी तरह के एक सम्भ्रान्त मुसलमान बड़े मीयाँ (खुरशैद मुहम्मद खां) के परिवार तथा एक अत्यन्त सम्पन्न हिन्दू जमींदार (चौधरी परिवार) से किया है। इन दोनों परिवारों में अत्यन्त घनिष्ठ भाईचारा और सौहार्द है। आज से सवा सौ वर्ष पूर्व के इन कुलीन भारतीय परिवारों का पूरा चित्र पाठक के मानस-पटल पर अंकित होने लगता है, उन की दरियादिली, गांव भर के लोगों को अपनी औलाद के समान समझना, गांव की प्रत्येक लड़की को अपनी बेटी समझना, साथ ही उनकी कमज़ोरियां और उनकी नासमझियां—इन सबका बहुत शानदार और प्रभावशाली चित्रण आपको 'सोना और खून' के प्रारम्भिक अंश में मिलेगा।

पर प्रथम भाग का यह पहला खण्ड केवल ४८ पृष्ठों का ही है। दूसरा खण्ड फ्लैश बैक की तरह है, जिसमें प्रथम खण्ड के काल से लगभग ४० वर्ष पूर्व चौधरी परिवार के इस ओर आकर बसने की कहानी है। इस खण्ड में सिंधिया, होल्कर, रणजीतसिंह आदि ऐतिहासिक पात्र भी हैं। इतिहास और कल्पना दोनों एक साथ चलते हैं, जिसमें कोई हर्ज भी नहीं है। पर यह खण्ड भी केवल ९६ पृष्ठों का ही है।

उसके बाद प्रथम भाग के तीसरे खण्ड से जैसे यह रचना उपन्यास न रह कर इतिहास ग्रन्थ बन जाती है। तीसरा खण्ड एलफ़िन्स्टन के अफ़गान-आक्रमण (१८१३) से प्रारम्भ होता है। १५३ पृष्ठों के इस खण्ड में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकालीन भारत की राजनीतिक घटनाओं का बिखरा हुआ चित्रण है। एक बड़े कैन्वस पर ज़रा-ज़रा अन्तर से कूची फेर कर जैसे भिन्न-भिन्न छवियां चित्रित करने का प्रयत्न किया गया हो। इस तीसरे खण्ड में लेखक ऐतिहासिक घटनाओं की भंवरघेरी में इतना अधिक उलझ गया है कि उपन्यास के मुख्य पात्र चौधरी और मीयाँ जैसे बहुत समय तक लेखक के ध्यान से उतरे रहते हैं। इस खण्ड के आखीर में जैसे अचानक उनकी याद आती है, और उन्हें बिना अधिक हीलो-हुज्जत के परमधाम पहुँचा दिया जाता है।

प्रथम भाग का उत्तरार्ध आकार में पूर्वार्ध से लगभग दुगुना है। उसमें भी ४ से लेकर ६ तक, तीन ही खण्ड हैं। चौथा खण्ड चौधरी के वंशजों से प्रारम्भ होता है। इस खण्ड में लेखक ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन के अन्तिम दिनों में होने वाले अनर्थों का बहुत अच्छा चित्रण किया है। यह खण्ड प्रथम खण्ड के समान श्रेष्ठ और मनोरंजक है। १०६ पृष्ठों में इस खण्ड में मुज़फ्फरनगर और मेरठ जिलों की आज से एक सदी पूर्व की परिस्थितियों और इस क्षेत्र के सामाजिक जीवन और आर्थिक ढांचे पर बहुत अच्छे ढंग से प्रकाश डाला गया है। इस खण्ड में तिथि-क्रम की उपेक्षा लेखक ने भले ही की हो, पर उस युग में उक्त प्रदेश का चित्रण करने में उन्हें यथेष्ठ सफलता प्राप्त हुई है।

पर पांचवां खण्ड, जो ३०८ पृष्ठों का है और जिसमें ८३ परिच्छेद हैं, एक लम्बे क्षेपक के समान है। इन ८३ परिच्छेदों में जैसे कितनी ही सदियों का चित्रण एक साथ करने का प्रयत्न किया गया है। प्रारम्भ सत्रहवीं सदी से होता है, पर इंगलैण्ड, फ्रांस आदि के इतिहास की पुरानी से लेकर नई बातों और घटनाओं पर आगे-पीछे जिस तरह ये परिच्छेद लिखे गए हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह पाठक को बहुत बड़ी उलझन और भूलभुलैयां में डाल देता है। एक परिच्छेद में अठारहवीं सदी की किसी घटना का वर्णन है, तो अगले परिच्छेद में सोलहवीं सदी की कोई घटना ले ली जाती है। कैन्वस इतना बड़ा हो जाता है कि चार-पांच सदियां और दूर-दूर के तीन-चार देश इस पांचवें खण्ड में बक्से की मशीन से दिखाई देने वाले चित्रों के समान आगे-पीछे आते चले जाते हैं।

छठा खण्ड १८४ पृष्ठों का है। उसमें भी उपन्यास के कल्पनात्मक पात्रों के साथ ऐतिहासिक घटनाएं और किंवदन्तियां इस तरह घुलमिल गई हैं कि पांचवें खण्ड का-सा प्रभाव निरन्तर बना रहता है। इस खण्ड का एक परिच्छेद (इस्लाम का प्रथम चरण) तो पाठक को सातवीं सदी की सैर करा लाता है। तिथि-क्रम के सम्बन्ध में इतनी ढील बरती गई है कि उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में उससे ५०० वर्ष के भीतर के अंग्रेजी साहित्यकारों की गिनती में थामस हार्डी को भी गिना गया है। इस तरह के कितने ही ऐतिहासिक व्याघात आप को 'सोना और खून' में मिलेंगे। फिर भी यह स्पष्ट है कि अपनी इस रचना के लिए शास्त्री जी ने बहुत व्यापक अध्ययन किया है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कि 'सोना और खून' लगभग १०,००० पृष्ठों में सम्पूर्ण होगा। मेरा लेखक से अनुरोध है कि वह रचना के भावी अंश में एक तो तिथि-क्रम का उल्लंघन न करें और दूसरे वह पिछली एक सदी क जन-जीवन को ही अपनी इस रचना में चित्रित करने का प्रयत्न करें। पिछले सौ-सवा सौ वर्षों में उत्तर भारत में विभिन्न श्रेणियों, परिवारों और स्तरों के विकास और ह्रास के सम्बन्ध में लिखा गया उपन्यास निस्सन्देह अत्यन्त प्राणवान होगा। इस सदी में समाज रचना किस प्रकार की थी, लोगों का रहन-सहन और विचार क्या थे और अंग्रेजों के संसर्ग से उसमें क्या परिवर्तन आया, उन्नीसवीं सदी में भारत में जिस तरह जमींदारों और राजाओं का प्रभुत्व था, उसके सम्बन्ध में तथा जनसाधारण के आर्थिक, पारिवारिक तथा सामाजिक ढांचे पर बहुत अच्छा प्रकाश इस बड़े उपन्यास में डाला जा सकता है और मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि आचार्य चतुरसेन में यह शक्ति है कि वह इस विशाल रचना को सचमुच महान और स्थायी महत्व की रचना बना सकें।

टेढ़ी लकीर : लेखिका—इस्मत चुगतई; प्रकाशक—अदबी पब्लिशर्स; ८ शेफर्ड रोड, बम्बई-८; पृष्ठ संख्या—४९४; मूल्य—६।।) रु०।

श्रीमती इस्मत चुगतई उर्दू की सुप्रसिद्ध लेखिका हैं। लगभग डेढ़ लाख शब्दों की इस रचना में लेखिका ने शम्मन नाम की एक लड़की का चित्रण किया है। श्रीमती चुगतई के अपने शब्दों में "शम्मन की कहानी किसी एक लड़की की कहानी नहीं है। यह हजारों लड़कियों की कहानी है। यह उस दौर की लड़की की कहानी है, जब वह पाबन्दियों और आजादी के बीच लटक रही होती है। ..... कुछ लोगों का खयाल है कि 'टेढ़ी लकीर' मेरी आपबीती है। सच बात यह है कि मैंने शम्मन के दिल में उतरने की कोशिश की है। उसके साथ आंसू बहाए हैं और कहकहे लगाए हैं। उसकी कमजोरियों से जल उठी हूं और उसकी हिम्मत की दाद भी मैंने दी है। उसकी बेवकूफ़ियों पर रहम आया है और उसकी शरारतों पर प्यार भी आया है। ऐसी हालत में अगर मैं भी कहूं कि यह मेरी आपबीती है, तो कुछ ज्यादा मुबालिगा तो नहीं।"

आत्मचरितात्मकता की दृष्टि से यह उपन्यास उसी श्रेणी का है, जिस श्रेणी के 'शेखर' और 'जो कुछ मैंने समझा' हैं। शम्मन मध्य श्रेणी के एक परिवार की ऐसी बालिका है, जिसकी ५ बहनें और बहुत-से भाई हैं। मां-बाप उसकी नितान्त उपेक्षा करते हैं और वह जैसे शुरू से ही आत्म-निर्भर बनने का प्रयत्न करती है। इस तरह के हजारों परिवार हमारे देश में हैं। उन परिवारों की एक लड़की के बचपन से लेकर विवाह तक का अत्यन्त अन्तरंग चित्रण इस उपन्यास में हुआ है, जिसमें कुछ भी छिपाने का प्रयत्न नहीं किया गया। इस तरह यह उपन्यास एक अत्यन्त सफल रचना है। एक और दृष्टि से भी मैं इस उपन्यास को बहुत उपादेय मानता हूं। मध्य वर्ग के एक मुसलमान परिवार का साधारणतः और एक मुसलमान शिक्षिता लड़की का विशेषतः इतना यथार्थपूर्ण चित्रण इस रचना में है कि उस तबके को समझने में इस उपन्यास से बहुत मूल्यवान सहायता मिलती है और इस तरह यह रचना साम्प्रदायिक भेदभाव को दूर करने और सद्भावना बढ़ाने का उपकरण बन सकती है।

इस उपन्यास की दूसरी विशेषता इसकी शैली और भाषा है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यास का अनुवाद नहीं किया गया, केवल लिपि परिवर्तन किया गया है। उर्दू लिपि की बजाय नागरी लिपि में प्रकाशित इस उपन्यास में उर्दू की सशक्त शैली पाठक को सुरक्षित मिलेगी।

'टेढ़ी लकीर' की कमजोरी उसके कथानक का पतलापन है। कथानक की दृष्टि से उपन्यास के पिछले सवा सौ पृष्ठ तो बहुत कमजोर हैं। कहीं-कहीं खिंचे हुए वर्णन भी आप को मिलेंगे। कहीं-कहीं लेखिका ने राजनीतिक घटनाओं पर अपनी जो रायजनी की है, वह बहुत उथली है।

उपन्यास में कितने ही कठिन शब्दों का रूपान्तर नहीं दिया गया। इस तरह के शब्द सैकड़ों की संख्या में हैं। अच्छा होता कि उनका हिन्दी अनुवाद फुटनोट के रूप में दे दिया जाता। उस अनुवाद के अभाव में हिन्दी पाठकों के लिए इस रचना को पूरी तरह समझने में कठिनाई होगी।

मध्य एशिया का इतिहास (द्वितीय खण्ड) : लेखक—राहुल सांकृत्यायन; प्रकाशक—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना; पृष्ठ संख्या—(बड़े आकार के) ६५८; मूल्य—८।।) रु० सजिल्द।

इस अत्यन्त महत्वपूर्ण इतिहास ग्रन्थ के प्रथम खण्ड की चर्चा इन कालमों में यथासमय की जा चुकी है। यह दूसरा खण्ड प्रथम खण्ड से लगभग ४० प्रतिशत अधिक बड़ा है। इस खण्ड में सन् १२०० से लेकर १९१९ तक का इतिहास वर्णित है। देश वही हैं, जिनका वर्णन प्रथम खण्ड में था और ढंग भी वही है। यह खण्ड कुल ५ भागों में विभाजित है। प्रथम तथा तृतीय भागों में उत्तराखण्ड का क्रमिक इतिहास है तथा द्वितीय और चतुर्थ में दक्षिणापथ का। पंचम खण्ड बोलशेविक क्रान्ति के सम्बन्ध में है। इस तरह उत्तरापथ में चीन का मंगोल वंश, सुवर्ण ओर्दू, श्वेत ओर्दू (१२५५ से १४२५), रूस का रूरिक वंश, रूस का प्रसार, रोमनोफ वंश, श्वेत ओर्दू (१४७२२५१–८), नोगाई, महानोगाई, मुगोलिस्तान के खान, सिबिर खान, जुंगर साम्राज्य, वोल्गा कल्मक और कजाक-ओर्दू वंशों का जिक्र है और दक्षिणापथ में चगताई वंश, हलाकू वंश, तैमूर वंश, शैबानी वंश, अस्त्राखानी, खीवाखान, जारशाही का अन्तिम प्रसार (१८०१ से १९१७ तक के पांच जार), खोकन्द के खान, बुखारा के खान, छोटे-छोटे राज्य और खीवा के खानों का वर्णन है।

इस खण्ड में २० मानचित्र हैं तथा तीन उपयोगी परिशिष्ट दिए गए हैं। प्रथम परिशिष्ट में लगभग २००० रूसी शब्दों के अर्थ दिए गए हैं, द्वितीय में २५० से ऊपर स्रोत ग्रन्थों की सूची है और तृतीय में इस इतिहास में आए ५,००० से ऊपर नामों की अनुक्रमणिका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहां तक हमें ज्ञात है, हिन्दी तो क्या संसार की किसी भी भाषा में मध्य एशिया का इतना बड़ा और क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है। महापण्डित राहुल जी ने कितने ही बड़े-बड़े काम किए हैं, पर उनका यह कार्य उन बड़े-बड़े कार्यों में भी बहुत बड़ा है। तभी उन्होंने इस खण्ड की प्रस्तावना में लिखा है कि "इस खण्ड को पाठकों के हाथ में जाते देख कर, मालूम होता है, एक बड़ा भार सिर से उतर गया।" इस अत्यन्त श्रेष्ठ प्रकाशन के लिए लेखक और प्रकाशक दोनों बधाई और साधुवाद के पात्र हैं। इस खण्ड में छापे की कुछ भूलें रह गई हैं। ऐसे प्रामाणिक सन्दर्भ ग्रन्थ में छापे की एक भी भूल नहीं रहनी चाहिए।

फ़्रायड : मनोविश्लेषण : अनुवाद—देवेन्द्र कुमार वेदालंकार; प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली; पृष्ठ संख्या—(बड़े आकार के) १४४; मूल्य—१०) रु० सजिल्द।

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डा० सिगमंड फ़्रायड की अत्यन्त सुप्रसिद्ध कृति 'ए जनरल इंट्रोडक्शन टु साइकोएनेलेसिज़' का यह अविकल हिन्दी अनुवाद है। डा० फ़्रायड का यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक है और इस ग्रन्थ द्वारा विद्वान लेखक ने सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक जगत का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। अपनी जिन कृतियों के कारण डा० फ़्रायड संसार भर के लेखकों, विचारकों, कलाकारों तथा समाजशास्त्रियों पर बहुत समय तक छाये-से रहे, उनमें यह ग्रन्थ भी है। विश्व की सभी समृद्ध भाषाओं में इस ग्रन्थ का अनुवाद हो चुका है। श्री देवेन्द्र कुमार द्वारा कृत यह अनुवाद निःसन्देह बहुत अच्छा और प्रामाणिक है। पुस्तक की छपाई, सफाई, जिल्दबन्दी आदि सभी नयनाभिराम हैं।

मैथिलीशरण गुप्त : लेखक—उमाकान्त; प्रकाशक—हिन्दी अनुसन्धान परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय, के निमित्त नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; पृष्ठ संख्या—(बड़े आकार के) ४८८; मूल्य १५) रु० सजिल्द।

यह ग्रन्थ वास्तव में श्री उमाकान्त, प्राध्यापक रामजस कालेज दिल्ली, के डाक्टरेट का निबन्ध है। इस ग्रन्थ की ८ पृष्ठ की पठनीय भूमिका पूरे मनोयोग के साथ डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखी है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त निस्सन्देह युग प्रवर्तक कवि हैं। हिन्दी भाषा के वर्तमान स्वरूप को संस्कार देने वाले व्यक्तियों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काव्य परम्पराओं को उन्होंने न सिर्फ नया रूप दिया, अपितु उन्हें नवीनार्थ भी प्रदान किया। इसी कारण वह राष्ट्र कवि कहलाते हैं।

प्रतिपाद्य वस्तु की महत्ता से ग्रन्थ की जो महत्ता बढ़ती है, वह तो इस रचना में है ही। इसके अतिरिक्त लेखक ने अपने विषय के साथ पूरा न्याय भी किया है। पुस्तक के पूर्वार्ध में ग्रन्थ परिचय, भाव पक्ष तथा कला पक्ष प्रतिपादित हैं और उत्तरार्ध में भारतीय संस्कृति के आख्याता मैथिलीशरण गुप्त के सम्बन्ध में लगभग सवा सौ पृष्ठों की विवेचना है। इस भाग में 'हिन्दी काव्य में गुप्त जी का स्थान' पर भी प्रकाश डाला गया है। इस तरह कविवर श्री मैथिलीशरण गुप्त के सम्बन्ध में यह एक बहुत अच्छा सन्दर्भ ग्रन्थ और साथ ही साथ समीक्षात्मक ग्रन्थ बन गया है। पुस्तक की छपाई, सफाई बहुत सुन्दर है।

सटक सीताराम : लेखक—संसारचन्द्र; प्रकाशक—ओरिएण्टल बुक डिपो, १७०४, नई सड़क, दिल्ली; पृष्ठ संख्या—१७०; मूल्य—३) रु० सजिल्द।

डा० संसार चन्द्र की यह प्रथम रचना मेरी निगाह में आई है। पर यह प्रथम रचना पढ़ कर निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि लखक में अच्छा हास्य लिख सकने की शक्ति प्रचुर मात्रा में है। पंजाब के एक नए लेखक का इस क्षेत्र में हम हृदय से स्वागत करते हैं।

'सटक सीताराम' लेखक के १७ हास्य-रसात्मक लघु निबन्धों का संग्रह है। लेखक का कथन है कि उनकी इस रचना का "मुख्य उद्देश्य तो पाठक के मन में केवल गुदगुदी-सी पैदा करना एवं थोड़ी देर के लिए उसे जीवन के गम्भीर वातावरण से तटस्थ करना है"। पर वास्तविकता यह नहीं है। श्रेष्ठ हास्य-रसात्मक रचनाओं का उद्देश्य भी वास्तव में इतना सीमित नहीं होता। पाठक के मन में गुदगुदी पैदा करना निस्सन्देह एक अच्छी बात है, पर श्रेष्ठ हास्य पाठक को जैसे अधिक समझदार भी बनाता है। पाठक के अन्तःकरण में गुदगुदी तो होती ही है, साथ ही वह एक नया दृष्टिकोण देखने और नए ढंग से सोचने को भी लाचार होता है। इस संग्रह के हास्य-निबन्धों में भी कम-अधिक वह गुण और शक्ति विद्यमान है। हास्य के साथ व्यंग्य का पुट आवश्यक है और वह व्यंग्य भी इस रचना में यथेष्ठ मात्रा में विद्यमान है।

अम्बाला शीर्षक एक हास्य-निबन्ध का कुछ अंश इस प्रकार है :

"अम्बाला में ऐसे कुत्ते भी हैं, जिन्हें ईश्वर ने कवियों जैसा मिज़ाज प्रदान किया है। यहां तक कि कभी-कभी ये कुत्ते दूध जैसी सफेद चांदनी रातों में कवि-सम्मेलन का आयोजन भी करते हैं। वसन्त के शुभागमन पर रात के सन्नाटे में नगर के उत्तरी कोने से एक कुत्ता कविता-पाठ करके कवि-सम्मेलन का उद्घाटन कर देता है। कविता की यह रसीली झंकार हवा की लहरों में तैरती हुई सारे नगर के वातारण में गूंज उठती है। बस फिर क्या कहने! कुत्तों की भरी बिरादरी को आन की आन में सूचना मिल जाती है कि कवि-सम्मेलन का श्रीगणेश हो गया है। इसका प्रमाण भी लगे हाथों मिल जाता है। पश्चिम दिशा की ओर से दो-तीन बार भों-भों की आवाज आती है। इसके बाद कई दर्जन गीत और गज़लें पढ़ी जाती हैं। इतने में एक कुत्ता, जो हलवाई के चूल्हे में दुबका बैठा था, झट सिर निकाल कर गज़लों की झड़ी लगा देता है। फिर तो वह हुल्लड़ मचता है कि हम बार-बार खिड़की से सिर निकाल कर 'आर्डर', 'आर्डर' पुकारते हैं, मगर आप जानते हैं कि ऐसे अवसर पर जब कवियों की महफिल रंग पर आई हो तो बेचारे प्रधान की कौन सुनता है?"

'सटक सीताराम' में कुछ कमियां भी हैं। स्पष्ट प्रतीत होता है कि लेखक की कलम अभी तक पूरी तरह मंज नहीं पाई है। भाषा के कुछ शिथिल प्रयोग तथा कुछ शब्दों के पंजाबी रूप भी आपको इस रचना में मिलेंगे। जैसे 'संतरे' को 'संगतरा' तथा 'लाल बुझक्कड़' को 'लाल भुजक्कड़' आदि। कुछ निबन्ध निम्न-स्तर के भी हैं, जैसे 'फ़िल्मची और फ़िल्म स्टार'। फिर भी सब मिला कर हास्य रस का यह संग्रह प्रशंसनीय और उपादेय है।

सम्मेलन पत्रिका (कला अंक) : सम्पादक—रामप्रताप त्रिपाठी; प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; इस अंक की पृष्ठ संख्या—५२२ (१६ पृष्ठ आर्ट पेपर); मूल्य — ८) रु०

सम्मेलन पत्रिका हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाओं में है। उसका यह कला अंक अपने यश के अनुकूल है। यह अंक ४ खण्डों में बांटा गया है: 'सत्यम्' जो कला के स्वरूप तथा सिद्धान्तों के सम्बन्ध में है, इसमें १२ लेख हैं; 'शिवम्' जो भारत की विभिन्न चित्रशैलियों के सम्बन्ध में है, इसमें २३ लेख हैं, 'सुन्दरम्' जो वास्तु शिल्प, नृत्य, नाट्य, लेखन-कला, खिलौने, फोटोग्राफी, भाषण-कला, प्रकाशन-कला आदि के सम्बन्ध में है, इसमें २० लेख है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'स्वस्तिकम्' जो शिल्प के षडंगों, ग्रन्थ सूची, परिभाषा कोष, वास्तुशिल्प की तालिका, संग्रहालय आदि के सम्बन्ध में हैं, इसमें १२ अनुवादित लेख हैं। इस तरह इस अंक में कला सम्बन्धी अत्यन्त व्यापक क्षेत्र एक साथ लिया गया है। अंक में कितने ही सुन्दर चित्र भी हैं। पर इन चित्रों की संख्या हमारी राय से और भी अधिक होनी चाहिए थी। लेखों का स्तर भिन्न है। कुछ लेखों का स्तर अच्छा है पर कुछ लेख साधारण कोटि के भी हैं, खण्ड-भेद भी पूरी तरह निभाया नहीं जा सका। पर सब मिला कर यह कला अंक अत्यन्त श्रेष्ठ कोटि का है और इसके सम्पादन तथा प्रकाशन में स्पष्टतः खूब परिश्रम किया गया है। अंक निस्सन्देह संग्रहणीय है।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

●

भोजपुरी के कवि और काव्य : लेखक—श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह; प्रकाशक—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना; पृष्ठ संख्या—३१९; मूल्य—५.७५) रु० सजिल्द।

बिहार में, छोटा नागपुर में बोली जाने वाली उन भाषाओं को छोड़ कर जिनमें आसपास की भाषाओं का काफी मिलाव है, मुख्यतः तीन बोलचाल की भाषाएं हैं—भोजपुरी, मागधी और मैथिली—जिनमें दो ऐसी हैं जिनका अपना काफी समुन्नत साहित्य है, मैथिली और भोजपुरी। दरअसल इन्हें केवल बोलचाल की भाषा कह कर हम इनके साथ एक प्रकार से अन्याय करते हैं। जिस भाषा में विद्यापति जैसे महान कवि की कृतियां हों अथवा जिसमें कबीर, दरियादास, पलटूदास तथा बुल्ला साहब के समान सन्तों की वाणी हो, वह केवल बोलचाल की भाषा कही जाए, यह न्यायोचित नहीं, फिर भी चूंकि इन्होंने भारतीय संविधान में दी गई भाषाओं की तालिका में स्थान नहीं पाया है, हमें इन्हें बोलचाल की भाषाएं ही कहना पड़ेगा।

प्रस्तुत पुस्तक का सम्बन्ध भोजपुरी भाषा से—उसके कवि और उनके काव्य से—है। भोजपुरी भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डा० ग्रियर्सन से लेकर आज तक अनेकों अटकलबाजियां लगाई गईं पर वास्तविक तथ्य पर कोई न पहुंच पाया। और न पहुंच सकता ही है, चूंकि भोजपुरी अथवा इस प्रकार की जितनी और भाषाएं हैं, मैथिली आदि, वे सभी प्राकृत का अपभ्रंश रूप होते हुए भी उन झरनों के समान हैं जो हिमालय के हिममंडित शिखर से निकल कर भी अपने-अपने खास रास्ते पकड़ लेते हैं। इनकी स्वतन्त्र प्रगति होती है और यह कहना कि एक-दूसरे से निकला है, गलत है। फिर भी लेखक ने भोजपुरी भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो बातें लिखी हैं वे पठनीय तथा रोचक हैं।

भोजपुरी बोलने वालों की संख्या अढ़ाई करोड़ से ऊपर है तथा बिहार के शाहाबाद, सारन, चंपारन इन तीन जिलों के अलावा उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग—गोरखपुर, देवरिया, बस्ती, बनारस, आजमगढ़, मिर्जापुर, गाजीपुर तथा बलिया जिलों में भी यह व्यवहृत होती है। यही नहीं, प्राचीनकाल में बिहार के विशिष्ट परिवारों—सामन्तों—के बीच चिट्ठी-पत्री की भाषा भी यही थी। मसलन, यदि मागधी-भाषा-भाषी टिकारी के महाराज को कोई पत्र मैथिली बोलने वाले नरहन राज्य के अधिपति के पास लिखना होता था, तो वह मागधी का व्यवहार न करके भोजपुरी ही में लिखते थे। गर्ज यह कि एक प्रकार से यह सुसंस्कृत व्यक्तियों के पारस्परिक पत्र-व्यवहार तथा बातचीत की भाषा मानी जाती थी। इसकी अपनी लिपि थी कैथी, जिसमें अधिकांशतः ये पत्र लिखे जाते थे।

किन्तु भोजपुरी-भाषा-भाषियों ने हिन्दी के स्थान पर इसे बैठाने का कभी यत्न नहीं किया, यही कारण है कि भारतेन्दु युग से लेकर आज तक के हिन्दी के श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे पारंगत विद्वानों ने भोजपुरी होकर भी जो कुछ लिखा ब्रजभाषा अथवा हिन्दी में लिखा। स्वर्गीय श्री पारसनाथसिंह ने कई बार भोजपुरी में लिखने का संकल्प किया पर अन्त में यह सोच कर कि इससे हिन्दी की प्रगति में बाधा पड़ेगी, अपने विचार बदल दिए। भारतेन्दु की भी दो-चार ही रचनाएं भोजपुरी में मिलती हैं अधिक नहीं। अपनी एक रचना में किस मजाकिया ढंग पर उन्होंने एक जिलाधीश से बलिया जिले के रैयतों की ओर से कहा है—

हमनी का बलियादुआबा के रहनिहार,
रैयत हजूर के कदम पर बानींजाँ,
हमनी का सोझे-सोझे बात बतिआई, न तो,
हिनुई, न फारसी, न अंगरेजी जांनीं जाँ।

और फिर इस बात का अनुरोध किया है कि उर्दू लिपि के स्थान पर देवनागरी का प्रयोग किया जाए ताकि सरकारी कागजातों को रिआया समझ सके—

उरदू बदलि देवनागरी अछर चले,
इहे एगो साहेब से ए घरी अरज बा।

आठवीं शती से लेकर वर्तमान काल तक भोजपुरी साहित्य का सृजन जारी रहा। सन्तों ने अपनी रचनाएं इसमें कीं तथा इसमें ही लोक साहित्य भी बनता, फूलता-फलता रहा। भोजपुरी के लोकगीतों में अत्यन्त सुन्दर साहित्य सन्निहित है। शृंगार तथा वीर दोनों ही रसों का इनमें सुन्दर प्रदर्शन है। गत वर्ष दिल्ली में लोकगीतों का एक आयोजन रेडियो विभाग की ओर से हुआ था। श्रोताओं में अधिकांशतः ऐसे लोग थे जो भोजपुरी-भाषी नहीं थे, पर उनमें से बहुतों ने इस बात की पुष्टि की थी कि भोजपुरी लोकगीत भाव और माधुर्य दोनों ही दृष्टियों से अत्युत्तम हैं। इस देश में गाई जाने वाली कजरी, तथा पूरबी गाने भोजपुरी भाषा के ही हैं। पूरबी खासकर भोजपुरी-भाषा-भाषियों की अपनी चीज है जिसका जन्म सारन जिला के गांवों में हुआ। अधिकांश टुकरियां और दादरे भी भोजपुरी ही में पाए जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में जो एक कमी महसूस होती है वह यह कि इन लोकगीतों का इसमें एक संकलन नहीं दिया गया है।

वीर-गाथाएं भी इस भाषा में काफी परिमाण में पाई जाती हैं। इन्हें भाट गाया करते थे—शायद अब भी गाते हों। भोजपुरी बोलने वालों का क्षेत्र लड़ाइयों के लिए भी मशहूर रहा है तथा अंग्रेजी जमाने में बिहार से फौज में लिये जाने वाले सिपाही इसी इलाके के हुआ करते थे। डाक्टर ग्रियर्सन ने कहा था कि भारतवर्ष के नवजागरण का श्रेय मुख्यतः बंगालियों और भोजपुरियों को है। बात सही है। बंगालियों ने अपनी कलम से जो काम किया वही भोजपुरियों ने अपनी लाठी से किया। कुंवरसिंह से सम्बन्धित वीर-गाथाएं तो काफी मशहूर हैं। ये छप्पय, कवित्त, सवैया आदि में तो हैं ही, गीत के रूप में भी हैं, यथा—

"बाबू कुंवरसिंह तोहरे राज बिनु हमना रंगइबो केसरिया (होली)

पर सबसे उच्च साहित्य का सृजन इस भाषा में सन्तों के द्वारा हुआ। कबीर, कमाल, धरमदास, बुल्ला साहब, दरिया साहब आदि वर्जनों महात्माओं ने इसे अपनाया। आज भोजपुरी भाषा के साहित्य का भण्डार दार्शनिक एवं भक्ति विषयक रचनाओं से परिपूर्ण है। इनमें कुछ तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रूप में हैं, कुछ लोकगीतों के। जैसे कि--

छतिया से उठेली दरदिया पिया के जगाव बारी हो ननदी।
सैंया मोहे सूते ऐ राम प्रेम के अटरिया,
खोल ना केवरिया ए राम पूछी दिलवा के बतिया,
बारी हो ननदी--

भोजपुरी के मुहावरे, कहावतें (घाघ, भड्डरी आदि) तथा भस्थरी चरित्र आदि कहानियां भी काफी संख्या में प्राप्य हैं।

१९२० के असहयोग आन्दोलन ने भोजपुरियों की रगों में पुनः गर्म खून दौड़ाया। इसके फलस्वरूप काफी संख्या में राष्ट्रीय गीतों की इस भाषा में सृष्टि हुई। यदि ऐसी रचनाओं का एक अलग परिच्छेद में संग्रह दिया गया होता तो इस पुस्तक की सुन्दरता और भी बढ़ जाती। मुझे स्मरण है कि सारन जिले के एक भोजपुरी कवि श्री शिवशंकर प्रसाद ने सैकड़ों बड़े सुन्दर और ओजपूर्ण राष्ट्रीय गीत लिखे थे, जो गांवों में गाए जाते थे। शायद भूल से उनका इस ग्रन्थ में उल्लेख न हो पाया हो। ऐसे ही और भी कई कवियों के नाम छूटे हुए हैं।

भोजपुरी नाम के सम्बन्ध में भी कई विचार हैं। ऐसा लगता है कि प्राचीनकाल में भोजपुर नाम का कोई विस्तृत प्रान्त था। प्राकृत से निकल कर जिस अपभ्रंश भाषा का उस क्षेत्र अथवा प्रान्त में प्रसार हुआ वही भोजपुरी नाम से प्रसिद्ध हुई। आज भी बिहार के शाहाबाद जिले में एक परगना 'भोजपुर' नाम से विख्यात है। यहां राजा भोज के वंशधर राजपूतों की बड़ी-बड़ी बस्तियां हैं। ग्रन्थ के विद्वान् लेखक ने इस विषय पर भी विशद एवं पाण्डित्यपूर्ण विवेचना की है।

सारी पुस्तक खोज से लिखी गई है तथा ऐतिहासिक अवतरणों से पूर्ण है, जिसके अवलोकन से हम लाभ उठा सकते हैं। तीन परिच्छेदों में ८वीं शती से लेकर आधुनिक काल तक के कवियों का परिचय तथा उनके काव्य की बानगी दी गई है जो ज्ञानवर्द्धक तथा रोचक दोनों ही हैं। भोजपुरी भाषा में उच्च साहित्य है तथा प्रगति के अंकुर हैं। आज जब कि इस देश की सभी प्रान्तीय भाषाओं के उत्कर्ष की ओर हमारा ध्यान आकर्षित है, भोजपुरी भाषा पर ऐसी सुन्दर पुस्तक लिख कर लेखक ने एक बड़ा सराहनीय कार्य किया है। अफ़सोस है कि ऐसे उपयोगी ग्रन्थ को बरसों प्रकाशन की प्रतीक्षा में पाण्डुलिपि के रूप में रहना पड़ा।

राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

●

तारकवध--(महाकाव्य) : लेखक--श्री गिरजादत्त शुक्ल 'गिरीश'; प्रकाशक--भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद; पृष्ठ संख्या--५५८; मूल्य १०) रुपये।

प्रस्तुत महाकाव्य श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' के चिरन्तन मनन, अध्ययन और विवेक से उत्पन्न परिश्रम का फल है। सन् १९२६ से प्रारम्भ करके १९४७ में यह महाकाव्य समाप्त हुआ है। इसका प्राक्कथन कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा है और एक विशद भूमिका द्वारा गिरीश जी ने 'तारकवध' में आए प्रसंगों और विषयों पर तात्विक विवेचन किया है। लेखक ने माना है कि उनका यह महाकाव्य प्रधान रूप से रहस्यवादी है। इसमें व्यक्ति ही नहीं, सम्पूर्ण समाज--जिसमें मानव के अतिरिक्त जड़-चेतन, जीव-जन्तु, चर-अचर सभी समाविष्ट हैं--परम सत्य में विलय के लिए उन्मुख होता हुआ दिखाया गया है। एक और स्थान पर वे काव्य की मूल प्रवृत्ति की चर्चा करते हुए कहते हैं--

"सम्पूर्ण सृष्टि प्रगति की भावना से अनुप्राणित है, यही नहीं, सृष्टि और प्रलय का क्रम एक विराट प्रगति योजना का अंगमात्र है। जैसे प्रत्येक सृष्टि के साथ निश्चित रूप से एक विलय है, वैसे ही प्रत्येक प्रगति के साथ एक अगति अथवा विभ्रम भी सुनिश्चित है, भले ही उसकी अवधि अत्यन्त स्वल्प हो। क्रिया और प्रतिक्रिया की तरह प्रगति और अगति का जोड़ा अविराम रूप से कार्यशील रहता है। यहां अगति में मैं निश्चित रूप से किसी निषेधात्मक तत्व का समावेश नहीं मानता हूं। कालचक्र में अगति भी उतनी ही रचनात्मक हो सकती है जितनी प्रगति है, प्रकट रूप से विरोधी होने पर भी वास्तव में दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं और दोनों ही मिल कर सम्पूर्ण, अविभाजित ऐक्य का निर्माण करती हैं। इसी शाश्वत-पूर्ण अविभाजित ऐक्य को जीवन में अनुभव करने की ओर अग्रसर होना मानव व्यक्तित्व का कार्य है; उसका यह कार्य कभी प्रगति के द्वारा और कभी अगति के द्वारा सम्पन्न होता है। जब प्रगति विशेष रूप से क्रियाशील होती है तब भी वह अगति को अपने अंक में लिए चलती है और जब अगति प्रधानता ग्रहण करती है तब भी वह प्रगति को सर्वथा त्याग नहीं देती। अगति अन्तर्मुखी है, मानव व्यक्तित्व के विकास क लिए यदि बहिर्मुखी आदर्शों की आवश्यकता है तो साथ ही साथ अंतर्मुखी आदर्शों के साथ उनका समन्वय भी कम उपेक्षित नहीं है।"

यही मूल चिन्तन है, जो इस सम्पूर्ण महाकाव्य में विवेचित हुआ है। लेखक ने माना है कि इस दृष्टि से तारकवध न एकान्त प्रगति का समर्थक है न एक मात्र अगति का। वह न एकान्त भौतिक वाद को एकमात्र ध्येय मानता है और न केवल अध्यात्म को। प्रगति और अगति की भौतिक और अध्यात्म की जहां सन्धि है उसी का अनुसन्धान कवि को अभीष्ट है। उसका विश्वास है कि जीवन के अमृत का पान करके अमर वही हो सकेगा जो अनन्त विभिन्नताओं और विषमताओं के अन्तर में प्रवाहित एकता का दर्शन कर सकेगा, जो अगति को लेकर प्रगति को तिरस्कृत नहीं करेगा, जो अध्यात्मवाद और भौतिकवाद में से किसी एक को स्वीकार करके अन्य को ठुकरा न देगा। कवि ने स्थल-स्थल पर इसी दृष्टि से रुद्र और शंकर की कल्पना की है। वह मानता है कि रुद्र का रूप संघर्षमय, उत्तेजनामय और क्रोधमय है। अग्निस्वरूप भी वह है। यह रुद्र की प्रगति है और शीतलता, उदासीनता, धैर्य और शांति का प्रतीक होने के कारण शंकर अगति है। जैसे रुद्र में रुद्रत्व होने के कारण एक अवस्था में शंकरत्व आ जाता है, उसी प्रकार शंकर भी कभी-कभी रौद्र रूप धारण कर लेता है। यही सत्य है। हमारा विचार है, रुद्र और शंकर एक ही शक्ति के दो रूप हैं। जो स्वयं अन्योन्याश्रित रूप से सृष्टि में संकल्प-विकल्प के द्वारा समग्र जीवन को गतिमान और अगतिमान बनाते रहते हैं।

गिरीश जी ने रुद्र और शंकर की कल्पना में बड़ विस्तार से उनके रूप और कर्म का विवेचन किया है। उन्होंने वेद और उपनिषद तथा अन्य ग्रंथों के आधार पर शिव और रुद्र के रूपों द्वारा व्याप्त जीवन सृष्टि की व्याख्या की है। वह मानते हैं "रुद्र के विस्फोट की चरम परणति के अनन्तर केन्द्रानुसारिणी अथवा आत्मविलयन प्रवृति के वशीभूत होकर शिव रुद्र के प्रसार को क्रमशः उदरस्थ करते हैं, समाधिस्थ होने की प्रवृत्ति रखने के कारण अपने अन्तर में सम्पूर्ण विश्व को समाधिस्थ करने की चेष्टा करते हैं और जब वह कार्य सम्पन्न हो जाता है, तब प्रगति और अगति के समन्वय स्वरूप असत् और सत् के मिलनबिन्दु के रूप में सम्पूर्ण तत्व अचिन्त्य ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि ने इस काव्य में शंकर द्वारा अनुशासित कामदेव की स्वीकृति, पार्वती के साथ विवाह में सत्यरूप शंकर और शक्तिरूपा पार्वती के संयोग से कार्तिकेय नामक एक तीसरी शक्ति का आविर्भाव दानवों के संहार के लिए माना है। इसको वे प्रतीक रूप में स्वीकार करते हैं। इसलिये उन्होंने केन्द्रापसरणशील विकृत हिंसक दानव का उतना ही महत्व स्वीकार किया है जितना अपने केन्द्र में चलने वाले प्रकृत अहिंसक देव तथा प्रकृत हिंसक मानव का। लेखक ने इस महाकाव्य में सम्पूर्ण प्रकृति तत्वों का मानवीकरण भी कर दिया है। जब तीसरे सर्ग में नारद ब्रह्म लोक से मृत्यु लोक में आते हैं, तो मार्ग में सूर्य, रात्रि, चन्द्रमा, उषा, हिमालय सभी से बातचीत की है।

काव्यकार ने माना है, सूर्य कर्म का, संध्या चिन्ता का, रात्रि विषाद का, चन्द्रमा सांसारिक जीवन का, उषा आशा का, हिमालय जड़ जीवन का संकेत करते हैं। सम्पूर्ण काव्य में अप्रस्तुत योजनाओं द्वारा इस अगति और विगति में उद्बुद्ध संघर्षात्मक जीवन की विवेचना है।

मैं इस काव्य को विचारप्रधान काव्य मानता हूं। इस दृष्टि से यह हिन्दी का अनूठा महाकाव्य है। फिर भी स्थल-स्थल पर काव्यश्री का आनन्द पाठक को मिलता है। सन्ध्या का वर्णन करते हुए कवि की उक्ति है--

आयी याद जभी चकई की जी की गई उमंग।
लाली उतर गई चेहरे पर चढ़ा सांवला रंग॥

एक और जगह रात का वर्णन सुनिए --

प्रियतम के वियोग में काली कामर डाल।
तप निरता-सी मानो कोई अचलव्रता ब्रजबाल॥

शंकर का वर्णन करते हुए कवि कहता है --

युग युग की कपाल माला से उर का थिए संवार।
अमरों में अनुरक्त नरों में प्रथित विरक्त अपार।

संध्या, उषा, रजनी और ऋतुओं के वर्णन में मौलिक उद्भावनाएं की गई हैं। सम्पूर्ण काव्य नए उपमानों, नए प्रतीकों और रहस्यवादी अनुमेयों से गुंफित है। तारकवध महाकाव्य में एक तरह से मानव जीवन का अंतर्मंथन प्रदर्शित हुआ है। जीवन की अगम्य गहराइयों में बैठ कर कवि ने अपनी अनुभूतियों को प्राणवान बनाया है। इस वृहद ग्रन्थ के निर्माण में कवि ने जिस धैर्य, हृदय मन्थन, चिन्तन और अध्ययन का परिचय दिया है वह किसी भी पाठक को कवि के प्रति श्रद्धाशील बना सकता है। गिरीश जी का यह काव्य छायावादी युग का कामायनी के बाद (यद्यपि अब एक तरह से छायावादी युग समाप्त हो चुका है) दूसरा महाकाव्य माना जाएगा। मैं इस महाकाव्य के प्रणयन के लिए उनको शतशः बधाई देता हूं।

--उदयशंकर भट्ट

●

नया जीवन : लेखक--आर० आर० कुमरिया; प्रकाशक--यूनिवर्सिटी पब्लिशर्ज, जालन्धर; पृष्ठ संख्या--१७८; मूल्य ३) रुपये।

इस पुस्तक को हाथ में लेकर तथा उसके सूचीपत्र को देख कर मुझे डर हुआ था कि इस पुस्तक में रूढ़ियों को बल पहुंचाया गया होगा। पर जब मैंने पुस्तक पढ़ी तो यह मालूम हुआ कि लेखक प्राचीन काल की बहुत प्रशंसा करने पर भी और जगह-जगह वेदों और शास्त्रों के उद्धरण देने पर भी--पुराणमित्येव न साधु सर्वम्--इस मत को मानता है। वह आर्यों की व्यवस्था में कई महान् दोष पाता है। वह लिखता है--"आधुनिक जनवादी दृष्टिकोण से आर्यों को सामाजिक सुव्यवस्था में कुछ महान् दोष भी थे। प्रथम, दृढ़ वर्ण-व्यवस्था जिसने शूद्रों को सदा के लिए तिरस्कृत कर दिया और, ब्राह्मणों को इतना महत्व दिया कि उनका दिमाग फिर जाना आवश्यक था। अपने आपको विकसित करने के लिए शूद्रों को कोई अवसर न मिला। उनको हीन समझ कर ध्यान देने के योग्य ही न समझा गया। दूसरी ओर ब्राह्मण भूदेव हो गए। आप ही अध्यापक, विचारक, लेखक तथा विधानकर्ता होने के कारण उन्होंने अपूर्व महत्व धारण कर लिया। यह तो स्पष्ट है कि वर्ग-भेद और सामाजिक स्तरों के कारण आर्य लोगों का समाज जनवादी नहीं था। सम्पूर्ण मानव-जाति की समानता इसको मान्य नहीं थी। पुरुषों की नाई स्त्री जाति के स्वतन्त्र अधिकार नहीं थे। वे अपने पतियों का प्रतिबिम्ब समझी जाती थीं। उनका कर्तव्य केवल घर को सम्भालना और सन्तान उत्पन्न करना था। पुरुष उनसे वरिष्ठ समझे जाते थे। शास्त्रों में कहा गया है, "स्त्री क्षेत्र समान है और पुरुष बीज। क्षेत्र की मिट्टी और बीज के समागम से सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। इनमें से बीज श्रेष्ठ है क्योंकि प्राणियों पर बीज के विशिष्ट गुणों की छाप होती है।"

"आर्य समाज का द्वितीय दोष यह था कि इसमें कार्य-विशेषता पर अनावश्यक जोर दिया गया। जो मनुष्य जिस वर्ण में पैदा हुआ उसी वर्ण का निश्चित व्यवसाय उसे ग्रहण करना होता था। ऐसी व्यवस्था बुद्धि की क्षमता को सीमित कर देती है और 'हर एक के लिए समान अवसर' वाले नियम के लिए अवकाश नहीं रहने देती। तात्पर्य यह है कि आर्यों की सामाजिक व्यवस्था में जनवाद के प्रथम नियम का अभाव था।"

"तीसरा दोष इसमें यह था कि आज्ञापालन पर हद से ज्यादा जोर दिया जाता था। शिक्षा की शैली ऐसी थी कि सर्वसाधारण को स्वतन्त्र अनुमान तथा निर्णय करने की आदत नहीं पड़ती थी। छात्र आचार्य को देव समझता था और आचार्यदेव की आज्ञा का अन्धाधुन्ध पालन करना अत्युत्तम गुण समझा जाता था। शारीरिक रूप से छात्र अध्यापक का दास था। जीवन के नियम निश्चित थे और उनका स्वतः पालन होता रहता था। फलस्वरूप बुद्धि की स्वतन्त्रता को इस शैली में प्रोत्साहन नहीं मिलता था और आधुनिक विचारानुसार शख्सीयत का विकास नहीं होने पाता था।"

पर इस प्रकार केवल ऊपरी आलोचना करके ही लेखक निवृत्त नहीं होते, वे और गहराइयों में जाते हैं। वे कहते हैं कि प्राचीन भारतीय मत-मतान्तरों ने जीवन को कारागृह बताया। वे कहते हैं --

"दूसरी बात, जिस पर इन मतों ने जोर दिया है, वह यह है कि जीवन कारागृह है। जीवन का क्या प्रयोजन है? इस प्रश्न के उत्तर में बुद्धमत कहता है कि 'जीवन निरर्थक है। यह बन्धन की शृंखला है। हमें इसे तोड़ कर इससे मुक्त होना चाहिए।' यह विचार भारत में ऐसा सर्वमान्य हुआ है कि बुद्धमत के बाद जितनी विचारधाराओं का आविर्भाव हुआ उन सब में यह मौलिक सिद्धान्त माना गया। इसके फलस्वरूप भारत के लोगों में जीवन के प्रति उदासीनता उत्पन्न हो गई। इस मानस-झुकाव के राजनैतिक और सामाजिक परिणाम बुरे हुए। क्योंकि मोक्ष या निर्वाण व्यक्तिगत है और व्यक्तिगत प्रयत्न द्वारा ही इसकी प्राप्ति सम्भव है, इस पर विशेष ध्यान देने के कारण लोग आत्म-केन्द्रित और स्वार्थी हो गए। सामाजिक जीवन उपेक्षित हो गया। इसी कारण कई शताब्दियों तक भारत-दीन हीन अवस्था में पड़ा रहा और दासता की चोटें सहन करता रहा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस दृष्टि से देखने पर अभी-अभी प्रकाशित श्री दिनकर जी की पुस्तकों में "काव्य की भूमिका" और "पन्त, प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त" इन दो पुस्तकों में जो मतवाद प्रस्तुत किया गया है और जिस पर दिनकर जी ने बहुत जोर दिया है वह हू-ब-हू इस पुस्तक में प्राप्त होता है। लेखक के विचार बहुत मनन-योग्य है। फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि निवृत्तिवादी दर्शन के कारण देश की हालत बिगड़ी या देश की हालत बिगड़ने के कारण दर्शन में सान्त्वना खोजी गई।

स्वास्थ्य और जीवन : लेखक—श्री चांदमोहम्मद; प्रकाशक—आधुनिक साहित्य प्रकाशन, ब्यावर (राज०); पृष्ठ संख्या—१८४; मूल्य—तीन रुपया।

इस पुस्तक में थोड़े में शरीर से सम्बन्ध रखने वाली सारी बातों पर बहुत ही थोड़े में पर साथ ही सफलतापूर्वक विचार किया गया है। यों तो इसमें वही बातें हैं जो साधारण पुस्तकों में रहती हैं पर इसमें मेरुदण्ड पर विशेष जोर दिया गया है। वह लिखते हैं—"अप्राकृतिक रूप से" कमर झुकाकर बैठना या चलना श्वास यन्त्र को बड़ी हानि पहुँचाता है। प्रत्येक साँस के साथ शुद्ध वायु की जितनी मात्रा फेफड़े में पहुँचना चाहिए नहीं पहुँच पाती, खून पूरी तरह से विशुद्ध नहीं हो पाता और अशुद्ध रक्त के फलस्वरूप निरुत्साह, ग्लानि, आलस्य एवं सिर दर्द आदि विकार शरीर को क्लांत करते हैं।

"प्रत्येक बार झुक कर बैठने से १५ घन इंच वायु फेफड़ों में कम पहुँचती है। इसी प्रकार यदि एक इस अस्वाभाविक बुरी आदत पर ध्यान न दिया जाए तो २,४६,००० घन इंच वायु की कमी हो जाती है क्योंकि दिन भर में २१,१०० श्वास लेते हैं। स्मरण रखिए, फेफड़ों में जितनी ही कम वायु जायगी उतनी ही शक्ति तथा आयु क्षीण होगी।"

इसी तरह लेखक ने हास्य की व्यवस्था एक औषध के रूप में की है और क्रोध के नियन्त्रण के सम्बन्ध में भी कुछ बातें लिखी हैं। इसमें सन्देह नहीं जो भी इस पुस्तक को पढ़ेगा उसे लाभ पहुँचेगा।

समता की खोज में : लेखक—श्री जयप्रकाश नारायण; प्रकाशक—मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा संघ, वर्धा (बम्बई राज्य); पृष्ठ संख्या—६४; मूल्य—३७ नए पैसे।

श्री जयप्रकाश नारायण एक प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। उनकी प्रसिद्धि के बहुत से कारण हैं। एक आदर्शवादी युवक के रूप में वे राजनीतिक आन्दोलन में आए। पहले उनका झुकाव क्रांतिकारी आन्दोलन की ओर हो रहा था, तब तक गान्धीजी की पुकार आ पहुँची। उसके बाद वे १९२२ से १९२९ तक अमरीका में रहे, जो उनके अनुसार एक पुनर्निर्मित और सफल पूंजीवादी देश है। श्री एम० एन० राय के उग्र लेखों ने, मार्क्सीय साहित्य ने तथा महान नेता लेनिन की रोमांचकारी सफलता ने उनमें समता और बन्धुत्व की एक ज्योति जगा दी। वे यह समझ गए कि केवल स्वतन्त्रता पर्याप्त नहीं थी। इसके बाद वे कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के काले कारनामों से कुपित हुए और उनका मन साम्यवाद से हटने लगा। वह कांग्रेस समाजवादी दल के नेता बने। उनका कहना है—"स्वातन्त्र्य-संग्राम के कभी न झुकनेवाले और निर्भीक सैनिकों में अधिकांश कांग्रेस-समाजवादी ही थे।" यह कहाँ तक सही है? क्या आंकड़ों की दृष्टि से यह साबित किया जा सकता है कि कांग्रेस समाजवादी अपने समसामयिक कांग्रेसियों से अधिक निर्भीक इत्यादि थे?

इसके बाद वे आगे बढ़ते हैं और कहते हैं—"अब खोद-खोदकर कब्र में से स्टेलिन की गलतियाँ निकालने का प्रचलन हो गया है। कुछ क्रुश्चेव ने खोदकर निकाली हैं। जुकोव (यह जुकोव की बरखास्तगी के पहले लिखा गया था। उसकी बरखास्तगी की आशंका तो थी, क्योंकि जहाँ और बहुत से कारण थे, वह स्टेलिनवादी मतों का भंडाभोड़ करने में जहाँ क्रुश्चेव थे, वहीं तक रुके रहने को तैयार न था—अनुवादक) और गहरा खोदने के लिए उत्सुक मालूम होता है। मुझे वैसा कुछ करने की कोई इच्छा नहीं है? किन्तु मैंने अन्यत्र जो कहा है, उसे दोहरा देना चाहता हूँ कि एक समय आएगा, जब स्टेलिन की गलतियों में सबसे अधिक गंभीर, सबसे अधिक दूषित और सबसे अधिक महंगी पड़ने वाली गलती उसका उन विघटन-कारी नीतियों को अपनाना घोषित होगा, जिनके कारण हिटलर के हाथ में सत्ता आई।"

वे समझते हैं कि रूस में तानाशाही है, पर उनके अनुसार चीन और यूगोस्लाविया अपवाद हैं।—"चीन में शायद इसका अपवाद हमें मिले। वहाँ च्यांगकाई शेक की अपेक्षा माऊत्सेतुंग के पक्ष में एक बड़ा जन-समुदाय दीख पड़ता है, यद्यपि उसका यह अर्थ नहीं है कि चीनी सरकार एक तानाशाही सरकार नहीं है। कदाचित् वह एक बहुमत की अल्पमत के ऊपर तानाशाही है। और भी, शायद यूगोस्लाविया में ऐसा है। अन्यत्र कम्यूनिस्ट राज्य एक अल्पमत का राज्य ही है।" इधर यूरोप से लौटकर भी जयप्रकाश ने यूगोस्लाविया का गुणगान करते हुए यहाँ तक कह डाला कि एक यूगोस्लाविया ही मार्क्सवाद पर चल रहा है, इसलिए रूस उस पर नाराज है।

इन सारी बातों से वे यह नतीजा निकालते हैं—"यह सम्भव है कि पूँजीवाद नष्ट हो जाए, उद्योग वाणिज्य, बैंक-व्यवस्था, कृषि आदि सबका राष्ट्रीयकरण और सामूहीकरण हो जाए और फिर भी समाजवाद बहुत दूर ही रह जाए। समाजवाद बहुत दूर रह जाए, इतना ही नहीं, बल्कि यह भी सम्भव है कि बिल्कुल उसके विरुद्ध ही चला जाए।"

फिर भी वे सारा दोष स्टैलिन पर डालने के लिए तैयार नहीं हैं बल्कि वे कहते हैं—"स्टेलिन और उसके हाथ की कठपुतलियों ने जो दुष्कर्म किए हैं, उनके लिए न्यायपूर्वक 'समाजवाद' को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। दोष तो उस राजनीतिक पद्धति का है, जो एक पिछड़े हुए देश में जहाँ एक ओर तो विदेशी आक्रमण का भय लगा है और दूसरी ओर आन्तरिक अवरोध खड़ा है, अंधाधुंध गति से उसके औद्योगिक विकास की योजनाओं में से प्रकट होती है।"

अब स्वतः यह प्रश्न उठता है कि यदि यूरोप के साम्यवादी गलत नीति पर रहे और वे चीन और यूगोस्लाविया के अतिरिक्त कहीं भी, एक हद तक भी साम्यवाद नहीं स्थापित कर सके तो योरोप के समाजवादी देशों के सम्बन्ध में उनका क्या कथन है। वे लिखते हैं—"यदि योरोपीय साम्यवाद असफल हुआ है, तो योरोपीय समाजवाद को भी कोई प्रत्यक्ष सफलता नहीं मिली है। जर्मनी की सोशल-डेमोक्रेटिक पार्टी पर अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद को गर्व था। उसका पोषण समाजवाद के इतिहास में प्रख्यात स्वयं एंगेल्स, बेबिल, काउटस्की, ज्येष्ठ लिबक्नख्ट, जिसे मार्क्स ने अपनी पुस्तक 'केपिटल' का प्रथम भाग समर्पण किया था, और बहुत से दूसरे नेताओं के द्वारा हुआ था, तो भी जर्मन सोशल-डेमोक्रेटिकों को जब प्रथम महायुद्ध के बाद इतिहास में राज्य करने का एक अवसर मिला, वे उसे पार नहीं लगा सके। फ्रांस के समाजवाद का विवरण तो बहुत ही निराशाजनक रहा है। उसका सबसे बड़ा कलंक तो गी मोले की सरकार का इंग्लैंड की अनुदारदलीय सरकार के साथ मिस्र के उपर साम्राज्यवादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आक्रमण करने के लिए सांठगांठ करना है। इटली के नेतृत्व में खास-तौर से इटली की पहली सरकार के दौरान में इंग्लैंड के मजदूर दल ने अवश्य अपने देश में और बाहर भी समाजवाद का नाम रखा है। मिस्र-कांड के अवसर पर भी गेटस्केल के नेतृत्व में निःसन्देह इंग्लैंड के समाजवाद की प्रतिष्ठा बढ़ाई है। फिर भी इंग्लैंड के समाजवादियों के कई आपत्ति-जनक कार्य रहे हैं और ग्रेट ब्रिटेन अब भी समाजवादी प्रजातन्त्र से कोसों दूर है। कल्याणकारी राज्य का सिद्धान्त, जिसकी अनुदार दल द्वारा बराबर तीव्र आलोचना हुआ करती है, समाजवाद का एक हल्का स्वरूप ठहरता है। वह खतरे भी में है, कहीं श्री मैक्मिलन साहब उसे यथा-अवसर राज्य में न बदल डालें। यह बात सच है कि स्केन्डेनेविया में खासतौर स्वीडन में लोकतान्त्रिक समाजवाद को कुछ अधिक सफलता मिली है, किन्तु वहाँ भी यह नहीं कहा जा सकता कि समाजवादी आदर्श पूरी तरह सिद्ध हो गए हैं। स्वीडन में समाजवाद को योरोप के अन्य देशों से अधिक सफलता मिलने के अनेक कारणों में से कदाचित् वहाँ की आबादी का कम होना और वहाँ सहयोग आदि समाजवाद के राज्येतर कार्यक्रमों पर अपेक्षाकृत अधिक जोर देना है। इन दोनों चीजों में, जैसा आगे पता चलेगा, समाजवाद को सर्वोदय तक ले जाने की बहुत अधिक क्षमता है।"

इसका अर्थ यह हुआ कि यूरोप में जहां तक साम्यवाद और समाजवाद आन्दोलन हुए, उससे वे बड़ी हद तक निराश हैं। तो क्या वे भारत में होने वाले समाजवादी आन्दोलन से खुश हैं? नहीं। (यहां कोष्ठक में बता दिया जाए कि अभी योरोप से लौटकर उन्होंने सोशल डेमोक्रेटिकों की प्रशंसा की है। इस दृष्टि से यह पुस्तक जयप्रकाश के ताजे विचारों का प्रतिनिधित्व नहीं करती)। वह कहते हैं—"मुझे लगता है, भारतीय समाज-वादी आन्दोलन में पिछले कुछ वर्षों से मौलिक चिन्तन और प्रयोग का काम रुक गया है।"

इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर उन्होंने जीवन-दान आन्दोलन अपनाया। वे कहते हैं—"मेरे लिए जीवन-दान का अर्थ दल और सत्ता की राजनीति छोड़कर अपने शेष जीवन को भूदान और सर्वोदय-आन्दोलन में लगाने के निर्णय से अधिक कुछ नहीं था। किन्तु मुझे विश्वास हो गया है कि जब तक समाजवाद सर्वोदय में रूपान्तरित नहीं हो जाता, वे लक्ष्य इसकी पहुंच के बाहर रहेंगे और जिस प्रकार हम आजादी के आनन्द से वंचित रह गए, वैसे ही आने वाली पीढ़ियों को समाजवाद से वंचित रहना पड़ सकता है।

इसके बाद वे (मार्क्सवाद के दर्शन पर भी कटाक्ष करते हुए कहते हैं—"मार्क्सवाद की गलती यह कल्पना कर लेना थी कि उसका आदि-कारण कुछ भी हो, चैतन्य का ज्ञान उसी तरह हो सकता है, जैसे जड़ का। उन्हें यह नहीं सूझा कि जड़ के नियम चैतन्य के क्षेत्र में लागू नहीं हो सकते। जड़ का अध्ययन एक वस्तु-आधारित अन्वेषण है, जब कि चैतन्य का अध्ययन है एक आन्तरिक अनुभूति। जड़ पदार्थ का अध्ययन यानी वस्तु-आधारित अन्वेषण, संक्षेप में विज्ञान, लाजिमी तौर पर नीति-निरपेक्ष होता है। चेतन-शक्ति को जड़-पदार्थ का एक व्यवहार मात्र बताकर मार्क्सवादियों और सामान्यतया भौतिकवादियों ने नैतिकता की बुनियाद ही खत्म कर दी है। इसमें शक नहीं कि वे क्रांतिकारी नैतिक मूल्यों के बारे में बहुत बातें करते हैं, किन्तु वह 'अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कैसे भी साधनों का प्रयोग किया जाए' इस प्रमेय का एक निकृष्ट प्रयोग मात्र है। एक बार किसी व्यक्ति ने सचाई के साथ या यों ही अपने मन को समझा लिया कि वह क्रांति के पक्ष में है अथवा एक दल या जनता के पक्ष में है, तो फिर वह कुछ भी बुरे कर्म करने के लिए स्वतन्त्र हो जाता है।

इस प्रकार जयप्रकाश राजनीति की सभी धाराओं तथा सभी शासन-पद्धतियों से निराश है, अब यह देखा जाए कि क्या जयप्रकाश विज्ञान और मनोविज्ञान में जिस प्रकार से प्रगति हो रही है उससे सन्तुष्ट हैं? नहीं। वे लिखते हैं—"इसलिए मनोविज्ञान भी नैतिक मूल्यों का कोई आधार नहीं हो सकता। विज्ञान के लिए भी चेतन-शक्ति को समझ पाना सम्भव नहीं है, क्योंकि वह एक अन्तरानुभूति की चीज है। अन्तरानुभूति अपने गुण के कारण ही भौतिक उपकरणों के द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती। इसलिए सारे वेदान्तियों या सूफियों और योगियों को, जिन्हें आत्मा की यथार्थता या पूर्णब्रह्म की अनुभूति थी, किसी भी भाषा में उसे व्यक्त करना सम्भव नहीं हुआ।"

वे इसी क्रम को जारी रखते हुए यह बताते हैं—"आधुनिक विज्ञान एक ऐसे स्थल पर पहुंच गया है, जहां भूतद्रव्य और चेतन-शक्ति का द्वैत इतना झीना पड़ गया है कि द्वैत मालूम ही नहीं होता।"

पर इससे क्या व्यावहारिक उपसंहार निकलता है, वे इस पर नहीं जाते। वर्तमान वैज्ञानिक स्थिति को इस रूप में पेश करने में उनका उद्देश्य केवल इतना ही मालूम होता है कि वे साम्यवाद के दर्शन के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न करें।

यह स्पष्ट है कि वे एक निराश व्यक्ति हैं जिनका न तो साम्यवाद में विश्वास है, न समाजवाद में विश्वास है, न विज्ञान में विश्वास है, न मनो-विज्ञान में विश्वास है। फिर भी वे कहते हैं—"मैंने दल और सत्ता की राजनीति से अलग होने का निश्चय इसलिए नहीं किया कि मैं उससे ऊब गया या निराश हो गया था, बल्कि इसलिए किया कि मुझे यह स्पष्ट हो गया था कि राजनीति से काम नहीं बनेगा।"

उनके एक अत्यन्त विवादास्पद कथन का हमने पहले उल्लेख किया है जिसमें वे कहते हैं कि स्वतन्त्रता के संग्राम में कांग्रेस समाजवादियों का सबसे अधिक हाथ था। इसी तरह वे एक और बात कहते हैं—"गान्धीजी ने स्वतन्त्रता का जो आन्दोलन चलाया, वह इसी अर्थ में राजनीतिक था कि उसका लक्ष्य भारत की राष्ट्रीय स्वाधीनता था, किन्तु वह किसी दल के लिए सत्ता का आन्दोलन हो, इस अर्थ में 'राजनीति' नहीं था। यदि उसका लक्ष्य सत्ता था, तो वह सत्ता पूरे भारतवर्ष की जनता के लिए थी।"

वे भूदान में विश्वास रखते हैं और उसे क्रांति बतलाते हैं। मंगरौठ का जो ग्राम दान हुआ उसे वे एक बहुत ही क्रांतिकारी घटना मानते हैं। पर साथ ही वे यह अजीब बात कहते हैं कि मंगरौठ के लोग भी देवता नहीं हैं। यानी वहां भी उनको निराशा ही मिली।

अन्त में वे कहते हैं कि अब सबको समझ में आ जाएगा कि मैंने राजनीति क्यों छोड़ी। पर सारी पुस्तक पढ़ने के बाद और उनके इन दिनों के कार्य-कलाप पर विवेचन करने के बाद क्या कोई यह कह सकता है कि वे राजनीति से अलग हैं। यदि कोई व्यक्ति विश्व में जो दो शक्ति गुट हैं उनमें से एक के पक्ष में प्रचार कार्य करे और दूसरे के विरुद्ध करे, ऐसे लोगों की देखरेख में बोले जो एक विशेष गुट में हैं और उस गुट के लोगों से दोस्ती करे तो क्या उसे राजनीति से अलग कहा जा सकता है। इस दृष्टि से तो मुझे वे लोग राजनीति से अधिक हटे हुए मालूम होते हैं जो

(शेष पृष्ठ ५७ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

"भारत १९५८"

इन दिनों भारत की राजधानी दिल्ली में "भारत १९५८" नाम से एक बहुत बड़ी प्रदर्शनी हो रही है। इस प्रदर्शनी में भारत की वर्तमान व्यावसायिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति का सही-सही चित्र प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया गया है। फिर भी यह प्रदर्शनी केवल स्वाधीन भारत तक ही सीमित नहीं है। भारत के प्राचीन ऐतिहासिक निर्माणों तथा गौरव गाथाओं के खूब अच्छे चित्र इस प्रदर्शनी में हैं। भारत एक पुराना देश है, जिस की संस्कृति और कला में निरन्तरता और विविधता दोनों ही हैं। इस से 'प्राचीन' को एकदम छोड़ कर 'अर्वाचीन' को न तो समझा जा सकता है और न देखा ही जा सकता है।

स्वाधीन भारत अभी साढ़े ग्यारह बरस का बालक है। इन साढ़े ग्यारह बरसों में देश में जो विविध कार्य हुए हैं, उनकी झांकी किसी भी भारतीय के हृदय में गौरव की अनुभूति उत्पन्न कर सकती है। इस गौरव की अनुभति से भी बढ़ कर महत्वपूर्ण अनुभूति हमारे देश की समस्याओं की विकरालता के सम्बन्ध में है। हमें अभी कितनी ही बड़ी-बड़ी और व्यापक समस्याओं का समाधान करना है। निरक्षरता, बीमारी, अन्न की कमी, दरिद्रता और सामाजिक तथा व्यक्तिगत आचार की न्यूनता—ये पांचों हमारे देश की बहुत व्यापक और विकराल समस्याएं हैं। इन ११ बरसों में जो कुछ हम लोगों ने किया है, वह निस्सन्देह अपर्याप्त है। अभी हमें बहुत कुछ करना है। क्या करना है और किस तरह करना है, इस की अनुभूति और ज्ञान 'भारत १९५८' का सब से अधिक महत्वपूर्ण पहलू है।

यह सन् १९५८ का अन्तिम मास है। हमें विश्वास है कि "भारत १९५८" का दर्शन आने वाले वर्षों में भारत को प्रेरणा देने में सहायक सिद्ध होगा। इस प्रदर्शनी के सम्बन्ध में एक बात विशेष मार्के की है। इस वर्ष प्रदर्शनी की साज-सज्जा इतनी सुन्दर, आकर्षक और कलापूर्ण है कि भारत की अब तक की सभी प्रदर्शनियों से इसका स्तर ऊंचा है। इस प्रदर्शनी की तुलना विश्व की अन्य श्रेष्ठ प्रदर्शनियों से की जा सकती है।

●

युद्ध की धमकियां

जिस समय भारत में उक्त विशाल प्रदर्शनी जारी है, भारत के पड़ोसी और समवयस्क राज्य पाकिस्तान में एक अन्य प्रकार की प्रदर्शनी हो रही है। ७ अक्तूबर को पाकिस्तान के राष्ट्रपति ने अपने देश का संविधान रद्द कर दिया, यद्यपि संविधान के अनुसार उन्हें इस बात का अधिकार नहीं था। राष्ट्रपति मिर्जा ने सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथ में लेकर पाकिस्तानी सेनापति जनरल आयूब खान को मार्शल ला का प्रशासक नियुक्त किया। २० ही दिनों के बाद इस प्रशासक ने राष्ट्रपति को अपना पद छोड़ देने के लिए बाधित किया और स्वयं राष्ट्रपतित्व का पदग्रहण कर लिया।

हाल ही में श्री अयूब खां ने दो अत्यन्त महत्वपूर्ण घोषणाएं की हैं। पहली तो यह कि पाकिस्तान में देश के हित की दृष्टि से एक ही व्यक्ति के हाथ में सम्पूर्ण शक्ति रहना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में पाकिस्तान में अब पूरी तरह डिक्टेटरशिप कायम हो गई है, यद्यपि श्री आयूब खान ने खुले रूप में यह घोषणा नहीं की है।

श्री आयूब खान की दूसरी घोषणा भारत के सम्बन्ध में है। उन का कथन है कि पाकिस्तान का भारत से दो मामलों में विरोध है, एक तो नहरों में पानी के सम्बन्ध में और दूसरा काश्मीर के सम्बन्ध में। श्री आयूब खान की मांग है कि जब तक पाकिस्तानी नहरों को पाकिस्तानी नदियों से पानी पहुंचाने की पूर्ण व्यवस्था नहीं हो जाती, भारत को पूरा पानी देना चाहिए। उक्त कार्य में १० से १५ वर्षों का समय लगेगा। इस कार्य का पूरा खर्च भी वह भारत से मांगते हैं। काश्मीर के सम्बन्ध में श्री आयूब खान का कथन है कि काश्मीर के बिना पाकिस्तान का जीवन तक सुरक्षित नहीं है। ये दोनों बातें कह कर उन्होंने घोषणा की कि "हम इन दोनों कामों के लिए उग्रतम कदम उठाने को तैयार हैं। और यदि ऐसा हुआ तो उसका उत्तरदायित्व भारत पर होगा।" एक पत्र प्रतिनिधि ने पूछा कि " 'उग्रतम कदम' से आप का अभिप्राय कहीं युद्ध से तो नहीं?" तब उन्होंने उत्तर दिया—"हां, अवश्य ही।"

पाकिस्तान के नेताओं की ओर से इस तरह भारत को युद्ध की धमकी देना कोई नई बात नहीं है। पर श्री आयूब खान तो व्यवहार में पाकिस्तान के डिक्टेटर हैं। एक डिक्टेटर की ओर से दी गई इस तरह की धमकी चाहे पहली बार दी गई हो, पर भारत निश्चय से इस तरह की धमकी से जरा भी विचलित नहीं होगा। भारत शान्ति के मार्ग का अनुगामी है। सभी तरह के झगड़े वह समझौते और मित्रता के ढंग से हल करना चाहता है। पर अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने की सामर्थ्य उसमें है। इस तरह की धमकियों के बारे में भारत की यही नीति है कि 'कुत्ते भौंकते ही रहते हैं, पर काफ़िला आगे बढ़ता चला जाता है।'

●

हिन्दी प्रकाशकों की विचार-गोष्ठी

हाल ही में दिल्ली में हिन्दी प्रकाशकों की एक अखिल भारतीय विचार गोष्ठी हुई। यह विचार गोष्ठी पूरे ८ दिनों तक जारी रही और प्रतिदिन औसतन ३ अधिवेशन किए जाते रहे। श्रेष्ठ प्रबन्ध, पढ़े जाने वाले अधिकांश निबन्धों और चर्चाओं का उच्च स्तर तथा बैठकों की सुव्यवस्था की दृष्टि से निस्संदेह यह विचार गोष्ठी राजधानी में होने वाली श्रेष्ठ विचार गोष्ठियों में गिनी जाएगी। पर इस गोष्ठि का सब से बड़ा महत्व इस कारण है कि हिन्दी साहित्य की प्रगति का सीधा सम्बन्ध हिन्दी प्रकाशन से है। दुर्भाग्य से अभी तक हिन्दी प्रकाशन एकदम शैशवावस्था

आजजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में है। हिन्दी में पुस्तक विक्रेताओं की बहुत कमी है, हालांकि प्रकाशकों की कमी नहीं है। अभी तक हिन्दी में यह व्यवस्था भी नहीं है कि प्रकाशित साहित्य की पूरी सूची तक उपलब्ध हो सके। स्कूली कोर्स की पुस्तकों के प्रकाशन की बात तो जाने दीजिए, साधारणतः हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास भी साल भर में २,००० से अधिक संख्या में नहीं बिक पाते, जबकि संसार के उन्नत देशों में सर्वश्रेष्ठ उपन्यास प्रथम वर्ष ही लाखों की संख्या में बिकते हैं। गम्भीर साहित्य की बिक्री तो अभी तक नगण्य-सी है।

यह भी हमें मानना चाहिए कि अभी तक हिन्दी में लेखक और प्रकाशकों के सम्बन्ध अधिकांशतः ठीक आधार पर स्थापित नहीं हो पाए। यह निर्विवाद है कि सभी दृष्टियों से लेखक और प्रकाशक में गहरी सद्भावना रहना आवश्यक है।

हाल ही में जिस तरह कागज के दाम बढ़े हैं और जिस तरह वह दुर्लभ हो गया है, वह भारतीय प्रकाशन व्यवसाय के लिए चिन्ता का विषय है। छपाई और डाक की दरें भी बहुत अधिक हैं। इन सब समस्याओं पर इस विचार-गोष्ठी में गम्भीरता से विचार किया गया।

हिन्दी में अभी तक यह स्थिति नहीं आई कि कोई लेखक केवल लेखन द्वारा आराम से जीवन-निर्वाह कर सके। किसी भी भाषा के साहित्य के सर्वांगीण विकास के लिए इस तरह की स्थिति आधारभूत बातों में है। प्रतिभाशाली लेखक यदि जीविकोपार्जन के लिए अन्य कार्य करने को लाचार हों, तो वह स्थिति किसी भी भाषा के लिए चिन्ताजनक मानी जानी चाहिए। बहुधा सर्वसाधारण जनता तथा लेखक रायल्टी से न्यून आय के लिए प्रकाशकों को दोष देने लगते हैं। उधर इस बात में भी सन्देह नहीं कि कितने ही लेखकों का शोषण प्रकाशकों द्वारा होता रहा है और शायद हो भी रहा है। पर सच बात तो यह है कि हिन्दी में अभी तक पुस्तकों की बिक्री बहुत न्यून है और इसी कारण लेखक और प्रकाशक दोनों पनप नहीं पाते। हिन्दी भारत की सब से अधिक व्यापक भाषा है। हम लोग दावा करते हैं कि संख्या की दृष्टि से हिन्दी संसार की चौथी भाषा है। फिर भी स्थिति यह है कि हिन्दी में पुस्तकों की बिक्री बंगला तक से कम है। यह नितान्त आवश्यक है कि इस समस्या पर गम्भीरता से विचार किया जाए तथा प्रकाशक, लेखक और सरकार--तीनों के अधिकतम सहयोग से यह समस्या हल की जाए। उक्त विचार गोष्ठी इस दिशा में एक अभिनन्दनीय प्रयत्न था।

'आजकल' की छपाई के सम्बन्ध में

फरवरी १९५८ से 'आजकल' एक नए प्रेस में छापा जा रहा है। पाठकों ने देखा होगा कि फरवरी १९५८ से 'आजकल' मोनो-टाइप में छपने लगा है, उसमें प्रति पृष्ठ शब्दसंख्या भी बहुत अधिक बढ़ गई है। पहले हम प्रति पृष्ठ ९०० शब्द दे पाते थे, अब यह प्रति पृष्ठ संख्या १२०० हो गई है। पर साथ ही साथ उक्त नए प्रेस की कुछ विवशताओं के कारण छपाई में मात्रा भंग बहुत अधिक होने लगा है। हम स्वयं इस स्थिति से बहुत चिन्तित हैं। परन्तु इस स्थिति पर हमारा वश नहीं है। जब तक प्रेस की ओर से उक्त दोष दूर नहीं कर लिया जाता, इस स्थिति के लिए खेद प्रकाशित करने से अधिक हम कुछ भी नहीं कर सकते।

पुस्तक समालोचना--(पृष्ठ ५४ का शेषांश)

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तटस्थता की नीति अपना कर चलते हैं। सौभाग्य से भारत में ऐसे लोगों की ही संख्या अधिक है। यह स्पष्ट है कि जयप्रकाश राजनीति में हैं और आगे भी रहेंगे। राजनीति में न रहने का दावा कई बार राजनीति में रहने का सब से अच्छा तरीका होता है।

--मन्मथनाथ गुप्त

उड़ते छींटे : लेखक--वासुदेव गोस्वामी; प्रकाशक--पारखजी का बाड़ा, लश्कर, ग्वालियर; पृष्ठ संख्या--१०४; मूल्य-- १।) रु०।

पैरोडी और हास्य रस की रचनाओं में रुचि लेने वाले पाठकों को यह संग्रह निस्सन्देह पसन्द आएगा।

राष्ट्रीय गीतांजलि : संकलनकर्त्ता--रामशरण सिंह; प्रकाशक--ज्ञान कुटीर, आर्य कुमार रोड, पटना--४; पृष्ठ संख्या--४८, मूल्य--६१ नए पैसे।

"आज़ादी के तराने" के समान यह भी लोकप्रिय राष्ट्रीय गीतों का अच्छा संग्रह है, पर छपाई उतनी सुन्दर नहीं है।

आषाढ़ के बादल : सम्पादक--सतीश चन्द्र चतुर्वेदी; प्रकाशक--नवीन लेखक संघ, किनारी बाजार, आगरा; पृष्ठ संख्या--९२; मूल्य--१।।) रु०।

हिन्दी के ४८ नए कवियों की रचनाओं का संग्रह इस पुस्तिका में है। परिचय श्री बच्चन का लिखा हुआ है। संग्रह की कितनी ही रचनाएँ ऐसी हैं, जिन्हें पढ़ कर नए कवियों की सुनहली सम्भावनाओं की झलक मिलती है। ब्लाकों की छपाई बहुत सुन्दर नहीं है।

--चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रम्यस्थली रवाईं--(पृष्ठ ४० का शेषांश)

तंत्र साधना पर नाथों और सिद्धों का बड़ा प्रभाव पड़ा है। मंत्र गीतों में गोरखनाथ आदि का नाम आता है। सिद्धनाथ रवाईं का एक प्रसिद्ध देवता है। ये मंत्र-तंत्र केवल कुछ ही लोग जानते हैं। लोगों का विश्वास है कि रवाईं में डायनें होती हैं और वे कोई मंत्रित वस्तु खिला कर मनुष्य को मार डालती हैं। इसलिए अतिथि लोग वहां भोजन करते डरते हैं। बहुत पूछ-ताछ करने पर मुझे ज्ञात हुआ है कि वे मंत्र-तंत्र से मारने की अपेक्षा विष खिला कर मारती रही हैं। पुत्रों की कामना के हेतु वे लोगों को इस प्रकार मार कर देवता को बलि देती रही हैं। फिर भी यह विषय अभी रहस्यपूर्ण है। बलि से देवता प्रसन्न होते हैं, यह भावना रवाईं में गहराई से बैठी हुई है। पहले खुल कर मनुष्य बलि दी जाती थी। बाद में इस प्रकार के षड्यन्त्र सामान्य हो गए।

प्रकृति पर विजय प्राप्ति के लिए भी तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग होता आया है। अनावृष्टि, अतिवृष्टि और ओलावृष्टि रोकने के लिये अनेक धार्मिक उपाय काम में लाए जाते हैं। स्त्रियां संतानोत्पत्ति के लिए गले पर मंत्रित ग्रंथि पहनती हैं जिसे 'गांठूं' कहा जाता है। दांत के दर्द और मलेरिया बुखार कान में मंत्रित तांबे का तार बांध देने से ठीक होना बताया जाता है। किसी स्थान, व्यक्ति, जातिविशेष का नाम लेना और जाते हुए किसी व्यक्ति को टोकना वर्जित और बुरा माना जाता है। पहाड़ों के उच्च शिखर पूज्य माने जाते हैं। धार के ऊपर पत्थर और पत्तियां डाल कर 'फतउ' देवता का अभिवादन किया जाता है।

आर्यों के सभी धार्मिक संस्कार रवाईं में प्रचलित हैं किन्तु सभी को समान महत्व नहीं दिया जाता। जनेऊ पर लोग ज्यादा ध्यान नहीं देते और न खान-पान और जाति-पांति पर। हरिजनों के प्रति भी वहां विशेष भेद-भाव और छुआछूत नहीं बरती जाती। विवाह और रिश्तों में ब्राह्मण या राजपूत का भेद विशेष नहीं। जब कोई मर जाता है तो उसका खटोला बड़ी सजधज और बाजे के साथ ले जाया जाता है। सत्तू के पिंड भी साथ रख लिये जाते हैं और उन्हें उसके खेतों की सीमा पर रखते हुए उससे अपने खेतों की सीमा देखने और सत्तू के पिंड खाने का आग्रह किया जाता है।

जो लोग यमनोत्री तक यात्रा करने जाते हैं, वे इस क्षेत्र के एक भाग से परिचित होते हैं। यमुना के मन्दिर में मस्तक नवाने, कई तप्तकुंडों में स्नान करने से ही वे अपनी इतिश्री समझ कर लौट जाते हैं। किन्तु यमनोत्री और यमुना की भूमि अन्य बातों के लिए उतनी ही दर्शनीय है।

रवाईं रमणियों और रहस्यों की भूमि है। वह प्रकृति की क्रीड़ा-स्थली है। नृत्य, संगीत और मदिरा के उल्लास में भूले सरल मानवों की जननी है।

●

क्षत्राणी--(पृष्ठ ४२ का शेषांश)

कृष्णा के राजप्रासाद तुल्य भवन में धधकते हुए कुण्ड के सामने नवाब एक आरामकुर्सी पर बैठा। कुण्ड से निकलती हुई नानावर्ण की अग्नि की ज्वाला वह देख रहा था। श्वेत, पीत, लोहित आदि वे चिनगारियां कमरे के चहुं ओर दीवालों पर लटकती हुई तलवारों ढालों, बरछों आदि में प्रतिबिम्बित हो रही थीं। और कृष्णा नवाब की कुर्सी के पीछे खड़ी थी। वह बोली--

"मैं चली।"

व्याकुलता से नवाब ने कहा--"खुदा के वास्ते अब मुझे सजा मत दो। मुझे यहां से निकालो।"

कृष्णा मुसकराई--"देखिए, यह आपकी वीरता की परीक्षा का समय है। मैं दो घण्टे में सेनानायक तथा और भी कई लोगों को लेकर लौटूंगी।"

उत्तर की प्रतीक्षा न कर वह चल दी।

दूसरे दिन प्रातःकाल में कृष्णा ने नवाब को अपने हाथों से शस्त्रों से सुसज्जित किया। फाटक के बाहर मीलों तक कतार लगाए हुए घोड़ों की पीठों पर सैनिक अपनी तलवारें झनझना रहे थे। नवाब की आंखों में वीरता चमक रही थी। उसे देख कर कृष्णा अत्यन्त प्रसन्न हुई।

"अब मुझे विदा दो, कृष्णा। परन्तु लौटने के बाद रंगमहल में प्रधान बेगम के रूप में तुम्हें पाऊंगा न?"

"नहीं-नहीं, रंग महल की वायु में अभिशाप, अनाचार और पाप का दीर्घ श्वास भंडराया करता है। यदि जयी होकर आओगे, तो महारानी कृष्णा का इसी किले में सर्वप्रथम पुष्पहार आपके गले में पड़ेगा। मेरा प्रण है कि आप अवश्य जीतें। वरना जलन्त कुण्ड में महारानी कृष्णा की आहुति होगी।"

नवाब ने पूर्ण दृष्टि से कृष्णा को देखा और कहा--"मैं जरूर जीतूंगा। तुम्हारे मन की ताकत मेरे मन में समा गई न, कृष्णा?"

कृष्णा ने आँसू रोक कर आरती उतारी और नवाब को बिदा दी। किले की ऊंची दीवालों पर तोपें चढ़ चुकी थीं। पूरे आत्मविश्वास के साथ नवाब ने अपना घोड़ा युद्ध क्षेत्र की ओर दौड़ा दिया।

* * * *

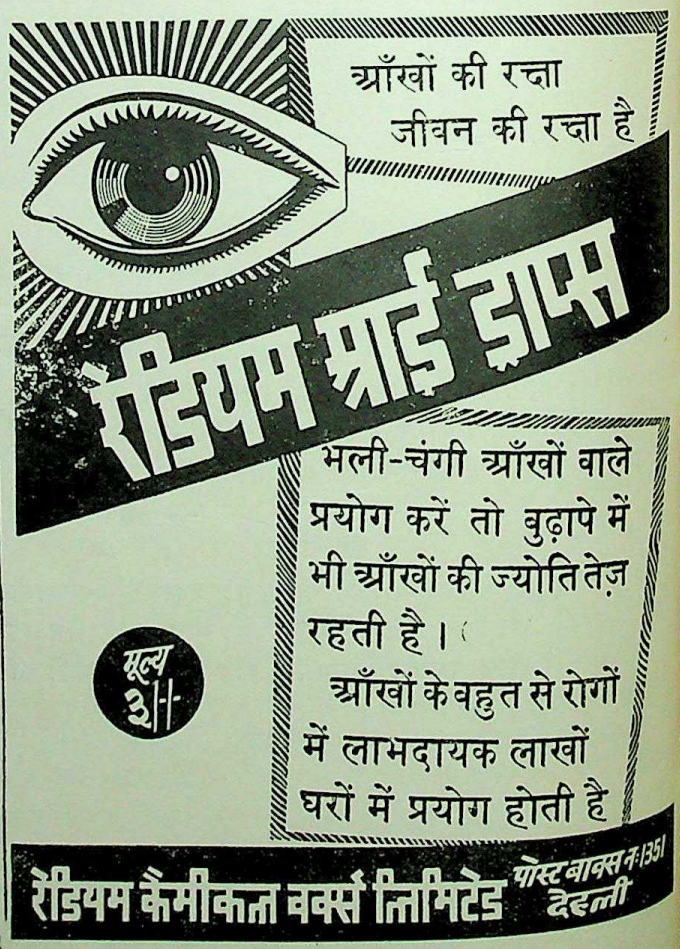

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विटामिनों की शक्ति की रंगीन झलक!

जी हाँ, विटामिन रंग पैदा कर सकते हैं! और ये जानकार महाशय फ़ोटो-इलेक्ट्रिक यंत्र द्वारा, रंगों के प्रभाव से, इन की शक्ति की ठीक ठीक जाँच परख कर सकते हैं।

मगर ऐसी बारीक छान बीन किस लिए? इस लिए कि हिंदुस्तान लीवर के उत्पादन खरीदते समय आप उन में सदा पहले जैसे श्रेष्ठ गुणों की आशा रखते हैं।

इन गुणों को बराबर क़ायम रखने के लिए हमें बार बार परीक्षायें करनी पड़ती हैं। इन गुण परीक्षाओं से अनमोल राष्ट्रीय संपत्ति की बचत भी होती है और उत्पादन-निर्माण के अति आवश्यक समय की भी।

इस रीति से हम आप की सेवा में विश्वासयोग्य बढ़िया उत्पादन कम क़ीमतों पर प्रस्तुत करते रहते हैं।

हिंदुस्तान लीवर का आदर्श — घर घर की सेवा

HLL. 17-X52 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम चरण

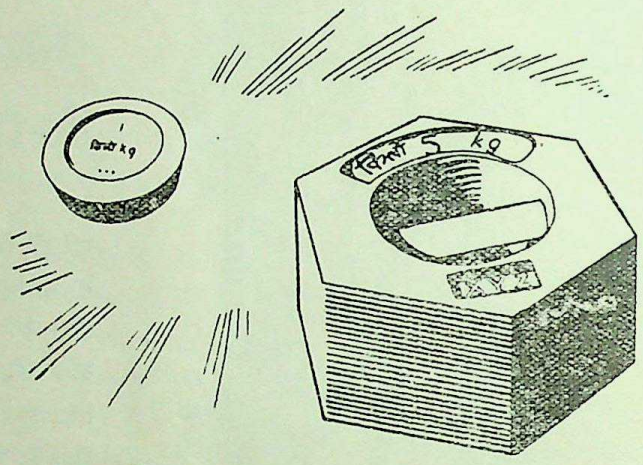

नाप तौल की मेट्रिक प्रणाली लागू होने का प्रथम चरण १ अक्तूबर, १९५८ से आरंभ हो चुका है। इस तारीख से राज्यों के कुछ क्षेत्रों में मेट्रिक बाटों का प्रयोग कानूनी हो गया है।

मेट्रिक प्रणाली सरकारी विभागों और सूती वस्त्र, लौह व इस्पात, इंजीनियरी, भारी रसायन, कागज, सीमेंट और जूट के उद्योगों में भी शुरू कर दी गई है।

यह परिवर्तन क्रमशः समस्त देश में लाया जाएगा।

मे ट्रि क

प्र णा ली

सरलता व एकरूपता के लिए

वर्तमान तौल के बराबर मेट्रिक तौल जान लीजिए

भारत सरकार द्वारा प्रसारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेट्रिक बाट : परिवर्तन तालिका

इसे काट कर पास रख लें—काम आयेगी

छटांक (१ छटांक= ५ तोले	ग्राम (निकटतम ग्राम तक)
१	५८
२	११७
३	१७५
४	२३३
५	२९२
६	३५०
७	४०८
८	४६७
९	५२५
१०	५८३
११	६४२
१२	७००
१३	७५८
१४	८१६
१५	८७५

मन (१ मन= ४० सेर)	किलोग्राम (निकटतम किलो-ग्राम तक)
१	३७
२	७५
३	११२
४	१४९
५	१८७
६	२२४
७	२६१
८	२९९
९	३३६
१०	३७३
११	४११
१२	४४८
१३	४८५
१४	५२३
१५	५६०
१६	५९७
१७	६३५
१८	६७२
१९	७०९
२०	७४६

सेर (१ सेर= ८० तोले)	किलोग्राम	ग्राम (निकटतम १० ग्राम तक)
१	—	९३०
२	१	८७०
३	२	८००
४	३	७३०
५	४	६७०
६	५	६००
७	६	५३०
८	७	४६०
९	८	४००
१०	९	३३०
११	१०	२६०
१२	११	२००
१३	१२	१३०
१४	१३	६०
१५	१४	—
१६	१४	९३०
१७	१५	८६०
१८	१६	८००
१९	१७	७३०
२०	१८	६६०
२१	१९	६००
२२	२०	५३०
२३	२१	४६०
२४	२२	३९०
२५	२३	३३०
२६	२४	२६०
२७	२५	१९०
२८	२६	१३०
२९	२७	६०
३०	२७	९९०
३१	२८	९३०
३२	२९	८६०
३३	३०	७९०
३४	३१	७३०
३५	३२	६६०
३६	३३	५९०
३७	३४	५२०
३८	३५	४६०
३९	३६	३९०

१ किलोग्राम=१,००० ग्राम

DA 58/247

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मशीनों का यह प्रचण्ड गर्जन...

बलवीर सिंह जब १९५७ में बाहेरिन से जमशेदपुर आये, तब टाटा स्टील के बीस लाख टन विस्तार कार्यक्रम में विशेष स्थान रखनेवाली १० करोड़ लागत की नई ब्लूमिंग मिल के लिये एक बड़ी चट्टान को चौरस करके सिर्फ जगह साफ की गई थी।

आज बीस लाख टन रोलिंग की क्षमता रखनेवाली भारत में अपने ढंग की सब से बड़ी यह ४६ इंच की ब्लूमिंग मिल ब्लूम और स्लैब बनाने के लिये बिल्कुल तैयार है। इन्हीं ब्लूमों और स्लैबों से रेल, शहतीर वगैरह, प्लेट, चद्दर और कई अन्य वस्तुएँ रोल की जायेंगी।

स्वेज संकट के कारण जरूरी माल आने में देर हुई। और भी कई दिक्कतें रहीं। फिर भी यह ब्लूमिंग मिल बड़ी तेजी से तैयार हो गई। इसका श्रेय बलवीर सिंह जैसे लोगों की मुस्तैदी से काम करने की धुन को ही है। भारत की अर्थ-व्यवस्था को दृढ़ करने के लिये आवश्यक अधिक इस्पात उत्पादन की इस सब से बड़ी योजना को कार्यान्वित करने में वे और उन जैसे सैकड़ों भारतीय अमेरिकन और जर्मन कारीगरों की मदद से चौबीसों घन्टे काम में जुटे रहे।

टाटा स्टील

बीस लाख टन की ओर

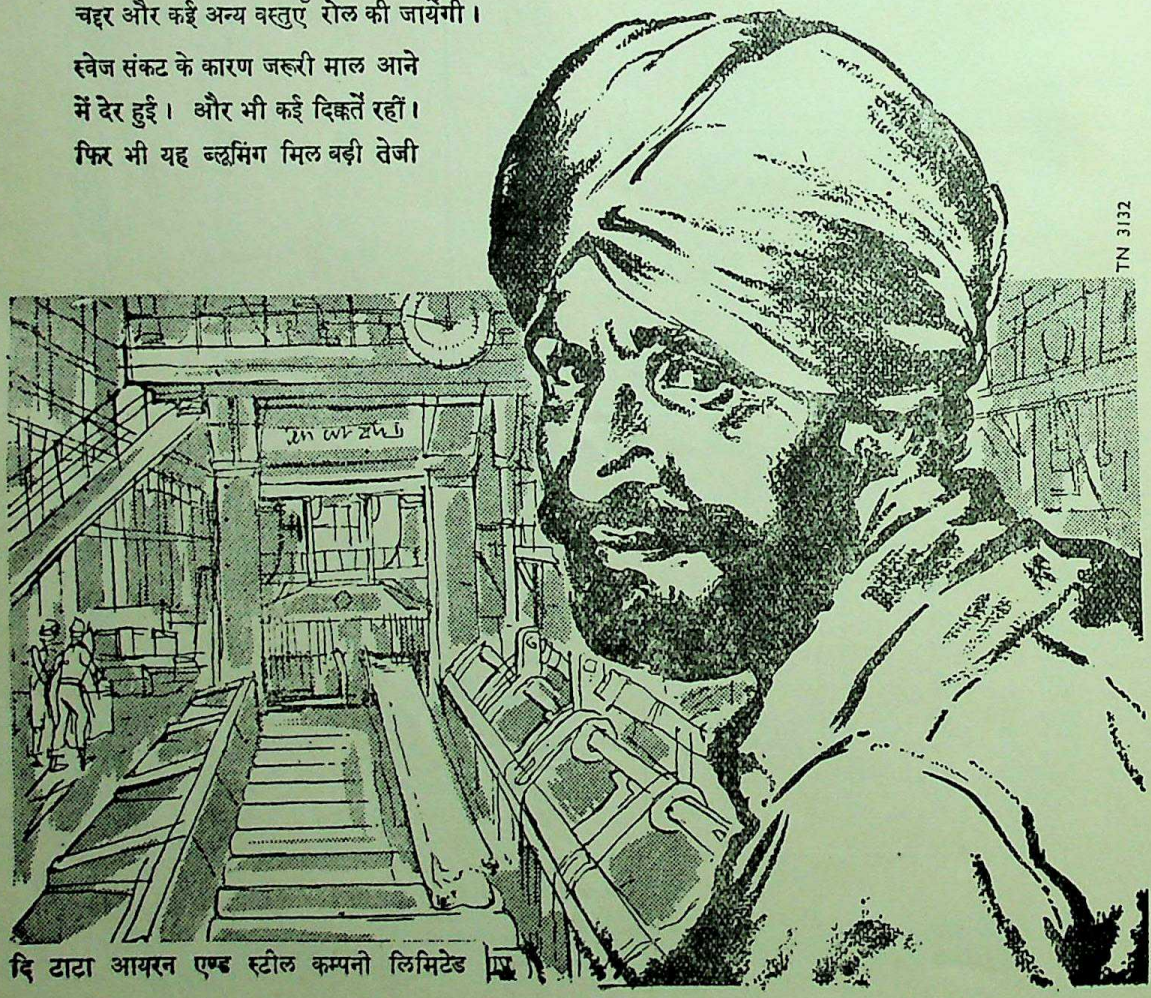

TN 3132

दि टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

LIC-42 HIN

उसके भविष्य को सुरक्षित कीजिये
आज ही बीमा कराइये

इसके भविष्य की जिम्मेदारी में
जीवन बीमा आप की
सहायता करेगा।

लाइफ़ इन्श्योरन्स कॉर्पोरेशन ऑफ़ इन्डिया

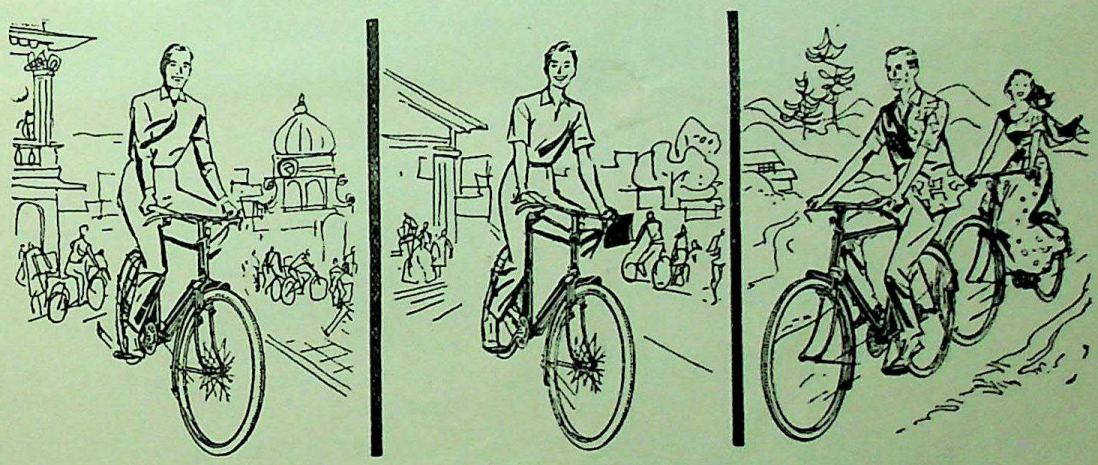

सबकी मन-पसन्द सायकिल

रोबिन हुड

प्रस्तुतकारक

सेन-रैले

SEN RALEIGH Product

SRC-56 HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मिस जुलेखा सेट पर आने से इन्कार करती हैं। उनको डर है कि कहीं **टिनोपाल** से सफेद की हुई साडीवाली 'ऐक्स्ट्रा' के सामने वह फीकी न पड जायें।'

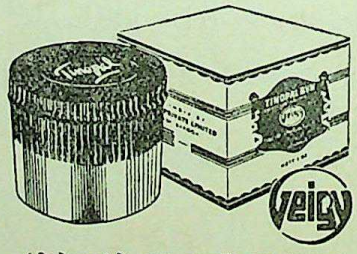

'टिनोपाल' जे. आर. गायगी, एस. ए., बाल, स्विटजरलैंड का रजिस्टर्ड ट्रेड मार्क है।

निर्माता: सुहृद गायगी प्राइवेट लिमिटेड, वाडी वाडी, बडौदा

एकमात्र वितरक: सुहृद गायगी ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड, पो. आ. बॉक्स ९६५, बम्बई

थोडा-सा टिनोपाल सफ़ेद कपडों को सबसे अधिक सफ़ेद बनाता है

SISTA'S-SG-43-HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इण्डिया डायरी–१९५९

(सचित्र)

आकार ८½" × ६"

नए वर्ष के लिए एक उत्तम उपहार

दिनचर्या को नोट करने के लिए अति उपयोगी। हर सप्ताह के लिए एक पृष्ठ। हर पृष्ठ के सामने भारतीय जीवन तथा दृश्यों के रंग-बिरंगे सुन्दर चित्र।

प्रतियां अब उपलब्ध हैं

मूल्य : ५ रुपए, डाक खर्च ५० नए पैसे (रजिस्ट्रेशन व्यय अलग)

पच्चीस रुपए अथवा इससे अधिक मूल्य की प्रतियों पर डाकखर्च नहीं लिया जाएगा।

रेखांकित पोस्टल आर्डर भेजने से सुविधा रहती है।

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पो० बॉ० नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८

बौद्ध धर्म सम्बन्धी दो सुन्दर पुस्तकें

बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष

इस पुस्तक में गत ढाई हजार वर्षों में बौद्धमत की कहानी का संक्षिप्त लेखा है।

२५५ पृष्ठों की सचित्र पुस्तक का

मूल्य केवल ३·०० रु०

डाक व्यय ०·६० नये पैसे

भारत के बौद्ध तीर्थ

भारत में बौद्ध तीर्थ व पवित्र स्थानों पर सचित्र पुस्तक। आकर्षक छपाई व सजधज।

१०८ पृष्ठों की इस सुन्दर पुस्तक का

मूल्य केवल २·०० रु०

डाक व्यय ०·७५ नये पैसे

(रजिस्ट्रेशन व्यय अलग)

मूल्य अग्रिम आना आवश्यक है। रेखांकित पोस्टल आर्डर भेजने से सुविधा रहती है।

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पो० बॉ० नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पत्रिकाओं को अपने वाचनालय में सम्मिलित कीजिए

ग्राम सेवक (मासिक)

ग्राम सुधार की विभिन्न योजनाओं के बारे में ग्रामीण जनता के योग्य सामयिक सूचना और समाचार। भाषा अति सरल और छपाई सुन्दर। वार्षिक शुल्क १·२५ रुपये।

मैट्रिक मापतौल

मापतौल प्रणाली के महत्वपूर्ण विषय पर प्रकाश डालने वाली नवीन द्विमासिक पत्रिका। वार्षिक चन्दा २·०० रुपये।

कुरुक्षेत्र (मासिक)

सचित्र मासिक पत्र, जिसमें देश के सामुदायिक विकास-कार्यक्रम सम्बन्धी समाचार तथा लेख प्रकाशित होते हैं। वार्षिक शुल्क २·५० रुपये।

बाल-भारती (मासिक)

नन्हे मुन्नों की सचित्र मासिक पत्रिका जिसमें सरल भाषा में मनोरंजक कहानियां, शिक्षाप्रद कविताएं, उपयोगी लेख और रेखाचित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। वार्षिक शुल्क ४·०० रुपये।

योजना

सब क्षेत्रों में हुई प्रगति का आलोचनात्मक मूल्य आंकने वाली, भारत की पंचवर्षीय योजनाओं का पथप्रदर्शक पाक्षिक पत्रिका। वार्षिक शुल्क २·५० रुपये।

भारतीय समाचार (पाक्षिक)

अधिकृत सरकारी सूचनाएं व विकास सम्बन्धी गतिविधियों के समाचारों के लिए एक उत्तम पाक्षिक पत्रिका। छात्रों, शिक्षकों, व सार्वजनिक विषयों से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। वार्षिक शुल्क ५·०० रुपये।

बिक्री बढ़ाने के लिए इन पत्रिकाओं में विज्ञापन दीजिए

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पो० बॉ० नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट

दिल्ली - ८

Edited and Published by the Director, Publications Division, Old Secretariat, Delhi—8 and printed by the Assistant Manager, Government of India Press, Faridabad.

Regd. No. D—510

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल

विश्व-दर्शन सहित

-4 OCT 1958

सितम्बर १९५८

मूल्य
५० नये पैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थायी महत्व की पुस्तकें

सुन्दर सजधज और कम दाम

	मूल्य	डाक खर्च
राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के भाषण (१९५२–१९५६)	३·५०	०·८५
स्वाधीनता और उसके बाद (जवाहरलाल नेहरू के भाषण) (१९४६–४९)	५·००	१·३५
भारतीय कविता १९५३	५·००	१·७५
भारत की एकता का निर्माण (सरदार पटेल के भाषण)	५·००	१·३०
भारतीय वास्तुकला के ५,००० वर्ष	२·००	०·२५
कर जांच आयोग के प्रतिवेदन का संक्षिप्त सार	२·५०	०·७५
अशोक के धर्मलेख	१·००	०·२५
पंचांग सुधार	०·३५	०·१५
हमारे राष्ट्रीय गीत	०·२५	०·१५
दसवाँ वर्ष (छप रहा है)	१·५०	०·५०
भारत के पक्षी	१२·५०	०·९५

(रजिस्ट्रेशन व्यय अलग)

पच्चीस रुपये या इससे अधिक की पुस्तकों पर डाक व्यय नहीं लिया जाता है ।

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पोस्ट बॉक्स नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट

दिल्ली - ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल

वर्ष १४ अंक ५ पूर्णांक १७१

सम्पादक मण्डल :
बनारसीदास चतुर्वेदी
नगेन्द्र
मोहन राव
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (मंत्री)

सहायक सम्पादक—वीरेन्द्र कुमार त्यागी

सितम्बर १९५८

(१० भाद्रपद से ८ अश्विन १८८०)

बीमार की एक रात (कविता)	बालकृष्ण राव	३	अमरावती, ९ टागोर टाउन, इलाहाबाद
मूंगे की मूरत (कविता)	जगदीश गुप्त	४	मोती महल, दारागंज, प्रयाग
दिल घबराता है (कन्नड़ कविता)	कु० वें० पु०	४	
बदरा बन बरसा (गीत)	कुमारी मधु	४	८४ ब्रह्म बाजार, चंदौसी
दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह-संग्राम के शहीद	बनारसीदास चतुर्वेदी	५	एम० पी०; ९९-नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली
काशीनाथ का पुनर्जन्म (बंगला कहानी)	परशुराम	७	७२, बकुल बांगा रोड, कलकत्ता-२५
कला के प्राचीन एवं नवीन सम्प्रदाय	रविशंकर रावल	११	चित्रकूट, ४४ एलिस ब्रिज, अहमदाबाद
महादेवी वर्मा	भगवतीचरण वर्मा	१५	३७, विश्वेश्वरनाथ रोड, लखनऊ
प्रेम का परचा (गुजराती कहानी)	चूनीलाल माड़िया	२०	द्वारा यू० एस० आई० एस०, बम्बई
शाम का पीपल (कविता)	श्रीकान्त वर्मा	२२	भारतीय श्रमिक कार्यालय, १३ जनपथ, नई दिल्ली
लोक-कथाओं के मूल अभिप्राय	कन्हैयालाल सहल	२३	डा०; अध्यक्ष हिन्दी, बिरला आर्ट्स कालेज, पिलानी
दण्डकारण्य योजना	भगवानसिंह	२५	सह-सचिव रिहेबिलिटेशन, ८ थियेटररोड, कलकत्ता
तेलुगु उपन्यास साहित्य	डी० मंजुलता	२७	धुनविल्ला, तिलक रोड, हैदराबाद
बसोली चित्रशैली (सचित्र)	राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह	३०	३२-क्वीन विक्टोरिया रोड, नई दिल्ली
मेला (बंगला कविता)	प्रेमेन्द्र मित्र	३५	५७-हरीश चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-२६
सुबह की कमज़ोरी (हिन्दी कहानी)	चन्द्रकिरण सौनरेक्सा	३६	द्वारा आल इण्डिया रेडियो, लखनऊ
पत्थर (नेपाली लघु कथा)	ईश्वर बल्लाल	३८	काठमांडू, नेपाल
हाय चील (बंगला कविता)	जीवनानन्द दास	३८	द्वारा सिगनेट प्रेस, कलकत्ता-२०
पण्डित हरीचन्द 'अख़्तर'	बालमुकुन्द अर्श मलसियानी	३९	सम्पादक : उर्दू 'आजकल', ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली
सारस्वत [२] (मराठी नाटक)	मामा वरेरकर	४३	एम० पी०; १९१ साऊथ एवेन्यू, नई दिल्ली
एरिनबुर्ग और गिरासीमोफ़	नगेन्द्र भट्टाचार्य	५०	पब्लिकेशन्स डिवीजन, दिल्ली
स्वामी विवेकानन्द का एक पत्र	का० ल० मोदी	५४	देवरी (सागर), म० प्र०
पुस्तक समालोचना	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	५५	४-पटौदी हाउस, नई दिल्ली
	मन्मथनाथ गुप्त		सम्पादक 'योजना'; १९०-खैबर पास मैंस, दिल्ली
	प्रयागनारायण त्रिपाठी		सम्पादक हिन्दी समाचार, आकाशवाणी, नई दिल्ली।
सम्पादकीय	...	६१	
आवरण चित्र (बसोली शैली) : चीर हरण			
इस मास का फोटो : "आंधी से पहले" फोटो :	सूर्यनारायण		

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीजन, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८

वार्षिक मूल्य—६ रुपये, एक डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—पचास नये पैसे, दस सेंट या नौ पैंस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आंधी से पहले"

फोटो : सूर्यनारायण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १४ सितम्बर १९५८ अंक ५

बीमार की एक रात

बालकृष्ण राव

बीत जाय रात यह–
किसी तरह बीत जाय यह रात !
चाहे फिर वही बात,
वही प्रश्न,
वही लोग,
वैसे ही
पूछें सुबह होने पर :
"नींद आ गई थी रात ?"
"कट गई ठीक से ?"
"घट गई व्यथा कुछ ?" . . . .
वही प्रश्न, वही लोग, वैसे ही पूछेंगे–
क्योंकि
कल जैसा ही सवेरा
कल फिर होगा !

आह, कोई अन्तर
कभी तो हो !
ऐसी भी तो कोई रात आए कभी
जो न उकसाकर ही प्रश्नों को चली जाय,
जो न साथ छोड़ जाय जागतों का
जैसे ही पूरी हो उनकी रात
जिन्हें नींद आती है ।

मेरी रात––उनकी रात !
कैसे कहूँ एक ही नहीं हैं दोनों ?
साथ-साथ समा जाएँगी सवेरे में–
दोनों के उस ओर सूरज चमकता है !
कैसी विडम्बना है !
स्वप्न-भरी औरों की,
मेरी यह रीती रात–
दोनों ही बदलेंगी एक साथ
एक से सवेरे में !
व्यंग्य है प्रकृति का–
पर कौन कहे किस पर ?
नींद नहीं आती. . . . . नहीं आती . . . .
नहीं आती चांद-तारों को भी,
नभ को भी,
घर की दीवारों की आँखों में भी
नाम नहीं नींद का–
लगता है घेर कर मुझको खड़ी हैं ये,
साथ-साथ
जागने को सारी रात ।
ऐसी कभी दीखीं नहीं दिन में–
स्नेह-भरी,
कोई भी दुराव जैसे शेष नहीं,
नग्न हो गई हैं
मुझे अपना समझ कर,
लगता है
इनसे घिरा नहीं हूँ–इनका हूँ ।
कहूँगा सवेरे, जब पूछेंगे लोग
"रात कैसी कटी ?"
कहूँगा कि "कटी नहीं, बंट गई"–
"मैंने ही अकेले नहीं काटी थी सारी रात" ।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूंगे की मूरत

जगदीश गुप्त

मूंगे की मूरत के मोती से दांत,
मूंगे की मूरत के मरकत से केश ।
मूंगे की मूरत की नीलम सी आँख,
मूंगे की मूरत का कंचन सा वेश ।

मूंगे की मूरत के सीपी के पंख,
मूंगे की मूरत की चंदन की बाँह ।
मूंगे की मूरत के होठों के बीच,
उत्पल की, पाटल की, घुलती-सी छाँह ।

छाँह वह ऐसी
कि मूरत पिघलती-बनती,
उजाले में, अंधेरे में ।
बेधता मूंगा कुसुमशर की अनी बन !
जब उतरती छाँह मन के स्वप्न-घेरे में ।

निकटता की एक मृदु अनुभूति,
युग हृदय का अनाहत विश्वास बनती,
सिमट जाते पंख स्नेहाकुल बसेरे में ।

●

कन्नड़ कविता

दिल घबराता है

कु० वें० पु०

१

आत्मा तो मेरी सधैर्य है
पर दिल मेरा घबराता है
दिल में तो प्रेम भरा है
पर कर मेरे कम्पित हैं !

२

कभी मैं धरती पर गिरा तो
कभी मैं उठा ऊपर को
बार-बार मैं तुम्हें पुकार
दुखी-मन हो जाता हूँ !

३

दृष्टि है मेरी गगन पर
पर देह तो है भूमि पर
शेष नहीं अब भक्ति में कुछ शक्ति
मन भी अब उदास बहुत है ।

४

आत्मा तो मेरी सधैर्य है
पर दिल मेरा घबराता है
दिल में तो प्रेम भरा है
पर कर मेरे कम्पित हैं !

रूपान्तरकार : दंडमूडि महीधर

●

बदरा बन बरसा

कुमारी मधु

पुरवैया गा उठी, प्रकृति का
अंचरा डोर रहा ।
उमड़ा प्यार गगन के हिय में
बदरा बन बरसा,
प्रेमाकुल भू ने नदियों की
बाँह बढ़ा परसा ।
दूर कहीं बंशी की धुन सुन
कजरा डोल रहा ! !

लहरों ने इकतारा छेड़ा
कूकी कोयलिया,
सजी लताएँ, बजी गाँव की
क्वांरी पायलिया ।
अमराई का हौले-हौले
जियरा डोल रहा ! !
बुंदियों का दर्पन ले कलियाँ
रूप संवार रहीं,
पात-पात पर बहार-परियाँ
तन मन वार रहीं ।

फुलवां टंका धरा का हरियर
घघरा डोल रहा ! !
घर नाची राधा, खेतों में
झूमा सांवरिया,
द्वारे हंसा नीम, पनघट पर
छलकी गागरिया ।
अंगना महका, मैना फुदकी
पिंजरा डोल रहा ।।

आजकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह-संग्राम के शहीद

बनारसीदास चतुर्वेदी

७ सितम्बर सन् १९१० को काउण्ट टाल्सटाय ने महात्मा गांधी जी के नाम एक ऐतिहासिक महत्व का पत्र लिखा था जिसके एक अंश का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है :

"जो काम आज आप ट्रांसवाल में कर रहे हैं, दुनिया के इस छोर पर हमें ऐसा प्रतीत होता है कि संसार भर के कार्यों में वही सबसे अधिक आवश्यक और सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य है और एक वक्त ऐसा आएगा, जब इसमें दुनिया की सिर्फ ईसाई जातियों को ही नहीं बल्कि सभी जातियों को मजबूरन भाग लेना पड़ेगा।"

ऋषिवर टाल्सटाय की यह भविष्यवाणी आंशिक रूप से सत्य सिद्ध हो चुकी है और ज्यों-ज्यों समय बीतता जाएगा, संसार महात्मा जी द्वारा प्रयुक्त सत्याग्रह अस्त्र के महत्व को अधिकाधिक समझता जाएगा।

महात्मा जी के इस महान प्रयोग में सैंकड़ों सहस्रों ही भारतीयों को अपने जीवन का बलिदान करना पड़ा। उन शहीदों की स्मृति-रक्षा के लिए कोई प्रयत्न करना तो रहा दूर, हम लोग उनके नाम भी भूलते जा रहे हैं। इस छोटे से लेख के साथ हम कुछ शहीदों के चित्र छाप रहे हैं, जो 'इंडियन ओपीनियन' के एक विशेषांक--स्वर्ण जयन्ती अंक (सत्याग्रह संग्राम १९०६-१९१४) से लिए गए हैं।

इस प्रसंग में हम महात्मा जी के कुछ वाक्यों को भी उद्धृत कर रहे हैं, जो बाबू रामचन्द्र वर्मा द्वारा संग्रहीत तथा गान्धी हिन्दी पुस्तक भंडार, बम्बई से प्रकाशित 'महात्मा गान्धी' नामक पुस्तक से लिए गए हैं। सम्भवतः यह किसी गुजराती लेख का अनुवाद है।

सत्याग्रही हरबत सिंह, जिनका डरबन जेल में देहान्त हुआ

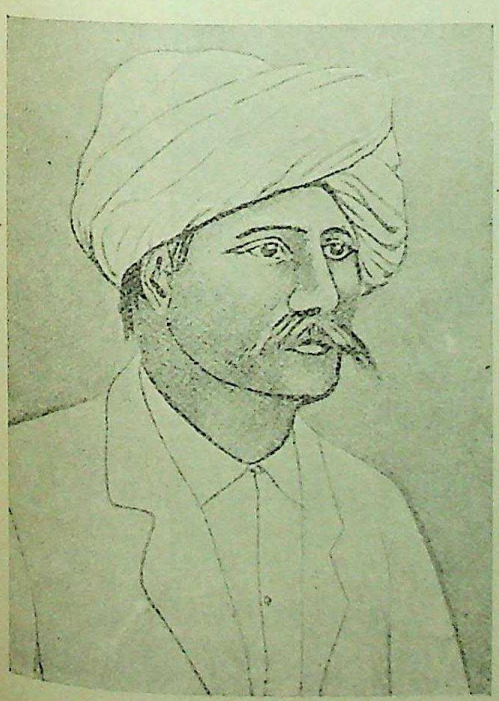

सत्याग्रह-आन्दोलन में २२ दिसम्बर, १९१३ का दिन अत्यन्त महत्व का था। डरबन में पारसी रुस्तमजी (भारतवासियों के चाचा, और एक वृद्ध सत्याग्रही) का घर भारतवासियों से भर गया था। घर के समीप के एक झोंपड़े में सैंकड़ों सत्याग्रही अपने स्त्री-बच्चों के सहित बैठे हुए थे। इनमें वे लोग भी थे जो गोली का निशाना बनकर घायल हुए थे। मरे हुए वीरों की स्त्रियाँ अपने बच्चों को गोद में लिए हुए बैठी थीं। सायंकाल कोई चार बजे महात्मा गान्धी वहाँ आए। उन्हें जेल से निकले अभी कुल दो ही दिन हुए थे। वहाँ आने पर उन्होंने मजदूरों की मण्डली में प्रवेश किया। वे झोंपड़े के उस कोने में गए जहाँ परलोक गत सुजाई और सेल्वनी (ये लोग

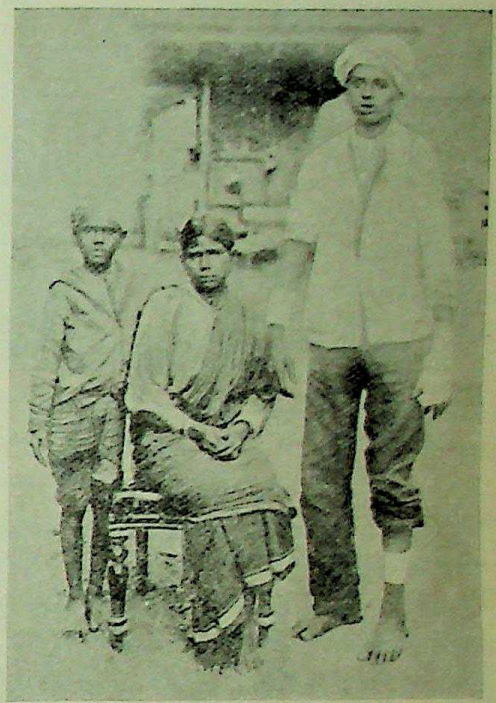

डरबन की हड़ताल में गोली से शहीद हुए सेल्वन की विधवा पत्नी अपने दो पुत्रों के साथ। बड़े पुत्र एण्टोनीमुथू को भी ३ गोलियां लगी थीं

सत्याग्रही नर्यासामी जिनका अनेक बन्दरगाहों पर पीछा किया गया। डेलागोआ पर इन का देहान्त हो गया।

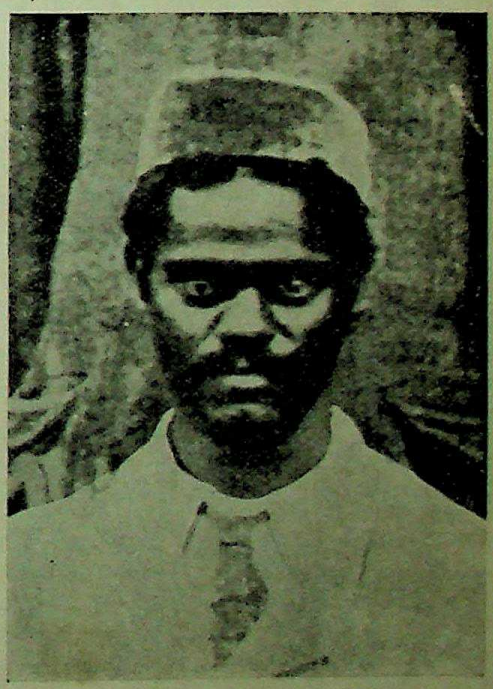

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

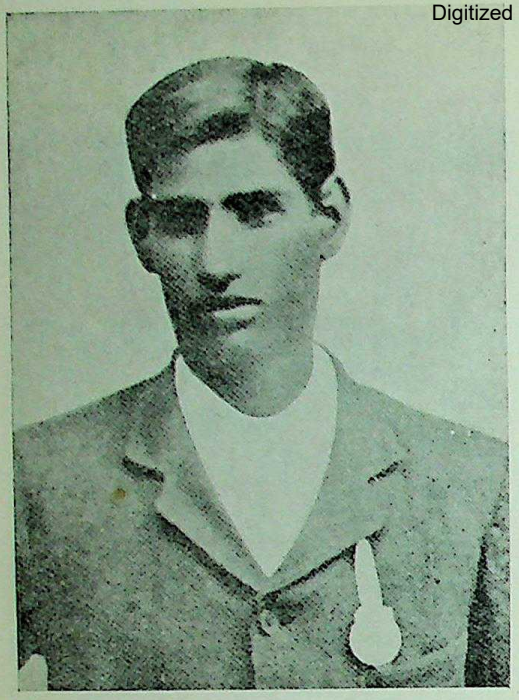

सत्याग्रही नागप्पन जिनका जेल से छूटते ही देहान्त हो गया

गोली से मारे गए थे) की विधवाएँ बैठी हुई थीं। इस साधु पुरुष को अपने सन्मुख देखकर उन्हें बड़ी तसल्ली हुई। विधवाओं ने अपना मस्तक उनके चरणों पर रखा। महात्मा जी ने बड़ी कठिनता से उन्हें अपने चरणों पर से हटाया। सामने खड़ी एक विधवा के कन्धे पर हाथ रखकर वे एकटक उसकी ओर देखने लगे। विधवा के नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। इस दीन-दुखी विधवा के रोने में महात्मा गान्धीजी को समस्त भारतीय राष्ट्र की अति दीन अवस्था प्रत्यक्ष हो रही थी। यह देखकर जान पड़ता था मानो उनकी भारत-माता ही अति दरिद्र वेष में खड़ी हुई अपने निर्धन पुत्र को अपना हृदय-वेधक विलाप सुना रही है। महात्मा जी के नेत्र मानो उनकी इस भीष्म प्रतिज्ञा की घोषणा कर रहे थे : "मैं अत्याचारों को चूर-चूर कर डालूँगा।"

विधवा के कन्धे पर हाथ रखे हुए उन्होंने दुभाषिये का काम करने के लिए एक तामिल सज्जन को बुलाया। उनके मुख से स्वभावतः ही गम्भीरता-पूर्ण बहुमूल्य प्रभावोत्पादक वाक्य निकलने लगे। दुभाषिया उनका तामिल में उलथा करके विधवाओं को समझाता जाता था, महात्मा जी ने कहा--

"माता तुम चुप रहो, रोओ मत। तुम्हारा रोना सुनकर मुझ से रहा नहीं जाता। तुम्हारा पति अत्याचारियों के हाथों मारा गया है, वह आज ईश्वर की गोद में बैठा हुआ है। उसने देश के लिए अपना शरीर अर्पित कर दिया है। उसका नाम अमर हो गया। यदि वह किसी रोग से मरा होता तो मैं आज इस तरह तुम्हारे सामने न खड़ा होता। संसार को उसकी मृत्यु की खबर तक न होती। यह उसका सौभाग्य है कि इस प्रकार मर कर उसने इस सत्कार्य में मृत्यु पाई। अतएव तुम चुप रहो। जिस दिन तुम्हारी ही तरह मेरी हजारों माताएँ और बहनें विधवा बनेंगी, उसी दिन भारत-माता का उद्धार होगा, अन्यथा नहीं, मैं अपना सिर भारत-माता को चढ़ा चुका हूँ। यदि अत्याचारी सत्ताधिकारी उसे धड़ से अलग कर दें और तुम्हारी तरह मेरी स्त्री भी एक निराश्रित विधवा हो जाए, तो मैं समझूँगा कि मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई। तभी मेरी अन्तरात्मा को शान्ति मिलेगी। अतएव माता तुम दुखित न हो। मैं अपना सिर तुम्हारी गोद में देता हूँ। तुम्हारे वैधव्य का कारण मैं ही हूँ। मुझे क्षमा करो और शान्त हो।"

स्व० पचिआप्पन, जो हड़ताल में मारे गए थे, की विधवा और पुत्र

इतना कह चुकने पर महात्मा जी ने पूर्वोक्त विधवा को एक बार फिर प्रणाम किया और वहाँ से आप चले गए। जो लोग वहां उपस्थित थे वे यह दृश्य देख और ये अलौकिक शब्द सुनकर रोने लगे। बहुतों से यह देखा न गया, वे वहाँ से चले गए।

सुनते हैं कि नई दिल्ली में शहीदों के लिए एक स्मारक भवन बनने वाला है और सरकार के द्वारा उपयुक्त जमीन की तालाश की जा रही है। उस भवन के एक कक्ष को दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रही शहीदों के लिए अर्पित कर देना चाहिए। वस्तुतः भारत के स्वाधीनता संग्राम के वे पथ-प्रदर्शक थे। उस कक्ष में इन लोगों के केवल वृहत चित्र ही न हों, उनके जीवन चरित सम्बन्धी मसाला भी वहां सुरक्षित रहे। इस मसाले का और इन चित्रों का संग्रह-कार्य तुरन्त प्रारम्भ कर देना चाहिए। मन्दिर बना देना अपेक्षाकृत आसान है, पर उसमें प्राण प्रतिष्ठा करना बहुत मुश्किल।

हड़ताल में मारा गया सत्याग्रही सूरजुई अपनी पत्नी और पुत्र के साथ

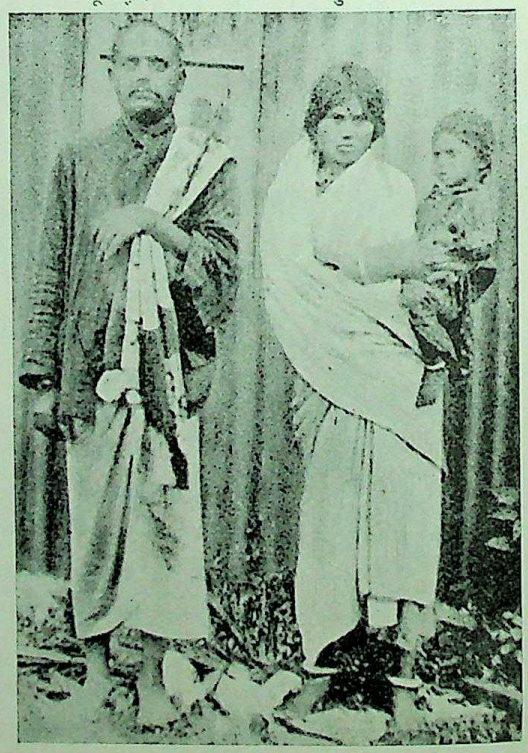

महात्माजी के ४५ वर्ष पूर्व के ये शब्द--

"जिस दिन तुम्हारी ही तरह मेरी हजारों माताएं और बहनें विधवा बनेंगी, उसी दिन भारत-माता का

(शेष पृष्ठ ६० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशीनाथ का पुनर्जन्म

परशुराम

करीब डेढ़ सौ साल पहले की बात है। उस समय कलकत्ता के बंगाली हिन्दू समाज में विभिन्न परिवर्त्तन होने लगे थे लेकिन उसके कोई लक्षण राघवपुर गांव में नहीं दिखाई पड़ते थे। काशीनाथ सार्वभौम उसी गांव के समाजपति थे। वह दिग्गज पंडित भी थे। उनकी सन्तान कलकत्ता, हुगली, वर्धमान, कृष्णनगर, मुर्शिदाबाद इत्यादि में बिखरी हुई थीं। लेकिन वह खुद गांव में ही रहते, जमींदारी देखते, तिजारत और देवसेवा भी करते और एक चतुष्पाठी का खर्च भी खुद ही चलाते।

एक रोज ढलती रात उन्होंने स्वप्न देखा कि उनकी इष्टदेवी काली आविर्भूत होकर कह रही है; "बेटा काशीनाथ, तुम्हारी उम्र सौ साल पार कर गई है, तुम बहुत दिनों तक इहकाल का सुख-दुख भोग चुके हो। अब और क्यों? अब अपनी देह का त्याग करो।"

काशीनाथ बोले--"हे मां कैवल्यदायिनी, इस समय तो मैं मर नहीं सकता हूं। मेरी चमचमाती गृहस्थी है, चौथी पत्नी अभी जीवित है। अट्ठारह पुत्र-कन्याएं, एक सौ पच्चीस पौत्र-पौत्रियां, दौहित्र-दौहित्रियां हैं। प्रपौत्र प्रदौहित्र इत्यादि शायद हजार तक पहुंच गए। उनमें से बहुत से मर खप चुके हैं फिर भी अनेक जीवित हैं। इसके अलावा अनेक शिष्य मेरी चतुष्पाठी में पढ़ते हैं। मैं उन्हें पढ़ाता हूं और उनका पालन भी करता हूं। इन सब स्नेहभाजनों का त्याग करना अत्यन्त कष्टकर है। तुम्हारे लिए मैंने बड़ा-सा मन्दिर बनाने का संकल्प किया है, उसका भी उद्यापन करना है। कलकत्ता का ईसाई अनाचार अगर इस गांव में प्रवेश करे तो उसे मुझे ही रोकना होगा। मेरे लड़कों से कुछ न होगा, वे खुदगर्ज हैं, अपने-अपने धन्धों में ही मशगूल हैं। उम्र ज्यादा होने के बावजूद मेरा शरीर अब भी मजबूत है। इसलिए कृपा कर मुझे दस साल और जीने दो।"

काली मां भौं सिकोड़ कर अन्तर्धान हो गई।

अगले रोज सबेरे काशीनाथ सार्वभौम की चौथी पत्नी रासेश्वरी ने कहा--"तुम्हें कुछ होश भी है कि आज तुम्हारे तीन प्रपौत्र पुत्रों और पांच प्रदौहित्र पुत्रों का अन्नप्राशन है? तुम झट नहा-धो कर सन्ध्या-जप कर लो। तुम्हीं को तो होम-यज्ञ करना होगा।"

गंगा में स्नान कर लौटे तो कातरकंठ से काशीनाथ ने कहा--"गृहिणी, काले सांप ने मुझे डस लिया है, मेरी मौत सिर पर सवार है। मां कराल-वदनी, यह क्या किया! हाय! हाय! संकल्पित कार्य खत्म हुए बिना ही मुझ परलोक भेज रही हो।"

शास्त्र में कहा जाता है कि जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि भी मिलती है। काशीनाथ अगर श्रीरामपुर के पादरियों के चंगुल में फंसकर ईसाई बनते तो मौत के बाद उन्हें अन्तिम न्याय की प्रतीक्षा में दीर्घ समय तक जड़ीभूत पड़ा रहना पड़ता, जैसे रेंगनेवाले जीव जाड़े भर पड़े रहते हैं। लेकिन सौभाग्य से वे अति निष्ठावान हिन्दू थे, इसलिए उनका पारलौकिक परिणाम झट संभव हुआ।

मृत्यु के बाद ही काशीनाथ जी ने अनुभव किया कि वे सूक्ष्म शरीर धारण कर शून्य में अवस्थान कर रहे हैं और उनकी प्राणहीन देह आंगन में तुलसी-मंच के सामने पड़ी है। उनकी पत्नी और रिश्तेदार चारों ओर विलाप कर रहे हैं और पड़ौसी कह रहे हैं, ओफ एक वज्रपात हो गया। क्षणभर में प्रचंड गति से व्योममार्ग में बह कर यमलोक पहुंच गए।

यम ने कहा, "आओ जी काशीनाथ। तुम्हारी सुकृति-दुष्कृति का न्याय और उसी के उपयुक्त व्यवस्था भी मैंने कर रखी है। संक्षेप में कहता हूं, सुनो। पुण्यकर्म की तुलना में तुम्हारे पापकर्म कम हैं। रामगति भट्टाचार्य की जमीन के थोड़े हिस्से पर तुमने अन्याय से दखल किया था, तीन बार अदालत में झूठी कसम उठाई, पहली और बीच की उम्र में मित्रपत्नी और वधुस्थानीया कुछ औरतों पर बुरी नजर डाली थी, चूहे की नाईं बहुत-सी सन्तानें पैदा कीं थी और अन्तिम दिनों तक धन-सम्पदा की चिन्ता में मग्न थे। इसके अलावा और जो कुछ भी किया, सभी सत्कार्य हैं। नियमित रूप से दुर्गोत्सव आदि किया था, गंगास्नान, तीर्थभ्रमण, व्रत-उपचार इत्यादि और ब्राह्मण के सभी कर्त्तव्य तुमने पालन किए थे--कदापि अखाद्यों का सेवन नहीं किया। दुष्कृतियों के लिए तुम पचास साल नरकवास करोगे और उसके बाद पुण्यकार्यों के फलस्वरूप एक सौ साल स्वर्गवास करोगे। अच्छा अब जाओ, जाकर अपना कर्मफल भुगतो।"

निश्चित समय तक नरकवास और स्वर्गवास के अन्त में काशीनाथ फिर यम के पास बुलाए गए। यम ने कहा--"अजी काशीनाथ, अपने प्राक्तन कर्मों के लिए तुम फल भुगत चुके हो। अब तुम्हें धरती पर लौट जाना है। विधाता तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं। तुम अपने अभीष्ट वंश में जन्म ले सकते हो। बोलो, किस प्रकार का जन्म चाहते हो? धनी बनिए का वंशधर बनना चाहते हो या दरिद्र ज्ञानी धर्मात्मा के पुत्र के रूप में शुचीनां श्रीमतां गेहे?"

काशीनाथ ने जवाब दिया--"धर्मराज, मरते समय मेरी बहुत-सी कामनाएं अतृप्त रह गई थीं। कृपया ऐसा बन्दोबस्त कीजिए, जिससे अपने मौजूदा वंशधर के घर पर ही लौट सकूं। मेरे प्रपौत्र का पुत्र चिरंजीव भवानीचरण मेरा अतिशय स्नेहभाजन था। उसकी सन्तान बनाकर मुझे धराधाम भेजिए।"

यम ने कहा--"क्या कह रहे हो जी काशीनाथ। जीवित समय में ही तुमने अपनी पांचवीं पीढ़ी तक देखी थी। तुम्हारी मृत्यु के बाद डेढ़ सौ साल गुजर गए हैं। इससे छह पीढ़ी और गुजर चुकी हैं। अब तुम्हारा जो वंशधर है वह तुम्हारा सपिंड भी नहीं है। उसके साथ तुम्हारा रिश्ता ही क्या है? उसका पुत्र बनकर जन्म पाने से तुम्हारा क्या फायदा होगा? और भी तो अच्छे-अच्छे वंश हैं।"

काशीनाथ ने कहा--"हे प्रभो, कृपया मुझे उस ग्यारहवीं अधस्तन पीढ़ी के वंशधर के रूप में ही भेज दीजिए। व्यवधान कितना ही रहे, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी तथा भवानीचरण की संतान ही तो है। वह मेरे अत्यन्त स्नेह का पात्र है। उसे देखने के लिए मैं अधीर हूं।"

"तुम उसे पहचानोगे भी तो किस तरह ? तुम्हारी मौजूदा स्मृति तो तब नहीं रहेगी। ज्ञानहीन क्षुद्र शिशु के रूप में पैदा होकर तुम धीरे-धीरे बड़े होगे। ज्ञानार्जन भी करोगे, लेकिन विगत काल के साथ तुम्हारे नवजीवन का कोई योग सूत्र नहीं रहेगा।"

"प्रभो मेरी प्रार्थना की ओर ध्यान दीजिए। नारी गर्भ में नौ महीने दस दिन रहने के बाद शिशु की तरह मैं भूमिष्ठ नहीं होना चाहता। ज्ञानवान जातिस्मर बनाकर ही मुझे भेज दीजिए।"

"मरते समय तो तुम्हारी उम्र सौ साल से जरा ज्यादा हो गई थी। वही उम्र लेकर क्या फिर जन्म लेना चाहते हो ?"

"जी नहीं। जराजीर्ण स्थविर बनकर ही अगर धरा पर जाऊं, तो नवजन्म के आनन्द का रस कितने रोज से पाऊंगा ? मुझे पच्चीस-तीस साल का नौजवान बना कर भेज दीजिए।"

"तुम्हारी अभिलाषा बड़ी अजीब है। गर्भवास नहीं करोगे, युवा के रूप में नवजन्म प्राप्त करोगे, पूर्वस्मृति विद्यमान रहेगी, वर्त्तमान वंशधर के गृह में अचानक आविर्भूत होओगे। यही तो तुम चाहते हो न ?"

"जी हां।"

"अच्छा, ऐसा ही होगा। मैं भी देखूंगा कि इसका क्या फल होता है। तुम्हारा गोत्र क्या है ?"

"भरद्वाज।"

यमराज क्षणभर के लिए ध्यानमग्न हो रहे। उसके बाद बोले--"धराधाम पर बहुत से सामाजिक परिवर्तन हो गए हैं। तुम अगर स्वाभाविक नियम से शिशु के रूप में भूमिष्ठ होते, तो धीरे-धीरे वर्त्तमान हालत के आदी हो जाते। लेकिन अदृष्टपूर्व समाज में अचानक टपक पड़ने से किसी विपदा में फंस सकते हो। तुम्हारी असुविधाएं बहुत ज्यादा न हो जाएं, इसलिए मैं भरसक इन्तजाम कर रहा हूं।"

यम ने अपने एक दास से कहा--"आज आधी रात को यह जीवात्मा तीस साल के नौजवान के रूप में धराधाम लौट जाएगी। इसे पश्चिमी बंगाल की आधुनिक भाषा सिखा दो और कुछ अपभ्रष्ट अंग्रेजी और हिन्दी भी। वर्त्तमान युग की उपयोगी पोशाक, बिल्कुल जरूरी दूसरे सामान और काफ़ी धन भी उसे दे दो। एक निष्क्रान्ति टिकिया भी दे देना। उसके बाद कलकत्ता नगरी में ले जाकर श्री मधुसूदन रोड पर तीन नम्बर मकान के फाटक के सामने इसे सोते हालत में छोड़ आओ। अजी काशीनाथ, तुम्हारे वंशधर चक्रधर मुकर्जी के पास मैं तुम्हें भेज रहा हूं। तुम्हारा पुराना नाम ही तुम्हारे साथ रहेगा। अगर यह देख पाओ कि वर्त्तमान समाज-व्यवस्था तुम्हारे लिए तकलीफदे है और किसी कदर तुम बरदाश्त नहीं कर पा रहे हो, तब निष्क्रांति टिकिया ले लेना। बस, तुम यमलोक में वापस आ जाओगे और फिर तुरन्त सनातन रीति से जन्म लेना।"

चक्रधर मुकर्जी धनी व्यक्ति थे। वास्तुविवर्धन कार्पोरेशन के मैनेजिंग डायरेक्टर थे और तीन नम्बर मधुसूदन रोड पर उनकी बड़ी सी कोठी थी। सुबह आठ बजे से पहले वह बिस्तर छोड़कर उठते नहीं थे, लेकिन आज सबेरे ही उनकी बीवी ने धक्का-वक्का देकर उन्हें जगा दिया। चक्रधर ने पूछा--"क्या हुआ है ?"

"नीचे शोरगुल हो रहा है। सुन नहीं पाते हो ? बरामदे में खड़े होकर पता लगाओ कि हुआ क्या है ? मुझे तो डर लग रहा है।"

चक्रधर ने बरामदे से देखा कि फाटक के सामने बहुत से लोग इकट्ठे होकर बातचीत कर रहे हैं।

उन्होंने पूछा--"क्या हुआ है लालबहादुर ?"

दरबान लालबहादुर बोला--"कोई एक बाबू फाटक के सामने पड़ा है। जिन्दा है या मर गया पता नहीं चलता।"

चक्रधर ने नीचे उतर कर देखा कि ऐन उनके मकान के फाटक के सामने एक अजनबी सिरहाने एक चमड़े का बैग रखे बेहोश लेटा हुआ है। कई दफ़े जोर से धकेलते ही उस आदमी ने आखें झिपझिपाकर देखा। उसके बाद धीरे-धीरे उठकर बैठा। जमुहाई लेकर उंगली चटकाते हुए वह बोला--"तारा ब्रह्ममयी करालवदनी ! कहां ला पटका मां ?"

चक्रधर ने कहा--"कौन हो जी तुम ? अब नशा छूटा ? क्या लिया था, शराब या चंडू ?"

"मैं श्री काशीनाथ मुखोपाध्याय सार्वभौम हूं। फिर आ पहुंचा हूं। तुम ही चक्रधर हो न ? चिरंजीव भवानीचरण के वंशधर ? अहा, कितने बड़े हो गए हो ! कमरे में चलो बेटा, सारी बातें बताता हूं।"

काशीनाथ की आत्मकथा सुनकर चक्रधर ने निश्चय किया कि यह आदमी नशेबाज नहीं, झूठा या फरेबबाज भी नहीं, पर इसका दिमाग़ जरूर खराब है। पूछा --"तुम्हारे उस बैग में क्या है ?"

"मुझे तो नहीं मालूम तुम्हीं खोलकर देखो। यह रही मेरे जनेऊ में बंधी चाबी, खोल लो।"

चक्रधर ने बैग खोला। चन्द धोतियां, कुर्त्ते, बनियाइनें, एक अरंडी का चदरा, एक जोड़ा चप्पल, एक अंगौछा, शीशा कंघी इत्यादि। और सबसे नीचे एक पोर्टफोलिओ रक्खा था। उसे खोलकर चक्रधर ने आश्चर्य करते हुए देखा कि उसमें करीब पांच लाख रुपए के सरकारी कागज़ और अच्छे-अच्छे शेयर, नकद दो हजार रुपए के नोट और दस रुपए की रेजगारी रक्खी थी।

"सभी तुम्हारे नाम से हैं। कैसे मिले ?"

"कुछ भी नहीं मालूम बेटा, सभी कुछ जगदम्बा की लीला है और यमराज का इन्तजाम।"

चक्रधर ने बहुत देर तक सोचा। यह आदमी पागल होने पर भी बातें सोच समझ कर करता है। इसे हाथ से गंवाना नहीं चाहिए। घर ही पर रखना होगा, इलाज भी कराना होगा। उम्र भी कुछ ज्यादा नहीं ? ज्यादा से ज्यादा तीस होगी। उसकी इकलौती बेटी की शादी हो गई थी। लेकिन चन्दना तो है। काशीनाथ के साथ उसकी शादी कर देने से उस अनाथ लड़की की जिन्दगी अच्छे ढर्रे से लग जाएगी। पांच लाख रुपयों का इनवेस्टमेन्ट क्या कोई मामूली बात है ? यह आदमी अगर तीन साल पहले आता तो चक्रधर अपनी बेटी के साथ इसकी शादी कर देता।

चक्रधर ने कहा--"सुनो जी, काशीनाथ। तुम मेरे पूर्व पुरुष होने पर भी फिलहाल मुझ से बहुत छोटे हो। तुम्हारी उम्र शायद तीस होगी और मेरी साठ। तुम्हारा इतिहास मैंने सुना, पर किसी और से न बताना। वर्ना लोग तुम्हें पागल ठहराएंगे। तुम्हारा परिचय यों होगा--तुम मेरे रिश्तेदार हो, बचपन में देहात से एक सन्यासी के साथ भाग गए थे, अब सन्यास से जी ऊब जाने से मेरे आश्रय में आए हो। तुम मुझे चाचा जी कहकर पुकारोगे और मैं तुम्हें काशी बेटा कहकर पुकारूंगा। अपनी जायदाद के बारे में खबरदार कभी किसी से कुछ न कहना। समझे ?"

काशीनाथ ने कहा--"हां समझा। लेकिन तुम्हारे घर पर मैं कैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहूं ? देखता हूं कि तुम म्लच्छ बन गए हो । प्याज की बू आ रही है । बगल की जमीन पर मुर्गे चर रहे हैं । एक प्रौढ़ा को देखा कि चप्पल पहने चटर-पटर जीने से उतर आई, सिर पर घूंघट नहीं । मेरी ओर घूर कर देख रही थी ।"

"वे तुम्हारी चाची जी हैं ।"

"ओह, अच्छा ठीक है । लेकिन औरत होकर जूता क्यों पहनती है ? घोर कलजुग है !"

"ठीक कहा है बेटा, घोर कलजुग है । इसी कलजुग के साथ तुम्हें कदम रखकर चलना पड़ेगा ।"

"तुम शायद मुसलमान बावर्ची का पकाया खाना खाते हो ? मैं मर भी जाऊं पर वह खा नहीं सकता ।"

"नहीं, नहीं, बावर्ची तो है, पर मुसलमान नहीं । हरिजन है, जात से चमार है ।"

"राधामाधव कहो ! मैं अपने हाथ से पकाकर खाऊंगा । आज सिर्फ़ फलाहार करूंगा । मेरे रहने का अलग बन्दोबस्त कर दो ।"

"अच्छी बात, मेरे मकान से नीचे की मंजिल के पूरब वाले हिस्से में तुम रहोगे । एकदम अलग और एकान्त ।"

चक्रधर ने पुकारा--"चन्दना ओ चन्दना ।"

एक लड़की कमरे में आई । चक्रधर ने कहा--"यह मेरी भतीजी है । प्रणाम कर, यह तेरा काशी भैया है, मेरे दूर रिश्ते का भतीजा है ।"

चन्दना पैर छूकर चली गई । काशीनाथ बोले--"तुम लोगों का हालचाल कुछ समझ में नहीं आ रहा है । लड़की के मांग में सेंदुर क्यों नहीं है ? इसका भाग्य फूट चुका है ?"

चक्रधर ने कहा--"नहीं, नहीं उसकी तो अभी शादी ही नहीं हुई, बड़ी अच्छी लड़की है । इसी साल बी० ए० पास किया है ।"

"दुर्गा ! दुर्गा ! इतनी बड़ी सयानी लड़की ! और अभी तक शादी नहीं हुई ! इसे क्या मेम बना रहे हो ?"

"क्यों काशीनाथ, शादी-वादी करने का भी कुछ इरादा है तुम्हारा ?"

"है क्यों नहीं । एक अच्छा-सा नाई लगा दो इस काम के लिए ।"

"मेरी भतीजी इस चन्दना से शादी कर लो न ?"

"तुम्हें क्या उन्माद हो गया है चक्रधर ? एक गोत्र में कैसे व्याह होगा ? इसके अलावा ऐसी वाहियात पत्नी से मेरी नहीं पटेगी । अच्छे वंश की लज्जाशीला, निष्ठावती लड़की चाहिए । पढ़ी-लिखी होने की जरूरत नहीं । सिर्फ खाना-पकाना जानेगी, घर गृहस्थी के काम में पटु होगी, व्रतों का पालन करेगी । तुम्हारी पत्नी और भतीजी की तरह बेआबरू नहीं होगी ।"

"तुमने भी मुसीबत खड़ी कर दी काशीनाथ । तुम जैसी दुल्हन चाहते हो, वैसी लड़की आजकल शरीफ़ घरानों में मिलना मुश्किल है । बहरहाल तुम्हारी पसन्द की दुल्हन ढूंढने की मैं भरसक कोशिश करूंगा । अब तुम नहा धो, सन्ध्या-जप कर भोजन आदि करो ।"

चक्रधर मुकर्जी सोचने लगे, आदमी पागल है, लेकिन बातचीत कुछ बेतरतीब भी नहीं है । उस जमाने का दिल-दिमाग होने पर भी बुद्धिमान कहा जा सकता है । अजीब मामला है ! काशीनाथ को इतने रुपए कहां से मिले ? जो कुछ भी हो, इसे रोक रखना है । इसकी जायदाद अपन कब्जे में ही रहे इसका भी इन्तजाम करना है । क्या अच्छा होता, अगर उसकी शादी चन्दना के साथ की जा सकती । तब यह बिलकुल मेरी मुट्ठी में आ जाता । उसकी पसन्द की दुल्हन भी कहां से लाऊं ? पुराने खयालात की भक्तिमति लड़की होगी, पागल पति को भी संभालगी और मेरे बस में भी रहेगी । अचानक चक्रधर के दिमाग में एक बात दौड़ गई । गयेश्वरी के साथ भी तो शादी की जा सकती है । वह भी तो बड़ी भक्तिन है, बड़ी बुद्धिमती भी है, मेरी भी इज्जत करती है और सभी मामलों में मुझसे सलाह-मशविरा लेती है । रुपए के लालच में शायद वह काशीनाथ से शादी करने को तैयार हो जाए । लेकिन दोनों में उम्र का फर्क बहुत ज्यादा है ।

गयेश्वरी रिश्ते में चक्रधर की भांजी है । चचेरी बहन की बेटी है । उम्र पचास होने पर भी वह अभी तक कुमारी ही है । मां-बाप बचपन में ही गुजर गए जिसके कारण चक्रधर ही उसका अभिभावक बना था । लेकिन उन्हें भांजी की देखरेख ज्यादा दिन तक न करनी पड़ी । गयेश्वरी असामान्य महिला थी । थोड़ी पढ़ाई-लिखाई और विभिन्न तरह का कलाकार्य सीख कर ही वह स्वावलम्बिनी बन गई । उनकी नारीवस्त्रशाला काफी मुनाफे का कारोबार है । पांच शरणार्थी औरतें और दो दर्जी गयेश्वरी की दुकान पर काम करते हैं । सिलाई की तीन मशीनें चलती हैं और दुकान पर खरीदारों की खासी भीड़ रहती है । चक्रधर ने कई बार भांजी की शादी करने की कोशिश की थी, पर गयेश्वरी ने बताया कि यह सब न होगा । उसने कहा कि मैंने बड़ी मुश्किल से इस कारोबार को अपने पैरों पर खड़ा किया है, अब एक बाहर का मर्द आकर मुझ पर हुकमत चलाएगा, यह मुझ से बरदाश्त न होगा । चक्रधर ने तय किया कि बड़ी सावधानी से यह बात पात्र और पात्री से छेड़नी होगी ।

दैव संयोग से चार दिन बाद ही काशीनाथ और गयेश्वरी में एक संघर्ष हो गया ।

चक्रधर के मकान के इकमंजिले के पूर्वी हिस्से में काशीनाथ स्वतन्त्र रूप से रहने लग । वह अपने हाथ से पका कर खाते और चक्रधर का एक पुराना नौकर उनका थोड़ा-बहुत काम-काज कर देता । एक रोज सबेरे प्रातः कृत्य से निबट कर काशीनाथ बेहद नाराज होकर सोच रहे थे कि यह तो घोर कलजुग है--बारह आना सेर बैंगन ! सभी चीजों की कीमत आसमान से बातें करती दीखती हैं । क्या देश में दुर्भिक्ष आ गया है ? दो कच्चे केले खरीदने के इरादे से काशीनाथ भीड़ में सावधानी से आगे बढ़ रहे थे कि अचानक थप्प से वह गयेश्वरी से जा टकराए ।

काशीनाथ का कसूर नहीं था । वे दुबले नाटे व्यक्ति थे और पीछे की भीड़ का धक्का संभालने में नाकाम होकर सामने गिर पड़ रहे थे । ठीक उसी समय गयेश्वरी उल्टी ओर से आ रही थी । वह स्थूलकाया थी, इसलिए गिरते हुए काशीनाथ का धक्का उन्हीं क देह से जा टकराया । गयेश्वरी गिरी नहीं पर बेहद खफा होकर बोली "मर रे छोकरे ! नशा भंग करता है क्या ? शरीफ़ घराने की औरतों पर लड़खड़ा कर गिरता है ! तेरी इतनी हिम्मत ?"

काशीनाथ ने कहा--"क्षमा कीजिए पुरखिन जी ! भीड़ के दबाव से ऐसा हो गया । मैंने जानबूझकर कोई अपराध नहीं किया ।"

गयश्वरी ने कहा--"एक सौ बार तूने अपराध किया ! अभागा ! बेहया ! बदजात !"

लोगों के एक दल ने गयेश्वरी का पक्ष लिया और दूसरे ने काशीनाथ का । दोनों दलों में भयानक झगड़ा शरू हो गया । बहुत से लोग गयेश्वरी को पहचानते थ । एक शिखाधारी पुरोहित बाबा ने कहा--"ओ, गया दीदी, यह मामला कोई मामूली नहीं । तुम्हें प्रायश्चित्त करना पड़ेगा ।"

चार-पांच जने चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगे--"जरूर ! जरूर ! तुम कौन हो जी ? देहात से आए हो क्या ? धक्का लगाने का कोई और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असामी न मिला तुम्हें ? गयेश्वरी देवी पर तुम किस अक्किल से ढुलक पड़े ? अभी पचास रुपया निकालो प्रायश्चित्त का खर्च, नहीं तो तुम्हारा छुटकारा नहीं ।"

ऐसे ही समय में चक्रधर का एक नौकर वहां आ गया, जिससे काशीनाथ बच गए । पुरोहितजी ने कहा--"तो ठीक ही है, जब गया दीदी और यह काशीनाथ छोकरा दोनों ही चक्रधर बाबू के अपने लोग हैं, तो वही इसका निर्णय करेंगे ।"

चक्रधर मुकर्जी भली भांति यह समझते हैं कि गर्म हालत में ही चोट करने से लोहा जुड़ जाता है । उन्होंने समय नष्ट न कर पहले ही अपनी भांजी के सामने यह प्रस्ताव रखा । गयेश्वरी ने आश्चर्य करते हुए कहा--"तुम्हारा दिमाग कुछ पलट गया है क्या मामा ? चक्रधर ने ब्योरे से बताया कि आदमी झक्की होने पर भी भलामानस है, जल्द पालतू हो जाएगा । उसके पास काफी रुपए भी हैं । उम्र कम हुई तो क्या ? आजकल ऐसी बातों की कोई परवाह नहीं करता ।"

गयेश्वरी बड़ी बुद्धिमती औरत थी, मामा का प्रस्ताव आसानी से ही उसकी समझ में आ गया । अन्त में उसने कहा--"वह छोकरा अगर राजी हो जाए तो मुझे कोई एतराज नहीं । लोग क्या कहेंगे इसकी मैं परवाह नहीं करती ।"

काशीनाथ इतनी आसानी से काबू में नहीं आए । बोले--"क्या पागल की तरह अंटशंट बक रहे हो चक्रधर चाचा ! गयेश्वरी की उम्र तो मेरी उम्र से करीब दुगुनी है । उस जमाने में कुलीन कन्याओं की शादी इसी ढंग से होती थी लेकिन मैं कोई पेशेवर पाणिग्राही नहीं हूं ।"

चक्रधर ने कहा--"अच्छी तरह से सब ओर सोचकर देखो काशी बेटा । लड़की बड़ी भक्तिमती है । सभी किस्म का व्रत रखती है । यहां आमड़ाषष्टी का व्रत भी रखती है । दर्जी की दुकान अवश्य चलाती है, पर उसकी चालढाल तो तुम्हारी तरह प्राचीन ही है । दुकान तुम्हारे हाथों में ही आएगी । तुम्हारी आमदनी भी बढ़ जाएगी ।"

"लेकिन उम्र में तो जमीन-आसमान का फर्क है ।"

"बहुत ठीक बात है । तुमने अपना जो इतिहास बताया, उसके हिसाब से तुम्हारी उम्र इस वक्त दो सौ पचास से भी ज्यादा है और गयेश्वरी की उम्र तो सिर्फ उनन्चास ही है । तुम्हारी तुलना में तो वह कल की छोकरी ठहरी । और भी समझकर देखो । तुम्हारा शरीर ही जवान है, पर मन तो दो शताब्दि पीछे का है । गयेश्वरी के साथ तुम्हारे मन का मेल आसानी से होगा । एक और बात है । आधुनिक पंडित कहते हैं कि औरतों का पूर्ण यौवन पचास के बाद ही होता है । मर्तबानी केला खाया है न ? पकने पर ही वह मीठा नहीं होता । जिसका छिलका काला पड़ कर सिकुड़ गया है, गूदा नर्म हो गया है, वही परिपक्व मर्तबानी केला अमृत के समान है । औरतें भी ऐसी ही होती हैं ।"

चक्रधर की युक्ति सुनकर काशीनाथ धीरे-धीरे बस में आ गए । फिर भी जरा चिन्तित हो कर बोले --"मैं जब मरा था, तो मेरी चौथी स्त्री रासेश्वरी की उम्र तुम्हारी भांजी गयेश्वरी की ही तरह थी । अब लग रहा है कि रासेश्वरी ही गयेश्वरी बन कर लौट आई है । अच्छी बात । तुम नाई लगा सकते हो ।"

"मैं खुद ही नाई का काम कर रहा हूं । गयेश्वरी के साथ मेरी बात हुई है । वह राजी है । अब सगुन हो जाए तो शादी हो सकती है । आज शाम को तुम उसके घर पर जाकर उससे बातचीत करो ।"

'तुम्हें भी उस मौके पर हाजिर रहना चाहिए चक्र चाचा ।"

"नहीं, नहीं । यह दस्तूर नहीं है । सिर्फ दोनों मिलकर बातें करो ।"

काशीनाथ गयेश्वरी के घर गया तो उसने मुस्कराकर कहा--"क्योंजी छोकरे मैं पसन्द आई तुम्हें ?"

काशीनाथ ने ऊपर-नीचे सिर हिलाकर खामोश सम्मति जाहिर की ।

"सुनते हैं तुम्हारे पास पांच लाख रुपए हैं ? सुनो जी मालिक, शादी होते ही सब रुपए मेरे हाथों में दे देना । तुम जैसे ढीले-ढाले आदमी हो, तुम्हारे हाथों में रुपया रहेगा तो बस हो चुका । लोग सब ठग-ठुग लेंगे । अपने मामा जी तक का मैं विश्वास नहीं करती हूं ।"

काशीनाथ ने कहा--"कोई डर नहीं गयेश्वरी महारानी । मुझे ठग ले ऐसा आदमी सारे हिन्दुस्तान में तो है नहीं । जो इरादा किया है सो बताता हूं, सुनो । औरत जाति के द्वारा दुकानदारी करना कोई ठीक बात नहीं । शादी के बाद तुम्हारी दुकान बेच दूंगा । उसका रुपया और मेरे पास जो रुपए हैं, उससे महाजनी कारोबार शुरू करूंगा । चक्र चाचा ने बताया है कि आजकल के कानूनों से जमींदारी नहीं खरीदी जा सकती । फिर भी तुम्हें कोई अभाव नहीं रहेगा । तुम्हारा समूचा बदन गहनों से ढक दूंगा । यह कलकत्ता असुरों का शहर है । बड़ी भयंकर जगह है । हम लोग राघवपुर गांव में जाकर रहेंगे । घर, बगीचा, तालाब, गोशाला सब बनेगा । एक देवमन्दिर और एक पाठशाला भी बनेगी ।"

गयेश्वरी हाथ हिलाकर तमक पड़ी--"हाय ! हाय ! मर जाऊं ! क्या मनसूबे ही बांध रहे हो । पागल क्या पड़े मिलते हैं ? तुम एक घोर पागल हो । सुनो जी छोकरे, तुम्हारी बीवी होने पर भी मैं तुमसे उम्र में बड़ी हूं । तुम्हारी बुजुर्ग के समान । तुम मेरी निगरानी में रहोगे और मेरी मर्जी के मुताबिक तुम्हें चलना पड़ेगा । अभी से कहे देती हूं ।"

काशीनाथ कुछ देर तक भौंचक बने रहे । उसके बाद तारा ब्रह्ममयी मां ! कहते हुए चले गए ।

सन्ध्याजप के बाद काशीनाथ ने अपनी इष्टदेवी से अपनी हालत का बयान किया--"यह कैसी मुसीबत में फंसा दिया मां ? तुम्हारा भी क्या दोष है ! मैं अपनी दुर्बुद्धी का फल भोग रहा हूं । दुनिया में कलि काल इतना प्रबल हो चुका है, यह मैं सोच भी नहीं पाया था । ब्राह्मण के घर पर बावर्ची खाना पका रहा है, मुर्गियां चर रहीं हैं, बूढ़ी औरतें जूता पहनकर खटर-पटर इधर-उधर दौड़ रही हैं, सयानी लड़कियां स्कूल जा रही हैं । छोटी जाति के लोगों की हिम्मत बढ़ गई है, ब्राह्मण की परवाह कोई नहीं करता, उसके सामने खड़े होकर लोग बीड़ी पीते हैं । वह गयेश्वरी बड़ी भयंकर जबर्दस्त औरत है । उससे शादी करने पर मेरे नरकवास में कुछ भी अन्तर नहीं रहेगा । चक्रधर एक पापी कुलांगार है । मेरा वंशधर वह हो ही नहीं सकता । यमराज ने जरूर गलती से मुझे उसके पास भेज दिया है । काली कैवल्यदायिनी ! मुझे यहां से छुटकारा पाने का रास्ता बताओ मां ?"

रात के अन्तिम प्रहर में काशीनाथ ने सपना देखा कि उनकी इष्टदेवी आविर्भूत होकर कह रही है--"खिसक पड़ो काशीनाथ ।"

तभी काशीनाथ की नींद टूट गई । वे समझ गए कि इस पापमय संसार में लौट आने में उन से एक बहुत बड़ी बवकूफी हो गई है । मन स्थिर कर काशीनाथ ने तभी यम की दी हुई टिकिया 'निष्क्रान्त वटिका' निगल डाली और फौरन यमलोक को प्रयाण कर गए ।

(शेष पृष्ठ १४ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला के प्राचीन एवं नवीन सम्प्रदाय

रविशंकर रावल

मनुष्य के व्यवहार में कला की प्रवृत्ति का उद्भव केवल आधुनिक काल अथवा कुछ शताब्दियों मात्र का नहीं है। विद्वानों ने मानव जाति का अस्तित्व एक लाख वर्षों से अधिक पुरातन स्वीकार किया है। इसी प्रकार प्राचीन इतिहास के संशोधकों ने भी यही सिद्ध किया है कि मानव जाति के मूल संस्कार, कृषि, समाज और विचार शक्ति का विकास अब से पचास हजार वर्ष पूर्व हो चुका था। संस्कार के साथ ही जीवन की अन्य रसमय प्रवृत्तियों का भी उदय हुआ जान पड़ता है। उदरपूर्ति के लिए शिकार एवं कृषि आवश्यक साधन थे परन्तु इनके साथ ही समाज में, क्रीड़ाओं, नृत्य, शरीर शृंगार और उत्सवों का भी स्थान था।

भिन्न-भिन्न युगों में कला की प्रेरक शक्तियां पृथक-पृथक जान पड़ती हैं। चित्र और प्रतिमाओं का निर्माण होता है। परन्तु उनमें से प्रत्येक में एक से अधिक भावनाएं और हेतु समाए रहते हैं। इस प्रकार की कला-कृतियों का जो अपूर्व भण्डार पुरातन काल से हमें उत्तराधिकार में मिला है, उसकी पूरी जानकारी, और आदर के लिए, हमें प्रत्येक युग के साधन, वातावरण, बुद्धि भावनाओं और भूमि को समुचित रूप से ध्यान में रखना आवश्यक है।

कला या तो भावना सृष्टि की स्वतन्त्र ऊर्मि है, अथवा भौतिक तृप्ति प्राप्त करने की साधन मात्र। अनेक बार इन दोनों प्रकारों एवं विचारों के ताने-बाने से भी अनेक श्रेष्ठतम कृतियों का निर्माण हुआ है। इतना तो निश्चित है कि कलाकृति के मुख्य आकर्षण में आल्हादक तत्व की भांति उनका भावना दर्शन ही आराध्य बनेगा, और इसी मापदण्ड से जगत के पट पर निर्मित कृतियों को कला के इतिहास में आदर दिया जाता है। यह कला इतनी विपुल और समृद्ध है कि पिछले सौ वर्षों में ही हमें उसकी कीमत समझ में आने लगी है। और आज भी उसका अभ्यास करते समय हमें नित्य नवीन रसानुभव प्राप्त होता है।

मानव ने अपने पाषाण काल और आदिम अवस्था में ही अथवा यों कहिए कि अब से पचास हजार वर्ष पूर्व अपनी अरण्यों की गुफाओं में दीवारों पर अपने तात्कालिक पाषाणी साधन, प्राणियों की चर्बी, रंगीन मिट्टी आदि से जो चित्रांकन किए उनमें से अनेक पृथ्वी के विभिन्न खण्डों से प्राप्त होते हैं।

अफ़्रीका के ऐकेशिया प्रांत में, योरोप में फ़्रांस की अल्टीमारा गुफा में, चीन में और अमेरिका के पेरू प्रदेश में कला के अवशेष, कितने ही कौशल पूर्ण भित्ति-चित्र और विचित्र खिलौने प्राप्त हुए हैं। भारत में होशंगाबाद जिले के अन्तरवर्त्ती प्रदेश में निवास करने वाली बहुत सी जातियों ने भी ऐसे चित्रों की रचना की है।

पेरीनीज़ पर्वतों के कितने ही चित्रों को पचास हजार वर्ष पुराना स्वीकार किया गया है। उनमें भी दो तीन रंगों के प्रयोग हैं। सुदूर पुराण युग में भी मानव दृश्य जगत को चित्रों में प्रतिबिम्बित करने को उत्सुक जान पड़ता था। इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि चित्र रचना और मूर्ति निर्मित करने वाली ऊर्मि और कौशल मनुष्य क स्वाभावगत तत्व हैं।

मिस्र, यूनान, भारत और चीन की संस्कृतियों का बड़ा महत्व है। प्राचीन मिस्र में बड़ी विशाल और महान मूर्तियों की रचना हुई। यहां की प्रजा, व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात भी उसके शरीर का सम्बन्ध आत्मा के साथ अमर करने के लिए, मत देहों की सुरक्षा करने और उनका शृंगार करने में यथेष्ट श्रम करती थी। इतना ही नहीं उनकी कब्रों की दीवारों पर भी मृतात्मा के जीवन की कथा अमर करने के लिए चित्रमालाओं का चित्रण किया जाता था। इनम उच्च सौंदर्य भावना की अपेक्षा निरूपण शक्ति अधिक विकसित हुई है। इन्हीं मिस्र निवासियों को घन आकारों को रेखाबद्ध करने का, चतुर्भुज को सपाट रूप देने आदि का यश प्राप्त है। नेत्र सुन्दर और सहज प्रतीत हों, इन्होंने ऐसे प्रयोगों का भी विकास करके उन्हें सफलतापूर्वक पार उतारा है। उनकी कला, उनके साम्राज्य का गौरव बढ़ाने वाली, धर्म के प्रताप और उसका सिक्का जमा देने वाली एक सेविका है।

मिस्र के निवासी, प्रारम्भ में काले एवं गेरुए रंग का ही प्रयोग करते थे। इसके पश्चात उन्हें पीले और लाल रंग की भी प्राप्ति हुई। जगत के प्राचीन-तम चित्रपटों में भी यही रंग निखर आते हैं। भारत की पुरातन चित्र-रेखाओं में भी यही काला और गेरुआ रंग अधिक व्यवहार में लाया गया है। मिस्र के लम्बे चित्रपटों में रेखा की कथन शक्ति और आकारों की व्यवस्था, दर्शक का ध्यान आकर्षित करती है।

मिस्र की प्रेरणा से ही ग्रीस की कला का मूल संकेत प्राप्त हुआ और उसके पश्चात तो शनैः शनैः वह स्वयं शिल्प और चित्रकला के उच्च और भव्य शिखर पर आरूढ़ हो गया। शायद ही किसी देश के साथ उसके तेज और समृद्धि की तुलना की जा सके। उस युग का कालाकार मानव जाति का सौंदर्य पुरोहित बना था। मनुष्य के अन्तरतम के विचार और भावनाओं का वह एक सच्चा आविष्कारक बन गया था। उसे कवि और तत्वदर्शी दार्शनिक के समान ही आदर प्राप्त था। कला का जो चरम उत्कर्ष ग्रीस में ईसा पूर्व चौथी और पांचवीं शताब्दी में हुआ, वही चीन में शांग काल में, फ़्रांस में चौदहवें लुई के शासन काल में, और भारत में गुप्त और मौर्य सम्राटों के समय में तथा अन्त में बादशाह अकबर एवं शाहजहां के समय में हुआ। कला की इस प्रतिष्ठा का कारण राज्याश्रय ही नहीं वरन सौंदर्य और शाश्वत सत्य की रसानुभूति ही मूल कारण था।

जब बुद्धि स्वतन्त्रता से विहार कर सकती है, रचना और सृजन अखंडित रूप से निरन्तर चलते रहते हैं तभी ऐसा महान सृजन काल आता है।

ग्रीक कला की अधिकांश आकृतियां व्यायाम द्वारा पुष्ट शरीर वाले तरुण एवं स्त्री पात्रों की हैं। इनमें सादे और हलके दोनों प्रकार क स्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। मानव शरीर को विशेष महत्व देकर ग्रीस की कला ने सौंदर्य भावना को विकसित तो किया, और रूप रचना में अत्यन्त आकर्षक आकृतियों की ओर विशेष ध्यान दिया, परन्तु अन्य प्राणी, पक्षी आदि की सृष्टि की ओर से वे ग्रीस के कलाकार उदासीन ही रहे।

इस विषय में एशिया तथा उसके अन्य पूर्व के प्रदेशों में विशेषता दिखाई देती है। यूरोप की कला पर ग्रीक कला का काफी गहरा प्रभाव पड़ा परन्तु उसमें पृथक विभाग बन गए। एक वर्ग कला की सूक्ष्मताओं को विकसित करता और दूसरा वर्ग प्रजाजनों के मनोरंजन के लिए कौशलपूर्ण विविध रंगों वाले चटकीले चित्र का सृजन करता, और उन्हें आश्चर्य चकित करता। ई० २०० से ४०० तक यही दशा चलती रही। पोम्पी के भग्नावशेष राजमहलों की दीवारों के कितने ही चित्र इसके साक्षी हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे ग्रीक कला का प्रभाव एवं प्रेरणा यूरोपीय लोगों को प्राप्त होते गए।

सिकन्दर के जन्म से पूर्व काकेशस के उत्तर में होकर एशिया में चीन तक जाने का एक लम्बा प्रवास मार्ग था। इस समय एशियामाइनर, ईरान, मंगोलिया आदि प्रदेशों में लेखन कला विकसित हो रही थी। चीन की तूलिका में से इस नवीन चित्र संकेत की लिपि की रचना हुई थी। उसमें से सौंदर्यमयी आकाश की सुन्दर सृष्टि करने वाली कला लोग सीख रहे थे।

प्राचीन भारत में बुद्ध के जन्म से पूर्व चित्रों के प्रकार अस्तित्व में थे। मिस्र, सीरिया के सुमेर लोगों और भारत के बीच वाणिज्य एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित थे, इसके प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं। अतः इन देशों में परस्पर कला-कौशल का विनिमय होना भी अधिक सम्भव है।

ईसा से ५,००० वर्ष पूर्व के नगर मोहेनजोदड़ो की खुदाई का काम, उसमें प्राप्त हुई अद्भुत कौशलमयी मूर्तियां, नगर की संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट प्रमाण हैं। पुराण एवं प्राचीन संशोधन के ग्रन्थ, चित्रकला और शिल्पकला के वर्णनों के उल्लेखों से भरे पड़े हैं। परन्तु चित्रकला का नमूना तो अजन्ता में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से प्राप्त होता है। भारत की कला संसार की शेष कलाओं से अनोखी और अपूर्व है। उसका विस्तार अफगानिस्तान से जावा, सुमात्रा तक पहुंचता है। और अनेक विद्वान अमेरिका की मय संस्कृति को भी इसी के अन्तर्गत मानते हैं। इस देश की कला में अन्य देशों, मिस्र, ग्रीस, रोम एवं ईरान की कलाओं की भी छाप पड़ी परन्तु इसने सब का समन्वय कर अपना अनपम व्यक्तित्व अपनी कलाकृतियों में अवतीर्ण किया है। बहुत गहन, और उच्च सीमा तक पहुंची हुई संस्कृति को शुद्ध कला कृतियों के प्रतीक में परिवर्तित करने का गौरव भारत को ही प्राप्त है।

यह ठीक है कि कभी-कभी कला, धर्म अथवा सम्प्रदाय विशेष का वाहन बनती है। परन्तु जहां अन्य देशों में, धर्म के राज्य का अंग होने के कारण कलाकार के लिए राजभक्त होना अनिवार्य था, वहां भारत में धर्म के व्यक्तिगत मसला होने के कारण कलाकार बिना किसी की भावना अथवा विचारों की अधीनता स्वीकार किए ही स्वान्तः सुखाय स्वतन्त्र सृजन करता रहा और इसी कारण वह अपनी कृतियों के रूप विधान में भावना और चिन्तन की एक अनुपम सौंदर्यमयी छटा प्रदर्शित करने में समर्थ हुआ।

अजन्ता की कृतियों के अनेक रूपों में, मद्रास प्रदेश में, श्रीलंका में, तिब्बत में एवं जापान के गुफा मन्दिरों तक में भारतीय कला पहुंची। तिब्बत के हस्तलिखित तालपत्रों और मठों के चित्रपटों में उनका कौशल अति सूक्ष्मता से प्रदर्शित हुआ है।

परन्तु आठवीं शताब्दी के पश्चात यह कला विलुप्त होती-सी जान पड़ती है। अजन्ता के कलाकारों ने जिस अलौकिक शक्ति से स्वरूप और क्रियाओं को हस्तगत किया वैसा फिर इतिहास में देखने को नहीं मिला। तीसरी शताब्दी से आठवीं तक कला के इन उपासकों ने अत्यन्त विशाल भित्ति के ऊपर रेखा और रूप का जो चमत्कार प्रदर्शित किया उसमें मानो चेतन का उल्लास, उच्छ्वास और नित्य नवीन रंगों की स्फूर्ति का समावेश-सा कर दिया। ऐसा सृजन अब कहां? आठवीं शताब्दी के पश्चात यह कला न जाने कहां विलुप्त हो गई। परन्तु पश्चिम भारत में एक सादी लोक कला ने जन्म लिया जिसका स्वरूप बहुत सारे जैन चित्रों में, तथा प्राचीन लोक साहित्य में अंकित हुआ। जैन कल्प सूत्र अथवा वारसा सूत्र, वसंत विलास, बाल गोपाल स्मृति में इसके ही दृष्टांत मिलते हैं। इस समय में कला का स्थान स्वयं स्फूर्तिमान देवी जैसा नहीं वरन परोपजीवी बन गया। धर्म ग्रन्थों में महत्वपूर्ण भाग की भांति इसका प्रयोग न होकर केवल अलंकारिक पूर्ति के लिए हुआ। फिर भी उनकी रूप रचना के पीछे किसी कुशल कलाकार की निपुण तूलिका की कला का परिचय मिल जाया करता है। यही कला, आगे चल कर राजपूत शैली के रंगीन चित्र प्रसंगों की पूर्व पीढ़ी बनी। चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में रूप और रंगों के उठाव में इसी रसमय लोक जीवन का प्रतिबिम्ब-सा झलकता है।

सोलहवीं सदी में कलारसिक मुगल शहंशाहों ने राजपूत राजवंशों के साथ रक्त सम्बन्ध भी स्थापित किए। इसके साथ ही उन्होंने ईरानी सुर्खी भरी कलम और भारत की कल्पनामयी मुगल कला का संगम भी करा दिया।

इन बादशाहों ने ईरान और भारत क चित्रकारों को यथेष्ट सम्मान के साथ अपने दरबारों में स्थान दिया। इस प्रकार दिल्ली कला का महान केन्द्र बनता गया। 'आइन-ए-अकबरी' में गुजरात प्रदेश के ग्यारह चित्रकारों के नामों का उल्लेख प्राप्त होता है।

राजस्थानी कला की यह महान विजय थी—दिल्ली, आगरा, जयपुर, जोधपुर, बुंदेल, बसोली, गढ़वाल और टिहरी इसके महान केन्द्र थे।

एशिया के चित्रकारों की एक विशेषता यह भी रही है कि उन्होंने कला के स्वरूपों को जटिल न बनाकर उन्हें साधारण जनता के लिए भी रुचिकर, स्पष्ट और विविध रंगों वाला बनाया और चित्रों में काव्य रसिकता तथा भावुकता का सृजन किया। जीवन के तत्वों के प्रति जागरूक और सच्चे रहकर उन्होंने प्रकृति, पदार्थ और प्राणियों का चित्रण किया।

अट्ठारहवीं सदी तक भारतीय कला का यह समादर, राज्यों में, मन्दिरों में और लोक जीवन में समान रूप से होता रहा। उस समय अनेक कुशल कलाविद विद्यमान थे। और कला के समीक्षकों की भी कमी न थी। अट्ठारहवीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत में आई। उस समय उनके साथ लाए हुए यूरोपियन चित्र भी देश में दिखाई दिए। कम्पनी सरकार के उच्च अधिकारियों को प्रसन्न करने के लिए पटना आदि के कलाकारों ने छाया और प्रकाश के चित्र बनाने प्रारम्भ कर दिए। इस प्रकार प्राचीन परम्परा में इस वर्णसंकरता का प्रवेश हुआ। यदि यह परिवर्तन उच्च, परिमार्जित रुचि के यूरोपियन अथवा भारतीयों द्वारा किया जाता तो उससे मुगल शैली जैसा सुन्दर परिणाम प्राप्त होता। परन्तु भारत की रूढ़िग्रस्त प्रजा यूरोपीय कला में प्रकृति का सम्पर्क साध सकने में असफल रही यद्यपि उसके अनुकरण के लिए वह सचेष्ट रही। धीरे-धीरे यही हठवादिता बढ़ने लगी और यूरोपीय कला का मान व प्रभाव दिनों दिन बढ़ने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उधर यूरोप के कला जगत में भी लगभग एक शताब्दी से विद्रोह सा चल रहा था। पन्द्रहवीं सदी में ग्रीस की उत्तराधिकारिणी कला में भी नवीन परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। दृष्टि और छाया प्रकाश में एकरूपता लाने का प्रयत्न प्रारम्भ हुआ। आइल पेंटिंग शुरू हुआ, और फ्लोरेंस, वेनिस और रोम के धनिक वर्ग ने उसे प्रबल आश्रय दिया। लियोनार्दो, राफेल, माइकेल एन्जिलो आदि महारथी चित्रकारों ने अपनी भव्य कृतियों से प्राचीन ग्रीस और रोम में प्रतिस्पर्द्धा सी उत्पन्न कर दी। एकरूपता लाने वाली प्रबल शक्ति के साथ ही साथ उन्होंने धर्म की तेजस्विता और दिव्यता स्थापित करने वाले चित्र तथा प्रतिमाओं का सृजन किया इसके पश्चात तो स्पेन, हालैंड, जर्मनी और फ्रांस में कलाकारों की एक बेल सी फैल गई। परन्तु इन सब का ध्यान भावना से दृश्य पदार्थ की वास्तविकता की ओर अधिक था। अट्ठारहवीं सदी के अन्त में इस युग के कतिपय चित्रकार भारत में भी आए। उनके हाथों से यहां के राजे महाराजों और लोक जीवन के कितने ही चित्र अंकित भी हुए। परन्तु इनमें से एक भी भारत की परम्परागत कला का पारखी न निकला।

त्रिवेन्द्रम के राज दरबार में भी एक ऐसा ही चित्रकार आया। उस समय के तरुण राजा रवि वर्मा देवी देवताओं का सुन्दर चित्रण करते थे। फिर उन्हें पाश्चात्य कला ने अपनी ओर विशेषतः आकर्षित किया। परन्तु उन्होंने इस विषय की कोई शास्त्रीय शिक्षा ग्रहण न करके प्रत्यक्ष मनुष्य को देखकर चित्र बनाए। और एक यशस्वी कलाकार की भांति उनका नाम प्रसिद्ध हो गया।

कुछ समय पश्चात बम्बई के कुछ सेठ लोगों ने उनके नाम पर राजा रवि वर्मा प्रेस भी स्थापित किया। रवि वर्मा के चित्र बड़े लोकप्रिय हुए और समग्र भारत में उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा गया। इस कलाकार की सुन्दरतम कृतियां मैसूर, बड़ौदा एवं त्रिवेन्द्रम के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार अपने इलाकों में कलाशालाएं स्थापित कर इंगलैंड की पद्धति पर शिक्षा देने लगी। इससे भारतीय कला को एक और धक्का लगा और उसके रहे-सहे उपासक भी विलुप्त होने लगे। फोटोग्राफी भी इसकी प्रबल प्रतिद्वन्द्विनी सिद्ध हुई और भारतवर्ष की विलुप्त होती हुई कला के पुनर्जीवन के लिए आवाज उठाने वाला कोई न रहा।

यह स्थिति १९वीं शताब्दी तक रही। अट्ठारहवीं शताब्दी में फ्रांस की चित्र कला उभर कर सामने आई। धर्म की गम्भीरता, पात्रों की राजसी बैठकें, और गहरे कत्थई रंग का चित्रण, इन सब से नवीन रंग लहरी का आयोजन करने के लिए डेविड से कोरोट तक सभी कलाकारों ने विद्रोह किया और वे प्राकृतिक दृश्य जगत की ओर अधिक ध्यान देने लगे। उनका प्रणेता कोरोट था जिसने अपने चित्रों में अकाश के तेज का प्रथम बार आवाहन किया। फ्रेंच कला सत्रहवीं सदी से विकसित हो रही थी, परन्तु लुई चौदहवें के शासन काल में उसने राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर लिया। वाटू, वाउचर, फेगोके आदि कलाकारों ने अपने विविध रंग रसमय चित्रों में अनोखी कार्यकुशलता दिखाकर प्रसिद्धि प्राप्त की। पीसारो, मोने और रेनो आदि उस्ताद एक ही श्रेणी के कलाविद थे।

इसी समय कैमरे के आविष्कार के कारण चित्र कला का विशाल क्षेत्र उसके अधिकार से निकलता चला गया। अतः कला के उपासकों को एक नवीन मार्ग ग्रहण करना पड़ा। उन्होंने रंग की विविध लीलाओं की साधना और उपासना बढ़ा दी। चित्रों में केवल छाया अथवा काला रंग ही नहीं होता परन्तु शनैः-शनैः थोड़े प्रमाण में रंग के ही बिन्दु एक दूसरे पर प्रभाव डाल कर रंग को उठावदार बनाते हैं। इसी सिद्धांत पर शुद्ध रंगों को मिलाकर प्रयोग हुए। इस समय विचार और कल्पना स्वतन्त्र बन गए थे और प्राचीन तथा मध्यकालीन प्रणाली का अनुकरण बन गया था कला में महापातक।

महान स्वार्पण कर और संकटों का सामना कर इन कलाकारों ने अपनी सिद्धि प्राप्त की। सीज़ान, गोगां, वान गो आदि के चित्र रंग प्रयोग और ऊर्मि प्रभाव के अनोखे दृष्टांत हैं। इन इम्प्रेशनिस्ट कलाकारों ने अब तक की प्राचीन दीवारों को नष्ट कर दिया और नवीन विचार, नई धुन और नई पृष्ठभूमि आदि की बाढ़-सी आ गई। इम्प्रेशनिस्ट, पोस्ट इम्प्रेशनिस्ट, क्युबिस्ट, रियलिस्ट और सरियलिस्ट जैसे अनेक वर्गों का प्रारम्भ हुआ। परन्तु यह समस्त प्राचीन रूढ़ियों से ऊबे हुए, असन्तोषी, प्रयोगी, साहस वीरों के समुदाय थे। आज कल यह सभी माडर्निस्ट अथवा अल्ट्रा माडर्निस्ट के नाम से पुकारे जाते हैं।

१९१८ के यूरोपीय संग्राम के पश्चात जनता को कलाकारों की प्रतिभा की परख होने लगी। उनकी कृतियों और विचारों का प्रभाव भी उस समाज पर पड़ने लगा। मातीस के देहान्त के बाद आज इस दल का नायक पिकासो है। उसके सहयोगी ब्राक, खोला, उब और तार की विविध रचनाओं में कला तंतु प्राप्त होते हैं। हिन्दुस्तान में भी १९०१ में कलकत्ता में कला की प्रथम नव जागृति का प्रभाव उदित हुआ। कलकत्ते की चित्रशाला के अध्यक्ष श्री हैवेल ने अनुभव किया कि भारत की भूमि पर ऐसी कला पद्धति को लाकर, जिसका विकास यहां असम्भव है, भारतीय प्रजा की सर्जन शक्ति पर भी कुठाराघात किया जा रहा है।

प्रत्येक कला परिपाटी, लोक जीवन की गहन अनुभूति और जनरुचि में से जन्म ग्रहण करती है। इस नवीन पद्धति का हजारों वर्ष पुरानी भारतीय संस्कृति के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा था। इसी समय श्रीलंका के डा० आनन्दकुमार स्वामी ने भी इस ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने कहा कि "यूरोपीय कला आलोचक प्राचीन, भारतीय संस्कृति को बिना पहचाने ही उसकी आलोचना कर रहे हैं।" कला और साहित्य के वास्तविक स्वरूप की खोज करने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि संसार में उत्तम कहे जाने वाले कला तत्व भारतीय ही हैं। उन्होंने भारत की मध्यकालीन संस्कृति पर लेख लिखे और प्रदर्शनियों की योजनाएं कीं।

मि० हैवेल को भी इस प्रकार एक सहधर्मी का आधार मिला। उन्होंने भी भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने के पश्चात कलकत्ता की शाला में भारतीय चित्र कला के लिए पृथक विभाग श्री अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के आचार्यत्व में प्रारम्भ किया। श्री ठाकुर स्वयं एक सुसंस्कृत, और सुशिक्षित सज्जन थे जो भारतीयता के पक्के हिमायती थे। उनकी प्रतिभा के सान्निध्य से कुछ तेजस्वी तरुण कालाकार शिक्षित हुए जिनके कारण बंगाल चित्र शैली प्रसिद्ध हो गई।

वास्तव में यह शैली, राजपूत, मुगल, अजन्ता, चीन और जापान की कलाओं का समन्वय मात्र थी।

बम्बई में सन् १९१८ तक इस नवीन कला पद्धति पर ध्यान देने अथवा उसका समादर करने के लिए कोई तैयार न था। परन्तु कैप्टेन सोलोमन के प्रिंसिपल होते ही उन्होंने तुरन्त भारतीय चित्रकला की योग्य परिपाटी के लिए अजन्ता को गुरु स्थान दे दिया। यद्यपि उसके विकास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए योग्य वातावरण तथा शिक्षक-मण्डल उपलब्ध नहीं हुआ। फिर भी आज भारतीय कला के लिए देश में एक नवीन लहर और सद्भाव जागृत हो चुके हैं। परन्तु इनका चाहे कुछ भी परिणाम हो, उससे पूर्व नवागत कलाध्यक्ष मि० जीरार्डे ने व्यावहारिक कला और यूरोप की आधुनिक कला की शिक्षा विद्यार्थियों को दी। उसके प्रयोग कर्त्ताओं का भी एक दल अस्तित्व में आ गया है।

बंगाल चित्र शैली में श्री नन्दलाल बोस, असित कुमार हलदार, देवी प्रसाद राय चौधरी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। परन्तु १९१८ के पश्चात के वर्षों में इस दल में भी कुछ क्रांति की छाया दीख पड़ती है। प्रत्यक्ष जीवन से, रामायण, महाभारत और भागवत के चित्र प्रयोगों से जनता को सतत प्रेरणा एवं उत्साह नहीं मिल सका। अतः यामिनी राय ने पुरातन मन्दिरों के चित्रपटों से प्रेरणा लेकर अत्यन्त सादा किन्तु उठावदार रंगों और जोरदार रेखाओं से चित्र बनाए और इस प्रकार उन्होंने इस दिशा में एक नया कदम उठाने का साहस किया।

लाहौर की चित्रलेखा स्वर्गीया श्रीमती अमृता शेरगिल की कला में भारतीय और पाश्चात्य कलाओं का अद्भुत सम्मिश्रण है। कलकत्ता में अभिनव कलाकार-मण्डल यूरोप के प्रत्येक कला सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करके चित्र प्रदर्शनियों की योजना करता है। इनमें मि० गोपाल घोष अधिक प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। बम्बई में मि० चावडा, मि० हेबर, मि० रेड्डी आदि क्रांति के पथ पर अग्रगामी दिखाई देते हैं। वान गो और पिकासो उनके आदर्श बने हैं।

चीन एवं जापान की कला समीक्षकों की नजरों में बहुत चढ़ रही है। और वह अधिक गहन तथा अनोखी सिद्ध भी हुई है। लगभग तीन सौ वर्षों से चीन का कला प्रवाह अखण्डित रूप से प्रवाहित है। लिखने की तूलिका जब चित्रण के व्यवहार में लाई जाए तो उसके चित्रों में एक नवीन कंपन और लहर सी जान पड़ती है। इस कला में काली स्याही हवा का रूप धारण करती है। और उससे ही कठिन पाषाण एवं पर्वत श्रेणियों का भी सृजन हो सकता है।

फूल की सुकुमारिता अथवा हवा के झंकोरे में लहराते एक नन्हे से तिनके का चित्रण कलाकार को एक गहन रसानुभूति का अनुभव कराता है। उनकी तूलिका अपनी कला में इतनी दक्ष है कि एक साधारण कीट से लेकर विशालकाय मगर की रचना भी उसी से हो सकती है। संसार में इनकी कला की प्रतिद्वन्द्विता असम्भव है।

जापान, चीन की संस्कृति के अध्ययन के साथ ही साथ वहां की कला को भी हस्तगत कर आज इस दिशा में महान सिद्धि और प्रवीणता की उच्च सीमा तक पहुंच चुका है।

शताब्दियों पूर्व से भी उन्होंने कला के सिद्धांत और परीक्षण के शास्त्र की रचना की है। जगत उस कला की गहनता को जानने के लिए प्रतीक्षा कर कह रहा है और उसकी शिष्टता को स्वीकार करता है।

भारतवर्ष की कला में भी प्रबल भावनाओं का प्रतिनिधित्व होगा। समर्पणों और आदर्शों का परदा शीघ्र ही उठेगा, ऐसी आशा है। इसके लिए समग्र राष्ट्र में बड़े-बड़े कला केन्द्र स्थापित करने पड़ेंगे। समर्थ कला गुरुओं को खोज खोज-कर उन्हें प्रतिष्ठित करना होगा। और आवश्यकता पड़े तो विश्व के अन्य समर्थ कला-स्वामियों का भी परामर्श और सम्पर्क साधना पड़ेगा। लोक जीवन में से ही जनता के आन्दोलन की लहरें उठेंगी, कलाकार के चित्र पर जो चढ़ सके ऐसा साहित्य सृजन, तथा नवीनतम शिक्षण प्रणाली की स्थापना करनी पड़ेगी। तभी भारत, अमेरिका और रूस जैसे प्रगतिशाली देशों की जनता के साथ संस्कृति परिषद् में अपना सुयोग्य स्थान प्राप्त कर सकेगा।

अनुवादक : जगदीशचन्द्र चतुर्वेदी

काशीनाथ का पुनर्जन्म---(पृष्ठ १० का शेषांश)

सबेरे काशीनाथ की परीक्षा कर डाक्टर ने कहा, थ्रोम्बोसिस ! इतनी कम उम्र में प्रायः यह नहीं होता। लेकिन पागलों को ऐसा हो भी जाता है।"

चक्रधर तभी काशीनाथ के जनेऊ से चाबी लेने दौड़े, पर वह मिली नहीं। झटपट बेग पर कब्जा करने दौड़े, पर वह भी ढूंढे न मिला। अवश्य ही गयेश्वरी ने धोखा देकर उसे हथिया लिया होगा, यह सोचकर वह भांजी के घर दौड़े। दोनों में जोरदार झगड़ा हुआ पर बेग न मिला। काशीनाथ की मृत्यु के साथ-साथ उसकी यमप्रदत्त धन सम्पदा भी यम-सरकार में जब्त हो गई थी।

अनुवादक---प्रबोधकुमार मजूमदार

प्रव्रज्या तु वृथाचारात् राजादण्डेन वारयेत्।
धर्मोह्यधर्मोपहतः शास्तारं हन्त्युपेक्षतः॥

कोटिल्य अर्थशास्त्र, आधिकरण ३, अध्याय १६।

"सन्यास लेने या साधु बन जाने की प्रथा का जब दुरुपयोग होने लगे तो सरकार को चाहिए कि वह कानून बना कर उसे बन्द कर दे। जब अच्छाई पर बुराई छा जाती है और सरकार उसकी उपेक्षा करती है, तो वह बुराई सरकार को भी खा जाती है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महादेवी वर्मा

भगवतीचरण वर्मा

श्रीमती महादेवी वर्मा को वर्तमान युग के आलोचकों ने मीरा के समकक्ष रख कर महादेवी वर्मा के साथ अन्याय किया है, मेरा कुछ ऐसा मत है। भक्ति, भावना और तन्मयता में बहुत सम्भव है मीरा के साथ महादेवी जी की तुलना महादेवी जी के लिए गौरव की बात मानी जाए, पर जहाँ तक कला की उत्कृष्टता का प्रश्न है, महादेवी जी बहुत अधिक समर्थ और कुशल कलाकार हैं।

वर्तमान हिन्दी कविता में महादेवी वर्मा का एक विशिष्ट स्थान है। भावना की कोमलता और शब्द-संगीत में महादेवी वर्मा वर्तमान हिन्दी कविता में प्रेरणा के रूप में स्थित हैं, महादेवी के समकालीन कवियों को, और उनमें कुछ तो ऐसे हैं जो बहुत सम्भव है भविष्य में अमर कलाकारों में अपना स्थान बना सकें, महादेवी वर्मा ने निश्चय रूप से बहुत अधिक प्रभावित किया है।

महादेवी वर्मा पर आज के बौद्धिक युग का प्रभाव कम से कम पड़ा है। दर्शन उनकी कविता का साधन है, साध्य नहीं है। महादेवी वर्मा की कविता शुद्ध रूप से भावनात्मक है, पर उनकी कविता में एक दार्शनिक अभिजात्य है। महादेवी की भावना शान्त, स्निग्ध और स्वच्छ है, उनकी भावना करुणा से ओत-प्रोत है, पर यह करुणा विवशता और असफलता की करुणा नहीं है, यह करुणा जीवन पर महादेवी के दृष्टिकोण की प्रतीक है।

वर्तमान कवियों में महादेवी वर्मा को ही मैं रहस्यवाद की सच्ची प्रतिनिधि के रूप में पाता हूँ। शुद्ध बौद्धिक रहस्यवाद की दुरूहता और जटिलता से उनकी कविता मुक्त है, उनके रहस्यवाद में मन को खटकनेवाली उलझन नहीं है। महादेवी का रहस्यवाद भावनात्मक है, लेकिन यहाँ की भावना की प्रखरता महादेवी के बौद्धिक कलाकार के संसर्ग में आकर लोप हो जाती है, कोमल संगीत के सृजन में ही यह भावना रत हो जाती है। कलाकार के बौद्धिक परिष्कार से युक्त उनका रहस्यवाद जीवन की समस्त सुन्दरता के सृजन में प्रयत्नशील है, उनके रहस्यवाद का प्रथम रस है करुणा। पर महादेवी की करुणा में रुदन नहीं है, हाहाकार नहीं है। वह करुणा भौतिक नहीं है, हमारे जीवन के संघर्षों में और निराशाओं में उस करुणा का स्रोत नहीं है। वह करुणा शान्त और निर्मल जल के प्रवाह की भांति है, वह करुणा नीरव और सहमी हुई वैशाख मास की उदास संध्या की भांति चिन्तन और मनन से युक्त है।

महादेवी में सब से बड़ी बात यह है कि वह अपने वर्तमान से, अपनी परिस्थितियों से और अपनी कुण्ठाओं से ऊपर, बहुत ऊपर उठ सकती हैं। उनका उल्लसित और उन्मुक्त हास, जीवन के प्रति उनकी भावनामय आसक्ति और उनका असीम अनुराग—इन सब के साथ-साथ वे साहित्य में रहस्यवाद की महान साधिका के रूप में आती हैं।

सुश्री महादेवी वर्मा

(२)

महादेवी वर्मा से मेरा परिचय कब हुआ और किन परिस्थितियों में हुआ, यह मुझे स्पष्ट याद नहीं। पर इतना निश्चित है कि मेरे प्रयाग-विश्वविद्यालय में विद्यार्थी-जीवन में, अर्थात सन् १९२८ तक, मुझे महादेवी वर्मा के सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं था। उस समय साहित्य-क्षेत्र म श्री सुमित्रानन्दन पन्त, श्री जयशंकर प्रसाद, श्री सूर्य-कान्त त्रिपाठी निराला का ही स्थान बन पाया था। अन्य कवियों में जिनसे मैं उस समय तक परिचित हो चुका था, श्री बालकृष्ण शर्मा और डाक्टर रामकुमार वर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं। सन् १९३० या १९३१ में सम्भवतः प्रयाग विश्वविद्यालय के किसी कवि सम्मेलन में मैंने महादेवी की कविता प्रथम बार सुनी थी। उस समय उनकी कविता ने मुझे प्रभावित नहीं किया था, यह मैं स्वीकार करता हूँ, और इसके साथ मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि मैं कुछ अपने में ही केन्द्रित, दूसरों के प्रति उदासीन या फिर उपेक्षा के भाव से युक्त, स्वयं कविता के क्षेत्र में अपना स्थान बनाने में प्रयत्नशील था, दूसरों की कविता की प्रशंसा करने अथवा पसन्द करने की प्रवृत्ति उन दिनों मुझ में नहीं थी।

श्रीमती महादेवी वर्मा से मेरा परिचय सन् १९३३ के आस-पास हुआ, जब मैं वकालत छोड़ कर इलाहाबाद में शुद्ध साहित्यकार की हैसियत से बस गया था। यह परिचय सौहार्द और घनिष्टता में बदल गया, और रामकुमार वर्मा तथा महादेवी वर्मा के साथ मैंने प्रयाग में एक साहित्यिक-संस्था की स्थापना की, जिसका नाम तो मैं भूल गया हूँ लेकिन जिसके सम्बन्ध में मुझे इतना याद है कि उसमें प्रयाग के प्रायः सभी उठते हुए साहित्यकार सम्मिलित थे और जो नवीन युग का प्रतिनिधित्व करने वाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम साहित्यिक संस्था थी। और मुझे यह भी याद है कि उस संस्था से प्रेरित हो कर ही डाक्टर रामकुमार वर्मा ने बाद में वृहत्त्रयी के समकक्ष वर्मा-त्रयी की कल्पना की थी। वृहत्त्रयी की कल्पना कुछ प्राध्यापक की श्रेणी के आलोचकों ने प्रसाद, पन्त और निराला को युग-प्रवर्तक मान कर की थी और यह वृहत्त्रयी की धारणा उन दिनों तक व्याप्त हो गई थी। डाक्टर रामकुमार वर्मा स्वयं प्राध्यापक थे और उनका वर्मा-त्रयी की--महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा और भगवती चरण वर्मा--सृष्टि कर डालना स्वयं में एक मौलिक काम था। इस वर्मा-त्रयी को उन्होंने लघु-त्रयी का नाम दिया था। मुझे पता नहीं महादेवी जी को यह लघु-त्रयी का शब्द कैसा लगा, लेकिन मेरी इसी शब्द पर बहुत बड़ी आपत्ति थी।

महादेवी वर्मा से निकट और घनिष्ठ सम्पर्क में आने के मौके मुझे बहुत कम मिले, लेकिन जितना भी मैं समय-समय पर उनके सम्बन्ध में जान सका हूँ उससे मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि श्रीमती वर्मा का जीवन आन्तरिक संघर्षों से युक्त जीवन रहा है, उन्हें परिस्थितियों से लड़ना पड़ा है, और उन्होंने परिस्थितियों पर विजय पाई है। हर जगह उन्हें विरोध मिला है, लेकिन एक शक्तिशाली और निरन्तर कर्म के मार्ग पर रत महादेवी के व्यक्तित्व ने उस विरोध की उपेक्षा करते हुए सफलता प्राप्त की है। महादेवी वर्मा में एक अतीव शक्तिशाली व्यक्तित्व है, उनके पास प्रखर बुद्धि है, और उनमें बहुत बड़ी प्रतिभा है। मुझे तो कभी-कभी ऐसा लगा कि महादेवी वर्मा में दो प्रकार के व्यक्तित्व हैं, एक जो जीवन के संघर्षों में लगातार रत है, और दूसरा जो जीवन की कुरूपताओं से अनायास ही नाता तोड़ कर असीम करुणा और सौन्दर्य का सृजन करता है। महादेवी वर्मा का नाम मैं एक सफल साहित्यिक साधिका के रूप में ले सकता हूँ।

प्रगतिशील आलोचकों ने जिसे 'पलायनवाद' का नाम दिया है, वह इस युग के दो महान कवियों में पूर्ण रूप से पाया जाता है, श्री जयशंकर प्रसाद में और श्रीमती महादेवी वर्मा में। पर प्राचीन शास्त्रकारों के मत के अनुसार कुछ दिनों पहले तक (अब वह नारा निर्बल होकर शक्तिहीन होने लगा है) जो पलायनवाद कहलाता था, वही वास्तविक कला थी और उसी में रस की सृष्टि थी। जो लोग इस भौतिक जगत को ही सत्य और नित्य मानते हैं, वह इस से, अपनी परिस्थितियों और संघर्षों से ऊपर उठ कर स्वप्न और कल्पना के जगत में विचरण करने को अपराध समझते हैं। प्रगतिवाद का दृष्टिकोण यथार्थवाद के रूप में आज की नवीन प्रयोगवादी कविता में प्रगतिवादी की आस्थाओं के विरोध के रूप में परिणत हो गया है क्योंकि मानव की विकृतियाँ और कुण्ठा भी तो उतने ही बड़े सत्य हैं जितने उसके संघर्ष।

श्रीमती महादेवी वर्मा दूसरों पर छा जाने वाला एक सबल व्यक्तित्व है, और इसी व्यक्तित्व में उनकी कला की सफलता है। आखिर कला अपने व्यक्तित्व के आरोपण-तत्व से तो युक्त है ही। इसी सबल और अपने को आरोपित करने वाले व्यक्तित्व के कारण महादेवी वर्मा ने सार्वजनिक जीवन को अपनाया है। उन्होंने दो महत्वपूर्ण संस्थाओं का निर्माण किया--प्रयाग महिला विद्यापीठ और हिन्दी साहित्यकार संसद्। आज के चेतन और विविधता से भरे युग में संस्थाओं में आन्तरिक संघर्ष अनिवार्य होते हैं। इसलिए इन संस्थाओं के वर्तमान रूप और उनकी वर्तमान गतिविधि से महादेवी के सार्वजनिक जीवन की सफलता और असफलता पर कुछ कह सकना कठिन है, यह निर्णय तो भविष्य देगा, पर इतना निश्चित है कि महादेवी में एक सबल प्राण-शक्ति है, जिसे वे उचित समझती हैं। उस पर अड़ कर दूसरों के प्रहार सहन करने की उनमें क्षमता है, जिसे वे अनुचित समझती हैं, उस पर प्रहार करने की उनमें शक्ति है। यही नहीं, इस सार्वजनिक जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए वे कभी-कभी निःसंकोच समझौता भी कर सकती हैं।

राजनीति और भौतिक सम्पन्नता में महादेवी जी केवल एक सीमा तक ही आगे बढ़ पाईं, पूर्णरूप से वे सफल नहीं हो सकीं--इसका एकमात्र कारण है उनका भावना-प्रधान चेतन व्यक्तित्व। महादेवी वर्मा के पास उनकी निजी आस्थाएँ हैं, मान्यताएँ हैं। अपने इस भावनामय व्यक्तित्व और अपनी मान्यताओं तथा आस्थाओं के कारण ही वे साहित्य जगत में साम्राज्ञी की भांति स्थित हैं। राजनीति अथवा धन की दुनियां में वे किसी भी हालत में अपना ऊँचा स्थान नहीं बना सकती थीं। बहुत से आलोचक महादेवी की कविता को उनके व्यक्तिगत जीवन की प्रतिक्रिया कहेंगे, पर मैं तो उनकी कविता तथा उनके व्यक्तिगत जीवन को एक-दूसरे के पूरक-अंग मानता हूँ। उनकी आधार मूल भावना जो परिस्थितियों से जकड़े हुए उनके जीवन के कर्म में अस्पष्ट सी दिखती है, उनकी कविताओं में स्पष्ट हो जाती है, महादेवी वर्मा का आधार मूल व्यक्तित्व अपनी कविताओं में पाया जाता है और महादेवी वर्मा का आधार मूल व्यक्तित्व बहुत अधिक ऊंचा है, उदार है और कल्याण से युक्त है, यह उनकी कविताओं से सिद्ध हो जाता है।

(३)

महादेवी वर्मा संस्कृत की विदुषी हैं और इस संस्कृत के ज्ञान के कारण उनकी कविता और भी अधिक सुन्दर बन गई है। वैसे संस्कृत के ज्ञान के कारण उनकी भाषा और शैली प्रसाद, निराला और कहीं-कहीं पन्त की भाषा तथा शैली की ही भांति दुरूह और अस्पष्ट हो गई है, पर यह दुरूहता महादेवी के शब्द-संगीत तथा कल्पना की रंगीनी के कारण खटकती नहीं। मैंने ऐसे अनेक पाठकों को देखा है जो महादेवी वर्मा की कविता को, बिना उसका अर्थ समझे, पूजा करते हैं, जो केवल महादेवी के शब्द-संगीत से महादेवी की भावना में बहने लगते हैं, और यहां मैं सचमुच महादेवी की प्रतिभा के आगे झुक जाता हूँ। इसमें मुझे कला की चरम उत्कृष्टता के दर्शन होते हैं। दूसरों की बस तो दूर रही, स्वयं मैं महादेवी के शब्द-संगीत और उनकी कल्पना के चित्रों में अपने को कभी-कभी खो देता हूँ :

महादेवी की प्रथम कविता, जिसने मुझे वास्तव में प्रभावित किया वह यह है :--

कितनी रातों की मैंने
नहलाई है अंधियारी,
धो डाली है सन्ध्या के
पीले सेंदुर से लाली,

नभ के धुंधले कर डाले
अपलक चमकीले तारे,
इन आहों पर तैरा कर
रजनीकर पार उतारे।

बह गई क्षितिज की रेखा
मिलती है कहीं न हेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूला सा मत्त समीरण
पागल सा देता फेरे !

अपने उर पर सोने से
लिखकर कुछ प्रेम-कहानी
सहते हैं रोते बादल
तूफानों की मनमानी !

इन बूंदों के दर्पण में
करुणा क्या झांक रही है ?
क्या सागर की धड़कन में
लहरें बढ़ आंक रही हैं ?

पीड़ा मेरे मानस से
भीगे पट सी लिपटी है,
डूबी सी यह निश्वासें
ओठों में आ सिमटी है !

मुझ में विक्षिप्त झकोरे !
उन्माद मिला दो अपना,
हां नाच उठे जिसको छू
मेरा नन्हा सा अपना ! !

पीड़ा टकरा कर फूटे
घूमे विश्राम विकल सा
तम बढ़े मिटा डाले सब,
जीवन कांपे चलदल सा !

फिर भी इस पार न आवे
जो मेरा नाविक निर्मम,
सपनों से बांध डुबाना
मेरा छोटा सा जीवन !

इस कविता में करुणा से भरे रहस्यवाद में महादेवी की प्रारम्भिक अनुभूति अत्यन्त प्रभावयुक्त और सजीव है। लेकिन उसी काल की दूसरी कविता में महादेवी के अन्दर स्वप्न और कल्पना से युक्त कवि के सुन्दर जगत में और संघर्षों से युक्त वास्तविक जगत में कितना वैषम्य है, इसे बड़ी सुन्दरता के साथ व्यक्त किया गया है।

कह दे मां अब क्या देखूं ।

देखूं खिलती कलियां या
प्यासे सूखे अधरों को,
तेरी चिर यौवन-सुषमा
या जर्जर जीवन देखूं !

देखूं हिम-हीरक हंसते
हिलते नीले कमलों पर,
या मुरझाई पलकों से
झरते आंसू-कण देखूं ।

सौरभ पी पी कर बहता
देखूं यह मन्द समीरण,
दुख की घूंटें पीती या
ठंडी सांसों को देखूं !

खेलूं परागमय मधुमय
तेरी वसन्त-छाया में,
या झुलसे सन्तापों से
प्राणों का पतझर देखूं ।

मकरन्द-पगी केसर पर
जीती मधु-परियां ढूंढूं,
या उर-पंजर में कण को
तरसे जीवन-शुक देखूं !

कलियों की घन जाली में
छिपती देखूं लतिकायें,
या दुर्दिन के हाथों में
लज्जा की करुणा देखूं ।

बहलाऊं नव किसलय के–
झूले में अलि-शिशु तेरे,
पाषाणों में मसले या
फूलों से शैशव देखूं !

तेरे असीम आंगन की
देखूं जगमग दीवाली,
या इस निर्जन कोने के
बुझते दीपक को देखूं ।

देखूं विहंगों का कलरव
घुलता जल की कलकल में,
निस्पन्द पड़ी वीणा से
या बिखरे मानस देखूं !

मृदु रजत–रश्मियां देखूं
उलझी निद्रा–पंखों में,
या निर्निमेष पलकों में
चिन्ता का अभिनय देखूं !

तुझ में अम्लान हंसी है
इसमें अजस्र आंसू–जल,
तेरा वैभव देखूं या
जीवन का क्रन्दन देखूं ।

... .

इस कविता में करुणा साकार रूप हो गई है। महादेवी के अन्दरवाला मानव कितना विक्षुब्ध, कितना हतप्रभ हो गया है जीवन के क्रन्दन से।

पर महादेवी का उस परम शक्ति पर अटल विश्वास है जिसमें इस समस्त सृष्टि का आधार है। महादेवी की यह कविता हिन्दी की सुन्दरतम कविताओं में एक है। समस्त आत्म-समर्पण के साथ कलाकार अपने को इस पार्थिव विश्व से कितना ऊपर उठा लेता है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं ।

नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,
प्रलय में मेरा पता पदचिन्ह जीवन में,
शाप हूं जो बन गया वरदान बन्धन में,
कूल भी हूं कूलहीन प्रवाहिनी भी हूं ।

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूं,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूं,
फूल को उर में छिपाए विकल बुलबुल हूं,
एक ही कर दूर तन से छांह वह चल हूं,
दूर तुमसे हूं अखण्ड सुहागिनी भी हूं ।

आग हूं जिससे ढुलकते बिन्दु हिमजल के,
शून्य हूं जिसको बिछे हैं पावड़े पल के,
पुलक हूं वह जो पला है कठिन प्रस्तर में,
हूं वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में,
नील घन भी हूं सुनहली दामिनी भी हूं ।

नाश भी हूं मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार भी आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूं और स्मित की चांदनी भी हूं ।

महदेवी के रहस्यवाद में प्रकृति के सुन्दर चित्र भी यथेष्ट संख्या में दिखते हैं। महादेवी जगत की करुणा के प्रति सदा से सचेत हैं। उनकी इस कविता में महादेवी की करुणा मूर्तिमती हो उठती है :

मेरे हंसते अधर नहीं जग।
की आंसू–लड़ियां देखो ।
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुर्झाई कलियां देखो ।

हंस देता नव इन्द्रधनुष की–
स्मित में घन मिटता मिटता,
रंग जाता है विश्व राग से
निष्फल दिन ढलता ढलता,
कर जाता संसार सुरभिमय
एक सुमन झरता झरता,
मर जाता आलोक तिमिर में
लघु दीपक बुझता बुझता,

मिटनेवालों की हे निष्ठुर !
बेसुध रंगरलियां देखो,
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुर्झाई कलियां देखो ।

गल जाता लघु बीज असंख्यक
नश्वर बीज बनाने को,
तजता पल्लव वृन्त पतन के
हेतु नए विकसाने को,
मिटता लघु पल प्रिय देखो
कितने युग कल्प मिटाने को,
भूल गया जग भूल विपुल
भूलोमय सृष्टि रचाने को !

मेरे बन्धन आज नहीं प्रिय,
संसृति की कड़ियां देखो ।
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुझाई कलियां देखो ।

श्वासें कहतीं 'आता प्रिय'
निश्वास बताते 'वह जाता',
आंखों ने समझा अनजाना
उर कहता चिर यह नाता,
सुधि से सुन 'वह स्वप्न सजीला
क्षण क्षण नूतन बन आता',
दुख उलझन में राह न पाता
सुख दृग–जल में वह जाता,

मुझ में हो तो आज तुम्हीं 'मैं'
बन दुख की घड़ियां देखो !
मेरे गीले पलक छुओ मत
बिखरी पंखुरियां देखो ।

महादेवी का प्रेम आध्यात्मिक तथा अपार्थिव है, पर उनके प्रेम में एक सजीव मादक सुन्दरता है। उनकी इस कविता में उनका वह अपार्थिव प्रेम कितनी सफलतापूर्वक चित्रित है !

तुम सो जाओ मैं गाऊं !
मुझ को सोते युग बीते,
तुम को यों लोरी गाते,
अब आओ मैं पलकों में
स्वप्नों से सेज बिछाऊं !

प्रिय ! तेरे नभ मन्दिर के
मणिदीपक बुझ-बुझ जाते,
जिनका कण कण विद्युत है
मैं ऐसे प्राण जलाऊं ।
क्यों जीवन के शूलों में
प्रतिक्षण आते जाते हो ?
ठहरो सुकुमार ! गला कर
मोती पथ में फैलाऊं ।
पथ की रज में हैं अंकित,
तेरे पदचिन्ह अपरिचित,
मैं क्यों न इसे अंजन कर
आंखों में आज बसाऊं !

जल सौरभ फैलाता उर,
तब स्मृति जलती है तेरी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोचन कर पानी पानी
मैं क्यों न उसे सिंचवाऊं !
इन भूलों में मिल जातीं,
कलियां तेरी माला की,
मैं क्यों न इन्हीं कांटों का
संचय जग को दे जाऊं !

अपनी असीमता देखो,
लघु दर्पण में पल भर तुम,
मैं क्यों न यहां क्षण क्षण को
धो धो कर मुकुर बनाऊं !

हंसने में छू जाते तुम,
रोने में वह सुधि आती,
मैं क्यों न जगा अणु अणु को
हंसना रोना सिखलाऊं !

... ...

महादेवी की कविता में सुन्दर कल्पना के साथ मन पर छा जाने वाला एक करुण संगीत भरा है । माहादेवी की यह कविता मैं अक्सर गुनगुना लेता हूँ । और मैं यह भी कहने को तैयार हूँ कि यह कविता विश्व के सर्वश्रेष्ठ गीतों में रखी जा सकती है ।

मैं नीर भरी दुख की बदली !

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हंसा,
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली !

मेरा पग पग संगीत भरा,
श्वासों से स्वप्न-पराग झरा,
नभ के नव रंग बुनते दुकूल,
छाया में मलय-बयार पली !

मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल,
चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज-कण पर जल-कण हो बरसी
नवजीवन-अंकुर बन निकली !

पथ को न मलिन करता आना,
पद-चिन्ह न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिहरन हो अन्त खिली !

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली !

... ...

मधुर संगीत की जब बात चलती है तब मैं महादेवी जी का एक और गीत देने का लोभ संवरण नहीं कर सकूंगा ।

जाग जाग सुकेशिनी री !
अनिल ने आ मृदुल हौले,
शिथिल वेणी-बन्ध खोले,
पर न तेरे पलक डोले,

बिखरती अलकें झरे जाते
सुमन वरवेषिनी री !
छांह में अस्तित्व खोये,
अश्रु से सब रंग धोये,
मन्दप्रभ दीपक संजोये,

पन्थ जिसका देखती तू अलस
स्वप्न-निमेषिनी री !

रजत-तारों से घटा बुन,
गगन के चिर दाग गिन गिन,
श्रान्त जग के श्वास चुन चुन,

सो गई क्या नींद का अज्ञात–
पथ-निर्देशिनी री ?

दिवस की पद-चाप चंचल,
भ्रान्ति में सुधि सी मधुर चल,
आ रही है निकट प्रतिपल,

निमिष में होगा अरुण जग
ओ विराग-निवेशिनी री !

रूप-रेखा–उलझनों में,
कठिन सीमा-बन्धनों में,
जग बंधा निष्ठुर क्षणों में,

अश्रुमय कोमल कहां तू
आ गई परदेशिनी री !

मृत्यु पर कविता लिखना विश्व के कवियों में कुछ परम्परा सी चल गई है । महादेवी जी की मृत्यु पर यह कविता विश्व के श्रेष्ठ कवियों की मृत्यु पर कविताओं से कमजोर नहीं है ।

प्राणों के अन्तिम पाहुन !

चांदनी-धुला, अंजन सा, विद्युत-मुस्कान बिछाता,
सुरभित समीर-पंखों से उड़ जो नभ में घिर जाता,
वह वारिद तुम आना बन !

ज्यों श्रान्त पथिक पर रजनी छाया सी आ मुस्काती,
भारी पलकों में धीरे निद्रा का मधु ढुलकाती,
त्यों करना बेसुध जीवन !

अज्ञातलोक से छिप-छिप ज्यों उतर रश्मियां आतीं,
मधु पीकर प्यास बुझाने फूलों के उर खुलवातीं,
छिप आना तुम छायातन !

(शेष पृष्ठ ६२ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम का परचा

चूनीलाल माड़िया

गोधूलि की वेला थी। देगड़िया की सीम में ढलते सूरज की धुंधली रोशनी नजर आ रही थी। पौष की कड़कती सरदी से बचने के लिए पंछी अपने नीड़ों की ओर लौट रहे थे।

सीम में उगे हुए बेर और बबूल के वृक्षों की छाया धीरे-धीरे अधिक लम्बी और गहरी होती जा रही थी। पश्चिम दिशा का आकाश एकदम लाल हो चुका था। ठीक इसी वक्त सीम के किनारे एक उजले रंग की युवती देगड़िया गाँव की ओर जा रही थी। वह थी एकदम स्वस्थ, सुन्दर और सुकुमार। सागौन की यष्टि जैसी सीधी देह। सिर पर गूंथी हुई लटाओं का और उस पर रखा हुआ ताम्रकलश, डूबते हुए सूरज के प्रकाश में जगमगा रहा था। उसकी चाल में तेजी थी, दिल में बेचैनी और मन में तुमुल संघर्ष।

जब उसने गाँव में प्रवेश किया, तब मुश्किल से थोड़ा बहुत दिन रहा होगा। सन्ध्या के झटपुटे में दिये जलने का समय हो चुका था। गाँव के बाहर चींटियों को चून डालने आए हुए लोगों को इस अपरिचित पनिहारिन को असमय गाँव में दाखिल होते देख कर आश्चर्य हुआ। इस गरासिन को सहसा पहचान लेना किसी के बस की बात नहीं थी।

गाँव में वापस लौटती गायों की धूल का स्वागत करके युवती ने गाँव में प्रवेश किया। गोरज को अपने भावी जीवन का शभ शकुन मान कर उसने साहसपूर्वक कदम बढ़ाये।

कंडील में घासलेट जलाने को निकले हुए बोधा चारण से उसकी भेंट हुई। युवती ने उससे पूछा--"विशम्भर तिवाड़ी का मकान जानते हो कहाँ है?"

"बाँई ओर के छोरवाले मकान से मुड़ कर पिछली गली में चली जाओ।" देवीपुत्र ने एक आदर्श मार्ग दर्शन के रूप में तिवाड़ी के मकान का नकशा खींच दिया। फिर एकाएक उसकी निगाह गायों के झुण्ड पर पड़ी और वह बोल उठा--"अरे सुनो, यह टीकेवाली गाय तिवाड़ी की ही है। यह तुम्हें सीधी उन्हीं के घर ले जाएगी। बस, इसी के पीछे-पीछे चली जाओ।"

युवती को इस अनजान गाँव में, अनायास गाय का साथ मिल गया। वह खुश हुई और उसने दूने उत्साह से कदम बढ़ाए।

"तिवाड़ी जी अभी हाल ही सन्ध्या-पूजा करके घर गए हैं। या तो पहुँच गए होंगे अथवा पहुँच रहे होंगे।" चारण कह रहा था।

युवती ने इस मार्ग दर्शक का मन ही मन आभार माना।

चतुर चारण आगंतुक को बड़ी देर से कुतूहलपूर्वक देख रहा था। अब वह मन में सोचने लगा कि कहीं यह युवती राथलीवाले हनुमा गरासिया की लड़की अबजुबा तो नहीं है!

विशम्भर तिवाड़ी सन्ध्या-स्नान से निबट कर हाल ही में घर आए थे। रसोईघर में गोराणी खाना परोसने के लिए कांसे की थाली अपनी साड़ी के छोर से पोंछ रही थी कि इतने में दरवाजे की सांकल बज उठी। तिवाड़िनी बहन ने कहा--"शायद गाय आ गई है।"

"लेकिन गाय को भगवान ने कोई हाथ थोड़े ही दिए हैं, जो वह सांकल बजाएगी।" कहते हुए गोर महाराज किवाड़ खोलने गए।

बहन का अनुमान आधा सच निकला। दरवाजे पर गाय खड़ी थी। किन्तु गाय के ठीक पीछे जो भरे कलशवाली पनिहारिन खड़ी थी, उसे देख कर तो विशम्भर गोर एकदम हैरत में आ गए।

"तुम! तुम!"

"हाँ, मैं अबजुबा!"

गोर ने अचकचा कर पूछा--"घर तो नहीं भूल गई हो न?"

"क्या देगड़िया में कोई दूसरा तिवाड़ी भी रहता है, जो मैं घर भूलने लगी?" सामने से सुन्दर, मधुर मगर मार्मिक कटाक्ष सुनाई दिया और गोरजी ने शर्म से गरदन झुका ली।

"मेरे पैरों की ओर क्या देख रहे हो? चेहरे की ओर देखिए और यह कलश उतारिए।"

गोर इस युवती के तेजस्वी और तीखे नक्शवाले चेहरे की सुन्दरता देखने लगे। इतने में सामने से दूसरा ताना सुनाई दिया--

--"मुँह देखने के लिए तो सारी जिन्दगी पड़ी है। खूब जी भर कर देखते रहना। लेकिन इस समय तो मेरे सिर का बोझ जल्दी से उतारिए।"

गोर को चुप खड़े देखकर युवती ने सीधा ही सवाल किया--

"क्यों घबड़ा गए, गोर महाराज! लोकलाज और इज्जत का डर लग रहा है! मैं तो लोकलाज छोड़ कर चली आई हूँ। माँ-बाप की कुल मरजाद तज कर आपके दुआरे आई हूँ प्रीत का परचा लेने --"

प्रीत का परचा! बस, खत्म। जवान ब्राह्मण के दिल पर यह उक्ति करारी चोट कर गई और गोर ने जरा भी आगा पीछा सोचे बिना युवती के सिर से तत्काल कलश उतार लिया।

"एक थाली और लगाओ।" अन्दर जाकर तिवाड़ी ने बहन को आदेश दिया--"तुम्हारी भाभी आई है, गाय के पीछे-पीछे।"

× × ×

राथली के दरबारगढ़ में हाहाकार मच गया। रनवास में कहीं भी कुंवरी अबजुबा का पता नहीं है। गली-गली छान डाली गई। मगर वह कहीं भी न मिली। एक पक्षी भी जहाँ से नहीं छटक सकता ऐसे मजबूत गढ़ में से आखिर कुंवरी गई कहाँ!

हनुमा गरासिया की परेशानी की सीमा न रही। वह न तो किसी को कुछ कह सकते थे और न बर्दाश्त ही कर सकते थे। गाँव में किसी को कानों-कान खबर न हो इस प्रकार लड़की की खोज शुरू हुई। लेकिन जब कहीं भी पता न लगा, तब उनकी व्याकुलता बढ़ गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस परेशानी और बैचेनी से हनुमा को बचाने के ख्याल से ही देगड़िया चारण हाजिर होकर हनुमा को यह खबर दे गया कि उसने खुद कुंवरी अबजुबा को सिर पर पानी का कलश रखे विशम्भर तिवाड़ी का घर पूछते हुए देखा है ।

हनुमा के मन में और गढ़ के वातावरण में हलचल मच गई । चारण के मुंह से यह समाचार सुनते ही पहले तो हनुमा को विशम्भर तिवाड़ी का सिर उड़ा देने का विचार आया । लेकिन तलवार का युग बीत जाने के कारण उन्हें बल के बदले कल से काम निकालने की सद्बुद्धि आ गई । इस समाचार को गुप्त रखने का गरासिया ने बहुत प्रयत्न किया । किन्तु चारण की जबान पर चढ़ कर आई हुई बात कब तक छिपी रह सकती थी ? राथली के गली-कूचों और कोनों-कोपरों में चोरी-छिपे अबजुबा के साथ विशम्भर तिवाड़ी का नाम लिया जाने लगा ।

शृंखला की बीच की कड़ियाँ जोड़ने में लोगों को भला क्या देर लगती है । विशम्भर तिवाड़ी राथली के दरबार में नवदुर्गा के दिनों में गरबी गाने वाला एक सामान्य ब्राह्मण था और अबजुबा गढ़ के गवाक्ष में बैठी-बैठी विशम्भर के मीठे मधु जैसे शक्तिस्तवन को सुनने वाली नारी ।

यों देखें तो देगड़िया और राथली बिलकुल दो अलग-अलग गाँव थे । लेकिन दोनों के बीच बावड़ी एक ही थी । दोनों गाँव आपद-विपद में एक-दूसरे का सदा साथ देते थे । राथली में दरबार बढ़ के सामने अच्छा विशाल चौगान होने से नवरात्र में गरबों का आयोजन वहीं किया जाता और उस अवसर पर न केवल देगड़िया के, बल्कि आसपास के पांच-सात गाँव के लोग भी वहाँ जमा हो जाते । ऐसी थी उस इलाके में इन गरबों की ख्याति ।

इस ख्याति का मुख्य श्रेय विशम्भर तिवाड़ी को था । वह जब एक के बाद एक गरबियाँ ललकारता, तो उसके स्वर दूर-दूर दिशाओं में गूंज उठते । माँ दुर्गा, काली, अम्बा और भवानी की स्तुति उसके मधुर कण्ठ से निकलती और सुननेवाले झूम-झूम उठते ।

इन झूमनेवाले श्रोताओं में एक अबजुबा भी थी । जब चौक में गरबियों का समा बंधा होता, तब अपने आवास के अंधेरे गवाक्ष में बैठी अबजुबा गायक विशम्भर को विस्फारित नयनों से निहार रही होती । तिवाड़ी के तेजस्वी चेहरे की ओर वह अपलक देखती रहती । विशम्भर के गले में बहती गीत माधुरी का वह आकण्ठ पान कर रही होती ।

गाँव में और किसी की तो बात ही क्या, खुद विशम्भर को भी इसका पता न था कि गढ़ के ऊँचे गवाक्ष में कोई मुग्धा उसे देखती रहती है । वह तो बेचारा भावुक भक्त की भाँति हर नवरात्र को यहाँ आता और भक्ति से सराबोर हो कर गरबियाँ गाता तथा गवाता । किन्तु तब भला किसको कल्पना हो सकती थी कि इस गरबे गाने वाले गायक के प्रति अबजुबा अधिकाधिक आकृष्ट होकर अपने हृदय के किसी एकान्त कोने में उसकी गीत-माधुरी का मधुसंचय कर रही थी ?

और एक दिन अबजुबा ने अपने को उस गायक पर न्योछावर कर दिया । तिवाड़ी की देहली पर जाकर उसने पानी का कलश उतार दिया । ऐसी स्थिति में यदि काल जैसा विकराल बना हुआ हनुमा विशम्भर से बदला लेने की ठान ले तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं । लेकिन तलवार पर भरोसा करने वाले गरासिया ने इस बार बल के स्थान पर कल से काम निकालना अधिक उचित समझा । अतः उसने बोधा चारण की मारफत तिवाड़ी को कहला भेजा कि तीन दिन में अगर मेरी लड़की को वापस नहीं लौटाया तो सारे देगड़िया गाँव की खैर नहीं रहेगी ।

बोधा चारण को जाहिर होते ही दगड़िया गाँव में एकदम सन्नाटा छा गया । लोगों में कानाफूंसी होने लगी--

"गरासिया की बेटी तिवाड़ी के घर में जा बैठी ।"

"यह तो पश्चिम में सूरज उगने जैसी बात हुई !"

"तिवाड़ी ने भी कमाल किया । सारी दुनिया छोड़ कर हनुमा गरासिया की बेटी के पीछे पड़ा !"

"अब विशम्भर के कारण सारा देगड़िया गाँव हनुमा का दुश्मन हो गया । गरासिया इस बाम्हन का सिर काट कर खेत में लटका देगा । गाँव पर कहर बरसायेगा सो अलग ।"

किन्तु विशम्भर के पेट का पानी भी न हिला । वह जरा भी टस से मस नहीं हुआ । बोधा चारण के मुंह से तीन दिन की मुद्दत की बात सुन कर उसने स्पष्ट शब्दों में सुना दिया । "हनुमा से कहना कि मैं और अबजुबा अब तीन दिन तो क्या तीन जन्म में भी अलग न होंगे ।"

स्पृश्यास्पृश्य, ऊँच-नीच, रक्त और कुल मर्यादा के ठेकेदार क्या कभी चुप बैठे देख सकते थे ? अपने आंगन में अबजुबा का कलश उतारकर विशम्भर ने अपनी जाति और कुल की मर्यादा का उल्लंघन किया है, यह निर्णय देकर देगड़िया और आसपास गाँव के ब्राह्मणों ने उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया ।

हृदय धर्म और लोक धर्म की दोहरी पकड़ में फंसे हुए विशम्भर ने जाति भाइयों का यह निर्णय सिर आँखों पर चढ़ा लिया और घर में बहन गोराणी को सूचना दे दी कि आज से मेरी और अबजुबा की पानी की मटकी अलग रखना और हम दोनों के बरतन भी रसोईघर के बाहर ही रखना ।

और दरअसल उस दिन से विशम्भर ने हृदय धर्म और लोक धर्म दोनों का चुस्त रूप में पालन शुरू कर दिया । वेदपाठी, ब्राह्मण के घर में नित्य के आचार-व्यवहार में कहीं कोई अतिक्रमण न हो, इस बात का खास ध्यान रखा जाने लगा । दोनों का भोजन अलग, बरतन अलग, रसोड़ा भी अलग । शुरू में बहन को यह परिवर्तन बहुत बुरा लगा । मगर धीरे-धीरे सब को माफिक आ गया ।

अबजुबा के अनिर्वचनीय प्रेम ने ननद हृदय पूरी तरह जीत लिया और तब से वह उसे बहुत अधिक प्यार करने लगी । जब कोई गाँव का आदमी तिवाड़ी और अबजुबा क बारे में उलटी-सीधी बात करता तो वह तुरन्त ही उसे स्पष्ट शब्दों में कहती--"गरासिन को कोई सोती हुई थोड़े उठा कर लाए हैं । वह खुद गोर पर मोहित होकर आई है । जिस पर गरासिया की बेटी मुग्ध हुई हो, ऐसा कोई दूसरा आदमी तो बताइए इस गाँव में ? "

× × ×

हनुमा बेचारा बेहद हैरान हो रहा था कि उसकी कोई तदबीर काम नहीं कर रही थी । कड़ी से कड़ी धाक-धमकियाँ और मोहलत को भी विशम्भर ने सुना-अनसुना कर दिया । उसकी परेशानी का पार न रहा । उसकी अपनी बेटी एक ब्राह्मण के घर में जा बैठी थी । हनुमा की सात पीढ़ी की इज्जत धूल में मिल रही थी । किन्तु वह लाचार था । साम-दाम, दण्ड और भेद सभी उपाय उसने आजमा लिए थे । मगर व्यर्थ । लड़की को वापस लाने का कोई उपाय उन्हें सूझ ही नहीं रहा था ।

इतने में अचानक एक खवास हनुमा की मदद करने को तैयार हुआ । उसने आक्रमण करके कुंवरी को उड़ा लाने की योजना पेश की । किंकर्तव्य-विमूढ़ बने हुए हनुमा को यह योजना पसंद आ गई !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देगड़िया जाकर तिवाड़ी के मकान पर हमला करने का दिन निश्चित हो गया। अबजुबा का अपहरण करके उसे रातोंरात राथली गाँव ले आने की बाबत तफसील से विचार कर लिया गया।

और एक दिन आधी रात के समय हनुमा के आदमी देगड़िया गाँव में दाखिल हुए।

मुँह पर ठाठे बांधे हुए लोग विशम्भर का घर मालूम करने के लिए पहले तो बोधा चारण के दरवाजे पहुँचे और उसे गहरी नींद से जगाकर हुक्म दिया--"चल बे साथ में, तिवाड़ी का मकान बता।"

चतुर चारण फौरन ताड़ गया कि माजरा क्या है? उसे अपनी ही किये पाप का फल नजर आया। और यह जानकर कि इस ब्रह्महत्या का पाप उसी के मत्थे चढ़ेगा, वह मन में तीव्र मंथन अनुभव करने लगा।

"चलो मेरे साथ। तिवाड़ी का मकान दिखाता हूँ।" कहकर बोधा आगे बढ़ा।

चारण बड़ी दुविधा में पड़ गया। इसी प्रकार उसने एक दिन सन्ध्या के समय अबजुबा को भी तिवाड़ी का मकान बताया था और विधि की कैसी विडम्बना कि आज उस कुंवरी का सिन्दूर पोंछने वालों को भी वही मार्ग दिखाने जा रहा है। क्या अबजुबा का सुहाग नष्ट हो जाएगा? विशम्भर तिवाड़ी की हत्या का पाप उसी के सिर आएगा?

दरवाजे पर जाकर हत्यारों ने विशम्भर को आवाज लगाई।

अंदर से गोराणी ने जवाब दिया कि वे तो तालुका गए हैं। कल सवेरे आएँगे।

इस समाचार को सुनते ही हत्यारों की बांछें खिल गईं। उन्होंने दरवाजा खोलने का हुक्म दिया।

लेकिन इसी बीच बोधा अचानक बोल उठा--"गोराणी माँ, दर्वाजा नहीं खोलना। हनुमा के आदमी अबजुबा को उठा ले जाने को आये हैं।"

और इतना कहते ही वह लपक कर दरवाजे के सामने अडिक खड़ा होकर बोला--"मेरा सिर काटे बिना तुम अन्दर नहीं जा सकते। तिवाड़ी की गैरहाजिरी में उसकी औरत की रक्षा मैं करूँगा।"

हत्यारे दुविधा में पड़ गए। देव पुत्र पर हाथ कैसे उठाएँ? एक के बदले दोहरी हत्या का पाप कौन ले? और हनुमा का ही क्या भरोसा जो बिगड़ न बैठे?

अबजुबा को जब पता चला कि उसके पिता ने तिवाड़ी की हत्या के लिए और उसे उठा ले जाने को आदमी भेजे हैं और चारण दरवाजे पर खड़ा होकर उसकी रक्षा के लिए उनसे जूझ रहा है, तो उसने बड़ा सन्दूक खोल कर तिवाड़ी की तीसरी पीढ़ी की तलवार हाथ में ली और ननद से गरज कर कहा--"खोल दो दरवाजा।" और बिजली की रेखा जैसी नंगी तलवार चमकाती हुई अबजुबा दरवाजे के बाहर छलांग मारकर गरजी--"मरद के बच्चे हो तो मुकाबला करो!"

कुंवरी का यह चण्डी रूप वे किराये के आदमी बरदाश्त नहीं कर सके। उनके हाथ के हथियार कांप उठे। सब उल्टे पैरों भाग खड़े हुए।

हनुमा ने जब सारा हाल सुना, तो उन्हें लड़की के प्रेम का परचा मिल गया। उन्होंने मन ही मन अबजुबा और विशम्भर को आशीर्वाद दिया तथा बेटी और दामाद के नाम दहेज के रूप में एक गाँव लिख दिया।

रूपांतरकार--गौरीशंकर जोशी

शाम का पीपल

श्रीकान्त वर्मा

मैं शामों का बूढ़ा पीपल!

दूर-दूर तक इस ढलाव पर
फैली मेरी बूढ़ी छाया।
चुप हैं पत्ते, अनडुल डालें
चला गया है कोई
मुझ बूढ़े पीपल की कविताएँ हर।
किसके लिए झराऊँ पत्ते?
किसके लिए बजूँ मैं हरहर??

मैं शामों का बूढ़ा पीपल!

सुनो! धूप के अन्तिम पन्ने बाँच रही
ओ! नन्हीं चिड़िया!
शाम तुम्हें उपमाविहीन कर, चुप चल देगी;
जैसे मुझको एक धुएं के धब्बे-सी
वह छोड़
हमेशा चल देती है।

अब तक गुजर चुके हैं मुझ से
जाने कितनी शामों के रथ!
आह! आज भी निपट अकेला बूढ़ा पीपल!
सुनो। नदी में बंसी डाले भोले मछुए!
शाम, तुम्हारे पाल डुबाती
अभी-अभी चुपके चल देगी।

सुनो! शाम मुझको भी प्रिय है।
अक्सर डूब गया हूँ मैं भी
सोने के फैले पानी में जड़ों-जड़ों तक
मेरी डालों पर भी
उगी हैं कविताएँ;
लेकिन फिर सोने का पानी
खपरैलों-खपरैलों होता
चला गया है पश्चिम पथ पर

आह! शाम को कैसे बन्द कारोगे मेजों की दराज में,
मुट्ठी में, घुटनों में
अपनी कविताओं में?

आह! शाम छलती है हमको।
हमें अकेलापन देती है,
नदियों से धीरे-धीरे उठकर आता
कुहरा देती है।
चितकबरे धब्बे देती है,
धूएँ के बादल देती है।
शाम, हमेशा चल देती है।

सुनो! धूप के अन्तिम पन्ने बांच रही
ओ! नन्हीं चिड़िया!
शाम तुम्हें उपमाविहीन कर चुप चल देगी!

अब तक गुजर गए हैं मुझ से
जाने कितनी शामों के रथ!!

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-कथाओं के मूल अभिप्राय

कन्हैयालाल सहल

प्रायः सभी देशों की लोक-कथाओं में देखा जाता है कि पशु-पक्षियों की अपनी एक अलग ही भाषा होती है। इनमें भी पशुओं की भाषा की अपेक्षा पक्षियों की भाषा का ही विशेष हाथ रहता है। सम्भवतः इसका मुख्य कारण यह है कि पक्षी तो उड़ कर दूर-दूर तक के अगम्य स्थानों तक जा सकता है जब कि किसी पशु के लिए ऐसा करना सम्भव नहीं। पक्षी किसी जादू के द्वीप की यात्रा कर सकता है, किसी गुप्त गुफा में उसका प्रवेश हो सकता है, चाहे जिस पेड़ पर वह बैठ सकता है, किसी कमरे की खिड़की पर स्थित होकर जो कुछ अन्दर हो रहा है, उसे वह देख सकता है। आदिम मानव की धारणा के अनुसार पक्षियों में बड़ी सूझ-बूझ और समझ होती है और बहुत से रहस्यों का ज्ञान उन्हें रहता है।

लोक-कथा का जब कोई नायक किसी विपत्ति या संकट में पड़ जाता है, वह पशु या पक्षी के परस्पर बातचीत करते हुए किसी जोड़े को देखता है और पीछे से छिप कर वह उस वार्तालाप को सुन लेता है जिसके अनुसार काम करने से वह उस विपत्ति या संकट से छुटकारा पा जाता है।

इस अभिप्राय का प्रयोग कथा-भाग को गति देने के लिए होता है। लोक-कथा का नायक जब संकट में पड़ जाता है, श्रोता या पाठक यह समझ नहीं पाते कि संकट से नायक की किस प्रकार मुक्ति होगी। उस समय नायक के 'उप' द्वारा स्थिति पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है और कहानी त्वरित गति से आगे बढ़ने लगती है।

'उपश्रवण' नामक यह मूल अभिप्राय बहुत प्राचीन जान पड़ता है। छान्दोग्य उपनिषद् के चतुर्थ अध्याय में राजा जानश्रुति और रैक्व का उपाख्यान मिलता है। इस उपाख्यान में उक्त अभिप्राय का प्रयोग हुआ है। जानश्रुति ने समस्त दिशाओं में ग्राम और नगरों के भीतर धर्मशालाएं बनवा दी थीं। इससे उसका यह अभिप्राय था कि उन धर्मशालाओं में निवास करने वाले लोग उसी के द्वारा दिया हुआ अन्न ग्रहण करेंगे।

एक बार गर्मी के दिनों में राजा अपने महल की अट्टालिका पर बैठा हुआ था। उसी समय रात्रि में उधर से हंस उड़कर गए। उनमें से एक हंस ने दूसरे हंस से कहा--"अरे ओ भल्लाक्ष! ओ भल्लाक्ष! देख, जानश्रुति पौत्रायण का तेज द्युलोक के समान फैला हुआ है, तू उसका स्पर्श न कर, वह तुझे भस्म न कर डाले।" उससे दूसरे (अग्रगामी) हंस ने कहा-- "अरे! तू किस महत्व से युक्त रहनेवाले इस राजा के प्रति इस तरह सम्मानित वचन कह रहा है? क्या तू इसे गाड़ी वाले रैक्व के समान बतलाता है?" इस पर उसने पूछा--"यह जो गाड़ी वाला रैक्व है, कैसा है?" इस प्रकार कहते हुए उस हंस से दूसरे आगे चलने वाले हंस ने कहा--"अरे! यह बेचारा राजा तो बहुत तुच्छ है। निकृष्टोऽयं राजा वराकः। रैक्व की और उसकी क्या समता? जो कुछ प्रजा संसार में धर्म-कार्य करती है, वह सबका सब रैक्व के धर्म में समा जाता है।" इस बात को जानश्रुति पौत्रायण ने सुन लिया। वह रैक्व के पास एक सहस्र गौएं, हार, खच्चरियों से युक्त रथ तथा रैक्व की भार्या बनाने के लिए अपनी लड़की को लेकर गया तथा जिस गांव में रैक्व रहता था, वह गांव भी जानश्रुति ने रैक्व के लिए ही निश्चित कर दिया। इसके बाद रैक्व ने जानश्रुति को संवर्ग विद्या का उपदेश दिया।

जातक, कथाकोश, कथासरित्सागर आदि में 'उपश्रवण' नामक अभिप्राय के अनेक उदाहरण मिलते हैं। 'कथाकोश' से एक उदाहरण लीजिए--

एक पक्षी अपने बच्चे से कह रहा था कि अपने समीपवर्ती शहर की राजकुमारी अन्धी है। बच्चे ने कहा--'क्या कोई ऐसा उपाय नहीं जिस से उसकी आंखें अच्छी हो जाएं?' पक्षी ने उत्तर दिया--'उपाय क्यों नहीं? उपाय तो है किन्तु मैं रात को नहीं, दिन में बतलाऊंगा। हो सकता है, रात को कहीं कोई छिपा हुआ हो जो हमारी बात को सुन ले।' किन्तु पक्षी के बच्चे ने जब बहुत हठ किया तो उस पक्षी ने कहा--'इस बरगद के पेड़ की जड़ों में चारों ओर जो लता फैली हुई है, उसके रस से यदि आंखें धोई जाएं तो राजकुमारी को तुरन्त दिखलाई पड़ने लग जाएगा।' एक राजकुमार जो स्वयं अन्धा था, उस बरगद के नीचे छिपा खड़ा था। उसने इस वार्तालाप को सुन लिया। उसने लता के रस से अपनी आंखें धो डालीं। ऐसा करते ही उसे दिखाई पड़ने लग गया। तब वह राजकुमार तुरन्त ही समीपवर्ती नगर में गया और राजकुमारी की आंखों पर भी उसने वही प्रयोग किया। राजकुमारी की भी गई हुई आंखें लौट आईं। परिणामस्वरूप राजकुमार और राजकुमारी का विवाह हो गया और राजकुमारी के पिता ने राजकुमार को दहेज में अपना आधा राज्य भी दे दिया।

इस अभिप्राय से सम्बन्ध रखने वाली अनेक राजस्थानी लोक-कथाएं उपलब्ध हैं जिनमें से एक यहां दी जा रही है :--

कोकशास्त्र को जानने वाली एक साहूकार की लड़की थी। पशु-पक्षियों की बोली वह समझती थी। एक बार आधी रात के समय एक सियार बोल उठा--"नदी में एक मर्दा बहा जा रहा है, उसकी जांघ में चार लाल हैं, कोई सुन रहा हो तो लाल निकाल ले"। साहूकार की बेटी ने इतना सुनते ही कटार हाथ में ली और अकेली ही महल से उतर कर चल दी। रास्ते में दो ठग मिल गए। उन्होंने उसके सब आभूषण छीन लिए और उसकी कटार भी हस्तगत कर ली। इतने में उधर साहूकार का लड़का निद्रा से जगा। पास में जब साहूकार की लड़की को उसने नहीं देखा तो चिराग जलाया और उसकी तलाश में निकला। कुछ दूर चलने पर उसे साहूकार की लड़की दिखलाई पड़ी। साहूकार के लड़के ने चिराग तो बुझा दिया और वह यह देखने के लिए साहूकार की लड़की के पीछे हो लिया कि वह चोरी करने जाती है अथवा किसी प्रकार का अन्याय करने जाती है। साहूकार की लड़की मुर्दे के समीप गई। मुर्दे को पकड़ कर वह उसे किनारे पर ले आई। अब उसके पास कटारी तो थी नहीं, उसने अपने दांतों से मुर्दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जांघ फाड़ी और चारों लाल उसमें से निकाल लिए। यह देखकर साहूकार का बेटा तो हक्का-बक्का रह गया। उसने अपने मन में कहा--यह तो डाकिन है। वह पीछे लौट चला और उसने अपने पिता से कहा--"यह जो मेरी स्त्री है, वह मेरे काम की नहीं। इसे महल में रखा तो मैं विदेश चला जाऊंगा अथवा कटारी खाकर मर जाऊंगा।" लड़के के पिता ने बहू को पीहर भेजने का विचार किया। रथ जुड़ाया और श्वसुर भी पीछे-पीछे चला। एक बरगद के पेड़ के नीचे रथ ठहरा। वहां पानी पीने का एक पक्का कुंआ था, वहीं उन्होंने खाना बनाया। श्वसुर तो सो गया, किन्तु बहू जग रही थी। इतने में एक कौवा बोला--"बट के नीचे बालाजी की एक मूर्ति है, उसके नीचे चार बर्तन हैं जिनमें आधे रुपए और आधी मोहरें हैं। कोई मेरी बोली समझता हो तो उससे फायदा उठा ले।" यह सुनते ही साहूकार की बेटी बोली--"शृगाल ने तो यह किया और अब हे कौवे! तू क्या करने वाला है।" इतने में श्वसुर जाग उठा। उसने पूछा--"बेटी! यह क्या कह रही हो?" साहूकार की बेटी ने कहा --'श्वसुर जी! मैं पशु-पक्षियों की बोली समझती हूं। सियार ने तो मुर्दे की जांघ में चार लाल बताए थे और अब यह कौवा बालाजी की इस मूर्ति के नीचे चार बर्तनों की खबर दे रहा है।" श्वसुर ने बालाजी की मूर्ति को तो उठाकर एक ओर रखा और चारों बर्तन निकाले। श्वसुर ने कहा--"बेटी! वापस चल।" साहूकार की बेटी ने उत्तर दिया--"पति तो मूर्ख है, बात-बात पर व्यर्थ का हठ करने लगता है।" श्वसुरजी ने कहा--"बेटी! पति तो जैसा हो, भुगतना ही पड़ता है।" अन्त में श्वसुर की बात मानकर साहूकार की बेटी वापस आ गई। श्वसुर ने अपने मूर्ख लड़के को चार लाल तथा रुपयों और मोहरों से भरे चारों बर्तन सम्हला दिए। मूर्ख भी प्रसन्न हो गया। उसका घरबार बस गया। जैसा उसका घरबार बसा, वैसा ही सब किसी का बसे।

ब्लूमफील्ड के मतानुसार 'उपश्रवण' नामक मूल अभिप्राय का प्रयोग एक कथा-कौशल के रूप में होता है, केवल इस अभिप्राय को लेकर शायद ही कोई कथा कही जाती हो। किन्तु 'साहूकार की बेटी' शीर्षक जो कथा ऊपर उद्धृत की गई है, वह मुख्यतः उपश्रवण नामक मूल अभिप्राय की ही कथा है, समूची कथा इसी अभिप्राय को लेकर चलती है।

फिर भी ब्लूमफील्ड का यह कहना यथार्थ है कि उपश्रवण नामक अभिप्राय का प्रयोग अधिकतर कथा को गति देने के लिए ही किया जाता है। 'चौबोली' नामक प्रसिद्ध राजस्थानी लोक-कथा में इस अभिप्राय का प्रयोग कथा-कौशल के रूप में ही हुआ है। इस सम्बन्ध में उक्त कथा का निम्नलिखित अंश प्रासंगिक समझ कर उद्धृत किया जा रहा है :--

एक दिन राजा भोजन कर रहा था और रानी जी मक्खियां उड़ा रही थीं। पक्का आंगन था। वहां एक चींटी चावल लेकर चली। उसी समय दूसरी चींटी आकर छीनने के लिए लिपट गई। तब चींटी ने कहा--"मेरे आगे से क्यों छीनती है? ये चावल राजा भोज की थाली में बहुत पड़े हैं।" इस पर चींटी ने कहा--"हमारे मेहमान आए हैं, मुझे ले जाने दे।" ऐसी बात समझ कर राजा भोज हंसा। राजा सब जीवों की भाषा जानता था। तब रानी ने पूछा कि महाराज, आप किस कारण हंसे? राजा ने इन्कार किया। रानी बहुत आग्रह करके पूछने लगी कि महाराज, मुझे हंसने का वृत्तान्त कहो। राजा ने मन में विचार किया--इन्कार कर गया तो अब मैं कहने का नहीं। यदि कह दिया तो मरण होगा। रानी दातुन नहीं करती। तब राजा ने कहा कि गंगाजी के तट पर बात कहूंगा। राजा चला। गंगाजी के समीप सिंहकर शहर था। उसके बाहर आकर राजा उतरा। वहां से पांच कोस की दूरी पर एक नदी के समीप जंगल में डेरा डाला गया। नदी की शोभा देखकर राजा जंगल में गया जहां एकान्त था। आगे एक कुआं था। कुएं के अन्दर ककड़ी की बेल के बहुत से फल लगे हुए थे। कुएं के पास भेड़-बकरियों का झुण्ड चर रहा था। एक बकरी बकरे को कह रही थी--"कुएं वाला काचर यदि ला दे तो मैं तुझसे शादी करूं।" इस पर बकरे ने कहा--"मेरी बुद्धि राजा भोज जैसी नहीं है जो स्त्री के कहने पर मरने जा रहा है। सिर साबत विवाह घने।" यह बात सुनकर राजा ने विचार किया कि मैं चौदह विद्या निधान और मेरी बुद्धि का भेद एक बकरे ने प्रकट कर दिया।

उक्त अवतरण से स्पष्ट है कि लोक-कथाओं के चींटी जैसे क्षुद्र जन्तुओं और बकरा-बकरी जैसे पशुओं के पास भी मानव-जाति से सम्बद्ध बहुत स रहस्य सुरक्षित रहते हैं जिन का उद्घाटन उनके पारस्परिक वार्तालाप द्वारा हो जाता है। कहानी का प्रमुख पात्र इस प्रकार के रहस्योद्घाटन से लाभान्वित होता है। यद्यपि 'चौबोली' कहानी में भोज की रानी रहस्योद्घाटन करने का हठ नहीं करती, वह समझ जाती है कि राजा भोज 'चौबोली' से विवाह करना चाहता है, गंगा की यात्रा की बात तो केवल बहानेबाजी है किन्तु फिर भी यह निश्चित है कि बकरा-बकरी के पारस्परिक वार्तालाप को सुनने के बाद राजा भोज स्त्री के लिए अपने प्राणों को खतरे में नहीं डालता।

लोक-कथाओं का नायक, जैसा पहले कहा जा चुका है, पशु-पक्षियों की भाषा जानने वाला होता है और वह जब किसी विपत्ति में पड़ जाता है तो पशु-पक्षियों की पारस्परिक वार्ता को सुनकर तथा तदनुकूल कार्य करके विपत्ति से छुटकारा पा जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उपश्रवण नामक मूल अभिप्राय का सम्बन्ध क्षुद्र जन्तुओं तथा पशु-पक्षियों की भाषा और उनके पारस्परिक वार्तालाप से है। किन्तु इस का अर्थ यह नहीं है कि दो व्यक्तियों की बात को छिपकर सुन लेने से किसी रहस्य का पता नहीं चलता। ऐसी भी लोक-कथाएं उपलब्ध हैं जिनमें दो व्यक्तियों के वार्तालाप के द्वारा किसी रहस्य का उद्घाटन होता है। उदाहरण के लिए 'सच्ची मितराई' शीर्षक एक राजस्थानी कहानी लीजिए जिसमें वंशी नामक एक पात्र धन के लोभ में अपने मित्र नवल की हत्या कर डालता है। नवल की स्त्री को बंशी पर शक था। एक शाम को वह लुक-छिप कर बंशी की झोंपड़ी के पीछे खड़ी हो गई, बंशी ने अपनी स्त्री को आवाज दी कि मैं तेरे लिए जो गहने लाया हूं, उन्हें पहन कर तो दिखालाए कि तुझे कैसे लगते हैं? स्त्री ने गहने पहन कर दिखलाए और अपने पति से पूछा--"इतने गहने आपने मेरे लिए कैसे बनवा दिए?" बंशी मुस्करा दिया और बोल उठा--"अरी पगली! दोस्त भी तो ऐसा ही पकड़ा था। सेठ जी का लड़का नवल बहुत-सा धन लेकर परदेश गया था। मौका पाकर उसे खत्म कर दिया और ये गहने तुम्हारे लिए बन गए।"

इस कहानी में नवल की स्त्री बंशी और उसकी पत्नी के वार्तालाप को छिप कर सुनती है और इस दृष्टि से यह भी एक प्रकार का 'उपश्रवण' तो है ही, किन्तु यह उपश्रवण कथा-कौशल के रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ है, इसलिए इसे उपश्रवण नामक मूल अभिप्राय नहीं माना जाना चाहिए।

ब्लूमफील्ड का इरादा हिन्दू कथाओं के अभिप्रायों का एक विश्वकोश तैयार करने का था। उनका विचार था कि मूल अभिप्रायों में उपश्रवण नामक अभिप्राय का स्थान उसकी सर्वसामान्यता और बहुमूल्यता के कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहेगा।

राजस्थानी लोक-कथाओं में भी उक्त अभिप्राय के अनेक रूप उपलब्ध होते हैं जिनमें से कुछ का ऊपर उल्लेख किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दण्डकारण्य योजना

भगवान सिंह

भारत के राष्ट्रीय महाकाव्य रामायण, महाभारत तथा बाद के संस्कृत साहित्य में और पुराणों में भी हमें ऐसे घोर जंगलों की चर्चा मिलती है जिनको आवश्यकता पड़ने पर साफ कर नए सिरे से बसाया गया था। ऐसे वनों को अरण्य या कान्तार कहते थे। राष्ट्रीय और सामाजिक महत्व के प्रत्येक कार्य के लिए उस समय शासकवर्ग या राजाओं की ओर देखने की आवश्यकता नहीं होती थी। उस समय की सभ्यता के अग्रदूत ऋषि-मुनि वेद, स्मृति, पुराण और काव्यग्रंथों की रचना के साथ-साथ नए-नए उपनिवेश बसाने का काम भी करते थे। ये उपनिवेश या नई बस्तियाँ किसी बनी बनाई बस्ती पर आक्रमण करके नहीं, किन्तु जंगलों को उत्साह-पूर्वक साफ कर, बंजर धरती को उर्वर बना और पशु-पक्षियों तक से प्रेम के आधार पर बनते थे। पता नहीं, उस समय भी हमारे नेहरू जी के सह-अस्तित्व का पाठ उस जमाने के लोगों ने कहाँ से सीख लिया था। शिकार की खोज में उस समय के राजे-महाराजे जब ऐसे ऋषियों के तपोवनों में अचानक जा पहुँचते थे तब उनके हाथों में धनुष की डोरी पर तने तीर ढीले पड़ जाते थे--शेर और बकरी को प्रेम से एक ही किनारे पर जल पीते देख कर। जंगल के इस मंगल में इन सत्ताधारी शासकों के माथे झुक जाते थे। जंगल साफ कर आगे बढ़ते जाने वाले मनीषियों में अगस्त्य ऋषि का प्रमुख स्थान है। अगस्त्य ऋषि नर्मदा पार कर, ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों को लांघ कर कन्याकुमारी तक बढ़ते चले गए। परन्तु रुके यहाँ भी नहीं। समुद्र पार श्रीलंका, जावा, सुमात्रा में भी अगस्त्य ऋषि ने यही काम किया। इन दूर के टापुओं में भी अगस्त्य जी की पूजा आज तक होती है।

और आज भी विज्ञान के इस युग में देश की बढ़ती हुई जन संख्या और विस्थापितों को बसाने की समस्या जब सामने आई तो विचारकों का ध्यान इन्हीं अरण्यों और कान्तारों की ओर गया। इन जंगलों को देखकर भरोसा होता है कि अपने देश की समस्या का हल, यदि हम सूझ-बूझ से काम लें, हमारे पास है। जंगलों की यह लाखों एकड़ धरती हमें न केवल मकानों का आधार और नए-नए खेत देगी, साथ ही इससे अपार लकड़ी, पशुधन और भूगर्भ में पड़े अनेक खनिज पदार्थ भी सुलभ होंगे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तो इस समस्या ने और भी विकट रूप धारण कर लिया। केवल पश्चिमी बंगाल की आबादी पर निगाह डालें तो पता लगेगा कि सन् ४७ से अब तक ४२ लाख आदमी पूर्वी बंगाल से आए। इनमें से ३२ लाख तो पश्चिमी बंगाल में रह गए और १० लाख त्रिपुरा, मणिपुर, आसाम तथा अन्य इलाकों में चले गए। इन बेघर के लोगों में ७० प्रतिशत कृषक हैं। इनको खेत चाहिएँ, नगरों में रहने के लिए मात्र मकान नहीं। बंगाल के अतिरिक्त अन्य राज्य सहायता के रूप में केवल एक लाख एकड़ जमीन दे सके हैं। आज फिर हजारों वर्षों के बाद नई आबादी की समस्या का सामना करने के लिए आज के विचारकों का ध्यान उन्हीं अरण्यों और कान्तारों में से एक प्रसिद्ध स्थान 'दण्डकारण्य' की ओर गया है। वाल्मीकि के अनुसार इस जगह राजा इक्ष्वाकु के पुत्र दण्डक राज्य करते थे। गुरु शुक्राचार्य की कन्या के साथ अभद्र व्यवहार करने के कारण शुक्राचार्य दण्डक पर क्रुद्ध हुए और संपूर्ण दण्डक राज्य जला डाला। रामायण काल में रामचन्द्र के वनवास के समय जंगल हरा-भरा था। रामायण की कुछ प्रधान घटनाएं---राम का पंचवटी निवास (गोदावरी के तट पर), सूर्पणखा की नाक काटना, मारीच वध और सीता-हरण इसी वन की लीलाएँ हैं। रामायण की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :--

अस्माद्धि कारणाद्राम दण्डकारण्य वासिनाम्
त्राणार्थमिह संप्राप्तस्त्रातुमर्हति नो भवान्॥
समर्थो ह्यसि काकुत्स्य त्रैलोक्यस्यापि रक्षणे।
किं पुनर्वीर रक्षसि तव मन्यु हतानि वै॥
अयमिक्ष्वाकु पुत्रेण दण्डकेन महाबल।
देशो निराकृतो राम शापदोषेण मानद॥
दण्डकारण्य मखिलं दर्शनादेव राघव।
शापस्यान्ताय काकुत्स्य प्राप्तस्त्वमरि मदन॥

गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरित मानस में दण्डकारण्य और उसमें प्रभु राम की लीलाओं का वर्णन किया है, :--

दण्डक वन प्रभू कीन्ह सुहावन।
जन मन अमित नाम किए पावन॥
जब त राम कीन्ह तंह बासा।
सुखी भए मुनि बीती त्रासा॥
गिरि बन नदी ताल छवि छाए।
दिन दिन प्रति अति होई सुहाए॥
खग मृग बृन्द आनन्दित रहहीं।
मधुप मधुर गुंजत छवि लहहीं॥
सो बन बरनि न सक अहि राजा।
जहां प्रगट रघुबीर बिराजा॥

इसी प्रकार महाकवि भवभूति ने भी दण्डकारण्य का सुन्दर चित्र अपने नाटक उत्तर रामचरित में दिया है। एक छन्द का हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है :--

यह दक्खिन के सैल जहां गोदावरि नीरा।
गूंजत खोइन माहि करे धुनि प्रबल गंभीरा॥
नील रंग के सिखर लसैं बादल जई कारे।
सरि संगम यह पुण्य विमल उज्ज्वल जल धारे॥

इस प्रकार सांस्कृतिक महत्व के दण्डकारण्य को विकसित करने का निश्चय किया जा चुका है। शासन की ओर से समितियाँ बनीं, वैज्ञानिकों से सलाह ली गई और यह तय पाया गया कि बम्बई, मध्य प्रदेश, आंध्र और उड़ीसा में फैले हुए इस उपयोगी वन को काम में लाया जाय। यह अरण्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बम्बई प्रान्त से लेकर उड़ीसा तक एक श्रृंखला में लगभग अस्सी हजार वर्गमील के विराट क्षेत्र में फैला हुआ है। इतने बड़े वन को एक साथ बसाना सम्भव नहीं है। इसलिए द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अनुसार अभी मध्य-प्रदेश के बस्तर और उड़ीसा के कोरापुर और कलाहंडी जिलों में काम आरम्भ किया जा रहा है। इन जिलों में प्रधान रूप से धान, ज्वार, भुट्टा, दालें, लाल मिर्च, हलदी, कुछ गेहूं, गन्ना और तम्बाकू की खेती होती है। कलाहंडी की पचास हजार एकड़ जमीन में जूट पैदा हो सकता है। इन जिलों में इन्द्रावती साबरी, माचकुन्द और कोट्री नदी से खेती के काम में विशेष उन्नति की जा सकती है। अन्य उद्योग-धन्धों की दृष्टि से कोरापुर में जल से बिजली घर बनाने की योजना हाथ में ले ली गई है। उड़ीसा में विद्युत शक्ति बढ़ाने की ओर ध्यान दिया जा रहा है।

दण्डकारण्य के इन भागों में जल, खेती और बिजली की सुविधा के साथ-साथ छोटे-छोटे उद्योगों को उन्नत करने के साधन भी हैं। छानबीन करने से पता लगा है कि १६,००० वर्ग मील सागौन और साल के वन हैं। इन जिलों में झाड़ू बनाने की घास, महुआ, लाख, बेंत, शहद, चमड़ा, गौंद, आरारोट तथा अन्य जड़ी-बूटियों की कमी नहीं है। इस तरह खेती द्वारा उपज बढ़ाने के अतिरिक्त दण्डकारण्य के इन क्षेत्रों में घरेलू उद्योग-धन्धों की पर्याप्त गुंजाइश है। यहाँ तक कि बहुत अच्छे प्रकार के लोहे से लेकर मैंगनीज, चूना, मकान बनाने का पत्थर, चीनी और अन्य प्रकार के बर्तन बनाने की मिट्टियाँ भी यहां उपलब्ध हैं। संक्षेप में, दण्डकारण्य के इस क्षेत्र को विकसित करने से बढ़ती हुई आबादी की समस्या के हल के साथ-साथ छोटे-बड़े उद्योगों का भी विकास होगा।

यातायात के साधन : अन्य समस्याएं

किसी भी जगह को बड़े पैमाने पर बसाने या उद्योग-धन्धों को बढ़ाने की दृष्टि से आने-जाने के रास्तों का होना बहुत आवश्यक है। दूसरी समस्या जलवायु के सम्बन्ध में आती है। अक्सर यह कह दिया जाता है कि इस क्षेत्र में सड़कों या रेल मार्गों की भारी कठिनाई है। घने जंगलों की याद आने से कठिनाइयाँ सच्ची मालूम पड़ती हैं। किन्तु स्थिति ऐसी नहीं है। इस क्षेत्र की प्रधान सड़क रायपुर से विजयनगरम तक जाती है--उत्तर से दक्षिण की ओर बस्तर और कोरापुर जिलों में होती हुई। इस प्रधान मार्ग के अलावा राज्यों की (उड़ीसा और मध्यप्रदेश), और जिलों की अपनी सड़के हैं। जंगलों की अपनी सड़कें तो होती हैं। हाँ, कभी कभी बरसात के दिनों में कठिनाई हो जाती है। दण्डकारण्य योजना में अधकचरी सड़कों को उन्नत करने का संकल्प है। इसके अतिरिक्त नए रेलमार्ग निर्माण का काम पूरा करना जरूरी समझा जा रहा है--विशेषकर योजना--क्षेत्र को केन्द्र से मिलाने और खनिज क्षेत्रों तक जाने के लिए। ऐसे क्षेत्रों में दक्षिण के विशाखापटनम से उत्तर के 'लौह नगर' भिलाई तक का मार्ग प्रधान है। बालीडेला वह लौह क्षेत्र है जो कि विश्व का संभवतः सबसे बड़ी खान समझा जाता है। इस क्षेत्र की दो विशेषताएँ हैं। यहाँ का कच्चा लोहा उच्च कोटि का पाया गया है और दूसरी यह कि यह कच्चा लोहा खानों या भूगर्भ में नहीं बल्कि चट्टानों में पाया जाता है जिससे खुदाई बड़ी आसानी से हो सकती है। अनुमान यह है कि बालीडेला क्षेत्र में ३३ अरब टन कच्चा लोहा भरा पड़ा है। यहाँ ताम्बा तथा अन्य धातु भी उपलब्ध है। इस लौह क्षेत्र से रेलमार्ग को जयपुर, कोरापुर और जगदलपुर तक, पुनः उत्तर की ओर जगदल पुर से कोडा गांव और नारायणपुर होकर भिलाई तक जोड़ना विचाराधीन है। इस भारी योजना के पहले भाग के सर्वेक्षण का काम इस वर्ष आरम्भ हो जाएगा। इस सम्पूर्ण रेलमार्ग का निर्माण छः वर्ष में पैंतालीस करोड़ रुपया व्यय करके हो सकता है। आगे चलकर दिल्ली और कलकत्ता से इस क्षेत्र को वायु-यातायात से जोड़ देने का विचार भी है। जगदलपुर में सामान्य स्तर का हवाई अड्डा काम कर रहा है। इस की वृद्धि की जा सकती है।

कुछ यह भ्रम भी है कि गर्म जगह और वर्षा के कारण कालाजार, फाइलेरिया और मलेरिया दण्डकारण्य के हिस्सों में बहुत होता है। जांच करने से पता लगा है कि कालाजार और फाइलेरिया के मरीज इस क्षेत्र में नहीं हैं। मलेरिया अवश्य था, किन्तु इसकी रोकथाम बहुत हुई है, जिससे इस रोग के नियंत्रण की मात्रा बढ़ती जा रही है। 'राष्ट्रीय मलेरिया निरोधक कार्यक्रम' विशेष रूप से इस क्षेत्र में कार्यान्वित हो रहा है। तात्कालिक सुविधा के लिए, तम्बुओं में रहने वालों के लिए तथा अन्य आवास-स्थानों की रक्षा के लिए, शीघ्रगामी गाड़ियों की व्यवस्था की गई है। इन क्षेत्रों का जलवायु सामान्य रूप से पश्चिमी बंगाल जैसा है। वर्ष भर में वर्षा पचास से साठ इंच तक होती है।

दण्डकारण्य योजना के आधारभूत सूत्र संक्षेप में ये हैं :--

(१) जमीन का संतुलित उपयोग, जंगलों की सुरक्षा, नई जमीन तोड़कर खेती योग्य बनाना और नई वैज्ञानिक बस्तियाँ बसाना ;

(२) मिट्टी, जलवायु और सिंचाई के साधनों के आधार पर ऐसी कृषि-पद्धति का निर्माण, जो सबके लिए उपयोगी हो ;

(३) प्राप्त जंगली और खदानी सामग्री के आधार पर उद्योग-धन्धों का विकास ;

(४) शिक्षा और तकनीकी प्रशिक्षण के आवश्यक उपकरण जुटाना ;

(५) आवश्यक यातायात के मार्ग और बाजार विकसित करना तथा हर मौसम के योग्य सड़कें बनाना ;

(६) प्राकृतिक धन--जैसे खान आदि की खोज करना ;

(७) जहाँ सम्भव हो वहाँ सिंचाई के साधनों की वृद्धि करना ; और

(८) मलेरिया और अन्य हानिकारक रोगों पर नियंत्रण करना।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि दण्डकारण्य का काम नई दुनियां के निर्माण का काम है। आधुनिक वैज्ञानिक साधनों के सहारे छोटे-बड़े उद्योग-धंधे विकसित करने की भारी गुंजाइश है। इस प्रकार जन-साधारण की दिलचस्पी और सहयोग से ही राष्ट्र निर्माण का यह महत्वपूर्ण अंग विकसित किया जा सकता है। जब पुराने जमाने के ऋषि केवल अपने अदम्य उत्साह से इतना भारी काम कर गए हैं कि हम उन्हें आज तक याद करते हैं तो आज प्रबुद्ध और स्वतन्त्र भारत के नागरिक वैज्ञानिक साधनों और उत्साह से यह राष्ट्रीय कार्य भी सम्पन्न कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेलुगु उपन्यास साहित्य

डी० मंजुलता

आधुनिक तेलुगु भाषा का प्रथम उपन्यास 'राजशेखर चरित्र' है, जिसे वीरेश लिंगम पंतुलु ने लिखा। एक अंग्रेज लेखक जे० रौबर्ट हैंचिसन ने इस उपन्यास को बहुत पसन्द किया था और सन् १८२७ में इसका अंग्रेजी में भी अनुवाद किया गया था। 'राजशेखर चरित्र' में लेखक ने आन्ध्र की उस समय की कुरीतियों की कटु आलोचना की थी।

तेलुगु उपन्यास साहित्य को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से पंतुलु ने 'चिन्तामणि' नामक एक मासिक पत्र निकाल कर उपन्यास-प्रतियोगिता चलाई। तब कई उपन्यास लेखक आगे आए थे। यह सन् १८९३ की बात थी। खंडवल्लि राम चन्द्रुडु के 'धर्मवती विलासम' को इस प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था। सन् १८९२ तक जितने उपन्यास तेलुगु में लिखे गए थे उनमें 'संजीवराम चरित्र', 'रामचन्द्र विजय', 'विवेक विजय', 'त्रिविक्रम विलास', 'मालती राघव', 'केसरी विलास', 'हेमलता', 'अहल्याबाई', 'कर्पूर मंजरी', 'भक्षी' अत्यन्त उल्लेखनीय रचनाएं थीं।

भारत की अन्य भाषाओं में जब उपन्यास प्रगति कर रहा था, तब तेलुगु में भी उपन्यास ने महत्व प्राप्त करना आरम्भ किया था। इस कार्य में चिलकमूर्त्ति लक्ष्मी नरसिंहम ने वीरेशलिंगम का साथ दिया और तेलुगु में कई उपन्यास लिखे। 'रामचन्द्र विजय' इनकी उल्लेखनीय रचना है। 'अहल्याबाई', 'हेमलता', 'कर्पूर मंजरी' आदि इनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं। कथावस्तु का चयन तथा निर्वाह की दृष्टि से इनका उपन्यास 'सौंदर्य तिलक' उत्तम उपन्यास समझा गया था।

कोमराजु लक्ष्मण राव ने 'विज्ञान चद्रिका ग्रन्थमाला' की स्थापना कर तेलुगु उपन्यासों की एक प्रतियोगिता चलाई थी। तब कई उपन्यास तेलुगु में प्रकाशित किए गए थे, जिनमें भोगराजु नारायण मूर्त्ति के उपन्यास 'विमल देवी' को लोगों ने बहुत पसन्द किया था। भोगराजु नारायण मूर्त्ति ने इसके अलावा भी कई उपन्यास लिखे। 'अल्लाहो अकबर' भी इनकी श्रेष्ठ कृति है।

इन्हीं दिनों 'आन्ध्र प्रचारिणी ग्रन्थमाला' की तरफ से तीन सौ के करीब उपन्यास प्रकाशित किए गए। ब्राह्म समाज के प्रचार के प्रभाव में आकर तेलगु के कई लेखकों ने बंगला से कई उपन्यासों के अनुवाद प्रस्तुत किए। बंकिम चन्द्र के सभी उपन्यास तेलुगु में आए और धीरे-धीरे शरतचन्द्र एवं रवीन्द्र के उपन्यासों के भी कई अनुवाद तेलुगु में निकले, जो खूब लोकप्रिय हुए।

राजमहेन्द्री से सन् १९२०–३० के मध्यकाल में 'सरस्वती ग्रन्थमाला' की तरफ से कुछ मौलिक उपन्यास व बंगला से अनुदित उपन्यास प्रकाशित हुए। तापी धर्मा राव ने 'वेगु जुवक ग्रन्थमाला' की स्थापना बरमपुरम में कर कई अपने उपन्यासों को प्रकाशित कराया। इसी तरह श्रीपाद सुब्रह्मण्यम शास्त्री ने भी अपने कई उपन्यास स्वयं प्रकाशित किए थे। इनके उपन्यासों की भाषा वह होती थी, जो आन्ध्र की मध्यमवर्गीय ब्राह्मण परिवारों में, खासकर सनातन धर्मावलम्बियों के घरों में बोली जाती थी। 'वड्ल गिंजलु', 'अन्तेकावालि,' इनके अच्छे उपन्यासों में से हैं।

आन्ध्र में राष्ट्रीय असहयोग आन्दोलन जब आरम्भ हुआ और आन्ध्र के गांव-गांव में महात्मा गांधी का सन्देश पहुंचा तो देश में एक नई स्फूर्ति का संचार हुआ। इसका प्रभाव तेलुगु उपन्यास पर भी पड़ा। जिस प्रकार हिन्दी में 'प्रेमचन्द' का उदय हुआ, तेलगु में भी एक प्रेमचन्द ने लेखनी उठाई। वे हैं: उन्नव लक्ष्मीनारायण। इन्होंने यों तो एक ही उपन्यास लिखा—'मालपल्लि',[1] पर उसी से वे काफी विख्यात हो गए। 'मालपल्लि' में अपने युग का ठीक से प्रतिबिम्ब हुआ है।

इस उपन्यास में ग्रामीण समस्याओं तथा परिस्थितियों का एक सुन्दर चित्रण उपस्थित किया गया है। इस उपन्यास द्वारा लेखक की अलौकिक पर्यवेक्षण शक्ति तथा सांसारिक अनुभव की प्रचरता का परिचय हम प्राप्त हो जाता है।

गुडिपाटि वेंकट 'चलं' का तेलुग साहित्य में वही स्थान है, जो हिन्दी में पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का है। इनके उपन्यासों में 'देवमिच्चिन भार्या', 'कन्नीटि कालुव', 'सत्यं शिवं सुन्दर', 'शशि रेखा', 'ब्रह्मणीकं', आदि मुख्य हैं।

इनकी रचनाओं में नग्न वास्तविकता अधिक रहती है, जो शिष्टता की सीमा लांघ जाती है। यथार्थ के नाम से अश्लीलता का यथातथ्य चित्रण किया गया है। इसका यह परिणाम हुआ कि इनकी रचनाओं न युवकों व युवतियों को बहुत रिझाया। स्कूल कालेज के विद्यार्थियों ने उन्हें बहुत पसन्द किया। इसी कारण से उन दिनों आन्ध्र में इनकी पुस्तकों पर प्रतिबन्ध लगाने का भी आन्दोलन चलाया गया था।

फिर भी 'चलं' का तेलुगु उपन्यास लेखकों में अपना एक अलग स्थान है। पाठकों को अपने वश में कर लेने का इनका कौशल अद्वितीय है। उनकी भाषा भी बड़ी मंजी हुई है।

ऐसे लेखक आजकल आन्ध्र प्रदेश के साहित्य क्षेत्र से बहुत दूर जाकर रमण महर्षि के आश्रम में रहने लगे हैं।

तेलुगु उपन्यासों की एक प्रतियोगिता आन्ध्र विश्वविद्यालय ने चलाई थी, जिसमें विश्वनाथ सत्यनारायण का 'वेयि पडगलु' और अडिवि बापिराजु का 'नारायण राव'[2] पुरस्कृत हुए।

'वेयि पडगलु' में तीन पीढ़ियों की कहानी है, जो ग्रान्थिक भाषा में लिखी गई है, जो व्यावहारिक भाषा से भिन्न है। 'एक वीर', 'वीर मल्लडु', 'बद्दन्न सेनानि', 'चेलियलि कट्टा', 'जेबु दोंगलु', 'स्वर्गानिकि निच्चेनलु', 'तेरिचिराजु'—विश्वनाथ सत्यनारायण के कुछ अन्य उपन्यास हैं। इनका भाषा पर बड़ा अधिकार है। दूसरी बात यह कि इन्हें भारतीय संस्कृति एवं

[1] साहित्य अकादमी की तरफ से हिन्दी में इसका अनुवाद हो चुका है।

[2] साहित्य अकादमी की तरफ से हिन्दी में प्रकाशित हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू जाति पर अपार श्रद्धा है। पुरातन समाज को पुनः स्थापित करने के उपदेश ये अपने उपन्यासों में देते हैं। इनकी भावनाएं कुछ भी हों, पर तलुगु उपन्यास इनकी रचनाओं से समृद्ध हुआ है।

'नारायण राव' के अध्ययन से ज्ञात यही होता है कि लेखक ने जिस कथावस्तु को लेकर यह उपन्यास लिखा है, उसके साथ न्याय नहीं हुआ है। हां, प्रत्येक अध्याय को पढ़ते समय यह बात नजर नहीं आती। इसमें आन्ध्र के ग्रामीण जीवन का भी प्रतिबिम्ब मिलता है। फिर भी यह उपन्यास पाठकों को काफी उबा देता है। पर अडिवि बापिराजू की अन्य रचनाओं में यह बात नहीं है। 'हिमबिन्दु', 'गोन गुन्ना रेड्डी', 'जाजि मल्ले' इनकी अन्य रचनाएं हैं। ये लेखक के साथ कवि और कलाकार भी हैं। इस कारण से इनके सभी पात्र या तो कलाकार होते हैं या बड़े आदर्शवादी। इन पात्रों के चित्रण में स्वाभाविकता कम और काल्पनिकता अधिक रहती है। इनकी रचनाओं में कहीं कुछ स्वभाविकता है तो वह प्रकृति वर्णन में है।

तेलुगु में मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखने में टी० गोपीचन्द्र और डा० जी० बी० कृष्णा राव सिद्धहस्त हैं। इन दो लेखकों ने तेलुगु उपन्यास साहित्य को एक नया रास्ता दिखाया है। कथावस्तु के चयन में, उसके संगठन तथा निर्वाह में ये दोनों बेजोड़ हैं। हां, दोनों की शैली में परस्पर कुछ अन्तर अवश्य है। गोपीचन्द्र की अपेक्षा डा० जी० बी० कृष्णाराव के उपन्यासों में गम्भीरता और कवित्व का पुट कुछ अधिक है।

टी० गोपीचन्द्र के उपन्यासों में 'असमर्थुनि जीव यात्रा' और 'परिवर्तन' उल्लेखनीय है। 'असमर्थनि जीव यात्रा' में आत्मकथा का अनुभव होता है। पाठक पूरा उपन्यास पढ़े बगैर नहीं रह सकता। सीताराम राव एक ऐसा पात्र है, जो अपनी असमर्थता अपने आप कहता जाता है। 'परिवर्तन' में एक व्यक्ति की पत्नी की मृत्यु हो जाती है तो वह दुनिया से मुंह मोड़कर अपने ही लोक में रहने लगता है। कालान्तर में उसके जीवन में एक महिला अकस्मात प्रवेश करती है, जो उसे इस धरती पर ले आती है। मानसिक संघर्ष का जितना सुन्दर चित्रण इस उपन्यास में मिलता है, उतना तेलुगु के अन्य उपन्यासों में नहीं है।

डा० जी० बी० कृष्णा राव के उपन्यासों में 'जघन सुन्दरी' और 'कीलु बोम्मलु' श्रेष्ठ समझे जाते हैं। 'जघन सुन्दरी' की कथावस्तु यद्यपि पुरानी है, फिर भी प्रस्तुत करने का ढंग अद्वितीय है। 'कीलु बोम्मलु' का तेलुगु उपन्यास साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। ग्रामीण जीवन में घटने वाली अनेक बातों का सजीव चित्रण इसमें किया गया है। डा० जी० बी० कृष्णा राव जी तेलुगु के अच्छे पंडित हैं; इसी कारण भाषा पर इनका विशेष अधिकार है और कथोपकथन में एक विशिष्टता रहती है, जो तेलुगु के अन्य लेखकों में बहुत कम है।

अंग्रेजी उपन्यासों के प्रभाव में आकर रचना करने वालों में 'बुच्चिबाबू' एक हैं। यूरोप में एक ऐसा वाद चला है कि कहानी और उसके पात्रों को अप्रधान मान कर केवल पात्रों की मानसिक गतिविधियों का चित्रण ज्यों का त्यों करके अज्ञात भावों को व्यक्त किया जाए। इस दिशा में जेम्स ज्वाइस व वर्जीनिया वोल्फ आदि ने प्रशंसनीय कार्य किया है। 'बुच्चि बाबू' का 'विविरिकि मिगिलेदि' (आखिर बचा ही क्या है?) में कथानायक दयानिधि असमंजसता की हालत में पड़कर असहाय हो जाता है। फिर अनेक स्त्रियों के साथ परिचय प्राप्त कर लता है; अपनी तरह-तरह की अनुभूतियों के आधार पर जीवन से कुछ पा लेता है पर एक सवाल अन्त तक बना रहता है कि 'आखिर बचा ही क्या है?' इसका उत्तर पाठकों को भी नहीं मिलता। फिर भी 'चिवरिकि मिगिलेदि' तेलुगु का एक उत्तम उपन्यास है।

'अल्प जीवी' श्री राचकोंड विश्वनाथ शास्त्री का एक सफल उपन्यास है। एक गरीब क्लर्क एक अमीर की लड़की के साथ शादी कर लेता है, पर पारिवारिक सुख उसे नहीं मिलता। उसका साला उसे धोखा देता है। वह रिश्वतखोर बन जाता है और कई तरह की मुसीबतों का सामना करता है। वह कुर्सी पर बैठकर आने-जाने वालों को जब देखता है, तो तरह-तरह के विचार उसमें उत्पन्न हो जाते हैं। आने-जाने वालों में वह एक स्कूल की अध्यापिका को भी देखता है। फिर अड़ोस-पड़ोस की औरतों को देखता है। इस सब से उसमें नव जीवन का संचार हो जाता है। शिल्प की दृष्टि से यह एक सफल उपन्यास है। टैकनीक की दृष्टि से 'अल्पजीवि' तेलुगु के श्रेष्ठ उपन्यासों में से है।

श्री बुर्रा सुब्रह्मण्यम का एक अच्छा उपन्यास है--'विजया'। इसमें मध्यवर्गीय परिवार के एक युवक के मानसिक संघर्ष का चित्रण है। वह एक युवती से प्रेम करता है, पर उसे नहीं पा सकता। उस युवती का अच्छा चित्रण हमें इस उपन्यास में मिलता है।

स्वगतों के रूप में पात्रों के द्वारा कहानी कहलाने की पद्धति में भी तेलुगु में कई उपन्यास आए। मुनिमानिक्यम नरसिंह राव का 'तिरुमालिग', श्री मोक्क पाटि नरसिंह शास्त्री का 'एकोदरुलु' इनमें मुख्य हैं। नरसिंह शास्त्री ने एक हास्य रस प्रधान उपन्यास भी लिखा है--'बारिस्तर--पार्वतीशम'। 'एकोदरुलु' इनका अच्छा उपन्यास है। इसमें एक कुलीन ब्राह्मण युवक वर्णांतर में विवाह कर लेता है और तरह-तरह की तकलीफों का सामना करता है। यह बहुत ही मार्मिक बन पड़ा है।

श्री नरसिंह राव के 'तिरुमालिग' उपन्यास में एक विधुर पुरुष जब जीवन से निराश हो जाता है तब एक अपरिचित स्त्री से उसका परिचय हो जाता है। फिर उस विधुर के जीवन में रोशनी आ जाती है। यह उपन्यास भी हम इन दोनों पात्रों के मुंह से सुनते हैं। एक और अच्छा उपन्यास है, श्री उप्पल लक्ष्मण राव का 'अतडु-आमे' यह उपन्यास भी उत्तम पुरुष एक वचन में लिखा गया है।

तेलुगु साहित्य में श्री कुटुम्ब राव का स्थान बड़ा ऊंचा है। इतनी अधिक मात्रा में साहित्य का सृजन करने वाले लेखक तेलुगु में नहीं के बराबर हैं। क्या कहानी, क्या उपन्यास, क्या एकांकी,--एक कविता को छोड़--इन्होंने साहित्य के सभी माध्यमों में काफी लिखा है। अभी तक इनके दर्जनों कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। दस के करीब उपन्यास छपे हैं। उन्होंने कुछ बड़ी कहानियां भी लिखी हैं, जिन्हें लघु उपन्यास कहा जा सकता है। वातावरण, चरित्रचित्रण, कथा वस्तु--सभी में इनकी प्रतिभा अद्वितीय है। कथा निर्माण, चरित्रचित्रण, शिल्प--इन सभी में वह माहिर हैं और स्वाभाविकता उनका विशिष्ट गुण है। उन्हें अद्वितीय प्रतिभा प्राप्त है। ये आशावादी हैं। इसलिए इनके सभी पात्र आशावादी ही हैं। कहीं भी निराशा नहीं दीखती। इनके पात्र चाहे कितनी बड़ी तकलीफों का सामना करें, पर अन्त में जीवन के थपेड़ों से अपने को बचाकर एक नया मार्ग अपना लेते हैं, और दुखों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। वे पाप नहीं करते। जो कोई धोखा करते हैं, बदमाशी करते हैं; उन्हें उसका फल मिल जाता है; उन्हें सबक सिखाए जाते हैं। जीवन से निराश होकर उनका कोई पात्र आत्म-हत्या नहीं करता। घटनाओं का स्वाभाविक विकास, सामाजिक जीवन की सच्चाइयों की अभिव्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सुन्दर चरित्र हम उनकी रचनाओं में पाते हैं। मानव जीवन की श्रेय तथा प्रेय भावनाओं का संघर्ष उन उपन्यासों में मिलता है। यही कारण है कि आन्ध्र प्रदेश में वह आज प्रमुख उपन्यासकार के स्थान पर आसीन हैं। इनकी रचनाओं में प्रगतिशीलता के बीज मिलते हैं। समाज के सभी अंगों का चित्रण इनकी रचनाओं में है। इनसे प्रभावित होकर कई लेखक तेलुगु में आए। तेलुगु साहित्य में लघु उपन्यास लिखने का एक नया प्रयोग श्री कुटुम्ब राव जी ने किया और इसमें वह बहुत सफल हुए। इनके लघु उपन्यासों में 'लेचिपोयिन मनिषि', 'आड जन्म', 'मारु पेरुलु' आदि मुख्य हैं। कुटुम्ब राव के कुछ प्रसिद्ध उपन्यास हैं : 'चदुवु', 'प्रेमिंचिन मनिषि', 'पंच कल्याणि' तथा 'सरिता देवि', 'डेरी' आदि।

पिनि सेट्टि श्री राममूर्त्ति, व शारदा, के नाम भी इस संख्या में उल्लेखनीय हैं। ये दोनों लेखक अंग्रेजी साहित्य से बिलकुल परिचित नहीं। जो जिन्दगी में देखा और अनुभव किया उसको इन्होंने अपनी रचनाओं में अंकित किया! पिनि सेट्टि के 'दत्तत' उपन्यास में कहानी और उसके पात्र तो स्वाभाविक हैं पर इसमें खटकने वाली बात यह है कि लेखक बार-बार सीधा हमारे सामने आ जाता है।

'शारदा' श्री नटराजन का उपनाम है। इन्होंने तमिल भाषा-भाषी होकर तेलुगु में लिखना आरम्भ किया और जो कुछ लिखा अच्छा लिखा, भले ही उसमें कुछ कमियां रह गई हैं। 'मंची चुडु' इनका प्रथम उपन्यास है और 'एमि सत्य' दूसरा।

श्री भास्कर भट्ल कृष्णा राव के दोनों उपन्यास 'युगसन्धि' और 'विन्त प्रणयम' तेलुगु उपन्यास साहित्य के लिए नई चीजें हैं।

नए लेखकों में श्री मंजु श्री (रमापति राव), श्री देवी, बलिवाड कांता राव, पोतु कूचि साम्बशिव राव, कोम्मूरि वेणुगोपाल राव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

श्री मंजु श्री के तीन उपन्यास आए हैं १–'जारुडु मेट्लु', २–'ऋणानुबन्धम', ३––'पराजितुलु'। भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से ये तीनों रचनाएं बहुत अच्छी बन पड़ी हैं। इनकी कथावस्तु भी बिलकुल मौलिक है।

श्रीमती श्री देवी के 'कालातीत व्यक्तुलु' में लेखिका ने कहानी को अप्रधान मानकर स्थानीय वातावरण एवं भाव संघर्षण को प्रमुखता दी है। इसमें खासकर पढ़े-लिखे व्यक्तियों की चित्तवृत्तियों का सजीव चित्रण उपस्थित किया गया है। क्योंकि लेखिका स्वयं डाक्टरनी हैं, इसलिए उपन्यास में मैडिकल कालेज, अस्पताल, आदि के वातावरण का चित्रण सर्वत्र पाया जाता है। कुछ कमियों के बावजूद श्री देवी का 'कालातीत 'व्यक्तुलु' तेलुगु उपन्यास साहित्य की एक अच्छी रचना है।

श्री बलिवाड कांता राव के दो उपन्यास आए हैं : 'गोड मीदि बोम्म' और 'दगापडिन तम्मुडु'। इनके उपन्यासों में निम्न वर्गीय समाज का चित्रण बड़ी मार्मिक शैली में मिलता है।

श्री पोतुकूचि साम्बशिव राव का उपन्यास 'एडुवरालु मजिली' और कोम्मरि वेणुगोपाल राव का 'पेंकुटिल्लु' तेलुगु के अच्छे उपन्यासों में से हैं।

तेलुगु में लेखिकाओं की भी कमी नहीं है। आधुनिक उपन्यास लेखिकाओं में इल्लिंदल सरस्वती देवी, कावेरी बाई, मल्लादि वसुन्धरा देवी, के० राम लक्ष्मी, चन्दूर मालती, रमा देवी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। चन्दूर मालती के उपन्यास अंग्रेजी उपन्यास के अनुवादों से लगते हैं। उनके अधिकांश पात्र अस्वाभाविक से लगते हैं।

श्री महीधर राममोहन राव ने भी इधर दो उपन्यास लिखे, जो काफी विख्यात हुए––'ओनमालु' और 'रथचक्रालु'। उनके नवीनतम उपन्यास का नाम 'दावानल' है।

बालोपयोगी उपन्यास लेखकों में श्री नार्ल चिरंजीवी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जा सकता है। इन्होंने बच्चों को ध्यान में रखकर जितनी सुगम शैली में रचनाएं की, वैसा किसी तेलुगु लेखक ने नहीं किया। इनकी उपन्यासों में पद्य का आभास मिलता है, जो बच्चों को बड़े चाव से पढ़ने में सहायक होता है। यह स्वयं कवि हैं और बच्चों के लिये कई पुस्तकें लिखीं हैं। 'पेनु––पेसरुचुनु' इनका नवीनतम उपन्यास है, जो एक नई शैली में लिखा गया है।

श्री वात्सव, नंडूर राममोहन राव, चिन्तादीक्षितुलु, नोरि नरसिंह शास्त्री, पिलका गणपति शास्त्री आदि ने बालोपयोगी उपन्यासों की श्रीवृद्धि में बड़ा योग दिया है।

मौलिक रचनाओं के साथ-साथ तेलुगु में दूसरी भाषाओं के अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। जैसा कि हम कह चुके हैं, शरतचन्द के सभी उपन्यास तेलुगु में आ चुके हैं और इसका श्रेय श्री चक्रपाणि (कंट्रोलिंग एडीटर 'चन्दामामा' मद्रास) को मिलना चाहिए। यही बंगला से तेलुगु में अनुवाद करने वालों में से सर्व प्रथम हैं। इसके बाद श्री मद्दि पटला सूरी का नाम आता है। इन्होंने कई बंगला उपन्यासों का तेलुगु में अनुवाद किया। हिन्दी में प्रेमचन्द, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र कुमार, नागार्जुन, अमृतराय, परदेशी, हर्षनाथ, आदि लेखकों के उपन्यास तेलुगु में आए। इस दिशा में श्री दंडमूडि महीधर का प्रयत्न स्तुत्य है।

हाल ही में श्री पुरिपंडा अप्पल स्वामी ने 'आंगुंठा आठो माणो' एवं 'माटीर मनुष्य' नाम के दो उड़िया उपन्यासों का तेलुगु में अनुवाद किया, जो साहित्य अकादमी की तरफ से प्रकाशित हुए हैं। बहुत से अंग्रेजी उपन्यासों के भी अनुवाद तेलुगु में हो चुके हैं।

इस तरह इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि इस पीढ़ी में तेलुगु उपन्यास साहित्य बहुत आगे बढ़ा है और भारत की अन्य भाषाओं के उपन्यास साहित्य के साथ तुलना की जाए तो इस दृष्टि से भी तेलुगु साहित्य पिछड़ा हुआ नहीं है।

●

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि
जलं अन्नं सुभाषितम्
मूढ़ैः पाषाण खण्डेषु
रत्न संज्ञा विधीयते।

"पृथ्वी पर वास्तव में तीन ही रत्न हैं : जल, अन्न और सुभाषित। पर मूर्खों ने पत्थर के टुकड़ों को ही रत्न का नाम दे दिया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बसोली चित्रशैली

राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

कहते हैं, सौन्दर्योपासक शाहजहां के कानों में एक बार यह भनक आई कि बसोली (जम्मू के निकट का एक राज्य) का राजकुमार देखने में अद्वितीय सुन्दर है, और उसने हुक्म दिया कि वह फौरन दिल्ली बुलाया जाय। हुक्म की तामील हुई और राजकुमार दिल्ली बुलाया गया। शाहजहां ने देखा, बात सच है, सुन्दरता उसमें कूट-कूट कर भरी हुई है, मानो स्रष्टा ने खास तौर पर उसे बनाया हो।

जनानखाने तक इसकी खबर पहुँची, मलका तथा शाहज़ादियों ने बादशाह से इच्छा प्रकट की कि वे उसे देखना चाहती हैं। बादशाह बड़े असमंजस में पड़े चूंकि राजकुमार बड़ा हो चुका था, जवानी के ज़ीने तक पहुँच चुका था, किसी बाहरी आदमी--और वह भी नौजवान--को वहां जाने की इजाजत देना कायदे के खिलाफ होता था। बहुत सोच-विचार के बाद, अन्ततोगत्वा, बादशाह ने आज्ञा दी कि वह अन्तःपुर में लाया जाय पर आँखों पर पट्टी बांध कर। बेगमों ने उसे देखा और कहा--सुन्दरता तो आँखों से ही होती है, इन पर तो पट्टी बंधी हुई है, हम इसके वास्तविक सौन्दर्य को किस तरह देख पाएंगे? हार मान कर बादशाह को स्वीकृति देनी पड़ी कि आँखों पर की पट्टी हटा दी जाय। ऐसा ही हुआ तथा मलका और शाहज़ादियों ने पूरी तरह उसके सौन्दर्य का अवलोकन किया और चकित रह गईं। सुन्दरता की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा राजकुमार को तरह-तरह की बहुमूल्य वस्तुएं उपहार में दीं। बादशाह ने बसोली के राजा से असन्तुष्ट होकर उन्हें जेल में बन्दी कर रखा था। आज्ञा दी गई कि वह फौरन जेल से मुक्त किये जाएं तथा सदा के लिए उन्हें अर्द्ध-स्वतन्त्र शासक करार किया और इजाजत दी कि उनके वंश के किसी राजा की यदि कोई सन्तान न हो तो उन्हें अधिकार होगा कि वे अपना उत्तराधिकारी बगैर दिल्ली के बादशाह की अनुमति लिए मनोनीत कर लें। और इस प्रकार राजकुमार की सुन्दरता बसोली राज्य के पुनरुत्थान का कारण बनी तथा कवि की यह उक्ति कि "ज्यों बड़री अंखियाँ निरखि, अंखियन को सुख होत" सोलहों आने सच चरितार्थ हुई।

बसोली चित्रशैली की सबसे बड़ी विशिष्टता कमल जैसी बड़ी और लुभावनी आँखों में है। और ऐसा लगता है कि शायद यह भूमि 'बड़री अंखियों' के लिए सदा से मशहूर रही है तथा यहाँ के चितेरों ने उसे अपनी तूलिका से अमर बना दिया है। बसोली कलम के चित्र इन सुन्दर और बड़ी आँखों के कारण दूर से ही पहचाने जा सकते हैं।

रावी के तट पर स्थित, बसोली एक छोटा-सा राज्य था जहाँ की चित्रशैली पर मु ल कलम अपनी छाप न डाल सकी। प्रकृति के क्रीड़ा-स्थल बसोली के सम्बन्ध में श्री जे० सी० फ्रेंच के ये शब्द बहुत ही सही हैं--

"पथरीली चट्टानों की खड़ी दीवारों से परिवेष्टित, चौड़ी तथा तीव्र-गतिशील सरिता के तट पर बसा हुआ, पहाड़ी राज प्रासादों में श्रेष्ठतम सुन्दर, राजप्रासाद का मुकुट धारण किये हुए तथा हिमालय के हिम में मढ़ा हुआ बसोली अपनी सुन्दर स्थिति के कारण पहाड़ के सप्त आश्चर्यों में एक होने का दावा बड़े औचित्य के साथ कर सकता है।"

स्पष्टतः इससे बढ़कर चित्रकला के जन्म और विकास के लिए उपयुक्त स्थान दूसरा कौन हो सकता था?

बसोली के पालवंशीय राजाओं की संरक्षता में चित्रकला ने यहाँ उत्कर्ष पाया था। मदनपाल इन राजाओं में इस कला के सबसे बड़े पोषक थे। मालिनी नाम की एक राजमहिषी के आदेश पर इस शैली के अनेकों उत्कृष्ट चित्र अंकित हुए थे जिनमें गीतगोविन्द से सम्बन्धित चित्र मुख्य हैं।

रानी मालिनी चित्रकला से प्रेम ही नहीं रखती थीं बल्कि स्वयं इस कला की निपुण पारखी भी थीं।

हिमालय की गोद में पली हुई इस चित्रकला पर मुसलमानी शैलियों का प्रभाव नहीं के बराबर ही पड़ा; जबकि कांगड़ा शैली पर इनकी जबर्दस्त छाप साफ़-साफ़ परिलक्षित है। बसोली शैली में हम मुग़ल नहीं, प्राचीन हिन्दू शैलियों की--अंजताशैली की खासतौर पर--झलक पाते हैं। चित्र बोलते नहीं पर आकृति द्वारा भाव-भंगी से, चित्रकार की कलम जिसे अंकित करती है, वे अपना भाव प्रदर्शित करते हैं। प्राचीन हिन्दू चित्रकारों ने इस तथ्य को पूरी तरह समझा था और इसीलिए इस विषय के हिन्दू-कालीन ग्रंथों में 'मुद्रा' पर काफी जोर है विशेषकर हस्त-संकेत पर। इसका सबसे बड़ा उदाहरण हम अजंता के भित्ति-चित्रों में पाते हैं, जहाँ चित्रों के हाथ के इशारे मानो बोल रहे हैं। इटली के पुनर्जागरण काल के चितेरों की कृतियों में भी हम इसकी एक झलक पाते हैं।

बसोली शैली के चित्रों का, बड़ी आँखों के बाद यह दूसरा विशिष्ट गुण है। हाथ--खासकर अंगुलियों--के संकेत से चित्रित व्यक्ति का भाव-प्रदर्शन इन चित्रों में बड़े सुन्दर ढंग से कराया गया है। पर्सी ब्राउन के इस कथन की सबसे अधिक सार्थकता हम बसोली के चित्रों में ही पाते हैं--

"चित्रकार में यह क्षमता न थी कि वह वास्तविक भाषण का दान दे सके पर कथित भाषा की जिन वस्तुओं से सृष्टि होती है वे सभी उन संकेतों में हैं जो उसने चित्रों को प्रदान किए थे।"

बसोली चित्रों का एक अपना व्यक्तित्व है तथा अन्य पहाड़ी शैली के चित्रों से वे बिलकुल ही भिन्न हैं। इनकी खास विशेषताएँ ये हैं जिनके द्वारा ये आसानी से पहचाने जा सकते हैं:

१. शरीर कांगड़ा तथा गढ़वाली शैलियों के विपरीत, ओज से भरे हुए पुरुषवत प्रतीत होते हैं।
२. आँखें बड़ी तथा कमल के समान होती हैं जिनमें मादकता और आकर्षण मानो कूट-कूट कर भरे हुए हों, और वे इस प्रसिद्ध दोहे का स्मरण करा रहे हों—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति

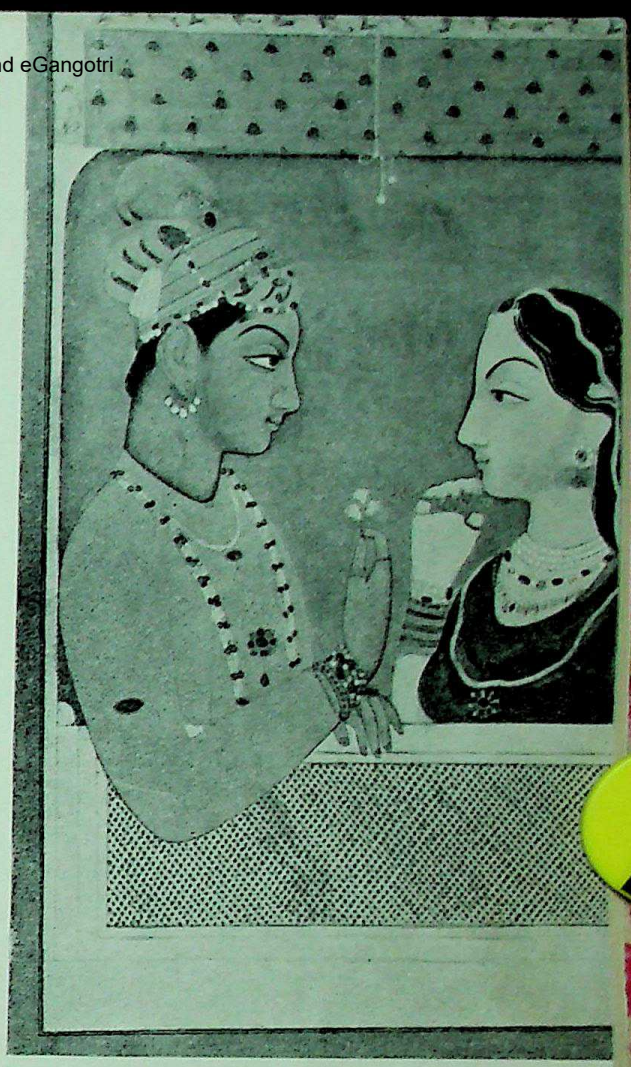

नायक-नायिका
(कांगड़ा शैली से प्रभावित)

बसोली शैली के कुछ चित्र

पंजाब संग्रहालय तथा श्री एम० एस० रन्धावा के सौजन्य से ।

फोटो : मोतीराम जैन

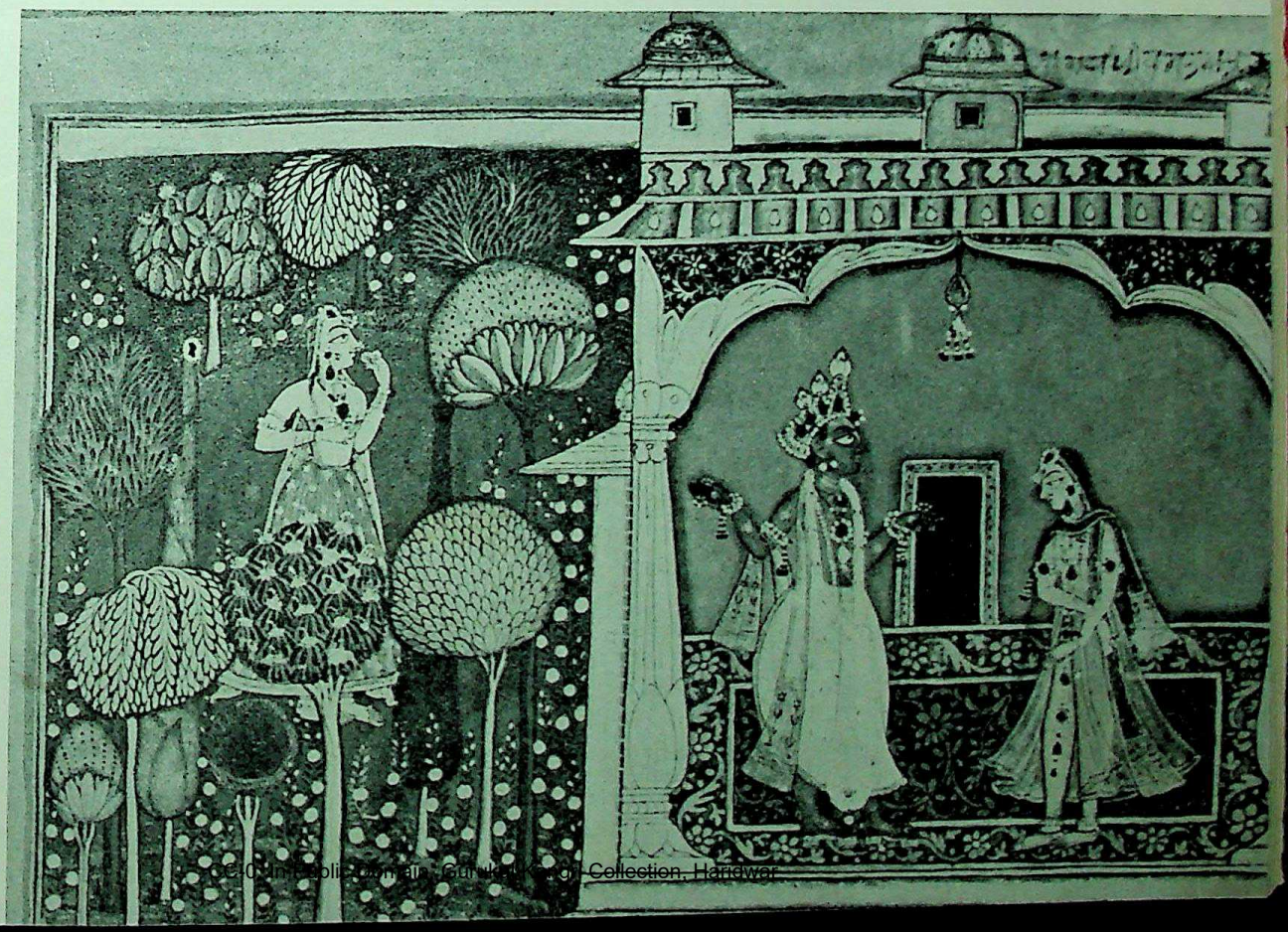

बांई ओर :
राधा वाटिका में

दाहिनी ओर :
राधा कृष्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

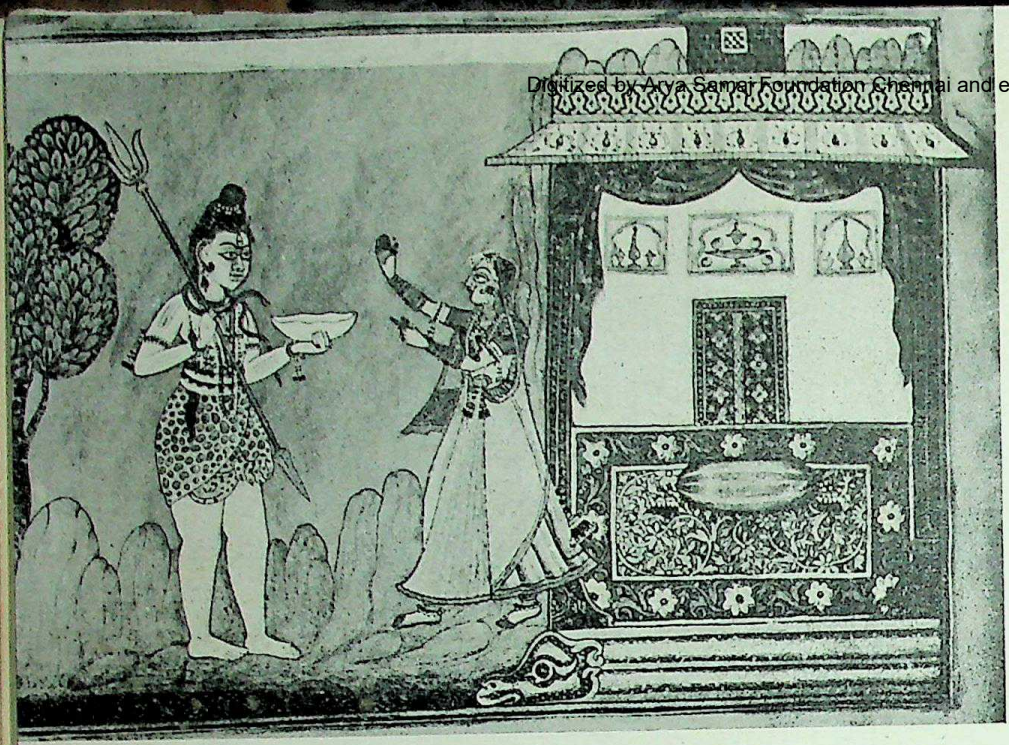

शिव को भिक्षादान

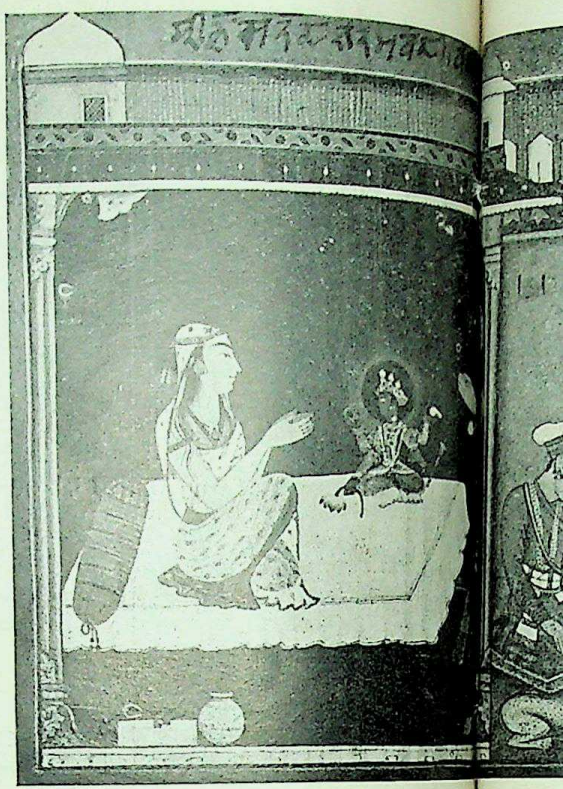

जेल में हैं कृष्ण

राधा कृष्ण की खोज में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

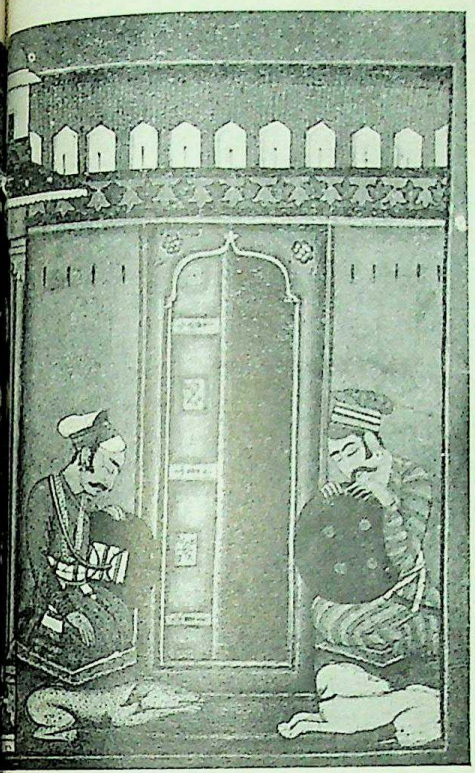

जेल में बंद कृष्ण

राधा अपनी सखी के साथ

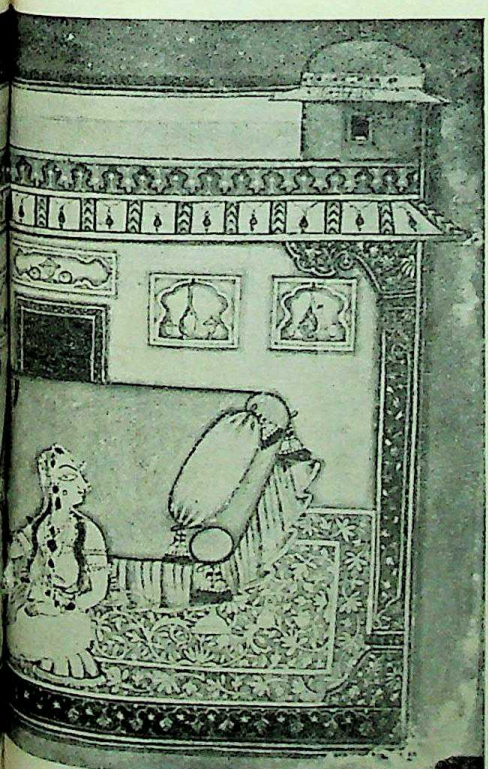

राधा सखी को सन्देश देते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

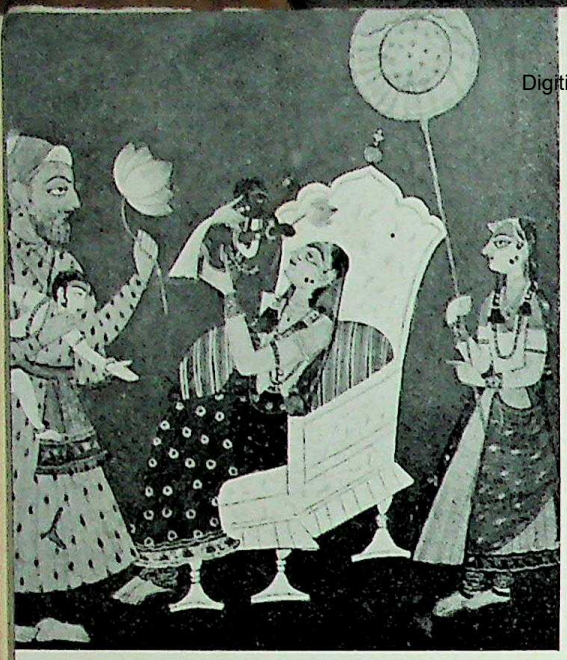

बाल कृष्ण अपने परिवार में

वाद्य वृन्द

कंस वध

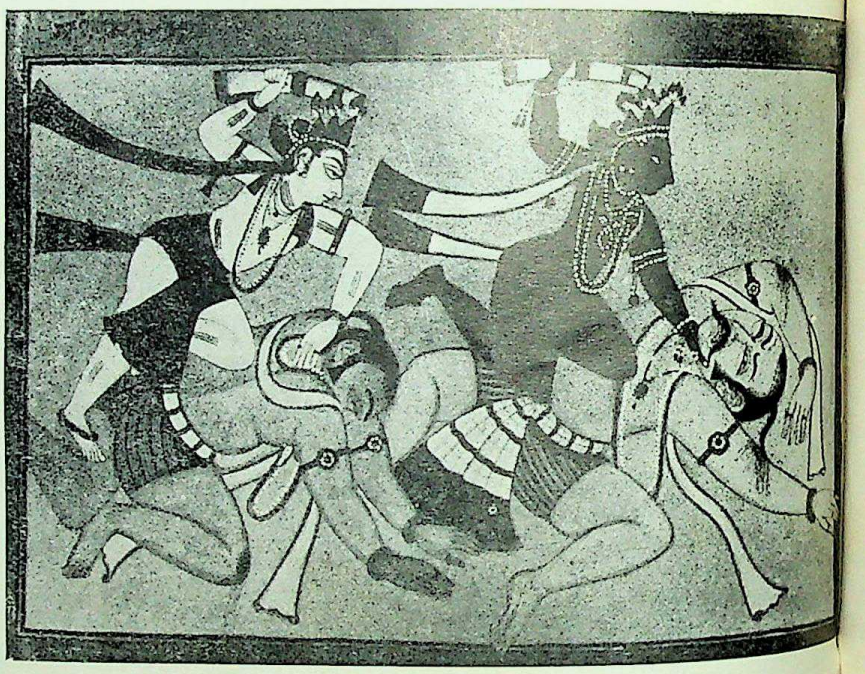

तिलंगी रागिनी (हिंडोले की पत्नि)

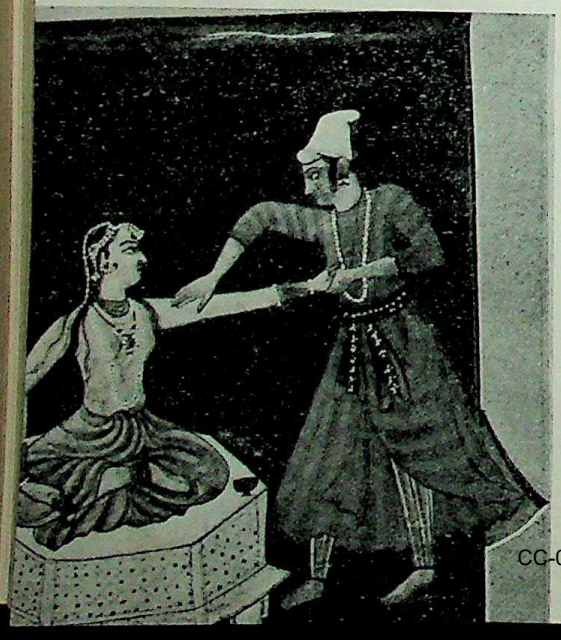

समुद्र मन्थन

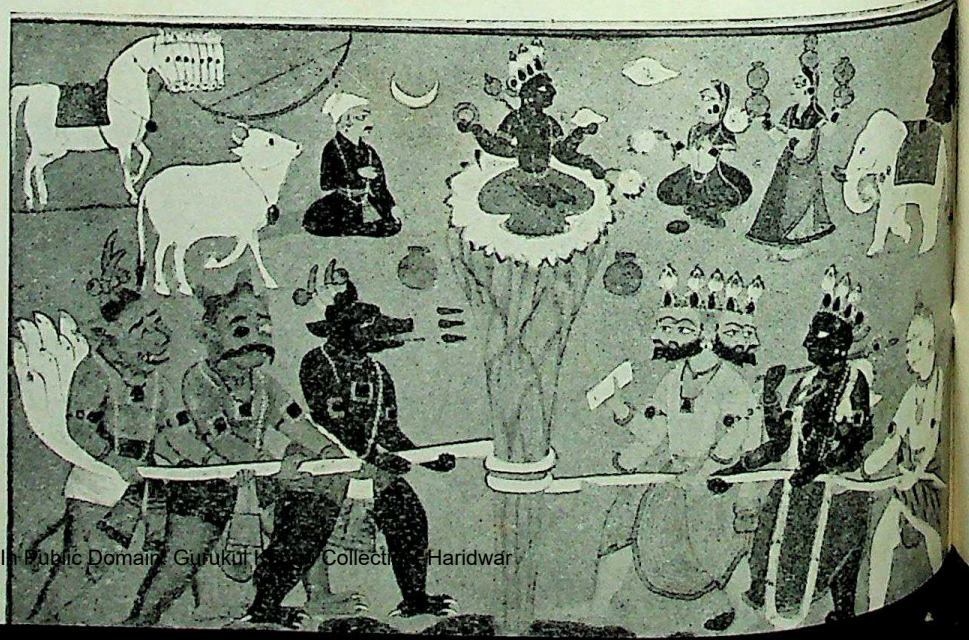

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमिय, हलाहल मद-भरे, स्वेत स्याम रतनार
जियत, मरत, झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इकबार ।

३. ललाट पीछे की ओर धंसा हुआ, नाक लम्बी और झुकी हुई, छोटा मुख, धंसी हुई ठोढ़ी, भरे हुए गाल ।
४. हस्त मुद्राओं का पूर्ण प्रदर्शन ।
५. स्त्रियों के वस्त्र पारदर्शक ।
६. पुरुषों का ऊपर का अंग वस्त्र-रहित, बदन पर सिर्फ एक चादर । धोती का रंग अधिकांशतः सुनहरा तथा शरीर पर तरह-तरह के अलंकार ।
७. सजावट में अधिक आकर्षण पैदा करने के लिए बहुधा गोबरैला (एक प्रकार का कीट) के पंखों की छोटी-छोटी कतरन का व्यवहार ताकि देखने में वे पन्ना जैसे लगें ।
८. पृष्ठभूमि अधिकतर समतल तथा तूलिका की एक ही घसीट से रंगी हुई होती है । रंग गाढ़ा पीला, गाढ़ा या हल्का हरा, लाल तथा चाकलेटी रहता है । कभी-कभी ऊपर आकाश का किंचित अंश दर्शित रहता है जिसमें चांद नजर आता है ।
९. चित्र का किनारा अधिकतर पीला, लाल अथवा सिन्दूरी रंग में रंगा हुआ होता है ।
१०. स्त्रियों के दो चार बाल कपोल अथवा गालों पर लटकते हुए होते हैं ।

बसोली शैली के चित्रों के ये दस मुख्य लक्षण हैं जिनसे चित्र की पहचान बड़ी आसानी से की जा सकती है । इन चित्रों के रंगों में भड़कीलापन बहुत अधिक है ।

बसोली एक छोटा-सा राज्य था, इसलिए चित्रों का निर्माण एक सीमित दायरे के भीतर हुआ । यही वजह है कि आज जिस अधिक संख्या में मुग़ल, राजस्थानी, कांगड़ा, और गढ़वाली शैलियों के चित्र उपलब्ध हैं, बसोली के नहीं । दरअसल कुछ साल पहले तक बसोली शैली का नाम भी इने गिने लोग ही जानते थे, आमतौर पर यह ज्ञात नहीं था । चित्रकला के पारखी राय कृष्णदास का यह कथन कि इस शैली के चित्र अल्प और दुष्प्राप्य हैं, सही है ।

१७वीं शती से लेकर १९वीं शती के आरम्भ तक बसोली की कलम तस्वीरें उतारती रहीं । विषय, पौराणिक कथाएँ, राजाओं के व्यक्ति-चित्र, सामाजिक प्रथाएँ आदि होते थे । महाकवि जयदेव के 'गीतगोविन्द' पर आधारित एक बड़ी सुन्दर चित्रावली प्राप्त है जिसका अंकन-काल श्री अजित घोष के विचार से १७वीं शती है । उनका यह भी मत है कि पहाड़ी शैलियों में बसोली सर्वाधिक प्राचीन है । कांगड़ा शैली तथा बसोली में यह फर्क है कि जहाँ कांगड़ा में सूक्ष्माकार चित्रों के गुण विशेष हैं, बसोली में, भित्ति-चित्रों के, और इसमें सन्देह नहीं कि इन पर हिन्दू प्रभाव औरों से कहीं अधिक है ।

१८४६ में बसोली के अंतिम राजा कल्याणपाल को पेंशन देकर जम्मू के महाराज गुलाबसिंह ने इसे अपने राज्य में मिला लिया, और इसके साथ-साथ ही बसोली कलम की भी एक प्रकार से समाप्ति हो गई ।

●

बंगला कविता

मेला

प्रेमेन्द्र मित्र

यहाँ मेला लगेगा ।
जंगल और पहाड़ के टेढ़े-मेड़े ऊँचे-नीचे रास्ते में होकर
दूर-दूर की बस्तियों की खुशी
रंगीन उत्सुकता से झलमल
इन कई दिनों के लिए इस शाल-पलाश वन में इकट्ठी होगी
ढोलों से कांपेगी रात्रि
धक्-धक् करती हुई—पृथिवी के हृदय की उत्तेजना
महुआ की मादकता के साथ
मशाल से चमकेगी लाल-लाल वासना-दीप्त आँखों में ।
ऊपर—
धूल के बादल से मिला कोलाहल
कुछ क्षण शून्य में छाया रहेगा ।
इसके बाद यह सब समाप्त होने पर वही निर्जनता ।
पड़े रहेंगे कुछ अवशिष्ट चिह्न—
जली लकड़ी, खर, राख,
इधर-उधर बिखरे टूटे-फूटे कालिख लगे मिट्टी के बरतन ।
फटे कागज के टुकड़े और झड़े पत्ते
एक साथ हवा की इच्छा पर
पेड़ की डालों के ऊपर नाचते हुए
सहसा एक मेघ के टुकड़े को देखकर
उसका पीछा करते हुए आकाश में ओझल हो जाएँगे ।
फिर और नीचे—
रहेगा केवल पहाड़ी नदी का
एकसा मृदु कलकल स्वर
बीच-बीच में चिड़ियों की बोलियों से गुंथा हुआ
तब वहाँ कोई आ सकता है एक दिन,—
शिकारी चीते की तीव्र व्यग्रता लेकर नहीं,
और न चकित शशक की भीरु विह्वलता के साथ ।
शायद वह यहीं
अकारण ही घूम-फिर कर
पा जायगा अपने प्रश्न का आश्चर्यजनक उत्तर—
निर्जन स्तब्धता खोज कर
बार-बार दो दिन के अपार आल्हाद का
हनन क्यों नहीं करते
इस मैदान के घेरे में
बस्ती बसा कर ।

अनुवादक : गोपाल चन्द्र दास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुबह की कमज़ोरी

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा

घड़ी ने साढ़े छः बजे की एक टन बजाई। सुशीला ने चादर से मुंह बाहर निकाला और सोचा कि अब लेटे रहने से काम नहीं चलेगा। यों नींद तो उसे बहुत कम आती है, चार-पांच और छः के घन्टे उसने चारपाई पर करवटें बदलते ही सुने थे। परन्तु उठने के समय उसके तन मन पर एक थकन और सुस्ती सी छाई रहती है। डाक्टर का कहना है कि इसे 'सवेरे की कमज़ोरी' कहते हैं। चार महीनों से वह दवा खा रही है, इन्जेक्शन भी लग रहे हैं, पर रोग है कि जाने का नाम नहीं लेता। बस, रात दिन देह व मन पर एक जड़ता-सी छाई रहती है। भूख भी कम लगती है और किसी काम के करने में मन नहीं लगता। परन्तु गृहस्थी है, पति है, तीन बच्चे हैं, काम तो करना ही होता है।

सुशीला ने मुंह पर छितरा आई लटों को हाथ से पीछे किया। साड़ी का पल्ला ठीक किया और उठ बैठी, धीरे-धीरे घर के काम काज प्रति दिन की दिनचर्या के रूप में चलने लगे। नौकर छोकरे की सहायता लेकर घर आंगन बुहारा गया। चूल्हा जला, नाश्ता बना। पति को चाय भेजी। साढ़े नौ तक भोजन भी बन गया। पति के दफ्तर और बच्चों के स्कूल जाने के बाद वह अपना नहाना धोना करेगी। तब यदि इच्छा हुई तो दो रोटी खा लेगी। घर में काम ही कौन अधिक है। दोनों बड़े लड़के स्कूल चले जाते हैं। बस पांच वर्ष की चुन्नी ही घर की सफाई और निस्तब्धता को भंग करने के लिए रह जाती है। पति मनोहरलाल अच्छे स्वस्थ पुरुष हैं। अवस्था होगी यही पैंतीस छत्तीस की पर देखने में इससे भी कम के ही जंचते हैं। पत्नी की बीमारी से वह भी परेशान हैं। पिछले साल जब सुशीला के पांचवी मृत सन्तान ने जन्म लिया, तभी से वह बीमार है। ऐसी बीमारी तो नहीं कि चारपाई पर पड़ी रहे या बुखार उतरता ही न हो। वह दिनों दिन कमजोर होती जाती है, चिड़चिड़ी भी। दवा-इलाज में मनोहर बाबू कमी नहीं करते। फल दूध जो चाहे मंगाए खाए। तनख्वाह तो वह पूरी की पूरी पत्नी के हाथ पर रख देते हैं।

दफ्तर को चलने के लिए तैयार हो, मनोहर बाबू ने रसोई घर के द्वार पर खड़े हो नित्य की भांति प्रश्न किया--"आज तबियत कैसी है ?"

"अच्छी ही है"--सुशीला ने भी पुराना उत्तर दोहराया।

"देखो दवा समय पर ले लिया करो। बीच-बीच में दवा छोड़ देती हो, तभी रोग नहीं जाता। और हां डाक्टर ने कहा है प्रातःकाल मील आध मील टहल आया करो, तो जल्दी ही स्वास्थ्य सम्हल जाएगा।"

सुशीला ने तवे पर अंतिम फुलका छोड़ते हुए अलस भाव से कहा--"हूं।"

पति ने तनिक खीज से कहा--"तुम ो किसी बात पर ठीक-ठीक अमल ही नहीं करतीं। ज़रा सूरत तो देखो कैसी होती जा रही है। कल से सवेरे टहलने अवश्य जाया करना।"

"लेकिन किस के साथ जाऊं ?" इस बार सुशीला ने मुंह ऊंचा किया--"तुम तो सात बजे से पहले उठते ही नहीं।"

किसके साथ ? यह तो मनोहर बाबू ने सोचा ही नहीं था। दो क्षण रुककर बोले--"सुभाष को जगा लिया करो। उसका भी टहलना हो जाया करेगा। और न हो तो तुम अकेली ही जा सकती हो। अच्छा तो चलूं। शाम को कुछ देर से लौटूंगा। बाबू श्यामलाल के यहां चाय पार्टी है।" कहते-कहते मनोहर बाबू साइकिल पकड़ कर बाहर चल दिए।

सुशीला का मन न जाने क्यों खीज से भर गया। बात कुछ भी नहीं है। पति ने कोई कड़ी बात नहीं कही। कभी भी नहीं कहते। बल्कि जबसे वह बीमार रहने लगी है, तब से तो वह सभी बातों में सतर्क रहने लगे हैं। डाक्टर ने कहा है, अब दो-चार वर्ष सन्तान नहीं होनी चाहिए। और सुशीला जानती है इधर चार महीनों से मनोहर बाबू इस बारे में कितने सतर्क हैं। ऐसा भला पति दुनिया में किसे मिलता है। पति के प्रति मन में वह अत्यन्त कृतज्ञ है। परन्तु इस समय केवल इतनी ही बात पर उसका मन रोष से, खीज से भर उठा। कैसे सहज भाव से कह दिया-- न हो सैर करने अकेली ही चली जाया करो। अकेली ! ठीक है, मैं अब बूढ़ी हुई। नीली नसें उभरी हुई अपनी गोरी (या हल्दी-सी पीली) पतली बाहों को देख कर उसने सोचा--क्या बचा है अब मुझ में ? एक पहरेदार साथ लगा कर वह क्या करेगी ? हां, फागुन से उनतीसवां शुरू हो गया उसे। तीस के बाद औरत तो बूढ़ी हो जाती है। बूढ़ी ! कब किस प्रत्याशित क्षण में समय राक्षस ने उसका यौवन चुरा लिया। रसोई वैसी ही छोड़कर वह कमरे में आ गई। वैसी ही सिलवटों पड़ी मैली धोती पहने वह शृंगार मेज के सामने जा खड़ी हुई। नाक पर जगह-जगह कालिख लगी हुई थी। गाल पिचके, आंखें निस्तेज। तो वह बूढ़ी हो गई है ? इसी से इन्हें मुझ में कोई आकर्षण नहीं प्रतीत होता। उन्हें क्या, शायद किसी के लिए भी कोई आकर्षण शेष नहीं रहा।

सुशीला को लगा, उसकी वह सवेरे की कमज़ोरी अब आज 'दोपहर की कमज़ोरी' भी बन गई है। माथा थाम कर वह वहीं चटाई पर लेट गई। लेटे-लेटे सोचा, अभी चार-पांच साल पहले तक वह जब भी गली बाजार में निकल जाती थी हमेशा इसी बात का खटका लगा रहता था, कहीं कोई बोली-ठोली न मार दे। भीड़ में कोई जानबूझ कर धक्का न दे। 'मुए तेरे मां-बहन नहीं है' की गाली तो सुशीला ने जान कितनों को कितनी बार दी है। कैसी मुसीबत थी उन दिनों पर इधर तो याद नहीं आता, कब कितने दिनों से उसने यह सब कुछ नहीं सुना। न जाने क्यों सुशीला का मन हुआ कि काश, वे दिन फिर लौट आएं। उसे अपने मौहल्ले के गणेश की गाई पंक्ति याद हो आई, जिसे वह उसे अकेले पाकर गा उठता था "जानी, जोबना पे इतना न इतराया करो ओ !"--कितना क्रोध आता था उसे गणेश पर। जी होता था कि मरे का मुंह झुलस दे। और मुंह न झुलस पाने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असमर्थता को वह अपने गले के आंचल से अपने को दबा ढंक कर, सिर नीचा करके कतरा कर निकल जाने में पूरा करती थी। साथ ही छोटे की याद भी आ गई। वह तो उसे देखते ही --'हायरी पटाखा !' कह कर छाती पर हाथ रख लेता था। वह उसे देखते ही झट से किवाड़ बन्द कर लेती थी। आज उन पुरानी स्मृतियों की रेखाएँ उभर आईं, तो सुशीला सोचने लगी--क्यों मुझे उस पर इतना क्रोध आता था ? उन बेचारों का कुसूर ही क्या था। अपनी उस समय की वह गदराई कच्ची अम्बी-सी भरी-भरी देह, गोल मांसल कलाइयाँ और फूली-फूली खूब लाल सिकी कचौरी से गाल, होंठ मानों पके हुए करौंदे हों। क्या जवानी चढ़ी थी उसे भी ! बोली-ठोली मारने वालों को ही क्या दोष दिया जाए ! खैर, अब तो इधर मुद्दतों से मुसीबत दूर हो गई। उसने माथे पर बल देकर सोचा--अब इधर तो कभी किसी ने इतना भी नहीं कहा कि चलिए देवी जी मैं पहुंचा दूं ? कमजोरी बढ़ती जा रही थी। सुशीला भूखी प्यासी वहीं चटाई पर सो गई।

दो बार सुभाष को जगाया। कुनकुना कर वह फिर सो गया। सुशीला का जी हुआ, न जाए। इतनी दवा खाती है, इन्जैक्शन भी लिए हैं, पर जब खून बनता ही नहीं, कमजोरी दूर ही नहीं होती, तो सवेरे की सैर में क्या अमृत घुला है। परन्तु पति उठ कर दुखी होंगे, कहेंगे, पानी की तरह पैसा इलाज में जा रहा है। पर तुम डाक्टर की बात नहीं मानतीं। सुबह की सैर को नहीं जातीं, तो आराम कैसे आए। द्वार से झांका, आकाश में अभी तारे अपने मंद पड़ते प्रकाश से धरती को निहार रहे थे। उदास फीका पड़ता चांद भी एक कोने में दुबका हुआ था। और पूरब की ओर का आकाश कुछ-कुछ सफेद हो चला था। सवेरा होने में आध घन्टे की देर थी। दिन चढ़ जाने से एक तो सड़कों पर भीड़ बढ़ जाती है और फिर घर का काम किस समय होगा।

दवा के कड़वे घूंट की भांति सुशीला ने इस बीस मिनट की सैर को भी निगल जाना ही उचित समझा। पैरों में चप्पल डाली और द्वार धीरे से बन्द कर बाहर आ गई। हवा में ताजगी थी। परन्तु यों अकेले पागलों की भांति सड़कों पर घूमना उसे तनिक भी नहीं रुचा। इक्क-दुक्के सैर के शौकीन बूढ़े बेंत हिलाते इधर-उधर जा रहे थे। पड़ोसी कैन्टीन का छोकरा अंगीठी में कोयले सुलगा रहा था। सुशीला ने जल्दी-जल्दी सड़क पार की और हल्की उजाले की फूटती रेखाओं में वह यूक्लिप्टस रोड पर आ गई। सैर करने को यह सड़क बहुत अच्छी है। पक्की, साफ सुथरी, दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे युक्लिप्टस के पेड़, दूर-दूर बसे दो-चार कोठी बंगले। परन्तु अकेले चलते उसे न जाने कैसा लग रहा था। यह कम नहीं था कि इस सवेरे के झुटपुटे में कोई उसके पीछे लग कर घर तक पीछा नहीं करेगा। या चलते हुए जान बूझ कर कोहनी नहीं मार जाएगा। क्या देखकर किसी के मन में यह सुरूर उभरेगी ? फिर भी भय मुक्त शंकारहित सुशीला बड़ी मजबूरी के लिए ही यह सैर का घूंट निगल रही थी। सड़क खतम हो गई और चौराहा आया। वह लौट पड़ी, शहर की गुन्जान सड़कों पर जाने से क्या लाभ। छः बजे वह घर आ गई। अभी कोई नहीं जागा था। द्वार उसी प्रकार उढके हुए थे। प्रातःकालीन वायु ने उसके मस्तिष्क में जरा सी स्फूर्ति अवश्य दी थी। परन्तु उस स्फूर्ति की अपेक्षा उसके पांवों की थकन अधिक थी। बड़ी कमजोरी लग रही थी। वह चुपचाप मुन्नी के खटोले के पायन लढ़क गई, आहट से मनोहर लाल की आंख खुली। अंगड़ाई ले सुस्ती दूर करते हुए उन्होंने पूछा-- "सैर कर आईं ?"

पत्नी ने सिर हिला कर हामी भर दी।

"कैसा लगा ?"--- सुशीला कुछ नहीं बोली। मनोहर उसी रौ में कहते गए--"अब बिलानागा जाया करना। देख लेना फायदा जरूर होगा।" और पत्नी को निढाल पड़े देख इतना और जोड़ दिया-- "भई अकेले न जा सको तो मुझे जगा लिया करना। इस बहाने मेरा भी घूमना हो जाया करेगा।"

तीन-चार दिन निकल गए। सुशीला अकेली ही सैर को निकल जाती। एक-आध बार मनोहर को जगाने की इच्छा हुई भी, तो यह सोच कर रह जाती, कि रात देर तक जाग कर दफ्तर का काम करते हैं, फिर गरमी और मच्छरों से परेशान रहते हैं--सवेरे की ठंडक में सोए हुए हैं तो अब मुंह अंधेरे क्या उठाऊं ? सड़क पर शेर भालू थोड़े ही होते हैं, जो मुझे खा जाएंगे। और मेरी इस सैर से कोई फायदा भी तो दिखता नहीं। दस-पांच दिन देखती हूं, फिर बन्द कर दूंगी। वह अपनी उभरी नीली नसों वाली पतली बाहों को ताकती और फिर चप्पल घसीटती निकल पड़ती।

आज बड़ी गरमी थी। रात भर करवटें बदलते ही बीती थी। सैर के लिए सुशीला उठी तो सिर भारी हो रहा था। सोचा, लाओ थोड़ा यू० डी० कोलोन ही मलें। दूसरे कमरे में जा बिजली जलाई। शृंगार मेज पर रखी शीशी उठाने लगी तो उसमें लगे दर्पण में दिखा धोती सिर पर से फटी है। वैसे तो अभी अंधेरा ही था। कौन देखता है। परन्तु लौटते तक उजाला हो जाता है। कहीं कोई इनका परिचित ही मिल गया, सोचेगा ये हैडक्लर्क की पत्नी हैं, फटी धोती पहने हैं। अलगनी पर टंगी रंगीन वाइल की साड़ी उतार कर पहनने लगी, तो ब्लाउज पर दृष्टि गई। लाओ इसे भी बदलें, इस साड़ी के साथ मैला दिखाई पड़ता है। और फिर तो कन्धे से जरा बाल भी संवारे। मुंह पर तनिक-सी क्रीम भी मली, बिन्दी भी लगाई और बिन्दी का गोलापन जो उंगलियों में लग गया था होठों पर रगड़ लिया। शीशे में देखा, पीला सूखा चेहरा जरा निखर आया था। अपने आप को ही कुछ अच्छा-अच्छा लगा। अब इन कपड़ों पर पुरानी चप्पलें क्या पहनें। सैण्डल निकाले और पहन कर बाहर आ गई। हवा लगी तो यू० डी० कोलोन से मिल कर माथे का दर्द उड़-सा गया। सूनी सड़क पर चलते-चलते शीशे में देखे (बिन्दी के लाल) अपने ही होंठ उभर आए। कभी उसके होंठ असल में भी वैसे ही थे, तभी तो. . . . तभी तो. . . ।

कान के पास कोई साइकिल वाला घन्टी बजाता, झट से निकल गया तो सुशीला सजग हुई। उसे अपने पर ही हंसी आ गई। आज वह किस धुन में इस नई सड़क पर निकल आई थी। खैर, आज इधर ही सही। यह नगर का राजमार्ग नहीं था। छोटी बस्ती की लम्बी पतली सड़क थी। दोनों ओर टीन से छाई या इटों से बनी छोटी दुकानें, सस्ते ढाबे थे। सड़क के किनारे चारपाइयां बिछाए कितने ही व्यक्ति सो रहे थे। दूकानों के चबूतरों पर भी कोई-कोई बचवा नौकर लुढ़का पड़ा था। एक-दो पक्की हवेलियां भी बीमार जिस्म पर खबसूरत गहनों की तरह सिर उठाए खड़ी थीं। इक्का-दुक्का व्यक्ति कभी इस सड़क पर से गुजर भी जाता था। सुशीला सड़क पूरी कर मुड़ने लगी तो जैसे उसे अपने कानों पर विश्वास न आया। कोई कह रहा था--"मेरी जान ! सवेरे सवेरे"--सुशीला सिहर गई। देह का ठंडा पड़ा रक्त तेजी से दौड़ पड़ा। उसने अकचका कर इधर-उधर ताका सामने जिस छोटी दुकान पर हिमालय टेलरिंग हाउस का धुंधला बोर्ड लगा था उसी के चबूतरे पर धारीदार पायजामा और नीले चैक की कमीज पहने कोई व्यक्ति खड़ा दातुन कर रहा था। अच्छा गोरा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिट्टा, लम्बा-चौड़ा, तीस-बत्तीस की आयु का होगा। उसे उधर ताकते पाकर, उसने कहा--"हाय रे जालिम, निगाह निगाहें।"

और सुशीला आगे बिना कुछ सुने घर की ओर उल्टे पांवों भागी . . . भागती ही गई! उसकी सांस फल रही थी। मन में सोच रही थी। कोई मुझे देख कर क्या कहेगा। परन्तु अपने द्वार पर आकर ही उसक पांव रुके। भीतर गई। सभी सो रहे थे, वह सीधी दूसरे कमरे में गई और शृंगार मेज़ के पास बिछी चटाई पर धप से बैठ गई। न बाबा, आज से वह कभी अकेली सैर को नहीं जाएगी। देखो तो मुए को। मैं भी क्या कल की लड़की हूं, जो आवाज़ें कसने लगा। वह वहीं लेट गई, पर आज दौड़ कर आने पर भी उसे कमजोरी नहीं लग रही थी--कोई उसक मन में कह रहा था, तो अभी भी उसे एक पहरेदार की ज़रूरत है। वह बूढ़ी नहीं हुई है! फुर्ती से उठ कर वह शृंगार मेज के दर्पण के सामने खड़ी हो गई। देखा, आज उसके गाल कुछ अधिक लाल हैं। आंखें अधिक चमकीली हैं। ओठों में ताजगी है। बस सिर्फ यह देह दुबली है। उंह! वह वहां से हट आई! ज़रा तन्दुरुस्त हो जाऊं तो देह भी भर जाएगी।

प्रतिदिन की भांति आज सुशीला को 'सुबह की कमज़ोरी' महसूस नहीं हो रही थी। रात की उलझी लटों को खोल कन्घा फेरती हुई वह किसी पुराने रसगीत की कड़ी गुनगुनाते हुए आंगन में टहलने लगी।

कल से वह उन्हें साथ लेकर सैर करने जाया करेगी, न बाबा ये मुए!

सुशीला अब जल्दी-जल्दी स्वस्थ हो रही है! वह अभी तक युवती है और अभी काफ़ी समय तक युवती बने रहने का उसने निश्चय कर लिया है।

●

नेपाली लघु कथा

पत्थर

ईश्वर बल्लाल

"मुझे सभी से घृणा है" --पाषाण ने कहा।

"घृणा का कारण भी तो होना चाहिए।" --सुमन ने तर्क किया। पाषाण की परुषता बढ़ती गई। उसे अपनी परुषता पर घमण्ड था।

"जड़ ईश्वरीय सृष्टि नहीं है"--सुमन का आरोप था। अननुभूतपूर्व चोट पाषाण को अनुभव हुई। पाषाण अपने को दानवी सृष्टि नहीं मानता था। उसने पूछा--क्यों, किस तरह ?

तुझे अपनी गोद में शरणार्थ आए पुष्प को विदीर्ण बनाते दया अनुभव नहीं हुई अतः।

पाषाण आजकल बेचैन है। उसका हृदय पुष्प की बातों से विदीर्ण है। वह तड़पता है। इतने में ही छोटा-सा सिकता कण उसके समक्ष आ पूछता है। वह अपने पूर्वकृत कर्मों के सम्पूर्ण वृतान्त उसे सुनाता है। सिकता उस सान्त्वना दे ी है, और कहती है--प्रायश्चित्त करो।

उसी समय से आज तक पाषाण अपने अपराधों के प्रक्षालन के लिए दुर्दम व्यथा सहता हुआ प्रासाद और पथ की सीढ़ी बनाना चाहता है। गली-वीथिकाओं में सभी से पद्दलित होने की इच्छा रखता है।

●

बंगला कविता

हाय चील

जीवनानन्द दास

ओ सुनहरी पाँख वाली चील, इस बदरायी दुपहरिया में
तुम मत कराहो और : धानखेतों-नदिया के तीरे।
दर्द-बींधा स्वर तुम्हारा बेत-फल से म्लान-नयनों को-
उजागर आज करता हृदय मांझे, हाय चील!
राज कन्याओं सदृश वह छिप गई जो धूल में,
फिर उसे क्यों तुम बुलाती ?
हृदय अपना चीथ : वेदना को मोल लेना
कौन चाहेगा भला रे! हाय चील!!
ओ सुनहरी पाँख वाली चील,
इस बदरायी दुपहरिया में . . . . . .
तुम मत कराहो : मत कराहो :
धान खेतों--नदी तीरे। --'महापृथिवी' नामक संग्रह से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित हरीचन्द 'अख़्तर'

बालमुकन्द अर्श मलसियानी

सत्ताइस-अट्ठाइस वर्ष पहले की बात है। इस्लामिया कालेज, लाहौर के पीछे एक संकरी गली में एक सादे से मकान में प्रवेश किया तो पण्डितजी को पहली बार देखा। केवल एक अंगोछा पहने बरामदे के फर्श पर बैठे, एक छोटी-सी बाल्टी सामने रखे आम चूस रहे थे। पहली ही दृष्टि में मैंने उन्हें पहचान लिया। वह भी मुझे पहचान गए। ऐसा अनुभव हुआ मानो वर्षों के पूर्व परिचित मिले हों। "आओ बैठो और मेरा साथ दो"--यह कह कर एक मीठा आम मुझे देते हुए कहने लगे, "सामान कहां है? क्या खाली हाथ आए हो?" मैंने कहा, "मैं तो कल रात आ गया था और रामगली में मास्टर जगतसिंह साहब के यहां ठहरा हूं।" "इस संकोच की क्या आवश्यकता थी। सीधे यहां चले आते"--यह कहकर पण्डितजी ने मेरे प्रति अपनेपन का परिचय दिया। पिताजी का हाल पूछा और साथ ही बार-बार यह कहा कि "सामान उठा लाओ, बच्चे लाहौर से बाहर गए हुए हैं। खूब गुजरेगी जो मिल बैठेंगे दीवाने दो।"

पण्डितजी से मेरी पहली भेंट का यह विवरण है। इसके बाद जीवन का एक दीर्घ काल उनकी मैत्री में बीता। वह इतने सभ्य थे कि मैं स्वयं को उनका प्रिय भाई नहीं बल्कि छोटा भाई समझकर गर्व करता। 'अख़्तर' उनका उपनाम था। विद्वत्ता और ज्ञान के आकाश के वह मार्तण्ड थे। लोग उन्हें 'अख़्तर साहब' कहते थे। कुछ लोग उन को पूरे नाम से हरीचन्द अख़्तर भी कहा करते थे। हम--मैं और उनके दूसरे विशेष मित्र--उन्हें केवल 'पण्डितजी' कहते। इसी प्रिय नाम से उन्हें अब भी स्मरण करते हैं।

पहली जनवरी १९५८ की रात को वह परलोक सिधार गए। मालेर-कोटला में हुए कवि सम्मेलन में १५ दिसम्बर को वह मेरे साथ गए थे। वापस लौटते हुए इन्फ्लूएन्जा और निमोनिया के शिकार हो गए। कुछ दिन बाद वह स्वस्थ हो गए। यह समाचार मुझे ३१ दिसम्बर को एक मित्र ने दिया। जब मैं उनसे मिलने के लिए जा रहा था तो मित्र ने मुझे रोक लिया और कहा, "पण्डितजी मकान पर नहीं होंगे।" मैं रुक गया और उनके दर्शन से वंचित रह गया।

२ जनवरी की प्रातः ६ बजे के लगभग किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। भीतर आ कर उस अपरिचित नवयुवक ने कहा, "मैं अख़्तर साहब के मकान से आया हूं।" मेरा माथा ठनका। मैंने सोचा कि पण्डितजी साधारण परिस्थितियों में भी अपना दुख-दर्द किसी को नहीं बताते। अवश्य ही कोई असाधारण बात होगी। मेरी कल्पना केवल यह थी कि सम्भवतः वह अधिक बीमार होंगे। केवल एक-दो क्षण में ही इस नवयुवक ने कहा, "कल रात उनका देहान्त हो गया!" मैं विश्वास न कर सका। लिहाफ से बाहर निकला और इस सन्देशवाहक से केवल इतना कहा कि आप चलिए मैं शीघ्र ही पहुंचता हूं। मकान पर गया तो एक कोहराम मचा हुआ था। बच्चे बिलख-बिलख कर रो रहे थे। मुझ से लिपटकर कहने लगे, "चाचाजी! बाबूजी को बुलाइए। वह बोलते नहीं। आप बुलाएंगे तो जरूर बोलेंगे।"

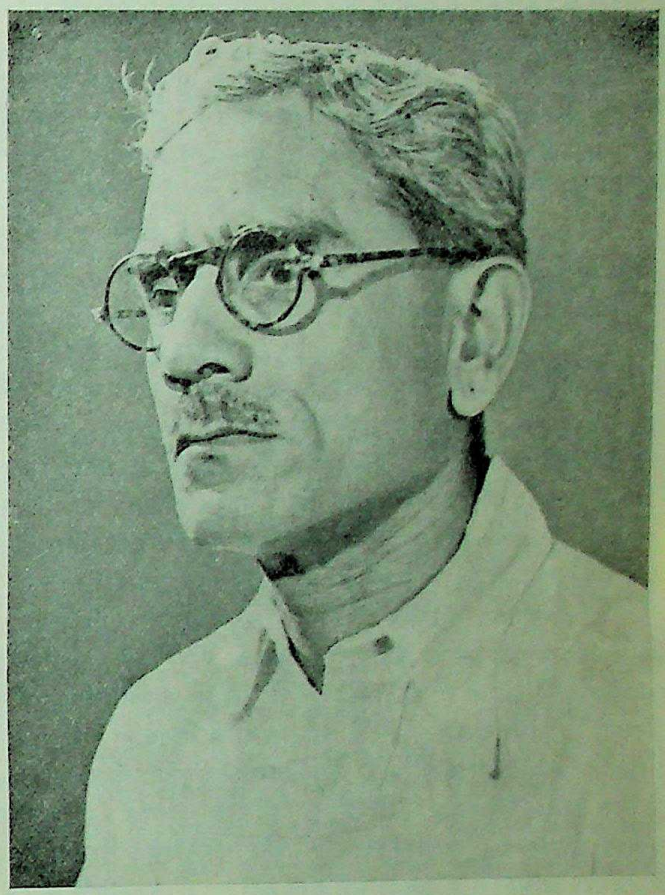

आंखों से आंसुओं की धार बहने लगी। उनके चरणों की ओर बढ़ा। अन्तिम नमस्कार किया और दालान में उनके इष्ट मित्रों की प्रतीक्षा करने लगा। दस बजे के बाद अर्थी उठी तो स्वयंमेव यह शब्द मुंह से निकले, "खामोश हो गया है चमन बोलता हुआ।" जिसको भी सूचना मिली, वही पहुंचा। कोई मकान पर, कोई मरघट के मार्ग पर, कोई मरघट पर। लाहौर के साहित्यिक गगन का चमकता हुआ सितारा, दिल्ली के समारोहों का अध्यक्ष अपनी अन्तिम यात्रा पर था। अन्त्येष्टि के पश्चात सब अपने-अपने घरों को लौट गए। द्वारकादास शोला, महेन्द्रसिंह बेदी, राजिन्द्र तुली, खुश्तर गिरामी, रणबीर, पुरुषोत्तमलाल जिया, जगन्नाथ आज़ाद, तिलोकचन्द महरूम, शमशेरसिंह निरूला, मिलखीराम और अन्य साहित्यिक मित्र उस शरीर को आग की भेंट करने के लिए एकत्रित हुए थे जिसे अगर जरा-सी भी आंच लगती तो वे बिलबिला उठते।

महानता के पुजारी इस संसार में नहीं हैं तो महान व्यक्ति भी क्यों रहें? हरीचन्द अख़्तर, बड़े भाई, स्नेही मित्र और गुरु भी कहूं तो उपेक्षित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, इस नश्वर संसार से शाश्वत शान्ति की खोज में चले दिए। वह इस नारकीय संसार के प्रलोभनों से दूर, कृतघ्न संसार से तंग आकर नहीं किन्तु उस पर घृणा की दृष्टि डालते हुए कहते हैं :--

नाव को इक साहिल तो मिला तूफानों से चैन तो है।
मौत है, अच्छा मौत सही, मैं इस घाट उतरता हूं ।।

इस युग में सज्जन व्यक्तियों की कमी है और वह सज्जनता के प्रतीक थे। इस युग में विद्वत्ता और ज्ञान की कमी है और वह विद्वत्ता और ज्ञान के भंडार थे। इस युग में प्रशंसक और खुशामदी अधिक हैं और वह निरीह और स्वाभिमानी थे।

जिसको देखता हूं, उनके लतीफों को रोता है, उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में केवल हंसी और खुशी के दृष्टिकोण को देखता है। साधारण लोगों को वह लतीफों से खुश कर दिया करते थे। परन्तु उनके व्यक्तित्व को केवल लतीफों तक सीमित रखना, उन पर ज्यादती करना और अपनी बुद्धि का दीवाला दिखाना है। ज्ञान और साहित्य की दृष्टि से उनका स्थान बहुत ऊंचा था। वह एक चलते-फिरते विश्वकोश थे। गद्य और पद्य दोनों पर उन्हें समान अधिकार था। हर बुद्धिमान व्यक्ति सरल होता है। वह आवश्यकता से अधिक बुद्धिमान थे, इसलिए उनकी सरलता भी बुराई की सीमा पर पहुंच गई थी। इतना अधिक गद्य और पद्य लिखने पर भी उनका कोई संग्रह उनके जीवन में प्रकाशित नहीं हुआ। अब भी इन बिखरे हुए पन्नों को एकत्रित करना भगीरथ प्रयत्न है। मैंने उनसे कई बार आग्रह किया कि एक संग्रह प्रकाशित करा लें। जिस बात के लिए मैं अधिक आग्रह करता, वह उसे मुझे ही सौंप देते। उनकी कुछ गज़लें मैंने इकट्ठी की थीं। वे सुरक्षित हैं। परन्तु बहुत-सी दूसरी रचनाएं उनके अन्य मित्रों के पास सुरक्षित होंगी।

उनकी अद्भुत साहित्यिक प्रतिभा और विस्मयजनक लेखन-शक्ति के सम्बन्ध में एक घटना बताता हूं। पिताजी की कविताओं का संग्रह प्रकाशित होने को था तो मैंने पण्डितजी से पूछा कि उसकी भूमिका कौन लिखेगा। भारत व पाकिस्तान के साहित्यिकों के कितने ही नाम उन्होंने गिना दिए। मैं इन्कार करता चला गया। घबरा कर कहने लगे तो फिर खुद ही लिख डालो। मैंने कहा, "इससे भी पास की बात करता हूं। यह भूमिका आपको लिखनी है।" खुशी से उछल पड़े और कहने लगे, "इस स्नेह का मैं एकमात्र अधिकारी हूं, इसका मुझे ज्ञान नहीं था।" पाण्डुलिपि ले गए, लेकिन तीन-चार महीने टालमटोल में बीत गए। मैं उनकी अनुपस्थिति में उनके घर से उसको वापस ले आया। दूसरे दिन पूरे दस बजे वह मेरे कार्यालय में आ उपस्थित हुए। उनकी भवें कह रही थीं कि मेरे इस काम से उन्हें दुख पहुंचा है। कुछ शिकायत के शब्दों में कहने लगे, "पाण्डुलिपि क्यों उठा लाए? मुझे तो कल रात भूमिका लिखनी थी। पाण्डुलिपि ही वहां से गायब थी।" मैंने कहा, "पाण्डुलिपि हाज़िर है। यहीं बैठ जाइए और लिख डालिए।" मैं कमरे से निकल गया। चार बजे के लगभग क्या देखता हूं कि ३३ पृष्ठों की भूमिका वह लिख चुके थे और भूमिका भी वह जो उर्दू गद्य और भूमिका-लेखन के इतिहास में सदैव स्मरणीय रहेगी।

उन्होंने ५७ वर्ष की आयु पाई। होशियारपुर ज़िले के एक अपरिचित-से 'साहिबा' नाम के कस्बे में उनका जन्म हुआ था। उनके वंश में साहित्यिक तो दूर रहा, कोई साधारण पढ़ा-लिखा भी नहीं था। यह भगवान की देन थी कि वह इस अपरिचित वंश और अपरिचित गांव के सदस्य होते हुए भी साहित्य के क्षेत्र में एक स्थायी प्रसिद्धि के स्वामी हुए। उन्होंने जालन्धर के गवर्नमेंट हाई स्कूल में शिक्षा पाई और वहीं हफ़ीज़ जालन्धरी से उनका परिचय हुआ। कविता का शौक था, इसलिए उन्हीं के शिष्य बन गए। एक ही आयु के ये शिक्षक और शिष्य उसी समय से दो शरीर और एक आत्मा हो गए। यह स्नेह यदि टूटा तो उसको तोड़ने वाली थी उनमें से एक की मृत्यु। जालन्धर से आरम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात पण्डितजी लाहौर के फोरमन क्रिश्चियन कालेज में प्रविष्ट हुए। आरम्भ में 'शर्मा' उपनाम से लिखा करते थे। हफ़ीज़ साहब के सुझाव पर उन्होंने अपना उपनाम 'अख़्तर' रखा। बहुत अधिक होशियार थे। स्वर्गीय गिरामी से जालन्धर में मिलते रहे। कालेज के मैगजीन के सम्पादक थे। मज़ाक उनकी प्रकृति में स्वभावसिद्ध था। 'दोज़खी' उपनाम से बहुत सी लाजवाब कविताओं की रचना की। समाचारपत्रों में भी उनकी रचनाएं छपने लगीं। लाहौर के एस० पी० एस० के हाल के हू-हल्लड़ वाले कवि सम्मेलनों में इनको सम्मिलित किया जाने लगा। वहां उन्हें तासीर, सालिक और सूफी गुलाम मुस्तफ़ा तबस्सुम के साथ बैठने का अवसर मिला। बी० ए० पास करके 'फूल' के कार्यालय में काम शुरू कर दिया। सैय्यद इम्तियाज अली ताज भी उनके विशेष मित्रों में से हैं। इस्लामिया कालेज में प्रवेश किया और फारसी में एम० ए० पास किया। स्वर्गीय श्री मनोहरलाल शिक्षा मन्त्री थे। उनकी उन पर नजर पड़ी तो पंजाब असेम्बली के कार्यालय में उनको 'रिपोर्टर' नियुक्त कर लिया गया। १९२९ से १९४१ तक वह लाहौर में रहे। यह उनके साहित्यिक कार्य-कलाप का बहुत ही महत्वपूर्ण काल है। इधर मौलाना ताजवर ने 'अंजुमने-अरबाबे-इल्म' की स्थापना की, तो उधर पण्डितजी और उनके साथियों ने मौलाना से मतभेद होने के कारण 'बज़्मे-अदब', पंजाब की स्थापना की। दोनों संस्थाओं के कवि सम्मेलन होते। इधर लाला करमचन्द ने साप्ताहिक पत्र 'पारस' जारी कर रखा था। पण्डितजी उसमें निरन्तर लिखा करते थे। इस समय यह प्रगट करने में कोई हानि नहीं है कि इस पत्र के अधिकतर सम्पादकीय और 'नमकदान' पण्डितजी की कलम से लिखे होते थे। देश भर में 'नमकदान' की धूम थी। कवि-सम्मेलनों का ज़िक्र होता, पक्ष और विपक्ष में विवाद छिड़ता, कोई साहित्यिक घटना होती, कोई राजनैतिक तनातनी शुरू होती। चार यार उसे ले उड़ते। ताजवर के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा गया, जफ़र अली खां की कविताओं के उत्तर दिए गए, मुंशी राजनारायण अरमान और रघुपाल-सिंह शैदा से व्यंग का आदान प्रदान होता, हुस्न निज़ामी और मुहम्मद अली के झगड़े को उछाला जाता, भाषा और कला की बारीकियों पर बहस होती। वह भी क्या युग था। बात में बात निकलती, ढंग से बात करने की कला निखरती, लतीफों पर लतीफे चलते, वाद-विवाद होते। वाह-वाह और सुभान अल्लाह का शोर मचता, हा-हू का बाजार गर्म होता। विद्वान लोग थे। अहमद शाह बुखारी पितरस भी उनके साथियों में से थे। किसी की मूंछों पर फब्तियां कसते --

रोटी तो किसी तौर कमा खाए मुछन्दर

पुराने लोग 'जबान में' कुछ सुनाते तो पण्डितजी 'जबान से' जवाब देते और भाषा की कलाबाज़ियों का मज़ाक पैरोडी से उड़ाते--

कहा काबुल चले जाएं, कहा काबुल चले जाओ
कहा अफ़गान का डर है, कहा अफ़गान तो होगा।
कहा हम चीन हो आएं, कहा तुम चीन हो आओ
कहा जापान का डर है, कहा जापान तो होगा।

पण्डितजी कवि सम्मेलन में सदैव एक कोने में बैठते थे। साथियों की भीड़ उनके चारों ओर होती थी। प्रत्येक पद पर विचार विमर्श होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ऐसी-ऐसी बारीकियां निकलतीं कि कवि सम्मेलन का वह कोना सुगन्धित वाटिका बन जाता। एक बार एक बुजुर्ग कवि गज़ल पढ़ रहे थे। उसकी तर्ज़ यह थी 'बात कितनी, रात कितनी'। उन्होंने पद का पहला वाक्य पढ़ा—

यह दिल है, यह कलेजा, यह जिगर है

पण्डितजी भला क्यों चूकने वाले थे। पद पूरा करने के लिए दूसरा वाक्य बड़े ज़ोर से पढ़ा—

कसाई दे गया सौगात कितनी

सभा हंसते हंसते लोट-पोट हो गई।

स्वस्थ मानसिक सन्तुलन इसी को कहते हैं कि आप पर चोट पड़े तो आप बौखलाएं नहीं। अपने नाम से सम्बन्धित दो चुटकुले वह स्वयं मज़ा ले ल कर सुनाया करते थ। जिन दिनों वह लाहौर रेडियो पर नियक्त थे, उन दिनों की बात है। लन्च का समय था। किन्हीं श्रीमतीजी ने टेलीफोन किया। पण्डितजी ने टेलीफोन उठाया और कहा कि जिन साहब से वह बात करना चाहती हैं, वह अभी उपस्थित नहीं हैं, लन्च पर गए हैं, वह उनको सन्देश दे देंगे। श्रीमतीजी ने टेलीफोन पर पूछा, "आपका शुभ नाम ?" उन्होंने उत्तर दिया, 'हरीचन्द अख़्तर।' श्रीमतीजी ने पूछा, 'हरीचन्द ..!' उन्होंने फिर कहा, '.....अख़्तर।' श्रीमती जी बोलीं, 'सुभान अल्लाह, क्या नाम है ! हरीचन्द अख़्तर। यह तो वही बात हुई जैसे—मुमताज़ शान्ति।'

दूसरा चटकुला जो उनके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है यह है कि उनके एक पाकिस्तानी मित्र ने कहा कि पण्डितजी हमें प्रिय क्यों न हों? हमारा राष्ट्रीय ध्वज भी तो उन्हीं के नाम पर है। हरी चन्द अख़्तर। हरा रंग, चान्द और तारा। (अख़्तर क शब्दार्थ हैं तारा।)

अख़्तर साहब गिरामी, इकबाल, सर अब्दुल कादिर, ज़फ़र अली खां, राजा नरेन्द्र नाथ और राय बहादुर कंवर सेन आदि की सोहबत में उठते-बैठते रहे हैं। इकबाल की गोष्ठियों की अत्यन्त रोचक कहानियां हम उनसे सुना करते थे।

जम्मू के कवि सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए कवि लोग लाहौर से रेल में सवार हुए तो पण्डित वितस्ता प्रसाद 'फ़िदा' ने (दुख है कि पिछले दिनों उनका भी दिल्ली में देहान्त हो गया) अख़्तर साहब से कहा कि मैंने एक गज़ल तो लिख ली है लेकिन उसका आखिरी पद अभी तक नहीं जोड़ सका हूं। गज़ल की तर्ज़ थी, 'खुदा होकर, जुदा होकर'। अख़्तर साहब ने कहा कि लीजिए आपकी गज़ल का आखरी पद हाज़िर है—

मज़ा जीने का आखिर दिल लगाने पर ही मिलता है

फ़िदा साहब किसी पर देख लेना था फ़िदा होकर

फ़िदा साहब गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे। साथियों ने यह अन्तिम पद सुना तो रेल का डिब्बा अट्टहास से गूंज उठा। साहित्यिक विवाद में स्वयंमेव कूद पड़ना अख़्तर साहब का स्वभाव था। व्यंग का कोई अवसर मिलता तो चूकते नहीं थे। साहित्य व कला की तराज़ू पर तोला जाए तो वह बड़े भारी-भरकम मनुष्य थे। परन्तु उनकी व्यक्तिगत सज्जनता और सहृदयता की कहानियां लिखने बैठूं तो एक बड़ा पोथा बन जाए। वह यारों के यार, बड़े मिलनसार और हर नाप-तोल से उच्च स्तर के व्यक्ति थे। समस्त जीवन मित्रों की सेवा में लगा दिया। स्वयं हाथ तंग रख लिया, परन्तु दोस्तों का हाथ तंग नहीं देख सकते थे। दफ्तर से घर आते-आते आधा वेतन रास्ते में बांट दते थे। उधार लेकर भी मित्रों की कठिनाइयां दूर करते। उनके परिवार में विधवाओं और अनाथों की काफी संख्या थी। जब कभी देश जाते, जब में जो कुछ होता बांट आते। कवल रेल का किराया बच जाता। कुछ मित्रों ने उनकी सज्जनता स अनुचित लाभ भी उठाया और समय आने पर उनकी बात तक न पूछी। सम्भवतः इसी से प्रेरित होकर उन्होंने इस अमर पद की रचना की होगी :—

हमें भी आ पड़ा है दोस्तों से काम कुछ यानी,

हमारे दोस्तों के बेवफ़ा होने का वक्त आया।

१९४३ में उनके युवा पुत्र का देहान्त हो गया। दूसरे या तीसरे दिन ही वह साथियों की गोष्ठी में सम्मिलित थे। इतना सहनशील मनुष्य मैंने नहीं देखा। जीविका के लिए कभी बड़े लोगों के आगे सिर नहीं झुकाया। एक दिन जनाब जोश मलीहाबादी ने मेरी उपस्थिति में उनसे कहा कि, "अख़्तर साहब ! आपकी आर्थिक उन्नति हो भी किस प्रकार ! आप तो इतने सुस्त हैं कि जिससे आज मिलने की आवश्यकता है आप उससे महीनों बाद मिलेंगे।" अख़्तर साहब ने उत्तर दिया, "जोश साहब, सच तो यह है कि मैं 'अर्श' के अतिरिक्त किसी और के कहने पर किसी ठाकुरद्वारे पर माथा टेकने नहीं जाता। जब इसके कहने पर चला जाता हूं और वह सज्जन मकान पर नहीं मिलते तो बड़ी शान्ति अनुभव होती है।" यह थी उनकी अपरिग्रह की वृत्ति।

एक दिन एकाएक मुझ से मिलने के लिए आए। मैंने कहा, "कहिए ! क्या आदेश है ?" कहने लगे, "सौ रुपए लाओ। एकाएक आवश्यकता आ पड़ी है।" मैंने कुछ आनाकानी की, सौ रुपए देने में नहीं, वरन् इसलिए कि ये सौ रुपए भी दान में जाने वाले थे। मैंने कहा, "पण्डितजी, मुझे और भाभी को यही शिकायत है कि आखिर आप करते क्या हैं ? बच्चों के मुंह से रोटी छीन कर मित्रों को देते हैं। यह उचित नहीं है।" उन्हें यह उपदेश अच्छा न लगा। थोड़ा दुखी हो कर बोले, "तुम दोनों मुझ से जवाब नहीं मांग सकते। मुझे बुरा काम करते देखो तो कह सकते हो कि मैं उनका गला काट रहा हूं।" इतना कहा और जेब से सौ-सौ रुपए के पांच नोट निकाल कर कहने लगे, "बस एक नोट की वृद्धि और कर दो। एक मित्र का जीवन आज छः सौ में बचता है।" मैं देखता रह गया। मन-ही-मन उनके चरणों पर सिर नवाया और सौ रुपए उनको भेंट किए। प्रसन्न मुद्रा में गए और जाते-जाते कह गए, "बहुत शीघ्र यह सौ रुपए लौटा दूंगा।" ऐसा ही हुआ। यह महान व्यक्ति उधार ले कर भी मित्रों की सहायता करता था।

राशनिंग का युग था। कपड़ा मिलता नहीं था। पण्डितजी का एक प्रशंसक ट्विल का एक थान लाया और उन्हें दे गया। वह थान दफ्तर में मेज़ पर पड़ा था कि उनके मित्र, सहयोगी यहां तक कि चपरासी भी आए और एक-एक दो-दो कमीज़ का कपड़ा उनसे ले गए। उनके लिए एक पट्टी तक घाव पर बांधने के लिए न बची। यह थान उनको मोल मिला था और बटा था मुफ्त के माल की तरह। ऐसी सैकड़ों कहानियां हैं। किस-किस को कहूं।

पीड़ा से कराहते, मुख से 'हाय' निकलने को होती, किसी बच्चे को कमरे की ओर आते देखते तो उस 'हाय' को इसलिए पी जाते कि कहीं बच्चों को दुख न हो। उनके नेत्रों का प्रकाश जाता रहा। बच्चों को इसका तनिक भी ज्ञान न हुआ। द्वारकादास शोला को बुलाया और कहा, "मेरी आंखों में कुछ कष्ट है। आंखें बन्द कर लेता हूं तो सुख मिलता है। इसलिए मेरा हाथ पकड़ो और डाक्टर कौल के पास ले चलो।" सौभाग्य से आपरेशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफल हो गया और एक आंख की दृष्टि वापस आ गई। उनके बच्चों को उनकी मृत्यु के समय तक यह ज्ञात नहीं हुआ कि उनकी एक आंख की दृष्टि जाती रही थी। बीस महीने से पेन्शन पर थे। अभी पेन्शन मिलनी प्रारम्भ नहीं हुई थी। मैंने एक दिन पूछा, "पण्डितजी क्या सिलसिला है, गुज़र कैसी हो रही है।" कहने लगे, "शुकर है, बहुत अच्छी गुज़र हो रही है।" उनके देहान्त के बाद मुझे ज्ञात हुआ कि इस "अच्छी गुज़र हो रही है" का अर्थ क्या था। उनके देहान्त पर भारत और पाकिस्तान में बड़ा शोक मनाया गया। समाचार-पत्रों में लेख लिखे गए, सभाएं हुईं, मरसिये (शोक कविताएं) लिखे गए और श्रद्धांजलियां भेंट की गईं। परन्तु इससे क्या होता है? आवश्यकता उन पांच कोमल कलियों की निगरानी की थी जिन को वह लापरवाह माली हम लोगों पर छोड़ गया। भगवान की कृपा है कि मित्रों ने इस आवश्यकता को अनुभव किया। परिस्थितियां अब उतनी दुखपूर्ण नहीं रही हैं। वह पांच बच्चों और एक विधवा को भगवान को सौंप कर चले गए—उस भगवान को सौंप कर, जिसके बारे में उन्होंने कहा था—

तू मेरे ऐमाल का पाबन्द निकला हश्र में
अये खुदा मेरे खुदा तुझको खुदा समझा था मैं।

आले अहमदसरूर साहब एक ही मुलाकात में उनके मुरीद बन गए थे। मुझे पत्र लिखते तो पण्डित जी का हाल पूछते और कहते कि पण्डित जी से केवल इतना कह दीजिए— तेरे फितराक में शायद कोई नखचीर भी था। पण्डित जी की मृत्यु पर उन्होंने अपना शोक इन शब्दों में प्रगट किया—

गिरामी, इकबाल, जफ़र अली खां और ताजवर नजीबाबादी की संगति में हरीचन्द अख़्तर रहे हैं। वे महमूद शीरानी के शिष्य थे। साहित्यक नोक-झोंक, टीका-टिप्पणी में उनसे बाज़ी ले जाना कठिन था। अख़्तर यारों का यार था। बहुत पवित्र और नेक मनुष्य था। बड़ा सुलझा हुआ था। क्लासिकल साहित्य का बड़ा मंझा हुआ मजाक रखता था। साथियों की प्रत्येक सेवा के लिए तन-मन स प्रस्तुत रहता था। सत्तावन वर्ष की आयु में उसका इस प्रकार साहित्यिक क्षेत्र से विदा ले लेना एक ऐसी दुर्घटना है जिसका दर्द हृदय से मिटने वाला नहीं है। अख़्तर की कविताओं की निधि अधिक नहीं है, परन्तु जो कुछ है उसमें रुचि का परिष्कार, जीवन का सच्चा दृष्टिकोण और मानवी प्रकृति की महानता मिलती है। उनके गद्य में गाम्भीर्य और भाषा की रवानी मिलती है। कितना अच्छा हो कि उनकी यह सारी साहित्यिक निधि सबके सामने आ सके।

अन्त में उनकी रचनाओं में से कुछ चुनी हुई चीजें आपके सम्मुख रखता हूं:

एक बुत, एक ही बुत का हूं पुजारी 'अख़्तर'।
अपने इस शिर्क[1] पै तौहीद[2] का दावा है मुझे॥

मेरे चमन की खिजां[3] मुतमईन[4] रहे कि यहां
खुदा के फ़ज़ल से अन्देशा-ए-बहार[5] नहीं॥

दाता है बड़ा रज्जाक[6] मेरा भरपूर खजाने हैं उसके।
यह सच है मगर ऐ दस्तेदुआ[7] हर रोज़ तकाज़ा कौन करे?

बुतों के इश्क में खोया गया हूं वर्ना ऐ अख़्तर
खुदा शाहिद[8] है, मैं अक्सर खुदा को याद करता हूं।

सहीफ़े[9] भी पैयम्बर[10] भी तेरे, इबलीस[11] भी तेरा
इलाही रोज़े-महशर[12] इम्तहां तेरा है या मेरा॥

फ़रेब हज़रते-आदम को दे गया इबलीस।
करीब ही था खुदा भी, खुदा से कुछ न हुआ॥
खुदा तो ठहरा मुसलमां, उसका शिकवा क्या।
मेरे लिए मेरे परमात्मा से कुछ न हुआ॥

तर्के-गुनाह[14] ऐ वाइज़[15] जी दिल से नहीं मजबूरी है।
आप खुदा से डरते हैं, मैं दुनियां से डरता हूं॥

तुम्हारी दीद[16] ही मकसद[17] रहा जिसकी बसारत[18] का।
वह चश्मे-मुन्तिज़र[19] पथरा गई, क्या तुम न आओगे?
बहारे जां-फिज़ा[20] बुलबुल के नग्मे चांदनी रातें।
हर इक शय[21] आने वाली आ गई, क्या तुम न आओगे?

नेमतों[22] को देखता है और हंस देता है दिल।
महवे-हैरत हूं[23] कि आखिर क्या है मेरे दिल के पास॥

जो ठोकर ही नहीं खाते वह सब कुछ हैं मगर वाइज़।
वह जिनको, दस्ते-रहमत[24] खुद संभाले और होते हैं।

इक बार जो मिल जाएं वो बिछुड़े हुए लमहे[25]।
सौ बार मुझे तलखिए-अय्याम[26] गवारा।

मुलाकातें भी होती हैं, मुलाकातों के बाद अक्सर।
वह मुझको भूल जाते हैं, मैं उनको याद करता हूं॥

हर शख्स को बख्शी गई तमीज़[27] बद-ओ-नेक[28]।
हर शख्स जीयांकार[29] है मालूम नहीं क्यों?
पत्ता भी अगर हिलता है तो उसकी रज़ा[30] से।
और बन्दा गुनहागार है मालूम नहीं क्यों?
दीदार है जाहिद[31] की जुबां भी मेरा दिल भी।
फिर मुफ्त की तकरार[32] है मालूम नहीं क्यों?

मुझ को देखा फूट के रोया।
अब समझा समझाने वाला॥

इनकारे सजदा[33] है यहां किस रूसियाह[34] को।
शायाने सजदा[35] भी तो मगर कोई दर[36] मिले॥

राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर भी आपने बहुत कुछ लिखा है। वे सब पृष्ठ इधर-उधर बिखरे पड़े हैं। यह आशा है कि वे सब फूलों के गुलदस्ते की तरह इकट्ठे हो जाएंगे।

अनुवादक: प्रेमचन्द भारद्वाज

---

[1] दुई [2] एकता [3] पतझड़ [4] विश्वास रखे [5] वसन्त का भय [6] रोज़ी देने वाला [7] प्रार्थना [8] गवाह [9] ईश्वर प्रणीत पुस्तकें [10] शैतान [11] फ़रिश्ते [12] क़यामत के रोज़ [13] धोखा [14] पाप का वर्जन [15] उपदेशक [16] ध्येय [17] तुम्हे देखना [18] दृष्टि का [19] प्रतीक्षा भरे नेत्र [20] जीवन देने वाली वसन्त [21] चीज़ [22] वरदान [23] अचम्भे में हूं [24] दया, भरा हाथ [25] क्षण [26] जमाने की कड़वाहट [27] पहचान [28] बुरे और अच्छे की [29] नुकसान उठाने वाला [30] मर्जी [31] परहेज़गार [32] झगड़ा [33] सिर झुकाने से [34] बदनसीब [35] सिर झुकाने के योग्य [36] दरवाज़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारस्वत

(२)

मामा वरेरकर

(प्रथम अंक का शेषांश)

सुमित्रा–पर उस समय आपने ऐसा अभिमान नहीं किया था।

भाई साहब–ठीक है। तुम्हारी तबियत में पहचान गया था––तुम्हारी चिट्ठियों से जान गया था और इसीलिए मैंने ऐसा कोई अभिनय तुम्हारे साथ नहीं किया। और इसीलिए मैंने तुम्हारे साथ शादी भी की। उस समय मुझे पत्नी चाहिए थी––

सुमित्रा–और इस समय ?

भाई साहब–इस समय मुझे अपनी किताबों की बिक्री बढ़ाने के लिए एक मासूम एजेन्ट की जरूरत है। कालेज की हर लड़की के सामने अब वह मेरी तारीफ करती फिरेगी। अच्छी तरह नमक मिर्च लगाकर मुझ से मिलने का काव्यमय वर्णन करेगी और फिर प्रत्येक कालेज के साहित्य-मण्डल की ओर से मुझे भाषण देने का बुलावा आएगा। कालेज के संकुचित-दिमाग विद्यार्थियों में नाम कमाने का इससे आसान रास्ता और कौन सा हो सकता है ? अजी, यह बिजनेस है। मैं तुम्हें अभी यही बता रहा था। माल की अच्छी बुराई पर माल नहीं बिका करता। माल अच्छा हो और काफी विज्ञापन हो, बस। दुनिया को संदेश देने के लिए मैंने कलम नहीं उठाई है। संदेश देने के चक्कर में पड़ता तो मुझ पर भी बाबा साहब की तरह किसी के आसरे भीख के टुकड़े पर पड़े रहने की नौबत आ जाती। इन बेवकूफ लोगों को नचाने के लिए ही मुझे कुछ लिखना पड़ता है कि मेरी गोली काम कर गई। मुझे लिखना पड़ता है पाठक की नबज पर हाथ रखकर ! यह सब तुम क्या जानो !

सुमित्रा–काश, पहले जान जाती–– ?

भाई साहब–तो क्या करती ? मुझ से विवाह न करती ? तो अब क्या बिगड़ा है। मजे में हो––सुख से रह रही हो। पैसा है। जो आता है पहले तुम्हें सलाम करता है। प्रभाकर मांग रहा था या नहीं इंटरव्यू ?

सुमित्रा––तो आपकी यह घटना इन्टरव्यू में दे दूं ?

भाई साहब–तुम कौन हो देने वाली ? अब हम दोनों एक हैं। जो मैं कहूं वही तुम्हें भी कहना होगा। अब तुम्हारी अपनी कोई आवाज नहीं।

सुमित्रा–आप मुझे बोलने ही कहां देते हैं ? मुंह से एक शब्द निकलते ही इस तरह बोलने लगते हैं कि रुकने का नाम नहीं लेते। मैं पत्नी जो बन गई हूं आपकी ? 'पत्नी' कहते ही उस लड़की का बनाया हुआ मुंह देखकर मुझे बड़ा क्रोध आया था पर अब मुझे उसकी बात जंचती है। पत्नी का अर्थ है सिफर। और पुरुष एक का आंकड़ा है। वह आंकड़ा पीछे लगे बिना सिफर की कोई कीमत नहीं !

भाई साहब–यह तुमने लाख रुपए की बात कही ! बस अब यह बात गिरह बांध लो जिससे तुम्हें आगे कभी तकलीफ न हो।

सुमित्रा–सो रखती हूं ध्यान में–– अच्छी तरह खून की स्याही से लिखकर रखती हूं पर अब ऐसी लड़कियां मेरे घर में नहीं आनी चाहिएं। (भाई साहब हंसते हैं) हंस क्या रहे हैं ? सिफर की कीमत चाहे न हो पर आकार होता है––वैसा ही आकार मेरा भी है–– पत्नी होने के नाते मुझे भी कुछ अधिकार है। जब से पत्नी बनी हूं एक धारणा सी बन गई है। वह बदली नहीं जा सकती। मन में अधिकार की भावना आ गई है। अधिकार चाहता है कब्जा। उसे ये सब हरकतें सहन नहीं होतीं।

भाई साहब–पर इन हरकतों के बिना मेरा काम नहीं चलेगा। ऐसे ढोंग करना जरूरी है। सब कुछ तुमसे कहकर ही तो किया करता हूं ?

सुमित्रा–ठीक है, पर यह स्वांग करते करते कहीं सचमुच कोई चुड़ैल गले पड़ जाएगी––

भाई साहब–और पड़ ही गई तो क्या हर्ज है ? मैं जो चौकन्ना हूं।

सुमित्रा–पर मैं जो फेंट हो जाऊंगी। यह सब कुछ नहीं। अब ऐसी कोई लड़की यहां न आने पाए। अगर आई तो उसके बाल पकड़कर घर के बाहर कर दूंगी। (भाई साहब जोर-जोर से हंसते हैं) इसमें हंसने की क्या बात है ? मैं धमकी नहीं दे रही हूं। वक्त आने पर जान जाओगे। देख लेना जरा भी नहीं झिझकूंगी।

भाई साहब–और फिर तुम्हारे इंटरव्यू में जो अपने प्रेम का वर्णन आएगा उसका कैसे समर्थन करोगी ?

सुमित्रा–तो न दीजिए इन्टरव्यू। न इंटरव्यू दूंगी न समर्थन करने का प्रश्न उठेगा। मैं साफ-साफ बताए देती हूं फिर कभी ऐसी कोई आई और यह प्रियतमे और प्राणवल्लभे, शुरू हुआ तो मैं जिस्म पर मिट्टी का तेल उडेल कर माचिस लगा लूंगी। (बाहर घंटी बजती है) अब और कौन आ गया ? (जाकर दरवाजा खोलती है)

(बालकराम प्रवेश करता है। वह एक प्रकाशक है। आयु पचास से थोड़ी अधिक। बाल पके हुए। घुटनों तक धोती पहने है। लम्बा कोट, पुराने ढंग की लाल पगड़ी। गल में मफलर, हाथ में छाता।)

भाई साहब–आइए बालकरामजी, बैठिए। बालकरामजी के लिए कुछ चाय-वाय का तो इंतजाम करो। (सुमित्रा को जाने के लिए आंखों से इशारा करता है)

बालकराम–नहीं, नहीं, चाय की जरूरत नहीं। अभी अभी पीकर आया हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमित्रा–अच्छा ?––

बालकराम–अधिक चाय पीने से मुझे नुक्सान होता है । सचमुच इस समय चाय रहने दीजिए । आप बैठिए भाभी जी । वैसे भाभी कहने की जरूरत नहीं । आपकी उम्र की चार बहू-बटियां हैं मेरी । ये भाई साहब इत्ते से थे तभी से देख रहा हूं इन्हें––

भाई साहब––एसा कौन सा फर्क है आपकी और मेरी उम्र में ? अधिक से अधिक दस बारह साल का होगा ।

बालकराम–यानी आप आठ बरस के थे तब मैं बीस पार करके किताबों की दुकान खोले बैठा था । जाने दीजिए । हिसाब लगाने की क्या जरूरत है ? बड़प्पन उम्र से नहीं हुआ करता । आपके नाम का चारों ओर बोलबाला है और हम बैठे हैं किताबें बेचते ।

भाई साहब–ठीक है । पर आप हैं इसीलिए हम हैं । आप न होते तो हमें पूछता कौन ?

बालकराम–यह आपका बड़प्पन है । वैसे सैंकड़ों प्रकाशक घूमते आपके पीछे ।

भाई साहब–पर हमें किसी न किसी प्रकाशक की जरूरत तो होती ही है ।

बालकराम–यह सारी कहने की बातें हैं । आप खुद अपनी किताबें छाप सकते थे । जोशी साहब को ही देख लीजिए । जितना लिखते हैं उससे अधिक छापते हैं और फिर किसी के सामने घिघियाने की जरूरत नहीं, आप प्रकाशक बने होते तो हम जैसों का दिवाला ही पिट गया होता । आप में वह क्षमता है इसीलिए कहता हूं कि आपका हम पर बहुत बड़ा अहसान है ।

भाई साहब–आज किस काम से आए थे ?

बालकराम–आपका वह भाषण लेने आया था ।

भाई साहब–कौन-सा भाषण ?

बालकराम–वही अध्यक्ष पद का भाषण ।

भाई साहब–कौन-से अध्यक्ष पद का ?

बालकराम–साहित्य महासभा के अध्यक्ष होने के नाते जो आपने भाषण दिया था ।

भाई साहब–पर अभी मैं अध्यक्ष कहां बना हूं ?

बालकराम–बन गए हैं––म जो कहता हूं––आप अध्यक्ष बन गए । वह भाषण मुझी को मिलना चाहिए, किसी दूसरे को न दीजिए । और इसके बाद आपकी सब किताबों का कांट्रेक्ट भी मैं ही लूंगा । किसी और को न दीजिए अपनी किताबें । रुपया पेज तै रहा । (भाई साहब हंसते हैं) हंसिए मत । मेरा बिजनेस ईमानदारी का बिजनेस है । तीन किताबों के लिए एडवांस दिए देता हूं । अब तो बस ?

भाई साहब–और इस बीच में मैं मर जाऊं तो ?

सुमित्रा–ऐसी मनहूस बातें नहीं किया करते !

भाई साहब–यह भी किसी के हाथ की बात होती है ? ऊपर से बुलावा आते ही जाना पड़ता है । और ऐसा कुछ हो जाए तो बाद में आप मुझे कोसने न लगें ।

बालकराम––ये बिजनेस है––व्यापार है––बिजनेस में नफा-नुक्सान तो चलता ही रहता है । यह साहस उतना बड़ा नहीं जितना सट्टेवाले करते हैं । भगवान आपको लम्बी उम्र दे और आपके नाम से मुझे भी चार पैसे मिलें ।

सुमित्रा–तथास्तु ! आपके मुंह में घी शक्कर । तीन किताबों का एडवांस कितना होता है ?

भाई साहब–सुनो, पैसा कमाने का काम मैं करता हूं––खर्च करने की जिम्मेदारी तुम ले लो । यह सौदा बालकराम जी से है––एक बैठक में फैसला नहीं होगा । मरौवत से ऐसे सौदे नहीं हुआ करते ।

बालकराम–आप बड़े स्पष्ट वक्ता हैं भाई साहब । आपकी यही बात मुझे सबसे अधिक पसन्द है । पहले हां कहना, सब कुछ तै कर लेना और बाद में चिल्लाना कि बालकरामजी मुझे चूना लगा गए । एसा बाबा साहब वाला बिजनस मैं पसन्द नहीं करता ।

भाई साहब–मुझे दूसरे के व्यवहार से कोई सरोकार नहीं । मैं अपना मालिक हूं । ऐसी शिकायत करने का मौका मुझ पर आज तक नहीं आया । इस समय एक किताब मेरे पास तैयार है । गोपाल जी मांग गए हैं––

बालकराम–गोपाल का नाम मेरे सामने न लीजिए । आज किताब छापेगा और कल बगलें झाड़ कर सब किताबें दे डालेगा किसी मुर्देफरोश को या किसी कबाड़ी को । मैं किताबों के गट्ठे बांध कर चाहे रखूं पर मेरी एक भी किताब फुटपाथ पर नहीं आएगी । आपने देखा है कभी मेरी कोई किताब फुटपाथ पर ?

भाई साहब–किताब को चाहे आप बांध कर रखें चाहे फुटपाथ पर फेंके, मुझे उससे कोई सरोकार नहीं । मुझे तो मेरा रेट मिलना चाहिए––

बालकराम–पर पहले अपने भाषण की बात तो तय कर लीजिए––

भाई साहब–भाषण के कांट्रेक्ट में तीन किताबों को शामिल करने की जरूरत नहीं, कांट्रेक्ट करना हो तो चार किताबों का कीजिए । सिर्फ भाषण की बात पक्की कर लेने से काम नहीं चलेगा । गोपाल फी पेज चार रुपए देता है––

बालकराम–भाषण के भी ?

भाई साहब–नहीं, सिर्फ किताब के ।

बालकराम–भाषण पर मैं इसलिए जोर दे रहा हूं कि वह हजारों लोगों में बांटा जाएगा । इसलिए अपनी अन्य किताबों का विज्ञापन भी उसी में कर सकता हूं ––

भाई साहब–मैं जानता हूं । वर्ना आप लोग कहां करते हैं अपनी किताबों का विज्ञापन । तो बोलो ? चार रुपए मंजूर हैं ?

बालकराम–मैं अपना हिसाब आपके सामने रखे देता हूं–– आप ही देख लीजिए ।

भाई साहब–मुझे हिसाब से कोई मतलब नहीं । आप प्रूफ के कागज पर मेरी किताब छाप दें तो भी मुझे कोई एतराज नहीं, जेकेट अच्छा होना चाहिए––यही मेरी शर्त है ।

बालकराम–(सिर खुजाकर) मुझे एक बार हिसाब लगा कर देख लेने दीजिए । कुछ प्रेसों से पूछना पड़ेगा––

भाई साहब–आप जो कुछ तै करें मुझे कल सुबह तक बता दीजिए । नहीं तो दोपहर म गोपाल को वी० पी० भेजनी पड़ेगी ।

बालकराम–तो ऐसा करता हूं––कल तक रुक जाइए । कल शाम तक आखिरी बात बता देता हूं । तब तक वी० पी० किसी को न भेजिए । पर इतनी बात तै रही कि भाषण मुझी को मिलेगा । उसके लिए आप जो मांगें दूंगा । बाद में स्वागत मण्डल से वसूल कर लूंगा ।

भाई साहब–उससे मुझे कोई मतलब नहीं, आप चाहे जो कीजिए ।

बालकराम–अच्छी बात है, तो मैं जाता हूं––नमस्ते । इस बार लेन-देन में कुछ कमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेशी रह जाए तो बुरा मत मानिए। एक बार मेरा आपका बिजनेस हो जाने दीजिए, फिर आप और किसी के पास नहीं जाएंगे। अच्छा चलता हूं, नमस्ते ! (सुमित्रा से) नमस्ते, जरा आप भी ध्यान रखिए--(जाता है। सुमित्रा दरवाजा बन्द करके बैठती है। क्षण भर दोनों में से कोई भी नहीं बोलता।)

सुमित्रा–दूसरों के सामने आप मेरा अपमान क्यों करते हैं ? क्या सोचा होगा उन्होंने !

भाई साहब–कुछ नहीं सोचा होगा। कुछ सोचा होता तो जाते समय ध्यान रखने के लिए क्यों कहता ? पुराने ज़माने का आदमी है। कई मामलों में स्त्री पति की मुट्ठी में होती है उसी तरह पति भी कई मामलों में स्त्री की मुट्ठी में होता है ऐसा समझने वाली जो एक पीढ़ी है उसका यह आखिरी नमूना है। उससे किस तरह पेश आया जाए सो तुम्हारी समझ में नहीं आएगा। और देखो, सौदे-पैसे के मामले में तुम बीच में न बोला करो।

सुमित्रा–तो कौन से मामले में बोला करूं ?

भाई साहब–कौन से ? वैसे देखा जाए तो किसी भी मामले में बोलने की ज़रूरत नहीं। पेड़ पर चढ़ी हुई बेल को पेड़ की चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं। पेड़ स्वयं ही काफी मजबूत होता है। बेल को चाहिए केवल उससे लिपटी रहे, फूलती रहे, हंसती रहे, खेलती रहे--

सुमित्रा–कुछ ऐसी ही बात वह भी कह रही थी।

भाई साहब–मेरी पुस्तकों का उसने काफी गहरा अध्ययन किया जान पड़ता है। मैं इतना पिछड़ा हुआ नहीं हूं कि स्त्री को चूल्हे और बच्चों की मालकिन समझूं। पर यह कहने वाले लोग कि वह मर्दों के साथ मर्द बन जाए, मेरी दृष्टि में एकदम बेवकूफ हैं। औरत बेल है, लता है--पेड़ नहीं। उसे चाहिए पेड़ के सहारे रहे। पेड़ की शोभा बढ़ाए। स्त्री पुरुष का अलंकार है, जीवन नहीं। कई लोगों ने प्रयत्न किए पर वे सफल नहीं हो सके। पुरुष पुरुष ही रहेगा और स्त्री स्त्री ! यह कुदरती बात स्त्री नहीं काट सकती। इसी फलसफे का मैं प्रचार कर रहा हूं। स्त्री को स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए--ज़रूर मिलनी चाहिए पर उसकी सीमा मर्यादित होनी चाहिए। स्त्रीत्व की मर्यादा पार करके वह पुरुष जैसा न बन जाए इसलिए लम्बा पगहा--काफी लम्बा पगहा--पर पगहा होना ही चाहिए। उसी के कल्याण के लिए इस पगहे की ज़रूरत है। वह अपनी ताकत नहीं जानती। सुना है यह पगहा तोड़ने का लेनिन ने प्रयत्न किया था, पर अब वह प्रयोग भी असफल साबित हो रहा है। औरतों की आजादी एक मीठा स्वप्न है। उस स्वप्न में उन्हें भुलाए रखना चाहिए। वह स्वप्न टूटना ठीक नहीं, यह ज़रूरी है कि वे स्वप्न को ही सत्य समझती रहें, तभी पुरुष की गृहस्थी सुखमय होगी।

सुमित्रा–और स्त्री की गृहस्थी ?

भाई साहब–वही स्त्री की गृहस्थी है। पुरुष से परे स्त्री की दूसरी गृहस्थी नहीं हुआ करती।

सुमित्रा–और पुरुष की ? वह संसार भर में अपनी गृहस्थी फैलाता फिरे, क्यों ?

भाई साहब–अब तुम चुभने वाली बातें करने लगीं। फिर एक बार मेरी किताबें ठीक से पढ़ो, गौर से पढ़ो। कितने ऊंचे शिखर पर मैंने स्त्री जाति को बैठाया है--

सुमित्रा–सपनों के ?

भाई साहब–और यह दुनिया क्या है ? सपना नहीं है ? आज है कल नहीं रहेगी। जब तक दिखाई दे रही है तब तक सत्य है। आंखें मूंदते ही चारों ओर अंधेरा। कल्पना के चित्र आंककर उस अंधेरे की मूरतें बनाना और खुद बनाई हुई मूरतों को सीने से लगाकर कल्पना कर लेना कि नए संसार का निर्माण हो गया है। इस नए संसार के मूल्य तुम अभी नहीं समझ पाओगी, उन्हें समझने के लिए पुरुष का हृदय चाहिए--स्वाभाविक कठोरता चाहिए--उस कठोरता में विधाता की निर्माण शक्ति होती है। कोमलता के क्षेत्र में सिर्फ बीज का विकास होता है, पर विकास का मूल उस बीज की कठोरता में ही होता है। यह बात ठीक से समझे बिना पुरुष के पौरुष की श्रेष्ठता ठीक से नहीं समझी जा सकती। उस पौरुष के काम में ही--(घंटी बजती है) देखो तो कौन आया है।

सुमित्रा–तो क्या फिर से अन्दर जाकर बैठोगे ?

भाई साहब–पहले देखो तो कौन है ?

(सुमित्रा दरवाजा खोलती है। कमलेश आता है, उसके कपड़े अंग्रेजी फैशन के अपटुडेट हैं पर उसके पहरावे से बुद्धूपन ही अधिक झलकता है, कभी नाराज न होने वाला वह एक हंसमुख, मधुर भाषी युवक लेखक है।)

कमलेश–कांग्रेट्स, भाई साहब, कांग्रेट्स !

भाई साहब–कैसे कांग्रेट्स ?

कमलेश–आप सभापति चुन लिए गए !

भाई साहब–कौन ? मैं ? हंसी उड़ा रहे हो मेरी ? इस बार बाबा साहब चुने जाएंगे यह बिल्कुल तय है।

कमलेश–मैं भी यही समझता था। पर आपको उनसे पांच गुना वोट मिले।

भाई साहब–नहीं, नहीं ! यह हो ही नहीं सकता। किसी ने तुम्हें बनाया होगा !

कमलेश–मैं था जो वोट गिनने के लिए--सुनाइए भाभीजी ? क्या ख्याल है ?

सुमित्रा–ख्याल क्या है ? पेड़ से लिपटी कई लताओं में से मैं भी एक लता हूं।

भाई साहब–सुना कमलेश, यह इसकी नम्रता है। मैंने इस सभापति पद की कभी भी पर्वाह नहीं की पर यह बार बार-कहा करती थी--अच्छा, अच्छा, समझ गया। पर कमलेश से न कहूं तो कहूं किससे ? यह तुम्हारे लिए अभिमान की बात है। (कमलेश से) स्त्री पुरुष के अभिमान की मूर्ति होती है। पुरुष स्त्री के अभिमान के लिए ही इतना संघर्ष किया करता है। स्त्री न होती तो पुरुष चैतन्य हीन हो जाता--

सुमित्रा–स्त्री न होती तो पुरुष होता ही नहीं, और पुरुष को कोई पुरुष भी न कहता।

भाई साहब–अजी यह लक्षणा है, यह सब तुम्हारी समझ में नहीं आएगा। तो क्या सचमुच बाबा साहब नहीं चुने गए ?

सुमित्रा–सचमुच ये चुने गए हैं ?

कमलेश–बता तो दिया। मैं खुद वोट गिनने वालों में शामिल था। बहुत बड़ी मेजारिटी से भाई साहब चुने गए हैं। झूठ क्यों बोलूं ? क्षण भर मुझे दुख हुआ--

सुमित्रा–शाबाश ! इसलिए कि ये चुने गए ?

कमलेश–नहीं, नहीं ! दुख इसलिए हुआ कि बाबा साहब हार गए। पर वे कब पर्वाह करते हैं।

सुमित्रा–तो ये भी कहां पर्वाह करते हैं ?

कमलेश–और आप ?

सुमित्रा–सच बताऊं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई साहब–हां, हां, बताओ न !

सुमित्रा–सचसच बताऊं ?

भाई साहब–बिल्कुल सच सच बताओ ! जरा भी संकोच न करो ।

सुमित्रा–सुनते हो कमलेश, मैं हूं एक गृहिणी । इस गृहस्थी का सारा बोझा मुझे उठाना पड़ता है––इसी नाते मैं देखती हूं । इस नजर से देखती हूं तो लगता है––(रुक जाती है)

भाई साहब–बताओ न ?

सुमित्रा–लगता है मुझ बड़ी खुशी हुई है । अब और भी ज्यादा किताबें बिकेंगी । ज्यादा पैसा मिलेगा और मैं दो अच्छे से गहने बनवा लूंगी । पर फिर सोचने लगती हूं––एक प्रश्न मन में उठता है––यह किस की जीत हुई ?

कमलेश–सचमुच ! किसकी जीत हुई ?

भाई साहब–बताओ न ? किसकी जीत हुई ?

सुमित्रा–स्त्री जाति के दुश्मन की !

कमलेश–ये दुश्मन हैं ? भाई साहब स्त्री जाति के दुश्मन हैं ?––

(घंटी बजती है । दरवाजा खोलने के लिए सुमित्रा जाने लगती है तभी अधखुला दरवाजा ठेलकर हाथों में हार लिए सुषमा प्रवेश करती है । सुमित्रा को सामने आते देखकर घबड़ाहट से ठिठक कर 'ओह !' कह कर वह जोर से चीख मार कर दरवाजे के पास ही रुक जाती है ।)

सुमित्रा–आइए, आइए । अब कोई डरने की बात नहीं । मेरा भेस अब बदल चुका है । मेरे हाथों का वह हथियार भी उधर कोने में पड़ा है । ले आइए वह हार । आप अकेली ही क्यों आईं ? अपने साथ और सौ पचास लड़कियों को क्यों न लाईं––आइए । ये देखिए ये यहीं खड़े हैं । डालिए इनके गल में हार ।

सुषमा–गले में ? कैसी पागल हैं आप ! हार कहीं गले में डाला जाता है ? हार गले में डाल दूं तो मेरे मत्थे गुलामी जो पड़ जाएगी ? यह हार मैं इस तरह (भाई साहब के निकट जाकर उनके पैरों पर हार रखती हूं !) अपने हृदयेश्वर के चरणों पर अर्पित करूंगी ।

भाई साहब–सुना कमलेश ? देख लिया ? ––स्त्री जाति का यह वास्तविक रूप देख लिया ?––निर्भय बालिके, मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूं ।

सुषमा–पुरुष के कन्धे पर सिर रख कर निर्भर रहने का स्वतन्त्रता का मार्ग स्त्री जाति को दिखाने वाले हे शब्द सृष्टि के ईश्वर ! सरस्वती पुत्र ! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूं !

––पटाक्षेप––

●

दूसरा अंक

(गिरगांव टापू की मध्यम बस्ती के एक भरे हुए ब्लाक की तीसरी मंजिल पर दो कमरे वाले मकान का एक कमरा । रंगमंच की पिछली ओर कमरे में से बाहर जाने के लिए दरवाजा और उसी के साथ एक खिड़की है । दरवाज़े और खिड़की में से बाहरी गेलरी दिखाई दे रही है । बाहर से आने वाले व्यक्ति इसी में से होकर आते हैं । गेलरी के पीछे सड़क की दूसरी ओर का ब्लाक दिखाई दे रहा है । दाहिनी ओर दूसरे कमरे में जाने के लिए दरवाज़ा है । कमरे के एक कोने में राइटिंग टेबल, उसके निकट एक कुर्सी और टेबल पर रोशनी करने वाली दीवाल पर लगी हुई बिजली की बत्ती है । दूसरी ओर एक पुस्तकों की अलमारी है तथा उसके पास बेंत की एक आराम कुर्सी और तीन चार लकड़ी की फोल्डिंग कुर्सियां दीवार के सहारे खड़ी की हुई हैं––

परदा उठते समय सुलभा हाथ में एक कागज़ लिए भीतरी कमरे से बाहर आती है । गेलरी में जाकर झुककर देखती है । फिर अन्दर आकर टेबुल पर रखी घड़ी की ओर देखती हुई स्वगत बड़बड़ाती है, 'अभी तक क्यों नहीं आए ?' फिर से गेलरी में जाती है तभी दूसरी ओर से आते हुए राजा भैय्या खिड़की में से दिखाई देते हैं ।)

सुलभा––आ गए शायद ?

राजा भैय्या––(दरवाजे में ही) कौन ? तुम्हारे पिताजी ?

सुलभा––तो ? आप शायद स्टेशन नहीं गए ?

(राजा भैय्या अन्दर आता है । टोपी और कोट उतार कर खूंटी पर टांगता है और तत्पश्चात टेबुल के पास वाली कुर्सी पर बैठता है । इस बीच सुलभा कह रही है ।)

सुलभा––क्या कहा जाय ? कितने लोग गए होंगे स्टेशन पर । पर हम घर के ही लोग वहां नहीं । कहा, मैं जाती हूं तो ––

राजा––तो क्यों नहीं गईं ?

सुलभा––खूब ! मुझ से कहा न जाओ–– मैं जाता हूं । और अब यों कह रहे हैं ? बहुत खूब ।

राजा––चाय बनाओ न––यों देख क्या रही हो ? सच बताऊं, मैं भूल गया । आज आफिस में बहुत काम था–– (हंसता है) और देखो, एक मजेदार बात बतलानी है तुम्हें । बताते ही तुम्हारी नाराजगी गायब हो जायगी । पर पहले चाय पिलाओ ।

सुलभा––चाय नहीं मिलेगी । पिताजी कहेंगे––

राजा––क्या कहेंगे पिताजी ? अजी पचास आदमी गए होंगे उन्हें रिसीव करने के लिए, मुझे और तुम्हें पूछता कौन है ? उनके सारे पुजारी उन्हें घेरे होंगे । हम लोग जाते तो वे हम लोगों की ओर झांक कर भी न देखते । आ जायेंगे अपने आप घर––अब बनाओ न चाय ।

सुलभा––मैं कहे देती हूं, चाय नहीं मिलेगी । कहते हैं झांक कर न देखते । न देखते, पर अब लोग क्या कहेंगे ? जिनका कोई रिश्ता नहीं वे लोग पहुंचेगे लेने के लिए और लड़की और जमाई ही गैरहाजिर । हूं : और चाय मांगते हैं ।

राजा––मुझे लगता है आज उनकी गाड़ी मिस हो गई है । आते तो अभी तक पहुंच गए होते । सुनो, मैंने जो तुमको एक मजेदार बात सुनाने के लिए कहा था न––उसी के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं स्टेशन नहीं गया। (उठकर खूंटी पर टंगे कोट की जेब में से एक लिफाफा निकालता है।) यह देखा ? पढ़ोगी तो खुशी से नाचने लगोगी। अभी समाचार पत्रों को भी पता नहीं है। पोस्ट नहीं किया, स्वयं ले आया, इसी कारण देर हो गई। देखा तो गाड़ी का समय निकल चुका था। सोचा यहीं आश्चर्यचकित करूं तुम लोगों को --

सुलभा-- यह क्या है ?

राजा--पढ़ोगी तो नाचने लगोगी।

सुलभा--(झांककर पढ़ने का प्रयत्न करती है। वह पत्र पीछे छिपाता है) पिता जी के नाम जान पड़ता है।

राजा--तो तुमने क्या समझा था ?

सुलभा--सोचा शायद प्रमोशन मिला है। कवर युनिवर्सिटी का दिखाई देता है।

राजा--हां, यनिवर्सिटी का ही कवर है। और प्रमोशन भी है ही।

सुलभा--कैसा ? किसका ?

राजा--मेरा नहीं, तुम्हारे पिता जी का।

सुलभा--पिता जी का ? पिताजी तो आपके दफ्तर में नौकर नहीं ?

राजा--यही तो मजा है ?

सुलभा--अच्छा देखूं तो क्या है।

राजा--और दो घण्टों में सारी बम्बई जान जायगी। फिर उसमें मज़ा नहीं।

सुलभा--यह क्या बात है ? कह रही हूं न दिखाइए।

राजा--यों नहीं मिलेगा, पहले चाय पिलाओ।

सुलभा--फिर कहती हूं यह देखे बिना चाय नहीं मिलगी।

राजा--और मैं भी कहे देता हूं कि चाय मिले बिना यह देखने को नहीं मिलेगा।

सुलभा--ठीक है। देख लेते हैं। (आराम कुर्सी पर जाकर बैठ जाती है।) मैं ये चालबाजियां समझती हूं। स्टेशन पर नहीं गए, पिताजी से नहीं मिले, उन्हें लिवा नहीं लाए और कहते हैं, (मुंह बनाते हुए) मजेदार बात है--(दोनों क्षण भर स्तब्ध रहते हैं। तत्पश्चात सुलभा उठकर राजा भैय्या के पास जाती है।) वह लिफाफा दिखाइए न-- सुना ? सुनाई नहीं पड़ता ? देते हैं या नहीं सीधी तरह से ?

राजा--पहले चाय पिलाओ--

सुलभा--चाय होटल में है।

राजा--लिफाफा युनिवर्सिटी में है।

सुलभा--यह क्या बात है। कह रही हूं न दीजिए, मेरी सौगंध है--भयभीत होकर ज़बान क्यों चबातें हैं ? सौगंध से भयभीत होकर जबान चबाने के दिन अब बीत गए।

राजा--और सौगंध दिलाने के दिन भी अब बीत गए हैं समझी ? रोज कसमें खाकर उन्हें तोड़ा जाता है पर कोई नहीं मरता।

सुलभा--क्यों परेशान करते हैं ? दीजिए न पत्र--दीजिए न--दीजिए--दीजिए--दीजिए--नहीं देते ?--

(वह ज़बर्दस्ती लिफाफा छीनने का प्रयत्न करती है। वह उसे छिपाने का प्रयत्न करता है। आखिर वह लिफाफा छीन लेती है और दौड़ कर कमरे के दूसरे कोने में जाकर लिफाफा खोलकर पढ़ती है। राजा भैय्या उसकी ओर कनखियों से देखता है और मुस्कराता है।)

सुलभा--(पढ़कर) डाक्टर ? पिताजी डाक्टर ? (राजा भय्या के निकट आकर) अजी डाक्टर के जमाई साहब, मुंह न था बताने के लिए। आते ही सीधी तरह बता देते तो क्या बिगड़ जाता ?

राजा--है न मजे की बात ?

सुलभा--पिताजी डाक्टर, ऐं--(राजा भय्या की ओर देखती रहती है)

राजा--देखती क्या हो ? मैं नौकर कहलाता हूं--कोल्हू का बैल--पर उसी बैल की अक्ल यहां काम में आई। कितना चीखा चिल्लाया तब जाकर कहीं--

(बाहर से बाबा साहब की आवाज आती है--'अरे वह सामान इधर ले आओ।')

सुलभा--शायद पिताजी आ गए। (बाबा साहब आते हैं) आ गए पिताजी ? मैं स्टेशन पर न आ सकी।

बाबा--स्टेशन पर आने की आवश्यकता ही क्या थी ? बहुत से लोग आए थे मुझे सताने के लिए--(मजदूर सामान लाकर अन्दर रखता है) सुला, इधर तो आओ इस ओर। (धीरे से) दो आने दे दो उस मजदूर को।

(सुलभा राजा भैय्या को आंख से इशारा करती है। राजा भैय्या जेब से एक आना निकाल कर मजदूर को देता है)

मजदूर--एक ही आना ? सत्रह सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आया हूं।

बाबा--दो आने दे दो उसे ?

राजा--दो आने किस बात के ? सड़क से यह बैग और बिस्तरा ही तो लाया है ?

बाबा--ये हार किस लिए लाए हो ? नहीं तो देखो, ये हार तुम ले जाओ। किसी को बेच दो। दो दो रुपये के होंगे। आसानी से चार आठ आने मिल जायेंगे --

सुलभा--वाह। क्या ये हार उसे देने के लिए हैं ? कैसा अच्छा गुलाब है। और रिबन भी सुन्दर है। भला हार क्या मजदूर को देने के लिए हैं ? (हार उठाकर अन्दर जाती है)

मजदूर--दीजिए न हुजूर एक और आना।

बाबा--दो न उसे और एक आना राजा।

(राजा भैय्या मुंह बिगाड़ता हुआ एक आना उसे देता है। मजदूर जाने लगता है)

राजा--अरे यह अन्दर ले जाकर रखो।

मजदूर--कहते हैं अन्दर रखो। कैसे आलसी होते हैं ये सफेदपोश।

(यह कहता हुआ सामान अन्दर रखकर बाहर चला जाता है। तभी जूड़े में गुलाब के फूल खोंसती हुई लिफाफा लिए, सुलभा बाहर आती है।)

सुलभा--सुना पिताजी,--

बाबा--पिताजी गए जहन्नुम में। (जेब में से पर्स निकाल कर खोलकर दिखाते हुए) यह देखो, केवल दो पैसे बाकी बचे हैं। (हंस कर) यों दो पैसे मैंने बचाकर रखे हैं-- (खोजकर) और ये हार पहनाते हैं कमबख्त। दो दो रुपये का होगा प्रत्येक। हार पहनाने के बजाय दो दो रुपए दिए होते तो दो आने के लिए क्यों इस राजा भैय्या के सामने हाथ फैलाना पड़ता ?

राजा--मेरे दो आने तो खर्च होने ही थे--इसके गजरों के लिए। वैसे देखा जाय तो अब दो चार दिनों के लिए गजरों का पर्याप्त इन्तजाम हो गया।

सुलभा--जरा ठहरिए। पहले यह बताइए पिताजी, आज आप अपने को समझते हैं, आज आप कौन हैं ?

बाबा--मुझे लगता है मैं मूर्ख हूं ?

सुलभा--यों नाराज होने के लिए क्या हो गया ? साहित्यपरिषद् के अध्यक्ष बनकर आप परिषद् में धाक जमाकर आए हैं--

बाबा--हां, हां, धाक जमाकर आया हूं, तो फिर ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुलभा--ऐसा क्यों कहते हैं पिताजी ? सारे समाचारपत्र एक साथ तारीफ कर रहे हैं--किसी ने भी खिलाफ नहीं लिखा--ऐसा हुआ था कभी परिषद् के इतिहास में ? --(जरा रुक कर) तो सुना पिताजी । और इधर क्या हुआ जानते हैं ?

बाबा--घर मालिक कुर्की ले आया ?

सुलभा--यह आपको हो क्या गया है आज ? बड़ी मजेदार बात हुई है यहां--बहुत बहुत मजेदार ।

बाबा--राजा के पचास से साठ हो गए ?

राजा--साठ होने के लिए अभी तीन साल लगेंगे । पर यह बात कुछ और ही है । अभी-अभी सिनेट की बैठक समाप्त हुई है । अभी समाचारपत्रों को पता नहीं--

बाबा--क्या हुआ ? क्या किया सिनेट ने ?

सुलभा--बहुत बड़ा तीर मारा है सिनेट ने ।

बाबा--ऐसी कौन सी बात है जिसके कारण बम्बई की बुढ्ढी का प्रेत जाग उठा ?

सुलभा (लिफाफा दिखाते हुए) यह देखिए ।

बाबा--यह क्या है ? इनकम टैक्स का वारण्ट तो नहीं ? दमड़ी मिलती नहीं--तीन महीने से घर का किराया नहीं दिया--और कहते हैं इनकम-टैक्स दीजिए ।

सुलभा--पहले ठीक से देखिए तो सही ।

राजा--मैंने जल्दी की । हम क्लर्क जो कर सकते हैं वह वाइस चान्सलर भी नहीं कर सकता ।

बाबा--कौन सा मैदान मारा है जी आपने क्लर्क महाशय ? (सुलभा से) दो तो वह लिफाफा मुझे । देखूं क्या कहता है बुड्ढी का प्रेत ?

सुलभा--अब ऐसी बातें हमारी युनिवर्सिटी के बारे में न कहिए । बुढ्ढी होने पर भी अब वह जाग पड़ी है ।

बाबा--(लिफाफा खोलकर फिर से पत्र लिफाफे में रखकर उसे दूर फेंकते हुए) हूं : ? यही ? क्या यही मजे की बात थी ?

सुलभा--यही !

राजा--यही !! (सुलभा से) अब सुन लो यही कह रहे हैं ।

बाबा--तो क्या कहूं ? बड़े उपकार किए कहूं ? उससे तुम्हें सन्तोष होगा ? (खड़े होकर--हाथ जोड़ कर) बड़े उपकार किए जमाता साहब । मैंने आपको अपनी लड़की दी--आपने हमें एक डिग्री लाकर दी । तीन साल तक युनिवर्सिटी से झगड़ता रहा पर इन्टर आर्ट्स का मैदान पार न कर सका । अब यह डाक्टरेट दिलवाई है । बड़ा एहसान है आपका ! --(जाकर आराम कुर्सी पर बैठते हुए) अब चाय ले आओ सुला । कपड़े बड़े मैले हो रहे हैं, नहाए बिना चैन न मिलेगा ।

राजा--(सुलभा से) जाओ, अब तो चाय ले आओ । (राजा भय्या टेबुल के निकट वाली कुर्सी पर जाकर बैठता है । सुलभा अन्दर जातीं है । क्षणपर दोनों कुछ नहीं बोलते ।)

बाबा--रूठ गए राजा ? देखो, मुझे किसी भी चीज़ में बड़प्पन नहीं महसूस होता । सब कुछ भरपूर है लेकिन केवल सम्मान की इन उपाधियों से पेट नहीं भरता । अंग्रेजी का राज हुआ और उसी के साथ उपाधियों का यह प्रपंच खड़ा हो गया । सूखी उपाधि देने में क्या जाता है । पर इस उपाधि को कोई संभाले कैसे ? और सामान भी तो चाहिए न उपाधि के साथ ? क्या उसका इन्तजाम करेगी तुम्हारी युनिवर्सिटी ?

(भीतर से स्टोव और प्याले तश्तरियों की आवाज़ आ रही है ।)

सुलभा--(अन्दर से) चाय आपको दो कप चाहिए न पिताजी ?

राजा--मेरे लिए एक कप काफ़ी है ।

बाबा--मुझे दो कप चाहिए । होटल में जाता तो अभी दो आने देने पड़ते । बहुत उपकार हैं तुम्हारे राजा । डिग्री के उपकार की अपेक्षा ये उपकार बहुत बड़े हैं-- (राजा भैय्या उतावलेपन से भीतरी दरवाजे की ओर झांक रहा है ।) अरे आ रही है चाय । इतने उतावले क्यों हो रहे हो ?

राजा--बड़ी शान से हुई न परिषद् ?

बाबा-- और नहीं तो क्या । बड़ी शान से हुई । खूब दावतें उड़ाईं--चाय पार्टियां हुईं --लगातार कार में घूमता था--जमीन से पैर न लगाया--पर कल कोर्ट जाना है उसके लिए । ट्राम के दो आने तुम से लेने पड़ेंगे--पचास रुपये पाने वाले एक क्लर्क से । कैसी मजेदार बात है । क्यों ?

(सुलभा एक तिपाई लाकर बाबा साहब के सामने रखती है । दूसरी एक कुर्सी उसके पास खींच कर रखती है और फिर से अन्दर जाती है ।)

बाबा--बैठो न राजा ।

राजा--और क्या क्या हुआ वहां ।

बाबा--समाचारपत्र पढ़े हैं न ? बहुत लिखा है उन्होंने । कई बातें जो मुझे स्वयं पता नहीं थीं इन समाचारपत्रों ने लिखी हैं । उनसे अधिक मैं और क्या बता सकता हूं ?--(सुलभा ट्रे में तीन चाय के ग्लास लाकर रखती है और एक ओर खड़ी हो जाती है ।) बड़े जोर-जोर से बोल रहा था--पर सारा ध्यान इधर था । सोचा घर वाला कुर्की ले आया तो आफत आ जायगी हमारी राज-रानी पर---(सुलभा से) क्यों रानी साहब, आया था वह इधर ?

सुलभा--कौन ?

बाबा-- घर मालिक का मुनीम । नोटिस दिया है न उसने ?

सुलभा--अभी नहीं, केवल तगाज़ा कर गया था ।

बाबा--(चाय पीते-पीते) कल जब वह यहां आएगा तब यह युनिवर्सिटी का लिफाफा मारना उस के मुंह पर ।

(राजा भैय्या और सुलभा परस्पर अर्थपूर्ण दृष्टि से एक दूसरे की ओर देखते हैं । राजा भैय्या चाय समाप्त करके कोट पहनता है ।)

बाबा-- क्यों जी, कहां चले ? शायद पारा उतरा नहीं, अरे, यह तो चलता ही रहेगा । दुनिया की दृष्टि में मैं बड़ा कृतघ्न आदमी हूं--और एक तरह से यह ठीक भी है । मैं किसी भी चीज़ का महत्व नहीं मानता । इस दुनिया में महत्व है तो एक ही चीज़ का-- पैसा । पैसा चाहिए । --और वही मेरे पास है नहीं । (जोर से हंसता है) और अब यह डिग्री मिली है । कल से सब लोग मुझे 'डाक्टर डाक्टर' कह कर पुकारेंगे--जले पर नमक छिड़केंगे । वस्तु स्थिति यह है । मुझे आनन्द हो इसलिए तुमने कोशिश की--यह डिग्री मिली --पर क्या फायदा ? मेरी यातनाएं बढ़ गईं, बस ! चले कहां ? ठहरो न ।

राजा--नहीं--मुझे जरा काम है ।

बाबा--पता है तुम्हारा काम, --उतार दो वह कोट । और तुम, तुम्हारी क्यों घिग्घी बन्ध गई है ? मुफ्त में गुलाब के फूल मिल गए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न सिर में खोंसने के लिए। इतना ही वैभव है तुम्हारे पिता के घर का।

सुलभा--नहाइएगा न ?

बाबा--हां, सच। भूल ही गया था। यह हालत है मेरी। नल में पानी है न ? नहीं तो पानी भी न होता हमारे घर में।

सुलभा--चलिए अब उठिए। नल पर नहाने की सारी तैयारी कर रखी है। (कपड़े उतारते हुए बाबा साहब अन्दर जाते हैं और भीतरी दरवाजा बन्द कर लेते हैं।)

राजा--(कोट उतार कर रखते हुए) क्यों ? देख लिया न पिता जी क्या कहते हैं ?

सुलभा--मनुष्य का दिल लेना चाहिए--बोलना नहीं। भीतर आग सुलगने पर बाहर एकाध चिनगारी निकलना स्वाभाविक ही है। इतने सालों से देख रही हूं--इतनी पुस्तकें लिखीं पर अब भी वही हाल है जो पहले था। बिचारी मां ने जीवन भर तकलीफ उठाई--वह चल बसी, छुटकारा मिला। पर वही बात इन के मन में चुभ रही है। आज मां होती तो उसे कितना आनन्द होता। कितना अभिमान था उसे पिताजी के लेखन पर। ऐसी इस दरिद्रता में भी वह पिताजी को जी भर हंसाती। आज उन्हें शायद इसी बात की याद आई है।

बाबा--(अन्दर से नहाते-नहाते) हां। हां वही याद आई, चुप रहो। मुझे सुख से नहा लेने दो।

(राजा भैय्या फिर से टेबल के नजदीक वाली कुर्सी पर जाकर बैठता है। सुलभा उसके पास जाकर खड़ी हो जाती है।)

सुलभा--सुन लिया ? मनुष्य जब दुखित होता है तो क्रोध दिखाकर दूसरे को धोखा देने का नाहक प्रयत्न करता है। बड़े लोग रोते नहीं, केवल गुस्सा होते हैं--अपने भाग पर नहीं, दुनिया पर होते हैं--दूसरे पर गुस्सा होते हैं।

राजा--यह धोखा किस लिए ? और कहती हो बड़े आदमी। हम छोटे लोग ही अच्छे हैं। जरा सा क्लर्क मैं--इतनी परेशानी उठाई, डिग्री दिलवाई और उसका इनाम मिला यह !

सुलभा--आपने इनाम की लालसा से थोड़े ही यह किया था। क्यों ? फिर उसके लिए क्रोध क्योंकर ?

राजा--कहता कौन है इनाम दीजिए ? पर कम से कम मीठी बात तो करें। हमेशा दूसरों पर जबान चलाते रहें--हरेक को छेड़ते रहें--छींटे कसते रहते हैं--कोई क्या समझे ?

सुलभा--उनका स्वभाव ही ऐसा है। उसके लिए क्या इलाज है ?

राजा--उनका स्वभाव उनके लिए, मुझे उससे क्या ? मैं क्योंकर उससे तकलीफ उठाऊं ? तुम्हारे कहने पर यहां रहा पर मुझे क्षणभर के लिए भी सुख नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त टेंट ढीली होती है सो अलग--

सुलभा--(उसके मुंह पर हाथ रखकर) कह रही हूं कि चुप रहिए। वे सुन लेंगे न।

राजा--(उसका हाथ एक ओर ठेलते हुए) सुनने दो। अब हद हो गई है। इतना मैंने किया पर उसकी भी कदर नहीं --(बाहर से 'डाक्टर साहब, अजी डाक्टर साहब' पुकारता हुआ प्रभाकर आता है)

(प्रभाकर आयु में तीस से कम एक युवक लेखक है। पोशाक अप-टु-डेट, दीखने में बुद्धिमान, बातें करते समय हाथ नचाने की आदत।)

प्रभाकर--(अन्दर आकर) डाक्टर साहब कहां गए हैं, राजा भैय्या ? अभी कोई और तो नहीं आया ? एकदम भागता हुआ आया हूं। सोचा पहला अभिनन्दन मेरी ओर से होना चाहिए। कहां हैं बाबा साहब--नहीं डाक्टर बाबा साहब ?

राजा--अभी-अभी आए हैं। अन्दर नहा रहे हैं। पर पहला श्रेय आपको नहीं मिला।

प्रभाकर--तो किसे मिला।

राजा--मुझे।

प्रभाकर--ऊंह--आप लोग घर के आदमी हैं। घर के आदमियों का अभिनन्दन करना कुछ मानी नहीं रखता।

राजा--क्यों ? मेरा अलग घर होता तो क्या मैं दौड़ता हुआ न आता ? (बाबा साहब दरवाजा खोलकर कुरता पहनते हुए बाहर आते हैं।)

बाबा--कौन ? प्रभाकर ? तुम यहां कैसे ?

प्रभाकर--वाह ! खूब ! यह क्या बात कही आपने ? अभिनन्दन जो करने आया हूं मैं !

बाबा--(एक कुर्सी खींच कर बैठते हैं और दूसरी कुर्सी प्रभाकर को देते हैं।) बैठो न। तो अभिनन्दन करने आए हैं आप ? किस बात के लिए अभिनन्दन करने वाले हो ?

प्रभाकर--किस बात के लिए यानि डाक्टरेट मिली है न आपको ?

बाबा--तो इसमें अभिनन्दन की क्या बात है ? ऐसी कौन-सी विशेष बात है इसमें ? क्या मैं डाक्टरेट के लिए अयोग्य था ?

प्रभाकर--यह क्या कह रहे हैं ? आप योग्य थे इसीलिए युनिवर्सिटी ने आपको डिग्री दी-- और इसीलिए आपका अभिनन्दन करना है। (इस बातचीत के दौरान में राजा भैय्या सुलभा के कान में कुछ कहकर, कपड़े पहनकर चल देता है। सुलभा राइटिंग टेबुल के सहारे खड़ी सुनती रहती है।)

बाबा--यह बात है ? मैं यह नहीं जानता था। पर मुझे यह बताओ प्रभाकर कि यह बात सुनकर क्या तुम्हें सचमुच आनन्द हुआ है ?

प्रभाकर--बहुत खूब ! यह कोई बात हुई ? क्या आनन्द हुए बिना ही मैं अभिनन्दन करने आया हूं ?

बाबा--साहित्य परिषद् की अध्यक्षता के लिए अयोग्य व्यक्ति को युनिवर्सिटी द्वारा डाक्टरेट दी जाना क्या योग्य हो सकता है ?

प्रभाकर--यह व्यर्थ कह रहे हैं आप बाबा साहब। पक्षाभिमान के वश होकर व्यक्ति कभी-कभी कुछ लिख जाता है। पर वह उतने भर के लिए।

बाबा--उतने भर के लिए का मतलब ? तुमने साफ-साफ वैसा लिखा। हजारों प्रतियां दीं। मेरी पुस्तकें कौड़ी कीमत की बताईं -- फिर भला कौड़ी कीमत का साहित्य लिखने वाले व्यक्ति को डाक्टरेट देने वाली युनिवर्सिटी की खबर लेने के बजाय मेरा अभिनन्दन करने क्यों आए हो ?

प्रभाकर--(हंसने का प्रयत्न करता हुआ) अब वह सब भूल जाइए। जो होना था हो गया। बाद के फेर में लिख गया उलटा सीधा। ईर्ष्या होती है न ?

बाबा--पर हजारों लोगों ने तो पढ़ लिया तुम्हारा लेख ?

प्रभाकर--लेकिन आप आखिर हो गए न अध्यक्ष ? कहां हुआ मेरे लेख का असर ? ऐसा चलता ही रहता है बाबा साहब। वैसे हम कितनी तारीफ करते हैं आपकी--खास बैठकों में, खैर छोड़िए उसे। कल सभा बुलाई है अभिनन्दन के लिए--

क्रमशः

रूपान्तरकार : र० श० केलकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एरिनबुर्ग और गिरासीमोफ़

नगेन्द्र भट्टाचार्य

७ अगस्त को दोपहर के समय हम सभी लोग प्रख्यात साहित्यकार 'एलिया ग्रिगोरियोविच एरिनबुर्ग के घर पर गए। दस्तक देते ही वे स्वयं बाहर निकल आए, हम लोगों का स्वागत करके भीतर ले गए और मादाम एरिनबुर्ग के साथ परिचय करा दिया। जब हम अच्छी तरह बैठ गए तो हमने चारों तरफ दृष्टि दौड़ाई। हमें ऐसा मालूम हुआ कि यहां का वातावरण अब तक देखे हुए रूस से बिलकुल स्वतन्त्र था। कमरे की दीवार पर पिकासो के नए चित्र और पोस्टर लगे हुए थे, पिकासो की नई सिरामिक डिज़ाइनों, गुड़ियों, थालियों, घड़ों से अलमारी भरी हुई थी। रूसी कलाकारों के दो एक चित्र भी लगे हुए थे, पर वे चित्र प्रचलित सोवियत कला नीति से बिल्कुल अलग मार्ग अपनाए हुए मालूम होते थे। सोवियत लोक-कला का संग्रह भी अच्छा खासा था।

हमारी आलोचना मूलरूप से वर्तमान सोवियत कला की शैली के सम्बन्ध में रही। एरिनबुर्ग ने कहा कि रूस की जनता दीर्घ काल से उच्च कोटि के संगीत तथा नृत्य से परिचित है, और वह रस ग्रहण की अभ्यस्त है, इसलिए जनता की तृप्ति के लिए उन्हें इन कलाओं को परोसते समय शैली को कहीं भी नीचे नहीं ले जाना पड़ा, पर चित्रकला के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। जनता की रुचि के तकाज़े को मिटाने के लिए रूसी चित्रों को बहुत कुछ नीरस और वस्तुतान्त्रिक होना पड़ा, इसलिए उसकी अग्रगति भी बाधाग्रस्त हुई है।

उन्होंने एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि उनका विश्वास है कि कलाकार और जनता जल्दी ही इस बन्द हवा से निकल कर खुले आंगन में आ खड़े होंगे और उनकी शक्तिशाली चिन्तन-शैली को बहुमुखी अभिव्यक्ति का मार्ग प्राप्त होगा।

सामने की मेज़ पर कहवा, शराब तथा तरह-तरह के केक रखे हुए थे। हम लोग साथ-साथ खाते और बातचीत करते जाते थे। एरिनबुर्ग के जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा पेरिस में बीता था। कलाकार पाब्लो पिकासो उनके विशिष्ट मित्र हैं। इसलिए पिकासो के बहुत से नए चित्र, लिथोग्राफ, शान्ति संग्राम सम्बन्धी पोस्टर मित्र के घर पर मौजूद हैं। सारे सोवियत राष्ट्र में केवल एलिया एरिनबुर्ग ही खुल्लमखुल्ला आधुनिक कला अन्दोलन के समर्थक और पोषक हैं।

वे हमें बगल के कमरे में ले गए। यहां भी दूसरे कलाकारों के बनाए हुए चित्र टंगे हुए थे। उन्होंने एक फ्रेंच कलाकार द्वारा बनाया हुआ चित्र दिखलाया। कम्पोजीशन और रंग का समावेश बहुत सुन्दर था। उन्होंने चित्र दिखाकर कहा—"यह हमारी श्रीमती जी का पोर्ट्रेट है।"

पर देखकर ऐसा नहीं लगा कि चित्र में जो उम्र झलकती है, वह उनकी पत्नी की वास्तविक उम्र से मिलती है। किसी की प्रतिकृति बनाते समय चित्रकार का पहला कर्त्तव्य है कि चेहरे के सादृश्य की रक्षा करना, भले ही सादृश्य का स्थान कला की दृष्टि से कितना ही नगण्य हो। एकाएक रसभंग हुआ। मैंने कह डाला—"अब तक अच्छा ही लग रहा था, यदि यह न सोचा जाए कि यह एक पोर्ट्रेट है, तब तो चित्र अच्छा ही है।"

दुभाषिए के मुंह से मेरी बात सुन कर एरिनबुर्ग मुस्कराए। एरिनबुर्ग फ्रेंच भाषा के पंडित हैं। वे हेब्बर और हरकिशन के साथ फ्रेंच भाषा में ही बातचीत कर रहे थे और हम लोगों के साथ दुभाषिए के जरिए से बातचीत हो रही थी।

कमरे की दीवार पर विभिन्न आकार तथा आकृति के पाइप कतारों में टंगे हुए थे। एरिनबुर्ग जैसे पाइप के प्रेमी हैं, उसी तरह उनके पाइपों का संग्रह भी विचित्र है। सुना है कि उन्होंने पाइपों पर जो कहानियां लिखी हैं, वे बहुत सुन्दर हैं।

बगल के कमरे की दीवार पर किरगिजिस्तान के जन कलाकार हमारे पूर्व परिचित चुइकाफ़ द्वारा चित्रित एक गरीब भारतीय नारी का चित्र देखने में आया, जिसकी गोद में एक बच्चा भी है। चुइकाफ़ १९५२ में सोवियत चित्रकला प्रदर्शनी के साथ भारत आए थे और उस समय उन्होंने इस देश के बहुत से प्राकृतिक दृश्य तथा प्रतिकृतियां चित्रित की थीं। यह प्रतिकृति उन्हीं में से एक है। उस दिन यह चित्र देख कर मुझे बहुत ही दुख हुआ और कुछ शर्म भी लगी। जाने कब हमारे देश की यह गरीबी मिटेगी।

एरियनबुर्ग तथा गिरासीमोफ़

आजकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर-उधर टहलत-टहलते एरिनबुर्ग ने हम लोगों से पूछा कि हम लोगों ने उनकी पुस्तकें पढ़ी हैं या नहीं। उन्होंने अपनी विख्यात पुस्तक 'पेरिस का पतन' का बंगला अनुवाद दिखलाया। साथ ही यह कहा कि प्रकाशन बहुत सुन्दर रूप से हुआ है। हम लोगों ने उन्हें बताया कि भारतीय भाषाओं में विशेष कर बंगला भाषा में बराबर बहुत से विदेशी लेखकों की पुस्तकों का अनुवाद हो रहा है। रूस के पुराने और नए लेखकों का अनुवाद भी विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रकाशित हो रहा है। यह सुनकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए।

एरिनबुर्ग से विदाई लेकर हम जब होटल में लौटे तो उनकी स्पष्टवादिता साथ ही सरल निष्कपट व्यवहार की छाप हमारे मन पर थी।

अगले दिन हम लोग कला अकादमी के अध्यक्ष अलेक्जेण्डर गिरासीमोफ़ के घर पर उन्हीं के निमन्त्रण पर गए। शहर से बाहर स्टेडियम को दाहिनी तरफ छोड़कर हम और भी कुछ आगे बढ़ गए, तब उनका घर आया। उनका यह घर निजी था। घर के चारों तरफ स्वाभाविक रूप से बिना किसी योजना के बढ़े हुए पेड़ थे। पेड़ों के नीचे पगडंडियां थीं। ये पगडंडियां उसी प्रकार थीं जैसे खण्डहर वाले मकानों में होती हैं। हम लोग पेड़-पालो हटाते हुए उनके स्टूडियो के दरवाजे पर पहुंचे। गिरासीमोफ़ हड़बड़ा कर हम सब की अभ्यर्थना के लिए आए।

उनका स्टूडियो भी बिलकुल बेतरतीब था। बड़े-बड़े कैनवासों पर समाप्त और असमाप्त चित्रों की भरमार थी। वे सबेरे से ही काम पर जुटे हुए थे। उन्होंने काम करने की एक साधारण पोशाक पहन रखी थी, जिस पर जहां-तहां रंग के दाग थे। वे अच्छी अंग्रेजी जानते थे, पर बोलने का अभ्यास न रहने के कारण धीरे-धीरे बोल रहे थे। बोले--हम आप लोगों का इन्तज़ार कर रहे थे।

फिर वे हेब्बर से बोले--कैनवास, रंग, कूंची सब तैयार है, पर तुम तैयार हो न ?

हेब्बर ने हां में जवाब दिया। गिरासीमोफ़ ने कहा--उस दिन जब तुमने यह कहा कि तुम मेरा पोर्ट्रेट बनाओगे तो मैंने भी निश्चय किया कि मैं भी तुम्हारा पोर्ट्रेट बनाऊंगा। एक ही साथ दोनों काम पर जुटेंगे।

इसके बाद वे और लोगों की तरफ देखकर पूछने लगे--किसी और को रंग, कूंची आदि की जरूरत हो तो बताओ।

पर मैंने निश्चय किया कि उन्हीं की बगल में बैठकर मैं यह देखूंगा कि वे किस तरह चित्र बनाते हैं। इसीलिए मैंने यह बताया कि मैं इस वक्त चित्र नहीं बनाऊंगा।

हम लोगों ने यह अनुरोध किया कि इससे पहले हम उनके चित्र देखना चाहते हैं। तरह-तरह के सरकारी पोर्ट्रेट थे। एक विराट कैनवास पर क्रेमलिन में वोरोशिलाफ और स्तालिन दिखाई पड़े। इसके अलावा पुश्किन तथा दूसरे रूसी साहित्यकारों और वैज्ञानिकों के चित्र भी दिखाई पड़े। इस समय उन्होंने एक विख्यात वैज्ञानिक का चित्र शुरू कर रखा था। रंग अच्छा लगा हुआ था। गिरासीमोफ़ अच्छे निपुण चित्रकार हैं, यह बात उनकी कृतियों से ही स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने अपनी लड़की का चित्र भी बना रखा था। लड़की हरी घास पर बैठी हुई थी और बगल में किरणों से झिलमिल एक वृक्ष था। रंगों का ऐसा सुन्दर प्रयोग विख्यात रूसी चित्रकार सेरफ़ की याद दिला देता है। मैंने पूछा--इतने

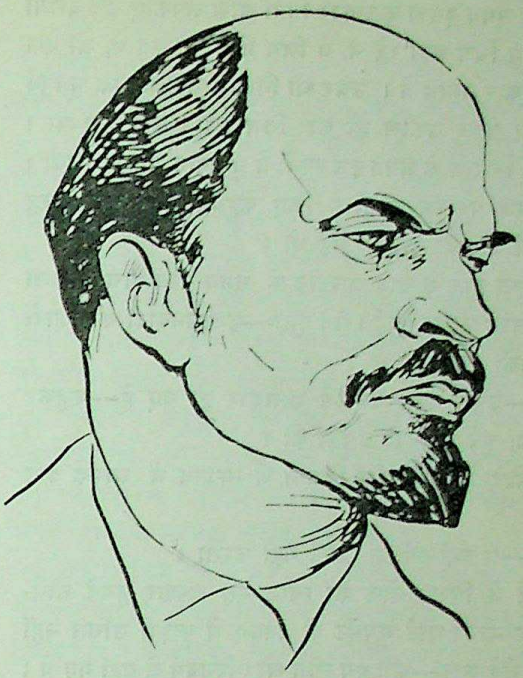

लेनिन

विराट चित्र बनाने का शारीरिक श्रम भी तो कम नहीं है, इस उम्र में आप इसे कैसे झेलते हैं।

वे हंसकर बोले--मेरे पासपोर्ट पर लिखी हुई उम्र के अनुसार इस समय मेरी उम्र बहत्तर साल की है, पर मैं अब भी जवान हूं। मैं जल्दी ही चीन में चित्र बनाने जा रहा हूं और मरने के पहले तुम्हारा देश इण्डिया भी देखना ही है।

मैं उनका उद्यम और उत्साह देखकर दंग रह गया।

हेब्बर और गिरासीमोफ़ परस्पर की प्रतिकृति बनाने में लग गए। हम यानी कमल सेन, हरकिशन और मैं, बैठ कर बूढ़े कलाकार का काम देखते रहे। कैसे शरीर का रंग तैयार करके चेहरे का बहुत कुछ भाडेलिंग ला दिया, फिर सिर के बाल और बैकग्राउण्ड से काट-काटकर चेहरा मिला दिया, मोटी रेखाओं से नाक, आंख, चेहरा आदि डिटेल तैयार हुआ, यह सब हम देखते रहे। दोनों जल्दी-जल्दी आसन और पैंतरे बदल रहे थे। जब एक जना काम करने में जुटता था तो दूसरा तब तक उसे देखकर अपने मन में गूंथ लेता था। इसके बाद कुछ देर तक याद करके उसी को चित्र

भारतीय कलाकार शिष्ट-मण्डल

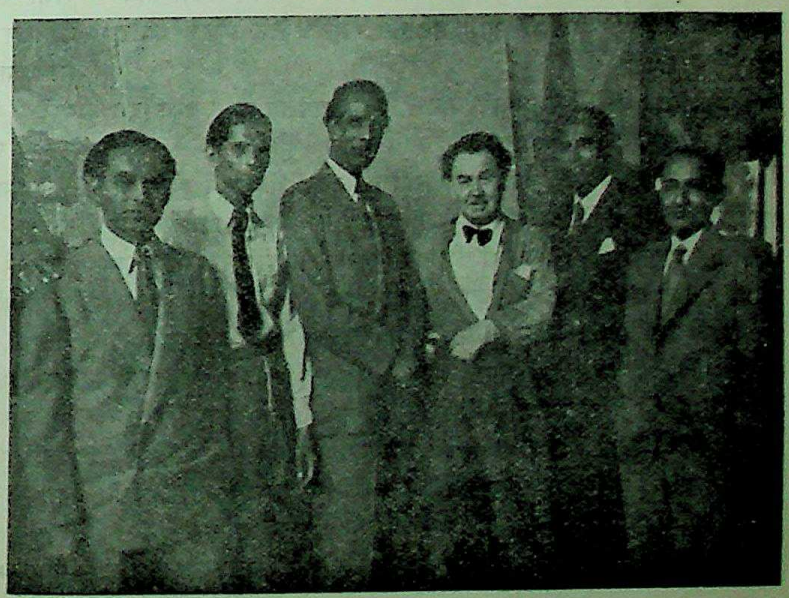

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर लाता था। उस समय दूसरा कलाकार बिना आंख झपकाए उसे देखता रहता था। जो लोग चित्र बना रहे थे, वे जिस प्रकार तन्मय थे, जो देख रहे थे, वे भी उसी प्रकार तन्मय थे। उधर श्री गिरासीमोफ़ का एक भूतपूर्व छात्र रंग और कूंची लेकर उकील जी का चित्र बनाने लग गया था। बीच में कुछ देर तक विश्राम के समय इन लोगों ने धूम्रपान भी कर लिया। इधर बहुत बड़ी मेज पर हम लोगों के लिए कहवा, चाय, तरह-तरह के केक तथा शराबों की व्यवस्था की गई थी।

चित्रांकन समाप्त होने के बाद जलपान के समय बीच-बीच में कला के सम्बन्ध में बहुत तरह की बातें हुईं। मैंने पूछा--इम्प्रेशनवादी कलाकारों के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है ?

उन्होंने कहा--उनमें बहुत बड़े-बड़े कलाकार हो गए हैं--कहकर उन्होंने मोने, द्येगा, कुर्बे की बड़ी प्रशंसा की।

मैंने पूछा--मोने, पिसारो और सिजान के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

उन्होंने कहा--मैं इन्हें अधिक पसन्द नहीं करता।

इनके सम्बन्ध में गिरासीमोफ़ का स्पष्ट मत सुनकर हमने सीधे-सीधे पिकासो और माडर्न आर्ट मूवमेंट के विषय में पूछना उचित नहीं समझा। फिर भी मैंने कहा--कल हम लोग श्री एरिनबुर्ग के यहां गए थे। उनके घर में पिकासो के कई चित्र हैं।

वे बोले--हां, एरिनबुर्ग हमारे देश के एक विख्यात साहित्यकार हैं, साहित्य सम्बन्धी आन्दोलन में उनका दान अमूल्य है, पर वे रूसी कला की कोई कद्र नहीं करते, इसलिए हम लोगों में बड़ा गम्भीर मतभेद है।

इसके बाद वे फिर बोले--संसार के शान्ति आन्दोलन में पिकासो का दान भी असाधारण है, इसलिए मैं उनको श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूं, पर इस कारण मैं उनकी खामखयालियों को चित्र की मर्यादा देने के लिए तैयार नहीं हूं। इस प्रकार के चित्र बुर्जोआ मन की विलासिता मात्र हैं, रहा कौन ऐसे चित्रों को समझते हैं, यह मुझे नहीं मालूम। हमारे देश की जनता न तो इन चित्रों को समझती है और न उन्हें पसन्द करती है। इसके अलावा हमारे यहां कलाकार समाज के बहुत ज़रूरी अंग हैं। उन लोगों ने जनता को देश के ऐश्वर्य के सम्बन्ध में सचेत तथा जागरूक बना दिया है। ऐसा न करके कुछ कलाकार जनता से हटकर अपनी खामखयालियों के पीछे बावले हो रहे हैं, इसे मैं समाज के लिए स्वस्थ प्रवृत्ति नहीं मान सकता।

इसके बाद वे बोले--तुम्हारे देश के चित्र समझने या उनका रस ग्रहण करने में हम लोगों को कोई भी असुविधा नहीं होती।

उन्होंने अवनीन्द्रनाथ का चित्र 'यात्रा का अन्त' में 'मुमुर्षु ऊंट' की बहुत प्रशंसा की। फिर बोले--अभिव्यक्ति की धारा भिन्न होने पर भी अजन्ता, राजपूत, मुगल और बाद की भारतीय धाराओं में बनाए गए चित्र प्रत्येक देश के कला रसिकों के मन में आनन्द का संचार करेंगे।

इसके बाद कुछ सोच कर बोले--तुम्हारे किंकर ने जो चित्र बनाया है, क्या तुम्हीं लोग उसे कुछ समझते हो ? मैंने लक्ष्य किया है कि तुम्हारे देश के किसी-किसी कलाकार के सिर पर भी फ्रांसीसी भूत सवार है। इसे स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचायक नहीं माना जा सकता।

हम लोगों ने उन्हें भरसक अपने देश की विभिन्न शैलियों, विदेशी प्रभाव का परिणाम तथा देशवासियों में प्रचलित कला सम्बन्धी विभिन्न मतों के प्रति सहिष्णुता की बात समझाने की चेष्टा की। बातचीत के प्रसंग में उन्होंने बृटिश एकेडेमिक आर्ट की प्रशंसा की। बोले--स्टूडियो कला सम्बन्धी एक बहुत सुन्दर जर्नल है। उसमें अच्छे-अच्छे कलाकारों की कृतियों का रिप्रोडक्शन देखने को मिलता है, और माडर्न आर्ट के स्वरूप पर तरह-तरह के अच्छे निबन्ध प्रकाशित होते हैं।

दोपहर के बाद हम होटल में लौट आए।

चाहे हम दूसरों के सामने कुछ भी कहें, हम इस बात को बहुत अच्छी तरह हृदयंगम करते हैं कि सारे देश में कला के सम्बन्ध में हमारे यहां जो अन्धता और जड़ता विराजमान है, उसे मीठी भाषा में परम सहिष्णुता बताना आत्म प्रवंचना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जब चित्र खरीदने की बात उठती है तो यहां गरीबी की दुहाई दी जाती है, पर इस सम्बन्ध में लोगों में रुचि का भी अभाव है, इस बात को लोग मानना नहीं चाहते। बीस साल पहले भी मुझे मालूम है कि बंगाल के हर गाँव में लक्ष्मी तथा मनसा देवी की पूजा में दो चार आने का पट या चित्रित कसोरा खरीद कर लोग पूजा करते थे और घर सजाते थे, लड़कों के लिए मिट्टी या लकड़ी के रंगीन और सुन्दर खिलौने बेचकर पटुआ, कुम्हार तथा बढ़ई श्रेणी के कलाकार जीवित रहते थे। आज हम लोगों के रुचि-विकार और अवहेलना के कारण वे नेस्तनाबूद हो चुके हैं। उनकी कृतियों को देखने के लिए अब हमें आशुतोष अजायबघर में नहीं तो स्वर्गीय गुरु सदयदत्त के संग्रहालय की दौड़ लगानी पड़ती है। कालीघाट के 'पट' नाम से परिचित सस्ती कलाकृतियाँ हम लोगों की उदासीनता के कारण ही लुप्त हो गई हैं। अब उनके अच्छे नमूने देखने के लिए लन्दन के विक्टोरिया एलबर्ट म्यूजियम, बोस्टन या दूसरे विदेशी संग्रहालयों की ओर दौड़ना पड़ेगा। विदेशियों ने इनकी कद्र समझकर समय रहते इनका संग्रह कर लिया था। आज काशी के विख्यात लकड़ी के खिलौने बड़े शहरों के बाजारों में ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलते। सेलुलाएड के खिलौनों की प्रतियोगिता में यह कला आज देश से लुप्त सी हो रही है।

यह कौन अस्वीकार कर सकता है कि गरीबी देश भर में फैली हुई है, पर हमारे देश में धनियों की संख्या भी कुछ कम तो नहीं है। ये लोग लाखों रुपए खर्च करके मकान बनाते हैं और उनकी दीवारों पर मुफ्त में मिले हुए कैलेण्डरों के ढेर, पारिवारिक फोटो, वी० आई० पी० तथा राजों रजवाड़ों की पार्टियों के एनलार्जमेण्ट टांगते हैं। आगन्तुक को बुलाकर ये लोग यह दिखाते हैं कि यह देखिए मेरे बगल में फलाना लार्ड या फलानी प्रिंसेस हैं। यही लोग हर साल पुरानी मोटर को बहुत कम दाम में बेचकर नए माडल की मोटर खरीदते हैं और चित्र खरीदने की बात उठाने पर वे गरीबी का बहाना करते हैं।

हमारे देश के स्कूल, कालेज, अस्पताल, स्वास्थ्य-निवास, होटल, स्टेशन, एयरोड्रोम की दीवारें नागा सन्यासियों की तरह नंगी दिखाई पड़ती हैं। सरकार या जनता इस बात को नहीं सोचती कि इन्हें सुसज्जित करने की भी ज़रूरत है। इसका कारण यह है कि जो इन बातों के कर्णधार हैं, वे चित्र देखने के अभ्यस्त नहीं हैं। उनके निकट चित्रों का दाम कानी कौड़ी भी नहीं है। जब हम लोग कला-वीथी, रंगमंच आदि के निर्माण की बात सोचते हैं, तो वह इस कारण सोचते हैं कि यदि यह न हुए तो विदेशियों के सामने हमारी इज्जत नहीं रह सकती। हम लोग जब भी जो कुछ करते हैं दूसरों का मुंह ताक कर ही करते हैं। इससे एक मुसीबत यह होती है कि जो चीज़ बनती भी है, वह हमारी ज़रूरत के अनुसार नहीं बनती। यदि हम अपनी ज़रूरतों के सम्बन्ध में सचेत हो जाएँ, तो हम

आजकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके फलस्वरूप जिन कला-वीथियों, संग्रहालयों आदि का निर्माण करेंगे, वे राष्ट्रीय आवश्यकता की पूर्ति करने के साथ-साथ दूसरों की श्रद्धा भी आकर्षित कर सकेंगे, इस सहज सत्य को हम लोग नहीं समझते।

विगत महायुद्ध के समय १९४३ में मैं दिल्ली में स्वर्गीय शारदाचरण उकील के द्वारा प्रतिष्ठित कला विद्यालय में शिक्षक था। दोपहर का समय था। जो लोग सवेरे के समय चित्रांकन सीखते थे, उनकी छुट्टी हो चुकी थी और मैं बैठ कर अपना काम कर रहा था। दरवाज़े पर दस्तक पड़ी, एक अंग्रेज़ सैनिक सामने आते हुए बोला--मैं चित्र देखने के लिए आया हूँ। जब से यहाँ आया तब से किसी कला-वीथी का पता नहीं लगा था। अभी मैं नीचे काफी हाउस में दाखिल हो रहा था कि एकाएक मेरी दृष्टि आर्ट स्कूल के बोर्ड पर पड़ी और मुझे विश्वास हो गया कि यहाँ इस देश की कला के कुछ नमूने देखने को मिलेंगे।

युद्ध के ज़माने में ऐसा कई बार हुआ कि किसी अंग्रेजी या अमेरिकन सैनिक या अफसर ने खुदबखुद आकर चित्र देखे, फिर स्वयं कलाकार न होते हुए भी चित्र की टैकनीक और विषय वस्तु के सम्बन्ध में बहुत से प्रश्न किए, किसी-किसी ने विरोधी आलोचना भी की। कई बार तो रुचि और सामर्थ्य के अनुसार उन लोगों ने चित्र भी खरीदे। पर हमारे देश में कभी हमें ऐसा सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ कि किसी भारतीय को, जो कलाकार नहीं है, अपनी इच्छा से आकर चित्र देखते देखूँ। हमारे देश के जब किसी गणयमान्य व्यक्ति को चित्र प्रदर्शनी का उद्घाटन करने के लिए बुलाया जाता है, तो वे आकर सीधे मंच पर विराजमान हो जाते हैं। फिर व्याख्यान से सब को चकाचौंध कर देने के बाद जाते समय महज़ शराफत के नाते चित्रों को पांच मिनट देखकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री करते हैं।

अभी थोड़े दिन पहले तक भारत के राजा महाराजा, विदेशी सौदागर तथा सैनिक अधिकारी चित्रों के सब से बड़े क्रेता थे। नई शासन व्यवस्था-युक्त स्वतन्त्र भारत में उनका अस्तित्व लुप्त हो चुका है। इसलिए आज कलाकारगण अपने देश की सरकार तथा निवासियों की ओर नई आशा लेकर ताक रहे हैं, देखना यही है कि इस आह्वान का क्या नतीजा होता है।

अपने देश के लोगों की इस अवहेलना तथा उनके अज्ञान के लिए हमारे मन में कोई क्षोभ या शिकायत नहीं है क्योंकि आज जो लोग सभी मामलों में देश के शीर्षस्थान पर बैठे हुए हैं, वे एक ऐसी व्यवस्था के अन्दर पले थे जिसे सर्वांग सुन्दर नहीं कहा जा सकता। उनकी शिक्षा या जीवन में चित्र, भास्कर्य, स्थापत्य इत्यादि का कोई स्थान नहीं था, इसलिए इन सब मामलों में उनकी रूचि विकसित नहीं हो पाई।

विगत महायुद्ध के समय एक अंग्रेज़ सैनिक के साथ दिल्ली में परिचय हुआ था। वह अपने गाँव में धोबी का काम करता था। उसकी शिक्षा उच्च स्तर की नहीं थी, कई बार मुझे उसके दैनिक व्यवहार तथा बातचीत में इसका पता चल गया। मुझ से परिचय हुआ तो वह भी एक दिन चित्र देखने के लिए आया। इसके बाद वह बीच-बीच में आया करता था। बड़े दिन के पहले उसने विलायत की अपनी बान्धवी को भारतीय पद्धति में प्रस्तुत एक छोटा-सा चित्र उपहार के रूप में भेजा।

एक दिन मैंने उससे पूछा--ऐसफोर्ड, क्या तुम चित्र बनाया करते हो ?

उसने अवाक् होकर कहा--नहीं तो।

मैंने कहा--तुम्हें चित्रों से इतना प्रेम है, वक्त मिलते ही चित्र देखने आते हो, इसलिए मैंने सोचा था कि तुम स्वयं भी चित्रकार हो।

उसने कहा--बचपन से अपने देश में चित्र देखने का शौकीन रहा हूँ। हमारे यहाँ छोटे-बड़े सभी शहरों में कला-वीथियाँ मौजूद हैं। इसके बाद जब मैं बड़ा हुआ तो लन्दन-टेट, नैशनल, विक्टोरिया, ऐलबर्ट आदि बड़ी-बड़ी वीथियों में पुरुष तथा स्त्री मित्रों के साथ चित्र देखने जा चुका हूँ। जब से यहाँ आया, तब से तुम्हारे इस स्थान के अतिरिक्त कहीं चित्र देखने का मौका नहीं मिला, इसीलिए मौका मिलते ही आ जाता हूँ। चित्र पूरा-पूरा पल्ले पड़ता है, ऐसा तो नहीं कह सकता, क्योंकि इसकी भाषा दूसरी है, फिर भी अच्छा लगता है।

अल्फ्रेड ऐसफोर्ड की बातों ने उस दिन हमारी आँखें खोल दी थीं। इसलिए हमारे देशवासियों की इस अवहेलना को मैं बड़ी हद तक सहानुभूति की दृष्टि से देखता हूँ, फिर भी अब इसके प्रतिकार का समय आ गया है।

क्रान्ति के ऐन बाद जब रूस के बहुत बुरे दिन जा रहे थे, उन दिनों लेनिन ने कहा था--कलाकारों और मूर्तिकारों को काम में लगाओ। यही लोग देश के उज्ज्वल भविष्य को जनता के सामने सरल और शक्तिशाली भाषा के माध्यम से पेश कर सकेंगे।

तब से लेकर रूस में कला की कदर बराबर बढ़ती चली गई है और सोवियत सरकार ने उसमें दिल खोलकर हाथ बटाया है। रूस की चित्रकला, नाट्यकला, नृत्य नाट्य, रंगमंच सोवियत सरकार की बनाई हुई कोई नई वस्तुएँ नहीं हैं, बल्कि इसमें तो प्राचीन रूसी जन संस्कृति की धारावाहिकता को कायम रखा गया है।

रूस के बाद पोलैण्ड में भी मुझे यह देखने का मौका मिला कि खण्डहर के अन्दर से किस तरह से नवीन पोलैण्ड सौन्दर्य से मण्डित होकर सिर उठा रहा है। वारसा के पुराने बाज़ार के खण्डहर पर जो नया बाज़ार बना है, हर दूकान, रेस्टोरेण्ट तथा रिहाइश के घर पर भित्ति-चित्र, फ्रिज, सुन्दर रेलिंग, फाटक आदि प्रस्तुत किए गए हैं, सभी कुछ बहुत जल्दी में बना है, फिर भी कहीं किसी प्रकार कुरूप वस्तु नहीं आ पाई है।

मुझे स्मरण है कि पोलैण्ड से विदाई के पहले राजदूत वाण्डे ने दादा से पूछा था--आपके देश में सरकार कला की उन्नति के लिए क्या कर रही है ?

दादा बोले--इस समय हमारे यहाँ खाद्य, कारीगरी, शिक्षा तथा स्वास्थ्य की समस्या बहुत गम्भीर है, इसलिए पहली पंचवर्षीय योजना में इनको प्रमुखता दी गई है। फिर भी हमारी सरकार सुकुमार कलाओं की उन्नति के मामले में बिलकुल उदासीन हो, ऐसी बात नहीं है--राष्ट्रीय ललित कला अकादमियों की स्थापना हो रही है।

इसके उत्तर में राजदूत वाण्डे ने कहा--खाद्य और कारीगरी आदि समस्याओं को निपटा कर जब जाति अपने पैरों पर खड़ी होगी, तब दीर्घकाल तक अवहेलना के कारण कला सम्बन्धी रुचि की मृत्यु हो गई होगी, उस दिन उसे पुनरुज्जीवित कैसे किया जाएगा ? हम लोग इसलिए इस भयानक मुसीबत के दिन भी हर घर तथा हर सड़क को सुन्दर बना रहे हैं, जिससे कि जनता स्वस्थ वातावरण में पल सके। इसके अलावा यह केवल विलासिता मात्र नहीं है। इससे बहुत से लोगों को रोटी मिलती है।

मैं अपने देश के लोगों को राजदूत वाण्डे की बातों पर विचार करने के लिए निमन्त्रित करता हूँ।

अनुवादिका : माया गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी विवेकानन्द का एक पत्र

का० ल० मोदी

स्वामी विवेकानन्द जहां एक वाक्य को गढ़ने में घंटों लगा डालते थे, अथवा एक पृष्ठ को दोहराने में एक-एक सप्ताह घुला देते थे, वहां वह संध्या को या अलद सुबह अपने मित्रों को लम्बे खरें लिखते चले जाते थे--यहां तक कि उन पत्रों को लिखने में वह ब्लाटिंग आदि का इस्तेमाल नहीं करते थे ।

लन्दन में रहने वाली मिसेज जो के नाम स्वामीजी के अंग्रेजी पत्र का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है ।

प्रिय जो,

अभी-अभी तुम्हारा और मिसेज बुल का स्वागत पत्र मिला है । मैं इसे लन्दन रवाना कर रहा हूं । मुझे यह जानकार बड़ी प्रसन्नता हुई कि मिसेज लीगेट के अच्छे होने में अब सन्देह नहीं है ।

दुख इस बात का है कि मिस्टर लीगेट ने अध्यक्ष पद से त्याग-पत्र दे दिया है ।

खैर, इस भय से कि कहीं और कठिनाई न पैदा हो जाए मैं चुपचाप हूं । तुम तो जानती हो कि मेरी प्रकृति कुछ ऐसी ही कठोर है कि एक बार उकसाए जाने पर मैं खड़-खड़ाता रहता हूं । मुख्यतः उनकी चित्त-शांति के हेतु !

इसके बारे में मैंने लिखा था कि मि० बुल के विषय में आपके विचार गलत हैं ।

कर्म सदैव ही बड़ा कठिन होता है जो । मेरे लिये प्रार्थना करो कि मेरा कर्म सदैव के लिए समाप्त हो जाए और मेरी सम्पूर्ण आत्मा 'मां' में सदैव के लिए विलीन हो जाए । उसका काम वही जानती है । लन्दन एक बार और जाने से आपको प्रसन्नता अवश्य हुई होगी । वे पुराने मित्र--उन्हें मेरा हार्दिक प्यार और आभार ।

मैं बहुत अच्छी तरह से हूं , मानसिक दृष्टि से तो और भी । शारीरिक शांति की अपेक्षा मुझे आत्मिक शांति की अधिक अनुभूति होती है । जीवन की लड़ाइयां लड़ीं और जीती जा चुकीं । मैं अपनी गठरी बांध चुका हूं । और उस महान मुक्ति दायिनी की प्रतीक्षा कर रहा हूं । शिव! हे शिव! मेरी नौका पार पहुंचा दो ।

सब कुछ होते हुए जो, अभी भी मैं उसी बच्चे की तरह हूं जो दक्षिणेश्वर के विशालवट-वृक्ष के नीचे बैठ कर स्वामी रामकृष्ण के विचित्र शब्दों को कुतुहलपूर्ण तन्मयता से सुना करता था । वही मेरी वास्तविक प्रकृति है । काम धंधे, दूसरों की भलाई करना आदि सब दिव्य प्रेरणायें थीं । उनमें मेरा क्या हाथ । मैं सुन रहा हूं--अब भी सुन रहा हूं--वह आत्मा को पुलकित करने वाला उस वृद्ध का स्वर ! बंधन टूट रहे हैं । प्रेम मिट रहा है और कार्य का स्वाद जाता रहा । जीवन कलरव कोलाहल से दूर मेरे स्वामी का स्वर पुकार रहा है । मैं कहता हूं स्वामी ! मैं आ रहा हूं । "वह कहते हैं जो बीत चुकी सो बीत चुकी ! तुम मेरी शरण आओ ?" मैं कहता हूं-- "मैं आ रहा हूँ मेरे प्रिय स्वामी ! मैं आ रहा हूँ !"

हाँ मैं आ रहा हूं । निर्वाण मेरे सन्मुख है । मैं अनुभव कर रहा हूँ उस निर्वाण का--वह शांति का समुद्र--जिसमें कोई बीचि-विलास नहीं, कोई सांस नहीं ।

मुझे प्रसन्नता है कि मैंने जन्म लिया, मुझे हर्ष है कि मैंने कष्ट सहे, मैंने भंयकर भूलें कीं । और मुझे खुशी है कि अब मैं शान्ति पाने जा रहा हूँ । मैं किसी को बन्धन में नहीं छोड़ रहा हूं और न अब मेरे ऊपर ही कोई बन्धन है । चाहे यह शरीर नष्ट हो जाए और मुझे छुटकारा मिले अथवा मैं इसी शरीर में मुक्ति का आनन्द लूं, किन्तु वह वृद्ध महामानव अब नहीं रहा । वह चला गया । सदैव के लिये चला गया । फिर आने का नहीं ।

पथ-दर्शक चला गया, बच्चा यहीं है । गुरुवर चले गए, शिष्य यहीं हैं । नेता और शिक्षक साथ छोड़ चुके ! सेवक यहीं पड़ा है ।

तुम जानती हो जो, मैं क्यों नहीं किसी के बीच में दखल देना चाहता । मैं कौन हूं । दखल देने वाला जो, नेता का पद, बहुत हुए मैंने छोड़ दिया । मुझे अपनी आवाज उठाने का कोई अधिकार नहीं है । इस वर्ष के आरम्भ में मैंने भारत के लिए कोई ऐसा काम नहीं किया । तुम्हारे प्रति मेरी सदैव शुभ कामना है । मेरे जीवन का सबसे मधुर क्षण वह था जब मैं बह रहा था समय के प्रवाह में । मैं अब भी बह रहा हूं--सामने चमकता हुआ गर्म सूरज और चतुर्दिक वनस्पतियों की अपार राशि । और इस उष्णता की सभी वस्तुएं कितनी निस्पंद, कितनी शांत, धीरे-धीरे मैं बहता जा रहा हूं, समय सरिता के गर्म वक्षस्थल पर । इस डर से, कि कहीं यह अद्भुत शांति भंग न हो जाए, अपने हाथ पांव से मैं किसी प्रकार की थपकी देना नहीं चाहता । आह ! वह शांति ! जो तुम्हें निश्चय विश्वास दिलाती होगी कि यह छलना है ।

मेरे कर्म के पीछे मेरी महत्वाकांक्षा थी । मेरे प्रेम के पीछे मेरा व्यक्तित्व था । मेरी पवित्रता के पीछे भय था । और मेरे पथ-दर्शक के पीछे थी-- शक्ति की प्यास । सब के सब अब विलीन हो रहे हैं और मैं बह रहा हूं । मैं आ रहा हूं मां ! जिधर तुम मुझे बहाती जा रही हो--भटकता हुआ मैं आ रहा हूं--तुम्हारी शीतल गोद में विश्राम पाने । मैं आ रहा हूं-- इस अशब्द अनजान अद्भुत प्रदेश में बढ़ता हुआ--एक अभिनेता की तरह नहीं बल्कि एक दर्शक के रूप में ।

आह ! कितनी शांति है । मुझे लग रहा है मेरे विचार दूर से, बहुत दूर से मेरे अंतरतम में चले आ रहे हैं । वे मंद दूरागत काना-फूसी से प्रतीत हो रहे हैं । और शांति सब पर छायी है ! वह शांति जिसका मनुष्य सोने से कुछ क्षण पहले अनुभव करता है । जब सभी वस्तुएं एक छाया की भांति दृष्ट और अनुभूत होती हैं ! कोई भय नहीं, कोई आसक्ति नहीं, कोई

(शेष पृष्ठ ६० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक समालोचना

उदयास्त : लेखक—चतुरसेन शास्त्री; प्रकाशक—शिक्षा भारती, १ राम किशोर लेन, दिल्ली–६; पृष्ठसंख्या—२२२; मूल्य—५) रु० सजिल्द ।

हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री का यह सब से ताज़ा उपन्यास है । आचार्य जी की आयु इस समय ६८ वर्ष की है । २६ अगस्त को उनका उनसठवां जन्म दिन था । आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने जितना अधिक लिखा है, उतना अधिक लिखने वाले लेखक केवल हिन्दी में ही नहीं, भारत के सभी भाषाओं में उंगलियों पर गिने जा सकेंगे । वह एक अत्यन्त श्रेष्ठ कोटि के गद्यकार हैं और गद्य की सभी शैलियों और रूपों में उन्होंने बहुत कुछ लिखा है । सब से अधिक प्रसन्नता की बात यह है कि पिछले ११ वर्षों में, अर्थात् स्वाधीनता के पश्चात्, सम्भवतः उनके लिखने की रफ़्तार और भी अधिक हो गई है । स्वाधीनता के पश्चात् आचार्य चतुरसेन ने 'वैशाली की नगरवधु' नामक वृहत उपन्यास लिखा था और घोषणा की थी कि यही उनकी सर्वश्रेष्ठ और प्रतिनिधि रचना है । उसके बाद 'वयं रक्षामः' (१,२०० पृष्ठ), 'गोली' (३०० पृष्ठ), 'सोमनाथ' (५०० पृष्ठ), 'सोना और खून' (१,२०० पृष्ठ) आदि कितने ही उपन्यास उन्होंने लिखे । 'सोना और खून' का अभी प्रथम भाग ही छपा है । यह उपन्यास लगभग १० भागों में समाप्त होगा । स्पष्ट है कि 'सोना और खून' यदि पूरा कर लिया गया, तो वह हिन्दी का अब तक का सबसे बड़ा उपन्यास तो होगा ही ('चन्द्रकान्ता सन्तति' और 'भूतनाथ' आदि से भी बड़ा), उसकी गिनती संसार के सबसे बड़े उपन्यासों में की जाएगी ।

'सोना और खून' लिखते-लिखते बीच ही में आचार्य जी यह उपन्यास भी लिख गए हैं । आचार्य चतुरसेन की रचनाएं अत्यन्त मनोरंजक होती हैं । मनोरंजक कथानक की कल्पना के वह माने हुए उस्ताद हैं । हाल ही में एक प्रमुख बंगाली प्रकाशक ने मुझ से कहा था कि आचार्य चतुरसेन की रचनाओं की बंगला में भी बहुत बड़ी मांग हो सकती है, क्योंकि उनकी रचनाओं के कथानक बहुत आकर्षक होते हैं । 'उदयास्त' भी यथेष्ट मनोरंजक है । पर उपन्यास कला की दृष्टि से उसमें कुछ कमज़ोरियां हैं । उपन्यास का कथानक स्वाधीनता के ५ वर्ष बाद प्रारम्भ होता है और अन्त स्वाधीनता के १० वर्ष बाद, अर्थात् १९५७ में । सन् १९५२ में राजाओं और जागीरदारों की वह मनोवृत्ति नहीं थी, जिसका चित्रण इस उपन्यास में किया गया है । इसी तरह उसी वर्ष की पृष्ठभूमि में दिल्ली के अशोक होटल (उस वर्ष तक सुप्रसिद्ध अशोक होटल का निर्माण नहीं हुआ था) में राजा हरबख्श सिंह, मिसेज़ खन्ना, नवाब बब्बरपुर, रेणुका आदि पात्रों का जो चित्रण हुआ है, वह भी इस युग का वास्तविक चित्र नहीं है । अच्छा होता, यदि शास्त्री जी एक-आध बार अशोक होटल के रात्रि भोजों में सम्मिलित हो आते । तब उनका चित्रण यथार्थ से इतना दूर न होता ।

'उदयास्त' की दूसरी बड़ी कमज़ोरी है, उसके कथानक में पैबन्दियों का होना । उपन्यास की रोचकता की प्रशंसा करते हुए भी यह मानना होगा कि उसके कथानक में सहज प्रवाह और स्वाभाविक प्रतीत होने वाला उठान नहीं है । राजाओं के वर्णन में शरणार्थियों की आपबीती साफ़तौर से एक पैबन्द के समान प्रतीत होती है । यही बात दिल्ली के वर्णन तथा चुनाव चर्चा में है । यदि यह उपन्यास स्वाधीनता के उपरान्त बड़े जमींदारों के मानसिक तथा सांसारिक संघर्षों तक सीमित रखा जा सकता और इसमें नई परिस्थितियों द्वारा भारत के ग्रामों पर होने वाले परिवर्तनों का सजीव वर्णन किया जा सकता, तो रचना का सौन्दर्य और महत्व दोनों कहीं अधिक बढ़ जाते ।

अशू : लेखिका—अमृता प्रीतम; प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्ज़, काश्मीरी गेट, दिल्ली; पृष्ठसंख्या—१६६; मूल्य—३) सजिल्द ।

पंजाबी की सुप्रसिद्ध कवियित्री और लेखिका श्रीमती अमृता प्रीतम इस समय तक देशव्यापी ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं । उनकी कितनी ही रचनाओं का भारत की अधिकांश तथा कुछ विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है । वह बहुत अच्छा गद्य भी लिखती हैं और उनके लिखे संस्मरण किसी भी भाषा में अनुवादित होकर बहुत चाव से पढ़े जाएंगे । उदाहरण के लिए इसी अंक में प्रकाशित उनका संस्मरणात्मक लेख । फिर भी मैं उन्हें एक बहुत श्रेष्ठ कोटि की कवियित्री मानता हूं, कथाकार नहीं । मैंने उनका 'अशू' नामक यह एक उपन्यास ही पढ़ा है, जो हाल ही में प्रकाशित हुआ है । इससे पूर्व भी उनके कुछ लघु उपन्यास हिन्दी में छप चुके हैं ।

'अशु' उपन्यास भी कविता प्रधान है । उसके पात्र भी भावलोक के निवासी हैं । इस लघु उपन्यास की नायिका अशु का राजन के प्रति आकर्षण अत्यन्त भावना प्रधान है । लेखिका अपने पात्रों को कभी-कभी इस पृथ्वी के ठोस धरातल पर लाने का प्रयत्न तो करती है, पर जैसे डरते-डरते और सहम-सहम कर । इस पर भी उपन्यास में घटनाओं की कमी नहीं है । संगीत के उतार-चढ़ाव के समान उपन्यास के कथानक में भी उतार चढ़ाव आता है और उससे यह भावनाप्रधान उपन्यास पाठक को नीरस प्रतीत नहीं होता । हालांकि उपन्यास का एक भी पात्र साधारण हाड़-मांस का बना हुआ नहीं है, और घटनाओं में अतिरंजित नाटकीयता की गन्ध भी आती है ।

उपन्यास की कुछ उपमाएं अत्यन्त शक्तिशाली हैं । उदाहरण के लिए उपन्यास के लगभग अन्त में बड़ी निराशाओं के बाद जब अशु को अपना प्रियतम राजन मिल जाता है, तब तक राजन किसी नामुराद बीमारी का शिकार बन चुका है—"पर अशु एक अबोध बालिका की भांति प्रसन्न थी, जिसे अपना खोया हुआ खिलौना मिल गया हो ! साबत या टूटा हुआ—इसकी उसे चिन्ता नहीं थी, क्योंकि उसे पूरा विश्वास था कि उसका खिलौना फिर साबत हो जाएगा, वैसे का वैसा !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७० श्रेष्ठ कहानियां : लेखक--उपेन्द्रनाथ अश्क; प्रकाशक--नीलाभ प्रकाशन गृह, ५ खुसरो बाग, अलाहाबाद-१; पृष्ठसंख्या (बड़े आकार के) ६१०; मूल्य--१५) रु० सजिल्द ।

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क अब तक लगभग २०० कहानियां लिख चुके हैं। उनकी कहानियों के अनेक संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। उक्त २०० में से चुनी हुई ७० कहानियाँ इस संग्रह में बहुत सुन्दर रूप से छापी गई हैं। इतनी सुन्दरता के साथ छापा गया एक ही व्यक्ति का इतना बड़ा कहानी संग्रह आपको हिन्दी में दूसरा नहीं मिलेगा।

संग्रह की कहानियाँ नई नहीं हैं। उनका रचनाकाल मुख्यतः १९३२ से १९४८ तक है। केवल एक कहानी १९४९ में लिखी गई है और एक १९५४ में। इसका अभिप्राय यह है कि पिछले १० वर्षों में अश्क ने केवल २ कहानियाँ लिखी हैं। फिर भी इसी संग्रह के प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा है--"अश्क जी प्रेमचन्द के ज़माने से कहानी लिखते हैं। लेकिन वह प्रेमचन्द के समकालीन कुछ दूसरे लेखिकों की तरह वहीं के वहीं नहीं बैठे रहे। . . . कला तथा वस्तु की दृष्टि से उन्होंने सदा नए-नए प्रयोग किए। प्रेमचन्द के बाद की इस लगभग चौथाई सदी में कहानी के क्षेत्र में जो प्रगति हुई, वह अश्क जी की कहानियों में पूर्णतः प्रतिबिम्बित होती हैं।"

प्रेमचन्द का देहावसान अक्तूबर १९३६ में हुआ था। केवल दो अपवादों के साथ अश्क की कहानियों का रचनाकाल १९३२ से १९४८ तक है। यानी प्रेमचन्द के देहावसान के केवल १२ बरस बाद तक। पर संग्रह के पहले फ्लैप पर मुद्रित है :--"प्रेमचन्द के बाद लगभग चौथाई सदी में हिन्दी कहानी ने प्रगति की है, अश्क की कहानियाँ उसका प्रतीक हैं और प्रस्तुत संग्रह में सुधी पाठक को उस विकास का बिम्ब देखने को मिलेगा।"

मेरी धारणा है कि अश्क के प्रकाशक उनकी रचनाओं ही में इस तरह की अतिरंजित प्रशंसा से काम लेकर उनके साथ न्याय नहीं कर रहे हैं।

जहां तक इस संग्रह की कहानियों का सम्बन्ध है, कहानियाँ एक ही स्तर की नहीं हैं। न लेखक ने इस तरह का दावा ही किया है। ये ७० कहानियाँ वास्तव में अश्क की विकासमान कहानी कला की प्रतिनिधि रचनाएं हैं। और इस दृष्टि से निस्सन्देह इन का यथेष्ठ महत्व है। वर्तमान हिन्दी कहानी का इतिहास लिखते हुए अश्क की उपेक्षा नहीं की जा सकती। कहानी कहने का बहुत अच्छा ढंग उन्हें आता है। अपने आस-पास की दुनिया से वह अनायास ही अपनी कहानियों के विषय और कथानक तालाश कर लेते हैं। यों अश्क ने उपन्यास, नाटक, कविता, कहानी--ये चारों चीज़ें लिखी हैं। पर मेरी राय से वह सबसे पूर्व कहानीकार हैं। उनकी यही शक्ति उनके उपन्यासों और नाटकों में प्राण संचार करती है। अतः अश्क के इस वृहत कहानी संग्रह का यथेष्ठ आदर होना चाहिए।

इस संग्रह में लेखक का "मेरे कहानी लेखन के ३२ वर्ष" शीर्षक एक लम्बा लेख भी है, जो सब मिलाकर एक कहानी के समान ही रोचक है। इस सुन्दर प्रकाशन के लिए नीलाभ प्रकाशन बधाई का पात्र है।

मेघदूत : लेखक--हजारीप्रसाद द्विवेदी; प्रकाशक--हिन्दी ग्रन्थ रत्नकर सिरीज़, हीरा बाग, बम्बई-४; पृष्ठसंख्या--१८०; मूल्य--दिया नहीं।

'मेघदूत' महाकवि कालिदास की एक ऐसी अमर रचना है, जो विश्व साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में मानी जाती है। उसी के आधार पर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस लघु उपन्यास (जिसे उन्होंने एक 'पुरानी कहानी' का नाम दिया है) का निर्माण किया है। कुछ वर्ष पूर्व आचार्य द्विवेदी की आंखें खराब हो गई थीं और उन्हें शान्ति निकेतन जाकर विश्राम लेना पड़ा था। उन्हीं दिनों यह रचना लिखी या लिखवाई गई। इस तरह हिन्दी साहित्य का सचमुच भला हो गया, क्योंकि यह रचना अत्यन्त प्राणवान, श्रेष्ठ और उपादेय है। द्विवेदी जी द्वारा लिखित इस पुरानी कथा में असाधारण प्रवाह और आकर्षण है, यद्यपि मुख्यतः वह महाकवि कालिदास के श्लोकों की विस्तृत व्याख्या मात्र है और उसमें पूरे के पूरे मूल श्लोक यथास्थान दे भी दिए गए हैं, जो सर्वथा उचित है। व्याख्या रूप में ही द्विवेदी जी ने कितनी ही बातें अपनी कल्पना से जोड़ी हैं, पर उनसे मूल रचना के रस में किसी तरह का व्याघात नहीं पहुंचा, अपितु उसका सौन्दर्य निखरता चला गया है।

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर अपने प्रकाशनों की श्रेष्ठता के लिए चिरकाल से प्रसिद्ध है। बहुत दिनों से उसमें नए प्रकाशन नहीं हुए थे। यह रचना हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर सिरीज़ के यश को बढ़ाने वाली है।

सिन्दूर की राख : लेखक--कश्मीरीलाल ज़ाकिर; प्रकाशक--वोरा एण्ड कम्पनी, ३ राउण्ड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई-२; पृष्ठसंख्या--१४०; मूल्य--३ रु० सजिल्द।

लेखक ने अपनी दिवगंता जीवन संगिनी की याद में उसे ही सम्बोधन कर यह पुस्तिका लिखी है, जिसे 'अपनी बात' में उन्होंने 'अपने जीवन की कहानी' या 'नावलेट' कहा है। विवाह के बाद शीला शायद दो ही साल जीवित रहीं। उनके देहान्त पर यह रचना लिखी जानी शुरू हुई। फिर एकाएक रुक गई और ४ वर्ष बाद उन्होंने इसे पूरा किया। यह रचना बहुत दुखी हृदय से लिखी गई है। एक गहरी वेदना और साथ ही साथ निबिड़ भावुकता इस रचना में आदि से अन्त तक व्याप्त है। अनासक्त पाठक को यह शैली तथा रचना उबा दे सकती है, जगह-जगह कीट्स, लौरेन्स, टागौर, फिराक, साहिर, असर लखनवी, महादेवी वर्मा आदि की कविताओं के उद्धरण अनुपयुक्त प्रतीत हो सकते हैं, पर लेखक से सहानुभूति उत्पन्न हो जाने पर पाठक का दृष्टिकोण ही बदल जाएगा और वे एक अत्यन्त दुखी हृदय की तड़प को हृदयंगम कर सकेंगे।

वृन्दावन लाल वर्मा--व्यक्तित्व और कृतित्व : लेखक--पद्म सिंह शर्मा कमलेश; प्रकाशक--सर्वोदय प्रकाशनीय मन्दिर, नई सड़क, दिल्ली; पृष्ठसंख्या--२५६; मूल्य--४ रु० सजिल्द।

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री वृन्दावन लाल वर्मा के व्यक्तित्व और कृतित्व पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। उनके तथा अन्य लब्ध प्रतिष्ठ हिन्दी लेखकों के व्यक्तित्व और कृतित्व पर वैज्ञानिक समीक्षा के ढंग पर लिखने की आवश्कता भी है। प्रस्तुत पुस्तक में श्री पद्मसिंह शर्मा कमलेश ने वर्मा जी के साहित्यिक जीवन के सम्बन्ध में लगभग २७ पृष्ठों का एक उपयोगी लेख लिखा है। उसके बाद ९ अध्यायों में वर्मा जी द्वारा लिखित विभिन्न साहित्य (ऐतिहासिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, कहानियां, ऐतिहासिक नाटक, सामाजिक नाटक, एकांकी आदि) पर परिचयात्मक प्रकाश डाला गया है। श्री वृन्दावन लाल वर्मा के शब्दों में--"डा० कमलेश ने मेरे और मेरी कृतियों के जो चित्र खींचे हैं, वे मुझे बहुत अच्छे लगे। कुछ और लोगों ने भी खींचे हैं, परन्तु इतने निकट से किसी ने नहीं खींचे। फिल्मों की भाषा में जिन्हें 'क्लोज़-अप' कहते हैं, ये तो वे हैं।"

कमलेश जी का यह श्रम निस्सन्देह सराहनीय है। पुस्तक के अन्तिम अध्याय में यदि वह अन्य उपन्यासकारों से तुलना करने से बचते, जैसा

आजकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वह सम्पूर्ण पुस्तक में बचे रहे हैं, तो अधिक अच्छा था। साहित्यकारों परस्पर तुलना करना सचमुच खतरनाक होता है।

१–गुलिवर की यात्राएं, २–राबिन हुड, ३–राबिन्सन क्रूसो, ४–खजाने की खोज में, ५–आश्चर्य लोक, ६–डान क्विक्ज़ोट, ७–कठपुतला, ८–आहवन हो : मूल लेखकों के नाम दिए नहीं गए; रूपान्तरकार––श्रीकान्त व्यास; प्रकाशक––राजपाल एण्ड सन्स काश्मीरी गेट, दिल्ली; पृष्ठसंख्या––(क्रमशः) ९६ से १०८ तक; मूल्य––(प्रत्येक का) १।।) रु० सजिल्द।

विदेशी भाषाओं के उक्त आठों उपन्यास विश्व साहित्य का अंग बन चुके हैं। संसार की अधिकांश भाषाओं में इनका अनुवाद हुआ है और इनमें से कुछ तो बालोपयोगी बल्कि किशोरोपयोगी साहित्य की अमूल्य रचनाएं हैं, विशेषतः प्रथम तीनों। हिन्दी में भी इन तीनों के कितने ही अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। यों तो इन सभी रचनाओं के हिन्दी अनुवाद कितनी ही बार प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत रूपान्तर संक्षिप्त न किए जाते, तो हमारी राय से अधिक अच्छा रहता। मूल लेखकों का नाम निर्देश ही नहीं, बल्कि उनके चित्रों के साथ उनके सम्बन्ध में छोटे नोट देना भी अत्यन्त आवश्यक था। 'गुलिवर की यात्राएं' में तो जान स्विफ़्ट की जगह रूपान्तरकार का नाम ही जैसे लेखक के रूप में दिया गया है। अनुवाद सरल हिन्दुस्तानी शैली में है, और उसमें यथेष्ट प्रवाह है। छपाई, सफाई, चित्र आदि बहुत सुन्दर हैं। किशोर पाठकों के लिए ये पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगी।

परम्परा का पांचवा अंक : (त्रैमासिक पत्रिका) सम्पादक––नारायणसिंह भाटी; प्रकाशक––राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासानी, जोधपुर; वार्षिक मूल्य––१०); इस अंक का मूल्य––३); पृष्ठसंख्या––१४०।

'परम्परा' भारत की अत्यन्त श्रेष्ठ शोध पत्रिका है। उसका यह अंक 'जेठवे रा सोरठा' के सम्बन्ध में निकाला गया है। राजस्थानी लोक साहित्य के शोध और सुसम्पादित प्रकाशन में 'परम्परा' ने अभी तक जो शानदार परम्पराएं स्थापित की हैं, यह अंक भी उन्हीं के प्रतिरूप है। इस अंक में, पहले जेठवा-ऊजली की प्रचलित दुखान्त प्रणय कथा के सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध ९४ राजस्थानी सोरठे दिए गए हैं, उसके बाद स्वर्गीय झबेरचन्द मेघाणी द्वारा संकलित जेठवा के ५७ गुजराती सोरठे संग्रहीत हैं। सोरठों का हिन्दी अर्थ तथा उनका मूल्यांकन सभी अत्यन्त श्रेष्ठ कोटि का है। हमें आशा है कि 'परम्परा' अपना यह स्टैंडर्ड कायम रखेगी और हिन्दी जगत उसका अधिक से अधिक स्वागत करेगा।

––चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

●

आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त-प्रवेशिका : लेखक––सी० ई० एम० जोड; अनुवादक––अम्बादत्त पन्त, एम० ए०; प्रकाशक––आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, आक्सफोर्ड हाउस, ऐपोलो बन्दर, बम्बई; पृष्ठसंख्या १२७; मूल्य १·७५ रुपये।

अनुवादक ने इस पुस्तक का अनुवाद कर अच्छा ही किया है क्योंकि थोड़े में लोगों को राजनीति के सम्बन्ध में ज्ञान दिलाने वाली पुस्तकों की बहुत जरूरत है। अंग्रेजी में कितने ही लेखक ऐसे हैं जिनका काम ही है ऊंचे से ऊंचे ज्ञान को सरल से सरल भाषा में साधारण जन के लिए प्रस्तुत करना ऐसे लेखकों में सी० ई० एम० जोड का स्थान बहुत ऊंचा है। पर यह अनुवाद इतने साल बाद हुआ है कि इसमें की बहुत सी बातें अब सही नहीं रही। मूल लेखक ने एक स्थान पर लिखा है––"राज्य-पूंजीवाद, व्यक्तिगत भू-स्वामी व्यवस्था, मध्यवर्गीय साम्पत्तिक अधिकार तथा निजी व्यापार आज रूस की मुख्य विशेषताएं हैं।"

इस पर अनुवादक को पाद-टीका में यह लिखना पड़ा कि यह कथन अब सत्य नहीं है। पर अनुवादक ने यह नहीं बताया कि यदि यह सत्य नहीं है तो क्या सत्य है। खोजने पर इस पुस्तक के और भी कई हिस्से ऐसे मिल सकते हैं जिनमें कुछ न कुछ संशोधन की आवश्यकता है। इसलिए हम इस अनुवाद की सराहना करते हुए भी यह सुझाव देना चाहेंगे कि राजनीति सम्बन्धी पुस्तकों का या तो तुरन्त अनुवाद हो और नहीं तो अनुवादक को यह स्वतन्त्रता होनी चाहिए साथ ही उसमें यह योग्यता भी होनी चाहिए कि वह मूल लेखक की जो बातें इस बीच में संशोधन की अपेक्षा रखती हैं उन्हें संशोधित रूप में पेश करे। पुस्तक का अनुवाद अच्छा हुआ है।

समय की प्रगति लेखिका––कैथेराइन बी० शिप्पैन; अनुवादक––हंसराज 'रहबर'; प्रकाशक––आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली; पृष्ठसंख्या ११५, मूल्य २।)

यह पुस्तक अमरीका की सभ्यता के सम्बन्ध में बहुत सुन्दर तथा हृदय-ग्राही चित्र पेश करती है। आज अमरीका बहुत बड़ा औद्योगिक देश है, पर वह हमेशा ऐसा नहीं था। कभी वह एक खेतिहर देश था। उसी रूप में उसमें उपनिवेश बसाए गए थे। जो लोग अपना देश छोड़ कर अमरीका में आकर बसे थे, वे साहसी होने के साथ-साथ श्रम से बहुत प्रेम रखते थे। हमारे यहां के किसान भी काम करते हैं, हजारों वर्षों से काम करते हैं, पर श्रम के प्रति जो प्रेम पाश्चात्य साहित्य में जगह-जगह झलकता है, वह हमारे यहां दुष्प्राप्य है। यहां शायद ही कोई ऐसा प्राचीन उद्धरण मिल सके जिसमें उत्पादक श्रम की प्रशस्ति गाई गई हो। गीता में कर्म की प्रशंसा है और कर्म करने क लिए प्रोत्साहन भी दिया गया है, पर वहां कर्म के माने हर क्षेत्र में आवश्यक रूप से हल जोतना या इस तरह का शारीरिक कार्य नहीं है। बैठा हुआ आदमी भी उस परिभाषा के अनुसार कर्म-परायण हो सकता है। जो कुछ भी हो, इस पुस्तक में हैक्टर क्रेवेक्योर की पुस्तक में 'अमरीकी किसान क पत्र' से कुछ अंश दिए गए हैं। जिससे यह पता लगता है कि वहां के खेतिहर भी किस प्रकार अपने काम को कवित्वपूर्ण ढंग से देखते थे। हैक्टर क्रेवेक्योर को हल चलाना पसन्द था। उसने लिखा है––

"कृषि के सम्बन्ध में मुझे जो काम करने पड़े हैं उनमें हल चलाना मुझे बहुत पसन्द है, क्योंकि हल चलाते समय मैं सोच भी सकता हूं। मैं और घोड़े––दोनों ही काम में दिलचस्पी लेते हैं, यद्यपि काम में हमारा हिस्सा अलग-अलग है, फिर भी हम में कोई अन्तर नहीं, एक हल चलाता है और दूसरा नहीं चलाता। मेरे खेत के अन्त पर घोड़े दायें या बायें, जैसा कि उन्हें आदेश दिया जाता है, घूम जाते हैं, जब कि मैं अनमना-सा उस हल की हत्थी पकड़े उसे चलाता रहता हूं, जिसमें वे जुत होते हैं।"

कई बार डी० क्रेवे की पत्नी खेत में काम देखने आ जाती थीं।

"मेरी पत्नी कुछ-न-कुछ बुनते हुए प्रायः आ जाती है। वह वृक्षों की छाया में बैठ जाती है और मेरी सीधी लकीरों और घोड़ों की शीलता की प्रशंसा करती है। इस पर गर्व से मेरी छाती फूल जाती है, काम हल्का और आनन्दमय हो जाता है और मुझे इस बात का अफसोस होने लगता है कि मैंने शादी पहले क्यों न की?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कई बार वह अपने नन्हे बेटे को साथ ले जाता था।

"प्रायः जब मैं हल चलाता हूं तो अपने नन्हें बच्चे को कुर्सी में लिटा देता हूं, जो पचों द्वारा हल से बंधी होती है। वह इसके और घोड़ों के चलने से बहुत खुश होता है। वह आनन्दविभोर होकर बातें करने लगता है। जब मैं हत्थी पर झुका होता हूं, मेरे मस्तिष्क में नाना प्रकार के विचार उठते हैं। मैं अपने मन में कहता हूं कि जो मेरे पिता ने पहले मेरे लिए किया, वह मैं इसके लिए कर रहा हूं। भगवान की कृपा से वह दीर्घायु हो और जब मैं बूढ़ा हो जाऊं तो वह यही काम इसी उद्देश्य से करे। जितनी देर बच्चा मेरे साथ रहता है, उसकी मां का इससे कुछ कष्ट दूर हो जाता है। आड़ी-तिरछी लकीरें उसकी आत्मा में उल्लास भर देती हैं। ऐसा लगता है कि इससे उसे काफी लाभ होता है, क्योंकि जब से मैं अपने साथ लाने लगा हूं वह पहले से अधिक स्वस्थ और विकसित जान पड़ता है। क्या इस प्राथमिक धन्धे में इससे अधिक हर्ष और इससे अधिक स्वाभिमान का मिश्रण भी हो सकता है? पिता जो अपने बच्चे के साथ अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए हल चलाता है, सिर्फ चीन के सम्राट ही से छोटा है। हल चलाना उसके राज्य के लिए मानो एक उदाहरण है।"

"हल उद्यम भावना से ओत-प्रोत है जिसके आगे न तो कोई बाधा है और न जिस पर कोई प्रतिबन्ध है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए काम करता है। आप देहात में जाएं तो आपको एक ओर बड़े-बड़े दुर्ग और महल खड़े दिखाई देंगे और दूसरी ओर कच्चे घर और गन्दी झोंपड़ियां दिखाई देंगी, जहां पशु और मनुष्य एक-दूसरे को गर्भ रखने में सहायता करते हैं, हीनता, धुएं और अस्वस्थ वातावरण में जीवन बिताते हैं।"

स्मरण रहे कि यह किसी साहित्यकार का लिखा वर्णन नहीं, बल्कि एक साधारण किसान के उद्गार हैं। उस जमाने में साधारण किसान के उद्गारों को साहित्यकार के द्वारा लिखवाने की भी प्रथा नहीं थी जैसा कि अब पाश्चात्य देशों में प्रचलित हो गया है।

अमरीका पहले केवल खेती पर ही निर्भर करता था पर धीरे-धीरे वहां उद्योग-धन्धे पनपे। पर यह मार्ग भी रोड़ों से भरा हुआ था। पहले वहां भी भारत की तरह सारा सामान बाहर से आता था--

"जिस प्रकार इमारत का सब सामान बाहर से आता था, उसी प्रकार मकानों को सजाने की सब चीजें और इन घरों के धनी मालिकों के कपड़े भी बाहर से आते थे।"

"उनके घरों में इंगलैण्ड के बने हुए चीनी और चांदी के बढ़िया टी-सैट होते थे। संदल और शीशम का बढ़िया सामान होता था, जिस पर फ्रांस के किसी बढ़ई ने पच्चीकारी की होती थी और फिर पूर्व के गलीच, इटली की तस्वीरें और वे किताबें होती थीं, जिनकी जिल्द कार्डावन के चमड़े की बंधी होती थीं। उनके खाने की मेजों पर मदिरा, बुर्गण्डी और पुर्तगाल की शराब शीशे की सुराहियों में भर कर रखी होती थी और तहखानों की पेटियों में स्काटलैंड की ह्विस्की। गाड़ियां और पालकियां भी ब्रिस्टल और इंगलैण्ड में बनती थीं और इंगलिश जहाजों द्वारा अमरीका में लाई जाती थीं। शानदार सिल्क, कीमती मखमल, पंख, रिबन, फीते, चित्रित पंखे, हीरे-जवाहरात और बनावटी बाल तक अधिकांश फ्रांस में बनते थ और इंगलिश जहाजों में भरकर लाए जाते थे।"

"पुरुष आम-तौर पर अपने कपड़े लन्दन से मंगवाते थे। उदाहरण के लिए जार्ज वाशिंगटन अपनी आवश्यक वस्तुओं की एक सूची हर साल अपने अंग्रेज एजेण्ट को भेज देता था जिसमें सुनहरी फीते वाले बढ़िया लाल कपड़े के कोट, झालरदार कमीज और चांदी के बने हुए जूतों के बक्सुए भी शामिल होते थे। वह अपने हर आर्डर के साथ लिख देता था--"तुम मेरे लिए जो भी सामान भेजो, वह सब फैशनेबल होना चाहिए।"

पर जैसे-जैसे समय बीतता गया, लोग स्वदेशी द्रव्य अपनाते गए--"यहां न्यू इंगलैण्ड में निस्सन्देह जल-शक्ति बहुत थी--बड़ी और छोटी कितनी ही नदियां पहाड़ों से समुद्र की ओर बहती थीं। लेकिन कोई भी ऐसी मशीन बनाने में सफल नहीं हुआ था, जो पानी से चलती। यह इंगलैण्ड का भेद था।"

पर यह भद भी अमरीकनों को मालूम होता गया। जनता की ओर से मशीन के बने हुए कपड़ों का किस प्रकार विरोध हुआ इसका वर्णन भी दिलचस्प है :--

"उस समय बोस्टन में केवल श्रीमती बोवेस की ही कपड़े आदि की एक दुकान थी। उसने बताया कि "प्रत्येक व्यक्ति कपड़े की तारीफ करता है, पर कोई खरीदने को तैयार नहीं। यह कपड़ा क्योंकि मशीन पर बनता था, इसलिए लोग इसके बारे में शंकित थे। वे मशीन की ऐसी चीज समझते थे जो गरीबों के मुंह से रोटी के कौर छीन लेगी।"

साधारण लोग ही नहीं बल्कि बड़े लोग भी इस तरह के कुसंस्कारों में फंसे हुए थे--

"लकिन अमरीका की आम जनता की तरह उस समय कांग्रेस के सदस्यों के मन भी मशीनी कपड़े के बारे में सन्देहग्रस्त थ। व कहते थे कि अमरीका को मशीनों का देश बनाना हमारा कभी भी उद्देश्य नहीं रहा। हमारे लोग किसान, बढ़ई और व्यापारी हैं, वे उद्योगपति नहीं बन सकते। जो लोग इंगलिश फैक्टरियों में काम करते हैं, हम उनकी दीनता और दुर्दशा से परिचित हैं। हमारे लोग उन जैसा बनना कभी पसन्द नहीं करेंगे।"

धीरे-धीरे कारखानों में काम होने लगा और यवक तथा युवतियां उनमें काम करने लगीं--

"किसान लड़कियां लावेल-मिलों में बड़े चाव से काम करने लगीं। शायद व रसोइयों के झंझट से छूटकर प्रसन्न थीं। रुपया कमाने का मोह भी एक आकर्षण रहा होगा और उसके साथ उन्हें अपनी उम्र की बहुत सी लड़कियों के साथ रहने की प्रसन्नता प्राप्त हुई जब कि फार्म में नौजवान लड़कियों का जीवन बहुत सी एकान्त और नीरस था।"

फिर भी कुसंस्कार बहुत दिनों तक चलते रहे :--

"जहां-तहां और देश के प्रत्येक भाग में लोग दूसरी मशीनें बनाने लगे, जिनमें रुई कातने और कपड़ा बुनने के अलावा दूसरी चीजें तैयार हो सकती थीं। बहुत स ऐसे भी थे, जो आविष्कार करने वाले की कल्पना-शक्ति से घृणा करते थे। वे कहत थे कि अगर कोई मेहनत से बचने का प्रयत्न करे तो क्या यह आलस्य नहीं? पीढ़ी-दर-पीढ़ी चीजें जैसे बनती आई हैं, हम वैसे ही बनाना क्यों न जारी रखें?"

"लेकिन यद्यपि हमेशा ऐसे रूढ़िवादी लोग भी रहे हैं जो प्रगति की राह में रोड़े अटकाते हैं, फिर भी कुछ ऐसे अमरीकन हमेशा रहे हैं जो नये अनुभव करने के लिए तैयार रहते हैं। विशेषकर जब आबादकार पश्चिम चले गए और पूर्व में आदमियों की कमी हो गई तो ऐसे अनुभवों की जरूरत पड़ी।"

अमरीका आविष्कारों का देश है पर आविष्कारकों को कैसी-कैसी मुसीबतें झेलनी पड़ी हैं यह इवान्स नामक आविष्कारक की आप बीती से देखा जा सकता है :--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जब उसने अपना नन्हा आविष्कार अपन परिवार के लोगों को दिखाया तो उसे उपेक्षा के अलावा कुछ नहीं मिला। उसके पिता न सोचा कि बेटे के दिमाग का कोई पुर्जा ढीला हो गया है। उसका जो मजाक उड़ा था, कई साल बाद इवान्स ने उसके बारे में इस प्रकार लिखा, उसने तीसरी विभक्ति इस्तेमाल की ह, जैसे किसी और क बारे में लिख रहा हो--

"उसके पिता के परिवार को जब हालात मालूम हुए, तो सबने उसे स्वप्नदर्शी बनने से रोकने के लिए युक्तियों और उपहास से काम लेना शुरू किया। जब उन्हें सफलता न मिली, तो वे निराश हो गये और समझ लिया कि वह एक मेहनती व्यक्ति से निरा स्वप्नदर्शी बन कर रह गया है। सचमुच उसके माडल को इतना महत्वहीन समझा गया कि लुहार ने भी उसे एक निरर्थक खिलौना समझा और उसकी इन कल्पित योजनाओं पर काम करने से उस समय तक इनकार करता रहा जब तक कि जार्ज लटीमेर और एक भले वृद्ध जमेका ने अपनी प्रभावशाली दलीलों से उसे यह काम करने के लिए कायल नहीं कर लिया। फिर उस इतनी सफलता प्राप्त हुई कि सबने अपनी भाषा बदल दी, और ओलिवर की कल्पना-शक्ति अद्वितीय थी....."

पुस्तक इसी तरह की बहुत मार्मिक घटनाओं से पूर्ण है। अनुवाद बहुत सुन्दर हुआ है।

आषाढ़ का एक दिन : लेखक--मोहन राकेश; प्रकाशक--राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली; पृष्ठसंख्या १२०; मूल्य दो रुपये।

यह ऐतिहासिक नाटक कालिदास की जीवनी या यह कहना चाहिए कि उनकी जीवनी के अभाव का आधार लेकर लिखा गया है। उनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ मालूम न होने के कारण लेखक को पूरी छूट मिली है और लेखक ने उसका पूरा उपयोग भी किया है। कथा भाग इतना है कि कालिदास पावर्त्य प्रदेश में पले और वहीं उनकी कवित्व शक्ति निखरी। वहां मल्लिका नाम की उनकी एक प्रेमिका थी। बाद को ख्याति बढ़ने पर वे उज्जयिनी की राज्यसभा में कवि बन कर गए। इसके बाद वे कश्मीर में राजा मातृगुप्त बन कर गए और वहां कुछ वर्षों तक रहने के बाद वह अकिंचन बन कर फिर मल्लिका के पास लौटते हैं और कहते हैं :--

"लोग सोचते हैं, मैंने उस जीवन और वातावरण में रह कर बहुत कुछ लिखा है। परन्तु मैं जानता हूं कि मैंने वहां रह कर कुछ नहीं लिखा। जो कुछ लिखा है वह यहां के जीवन का ही संचय था। कुमारसम्भव की पृष्ठ-भूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो। मेघदूत के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह-विमर्दित यक्षिणी तुम हो, यद्यपि मैंने स्वयं यहां होने और तुम्हें उज्जयिनी में देखने की कल्पना की। अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला के रूप में तुम्हीं मेरे सामने थीं। मैंने जब-जब लिखने का प्रयत्न किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर-फिर दोहराया। और जब उससे हट कर लिखना चाहा तो रचना प्राणवान् नहीं हुई। रघुवंश में अज का विलाप भी मेरी ही वेदना की अभिव्यक्ति थी और ...।"

इतने में कालिदास को मालूम होता है कि जो मल्लिका वर्षों उसके लिए प्रतीक्षा करती रही वह अन्त तक उसके ग्राम्य जीवन में कवित्व यश में प्रतिद्वन्द्वी विलोम की पत्नी हो चुकी है और उसका बच्चा भी हो चुका है। पुस्तक में नाटकीय तत्व यथेष्ट हैं और लेखक ने कथानक का अच्छा निर्वाह भी किया है। इस पुस्तक में यदि कोई बेसुरापन है तो वह उसकी भूमिका 'दो शब्द' है जिसमें लेखक दावा करता है कि हिन्दी रंगमंच दूसरे देशों के रंगमंच से कुछ और होगा। यह क्यों और कैसे इस ओर लेखक ने कोई इंगित नहीं किया। नाटक को पढ़ जाने के बाद यह भी पता नहीं लगता कि क्यों लेखक को ऐसी बातें कहीं जिन्हें तात्विक और भौतिक आधार पर स्थापित नहीं किया जा सकता। हम बहुत से क्षेत्रों की तरह रंगमंच के क्षेत्र में भी पिछड़े हुए हैं पर पिछड़ेपन को एक गुण बना लेना और उसका एक दर्शन शास्त्र प्रस्तुत करना कोई स्वस्थ मनोवृत्ति नहीं कही जा सकती। लेखक ने कालिदास के जीवन के सम्बन्ध में जो कल्पना की है वह किसी तरह भी ऐसी नहीं है जिसके सम्बन्ध में यह कहा जा सके कि उसमें हमारी संस्कृति किसी ऐसे रूप में मूर्त हुई है जो पाश्चात्य देशों में दुर्लभ है। यदि इसके कथा भाग को थोड़े में पेश किया जाए तो बहुत सी विदेशी कहानियों में इस प्रकार की कथा मिल सकती है जहां प्रेमिक बदल गया फिर जब वह अन्ततोगत्वा वापिस आया तो उसने देखा कि प्रेमिका भी बदल चुकी है। युद्ध को लेकर ऐसी बहुत सी कहानियां लिखी गई हैं। लेखक को यदि रंगमंच पर कुछ लिखना था तो उसके सम्बन्ध में उन्हें कोई स्पष्ट बात कहनी चाहिए थी।

नृत्य और साहित्य : लेखक--डा० जान एच० मानस; अनुवादक--डा० नरेन्द्र चौधरी; प्रकाशक--भारती एसोसिएशन, गाजीआबाद, उत्तर प्रदेश; पृष्ठसंख्या १५, मूल्य--डेढ़ रुपये।

नृत्य के इतिहास और मनोविज्ञान पर अच्छी से अच्छी पुस्तकें निकली हैं, फिर इस पुस्तक के हिन्दी में अनुवाद करने की क्या जरूरत थी, कुछ समझ में नहीं आया। इसके मुकाबले में हैवलाक एलिस की तथा अन्य कितनी ही पुस्तकें हैं जिनका अनुवाद हिन्दी में हो सकता था। मूल लेखक को भारत के नृत्य सम्बन्धी प्राचीन सिद्धान्तों का पता नहीं है। पुस्तक का अनुवाद भी अच्छा नहीं हुआ है। भाषा जगह-जगह रुकती है, कई जगह तो मतलब ही नहीं पल्ले पड़ता। ग्रीक तथा रोमन नामों को भी यथेच्छ ढंग से लिखा गया है जैसे बेकस को बचूस लिखा गया है।

आधुनिक विज्ञान और आधुनिक मानव : लेखक--जेमस बी० कान्नेट; अनुवादक--हंसराज 'रहबर;' प्रकाशक--आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली; पृष्ठसंख्या ९०; मूल्य २)।

यह पुस्तक एक बहुत बड़े अणु-वैज्ञानिक के व्याख्यानों का संग्रह है। पुस्तक को पढ़ने से पता चलता है कि अणु-शक्ति के बारे में जो लेख अथवा पुस्तकें निकलती हैं उनमें बहुत से अर्द्ध-सत्य रहते हैं। लेखक इसका कारण भी बताते हैं :--

"सैनिक और औद्योगिक 'उद्देश्यों के लिए अणु-शक्ति का भविष्य न सिर्फ राष्ट्र के लिए बल्कि राजनीतिज्ञों के लिए भी गौरव का विषय बन चुका है। मास्को से ऐलान होता है कि सोवियत संघ परमाणु बम को पहाड़ हटाने के लिए इस्तेमाल कर रहा है। सम्भव है जानकारी रखने वाले कुछ लोग इन कहानियों पर विश्वास रखते हों, लेकिन रूस में कोई व्यक्ति इस मामले पर बहस नहीं कर सकता। अर्जेन्टाइना से खबर आती है कि वहां अणु-शक्ति के नये साधन मालूम हुए हैं। कोई विश्वास नहीं करता, कुछ लोग बहस भी करते हैं, लेकिन उस देश में कोई मन में सन्देह रखते हुए भी विरोध युक्त आवाज नहीं उठाता। आप कहेंगे कि यह सब इसलिए होता है कि इन देशों में डिक्टेटरों का शासन है, किसी व्यक्ति को आवाज़ उठाने का अधिकार प्राप्त नहीं, लेकिन अमरीका और ब्रिटेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी यही स्थिति है। हम अखबारों में औद्योगिक उद्देश्य के लिए अणु-शक्ति के प्रथम प्रयोग अथवा उसे फौजी हवाई जहाज और समुद्री जहाज बनाने के लिए इस्तेमाल की खबर पढ़ते हैं और हमें बताया जाता है कि इस दिशा में फलां-फलां उन्नति होने वाली है। एक राष्ट्र के अफसर दावा करते हैं कि हम अणु-शक्ति को कारखानों में इस्तेमाल करेंगे और दूसरे राष्ट्र के अफसर उद्जन बम बनान की बात कहत हैं। इन सब बयानों के पीछे नई और महत्वपूर्ण बात यह है कि जिन्हें इन विषयों पर बोलने का अधिकार प्राप्त है, वे खुद कुछ नहीं कहते, क्योंकि सुरक्षा कानूनों ने उनकी जबान बन्द कर दी ह। जिनम वैज्ञानिक की योग्यता ह और जो प्राविधिक बातों को समझत हैं उन्होंने चुप्पी साध ली है। इसके परिणामस्वरूप जनता को जो जानकारी प्राप्त होती है वह उन राजनीतिज्ञों, के बयानों द्वारा होती है, जिन्हें खुद यह ज्ञान नहीं होता है कि वे जो भविष्य-वाणी कर रहे हैं, उसमें असत्य की मात्रा कितनी है और उनके बयान में असल बात को कितना तोड़ा-मरोड़ा गया है। कई बार अर्द्ध-सत्य और अत्यन्त अस्पष्ट रिपोर्टें अखबारों में छपती हैं और यही परमाणु-शक्ति की प्रगति के बारे में जनता की जानकारी का एक आधार होती है। मैं जो कुछ कह रहा हूं वह अक्षर-अक्षर सत्य है और पर्दे के पीछे जो कुछ हो रहा है उसे मैं अपने बारह वर्ष के अनुभव से जानता हूं। आज अथवा निकट भविष्य में परमाणु-शक्ति के उद्योग सम्बन्धी इस्तेमाल के बारे में साफ-साफ विश्वस्त ढंग से कुछ कहना असम्भव है। हो सकता है कि साधारण जनता अणु-शक्ति और अणु-बम क बारे में जो कुछ छपता है उस पढ़ना ही छोड़ दे। क्योंकि जो कुछ छपता है, वह भ्रांतिजनक है।"

पुस्तक के लेखक ने स्वयं भी बहुत सी गोल मोल बातें कहीं ह। इसलिए जिस विषय पर लेखक को भाषण देना था वह विषय स्पष्ट नहीं होता।

सरल रेडियो विज्ञान : लेखक--रमेशचन्द्र विजय; प्रकाशक--आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली; पृष्ठ संख्या १८३; मूल्य ५) रुपए।

यह बहुत ही खुशी की बात है कि इस विषय पर एक अच्छी पुस्तक प्रकाशित हुई है। लेखक ने यह भी अच्छा ही किया है कि वैज्ञानिक शब्दों के अनुवाद के झगड़ में न पड़कर उन्होंने शब्दों को हिन्दी हर्फों में लिख दिया है। जो लोग रेडियो का काम करते हैं पर उसक सिद्धान्तों से परिचित नहीं हैं वे केवल हिन्दी पढ़े-लिखे होने पर भी इस पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं।

--मन्मथनाथ गुप्त

●

विराम चिन्ह : लेखक--अंचल; प्रकाशक--हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१; पष्ठ संख्या ७८; मूल्य तीन रुपये, सजिल्द।

'विराम चिन्ह' में श्री अंचल जी की ५१ कविताएं संग्रहीत हैं। 'अंचल' जी प्रमुखतः एक गीतकार हैं। इस संग्रह में भी अधिकांश गीत ही हैं। अतृप्ति, निराशा, विरह और शृंगार 'अंचल' जी के प्रिय वर्ण्य विषय हैं। इस संग्रह में भी इन्हीं विषयों का समावेश अधिकांशतः है। हां, अंतिम भाग में बापू पर चार-पांच कविताएं तथा कुछ अन्य गीत और मुक्त छंद की रचनाएं उक्त नियम का अपवाद हैं। 'विराम चिन्ह' के गीतों या कविताओं को पढ़ने के बाद मन में कोई गहरा प्रभाव नहीं पड़ता, कारण कि अंचल जी की काव्य-प्रतिभा इसमें समाप्तप्राय प्रतीत होती है। इसका एक प्रमाण है विषयों की पुनरावृत्ति; दूसरा है, भाषा और शैली की दुहराहट। 'मां होती नाराज़ करेंगे अब हम तुमको प्यार नहीं, गहन लहरिय आज खड़ी होगी क्या उसी अटारी पर',--ये तथा ऐसी ही पंक्तियां हम अंचल जी की लेखनी से दशाब्दियों से निकलते देख रहे हैं। स्वाभाविक है कि हम उनसे अधिक प्रौढ़, परिष्कृत एवं गहन भाव-सम्पदा की आशा करें। पर शायद अंचल जी ने स्वयं ही अपने कवि से हार मान ली है और इसीलिए अपने इस नए, नयनाभिराम (छपाई की दृष्टि से) संग्रह का नाम 'विराम चिन्ह' रखा है।

गीतों की बजाय मुक्त छंद की कविताओं में अंचल जी को अधिक सफलता मिली है, ऐसा मेरा विचार है। 'महाज्योति' एक सशक्त कविता है, जिसमें ताज़गी के साथ-साथ गहन प्रभावोत्पादकता है। काश अंचल जी ऐसी सशक्त रचनाएं और भी दे सकते!

--प्रयागनारायण त्रिपाठी

स्वामी विवेकानन्द का एक पत्र--(पृष्ठ ५४ का शेषांश)

भावावेश नहीं। वह शांति जिसका अनुभव मनुष्य मूर्त्तियों और तस्वीरों से घिरा होने पर करता है।

मेरे स्वामी! मैं आ रहा हूं।

इस संसार का अस्तित्व है न तो सुन्दर न असुन्दर पर एक विचार सा जो किसी भी प्रकार भावुकता को उत्तेजित नहीं करता। आह! जो, इसकी मंगलमयता! सभी वस्तुएं मंगलमय और सुन्दर हैं क्योंकि वस्तुओं से सम्बद्ध जो एक मोह होता है। वह अब नहीं रहा वह मिट रहा है और उसमें भी मेरे शरीर का सर्वप्रथम।

ओम! असीमसता!

मुझे आशा है कि तुम लोग लन्दन में बड़े-बड़े कार्य करोगे। नया हर्ष! मस्तिष्क और शरीर को नये-नये लाभ। सदैव-सप्रेम।

तुम्हारा
विवेकानन्द

●

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह-संग्राम के शहीद--(पृष्ठ ६ का शेषांश)

उद्धार होगा" शहीद भवन के उस कक्ष में उन विधवाओं के चित्रों के नीचे लिखे हुए होने चाहिएं।

दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों का यह कर्तव्य है कि सरकार द्वारा निर्मित होने वाले शहीद भवन के कार्य में भरपूर सहायता दें।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

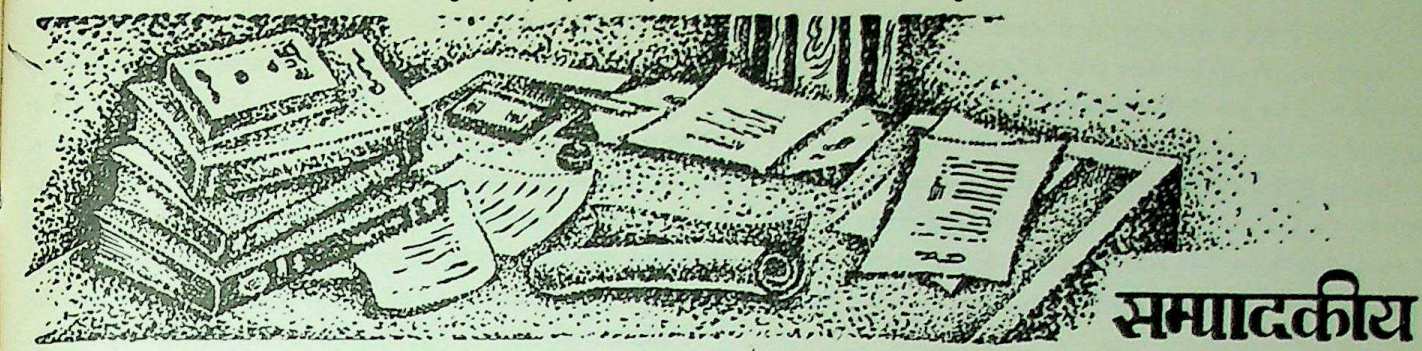

समादकीय

संयुक्त राष्ट्रों का अधिवेशन

गत जुलाई मास के दूसरे सप्ताह में संसार की राजनीतिक परिस्थितियों में एकाएक ऐसा भूचाल आया था, जैसे इस सदी का तीसरा विश्वव्यापी महायुद्ध आज शुरू हुआ कि अभी शुरू हुआ। बगदाद पैक्ट के राष्ट्रों की प्रस्तावित बैठक से सिर्फ एक ही दिन पहले ईराक की राजधानी बगदाद में क्रान्ति हो गई और वहां गणतन्त्र राज्य स्थापित हो गया। यह क्रान्ति स्पष्टतः बढ़ती हुई अरब राष्ट्रीय भावना का परिणाम थी। पर पश्चिम एशिया के इन राष्ट्रों में संसार के कुछ शक्तिशाली राष्ट्र जो दिलचस्पी ले रहे हैं, उसका परिणाम यह हुआ कि संसार भर की राजनीतिक परिस्थिति सहसा अत्यन्त गम्भीर हो गई। लैबनान का मामला पहले ही संसार भर में चर्चा और चिन्ता का विषय बना हुआ था। संयुक्त राज्य अमेरिका ने वहां अपनी सेनाएं भेज दीं, यह कहकर कि जब संयुक्त राष्ट्रों की सेनाएं वहां आएंगी, अमेरिकन सेनाएं वापस बुला ली जाएंगी। उक्त सैनिक अभियान के दूसरे ही दिन बगदाद पैक्ट के राष्ट्रों (टर्की, ईरान और पाकिस्तान) के मुखियाओं की सलाह पर जोर्डन के बादशाह ने इंग्लैण्ड से यह अनुरोध किया कि अपनी रक्षा के लिए उन्हें अंग्रेजी फौजों की सहायता चाहिए। परिणामतः अंग्रेजी फौजें जोर्डन में जा उतरीं। उधर रूस तो पश्चिम एशिया का पड़ौसी ही है।

रूस के प्रधान मंत्री श्री ख्रुश्चोव ने इस गम्भीर मसले पर, एक तरह से जिसके हल पर आज क संसार का भविष्य निर्भर कर रहा है, संसार के पांच बड़े राष्ट्रों--संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, इंग्लैण्ड, फ्रांस और भारत--का एक सम्मेलन अविलम्ब बुलाने का सुझाव रखा था। इस प्रस्ताव को फ्रांस और भारत ने तो स्वीकार कर लिया, पर अमेरिका और ब्रिटेन चाहते थे कि यह सम्मेलन संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् के रूप में बुलाया जाए, केवल इस अन्तर के साथ कि उसमें सभी सदस्य राष्ट्रों के मुखिया सम्मिलत हों। यह सम्मेलन किन बातों पर विचार करे और कौन-कौन अन्य राष्ट्र उसमें बुलाए जाएं--इसका निर्णय भी सुरक्षा परिषद् करे। रूस इस से सहमत नहीं हुआ। लन्डन के शक्तिशाली अनुदार पत्र 'डेली मेल' ने लिखा था: "अमेरिका और ब्रिटेन को चाहिए कि वे शिखर सम्मेलन सम्बन्धी प्रधान मन्त्री ख्रुश्चोव के प्रस्ताव को अविलम्ब स्वीकार कर लें, क्योंकि यदि यह शिखर सम्मेलन इस समय न हुआ तो हमें यह निश्चित समझ लेना चाहिए कि भविष्य में भी इस तरह का शिखर सम्मेलन फिर कभी न हो सकेगा।" फिलहाल शिखर सम्मेलन की सम्भावना नहीं रही और प्रधान मन्त्री नेहरू के शब्दों में "शिखर धुंध में छिप गया है।"

बाद में रूस के सुझाव पर उक्त सभी राष्ट्र इस बात पर सहमत हो गए कि संयुक्त राष्ट्र संघ का जनरल अधिवेशन, इसी मामले पर विचार करने के लिए बुलाया जाए। यह महत्वपूर्ण अधिवेशन अगस्त के दूसरे सप्ताह में प्रेजीडेण्ट आइसनहावर क भाषण से प्रारम्भ हुआ। कुछ राष्ट्रों के विदेश मन्त्री इसमें भाग ले रहे थे। रफ़्तार धीमी होते हुए भी, युद्ध का संकट टल गया प्रतीत होता है। यह सन्तोष का विषय है कि इस अधिवेशन ने सर्वसम्मति से अरब राष्ट्रों का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और इस तरह स्थायी शान्ति के लिए गम्भीर प्रयत्न प्रारम्भ हो गया ह।

हमारी धारणा है कि संसार के अधिकांश देशों के जनसाधारण की, दूसरे शब्दों में मानव जाति के एक बहुत बड़े बहुमत की यही इच्छा है कि संसार की बड़ी शक्तियों के नेता परस्पर एक साथ बैठ कर ऐसे मार्ग निकालें, जिन से विश्व युद्ध की सम्भावना न रहे। संसार के किसी भी देश की जनता युद्ध नहीं चाहती। इस कारण युद्ध की सम्भावना रोकने के लिए अधिकतम प्रयत्न करना मानव जाति के सभी नेताओं का कर्त्तव्य है।

जहां तक ईराक की नई सरकार का सम्बन्ध है, वह सही अर्थों में आज वहां की सरकार है और ईराक अब एक सर्व प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य बन गया है। संसार के अन्य अधिकांश देशों के साथ भारत ने भी इस सरकार को ईराक की वैध सरकार स्वीकार कर लिया है। उन्नति के इस युग में अरब राष्ट्रों में जिस प्रकार राष्ट्रीयता की भावना पनप रही है और जिस प्रकार अरब राष्ट्र अब जन-कल्याण की भावना से उन्नति के पथ पर अग्रसर होना चाहते हैं, उसे समझे बिना और उसे सहानुभूति से देखे बिना पश्चिमी एशिया की समस्या को सुलझाना सम्भव न होगा।

●

मूल कारण

पश्चिमी एशिया की समस्या के तीन मुख्य कारण हैं :—

१. अरब राष्ट्रों में बढ़ती हुई राष्ट्रीय भावनाओं का वहां की परम्परागत पुरानी संस्थाओं और प्रथाओं से संघर्ष;
२. पश्चिमी एशिया के स्ट्रैटेजिक महत्व के कारण संसार के दोनों शक्तिशाली गुटों की उसमें दिलचस्पी; तथा
३. पश्चिमी एशिया के तेल के स्रोतों से लाभ उठाने वाले राष्ट्रों की उसमें स्वाभाविक दिलचस्पी।

हमारी राय से इन में से प्रथम कारण का समाधान तो यही है कि संसार भर के राष्ट्र बढ़ती हुई अरब राष्ट्रीय भावना का सम्मान करें और उन राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में बाहर का कोई राष्ट्र किसी तरह का हस्ताक्षेप न करे। जहां तक पश्चिमी एशिया के स्ट्रैटेजिक महत्व का सम्बन्ध है, संयुक्त राष्ट्र संघ और सुरक्षा परिषद् का यह कर्त्तव्य है कि इस कारण वह किसी बाह्य राष्ट्र को इन छोटे राष्ट्रों की स्वाधीनता के अपहरण या सीमाकरण का निमित्त न बनने दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन तीनों में सब से अधिक महत्वपूर्ण कारण इन राष्ट्रों के तेल स्रोत हैं। पिछले सौ वर्षों से यही कारण इन राष्ट्रों में विदेशी हस्ताक्षेप का निमित्त बनता रहा है। प्रथम और द्वितीय विश्व युद्धों के बीच इसी बात पर कितनी बड़ी तनातनी लगातार जारी रही और कितना ही साहित्य लिखा गया। हमारा ख्याल है कि इस पेचीदा प्रश्न का भी युक्तियुक्त समाधान किया जा सकता है। पर उसके लिए आवश्यक यह है कि पश्चिमी एशिया के राष्ट्रों की अपनी आवश्यकता और हितों को ध्यान में रख कर उन्हीं राष्ट्रों की रजामन्दी से तेल का न्यायपूर्ण वितरण किया जाए।

●

एक सुझाव

पश्चिमी एशिया के राष्ट्रों में उपलब्ध होने वाले तेल के वितरण की चरचा करते हुए एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न स्वतः सामने आ जाता है। यह प्रश्न है : क्या संसार के सभी राष्ट्रों के लिए आवश्यक सामग्री, खास तौर से आधारभूत आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति करने की व्यवस्था संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा की जा सकती है? स्पष्टतः खाद्य सामग्री, लोहा, कोयला, तेल आदि वस्तुएं प्रत्येक राष्ट्र की आधारभूत आवश्कताओं में हैं। इनमें से कोई भी चीज आवश्यकता से कम होने की अवस्था में वह चीज दूसरे राष्ट्रों से ली ही जाती है। इंग्लैण्ड जैसा सम्पन्न राष्ट्र भी पीढ़ियों तक खाद्य सामग्री अन्य देशों से मंगवाता रहा है। जब तक साम्राज्यवाद सम्मान की बात माना जाता था, सैनिक दृष्टि से संसार के अपेक्षाकृत कमजोर राष्ट्रों का अपहरण रोजमर्रा की बात थी। आज की बदली हुई मानव जाति उस बात को सहन नहीं कर सकती। आज संसार के अधिकांश राष्ट्र इस सिद्धान्त को स्वीकार कर चुके हैं कि राष्ट्रों के पारस्परिक झगड़े संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सुलझाए जाएं और कोई राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र का अपहरण न करे।

हमारा सुझाव है कि संयुक्त राष्ट्र संघ अब यह कार्य भी प्रारम्भ करे कि उसकी देख-रेख में सभी सदस्य राष्ट्रों के लिए आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था हो सके। जिस तरह विश्व बैंक की स्थापना की गई है और जिस तरह युनैस्को द्वारा सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक आदान-प्रदान की व्यवस्था की गई है, उसी तरह संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में एक नई संस्था का निर्माण किया जाए, जो सभी सदस्य राष्ट्रों के लिए आधारभूत आवश्यक वस्तुओं की पूर्त्ति में सहायक हो। स्पष्ट है कि यह कार्य किसी तरह की ज़ोर-ज़बरदस्ती से नहीं हो सकता। पर यह भी स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्यों के पास कुल मिला कर इतना खाद्यान्न, इतना कच्चा लोहा, इतना तेल और इतना कोयला विद्यमान है कि वह सभी सदस्य राष्ट्रों की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त सिद्ध हो सकता है। यही बात अन्य आधारभूत वस्तुओं के सम्बन्ध में भी है। इस्पात आदि जिन चीजों की कमी है, उनकी पूर्ति के लिए भी एक ही पीढ़ी में यथेष्ट व्यवस्था की जा सकती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में यदि किसी ऐसी संस्था का निर्माण हो सके तो उससे स्पष्टतः पश्चिमी एशिया सम्बन्धी तथा उसी तरह की अन्य विकट समस्याओं को सुलझाने में मूल्यवान सहायता मिलेगी।

महादेवी वर्मा—(पृष्ठ १९ का शेषांश)

हिम से जड़ नीला अपना निस्पन्द हृदय ले आना,
मेरा जीवन-दीपक धर उसको सस्पन्द बनाना,
हिम होने देना यह तन !
कितनी करुणाओं का मधु कितनी सुषमा की लाली,
पुतली में छान भरी है मैंने जीवन की प्याली,
पी कर लेना शीतल मन !

सचमुच

गर्व करने

योग्य

सायकिल

रैले

A SEN RALEIGH Product

SRC-51 HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितने युग बीत गए इन निधियों का करते संचय,
तुम थोड़े से आंसू दे इन सबको कर लेना क्रय,
अब हो व्यापार-विसर्जन ।
है अन्तहीन लय यह जग पल है मधुमय कम्पन,
तुम इसकी स्वरलहरी में धोना अपने श्रम के कण,
मधु में भरना सूनापन !
पाहुन से आते जाते कितने सुख के दुख के दल,
ये जीवन के क्षण क्षण में भरते असीम कोलाहल,
तुम बन आना नीरव क्षण !
तेरी छाया में दिव को हंसता है गर्वीला जग,
तू एक अतिथि जिसका पथ है देख रहे अगणित दृग,
सांसों में घड़ियां गिन गिन !

महादेवी में, जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, एकरसता का दोष आरोपित किया जा सकता है, पर मैं इसे महादेवी का गुण मानता हूँ । जिस रस को उन्होंने प्रतिपादित किया है, उसमें उन्हें सफलता मिली है । और इसीलिए मैं उन्हें यह दोष भी नहीं देता कि उन्होंने बहुत कम कविताएँ लिखीं । अधिक लिखने में वह केवल पुनरावृत्ति ही कर सकती थीं ।

महादेवी ने बहुत सुन्दर गद्य भी लिखा है जिसमें वह पुनरावृत्ति के दोष से बच जाती हैं । उन्होंने पृथ्वी सूक्त का सुन्दर अनुवाद किया है जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है ।

मेरा ऐसा अनुमान है कि महादेवी वर्मा जीवन के ऐसे अनुभवों के दौर से गुजर रही हैं कि भविष्य में वह कविता की अन्य दिशाओं में अपने को प्रस्फुटित करेंगी ।

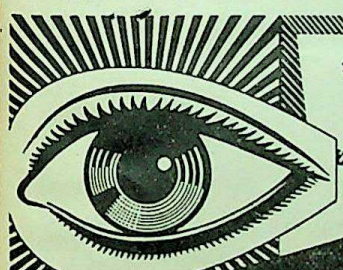

आँखों की रक्षा
जीवन की रक्षा है

रेडियम आई ड्राप्स

भली-चंगी आँखों वाले प्रयोग करें तो बुढ़ापे में भी आँखों की ज्योति तेज़ रहती है ।
आँखों के बहुत से रोगों में लाभदायक लाखों घरों में प्रयोग होती है

मूल्य ३/-

रेडियम कैमीकल वर्क्स लिमिटेड पोस्ट बाक्स नं. 1351 देहली

सोने पर सुहागा

हाथकरघे के
शीतल, सुंदर व सूती कपड़े
सुहावने और चित्ताकर्षक रंगों में
झिलमिलाते रेशमी वस्त्र
हर दिन और हर समय
सुन्दरता को चार चांद
लगाने वाले

भारत के निपुण बुनकरों द्वारा निर्मित हाथ-करघे के सूती व रेशमी वस्त्रों में सौम्यता और स्थायित्व का अनूठा सम्मिश्रण होता है।

ALL INDIA HANDLOOM BOARD

भारतीय हाथकरघे के वस्त्र

DA-58/102

अखिल भारतीय हाथकरघा बोर्ड,
शाहीबाग हाउस, विटेट रोड, बम्बई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

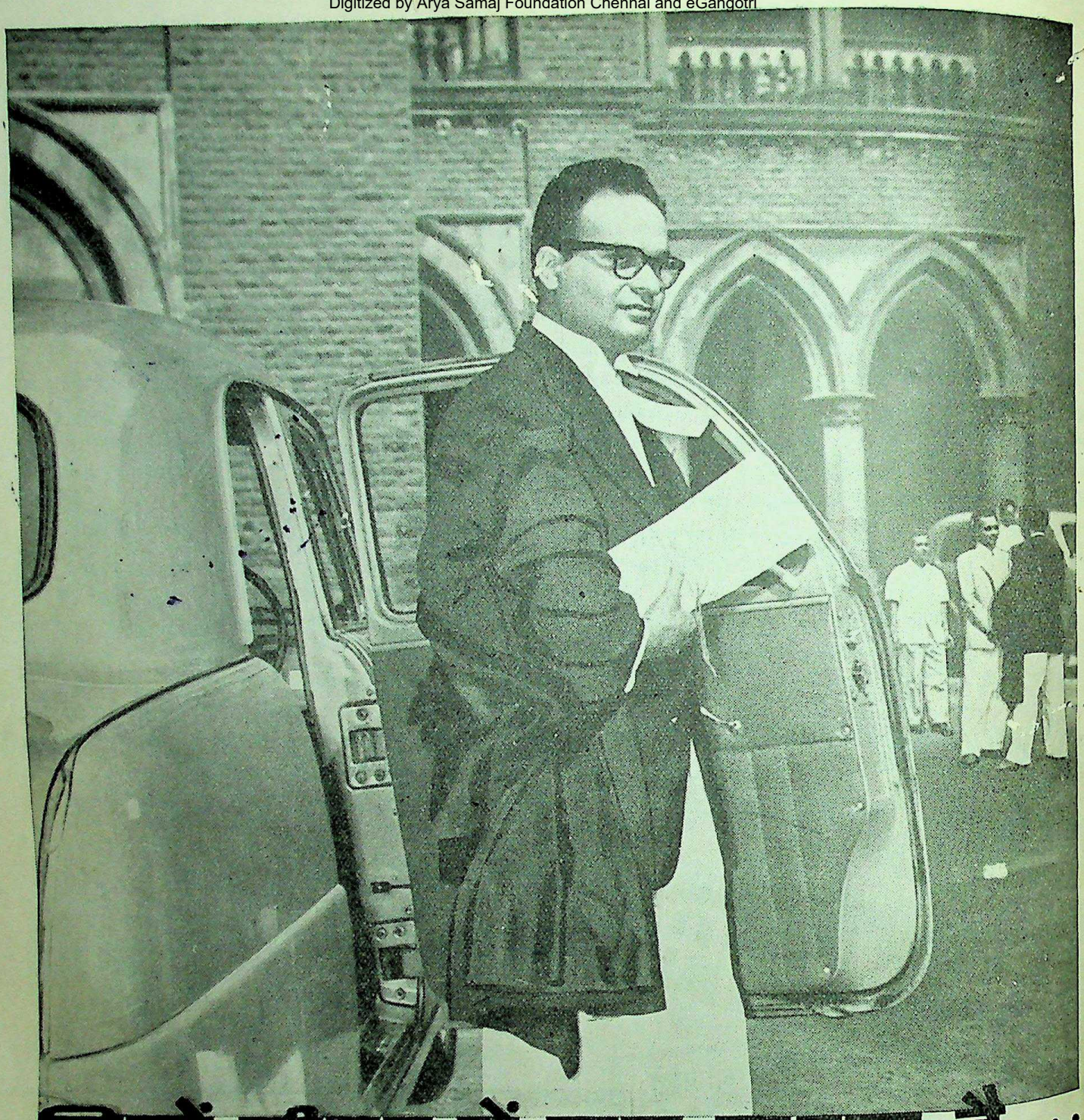

जिन्हें जीवन में कुछ करना है...

ऐसे लोग अपने लक्ष्य को जानते हैं और यह भी जानते हैं कि उस तक पहुँचने का सही मार्ग कौनसा है। उनकी दृष्टि हमेशा अच्छे से अच्छे साधनों पर ही जाती है; क्योंकि साधनों पर ही तो सफलता निर्भर करती है। और यह भी स्वाभाविक ही है कि अपनी मोटरगाड़ियों के लिए वे अच्छी से अच्छी चीजें पसन्द करते हैं।

यही कारण है कि वे बेहतर मोटरचालन के लिए स्टैन्वैक के मशहूर उत्पादन

मोबिलगैस और **मोबिलऑइल**

इस्तेमाल करते हैं

स्टैण्डर्ड-वैक्यूम ऑइल कंपनी (सीमित दायित्व सहित यू. एस. ए. में संस्थापित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो विशेष संदर्भ ग्रन्थ

	मूल्य	डाक-व्यय
रूसी हिन्दी शब्दकोश (पृष्ठ संख्या ९५६)	३५·००	—
४०,००० रूसी शब्दों के हिन्दी अर्थ		
अठ्ठारह सौ सत्तावन डा० सुरेन्द्र नाथ सेन	४·५०	०·८५

इसमें डा० सेन ने १८५७ की घटनाओं से सम्बन्धित अंग्रेज़ों तथा भारतीयों को निर्पेक्ष दृष्टिकोण से आंका है ।

सभी प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं से प्राप्त या सीधा लिखें--

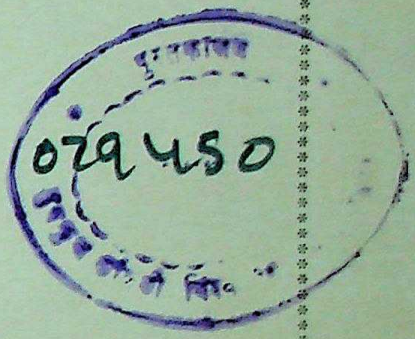

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पो० बॉक्स नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट

दिल्ली - ८

इण्डिया डायरी--१९५९

(सचित्र)

आकार ८½" × ६"

नए वर्ष के लिए एक उत्तम उपहार

दिनचर्या को नोट करने के लिए अति उपयोगी । हर सप्ताह के लिए एक पृष्ठ । हर पृष्ठ के सामने भारतीय जीवन तथा दृश्यों के रंग-बिरंगे सुन्दर चित्र ।

अक्तूबर १९५८ में उपलब्ध होगी

मूल्य : ५ रुपए, डाक खर्च ५० नए पैसे (रजिस्ट्रेशन व्यय अलग)

पच्चीस रुपए अथवा इससे अधिक मूल्य की प्रतियों पर डाकखर्च नहीं लिया जाएगा ।

रेखांकित पोस्टल आर्डर भेजने से सुविधा रहती है ।

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पो० बॉ० नं० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली - ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पत्रिकाओं को अपने वाचनालय में सम्मिलित कीजिए

079450

ग्राम सेवक (मासिक)

ग्राम सुधार की विभिन्न योजनाओं के बारे में ग्रामीण जनता के योग्य सामयिक सूचना और समाचार। भाषा अति सरल और छपाई सुन्दर। वार्षिक शुल्क १·२५ रुपये।

मैट्रिक मापतौल

मापतौल प्रणाली के महत्वपूर्ण विषय पर प्रकाश डालने वाली नवीन द्विमासिक पत्रिका। वार्षिक चन्दा २·०० रुपये।

कुरुक्षेत्र (मासिक)

सचित्र मासिक पत्र, जिसमें देश के सामुदायिक विकास-कार्यक्रम सम्बन्धी समाचार तथा लेख प्रकाशित होते हैं। वार्षिक शुल्क २·५० रुपये।

बाल-भारती (मासिक)

नन्हे मुन्नों की सचित्र मासिक पत्रिका जिसमें सरल भाषा में मनोरंजक कहानियां, शिक्षाप्रद कविताएं, उपयोगी लेख और रेखाचित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। वार्षिक शुल्क ४·०० रुपये।

योजना

सब क्षेत्रों में हुई प्रगति का आलोचनात्मक मूल्य आंकने वाली, भारत की पंचवर्षीय योजनाओं का पथप्रदर्शक पाक्षिक पत्रिका। वार्षिक शुल्क २·५० रुपये।

भारतीय समाचार (पाक्षिक)

अधिकृत सरकारी सूचनाएं व विकास सम्बन्धी गतिविधियों के समाचारों के लिए एक उत्तम पाक्षिक पत्रिका। छात्रों, शिक्षकों, व सार्वजनिक विषयों से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। वार्षिक शुल्क ५·०० रुपये।

बिक्री बढ़ाने के लिए इन पत्रिकाओं में विज्ञापन दीजिए

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

पो० बॉ० २०११, ओल्ड सेक्रेटेरिएट

दिल्ली - ८

Edited and Published by the Director, Publications Division, Old Secretariat, Delhi—8 and printed by the Assistant Manager, Government of India Press, Faridabad.

Regd. No. D—510

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri